श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

सुख यहां

प्रथम भाग
द्वितीय भाग

प्रवक्ता—
अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री
पूज्य श्री १०५ क्षु० मनोहर जी वर्णी
'सहजानन्द महाराज'

सम्पादक—
पवन कुमार जैन ज्वैलर्स, सदर मेरठ।

प्रकाशक—
खेमचंद जैन सर्राफ, मंत्री श्री सहजानंद शास्त्रमाला, १८५-ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ।

लागत प्रथम ७) रु०

द्वितीय सम्करण १०००
सन् १९७६

लागत द्वितीय ७) रु
जिल्द पृथक् १)
योग = १५)

भारतवर्षीय वर्णी जैन साहित्य मंदिर के संरक्षक

(१) श्रीमती राजो देवी जैन ध० प० स्व० श्री जुगमंदरदासजी जैन आडती, — सरधना

(२) श्रीमती सरलादेवी जैन ध० प० श्री ओमप्रकाश जी दिनेश वस्त्र फैक्टरी, — सरधना

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला के संरक्षक

(१) श्रीमान् ला० महावीरप्रसाद जी जैन बैंकर्स, — सदर मेरठ

(२) श्रीमती फूलमाला देवी, ध० प० ला० महावीरप्रसादजी जैन बैंकर्स, — सदर मेरठ

(३) श्रीमान् ला० लालचन्द विजयकुमार सर्राफ, — सहारनपुर

(४) श्रीमती शशिकान्ता जैन ध० प० श्री धनपालसिंह जी सर्राफ, — सोनीपत

(५) श्रीमती सुवटी देवी जैन, सरावगी — गिरीडीह

(६) श्रीमती जमना देवी जैन ध० प० श्री भवरीलाल जैन, पाण्ड्या — झूमरीतिलैया

नवीन स्वीकृत संरक्षक

(७) श्रीमती रहती देवी जैन ध० प० श्री विमलप्रसादजी जैन, — मसूरपुर

(८) श्रीमती श्रीमती जैन ध० प० श्री नेमिचदजी जैन, — मुजफ्फरनगर

(९) श्रीमान् शिखरचंद जियालाल जी एडवोकेट, — ,,

(१०) श्रीमान् चिरंजीलाल फूलचंद बैजनाथजी जैन बडजात्या नई मंडी, — ,,

(११) श्रीमती पूना बाई ध० प० स्व० श्री दीपचन्द जी जैन — गोटेगांव

※ मंगल-मन्त्र ※

ॐ नमः शुद्धाय, ॐ शुद्धं चिदस्मि ।

मैं ज्ञानमात्र हूं, मेरे स्वरूपमें अन्यका प्रवेश नहीं अतः निर्भार हूं ।

मैं ज्ञानघन हूं, मेरे स्वरूपमें अपूर्णता नहीं, अतः कृतार्थ हूं ।

मैं सहज आनंदमय हूं, मेरे स्वरूपमें कष्ट नहीं, अतः स्वयं तृप्त हूं ।

ॐ नमः शुद्धाय, ॐ शुद्धं चिदस्मि ।

परमात्म-आरती

(पू० श्री मनोहर जी वर्णी द्वारा रचित)

ॐ जय जय अविकारी ।

जय जय अविकारी, स्वामी जय जय अविकारी ।
हितकारी भयहारी, शाश्वत स्वविहारी ॥ टेक ॥ ॐ ...

काम क्रोध मद लोभ न माया, समरस सुखधारी ।
ध्यान तुम्हारा पावन, सकल क्लेशहारी ॥ १ ॥ ॐ ...

हे स्वभावमय जिन तुमि चीना, भव सन्तति टारी ।
तुव भूलत भव भटकत, सहत विपति भारी ॥ २ ॥ ॐ ....

परसम्बध बध दुख कारण, करत अहित भारी ।
परमब्रह्म का दर्शन, चहु गति दुखहारी ॥ ३ ॥ ॐ...

ज्ञानमूर्ति हे सत्य सनातन, मुनिमन सचारी ।
निर्विकल्प शिवनायक, शुचिगुण भण्डारी ॥ ४ ॥ ॐ ...

बसो बसो हे सहज ज्ञानघन, सहज शातिचारी ।
टलें टलें सब पातक, परबल बलधारी ॥ ५ ॥ ॐ ...

नोट—यह आरती निम्नाकित अवसरो पर पढी जाती है—

१– मन्दिर आदि मे आरती करने के समय ।
२– पूजा, विधान, जाप, पाठ, उद्घाटन आदि मगल कार्यों मे ।
३– किसी भी समय भक्ति-उमग मे टेक का व किसी छद का पाठ ।
४– सभाओ मे बोलकर या बुलवाकर मगलाचरण करना ।
५– यात्रा वदना मे प्रभुस्मरणसहित पाठ करते जाना ।

卐 卐卐卐
卐 卐
卐卐卐卐卐
卐 卐
卐卐卐 卐

❋ आत्म-कीर्तन ❋

हूं स्वतन्त्र निश्चल निष्काम। ज्ञाता द्रष्टा आतमराम॥ टेक॥

मैं वह हूं जो हैं भगवान, जो मै हूं वह हैं भगवान।
अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यह रागवितान॥ १॥

मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान।
किन्तु आशवश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान॥ २॥

सुख दुःख दाता कोइ न आन, मोह राग रुष दुःख की खान।
निजको निज परको पर जान, फिर दुःखका नहिं लेश निदान॥ ३॥

जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम।
राग त्यागि पहुंचू निज धाम, आकुलताका फिर क्या काम॥ ४॥

होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जगका करता क्या काम।
दूर हटो परकृत परिणाम, 'सहजानन्द' रहूं अभिराम॥५॥

[धर्मप्रेमी बंधुओ! इस आत्मकीर्तनका निम्नाकित अवसरोंपर निम्नाकित पद्धतियों में भारतमे अनेक स्थानोपर पाठ किया जाता है। आप भी इसी प्रकार पाठ कीजिए]

१—शास्त्रसभाके अनन्तर या दो शास्त्रोंके बीचमे श्रोतावो द्वारा सामूहिक रूपमे।
२—जाप, सामायिक, प्रतिक्रमणके अवसरपर।
३—पाठशाला, शिक्षासदन, विद्यालय लगनेके समय छात्रो द्वारा।
४—सूर्योदयसे एक घटा पूर्व परिवारमे एकत्रित बालक-बालिका, महिला तथा पुरुषो द्वारा।
५—किसी भी आपत्तिके समय या अन्य समय शान्तिके अर्थ स्वरुचिके अनुसार किसी अर्थ, चौपाई या पूर्ण छदका पाठ शान्तिप्रेमी बन्धुओ द्वारा।

सुख यहां प्रथम भाग

(सहजानन्द गीता प्रवचन)

प्रवक्ता—अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री
पूज्य श्री १०५ क्षु० मनोहर जी वर्णी
"सहजानन्द" महाराज

अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरुवे नम ॥

बन्धुवर !

हम आप जीव है । जिनमे जानने देखनेकी शक्ति हो उसे जीव कहते है । जो इस शक्तिसे रहित है उन्हे अजीव कहते है । जो जानने, देखने वाली ज्योति है वही मैं हू । इस ज्योतिके साथ अविनाभावी आनन्द है । इस आनन्द गुणके विकास सुख-दुःख व आनन्द है । सब जीव यही चाहते हैं कि मैं सुखी रहू, दुःख न भोगू । हम जितना भी प्रयास करते हैं, काम करते है उसका उद्देश्य केवल यही है कि मैं सुखी रहू, दुःखसे छुटकारा पा जाऊं । सुखकी खोजमे ही रात दिन लगा रहता है यह, लेकिन क्या अभी तक सुख प्राप्त कर सके ? नही । क्योंकि हमारी खोज, हमारा प्रयास विवेकपूर्ण नहीं है । हम जितना भी सुखी होनेका प्रयास कर रहे हैं उसका परिणाम उल्टा ही होता है । कारण यह है कि हमारी खोज परपदार्थोंमे है । यदि हम स्वयंको देखें, समझें, अनुभव करें तो यही पावेंगे कि सुख कही नही, आनन्द किसी स्थान पर न मिलता है, न बिकता है किन्तु मुझमे स्वयंमे ही आनन्द लबालब भरा हुआ है । जिसकी प्राप्ति भटकते रहनेके कारण मै आज तक न कर सका । हम आज तक दुःखो को सुख मानकर भोगते रहे । विचारो तो ये जो पतंगा, कीडे, मकोडे, वनस्पति आदि जीव हैं, जिनकी हत्या करते हुए, जिनको नष्ट करते हुये प्रायः लोगोको जरा भी सकोच नही होता, ये सब हमारी ही तो पर्याय है । और यदि यह दुर्लभ मनुष्यकी पर्याय पाकर भी हम आत्मा को नही पहिचान सकें तो इन चौरासी लाख योनियोंमे वैसा ही भटकना पड़ेगा । मानवजीव

पाया, अत: हम धन्य है । हम बोल भी सकते है, अपना दु:ख व दर्द बता भी सकते हैं, सेवा भी कर सकते हैं । अपनी इच्छा व्यक्त भी कर सकते हैं । किन्तु इन गाय, भैंस आदिको तो देखो कितना ही दु ख हो, कुछ भी कैसी परिस्थिति क्यो न हो, भाव भी व्यक्त नही कर सकते । चौरासी लाख योनियोमे भटकनेके बाद दुर्लभ मानवपर्याय पाकर भी हम नही चेते तो फिर हमारा कल्याण नही । पूर्वजन्ममे अच्छे कर्म किये थे इस पर्यायको प्राप्त करनेके लिये । और इसको प्राप्त भी कर लिया है । तो भैया ! इसको यो ही न जाने दो । आत्म-कल्याण करो । सबसे बडी यही बात है कि अपनी परिणति ठीक करो । हमारा ज्ञान व आचरण ठीक रहा तो इस पर्यायमे भी सुख है और अगली पर्यायमे भी सुख है । और यदि हमारा ज्ञान व आचरण शुद्ध नही तो अगला भव तो दु:खमय है ही और इस भवमे भी दु:ख ही दु:ख है । भैया भगवान चेतनामय, आनन्द ही आनन्द स्वरूप वाले हैं, ज्ञान ही ज्ञान स्वरूप वाले हैं । ऐसे वे ज्योतिस्वरूप हैं, जो अपने आनन्दमे रहा करते हैं । बस यही विचारो कि जब सर्वजीवका भी यही स्वरूप है व सब जीवोमे भगवन् बस रहा है हम भी ज्ञान व आनन्दमय हैं । इस आनन्दका विकास धर्मके प्रसादसे होता है । धर्मके कार्योंमे सबसे पहिले जीवदयाको ही धर्म बताया है । व्यवहारमे सबसे बडा और सबसे पहिला मानवधर्म है जीवमात्रपर दया करना । जिसके अन्दर दया नही वह आदर नही पाता और जिसके अन्दर सबके प्रति दयाभाव है वही आदर पाता अत: दया ही हमारा प्रथम धर्म है, यही विचार करना चाहिये ।

मूल दया तो अपने व सबके चैतन्यस्वरूपको देखनेसे आती है । सब जीव भगवान्के स्वरूप समान चेतनाशक्ति–युक्त हैं । किन्तु मायाके प्रपञ्चसे दु खी हो रहे है । मायाके आतंक से ही तो अभी मनुष्य हैं तो फिर पशु पक्षीकी पर्याय है । उन खोटी स्थितियोसे बचनेके लिये, अपना आचरण सुधारनेके लिये अच्छा मार्ग सत्सग 'अपनाना चाहिये; कुमार्ग गमनसे तो कोई भी सुखी नही होता । जैसे कि जुआ खेलते हैं रुपया पैसा लगाकर, किन्तु क्या वे उसमे सुख शान्ति पा लेते हैं । नही दु:खी ही होते रहते है, क्योकि जहाँ लालसा है वही दु:ख है । पाण्डवोको देखो जुएके कारण ही तो वे हीन बन गये, द्रोपदीका अपमान सहन करना पडा । यह सब किसके कारण ? एक जुवेके ही तो कारण और क्या कारण था इसके अतिरिक्त । अत दु:खके सिवाय इन व्यसनोमे रखा ही क्या है ? इसी प्रकार मांसभक्षण, मदिरापान, चोरी करना, शिकार खेलना, परस्त्रीसेवन व वेश्यागमन ये व्यसन भी क्लेश ही क्लेश हैं ।

इन सात व्यसनोका तो कमसे कम प्रत्येक प्राणीका त्याग होना चाहिये । यदि इन सात चीजोका त्याग कर दिया तो जीवन सुखमय हो जायेगा । मांसभक्षणमे कितनी निर्दयता है । देखो अपने शरीरमे यदि कांटा लग जाता है या कोई चुटकी काट लेता है तो कितना दु:ख होता है । और जिसका मांस खाया जाता है उसे तो जानसे ही खत्म कर दिया जाता

है तब ना दुःख होता है। बताइये कितना बडा स्वार्थ है कि मांसभक्षियोको तो जरासा कल्पित स्वाद, और यहां इसके प्राणोकी आहुति। उन्हे कितना दुःख नही होता होगा। अतः भैया! सोच विचार कर इस व्यसनका त्याग कर ही देना चाहिये। मनुष्यका भोजन भी मांस नही है। बच्चेको भी शुरूमे यदि मांस दोगे तो वह वमन कर देगा। प्रकृतिविरुद्ध भी तो बात है यह। शराब पीनेसे बेहोशी हो जाती है, जानने देखनेकी शक्ति नष्ट हो जाती हैं। उसका विश्वास भी फिर कोई नही करता। चोरी करना, जुआ खेलना, मांस खाना, शिकार खेलना, मदिरा पीना, परस्त्रीसेवन करना, वेश्यागमन करना। इनके भी द्वारा होने वाली बरबादीको विचार करके जीवन पर्यन्त इन व्यसनोका त्याग करना चाहिये। जिनको ध्यान भगवानमे लगाना है उन्हे इन्हे तुरन्त ही त्यागना चाहिये। इन व्यसनोसे जीवका जो पतन होता है उससे यह पतित प्राणी प्रभुके बिल्कुल विमुख हो जाता है। आज जो हमारी स्थिति है यह पुण्यके प्रताप ही से तो है। तभी तो आज हम मनुष्ययोनिमे हैं। अतः अब भी हमे अपना धर्म न छोडना चाहिये। यह जो शरीर है जिसपर हम गर्व करते हुये नही अघाते है, क्या है यह? केवल खून, पीप, मवाद आदि दुर्गन्धोका ही तो पिण्ड है, जिसमे नवद्वार तो प्रकट बहते ही है, और रोमके करोडो छिद्रोसे मल झरता है। कुछ भी तो इसमे सार नही है। फिर क्यो इससे इतना मोह, क्यो इतना गर्व इस नाशवान् वस्तुका, जिसके खातिर मांसभक्षण मदिरापान आदि जैसे घोर पाप किये जाते है।

मदिरा (शराब) के पीने वालोका मनुष्य तो निरादर करते ही है; कुत्ते तक भी मुखमे अशुचि क्षेपण कर निरादर कर डालते हैं। चोर को तो सदा शल्य ही रहती है वह तो छुपा छुपा ही रहना चाहता है। उसे तो कोई पास भी नही बैठने देता। शिकार खेलना तो अतिनिर्दयता है। परस्त्रीसेवन तो अनेक विपदाओकी खान है। परस्त्रीगामी पराधीन दीन बन जाता है उसके तो प्राण भी नष्ट कर दिये जाते है। वेश्या तो नरककी साक्षात् दूती है। ये व्यसन लौकिक आपदा तो पैदा करते ही हैं किन्तु इन व्यसनोसे जीव ऐसा अधार्मिक हो जाता है कि वह न तो प्रभुके भजनके योग्य रहता है, न धर्मकी बात समझनेके योग्य रहता है और न शान्तिका जरा भी पात्र रहता है। व्यसन तो मुफ्त ही सिर पर ली हुई विपदा है।

इन सात व्यसनोमेसे यदि एक भी साथ लग गया तो न तो वह प्राणी आरामसे बैठ सकता है, न चार व्यक्तियोमे इज्जत ही पाता है, कोई उसका विश्वास नही करता, सब उसे झूठा समझने लगते है। परमार्थसे तो वह कोसों दूर रह जाता है। अतः इन सात व्यसनोका त्याग करना ही चाहिये। आत्माके हितके लिये क्या करना चाहिए? यह अच्छी प्रकार

विचार कर अच्छी बातोको धारण करो और बुरी आदतको छोड दो। अपनी आजीविका न्यायपूर्वक करें और किसी का जी तक न दुखावें। बस यही विचारें कि मेरे कारण किसी को दुःख न पहुंचे। उपकार और त्याग की ही तो महिमा है। जितना परउपकार करोगे और स्वरूपदृष्टि रख जितना सांसारिक परपदार्थोंका त्याग करोगे उतने ही महान् बनोगे। जिन्दगी का सार यही है।

जो जिन्दा है वह मरेगा तो अवश्य ही, इसमे सन्देह नही, किन्तु वह मरण अमर हो, ऐसा प्रयास करना चाहिए। सर्वप्रथम इन सात व्यसनोको त्यागकर अपनी आत्माके कल्याणके मार्गमे लगें, अपनेको पहिचानें। यदि इस प्रकारका सच्चा ज्ञान प्राप्त कर आचरण किया तो जीवन सफल हो जावेगा। इन सात व्यसनोके त्यागसे धर्मका मर्म समझनेकी योग्यता आती है। व्यसनसेवी धर्मकी बातका स्पर्श भी करनेका पात्र नही होता। अत यह तो सर्वप्रथम ही आवश्यक है कि सप्तव्यसनोका त्याग करें। धर्म जिसके कि धारणसे क्लेश नष्ट होते हैं वह बाहर नही, आत्मवस्तुमे ही है। वस्तु अपनेमे जिस स्वभावको धारण करता है उसका नाम धर्म है। जैसे बिच्छूका धर्म काट लेना है, मानवका स्वभाव रक्षा करना है, अग्निका धर्म जलाना है। इस तरह लोकव्यवहार की प्रसिद्धिसे भी यही सिद्ध है कि वस्तुके स्वभावका नाम धर्म है।

एक उदाहरण है कि एक नदीमे बिच्छू बह रहा था। एक मनुष्य उसको निकालने के लिए नदीमे घुसा। खडे हुए आदमी बोले कि भैया! उसको निकालनेसे क्या फायदा, वह काट लेगा, किन्तु वह नही माना। बिच्छूके काटनेपर भी वह उसे बाहर निकाले। काटनेसे गिर जाय फिर भी निकाले। निकालकर बोला—देखो भाई, इसका स्वभाव काटना है और मेरा स्वभाव है रक्षा करना। जब यह छोटासा प्राणी अपने स्वभावको नही छोडता, उसका बराबर पालन किये जा रहा है, तब मुझे तो सोचने समझनेकी शक्ति भी मिली है, फिर मैं क्यो अपने धर्मको छोड़ूँ? यही तो परीक्षा है। विपत्तिके उपस्थित होने पर भी स्वभावको न छोड़ना ही धर्म है।

धर्म कहो, स्वभाव कहो, शक्ति कहो एक ही बात है। जिसमे जानने, देखनेकी शक्ति हो उसे जीव कहते हैं। जो शुरूसे लेकर अन्त तक बना रहे, न छूटे उसे स्वभाव कहते हैं। ऐसे स्वभावमे तन्मय यह आत्मा है, यह कभी नष्ट न होने वाली वस्तु है। वह स्वभाव है अपनी आत्माका चैतन्यस्वरूप, सहजज्ञान, चिदानन्द। जिसमे चढाव उतार पाया जावे वह स्वभाव नही बन सकता। जैसे क्रोध करना, मान करना आदि यह स्वभाव नही बन सकता। आखिरकार क्रोधकी मुद्रा कितने समय तक बनी रह सकती है, आखिर तो अपने

वास्तविक स्वरूपमे आना ही होगा। शरीर भी जीवका स्वरूप नही, क्योकि यह भी नष्ट होने वाली चीज है। जो पैदा हो व नष्ट हो या जिसमे उतार चढाव पाया जावे वह स्वभाव नही कहा जा सकता। घमण्ड भी जीवका स्वभाव नही, क्योकि इसमे उतार चढाव पाया जाता है। माया, तृष्णा, लोभ ये सब जीवके स्वभाव नही हो सकते। क्योकि इनमे नित्य-पना नही पाया जाता। अतः जो जाननेकी शक्ति है, चेतना है, चैतन्यस्वरूप है इसमे उतार चढाव नही है, अतः चैतन्य जीवका स्वभाव है। यही जीवका धर्म कहलाया। आत्मधर्मका पालन यही है कि ऐसी दृष्टि बनावे कि मैं तो ज्ञानशक्तिमात्र हू, तभी भगवानके स्वरूपके दर्शन हो सकते है। वास्तविक दृष्टिसे भगवान्‌के स्वरूपकी तभी कल्पना की जा सकती है। और जो नाना भगवानके स्वरूपोकी कल्पना कर रहे हैं ये सब व्यर्थ हैं। यदि प्रभुके दर्शन होगे तो अपने स्वरूपमे ही होगे।

हम अपने आपको सही समझ लेवेंगे तो भगवानके स्वरूपका पता लग जावेगा। अपने को ज्ञाता, द्रष्टा समझ लेनेपर ही आत्माके अपने सहज स्वरूपके दर्शन हो सकते हैं। उस पावन दर्शनमे ही अनुपम आनन्द है। ऐसा आनन्द नाना प्रकारके भोजनोमे, इज्जत, ऐश्वर्य आदिमे प्राप्त नही होगा।

ये बाह्य पदार्थ तो आकुलताके ही देने वाले हैं। इन वैभवादिसे क्या लाभ ? ये सब तो विपदा ही देने वाले है। जीवका स्वभाव तो चैतन्यस्वरूप है। यह जो हम आज शरीर की इज्जत करते है सब स्वार्थवश कर रहे है। सबको समदृष्टिसे देखता हुआ ही सत्य समान व्यवहार कर सकता है। मेरा स्वभाव तो मायासे परे है ऐसा विचार करते हुये अपने आप का निर्णय करो, तभी अपने आपके, अपने सहज स्वभावके दर्शन पा सकते हो। मानव अनेक धर्मोकी विधियोके कारण इस सन्देहमे पड जाता है कि वास्तविक सत्य क्या है ? क्योकि सभी अपने अपने धर्मका प्रचार कर रहे हैं, कोई कुछ कहता है तो कोई कुछ कहता है। अतः इस मे यह पता नही लगता कि असत्य क्या है ? जायें तो किसके बताये मार्गपर जायें।

भैया ! ऐसा सन्देह हो तव सबकी वातोको छोड दो और ऐसा छोड़ दो कि कुछ कल्पना ही न आवे, और सर्वसमागमको असार तो समझ ही लिया है सो उस सबको भी अपने उपयोगमें न आने दो। फिर देखोगे उस परमविश्राममे शुद्ध ज्योतिर्मय आत्मस्वभाव। इस आत्मदर्शनके साथ जो आनन्द पावोगे वह सर्वोत्कृष्ट है। और फिर ऐसी स्थिति पानेके लिये लालायित होकर उपयोग बनाओगे। ऐसे पुरुषार्थ करनेका नाम ही धर्मका पालन करना है।

धर्मसाधन ही जीवका सत्य शरण है ! इसकी साधना करके अपना जीवन सफल

करना आहिये । धर्म है समता, जहाँ मोह और क्षोभ नही है वही धर्म है । मोह और लोभ का अभाव होता है शुद्ध ज्ञानस्वरूपके उपयोगसे । अतः शुद्ध ज्ञानस्वरूपके चर्चक अध्ययनसे, मननसे, चिन्तनसे, अनुभवसे निरापद सत्य विश्राम पाना ही परमहित है ।

बन्धुवर ! हम सब ज्ञानपिण्ड पदार्थ है और शान्तिके प्यासे हैं । शान्तिका सम्बन्ध ज्ञानसे है । ज्ञानसामान्यकी अपेक्षा देखो तो मुझ अशान्तमे व शान्त प्रभुमे कुछ भी अन्तर नही, किन्तु ज्ञानविशेषकी अर्थात् ज्ञानपरिणतिकी अपेक्षा देखो तो प्रभुमे व मुझमे अन्तर है । हम मतिश्रुत ज्ञानी है । इन्द्रिय व मनसे जो ज्ञान होता है उसे मतिज्ञान कहते हैं तथा पश्चात् लिखने, पढने, विचारने आदिसे जो उसी पदार्थमे मतिज्ञानसे विशिष्ट ज्ञान होता है उसे श्रुत-ज्ञान कहते है । केवलज्ञान जितने विषयको जानता है उतना ही विषय उत्कृष्ट श्रुतज्ञानका है, किन्तु अन्तर केवल इतना है कि श्रुतज्ञान परोक्षको जानता है और केवल ज्ञानी सबको जान-ता है और केवल ज्ञानी सबको जानता है । ज्ञान जिसके पास है वह निमित्त मिलनेपर वैराग्य को प्राप्त हो मुक्त हो जावेगा । अशान्ति समाप्त करनेका उपाय आत्मामे ज्ञानका उपयोग करना है । प्राणीको कभी भी अतिज्ञानका अभिमान नही करना चाहिये । प्राणी जिस-जिस प्रकार अपने कर्मोंसे दूर होता जाता है उसी प्रकार ज्ञानकी वृद्धि होती जाती है । जीवनका सबसे बडा शत्रु वह है जिससे वह मोह रखता है । इस प्राणीकी ऐसी विचित्र दशा है कि जिससे वह मोह रखे है वह यदि अन्याय या अनीतिका सहारा लिये हुये है तो भी उसीका पक्ष कर-ता है । एक जमाना ऐसा भी था, यदि अपना ही पुत्र आदि कोई भी अन्याय आदि करता था तो न्यायका ही अवलम्बन किया जाता था, बिना किसी भेदभावके । किन्तु आज दशा अति शोचनीय हो गई है । अतः मोहमे पडकर प्राणी दुर्गतिके कारण बनते हैं । इस ससारमे अपने आत्मज्ञानके अतिरिक्त कोई भी ससारसे मुक्ति नही दिला सकता । मुमुक्षु आत्माके स्व-भावको शरीरसे पृथक् समझो । जो बाह्य कर्म हैं उनको करना पडे तो भी मुमुक्षको आत्माके स्वभावको समझते रहना चाहिये । अपनेको चेतनाशक्तियुक्त समझना चाहिये तथा विचार करना चाहिये कि परिग्रह व ममता ही विपदाके कारण हैं । यदि प्राणी तीन बातें धारण करें तो उन्हे दुःखका कारण दूर करते देर न लगेगी—(१) चैतन्यस्वभावकी प्रतीति, (२) अन्याय सहन मत करो, (३) प्रेमका व्यवहार करो । कभी भी लोभादिमे पडकर यदि अन्याय सहन करना पडे जिसे आत्मा स्वीकार नही करती तो स्वीकार मत करो । सर्वदा सब प्राणि-योसे प्रेमका व्यवहार करना चाहिये । नम्रतासे सबसे व्यवहार करना चाहिये । इन सब बातो के होते हुए भी कभी भी प्राणीको न अपनेको तुच्छ समझना चाहिये तथा न ही किसी बात का अभिमान करना चाहिये । थोडा ज्ञान होनेपर ही प्राणी अपनेको बहुत बडा समझने लगता

है, किन्तु जैसे-जैसे वह ज्ञान प्राप्त करता जाता है वैसे ही वह अनुभूति करता है कि इतने विशाल ज्ञानके समक्ष मेरा ज्ञान बहुत ही कम है।

देखो भैया! कृतान्तवक्र सेनापतिने रागसम्बन्धी मोह वर्जित कर सब कठिनाइयाँ आसान समझी। ससारमे यदि प्राणीका सबसे बडा शत्रु है तो वह मोह माया है। इससे विरक्त होकर हम अपनी ओर आयें। सुख यहाँ मिलेगा। हमे केवल दो बातें ही करनी है—(१) बाह्यमे ऐसी न्याय प्रवृत्ति हो जिससे मेरे अन्तरगकी शुद्ध वर्तनामे बाधा न आवे। (२) ज्ञानानन्दघन निज आत्मतत्वकी दृष्टि। इस ही दूसरी बातमें प्रभुकी भक्ति भी अन्तर्निहित है।

रागाभाव: स्वय स्वाप्तावाप्तास्वो हि स्वभाववत्।
स्वे स्वं पर नमस्कृत्य, स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१—१॥

इसमे नमस्कार किया गया है। लेकिन किसको ? चूंकि प्राणी वस्तुत: स्वयं स्वयं को ही नमस्कार करता है और परमात्माको भी नमस्कार करता हो तो वह भी अपनेमे ही किया जाता है। सो परमार्थसे नमस्कार खुदको ही किया जा सकता है। यहाँ भी खुद ही को नमस्कार है। नम्रीभूत होनेको नमस्कार कहते है। नमना या झुकना नमस्कारके द्योतक है। अपने आपके स्वरूपकी ओर नमना भी अपनेसे ही होता है।

आत्माका स्वरूप परमात्माके सदृश है। आत्माका एवं परमात्मा का स्वभाव चैतन्य स्वरूप है। भगवान्‌का जो विकास है वैसा ही होनेका सब जीवोंका स्वभाव है। अपने आप को पा लेनेका नाम स्वयको नमस्कार है। अपने आपका दर्शन भी स्वयमे ही होता है। हम लोग जो मन्दिरोमे भगवान्‌की मूर्तिके सामने दर्शन करते है सो जिसका दर्शन करना चाहते हैं उसका दर्शन भी चक्षुसे नही होगा, ज्ञानसे ही दर्शन होगा। चक्षुसे तो केवल स्थापित मूर्तिका आकार ही दिखायी देगा। समवशरणमे भी परमात्माका दर्शन आँखोसे नही होगा, वहाँ भी ज्ञानसे दर्शन होगा। वहाँ भी अन्तरगमे ही दर्शन होगा। परमार्थसे तो भगवान्‌के स्वरूपको ज्ञेय बनाकर बने हुए ज्ञेयाकारसे परिणत निज आत्माके ही दर्शन होते है।

वैसे तो समवशरणमे भी निराकार परमात्मस्वरूपका दर्शन नही होता किन्तु साकार शरीरका ही दर्शन होता है सो ऐसे साकार शरीरके ही आँखोसे दर्शन होगे। जैसे यहाँ पर मन्दिरमे भगवानकी मूर्तिके दर्शन होते है। किन्तु जब तक ज्ञानसे दर्शन नही होगा तब तक कोई लाभ नही। अत: अपने आपकी प्राप्ति होने पर ही परमात्माको नमस्कार बनता है। अपने आपकी प्राप्तिका उपाय रागद्वेषादिका अभाव होना है। रागद्वेष अहंकार आदि परिणाम ही परमात्माके दर्शनमे बाधक बनते है। अपने आपको जान लेनेके बाद ही परमात्मस्वरूप की समझ व अपनी सच्ची अनुभूति होती है। इस अनुभूतिका बाधक है अहकार। जब तक अहकार रहता है तब तक परमात्माके दर्शन नही होते। भैया! एक देशमे एक

नककटा रहता था। उसने सोचा कि मुझे सब कोई नककटा कहकर चिढाते है। ये चिढा न सकें इसका कोई उपाय निकालना चाहिये। बहुत सोचनेके बाद उसने यह कहना प्रारम्भ कर दिया कि मुझे साक्षात् प्रभुके दर्शन हो रहे है। मैं इस नाककी नोक व छाया नही होने से साक्षात् भगवान्के दर्शन कर रहा हू। अत: उसकी इस बातको देखनेके लिए दूसरे पुरुषने भी अपनी नाक कटा ली, तब ईश्वरके दर्शन न होनेपर प्रश्न किया कि भैया! मुझे तो ईश्वरके दर्शन नही हो रहे हैं, तब उस नककटेने कहा कि अब तुम्हारी नाक तो कट ही चुकी है अतः यह कहना प्रारम्भ कर दो कि मुझे ईश्वरके दर्शन हो रहे है। अन्यथा दुनिया वाले तुम्हे हास्यका पात्र बनायेंगे। इस प्रकार सब ग्रामवासियोने अपनी नाक कटा ली तो राजाने सबको समरूप नककटा देखकर अपनेको उनसे भिन्न प्रतीत किया तथा कुरूप अनुभव किया। राजाने पूछा कि भाई आप सब तो बडे रूपवान् है, मैं ही क्यो कुरूप हू, तब लोगो ने उत्तर दिया कि राजन्! हम लोग भी इसी तरह नक्कू थे और इसी कारण भगवान्के दर्शन नही होते थे। जबसे यह नाक सफा हुई तबसे भगवान्के दर्शन हो रहे हैं। राजा भी ईश्वरके दर्शन करनेके लिये अपनी नाक काटना चाहता था कि उस प्रथम नककटेने कुछ कहनेके लिये क्षमा मांग कहना प्रारम्भ किया कि हे नाथ! नाक काट लेनेपर ईश्वरके दर्शन नही होगे, अपितु मुझे लोकके हास्यसे बचने के लिए यह उपाय सूझा और इस प्रकार सबो ने अपनी नाक कटा डाली।

अत सबसे प्रथम प्राणियोको अपने रागद्वेषादि परिणामोको दूर करना चाहिये। रागद्वेष अहकार आदि परिणाम भगवान्का दर्शन नही करने देते तब तक, जब तक कि ये बुरे परिणाम दूर न हो, न ही आत्माके दर्शन करने देते। आत्मामे छिपे तात्विक आनन्दका स्वाद हो जानेपर विषय कषाय आदिके सक्लिष्ट परिणामोमे पडना कोई नही चाहता। सदा विचार करना चाहिये कि जैसा चैतन्यस्वभाव अर्हन्त आदि मे है वैसा ही मुझमे है तथा जैसा मुझमे है वैसा ही अर्हंत आदिमे है।

आत्मा रागद्वेषादि बढाकर जो अनिष्ट करता है वह अपना ही करता है तथा जो दान आदि द्वारा इष्ट करता है वह भी अपने लिए ही करता है। दूसरोका न भला कर सकता है न बुरा। यह जीव अपना स्वरूप बनानेके अतिरिक्त कुछ नही करता है। बुरे कर्म करने से हम अपनेको ही नष्ट करते हैं, दूसरोका कुछ नही। यह आत्मा अपना ही काम करता है दूसरोका कुछ नही। जैसे दर्पणके पीछे दो बालक खडे होकर क्रिया करते हैं। एकके द्वारा की गयी क्रियाको दर्पणमे देखकर ही दूसरा सब कुछ बताता जाता है। वैसे ही अपनेको पदार्थके अनुसार ही परिणित करके वर्णन करते हैं लोग। प्राणी रुपया पैसा

वैभवको ही सब कुछ समझता है जबकि ज्ञानके समक्ष सब कुछ व्यर्थ है। देखो सर्वत्र महिमा ज्ञानकी ही है। सब लोग ज्ञानको ही जानते है और ज्ञानको ही बताना चाहते है। ज्ञानदानकी बहुत बडी महिमा है। किसी भी प्रकार दूसरोको ज्ञानका दान देना चाहिये, चाहे पुस्तकें वितरण कर अथवा रुपया पैसा देकर, पढाई कराकर या स्वयं पढ़ाकर आदि। सोचो जब हम दूसरोका कुछ नही कर सकते तब भगवान्के लिए क्या कर सकते है ? जिस प्रकार बम्बई घूमकर आये हुये प्राणीको बम्बईका सम्पूर्ण दृश्य अपनी आँखोके समक्ष ही दृष्टिगोचर होता है, उसी प्रकार जिसने अपनेको पहिचान लिया उसे अपनेमे ही प्रभु नजर आते हैं। विपरीत अवस्थामे दूर नजर आते है।

जिस प्रकार शीशे (दर्पण) मे हाथी जैसा विशाल प्राणी भी दिखाई देता है उसी प्रकार ज्ञानमे सब कुछ प्रत्यक्ष झलकता है। यदि ये प्राणी किसीसे राग करता है तो भी अपने लिए ही, द्वेष करता है तो भी अपने लिये ही। तात्पर्य यह जो कुछ करता है सब कुछ अपने लिए ही करता है, दूसरोका कुछ नही। मैं नमस्कार करता हू इसमे चाहे किसीको भी नमस्कार करनेका उद्देश्य बनाया है किन्तु है सब कुछ अपने लिए ही। भगवान् को नमस्कार क्या दर्शकोको दिखानेके लिए करते है ? मन्दिरमे जाकर नमस्कार करना दिखावा करना हो सकता है परन्तु अपनेमे ही अपने द्वारा अपनेको अपने लिए अपने आप अपने उद्धार के लिए नमस्कार किया जाता है। नमस्कारका तात्पर्य है, मैं अपनेमे अपने लिए अपने आप समाकर सुखी होऊ।

ज्ञानशक्ति, दर्शनशक्ति, चरित्रशक्तिकी तरह ही आनन्दशक्ति है। जो जो अनुभूति बनती है वे सब अपनेसे ही बनती है। जब यह प्राणी आत्मानन्दका स्वाद एक बार आस्वादन कर लेता है उसे अन्य सब कुछ व्यर्थ लगता है। विलक्षण है ये आत्मानन्दकी अनुभूति उस स्थितिमे प्राणी सोचता है कि मेरी यह आत्माके आनन्दकी अनुभूति निरन्तर बनी रहे अन्य कुछ नही। परमार्थसे अध्यात्मतत्त्वको ही नमस्कार किया जाता है। समवशरणमे भी भगवान्की मूर्ति ही नजर आती है। मन्दिरोमे जो मूर्ति है वह स्थापित मूर्ति है। आँखोसे देखने पर मुद्रा ही नजर आती है। ज्ञानमय ही भगवान् है। सो अपनेमे मैं अपने को नमस्कार करता हू और पर परात्पर आत्माको भी नमस्कार करता हू। अपनी प्राप्ति होना ही अपना नमस्कार है। अपने आत्मतत्त्वकी प्राप्ति होनेपर रागका स्वय अभाव होने लगता है। जिसने अपने आपको प्राप्त किया है ऐसा वह परमात्मा भी मेरे स्वभावके अनुरूप है। अत: मैं अपनेमे अपने आपको व परमात्माको नमस्कार करके अपने लिये अपने आपमे स्वय सुखी होऊं।

रूपी जलसे धोना पडेगा। मेरा स्वभाव तो भगवान्‌के स्वभावकी तरह है, अत। बाह्यभ्रमोमे पडना व्यर्थ है। देखो भैया! भगवान्‌के पास क्या है केवल ज्योतिपुञ्ज आत्माको छोडकर। फिर भी सब प्राणी उन्हे नमस्कार करते है। फिर क्यो न हम भी उनके समान गुण धारण करें? क्यो न वैसा ही बना जावे? इतना जान भी लेना सन्तोषजनक होता है कि मैं सिद्ध भगवान्‌के स्वरूपके सदृश हू। यदि उपयोग नही लगता तो ऐसा विचार करनेसे भी तो आनन्द ही प्राप्त होता है। ऐसा होते-होते दृढज्ञान हो जावेगा। क्योकि अन्तमे सबकी शरण ज्ञान ही है। यदि कोई करोडपति क्यो न हो जब तक उसका पुण्य उदय है तब तक भले ही मजे करले किन्तु फिर भी उस समयमे किये गये बुरे परिणाम आगे गति बिगाड देंगे। "मैं सुखी दुखी, मैं रक राव, मेरे धन गृह गोधन प्रभाव। मेरे सुत तिय, मैं सबलदीन। बेरूप सुभग मूरख प्रवीण॥" आदि पर्यायबुद्धिका परिणाम दुःखका ही देने वाला है। मैं तो ज्योति-स्वरूप अमूर्त आत्मा भगवान्‌के समान स्वभाव वाला हू—ऐसा सोचते हुए भगवान् को नम-स्कार करें।

इसके भीतरके मर्मपर दृष्टि रखो तथा बाह्य सब छोडो तथा अपनेको पहिचानो। मुझे अमुक ने गाली दी ऐसा मनमे भाव लाना ही दु खजनक है। भैया! अपनेसे प्रतिकूल जीवो-पर भी करुणा कर समान भाव पैदा करो। सोचो कि ये जो मेरे प्रतिकूल प्राणी हैं, ये अज्ञानी हैं। जिन्हे अपनी आत्माके स्वरूपका ज्ञान ही नही है। वे अपने स्वभावको जान जावें ऐसी करुणा उनके ऊपर करनी चाहिये। किसी भी जीवसे घृणा नही करनी चाहिये। जगत्‌मे कोई भी जीव घृणाका पात्र नही है।

सब जीवोका सहजस्वरूप टकोत्कीर्णवत् स्वत सिद्ध निश्चल एक ज्ञायकस्वरूप है। द्रव्यदृष्टिसे देखो तो निर्विकल्प अनादि अनन्त अहेतुक चेतन तत्त्व है। गुणदृष्टिसे देखो तो सभी ध्रुवशक्तिमय है। अत सिद्धप्रभुमे और समस्त जीवोमे कोई अन्तर नही है। केवल वर्तमान परिणतिकी दृष्टिसे देखनेपर अन्तर दिखता [illegible] सिद्धप्रभु तो शुद्ध विकासरूप है और संसारी जीव अशुद्ध विलासरूप हैं। यह अन्तर [illegible] वि ही आती है अत महान् अन्तर है तो भी यह परिणति जीवके स्व [illegible] निमित्तनैमित्तिकभावपद्धतिवि-हित है। अत मूलमे कुछ भी अन्तर नही [illegible]

सिद्धप्रभुकी तरह शुद्ध केवल ज्ञ [illegible] आपको केवल निरखना, ज्ञानमय निर [illegible] निरखेंगे उस रूपकी प्राप्ति होगी। [illegible] त्त्व-भावरूप अपनेको अनुभवें [illegible] हूँ, स्वच्छ अविनाशी हूँ—इ [illegible]

है ।

विश्वतो भिन्न एकोऽपि कर्ता योगोपयोगयः ।
रागद्वेषविधाताऽऽसम् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।१—३।।

इस जगत्के अन्दर अनन्तानन्त जीव है, अनन्तानन्त पुद्गल है । धर्म एक है, अधर्म एक है, आकाश एक है, असख्यात कालद्रव्य है किन्तु फिर भी प्रत्येक परमाणु सारे अनन्तानन्त परमाणुओसे भिन्न है । सारे अनन्तानन्त परमाणु भी प्रत्येक परमाणु से भिन्न है । एक स्कन्धकी अपेक्षा भी प्रत्येक परमाणु अपने क्षेत्रमे ही परिणमन करता है । कोई भी एक परमाणु अनन्तानन्त परमाणुओसे भिन्न है । सत्की अपेक्षा धर्म, अधर्म, आकाश, काल भी जुदा जुदा हैं । स्कन्धमे परमाणुओका परिणमन सामूहिक रूपसे होता है किन्तु फिर भी प्रत्येक परमाणु अपने-अपने क्षेत्रमे ही परिणमन करता है । इसी प्रकार प्रत्येक जीव अनन्तानन्त जीवोसे जुदा है । यह प्राणी जो मोह मायामे फंसकर रात दिन विचरता रहता है कि यह मेरा है, यह मेरे घरका है, यह सब व्यर्थ है क्योकि अपने स्वभावसे बाहर अपना क्या है ? चैतन्यस्वभावके अतिरिक्त ये वैभव ये पोजीशन, ये ठाठ बाट सब व्यर्थ है । जिसने अपना स्वभाव समझ लिया उसके लिए ये सब बातें निस्सार लगती है । मेरी आत्मा सारे विश्वसे भिन्न है । मैं एक हू, मैं सबसे न्यारा हूँ इस प्रकार विचार करना चाहिए । मैं निजी दो बातो को छोड कर किसीका कुछ नही करता—(१) योग (२) उपयोग । मैं कदाचित इन दोनोका ही कर्ता हू अन्य कुछ नही करता हू । मेरी आत्माके प्रदेशोमे जो हलन चलन होती है उसी का नाम योग है और जो गुणोका यूज है, प्रवर्तना है उसका नाम उपयोग है । इन दोनोके अतिरिक्त मै कर ही क्या सकता हू ? सिद्ध भगवान् शुद्धउपयोगके कर्ता है । शेष जीव यथायोग्य शुभ अशुभ व शुद्ध उपयोगके कर्ता है । ये जगत्के जितने परिणमन होते है सब एक दूसरेको यथायोग्य निमित्त करके स्ततः होते रहते है । आत्मा तो दूसरे कार्योंकी चेष्टाको स्वय ही कर्ता है । जैसे रोटी बनायी, अब बताओ आत्माने इसमे क्या कार्य किया ? आग जलाई या आटा गूथा, क्या किया ? अरे भैया ! वह अपनी जगह ही स्थिर है । आत्माके प्रदेशोंके योगके निमित्तसे शरीरमे वायुका सचार हुआ जिससे अंगोमे हलन चलन हुआ और उस प्रसग मे उपस्थित कोई चीज रोटी बना गयी मिथ्यादृष्टि, सम्यग्दृष्टि या सिद्ध कोई भी अपने आप मे परिश्रम करनेके अतिरिक्त अन्य कुछ नही करता है । बाकी अन्य पदार्थोमे कर्तव्य समझना ये सब मोह मायाका जाल है ।

जैसे स्वप्नमे हम देखते हैं कि मैं जंगलमे जा रहा हूँ, वहाँ शेर मिल गया, उसने मुझे पन्जा मारा, खून बहने लगा, बेहोश हो गया । यह सब उस समय सत्य ही प्रतीत होता है ।

यादृक् सिद्धात्मनो रूप तादृग्रूपं निजात्मनः ।
भ्रान्त्या क्लिष्टस्तु ससारे स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-२॥

मुमुक्षु प्राणियोंको विचार करना चाहिए कि जैसा सिद्धप्रभुका स्वरूप है वही मेरा है, जैसा मेरा स्वरूप है वही सिद्ध प्रभुका है। स्वयके स्वभावको लिए हुए सत्तावाला वही मैं हू। जैसे गरम जल व ठडा जल, इन दोनो प्रकारके पानीका स्वभाव ठंडा है। उसी प्रकार जैसा स्वभाव सिद्धोका है वही मेरा है। मैं ससारपर्यायमे होते हुए भी सिद्धोके समान स्वभाव वाला ही हू। ऐसा विचार कर सिद्धोकी उपासना करनेसे लाभ होता है, अन्यथा कोई उनका दर्शन ऐश्वर्य घन-दौलतके लिए तो किया नही जाता है। उनमे कर्ता व दाता की बुद्धि जीवोको नही करनी चाहिये। हे प्राणियो! सिद्धोका स्वरूप तो अपना स्वरूप समझनेके लिए दर्पणके समान है। जिस प्रकार दर्पणको देखकर अपने चेहरेका भाव होता है। कोई भी उस दर्पणका चेहरा देखनेके लिए दर्पण नही देखता उसी प्रकार प्रभुको देखकर हमे अपने स्वरूपको समझना चाहिये। नही तो फिर दर्शन करनेसे क्या लाभ? जब हमे यही नही पता कि हम दर्शन क्यो कर रहे हैं? उनसे ,फलकी वाञ्छा रखकर दर्शन नही करना चाहिए, क्योकि वे कर्ता दाता तो हैं नही। भगवान् तो पूर्णविकासमय गुणपुञ्ज हैं।

उनका दर्शन आकारमे नही होता क्योकि वे तो शुद्ध व पूर्णज्योति पुञ्ज हैं। जिनके कि ध्यानमे सारा विश्व प्रकाशित होता है। भगवान्‌का नाम नही होता अपितु नाम तो पर्यायका होता है। जो वस्तु व्यवहारसे आवे उसका नाम रखा जाता है। जो भगवान् है उसका नाम नही और जिसका नाम है वह भगवान् नही, भगवान् तो उपासनाका विषय है। भगवान् एक दूसरेका कार्य करने वाला नही है तथा ऐसा ही रूप अपनी आत्माका भी है। मैं एक वस्तु हू तब अवश्यमेव कोई शक्तियुक्त हू क्योकि जो सत् है उसमे उत्पाद व्यय अवश्य होगे। कहा भी है कि—"उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त सत्"।

उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरहित कोई भी द्रव्य नही है। मेरे अज्ञानपर्यायका व्यय होकर ज्ञानपर्यायका उत्पाद होकर निजस्वभावमे आनन्द बर्तेगा। अतः अपने आपमे विश्वास बना लेना चाहिये कि जो मैं हू वह भगवान् है तथा मैं वही हू, जो भगवान् है—"मैं वह हू जो हैं भगवान्, जो मैं हू वह है भगवान्"। इससे आत्मबल बढ़ता है। इससे ज्ञाता द्रष्टा रहनेकी शक्ति प्राप्त होती हैं, चिन्ताए दूर होती हैं। जैसे एक कहावत है कि एक क्षत्रियका बालक था व एक बनियेका बालक था। बनियेका बालक हृष्ट पुष्ट था, क्षत्रियका कमजोर। दोनोमे लडाई हो गयी। बनियेका बालक क्षत्रियके लड़केको नीचे गिराकर ऊपर चढ बैठा। क्षत्रिय के बालक ने उससे पूछा कि भैया! तुम किसके लडके हो, उसने बताया कि मैं तो बनियेका

लड़का हू, इतना सुनना था कि क्षत्रिय पुत्रको बल व जोश आया और झट ऊपर आ गया। सो भैया ! अपना स्वरूप सिद्धोंके स्वरूपके समान समझनेसे आत्मबल बढता है और एक विशेष प्रकारका आनन्द प्राप्त होता है।

आपत्ति, विपत्ति, क्लेश, चिन्ता, यह सब ऐसा सोचनेसे कि मै वही हू जो भगवान् हैं तथा जो भगवान् है वह मैं हू, नष्ट हो जाती है। सदा सब प्राणियोसे समताका भाव रखना चाहिये। जो अनुकूल हैं उनपे भी यही प्रतीति करनी चाहिये कि सब सुखी होवे तथा प्रतिकूल प्राणियोमे भी समताका भाव रखना चाहिये। प्रतिकूल प्राणियोमे करुणा भाव पैदा करके समता रखनी चाहिये क्योकि ये सभी जीव चैतन्यस्वभाव वाले ही है। यह प्राणी संसारमे रहता है किन्तु उसमे ससार नही रहे तो यही जयका साधन है। यह ससारसे बाहर कैसे रहे किन्तु फिर भी ससारमे रहते हुए भी संसारसे दूर रह अपने आपकी आत्माका कल्याण करे। जैसे नाव पानीमे रहती है, चाहे वह समुद्रका पानी हो या नदीका, किन्तु नाव मे पानी नही। नावमे पानी आ जानेसे नावका ही अस्तित्व समाप्त हो जाता है।

हम यदि वास्तविक स्थिति देखें तो पायेंगे कि हम लोग अपने सम्बन्धियोसे तथा जिनसे मोह रखते है, उनसे ठगे जा रहे है तथा अपनी पर्याय इनके वश ही बिगाड़ रहे है। अतः सर्वदा यही विचार करना चाहिए कि मेरा स्वरूप सिद्धोके समान है। यही आत्माका धर्म है। इसके अभावमे ही हम लोग मन्दिर जाना, सामायिक करना आदि पुण्यके कार्य करते हैं ताकि उपयोग निजमे लग जावे। सदा विचार करना चाहिए कि "भ्रात्या क्लिष्टस्तु संसारे" मैं भ्रममे पडकर ससारमे भ्रमित हो रहा हू, इन सबसे हटकर क्यो न मैं अपनी आत्मामे रमकर सुखी होऊँ। इसे द्रव्यगुण पर्यायमे कहते है। द्रव्यकी अपेक्षा मैं और सिद्ध एक समान हू। सिद्धके गुण और मेरे गुण समान है। यदि अन्तर है तो केवल पर्यायका है। उनकी पर्याय शुद्ध व निर्मल है और हमारी मलिन है।

अन्तरदृष्टिसे देखो तो सभी जीव शुद्ध ज्ञायकस्वरूप एकरस हैं यही विश्वास अमृत है। हमे, मैं अमुकका पिता हू किसीका पति हू, धनशाली हू आदि संस्कारोको ज्ञानरूपी जलसे धोकर नष्ट करना चाहिये। मैं ज्ञानमय हू—इस विचारके पश्चात् बाकी सब माया है। मैं तो अनन्तआनन्दका निधान हूँ फिर क्यो थोड़े आनन्दके लिए छटपटाता रहू, क्यो कल्पना कर ससारमे भटकता रहू ?

अनेक कठिनाइयोसे प्राप्त हुए मानव जीवनको विषय कषायोमे नष्ट नही करना चाहिए। अपनी ही सीधी सीधी बात न समझ कर प्राणी भ्रम करते हैं कि मैं अमुक शहर का रहने वाला हू, अमुक जातिका हू। इन सब सस्कारोको कभी न कभी तो अवश्य ज्ञान

रूपी जलसे धोना पड़ेगा। मेरा स्वभाव तो भगवान्के स्वभावकी तरह है, अतः बाह्यभ्रमोमे पडना व्यर्थ है। देखो भैया! भगवान्के पास क्या है केवल ज्योतिपुञ्ज आत्माको छोडकर। फिर भी सब प्राणी उन्हे नमस्कार करते है। फिर क्यो न हम भी उनके समान गुण धारण करें? क्यो न वैसा ही बना जावे? इतना जान भी लेना सन्तोषजनक होता है कि मैं सिद्ध भगवान्के स्वरूपके सदृश हू। यदि उपयोग नही लगता तो ऐसा विचार करनेसे भी तो आनन्द ही प्राप्त होता है। ऐसा होते-होते दृढज्ञान हो जावेगा। क्योकि अन्तमे सबकी शरण ज्ञान ही है। यदि कोई करोडपति क्यो न हो जब तक उसका पुण्य उदय है तब तक भले ही मजे करले किन्तु फिर भी उस समयमे किये गये बुरे परिणाम आगे गति बिगाड देंगे। "मैं सुखी दुखी, मैं रक राव, मेरे धन गृह गोधन प्रभाव। मेरे सुत तिय, मैं सबलदीन। बेरूप सुभग मूरख प्रवीण ॥" आदि पर्यायबुद्धिका परिणाम दुःखका ही देने वाला है। मैं तो ज्योति-स्वरूप अमूर्त आत्मा भगवान्के समान स्वभाव वाला हू—ऐसा सोचते हुए भगवान् को नम-स्कार करें।

इसके भीतरके मर्मपर दृष्टि रखो तथा बाह्य सब छोडो तथा अपनेको पहिचानो। मुझे अमुक ने गाली दी ऐसा मनमे भाव लाना ही दुःखजनक है। भैया! अपनेसे प्रतिकूल जीवो-पर भी करुणा कर समान भाव पैदा करो। सोचो कि ये जो मेरे प्रतिकूल प्राणी है, ये अज्ञानी हैं। जिन्हे अपनी आत्माके स्वरूपका ज्ञान ही नही है। वे अपने स्वभावको जान जावें ऐसी करुणा उनके ऊपर करनी चाहिये। किसी भी जीवसे घृणा नही करनी चाहिये। जगत्मे कोई भी जीव घृणाका पात्र नही है।

सब जीवोका सहजस्वरूप टकोत्कीर्णवत् स्वत सिद्ध निश्चल एक ज्ञायकस्वरूप है। द्रव्यदृष्टिसे देखो तो निर्विकल्प अनादि अनन्त अहेतुक चेतन तत्त्व है। गुणदृष्टिसे देखो तो सभी ध्रुवशक्तिमय है। अत. सिद्धप्रभुमे और समस्त जीवोमे कोई अन्तर नही है। केवल वर्तमान परिणतिकी दृष्टिसे देखनेपर अन्तर दिखता है। सिद्धप्रभु तो शुद्ध विकासरूप हैं और संसारी जीव अशुद्ध विलासरूप हैं। यह अन्तर चूकि भोगनेमे तो परिणति ही आती है अत. महान् अन्तर है तो भी यह परिणति जीवके स्वभावकृत नही है, किन्तु निमित्तनैमिकभावपद्धतिवि-हित है। अत. मूलमे कुछ भी अन्तर नही है।

सिद्धप्रभुकी तरह शुद्ध केवल ज्ञानमय बननेका क्या उपाय है? अपने आपको केवल निरखना, ज्ञानमय निरखना केवलज्ञानी बननेका उपाय है। हम अपनेको जिस रूपमे निरखेंगे उस रूपकी प्राप्ति होगी। अतः हम अपनेको यथार्थ सहज निजस्वरूप जैसा है वैसा ही चित्स्व-भावरूप अपनेको अनुभवें। मैं स्वत सत् हूँ, स्वतः परिणामी हूं, स्वतन्त्र हू, विज्ञानानन्दघन स्वच्छ अविनाशी हूँ—इस प्रकार अपना अनुभव करो। सत्य सुखी होनेका यही एक उपाय

है ।

विश्वतो भिन्न एकोऽपि कर्ता योगोपयोगयः ।
रागद्वेषविधाताऽऽसम् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-३॥

इस जगत्के अन्दर अनन्तानन्त जीव हैं, अनन्तानन्त पुद्गल है । धर्म एक है, अधर्म एक हैं, आकाश एक है, असख्यात कालद्रव्य है किन्तु फिर भी प्रत्येक परमाणु सारे अनन्तानन्त परमाणुओसे भिन्न है । सारे अनन्तानन्त परमाणु भी प्रत्येक परमाणु से भिन्न है । एक स्कन्धकी अपेक्षा भी प्रत्येक परमाणु अपने क्षेत्रमे ही परिणमन करता है । कोई भी एक परमाणु अनन्तानन्त परमाणुओसे भिन्न है । सत्की अपेक्षा धर्म, अधर्म, आकाश, काल भी जुदा जुदा हैं । स्कन्धमे परमाणुओंका परिणमन सामूहिक रूपसे होता है किन्तु फिर भी प्रत्येक परमाणु अपने-अपने क्षेत्रमे ही परिणमन करता है । इसी प्रकार प्रत्येक जीव अनन्तानन्त जीवोसे जुदा है । यह प्राणी जो मोह मायामे फंसकर रात दिन विचरता रहता है कि यह मेरा है, यह मेरे घरका है, यह सब व्यर्थ है क्योकि अपने स्वभावसे बाहर अपना क्या है ? चैतन्यस्वभावके अतिरिक्त ये वैभव ये पोजीशन, ये ठाठ बाट सब व्यर्थ हैं । जिसने अपना स्वभाव समझ लिया उसके लिए ये सब बातें निस्सार लगती है । मेरी आत्मा सारे विश्वसे भिन्न है । मैं एक हू, मैं सबसे न्यारा हूँ इस प्रकार विचार करना चाहिए । मै निजी दो बातो को छोड़ कर किसीका कुछ नही करता—(१) योग (२) उपयोग । मैं कदाचित इन दोनोका ही कर्ता हू अन्य कुछ नही करता हू । मेरी आत्माके प्रदेशोमे जो हलन चलन होती है उसी का नाम योग है और जो गुणोका यूज है, प्रवर्तना है उसका नाम उपयोग है । इन दोनोके अतिरिक्त मैं कर ही क्या सकता हू ? सिद्ध भगवान् शुद्धउपयोगके कर्ता है । शेष जीव यथा-योग्य शुभ अशुभ व शुद्ध उपयोगके कर्ता है । ये जगत्के जितने परिणमन होते है सब एक दूसरेको यथायोग्य निमित्त करके स्वत: होते रहते है । आत्मा तो दूसरे कार्योंकी चेष्टाका स्वय ही कर्ता है । जैसे रोटी बनायी, अब बताओ आत्माने इसमे क्या कार्य किया ? आग जलाई या आटा गूथा, क्या किया ? अरे भैया ! वह अपनी जगह ही स्थिर है । आत्माके प्रदेशोके योगके निमित्तसे शरीरमे वायुका संचार हुआ जिससे अंगोमे हलन चलन हुआ और उस प्रसग मे उपस्थित कोई चीज रोटी बना गयी मिथ्यादृष्टि, सम्यग्दृष्टि या सिद्ध कोई भी अपने आप मे परिश्रम करनेके अतिरिक्त अन्य कुछ नही करता है । बाकी अन्य पदार्थोमे कर्तव्य समझना ये सब मोह मायाका जाल है ।

जैसे स्वप्नमे हम देखते हैं कि मैं जंगलमे जा रहा हूँ, वहाँ शेर मिल गया, उसने मुझे पन्जा मारा, खून बहने लगा, बेहोश हो गया । यह सब उस समय सत्य ही प्रतीत होता है ।

रूपी जलसे धोना पड़ेगा । मेरा स्वभाव तो भगवान्‌के स्वभावकी तरह है, अतः बाह्यभ्रमोमे पडना व्यर्थ है । देखो भैया ! भगवान्‌के पास क्या है केवल ज्योतिपुञ्ज आत्माको छोडकर । फिर भी सब प्राणी उन्हे नमस्कार करते है । फिर क्यो न हम भी उनके समान गुण धारण करें ? क्यो न वैसा ही बना जावे ? इतना जान भी लेना सन्तोषजनक होता है कि मैं सिद्ध भगवान्‌के स्वरूपके सदृश हू । यदि उपयोग नही लगता तो ऐसा विचार करनेसे भी तो आनन्द ही प्राप्त होता है । ऐसा होते-होते दृढज्ञान हो जावेगा । क्योकि अन्तमे सबकी शरण ज्ञान ही है । यदि कोई करोडपति क्यो न हो जब तक उसका पुण्य उदय है तव तक भले ही मजे करले किन्तु फिर भी उस समयमे किये गये बुरे परिणाम आगे गति बिगाड देंगे । "मैं सुखी दुखी, मैं रक राव, मेरे धन गृह गोधन प्रभाव । मेरे सुत तिय, मैं सवलदीन । बेरूप सुभग मूरख प्रवीण ॥" आदि पर्यायबुद्धिका परिणाम दुःखका ही देने वाला है । मैं तो ज्योति-स्वरूप अमूर्त आत्मा भगवान्‌के समान स्वभाव वाला हू—ऐसा सोचते हुए भगवान् को नम-स्कार करें ।

इसके भीतरके मर्मपर दृष्टि रखो तथा बाह्य सब छोडो तथा अपनेको पहिचानो । मुझे अमुक ने गाली दी ऐसा मनमे भाव लाना ही दु'खजनक है । भैया ! अपनेसे प्रतिकूल जीवो-पर भी करुणा कर समान भाव पैदा करो । सोचो कि ये जो मेरे प्रतिकूल प्राणी हैं, ये अज्ञानी है । जिन्हे अपनी आत्माके स्वरूपका ज्ञान ही नही है । वे अपने स्वभावको जान जावें ऐसी करुणा उनके ऊपर करनी चाहिये । किसी भी जीवसे घृणा नही करनी चाहिये । जगत्‌मे कोई भी जीव घृणाका पात्र नही है ।

सब जीवोका सहजस्वरूप टकोत्कीर्णवत् स्वतः सिद्ध निश्चल एक ज्ञायकस्वरूप है । द्रव्यदृष्टिसे देखो तो निर्विकल्प अनादि अनन्त अहेतुक चेतन तत्त्व है । गुणदृष्टिसे देखो तो सभी ध्रुवशक्तिमय है । अत. सिद्धप्रभुमे और समस्त जीवोमे कोई अन्तर नही है । केवल वर्तमान परिणतिकी दृष्टिसे देखनेपर अन्तर दिखता है । सिद्धप्रभु तो शुद्ध विकासरूप हैं और संसारी जीव अशुद्ध विलासरूप हैं । यह अन्तर चूकि भोगनेमे तो परिणति ही आती है अत महान् अन्तर है तो भी यह परिणति जीवके स्वभावकृत नही है, किन्तु निमित्तनैमिकभावपद्धतिवि-हित है । अत मूलमे कुछ भी अन्तर नही है ।

सिद्धप्रभुकी तरह शुद्ध केवल ज्ञानमय बननेका क्या उपाय है ? अपने आपको केवल निरखना, ज्ञानमय निरखना केवलज्ञानी बननेका उपाय है । हम अपनेको जिस रूपमे निरखेंगे उस रूपकी प्राप्ति होगी । अतः हम अपनेको यथार्थ सहज निजस्वरूप जैसा है वैसा ही चित्स्व-भावरूप अपनेको अनुभवें । मैं स्वत. सत् हूँ, स्वत. परिणामी हू, स्वतन्त्र हू, विज्ञानानन्दघन स्वच्छ अविनाशी हूँ—इस प्रकार अपना अनुभव करो । सत्य सुखी होनेका यही एक उपाय

है ।

विश्वतो भिन्न एकोऽपि कर्ता योगोपयोगय ।

रागद्वेषविघाताऽऽसम् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१—३॥

इस जगत्के अन्दर अनन्तानन्त जीव है, अनन्तानन्त पुद्गल है । धर्म एक है, अधर्म एक हैं, आकाश एक है, असख्यात कालद्रव्य है किन्तु फिर भी प्रत्येक परमाणु सारे अनन्तानन्त परमाणुओसे भिन्न है । सारे अनन्तानन्त परमाणु भी प्रत्येक परमाणु से भिन्न है । एक स्कन्धकी अपेक्षा भी प्रत्येक परमाणु अपने क्षेत्रमे ही परिणमन करता है । कोई भी एक परमाणु अनन्तानन्त परमाणुओसे भिन्न है । सत्की अपेक्षा धर्म, अधर्म, आकाश, काल भी जुदा जुदा है । स्कन्धमे परमाणुओका परिणमन सामूहिक रूपसे होता है किन्तु फिर भी प्रत्येक परमाणु अपने-अपने क्षेत्रमे ही परिणमन करता है । इसी प्रकार प्रत्येक जीव अनन्तानन्त जीवोसे जुदा है । यह प्राणी जो मोह मायामे फंसकर रात दिन विचरता रहता है कि यह मेरा है, यह मेरे घरका है, यह सब व्यर्थ है क्योकि अपने स्वभावसे बाहर अपना क्या है ? चैतन्यस्वभावके अतिरिक्त ये वैभव ये पोजीशन, ये ठाठ बाट सब व्यर्थ है । जिसने अपना स्वभाव समझ लिया उसके लिए ये सब बातें निस्सार लगती हैं । मेरी आत्मा सारे विश्वसे भिन्न है । मैं एक हू, मैं सबसे न्यारा हूँ इस प्रकार विचार करना चाहिए । मै निजी दो बातो को छोड कर किसीका कुछ नही करता—(१) योग (२) उपयोग । मैं कदाचित इन दोनोका ही कर्ता हू अन्य कुछ नही करता हू । मेरी आत्माके प्रदेशोमे जो हलन चलन होती है उसी का नाम योग है और जो गुणोका यूज है, प्रवर्तना है उसका नाम उपयोग है । इन दोनोके अतिरिक्त मै कर ही क्या सकता हू ? सिद्ध भगवान् शुद्धउपयोगके कर्ता हैं । शेष जीव यथायोग्य शुभ अशुभ व शुद्ध उपयोगके कर्ता है । ये जगत्के जितने परिणमन होते हैं सब एक दूसरेको यथायोग्य निमित्त करके स्वत: होते रहते है । आत्मा तो दूसरे कार्योंकी चेष्टाका स्वय ही कर्ता है । जैसे रोटी बनायी, अब बताओ आत्माने इसमे क्या कार्य किया ? आग जलाई या आटा गूंथा, क्या किया ? अरे भैया ! वह अपनी जगह ही स्थिर है । आत्माके प्रदेशोके योगके निमित्तसे शरीरमे वायुका सचार हुआ जिससे अगोमे हलन चलन हुआ और उस प्रसग मे उपस्थित कोई चीज रोटी बना गयी मिथ्यादृष्टि, सम्यग्दृष्टि या सिद्ध कोई भी अपने आप मे परिश्रम करनेके अतिरिक्त अन्य कुछ नही करता है । बाकी अन्य पदार्थोमे कर्तव्य समझना ये सब मोह मायाका जाल है ।

जैसे स्वप्नमे हम देखते है कि मैं जंगलमे जा रहा हूँ, वहां शेर मिल गया, उसने मुझे पन्जा मारा, खून बहने लगा, बेहोश हो गया । यह सब उस समय सत्य ही प्रतीत होता है ।

स्वप्नमे यह अनुभूति नहीं होती कि मैं यह जो सब कुछ देख रहा हू झूठ है, वास्तविकता इसमे कुछ नही। किन्तु इसके विपरीत ही प्रतीत होती है। खुलने पर मालूम होता है कि मैने जो कुछ देखा है यह सब असत्य है। इसी प्रकार मोहमे पडा हुआ प्राणी भी इन सब बातोको सत्य जान रहा है कि यह मैं गरीब हू, यह मेरा घर है, यह मेरा पुत्र है आदि। यह सभी तो एक प्रकारका स्वप्न ही है।

रातको जो हम देखते है, ४-५ घटेकी नीदमे जो होता है, यह कुछ उससे लंबी निद्रा है किन्तु मेरा स्वभाव तो चैतन्यस्वरूप है, इसके अतिरिक्त सब झूठ है, बकवास है, इस प्रकार से विचार करना चाहिए। जैसे एक शहरमे एक पगडी रगने वाला रहता था। वह आसमानी रगकी पगडी रगना बहुत अच्छी प्रकार जानता था। उसके पास कोई पीला रग दिलानेके लिए अपनी ओढनी लाया, कोई नीला रग दिलानेके लिए लाया, कोई लाल कोई हरा आदि। उन सबसे वह रगरेज बोला कि भैया! चाहे किसी भी रगकी रग वालो किन्तु सबसे बढिया रग तो आसमानी खिलता है। इसी प्रकार यह करो, वह करो, कुछ भी करो, आत्मीय आनन्द पानेके लिये तो निजसहजस्वरूपकी ही दृष्टि करनी होगी। आनन्द तो निजदृष्टिसे ही मिलता है। उन सब बातोको छोडकर एक ही काम करो जो आत्मोद्धारका मार्ग है। एक ही उत्तम बात है वह है स्वानुभूति। इसके अलावा कुछ भी तो हित नही है। धर्मके लिए मात्र चैतन्यस्वभावकी अनुभूतिके अतिरिक्त क्या काम है कुछ भी तो नही। यही सर्वदा सोचो कि मैं अपनेमे अपने लिए अपनेको अपने आप अपने द्वारा सुखी हो सकता हू। कर भी सकता हू तो मात्र अपनी ही परिणति, उसके अतिरिक्त मैं और कुछ नही कर सकता। ये सामायिक करना दर्शन करना आदिके भी उपयोग अपनी आत्माकी ओर अपनेको करनेके लिए ही हैं। खोटे कार्यमे न लगकर स्वकी अनुभूतिकी ओर झुके, अत' सामायिक आदि किया जाता है। मैं तो समस्त द्रव्योसे भिन्न हू तथा समस्त द्रव्य मुझसे भिन्न है। क्योकि मैं एक हू। रागद्वेष ही ससारमे रुलाने वाले हैं। मोहकी भित्तिसे टकराकर यह उपयोग दो रूपमें बट जाता है, एक रागकी ओर, एक द्वेषकी ओर। जैसे नदीका बहता हुआ पूर पुलके बीच लगे खम्भेसे टक्कर पाकर दो धारामे बहने लगता है उसी प्रकार मोहकी टक्कर पाकर यह उपयोग रागद्वेष इन दो रूपमे प्रवाहित हो रहा है। यदि परपदार्थ एक ही हो तब कोई गडबडी नही होगी किन्तु अनेक पर रागद्वेषके भाव पैदा होते हैं। जहाँ दो होते हैं वहाँ द्विविधा होती है। एक पिताके यदि एक लडका है तब तो कोई बात नही होगी किन्तु दो या अधिक होनेसे रागद्वेष की भावनाएँ होती है। एकसे द्वेष अवश्य ही होगा। मैं अज्ञानवश अपने स्वरूपको भूलकर रागद्वेषरूप दो धाराओमे बह रहा हू। अतः रागद्वेषको छोडकर मैं स्वयमे सुखी होऊँ।

मै परपदार्थका उपादानसे कर्ता नही हू, तो क्या निमित्तसे हू ? नही, निमित्तसे भी कर्ता नही हूँ । योग उपयोग ही निमित्तरूपसे कर्ता है । ये योग और उपयोग भी क्षणिक ही है किन्तु आत्मा क्षणिक नही । योग उपयोगकी जो तरंग उठती है वह कर्ता है । आत्मा तो निमित्तसे भी कर्ता नही है । योग उपयोगका कर्ता आत्मा है अर्थात् आत्माकी परिणति है । जो ध्रुव है वह दूसरेकी परिणतिका भी निमित्तकर्ता नही होता, कर्ता अध्रुव ही होगा ।

प्रत्येक पदार्थ अन्य प्रत्येक पदार्थसे भिन्न है । मैं भी बाह्य परपदार्थोंसे दूर हू । बाह्यपदार्थोंकी दृष्टि करके व्यर्थके विकल्पपरिणमन होते है । इन सब विकल्पोको छोडकर मैं अपनेमें, अपने आप, अपने लिए, अपने द्वारा सुखी होऊँ । रागद्वेषके कारण उत्पन्न संतापकी स्थितिमे भी यदि स्वकी अनुभूति कर लो, सन्ताप दूर हो जावेगा । अपने आपकी अनुभूति ही आनन्ददायक है । अपने आपका दर्शन हो, आत्मामे ही रति हो, आत्मामे ही रुचि हो । इस के अतिरिक्त कोई सहायक नही है । यह सब कषाय वालोका मेल है । अतः इन सबसे कोई फायदा नही होगा । जिससे जिसकी कषाय मेल खा गई उससे मित्रता, मेल न खानेपर शत्रुता होती है । अतः सभी स्वार्थी है । वैसे ये सब स्वानभूतिके समक्ष व्यर्थ हैं । सर्वपदार्थोंको जिन्हे भी जानो, जितना उनका सत्तासिद्ध स्वरूप है उसी रूपमे जानो । आत्मसुख यथार्थज्ञानमे मिलेगा, अन्यत्र नही मिलेगा ।

न करोमि न चाकार्षम् न करिष्यामि किञ्चन ।
विकल्पेनैव ग्रस्तोऽतः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-४॥

किसी भी पदार्थको न मैं कुछ कर अकता हू, न आज तक कुछ कर सका हू, न आगे कर ही सकूँगा । सब पदार्थ स्वय सत्ता वाले है । वस्तु सत् तो है, किन्तु अन्य सभी रूपसे सत् नही हो जाती है अन्यथा कुछ भी न रहेगा, अत. प्रत्येक वस्तु अपने चतुष्टयसे सत् है, परके चतुष्टयसे नही । यह वस्तुके वस्तुत्व गुणका प्रताप है । वस्तुसे परिणत होना, स्व-भावसे सिद्ध है । वे अपने आप परिणमन करते है । वस्तु अपने चतुष्टयमे द्रव्यत्व गुण द्वारा परिणमनशील है । वह निरन्तर परिणमन करता रहता है । एक क्षणके लिए भी द्रव्यका परिणमन बन्द नही होता, यह द्रव्यत्व गुणका प्रताप है ।

अस्तित्व गुण यदि यह भाव करे कि मैं सत् हू, ऐसा मुझे आदेश हुआ है और स्व-च्छन्द होने लगे तो इसका मुंह बन्द करनेके लिए वस्तुत्व गुण मौजूद है । उसकी आज्ञा है कि तू अपने चतुष्टयसे ही सत् रह सकता है परके चतुष्टयसे नही । इस प्रकार वस्तुत्व गुणने अस्तित्व गुणकी स्वच्छन्दताको दबोच लिया । अब यदि वस्तुत्व गुण कहे कि मैं सत् रहू और उत्पाद व्ययसे भिन्न रहना चाहे तो उसको द्रव्यत्व गुण दबाता है कि तुझे निरन्तर

परिणमन करते रहना होगा । यदि द्रव्यत्व गुण कहे कि मैं तो परिणमाऊँगा, किसी रूप परिणमाऊँ तब द्रव्यत्व गुणको अगुरुलघुत्व गुण दबाता है कि तू अपनेमे परिणमनशील है, अत' अपनेमे ही परिणमन कर । यह न हो कि स्वच्छन्द हो जावे । यदि तू ज्ञान गुण वाला है तो ज्ञानोदयरूप ही परिणमन कर इत्यादि । प्रदेशवत्व गुण आधार बताता है, प्रमेयत्व व्यवस्था करता है । सभी द्रव्य स्वतत्र हैं । इस प्रकार सबके साधारण छः गुण हैं । अतः किसी का न कुछ कर सकता हू, न बिगाड सकता हू, न बना सकता हू, न मेरा यह स्वभाव ही है, मैं तो चैतन्यस्वरूप हू । यदि इस प्रकारका भाव क्षणभरको भी दृष्टिमे आ जावे तो परपदार्थ का तुरन्त त्याग हो जावे । अपनी श्रद्धा ही तो बदलनी है, चरित्र तो अपने आप आ जावेगा । अतः श्रद्धाको अपने भीतर लानेके लिए इस प्रकारका विचार करना चाहिए ।

लोककी देखादेखी पर मुग्ध न होकर अपनी ओर दृष्टि करना चाहिए । एक कथा है कि बाप बेटा दोनो चले जा रहे थे । बाप घोडेपर बैठा था और बेटा पैदल चल रहा था । आगे गाँवके आदमी बोले कि यह आदमी कितना बेवकूफ है, कितना स्वार्थी खुदगर्ज है कि स्वयं तो घोडेपर बैठा है और लडकेको पैदल चला रहा है । बापने कहा कि बेटा तू घोडे पर बैठ जा, मैं पैदल चलता हू । दूसरे गाँव वाले इस दशामे इन दोनोको देखकर बोले कि यह लडका कितना मूर्ख है, नालायक है कि स्वय तो घोडे पर बैठा है और बापको पैदल चला रहा है । इस बातको सुनकर उन्होने विचार किया कि दोनो ही बैठ जावे और दोनो घोडेकी पीठ पर बैठ गये । तीसरे गाँवमे पहुचे तो सब ग्रामवासी बोले कि मालूम पडता है यह घोडा इन्होने किसीसे माँगा है इनका स्वयका नही है, जो दोनोके दोनो उसकी पीठपर लदे हुए है, मुफ्तका समझ बेचारेपर दयाभाव नही रखते । बहुत विचारनेके पश्चात् वे दोनो पैदल चलने लगे तथा घोडा साथ साथ कर लिया । आगे चौथे गाँवमे पहुचनेपर उसके ग्रामवासी बोले कि ये कितने मूर्ख है कि स्वयं पैदल चल रहे है और घोडा ऐसे ही खाली चल रहा है । इसपर बैठकर ये जा सकते थे । देखो भैया, यहाँ पर चार ही बात तो हो सकती थी—बाप बेटा उभय अनुभय । जैसे कि दर्शनमे (१) सत् (२) असत् (३) उभय (४) अनुभय चार बातें हैं । पाँचवी बात तो नही हो सकती, क्योकि इतनी तो दोनोमे ताकत नही कि वे घोडेको कन्धे पर लादकर चल सकते । अतः भैया ! दूसरोसे प्रशसाकी इच्छा रखना व्यामोहको प्रवृत्त करना है । ये धन रुपया ऐश्वर्य आदि अपने ही परिणमन करते हैं तब इनमे फिर क्यो मोह रखा जावे ? हे प्राणियो ! जैसा वस्तुओका स्वरूप है वैसा मान तो लो फिर स्वयं ही सुखी हो जावोगे । भैया ! सच्ची बातको सच माननेमे क्या बुराई है ? श्रद्धासे च्युत हुआ प्राणी इस ससाररूपी समुद्रसे पार नही हो सकता, चरित्रसे च्युत

होकर श्रद्धाका आश्रय पाकर फिर भी कभी पार हो सकता है। अतः अपनी श्रद्धा ठीक रखनी चाहिये। रत्नत्रयकी पूर्णता क्रमशः होती है। जैसे जीवोको सम्यक् दर्शन होता है तो उन्हे तीन ही तैयारियां करना होती है, अधःकरण, अपूर्वकरण व अनिवृत्तिकरण ये क्रमशः होगे। चरित्रको विकसित करनेके लिए अणुव्रत महाव्रत धारण करना चाहिये। अपने ज्ञान आदि अपने सहायक है। हमे यदि धर्मसाधनामे कोई सहायक है तो वह भी तभी जबकि हममे कुछ बल है। जैसे किसी रोगीको डाक्टर दवा आदि पिलाकर ठीक करता है, वह तभी तो सम्भव है जब कि उसमे जीवित रहनेकी शक्ति अवशेष है। अन्यथा दवाईका असर वह कैसे सहन कर पाता? अपनी ही श्रद्धा, अपना ही ज्ञान, अपना ही दर्शन, यह ही सर्वस्व सार है, अन्य कुछ नही।

अगर धन आदि छूट जाता है या इसका त्याग हो जाता है तो इसमे हमारा क्या नुक्सान है? यदि ये प्राणी मिले हुए ऐश्वर्य धनादिमे अनासक्तिकी बुद्धि रखकर चलता है तो निश्चित आगे उसे इससे भी तिगुना प्राप्त हो जाता है। पूर्वजन्ममे हमने उपेक्षा की होगी तभी तो आज यह ऐश्वर्यादि हमे उपलब्ध है। एक नगरमे एक सेठ रहता था। सेठ तो ऊपरके कमरेमे रहता था तथा नौकर नीचेके कमरेमे रहता था। एक दिन उसके यहाँ कुछ चोर घुस आये। वह नौकर सर्वदा एक दोहा बोलता रहता था कि—"कौन जावेगा लेने, देंगे बुलाकर। होगे दयालु तो देंगे खुद आकर"॥ तो वह इस प्रकार दोहा बोल रहा था कि चोरोको देखकर बोला कि यहाँ क्या खोदते हो, अरे उस पेडके नीचे खोदो जहाँ रुपयोका हण्डा दबा हुआ है, यहाँ क्या रखा हुआ है?

चोरोने वैसा ही किया। वास्तवमे वहाँ खोदनेपर उन्हे हण्डा मिल गया उसके ऊपर एक तवा ढका हुआ था। तवेको उन्होने उठाया तो उसमेसे ततैये निकल-निकलकर उन्हे काटने लगे, उन्होने सोचा कि इसे जाकर उस नौकरके ही घरपर जहाँ हमने खोदा था उड़ेल देना चाहिये ताकि ये ततैये उसे ही काटें। उन्होने जाकर खोदे हुए कमरेके उस स्थानमे उसे उल्टा करके पलट दिया। पीछेकी तरफ अशरफियाँ भरी हुई थी, अतः सब अशरफियाँ उस गड्ढेमे भर गयी। नौकर उपरोक्त ही दोहा पढ रहा था कि 'होगे दयालु तो देंगे बुलाकर, कौन जायगा लेने, देंगे खुद आकर॥' देखो उसने धनके प्रति उपेक्षा भाव रखा तो खुद उसके घरमे धनकी वर्षा हुई और धनको लालसा रखे हुए अगले जन्ममे मुझे धन प्राप्त हो, ऐसा सोचकर ऊपरसे ही उपेक्षा दिखाये तो यह भी ठीक नही है। वस्तु स्वयंसिद्ध है तथा स्वतः परिणामी भी है। हमारा स्वभाव भी परिणमनशील है। तब मैं दूसरोमे क्या करूँ तथा दूसरा मुझमे क्या करे? प्रत्येक परमाणु अपनेमे ही परिणमन करता है। हमेशा सब कुछ

करते हुए भी अपने भाव यही रखो कि यह सब असार है, संसार असार है । यथार्थ श्रद्धा का भाव रखना चाहिये । यदि ऐसा न कर सके तो बरबादीके सिवाय कुछ हाथ नही लगेगा । बुद्धिमानी इसीमे है कि अपनी श्रद्धा यथार्थ बनाये रहो । सम्यग्दृष्टि जीव चक्रवर्तीकी सम्पदा तथा इन्द्रादिके भोगोको कौवेकी बीटकी तरह समझते हैं अर्थात् वे विद्यमान वस्तुओ मे उपेक्षाका भाव रखते हैं । मैं परपदार्थका न कुछ कर सकता हू, न कुछ कर सका, न करूँगा । केवल विकल्पोसे, कल्पनाओंसे दुःखी हो रहा हू । अत. इन सब विकल्पोको छोड-कर मैं अपनेमे, अपने लिये, अपने द्वारा, अपने आप सुखी होऊँ ।

स्वरागवेदनाविद्धश्चेष्टे स्वस्यैव शान्तये ।
नोपकुर्वे च नो शान्तिः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-५॥

मैं अपने अन्तरगकी वेदनासे बीधा गया । अपनी शान्तिके लिए चेष्टा कर रहा हूँ । स्वयकी जो मेरी पीडा है उसे सहन न कर पानेके कारण ही शान्ति प्राप्त करनेकी चेष्टा कर रहा हू । इससे मैं किसीका उपकार नही कर रहा हू । ग्रन्थकार भी ग्रन्थ लिखनेका यही कारण बताते हैं कि ससारी जीवोका दुःख देखकर मुझे दुःख हुआ । अतः अपनी वेदनाको शान्त करनेके लिये ही मैंने ग्रन्थ लिखा । इसमे परोपकार कैसा ? मैंने जो कुछ किया वह अपनी शान्तिके लिए ही तो किया । किसी द्रव्यका किसी अन्य द्रव्यमे परिणमन हो ही नही सकता । फिर किसी भी पदार्थमे इष्ट, अनिष्टबुद्धि व कर्तृत्वबुद्धि क्यो हो ? वीतराग ज्ञान अर्थात् रागद्वेषरहित ज्ञान न होनेके कारण क्लेश ही हैं ।

दूसरोको दुःखी देखकर आचार्योंकी अनुकम्पा हुई, अनुकम्पा उसे कहते हैं कि दूसरो को दुखी देखकर हृदय पसीज जाना । अत उस अपनी वेदनासे बिधकर ही आचार्योंने चेष्टा की और ये शास्त्र बन गये । उनकी ये भावना नही थी कि मैं उपकार कर सकता हू या करूँगा । बल्कि इस चेष्टामे उपकार हो गया । अतः इससे आत्मज्ञान तथा आत्मध्यानका मौका मिल गया । छठे गुणस्थानमे ऐसे भाव मिल जाते हैं कि छठे गुणस्थानसे सातवें गुण-स्थानमे आ जाता है । अत वे ऐसे शुभोपयोगका ध्यान किया करते है जो ध्यानमे बढनेका बाधक न हो । गृह सम्बन्धी वेदनासे, रागकी वेदनासे जो चेष्टा की जाती है वह शुद्धोपयोग की दृष्टिसे हेय है । आत्मध्यान अति दुष्कर है, किन्तु स्वाधीन होनेसे अति सरल है ।

शुभोपयोगमे रहने वालोको लौकिक सुख होता है । किन्तु शुद्धोपयोगियोको परमा-त्मीय आनन्द होता है । आत्मानुभवके लिये, धर्मकी प्रेरणाके लिये शुभोपयोगियोका जल्दी मन हो जाता है, किन्तु विषय रागमे होनेपर इस ओरको ध्यान होना कठिन होता है । इस कारण शुभोपयोगका भी उपदेश है । जिन्हे शुद्धोपयोग हुआ उन्हे शुभोपयोगके बाद ही हुआ । वैसे असंयतसम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थान वाला जीव राग, विषयभोग आदिके होते हुए भी उनमे

उपेक्षाभाव रखता है। विषयभोगोमे रहते हुए भी यही सोचते है कि कब और कैसे यह छूटें ? देखो, कितना कठिन कार्य है यह कि उनको करता भी है और झंझट भी मानता है। कितने ज्ञानबलकी बात है। और मैं केवल रागचेष्टामे लगा हुआ हूं, दूसरोका उपकार क्या कर सकता हू ? ऐसा ज्ञानी जीव सोचते हैं। किसी जीवको दु:खी देखकर या भूखा देखकर रोटी दी तो उसमे हमने उसका क्या उपकार किया ? भैया ! स्वयकी शान्तिके लिए, स्वयं की वेदनासे बिधकर ही तो रोटी दी, तो इसमे उसका उपकार कैसा ? यह तो स्वयंका ही उपकार हुआ। व्यवहारमे जब हम ऐसा कहते हैं कि इसने उसपर दया की अथवा रोटी देकर उसका उपकार किया, किन्तु वास्तवमे देखा जावे तो उसने स्वय ही रागकी वेदनासे बिधकर चेष्टा की, इसमे उपकार कैसा ? एक जज था। एक दिन वह अपनी कारमे बैठकर अदालत मे जा रहा था। रास्तेमे कीचडमे पडे हुए एक गधेको तडपते देखा। कार रुकवायी और स्वयं ही उसको बाहर निकालनेके लिए आगे बढे। साथमे जो चपरासी था उसने भी कि आप क्यो निकाल रहे है, हम निकाल देते है किन्तु उसने कुछ बात न सुनते हुए अपने हाथो से ही उस गधेको बाहर निकाला। कपडोपर भी कीचडको छीटें लग गयी। इतना समय नहीं था कि जाकर कपडा बदल आवें, अत: उसी पोशाकमे अदालत पहुंच गये। जब उनको सबने इस दशामे देखा तो सब आश्चर्यचकित रह गये कि आज क्या बात है जो जज साहब की ऐसी दशा है ? आज तक तो कभी भी बिना इस्त्रीके कपड़े नही देखे, न ही गन्दे। फिर आज क्या बात हुई ? जिनका उनसे वार्तालाप होता था। उन्होने पूछा कि जज साहब क्या बात है, जो आज ऐसी दशा बना रखी है। साथ वाले नौकरने सम्पूर्ण घटना सुनाते हुए बताया कि साहब बडे दयालु हैं। रास्तेमे गधा फसा था। मैं उठानेको तैयार था, किन्तु इन्होने कुछ न सुनकर अपने हाथोंसे ही उस गधेपर दया की। तो जज साहब बोले—नही भैया ! मैने जो कुछ भी किया, अपना ही उपकार किया, गधेका नही।

सोचो, यदि मैं ऐसा न करता तो यहाँ आकर जब भी बीच-बीचमे उसके तड़फनेका वह दृश्य याद आता तब मैं उसी समय वेदनासे बिध जाता। अत: मैंने अपनी वेदनासे बिधकर ही उसको बाहर किया। झगडा आदि होनेपर व्यवहारमे ऐसा कहते हैं कि देखो भाई ! इसके ऊपर मैने कितना उपकार किया, व्यापारके लिए रुपया दिया, सब सुविधाएँ दी किन्तु आज है कि मेरी बात ही नही सुनता, मुझे कुछ समझता ही नही है। ऐसी पीडा अज्ञानसे, भ्रमसे, कर्तृत्वबुद्धिसे हुई। सोचकर तो देखो खुद ही तो तेरे अन्दर राग उत्पन्न हो रहा था जिससे तूने चेष्टा की, उपकार क्या किया ? वस्तुका स्वभाव ही ऐसा है कि खुद ही मे खुदका परिणमन हुआ करता है। एक किसान था व उसकी पत्नी। पत्नी चतुर थी। पर अशिक्षित

छोटे पुरुषोकी ऐसी भावना रहती है कि जब तक औरतको पीटा न जाय तब तक उनपर रुआब नही गालिब होता। अतः किसान अपनी औरतको पीटनेके लिए तरीके सोचता रहता था, किन्तु वह इतनी चतुर थी कि कभी अवसर ही नही देती थी। अत' एक दिन किसानने खेतमे जाकर एक बैलको उत्तरकी दिशामे मुह करके खडा कर दिया, दूसरेको दक्षिणकी दिशा मे। फिर उनके कन्धोपर जुआ रख कर हल फसाकर खडा हो सोचने लगा कि आज जब भी वह रोटी देने आवेगी तो अवश्य ही ऐसी कोई न कोई उल्टी बात कहेगी जिससे कि मैं उसकी पिटाई कर सकूँगा। निश्चित समयपर वह आई तथा दूरसे ही यह दशा देखकर सोचने लगी कि आज यह क्या बात है? वैसे मेरे पतिका दिमाग भी खराब नही, कोई ऐसी बात ही नही हैं जिससे ये ऐसा करें। कोई न कोई बात अवश्य है, अत. वह मनको समझाती हुई किसान को रोटी देती हुई बोली कि चाहे उल्टा जोतो चाहे सीधा जोतो अपना काम तो रोटी दे जानेका है अतः लो ये रोटियाँ। और इतना कहकर रोटी देकर चली गई। पीछेको मुडकर भी नही देखा, न रुकी ही। सो भैया! निश्चयनयकी दृष्टि लगाकर सोचो तो पता लगेगी कि यह पदार्थ इतना ही है तथा इसका परिणमन इतनेमे ही है। किसी भी पदार्थसे मेरा भला बुरा नही—इस प्रकार विचार करनेसे दुःख स्वय ही समाप्त हो जावेंगे। प्रत्येक पदार्थ स्वतन्त्र है व स्वयमे स्वयके लिए ही परिणमन करता है।

स्वतन्त्रताका लक्षण है—सद्भाव या अभावरूप निमित्त पाकर स्वयका स्वयमे ही परिणमन। इतना ज्ञान यदि आ जावे तो हम भी भगवान्के परिवारमे शामिल हो जावें। उनकी ज्ञानगोष्ठीके सहवासी हो जावें और यदि हममे वस्तुस्वातन्त्र्यकी दृष्टि नही जगी तो हम उनसे दूर हैं, उनके आनन्दसे परे है, तथा स्वयसे भी दूर हैं। अपने आपके स्वभावकी उपासना करनी चाहिये। परन्तु ऐसी दृष्टि प्राय' किसीको नही होती। ज्ञान खुद ज्ञानके स्वतःसिद्ध स्वरूपको जानने लगे तिस दृष्टिसे, बिरले ज्ञानी जीव ही ऐसी दृष्टि करते हैं। यहाँ पर भी मोही, मोहकी ही बात चिल्लाते हैं किन्तु ज्ञानी जीव किसीकी बात नही सुनते। जो विवेक मनमे आता है वही करते है। उद्धारकी भावना करने वाला बहुतोकी प्रशसा न चाहकर दो चार ज्ञानी पुरुषोकी प्रशसाकी आकांक्षा रखता है तो भूल है अन्यथा मूर्खों द्वारा प्रशसा होनेसे क्या लाभ? और यदि ऐसा विचार करें कि अज्ञानी जोव प्रशसा करें तो क्या लाभ? और ज्ञानी जीव प्रशसा करें तो बहुत ही उत्तम है। इस प्रकार विचार कर अपना कल्याण करें। क्योकि करता कोई किसीका कुछ नही। मैं भी अपनी रागकी वेदनासे बिघकर अपनी ही कषाय पूर्तिका कार्यरूप उपकार कर रहा हू। अत मैं वस्तुके स्वरूपको ध्यानमें रखकर अपनेमे, अपने लिए, अपने आप सुखी होऊँ। मैं यहाँ जो कुछ कर

रहा हू वह अपनी रागवेदनासे पोडित होकर अपनी शान्तिके लिए अपनी चेष्टा कर रहा हूँ, मैं परका न उपकार करता हू और न अन्य किसी प्रकारका परिणमन करता हूं। भ्रमपूर्ण परकर्तृत्वकी दृष्टिमे अशान्ति ही बसती है। मैं जैसा सहजस्वरूपमय हू वैसा ही माननेमे मेरी शान्ति है। यही विचार जीवोको सदा करना चाहिये।

यातिं नेतो न चायोति जातुचित्किञ्चिदन्यतः।
खिनने हीनाधिकमन्यः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-६॥

यह आत्मा स्वतःसिद्ध है, यह आप अपनेमे परिपूर्ण है। जो भी पदार्थ है वह अपनेमे पूर्ण ही होता है, अधूरा नही। मैं भी अपनेमे परिपूर्ण हू। भले ही अशुद्ध योग्यतामे बाह्य पदार्थका परिणमन पाकर उल्टा परिणमन हो, किन्तु अधूरापन नही है। यह अधूरापन मोहमे होता है। यह हमारी इच्छाके अनुकूल कल्पना है, नही तो प्रत्येक पदार्थ पूर्ण है और परिणमन भी पूर्ण है। असीम विकास होनेको पूर्ण कहते है। अधूरापन उसे कहते है कि ज्ञानमे शक्ति तो अनन्तलोक व अनन्त आकाशको जाननेकी है किन्तु ज्ञानावरणके उदयका निमित्त पाकर आधा चौथा अश अशरूप जान रहा है। किन्तु प्रत्येक समय परिणमन पूर्ण ही है। पर्याय भी पूर्ण है। रागादिका परिणमन भी पूर्ण ही है। अतः जितने भी आत्मा है वे सब अपनेमे पूर्ण ही हैं। किसीने बनाया नही जो आधा बना और आधा न बना। अतः मेरा कुछ भी गुण व पर्याय बाहर नही जाता तथा न बाहरसे ही कुछ मुझमे आता है। पति पत्नीका आपसमे जो प्रेम है तो क्या उनके गुण एकमय एक हो जाते है, नही। बल्कि पत्नीकी आत्मा उसकी आत्मामे पूर्ण है और पतिकी आत्मा पतिकी आत्मामे पूर्ण है। पिता अपनेमे पूर्ण है और पुत्र अपनेमे पूर्ण। किसीका भी तत्त्व अन्यमे नही जाता। किन्तु व्यर्थ ही यह प्राणी मोहके कारण नाना कल्पना करके नाना प्रकारसे क्लेश पाता है। ससारी प्राणियोमे रागद्वेष के वश होकर छंटनी करता है कि यह मोही प्राणी मेरा है, यह पराया है आदि। परिणाम मे होता क्या है कि यह मेरा है, वह अमुकका है आदि तो भी कोई बात नही। किन्तु यह तो अन्तरंगसे ऐसा मानता है, अपने ऊपर अन्याय करता है। ये सब तो मोहके उबाल है अन्य कुछ नही, न सत्य ही है। दूसरेकी आत्मामे और मुझमे कोई सम्बन्ध नही है। आत्मा के गुण और पर्याय दूसरेमे नही जाते व दूसरेके मुझमे नही आते। जो अपने आपको मानता है कि मैं बडा आदमी बन गया हू या गरीब हो गया हू, कमजोर हो गया हू, यह सब मोहके कारण ही है। ज्ञान आदि निज वैभव तो स्वरसत: बढ़ेगा ही, घटेगा नही। व्यर्थमे मन खिन्न होता है। यहाँ तो ये सारे पदार्थ स्वयं परिणमनशील है, स्वतन्त्र हैं। इनमे कोई किसी अन्यको किसी अन्यका कर्ता मानें, स्वामी मानें तो यह मोहजालका ही प्रभाव है। इस

जालमे उलझकर आनदमे कोई नही रह सकता । हम जब दुःखी होते है तब अपने ही मिथ्या विकल्पोके कारण दु.खी होते हैं अन्य कोई मुझे दु:खी नही करता । वे विकल्प भी बाहर कुछ काम नही करते, वे तो होकर मिट जाते है, किन्तु टेव यह पड गई कि प्रत्येक आकुलता मे यह दृष्टि रहती है कि अमुक पदार्थ यदि यो नही परिणमता तो मैं दुःखी न होता । परसे अपना परिणमन मानना मिथ्यात्व है । एक कहावत है कि—

अन्धेर नगरी बेबूझ राजा । टके सेर भाजी, टके सेर खाजा ॥

एक थी अन्धेर नगरी । एक गुरु शिष्य उस नगरीमे पहुचे । शिष्य भोजनका प्रबन्ध करनेके लिए कोयला लेने गया । बाजार जाकर पूछा कि भैया ! यह कोयला क्या भाव है ? उत्तर मिला टके सेर । फिर उसने पूछा लकडी क्या भाव ? उत्तर मिला टके सेर । फिर पूछा यह रसगुल्ला क्या भाव है ? उत्तर मिला टके सेर । फिर पूछा कि यह खाजा क्या भाव है ? उत्तर मिला टके सेर । अर्थात् सब चीजें टके सेर हैं । शिष्यने सोचा कि व्यर्थ ही क्यो कोयला खरीदकर प्रपञ्चमे फसा जाये, मजेसे रसगुल्ले खाये जावें । भाव तो एक ही है । अतः बोला कि एक टकेके रसगुल्ले दे दो । रसगुल्ले लेकर घर आया और गुरुजी से कहा कि गुरुजी ! अब यही पर कमसे कम ६ महीना ठहरेंगे । यहाँ तो बहुत आनन्द है । गुरुने समझाया कि नही भाई ऐसी नगरीमे नही रहना चाहिये, अवश्य ही यहा पर विपदा उठानी पडेगी । किन्तु शिष्य न माना और किसी प्रकार गुरुजी को छः महीनेके लिए मना लिया । शिष्य मजे से खा खाकर मोटा होने लगा । तब साढे पांच माह बाद एक घटना घटी कि एक बाबू साहब सडकके किनारेसे जा रहे थे । आगे एक मकानका कोना टूटा पडा था । उसने जाकर राजाको बताया कि यदि उस समय मैं उसके नीचेको जा रहा होता और मकान मेरे ऊपर गिर जाता तो क्या होता, अत. इसका न्याय किया जावे । भैया ! इस कथानकसे जाना कि सभीकी कैसी बाह्यदृष्टि है ? राजाने मकान मालिकको बुलवाया । मकान मालिक बनिया था, उसने आकर बताया कि महाराज मेरा कसूर नही है । यदि कारीगर ठीक प्रकार बनाता तो यह क्यो गिरता ? मैंने दाम पूरे दिये । राजाने कारीगरको बुलवाया व पूछा । कारीगर बोला—महाराज, यह कसूर मेरा नही है, आप नापकर देख लीजिये मकान उतना ही लम्बा, उतना ही चौडा, उतना ही ऊँचा सूतके नापसे बना है, यह तो गारा बनाने वालेका कसूर है । न गारा गीला होता न यह गिरता । फिर गारा गीला करने वालेको बुलाया गया । उसने कहा—महाराज, मेरा कसूर नही, मशक वालेने जितना पानी गिराया उतना मैंने गीला कर दिया । अत मशक वालेको बुलाया गया और पूछा कि तुमने इतनी बडी मशक क्यो बनवायी ? तो उसने कहा—महाराज ! बडा जानवर आया

और बडी मशक बन गयो, न बडा जानवर आता और न यह बड़ी मशक बनती। राजाने जानवर बेचने वाले को बुलाया व पूछा कि तूने इतना बडा जानवर क्यो बेचा जिसकी इतनी बडी मशक बने, जिससे गारा गीला हो जाय और मकान कच्चा बने व गिर जाय। यदि ये बाबू उसके नीचे होकर गये होते तो इन पर गिर जाता न। इसका उत्तर वह निर-पराध बेचारा क्या दे ?

राजाने उसे फांसीकी आज्ञा सुना दी। जल्लाद जब उसे फांसीके लिए ले गये तो वह रस्सी उसके गलेमे ठीक नही फसी क्योकि उसका गला पतला था। जल्लादने राजाको बताया कि इसका गला पतला है और रस्सीका फन्दा चौडा है। तब राजाने आज्ञा सुनायी कि अबे देर क्यो करता है ? इसके गलेमे नही बैठता तो किसी मोटे गले वालेको ढूंढकर लाओ जिसको यह फन्दा फिट आ जावे। जल्लादोको बहुत ढूंढनेपर वही शिष्य मिला। उसे जब वे लाने लगे तो वह बोला—भैया! मै अपने गुरुजी से मिल लू फिर चला चलूंगा। गुरुजी के पास जाकर सब दशा बतायी। गुरुजी बोले कि हमने तुम्हे पहले ही कहा था कि कोई न कोई संकट अवश्य आवेगा किन्तु तुम माने नही। अच्छा तुम चलो और जब फांसी लगने लगे, मैं कहूगा कि फांसी मुझे दो और तुम कहना कि नहीं फांसी मुझे दो। इस प्रकार झगड़ना, आगे मैं सभाल लूंगा। फांसीके समय गुरुजी बोले कि यह फांसी मुझे दी जावे, शिष्य बोला कि नही मुझे होनी चाहिये। इस प्रकार आपसमे झगडते देख राजा बोला कि यह सब क्या बात है ? गुरुजी बोले कि आप चुपचाप बैठे रहिये, आपको क्या पता यह मुहुर्त कैसा है ? यदि इस मुहूर्तमे फांसी पर चढ़ा जावे, तो सीधे स्वर्ग मिलेगा। राजा बोला, तब आप लोग रहने दीजिये, मैं ही फांसीपर चढूंगा और राजा ही फांसीपर चढ़ गया। भैया! यह सारा संसार अन्धेरनगरी है। यहां जो मोहमे गुजरना है, यही हुई अन्धेर नगरी तथा ये सब करते हुए भी अपना कसूर नही मानते हैं, यह है अन्धेर। प्रत्येक कसूर पर कहता है कि यदि ऐसा न होता तो ऐसा होता किन्तु वास्तवमे नही देखता कि यह सब मेरा ही कसूर है। यह है अज्ञका नाच। जितना भी दुःख होता है सब तेरे ही कसूरसे होता है। यह प्राणी वस्तुत्वको नही पहिचानता कि न बाहरसे कुछ मुझमें आता है, न मुझसे बाहर ही कुछ जाता है। अतः वे क्लेश करते हैं और दुःखी होते है।

जैसे कहते है "मन चंगा तो कठौतीमे गगा"। यहाँ जो हो रहा है उसे होने दो, उससे मेरा क्या ? इस प्रकार सोचनेसे मन चंगा हो जाता है। सब जीव अपने आप अपना ही परिणमन कर रहे है। एक चमार था। वह कठौतीमे पानी भरकर रखा करता था जूता आदि गीला करनेके लिए। ब्राह्मण लोग गंगा नहाने जा रहे थे तो वह चमार बोला

कि भैया ! मेरे भी दो पैसे लेते जावो और फूल खरीदकर चढा देना किन्तु चढाना उसी समय जब गगा हाथ निकाले अर्थात् माँगे । ब्राह्मण चल दिया और मनमें बोला कि यह भी कितना मूर्ख है ? अरे, कही गगाका हाथ भी निकलता है ? जाकर उसने दो पैसेका सत्तू लेकर खा लिया । वापिस आनेपर चमार बोला—भैया मेरे दो पैसे भी चढा आये ? ब्राह्मण बोला हाँ चढा आया । फिर चमारने पूछा कि गंगा मैयाने हाथ निकाला था ? ब्राह्मणने कहा अरे, कही गगा भी हाथ निकालती हैं, हमने तुम्हारे दो पैसेका बहुत अच्छा उपयोग किया है, सत्तू लेकर खा लिया है । चमारने कहा कि हम तो फूल तब ही चढाते हैं जब गगा मैया हाथ निकालती हैं । ब्राह्मण बोला, यह कैसे हो सकता है ? तब उसने वही पर स्तुति की । उसी कठोतीसे हाथ निकला और उसने पुष्प चढा दिये । उसीको कहते हैं 'मन चगा तो कठौतीमे गगा" । फिर क्या आवश्यकता है बनारस, मथुरा आदि जानेकी ।

सच बात तो यह है कि भैया ! भाररहित न होने तक वह श्रद्धा नही होती । सदा विचारे कि मैं तो ऐसा वस्तुत्व हू जिसका आकार नही, नाम नही, इतने मात्र ही हू, इससे अधिक नही । इस प्रकार कभी तो विचार करना चाहिये । अपनेको निरखे । ऐसी श्रद्धा हो जानेपर फिर क्या विपदा है । फिर उसे सकट हो क्या है ? जिस प्रकार औषधिसे सब सकट दूर होते हैं उसी प्रकार उक्त तत्त्व विचारनेसे सब विपदाएँ नष्ट हो जाती हैं । ये प्राणी विषापहारमणि आदि प्राणरक्षाके साधनोको तो ढूढते है, किन्तु हे प्रभु ! तेरा स्मरण नही करते । तेरा स्मरण करनेसे ऐसे-ऐसे चमत्कार होते है कि लोग देखकर आश्चर्यचकित हो जाते हैं, किन्तु स्मरण नही करते । वह परमात्मा अपनेमे ही तो है, किन्तु यह मोही प्राणी व्यर्थमे ही अपनेको छोटा बडा समझकर प्रभुदर्शनसे, वञ्चित रहता है ।

हे प्राणी ! अपने वस्तुस्वरूपको सभाल, तेरे सब सकट दूर हो जावेंगे । मोहकी बात रागद्वेषके सकटको मेटनेका उपाय नही, अपितु सकट बढ़ानेका है । अपनी सर्वपरिणतियोसे उपेक्षा करके सदा मैं अपने स्वरूपको अपने लक्ष्यमे लेकर अपनेमे अपने लिए अपने आप सुखी होऊँ । यह प्राणी दूसरोको देखता है कि अमुक बहुत स्वार्थी है । उससे अपनेको क्या तात्पर्य ? वह अपना परिणमन अपनेमे ही करेगा । खुद खुदका ही काम करता है, कोई किसीका कुछ नही करता । ऐसी दृष्टि रहनेपर हो भला है । ऐसी दृष्टि कभी सत्सगमे और कभी एकान्तमे व जब चाहे करना चाहिये । जब सहनन अच्छे होते थे । उस समय समस्याएँ इतनी जटिल न थीं, आजके समयमे बहुत कठिन हैं । एकान्तमे बलिष्ट आत्मा ही रह सकता है । दस आदमियोके बीच बैठकर भी आत्माकी ओर ध्यान जावे, ऐसा वस्तुस्वरूप अपनी दृष्टिमे रहे तो कोई संकट नही । वहाँ यह हो रहा है, लोग क्या कहेगे—यह सब परदृष्टि है । वस्तुस्व-

रूपपर दृष्टि लगानेपर कोई सकट नही । परकी दृष्टि ही संकट देने वाली है । अतः मैं परकी दृष्टि हटाकर स्वयमे स्वयके लिए स्वयंको स्वय सुखी रखूँ ।

देखो, वस्तु जितनी होती है वे सब शक्तिपिण्ड ही तो है । आत्मा भी वस्तु है, वह भी अनन्त शक्तियोका पिण्ड है । उन अनन्तशक्तियोमे आनन्दशक्ति भी एक प्रधानशक्ति है । इस आनन्दशक्तिका प्रति समय परिणमन होता है, विकृत हो या अविकृत, यह उपादान निमित्तके प्रसग वाली बात है । किन्तु सर्वत्र वह आनन्द मिला स्वयके आत्मामे ही । सुख यही इसी निज आत्मामे है, अन्यत्र सुख ढूँढना ही दुःख पैदा कर लेना है । अतः बाह्यका उलझन छोडकर मैं अपने आपमे ही विश्राम पाऊँ । अब आगे कहते है कि वस्तुका स्वरूप स्वतन्त्रता है । तब किसीको कौन क्या करेगा ?

स्वातन्त्र्य वस्तुनो रूप तत्र कः किं करिष्यति ।
हानिर्मे हि विकल्पेषु स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-७॥

वस्तुका जो स्वरूप है वह स्वतन्त्र है । स्वका मतलब हुआ अपना । जैसे हिन्दीमे कहते हैं कि तुम्हारा अपना, उसने अपना काम किया । उसी प्रकार सब स्वके अर्थात् अपने तन्त्र है । प्रत्येक वस्तु अपने आधीन है क्योकि वस्तु तो द्रव्य, गुण, पर्यायमे रहती है । अन्य कोई क्या कर देगा कुछ भी तो नही कर सकता । जो वस्तु स्वतःसिद्ध है उसका वर्णन करना कठिन है । चीज है तो उसमे परिणति होती रहती है । वस्तु द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावात्मक होती है । द्रव्य गुण व पर्यायका पिण्ड है । व्यवहारमे तो पुद्गलको उठाकर दिखा देते है कि यह द्रव्य है । अन्य द्रव्योको जाननेका उपाय ऊपरी नही है । इस प्रकार एक पिण्डरूपसे जो वर्णन किया जाता है उसमे जो बताया गया, यह हुआ पिण्डवस्तु । प्रदेशोकी अपेक्षा जो वर्णन होवे वह होगी क्षेत्रवस्तु । पर्यायोकी अपेक्षा जो वर्णन है वह कालवस्तु कहलाती है । शक्तियोकी अपेक्षा बताना भाववस्तु है । जैसे एक आदमीका वर्णन करना है कि वह कैसा है ? यह एक अमुक गांवका मुखिया है, यह हुई पिण्डरूप दृष्टि । लम्बा है ५ फुट और पतला है इस प्रकारकी दृष्टि हुई क्षेत्रकी दृष्टि । अमुक रगका है यह हुआ व्यञ्जन पर्यायोको लेकर । घमण्डी है या क्रोधी है अथवा शान्तपरिणामी है यह हुआ गुणपर्यायोको लेकर काल अपेक्षा से वर्णन । उनकी शक्तिका, गुणका वर्णन भावदृष्टिकी अपेक्षा है । जैसे पुस्तक हाथमे लेकर कहा कि यह पुस्तक है तो यह बताना हुई द्रव्यदृष्टि । यह इतनी लम्बी इतनी चौडी है यह हुआ क्षेत्रकी अपेक्षा । यह पुस्तक पुरानी है या अमुक रगकी है ऐसा वर्णन कालदृष्टिकी अपेक्षा हुआ । इसमे अमुक तत्त्व लिखा है, इस प्रकार गुणोका वर्णन भावदृष्टिकी अपेक्षासे है । इसी चतुष्टयके कारण इनके चार नाम भी पड़ गये । द्रव्यकी अपेक्षा नाम है पदार्थ, क्षेत्रकी अपेक्षा

नाम है अस्तिकाय, कालकी अपेक्षा नाम है द्रव्य और भावकी अपेक्षा नाम है तत्त्व। सो प्रत्येक पदार्थ इनसे सहित है। जैसे कालद्रव्यमे घटाना है—यह द्रव्य तो है ही, प्रदेश एक ही सही उसकी अपेक्षा क्षेत्र हुआ, कालदृष्टिसे काल भी है। कालमे रहने वाले जो गुण हैं वह भावदृष्टि हुई।

आत्मामे घटा लो, आत्मगुणपर्यायका पिंड हुआ आत्मा पदार्थ, निज असख्यात प्रदेशो मे विस्तृत हुआ आत्मा अस्तिकाय, आत्माकी पर्यायोसे परिणत हुआ यह आत्मद्रव्य और आत्मगुणोमे तन्मय स्वभाव मात्र हुआ यह आत्मतत्त्व। देखो, अपना चतुष्टय ही अपनेमे है। परके चतुष्टयका अश भी अपनेमे नही है, अतः इससे यही सिद्ध हुआ कि प्रत्येक पदार्थ अपना स्वामी है, अपनेमे ही रहता है, अपनेमे ही परिणमन करता है, तव कोई अन्यमे क्या कर देगा ? कई प्राणी ऐसे हैं जो तत्त्वको जानते नही और कई ऐसे हैं जो जानकर भी उसमे नही रमते, केवल ज्ञात करते रहते है। कल्याणकी जो बात है उसके किये बिना तो गुजारा नही होगा, यह निश्चित है। बडे दुःखकी बात है कि यह प्राणी मोह आदिमे पडा भी है और दु ख भी मानता जाता है। जिस प्रकार मिर्च खाता भी जाता है और मना भी करता है। मिर्च मत डाला करो और सी सी भी करता जाता है, आनन्द भी लेता जाता है। इसी प्रकार बाह्य पदार्थोंमे राग भी कर रहे हैं, दु ख भी मान रहे हैं। अतः जो करनेमे आ रहा है, आ पडा है, आवे, उसके बिना भी तो अभी गुजारा नही है। किन्तु साथ ही साथ यह अन्तरगमे अवश्य बात उठनी चाहिये कि मै तो मात्र अमूर्त चैतन्यशक्तिस्वरूप हू, यह तो स्वयमे स्वयं ध्रुव है। श्रद्धा ही काम बनाती है। बात यही ठीक है। प्रतिमा भी ले लो, सब कुछ कर लो, किन्तु बिना श्रद्धाके न मर्मका स्पर्श होगा, न ज्ञान ही होगा। बहुतसे विवेकी जन गृहस्थी मे रहकर भी यही सोचते हैं कि कैसे मैं इन उपयोगोको छोडू ? ज्ञानी यही सोचता है मुझसे यह सब कैसे छूटे ? और बहुतसे प्राणी घरसे बाहर रहकर भी घरकी दृष्टि करते है, पत्नीको वाछा रखते हैं। सो यह घरमे रहकर बाहरकी इच्छा रखना, यह सब अर्धविवेकसे होता है। अर्धविवेक उसे कहते हैं कि ज्ञान तो हैं, पर दृढ़ता नही हुई। छोडनेपर ग्रहण करनेकी इच्छा, ग्रहण करनेपर छोड़नेकी इच्छा। जैसे किसीको कहो कि भैया ! रात्रिके भोजनका त्याग कर दो तो वह उत्तर देता है कि छोड़नेसे खानेको जी करता है, वैसे रात्रिको खाना नही खाये ५ महीने व्यतीत हो गये। अतः योगमे वियोगकी बुद्धि तथा वियोगमे सयोगकी बुद्धि, यही अर्धविवेकमे होता रहता है।

प्रत्येक पदार्थ अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावमे है, तब अन्यमे कोई क्या कर देगा, कुछ भी तो नही, किन्तु विकल्पोमे हानि होती है। यही विचार त्यागियोको भी करना चाहिये कि हे आत्मन् ! जिसका त्याग कर दिया है उसके विपरीत तो होगा नही। अतः वह शक्ति

मुझे दो, जिससे मैं अपनी ओर झुका रह सकूं । अन्यथा मन कमजोर होनेसे मैं भ्रष्ट हो जाऊँगा । फिर उठनेका कोई अवसर नही रहेगा । अतः इन थोथी कल्पनाओंका त्याग कर दूँ ।

मैं अन्य पदार्थमे कुछ नही करता । मात्र विकल्प ही है । सो उन विकल्पोमें अपनी ही हानि है, लाभ कुछ नही है । जो विकल्प करने वाला है उसे कर्ता कहा गया है । वैसे तो मिथ्यादृष्टि भी कर्ता नही है । कोई वस्तु परपदार्थका कर्ता नही है । प्रत्येक वस्तु अपने परिणमनका ही कर्ता है, सो यह विकल्प करने वाला ही कर्ता है तथा जो विकल्प है वह कर्म है । अतः विकल्प वालेके कर्ता कर्मपना कभी नष्ट नही होता । वस्तुका स्वरूप स्वतन्त्रता है, तब अन्य पदार्थ अन्यमे क्या कर देगा ? अतः विकल्प करना व्यर्थ है । ज्ञान ही निजस्वरूपमे ले जाने वाला है । अपने स्वरूप तक पहुचने मे ये व्यवहारसे उपाय बताये है कि अग्नि जल, तत्त्व, रूपवती आदि धारणाएं है । सर्वप्रथम उपाय और है, वह यह कि शरीरको स्थिर आसनसे बिठाना सबसे पहिले आवश्यक है । मेरुदण्डकी (कमरके बीचकी सीधी हड्डी को) साध कर बैठने से मन एकाग्र होता है । पद्मासनमे बैठनेसे स्थिरता आती है । फिर श्वास देखता हुआ लेवे, श्वास देखता हुआ छोडे । हमने कब श्वास छोडी और कब ली यह दिखता तो नही किन्तु पता तो लग ही जाता है कि अब हमने श्वास ली और अब छोडी पहले अपने मनको एकाग्र रखनेके लिए यह करना, फिर इसके पश्चात् भीतरको श्वास लेते समय अन्तरगमे 'सो' सोचे और श्वास छोडते समय अन्तरगमे ही अहकी कल्पना करें । प्रकृतिसे श्वास छोडते व लेते समय भी तो ऐसा याने "सोहं सोह" शब्द होता है । अतः वैसा ही शब्दोका जुटाव फिट बैठता है । सो का तात्पर्य है भगवान् और अहम् जिसका तात्पर्य है वह मैं हू, जो भगवान् है वह मै हू । यह श्वासके आश्रयसे ही प्रतिध्वनित होता है । करनेसे स्वयं पता लग जावेगा । फिर 'सो' को लुप्त कर देवे, केवल अहम् रह जावे । ऐसा करनेसे श्वासकी वह कल्पना छूट जावेगी । श्वासका आश्रय छोड अपनेको देखा तो अहम्की बात आयी । अहम्का बोध होते समय भी अहम्की कल्पना मिटकर आनन्दकी अनुभूति होती है ।

इस प्रकार आत्माका ध्यान करनेका एक यह भी साधन है । मेरी केवल विकल्पोमे हानि हो रही है, करना धरना कुछ नही । कोई-कोई ऐसे प्राणी होते है जिन्हे दूसरोका सम्बन्ध करानेमे ही मन लगता है उन्हे लेना देना कुछ नही, किन्तु फिर भी प्रकृति बन गयी है कि दूसरे दूसरोका विवाह सम्बन्ध कराते रहते है । केवल विकल्प करता रहता है । कहा है कि "हानयः हि विकल्पेषु" अर्थात् विकल्पोमे हानि ही हानि है, लाभ तो इस आत्माका कुछ भी नही है । जैसे किसीने एक स्वप्न देखा कि एक सेठने मेरेको ५० गायें इनाममे दी

हैं। एकने उससे गायकी कीमत पूछी तो बतायी कि एक गायका मूल्य १००) है। ग्राहक ने कहा, कम ले लो, ६०) ले लो। वह ८०) तक आ गया। ग्राहक ७०) मे माग रहा था। ग्राहक भी जोरसे बोला और वह भी। परिणाम यह हुआ कि इस स्वप्नको देखने वाले की आँख खुल गयी। आंख खुल जाने पर देखा कि यहाँ तो कुछ नही है।

उसे बहुत पश्चात्ताप हुआ। और फिर उसी प्रकार आँखें बन्द करके बोला कि "भैया ७० रु० मे ही ले जावो"। लेकिन वहाँ कुछ भी था क्या ? केवल विकल्प ही तो है। अपने कुटुम्बमे ही देखो कि कुटुम्बके लिए सब कुछ किया किन्तु मिलता क्या है, कुछ भी तो नही। सब कुछ होनेके बावजूद भी आत्माको तो कुछ नही मिल सकता। मृत्यु हो जावेगी फिर साथ क्या जावेगा इनमे से। देखो, पुत्र अपने पिताका पितृतर्पण करता है तो क्या वहाँ पर एक भी जलकी बूंद पहुच जाती है। केवल विकल्पोमे सारा लोक भरम रहा है। समस्त क्लेशोका मूल मात्र विकल्प है। ये विकल्प छूटकर यदि आत्माकी ओर ध्यान जमे तो वही कल्याणकारी है। विकल्पोमे तो हानि ही हानि है, अतः जिससे मैं विकल्पो को त्यागकर अपनेमे अपने लिए अपने आप सुखी होऊ ऐसा ही सकल्प, उपयोग व प्रयत्न उत्तम है। विकल्प पारमार्थिक चीज नही, कर्मोदयका निमित्त पाकर व किसी पर वस्तुको उपयोगका ज्ञेयरूप निमित्त बनाकर उठाया गया आत्माका एक विभाव परिणमन है। इसके सकटसे बचनेका एक ही तो यह उपाय है कि सच सच जान लो। सत्यज्ञानमे सर्वसकट समाप्त हो जाते है।

ज्ञाता द्रष्टाऽहमेकोऽस्मि निर्विकारो निरञ्जनः।
नित्यः सत्यः समाधिस्थः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-८॥

मैं ज्ञाता द्रष्टा हू। मैं चैतन्यस्वरूप हू। इसमे जो स्वच्छताका अनुभव है वह तो हुआ दर्शन, उसमे जो ज्ञेयाकार होता है या अर्थ विकल्प होता है वह हुआ ज्ञान। जैसे दर्पणमे दोनो बात होना आवश्यक है। दर्पणमे जो निजी स्वच्छता है उसको भी परिणमन तथा स्वच्छताके कारण जो प्रतिबिम्ब है उसका भी परिणमन। कुछ भी न हो, खुली जगह दर्पणको आकाशके सामने रख दो तो भी सूक्ष्मरूपसे परिणमन होता ही है। यदि विश्वास न करके देखते जावो तो देखोगे कैसे ? क्योंकि दर्पणमे स्वयका प्रतिबिम्ब पड जावेगा। इसी प्रकार मुझमे भी दो प्रकारका परिणमन होता है। उपयोगकी अपेक्षा क्रमशः परिणमन होता है। जो भी पदार्थ है वह सामान्यविशेषात्मक है। आत्मा भी चैतन्य गुणके कारण सामान्यविशेषात्मक है। आत्माका सामान्य प्रतिभास या समस्त जगत्का सामान्य प्रतिभास कहो एक ही बात है, दोनोका अर्थ एक ही है। प्रतिभासके समय सब पदार्थोंका जो सामान्य

प्रतिभास है उसकी यदि खबर लग जावे तो वह ज्ञान बन जायेगा।

सामान्य प्रतिभासमे तो उस प्रतिभाकी खबर ही नही रहती, और यदि खबर रहे तो ज्ञान कहा जावेगा। सामान्य प्रतिभास किसका ? यह जानना ही तो ज्ञान हो गया। जाननेका अर्थ ही ज्ञान है। यह विशेष तत्त्व बन गया। कहनेको तो मुखसे सामान्य कहा जाता है किन्तु यह विशेषतत्त्व बन गया। सर्व पदार्थगत सामान्य उपयोगमे अकेले नही आ सकता। पदार्थोंका सामान्य प्रतिभास आत्मप्रतिभासरूप ही है। विषय कहते हैं पदार्थको, विषयी कहते है आत्माको। सामान्य प्रतिभासरूप परिणमन जो प्रतिभास है वह विषयीको भी नही पकडता। किन्तु उसको करने वाला कौन, यह हुआ विषयात्मक। सामान्यकी भी पकड हो जावे तो वह ज्ञान बन जावे, किन्तु सामान्य प्रतिभास हो जाता है, उसकी पकड नही होती। यथार्थमे दर्शन कब हुआ इसकी खबर न पहले होती, न बादमे, न अनुभव ही होता है। सामान्य प्रतिभास होता सबके है और उस प्रतिभासका विषय मूलतत्त्व निजतत्त्व होता है, किन्तु वह मैं ही तो हू, ऐसा अनुभव विषयभोगके सस्कार वाले मोही प्राणी नही कर सकते है। ज्ञानी पुरुष ही उसे स्वीकार कर पाता है। ऐसी बात उपयोगरूप प्रयत्न द्वारा साध्य है। केवल वचनोसे उसका अनुभव नही होता। एक कथानक है कि सब कौरव, पाण्डवोके साथ धर्मराज (युधिष्ठिर) भी अध्ययन करते थे। गुरुजी ने पढाया कि गुस्सा मत करो। सबने पाठ सुना दिया, किन्तु युधिष्ठिरने कहा कि अभी याद नही हुआ। चार पाँच दिन तक गुरुजी के पूछनेपर यही उत्तर देते रहे कि अभी याद नही हुआ। गुरुजी को बहुत क्रोध आया कि इसमे याद न होने वाली कौनसी बात है ? अतः उन्हे पकडकर पिटाई की। काफी पिटनेके बाद भी जब युधिष्ठिरको क्रोध नही आया तो वे बोले कि गुरुजी अब याद हो गया। इसी प्रकार वचनोसे क्या होगा ?

जब निर्विकल्परूपसे निर्विकल्प प्रतिभास करे तो दर्शनका फिट बैठ जाना हो सकता है। यह दर्शन इस प्रकार है कि यदि फिट बैठाया जावे तो यह भी ज्ञान हो गया। देखना और जानना ये जीवके धर्म है। इस संसारमे कोई किसीका नही। मै तो चैतन्यस्वरूप एक हू—इस प्रकारका विचार करना चाहिये। पुत्र या पत्नी आदि किसीसे भी कितना ही प्रेम क्यों न हो, किन्तु हैं सब अलग-अलग ही। कषायसे कषाय मिल गयी तो दोस्ती, अन्यथा दुश्मनी। जैसे कोई छोटा बच्चा खेल रहा है, दूसरा भी वही खेल जानता है तो दोनोकी तुरन्त दोस्ती हो जावेगी और प्रतिकूल दशामे दुश्मनी। इससे अधिक मित्रता व शत्रुतामे मर्म ही क्या है ? ज्ञानी पुरुष ही समर्थ है कि वह अपनेसे अनुकूलको भी एव प्रतिकूलको भी निभा लेते है। किन्तु अज्ञानी प्राणी अपनेसे प्रतिकूलको नही निभा सकता। मैं द्रव्य, क्षेत्र, काल,

भावकी अपेक्षा एक हू, मैं विकाररहित हूँ, स्वभावदृष्टिके कारण निर्विकार हूँ अर्थात् सरसता की दृष्टिसे उपाधि बिना हू। यदि ये कैसा है इस प्रकारका वर्णन किया जावे तो वह भी निर्विकार ही किया जावेगा। ऐसी दृष्टि बनायें कि ये रागादि भाव पौद्गलिक दिखाई देवे या चिदाभास दिखायी देवें। उपादानपर दृष्टि देवे या निश्चयनयपर यदि परभाव है तो आत्मासे क्या मतलब ? स्वभाव और विभाव दोनो क्या एक साथ रहेंगे ? मैं निर्विकार हू, निरञ्जन हू, अजनरहित हू, अर्थात् उपाधिरहित हू। चैतन्यशक्ति ही मेरा सर्वस्वसार है। पदार्थमे ममताके परिणाम न हो तभी शान्ति प्राप्त होती है। जब तक परपदार्थमे ममताके परिणाम है तभी तक अशान्ति है। इसको मिटाने वाली स्वभावदृष्टि ही है।

यदि गीदडोके बीचमे पले शेरके बच्चेको किसी प्रकार यह मालूम हो जावे कि मैं शेर हूँ तभी उसे सुख है। और जब तक पता नही तभी तक गीदड है। पता लगते ही वही शेरका शेर। इसी प्रकार कोई प्राणी चाहे कितना ही हट्टा-कट्टा क्यो न हो, यदि उसे सन्तोष नही तो वह दुखी ही है और दूसरा बूढा बीमार, कमजोर होते हुए भी यदि यह सन्तोष धारण करता है कि मैं स्वरूपमे स्वस्थ हू तो वह निरोग है, सुखी है। अतः अपनी आत्माकी दृष्टि ही सुखकी दिलाने वाली है। मै यदि न था तो आज न होता। यदि कभी न रहूगा तो आज भी मेरी सत्ता नही होनी चाहिये थी। वर्तमानकी सत्ता ही सिद्ध करती है कि मैं अनाद्यनन्त हू। जो सत्मे हो उसे सत्य कहते है, मैं सत् हू। मुझमे जो हो वही सत्य है। जो अपने आपकी स्वरसतासे है वही सत्य है। जो चित्स्वभाव अपरिवर्तित है, चेतनायुक्त है ऐसा मैं समाधिमे रहने वाला तत्त्व हूँ। सम्-आधि, इसका मूल शब्द है आधि, सम् उपसर्ग है, आधि मानसिक कष्ट है। जहाँ मानसिक व्यथा शान्त हो उसे समाधि कहते है। उप, उपसर्गके लग जानेपर उपाधि बनता है। उपाधिका तात्पर्य ही है कि जो मानसिक क्लेशके समीप ले जावे। ऐसी जो उपाधि, व्याधि जहाँ शान्त हो गई वह समाधि है अर्थात् रागद्वेष रहित परिणाम, ऐसा मैं ज्ञाता, द्रष्टा, निर्विकार, निरजन, नित्य, अकेला हू। यही मेरा स्वभाव है। अन्य कोई विश्वास बनाना कि मैं ऐसा हू सो स्वरूपदृष्टिसे बाहर है। यदि कोई मुनि विचार करे कि मैं मुनि हू, मुझे असत्य नही बोलना चाहिये, इस प्रकारके विकल्पसे क्या वह स्वरूपकी ओर हैं ? नही। वह परपदार्थमे है, किन्तु उन्हें इस प्रकारका विकल्प होता नही है। उनमे सहज ही सयम रहता है। जैसा कि कोई आदमी किसी कार्यको करनेमे बहुत निपुण होता है तो वह उस कार्यको सहज ही कर लेता है। उसके लिए सोचना नही पडता, विचार नही करना पडता। उसी प्रकार इनके भी समिति, गुप्ति सहज ही हो जाती हैं। उपयोग नही लगाना पडता। मैं चेतनस्वरूप हू, यह दृष्टि रखनेसे दुःख नही होता, किन्तु

जो अंतरंगसे यह मानता है कि मैं स्त्री हू या पुरुष हूं वह मिथ्यादृष्टि है । जहाँ प्राणी इतना विचार करता है कि न मैं किसीका पुत्र हूं, न किसीका पिता, परपदार्थमे मेरा कुछ नही, वहाँ यह भी विचार करना चाहिये कि न मैं पुरुष हू, न स्त्री हू । ऐसी प्रतीति अन्तरंगसे नही करनी चाहिये कि न मै अमुकका अमुक हू, स्त्री हू या पुरुष हू । मैं तो चैतन्यमात्र एक तत्त्व हू । तो वह ज्ञाता द्रष्टाकी क्रियामे लग गया समझो । जैसे खरगोशका शिकार करने वाले शिकारी प्राय: अपने साथमे कुत्ता रखते हैं, खरगोश भाग-भागकर आगेकी झाडियोमे छिपकर बैठ जाता है और अपने कानोसे अपनी आँखोको ढक लेता है तथा यह समझता है कि अब मुझे देखने वाला कोई नही । तब यदि शिकारीकी नजर उसपर न पडी तो आराम से पडा रहता है, किसी प्रकारका विकल्प नही करता । उसी प्रकार उपयोगमे यदि वे बातें न आवें तो कोई विपदा नही, उपयोगमे बातें आ रही हैं इसीलिए विपदा है ।

जैसे किसी सम्बन्धीकी मृत्यु हो गयी और पता नही, तब कुछ भी विकल्प नही है । वह तो उसी प्रकारसे रहता है जैसे पहिले था । एक पत्र आया और उपयोगमे वे बातें आ गयी तो दु:खी हुआ, यह भी तो सब विकल्पमात्र है । व्यर्थके विकल्पमे उलझकर दुर्लभ मनुष्यके क्षण गंवाना अविवेक है । अतः मैं तो ज्ञाता, द्रष्टा हू, सो ऐसा ही उपयोग करके मैं अपने आपमे अपनेको निरखे । यह मैं मात्र मैं ही हू, अद्वैत हू, एक हू । इस स्वरूप-सत्तामात्र मुझमे विकार आते भी है तो आवो, वे विकार मेरे स्वभावसे नही उठते । मैं तो स्वभावमात्र हू अतः निर्विकार हू । जहाँ विकार ही नही प्रतीत होते है वहाँ भिन्न सत् अञ्जन (उपाधि) की कथा ही क्या है, सो मै निरञ्जन हू । मै तो सत्य हू, केवल निज सत्मे होने वाला तत्त्वमात्र हू, अत: सत्य हू । स्वय समाधानरूप हू, शांत हू सो समाधिस्थ हू । ऐसे सहज चैतन्यस्वरूप मात्र मै अपनेको यथार्थ परमार्थरूपमे देखूँ और सर्वविकल्प संकटोसे मुक्त होकर अपनेमे अपने आप सुखी होऊँ ।

अमरोऽहमजन्माऽह निःशरीरो निरामयः ।
निर्ममो नैर्जगत्योऽह स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-९॥

मै अमर हूँ, मरणरहित हू । मरते समय जो दु:ख होता है वह वियोगका होता है । जैसे कि अज्ञानी जीव कहता है मरते समय कि मुझे वह दो वर्षका छोटा बालक दिखा दो, अब तो मेरे प्राण छूटने वाले हैं । ये रागद्वेषके भाव मरते समय भी अज्ञानीके ही होते हैं । किन्तु ज्ञानीके इससे विपरीत भाव होते हैं । वह यही सोचता है कि मेरी आत्मा तो अमर है, मेरा इस संसारमे कोई नही, मैं एक हूँ, चैतन्यस्वरूप हूँ । अज्ञानीमे अज्ञानलीलाकी हद होती है । मैं तो मरणरहित हूँ, जन्मरहित हूँ, अजन्मा हूँ, शरीररहित हूँ । मैं तो अपने वास्तविक

स्वरूप मे हूँ। शरीर शरीरमे है और मैं अपनेमे हू। किन्तु ऐसा कुछ हो रहा है प्राणियोकी प्रकृतिमे कि उसके विषयमे सोचा भी नही जा सकता। एक तो ऐसा दु ख है जिसे भुलाया जा सकता है, जैसे काँटा लग गया, कुछ चुभ गया, उससे दुःखी होता है किन्तु दूसरा जो दुःख है उसमे समताभाव रखना बहुत कठिन तपस्या करना है। जैसे किसीने किसीको कुछ बात कह दी तो वह उसको लग जाती है। तात्पर्य यह कि अपने विपरीत कहने पर जो क्षोभ होना है, वह क्षोभ न होना चाहिये। किन्तु प्राणियोके प्रायः ऐसा धैर्य होता नही। किसीने कोई कडवी बात कही तो वह भुलाये नही भुलाई जाती। सबसे वडी मूर्खता यदि है तो यही है कि दूसरोके द्वारा प्रतिकूल कहने पर अहित महसूस करना। दूसरोकी बात सुन कर शल्य पैदा करना। ज्ञानी की बातें ही विलक्षण हुआ करती हैं। जैसे सुशीला उपन्यासमे कथा आती है कि एक स्त्री किसी पुरुषसे एकान्तमे स्नेहकी बात करनेपर बाध्य कर रही थी, पुरुषने उसको स्वीकार नही किया। स्त्री बोली कि यदि तुम मेरा कहना न मानोगे तो मैं तुम्हे कलकित कर दूंगी, बदनाम कर दूंगी, तो उसने अपने ज्ञानसे ही उत्तर दिया कि यदि मैं अपने ज्ञानमे कलकित हूँ तब तो बुरा होगा अन्यथा तुम मेरा कुछ नही कर सकती। यही तो ज्ञानीका ज्ञान है। अतः यही विचार करना कि मै शरीर रहित हू, शरीर-शरीर है; मैं, मैं हूँ। शरीरको देह भी कहते हैं किन्तु दोनोका अलग-अलग तात्पर्य हैं। दिहयन्ते सञ्चीयन्ते यत्र परमाणव स देह। और शीर्यन्ते यत्र परमाणवः स शरीरः॥ प्रायः २०-२५ वर्ष तक की आयुके तनको देह कहते है और उसके बादकी अवस्थाको शरीर कहते हैं। आत्मा तो अमूर्त है उसमे कहाँ फुन्सी, कहाँ फोडे, वह तो अमूर्त है। आत्मा तो सदा आनन्दमय है। बस बुरा काम न करो फिर कुछ नही। नही तो सारी शल्यें जीवनभर लगी रहती हैं। सब जीव सुखी होवें ऐसा विचार करनेसे अपना बिगडता भी क्या है? अपनी भावना स्वच्छ रखें, किसीका भी बुरा न सोचें, किसीके प्रति दु खकी बात न सोचें। जरासी देरके लिए मानो यदि अपना सोचा हुआ दूसरेके प्रति अनिष्ट हो भी गया तो इस आत्मामे क्या वृद्धि हो जावेगी?

अत हे प्राणी! सबके प्रति अच्छी भावना भावो, सबसे पहला यही काम है। गाली भी यदि कोई दे देवे तो भी यही सोचो कि चलो यह तो मुफ्तमे ही खुश हो गया, सुखी हो गया, क्योकि किसीको भी सुखी देखनेके लिए कुछ न कुछ उसकी खुशीके लिए खर्च करना पडता है। अत. उसको गाली देकर सुख प्राप्त हो जावे तो इसमे मेरी क्या हानि? मैं तो चैतन्यस्वरूप हू। मैं लोकरहित हू, ममतारहित हू, कर्मके उदयको निमित्त पाकर होने वाला जो मोहभाव है, मैं उससे भी रहित हू; अपनेसे ये जगतके समस्त पदार्थ भिन्न हैं तथा मैं

इनसे भिन्न हू, ऐसा अपनेमे विचारे। सम्यग्दृष्टि केवल शुद्धोपयोगमे ही जीवन व्यतीत करते है। उन्हे न खानेकी चिन्ता, न कमानेकी, न स्त्री पुत्रादिककी। उनकी अपनी गोष्ठी रहती है तथा शुद्धोपयोगमे समय व्यतीत करते हैं। हमारा भी उत्कृष्ट काम यही होना चाहिये कि हम सम्यग्दृष्टि बनें, सबके प्रति अच्छे भाव रखें। देखो, सबको खुश कोई नही कर सकता। अतः सब मुझपर खुश हो, यह भाव व्यर्थ है। एक सेठ था, उसके पास पाँच लाख रुपये थे व ४ थे बेटे। अत उसने चारो बेटोको एक-एक लाख रुपया बांट दिया और एक लाख रुपया अपने लिए रख लिया। फिर कुछ समय बाद कहा—देखो, अपने सब खुशी खुशी न्यारे हो गये। नही तो न्यारे होनेमे बरबादी हो जाती। अब तुम लोग सुखसे अलग हो गये, बिरादरीको जिमाना चाहिये। बडी खुशीकी बात है कि किसीसे किसीका झगड़ा तक नही हुआ और अलग-अलग भी हो गये। अत. अब यह शुभ काम अवश्य करना चाहिए। सबसे पहले छोटे लड़केने बिरादरीको जीमन दिया, उसने अच्छा अच्छा खाना बनवाया और सब प्रकार मिठाई बनवायी। बिरादरी आयी और जीमने लगी। जीमते-जीमते कहती जावे कि मालूम तो ऐसा पडता है कि पिताने अपना सबसे अधिक भाग इसी छोटे लड़केको दिया है तभी तो इसने इस प्रकार खर्च किया। अब देखो खा भी रहे हैं और बुराई भी कर रहे है। फिर दूसरेने दावत दी तो उसने केवल तीन मिठाई बनवायी। तो जीमते-जीमते बिरादरी कहती है कि ये लडका तो बहुत बदमाश है, इसने तीन ही मिठाई बनवाकर अपना काम बना लिया। फिर तीसरेने जिमाया, उसने केवल साग पूडी ही बनवायी। जीमने वाले बोले कि यह लडका सबसे अधिक बदमाश है, इसने तो साग पूडीमे ही टाल दिया। फिर चौथेने जिमाया, उसने केवल चनेकी दाल और रोटी ही जिमायी। जीमने वाले बोले कि सबसे अधिक बदमाश यही है, इसने तो बनवाया ही कुछ नही। तात्पर्य यह है कि इस जगत्मे प्रशसाकी दृष्टिसे वैभवादि एकत्रित करना व्यर्थ है। जनता सारी ही प्रशंसा करे यह सम्भव नही। महावीर स्वामी जब थे तो उनकी भी सभी प्रशसा नही करते थे। कोई उन्हे मायावी कहता था, कोई कुछ। अत: हे प्राणी जो तू प्रशसाकी दृष्टिसे ये सब वैभवादि बढ़ा रहा है, ये सब व्यर्थ हैं। अत: जितना हो सके मनुष्यको धनादि वैभव परोपकारमे लगा देना चाहिये, अन्यथा पछतावा होगा।

एक सेठ था। उससे पास धन बहुत अधिक था, पर था कजूस। तो उसने काफी तो अपने लडकोमे बांट दिया, फिर बचे हुए धनकी भीतोमे चिनवा दिया। मरनेका समय आया तो उससे बोला न जावे, ऐसी दशा हो गई उसकी। पच लोग उसके पास आये और बोले कि क्यो भाई क्या कुछ अब भी दानमें देना है या नही? अब तो तुम्हारा मरणकाल समीप आ गया है। सेठ जी अब अपना साराका सारा ही धन दानमे देना चाहते थे क्योकि घरमे

लडकोका भी व्यवहार उनके प्रति अच्छा न रहा था। अत उसने इशारेसे प्रकट किया कि हाँ मैं यह सब धन जो भीतमे रखा है वह दान करना चाहता हू। पच लोग इस बातको समझ न सके। तो उनके लडकोसे पूछा कि तुम्हारे पिताजी क्या बता रहे हैं? तो लडके बोले कि पिताजी कह रहे हैं जितना धन था वह सब तो ये मकान आदि बनवानेमे खर्च हो गया। अब बचा ही क्या जो दानमे देवें। अब वह सेठ सुन तो सभी कुछ रहा है किन्तु बोल कुछ नही सकता। वह मनमे कुढ रहा था कि लडके सब कुछ जान रहे हैं, पर छल कर रहे है। अब सोचो कि कितना कष्ट हुआ होगा उसको? मानव इसलिये धन नही बढा रहे कि मैं आगे भूखो मरूँगा, अतः काम आ जावेगा। बल्कि इसलिए कि मेरी इस धनके कारण ही बडाई होगी, इज्जत होगी, पोजीशन बनेगी। सब मुझे अच्छा कहेगे। लेकिन यह सब व्यर्थका विकल्प जाल है। अत· इन सबको छोडकर अपने धर्मका पालन करना ही तत्त्व की बात है। मैं ममतारहित हू, परपदार्थके द्रव्य-गुण-पर्याय रूप नही, ऐसा जानकर अपने स्वरूपमे ध्यान लगाओ, ये कर्मजाल भी नष्ट हो जावेंगे। अब सोचो यदि एक बच्चेके हाथमे खिलौना देखकर दूसरा भी रोने लगता है अब उसको चुप करना है तो कैसे किया जावे? यदि उसे पीटा जाय तो और भी रोवेगा और यदि उस बच्चेका खिलौना छीनकर उसे दिया जावे तो वह भी रोने लगेगा। अत सीधा उपाय यही है कि उसे और दूसरा खिलौना दे दिया जावे। उसी प्रकार ये पदार्थरूपी खिलौना तो पास आ नही सकता, तब रोना बन्द करनेका एक यही उपाय है कि आपना जो स्वभावरूपी खिलौना है उसका ध्यान करो, उसमे रमण करो ऐसा करता हुआ मै अपनेमे अपने लिए अपने आप सुखी हो सकता हू।

मैं स्वयं तो सर्वकल्यणमय हू, सत् हू, अतः अमर हू, किन्तु प्राकृतिक मायारूप प्रभावो को अपनाकर अपनेको मरने वाला समझ लिया, इसी कारण मै मरणके दु खसे त्रस्त होता हू। मै अनादिसिद्ध सत् हूँ, परिपूर्ण हू, मेरे जन्मकी आवश्यकता भी नही और न मेरा जन्म होता है, किन्तु प्रकृतिजन्य (कर्मोदयभाव) स्कन्धोका सयोग व उस बीच अपने आपको समझ कर मै जन्मका भ्रम कर लेता हू और इससे दु.खी रहता हू। मेरा तो मेरा चैतन्यस्वरूप मात्र है; मेरे शरीर कहाँ है? जब शरीर ही मेरे नही तो रोग मेरे कहासे होंगे? तथा जब शरीर भी मेरा नही है तो अन्य चीजोकी कथा ही क्या? इस कारण न मेरा यह जगत् है और न जगत्का मै हूँ। ऐसे सबसे निराले अद्वैत ज्ञानकस्वरूप मात्र अपने आपमे मै रहू और आनन्द-मय बनू।

नोपद्रवो न मे द्वन्द्वो निर्विकल्पोऽपरिग्रह ।
दृश्यः कैवल्यदृष्टयाहं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-१०॥

आत्मा चैतन्यस्वभावमय है, मै चेतना शक्तिमात्र हू। इसमे दूसरी चीजका प्रवेश नही। अतः इसमे कोई उपद्रव नही हो सकता। मै ही उपद्रव मानूं और दुःख मानू तो वह मेरी ही ओरसे उपद्रव होगा, परकी ओरसे नही। परकी ओरसे उपद्रव किसी भी अन्य पदार्थ मे नही होता। परपदार्थमे दूसरेके द्वारा उपद्रव नही होता बल्कि नैमित्तिकपरिणमन है। ऐसा वस्तुका स्वभाव है जिसे विभाव स्वभाव कहा है। बाह्यका निमित्त पाकर परिणमन हो वह तो है किन्तु बाह्यसे उपद्रव नही, निमित्त पाकर होता है। एक दृष्टिसे तो सभी निमित्त उदासीन होते हैं, किन्तु एक दृष्टिसे कोई उदासीन होता है, कोई प्रेरक होता है, एक दृष्टिसे दूसरे का ही अपराध माना जाता है। एक दृष्टिसे न उपद्रव है, न निमित्त है, न उपादान है। किसी परपदार्थके कारण मुझमे उपद्रव नही किन्तु मै ही कल्पनासे उपद्रव मानता हू। मुझमे उपद्रव नही हैं। ये सब स्वभावदृष्टिसे समझे गये। उपयोगकी बात बनी रहे तो उपद्रव भी न जचे। यदि कोई व्यक्ति पैर घसीटकर चल रहा है अथवा टेढी चालसे चल रहा है, यद्यपि अपनेसे उसका परिचय भी नही, किन्तु फिर भी दिलमे बुरा महसूस होता है। देखो परपदार्थसे यह उपद्रव नही है किन्तु कल्पनाके कारण ऐसा अपनेमे मानता है। लक्ष्मण और परशुरामका विरोध था, यह इस कारण कि ब्राह्मणोने क्षत्रियोका नाश किया और क्षत्रियोने ब्राह्मणोका नाश किया। अतः इनका भी आपसमे विरोध था। जब वे दोनो आमने सामने आये तो लक्ष्मणने परशुरामको कहा कि तुम मेरी आँखोके सामनेसे हट जाओ और भी दो चार उल्टो सीधी बात सुनाई। तब परशुराम जी ने कहा—"कर विचार देखो मन मांही, मूदहु आँख कतहु कोउ कुछ नाही ॥" अर्थात् तुम यदि आंखें बन्द कर लो तो तुम्हे स्वयं ही कुछ दिखाई नही देगा। उसी प्रकार लोकदृष्टिको आंख बन्द कर लेनेपर कोई उपद्रव ही नही है। अपने स्वभावसे च्युत होनेको तथा परकी दृष्टि होनेको ही उपद्रव समझो। अतः मुझमे कोई दन्द-फन्द नही। यह दन्द शब्द द्वन्द्वसे बना है जिसका तात्पर्य है दूसरा। अतः जब मुझमे दूसरा कुछ नही तो दन्द भी नही और फन्द भी नही, क्योकि दन्दके होनेपर ही फन्द होता है तो जब दन्द भी नही और फन्द भी नही, क्योकि दन्दके होनेपर ही फन्द होता है तो जब दन्द ही नही तो फन्द कैसे होगा ? मैं तो चैतन्यस्वभाव वाला हू, निर्विकार हू, मेरा काम ही स्वच्छ रहना है।

अपनेको स्वच्छ सुरक्षित रखकर रागादिको पौद्गलिक समझे इसका नाम विवक्षित एकदेश शुद्ध निश्चयनय है। मैं परिग्रहसे रहित हू, मेरा जो तत्त्व है उसमे अन्य कुछ नही। तब परिग्रह क्या लगा ? यही विचार अपरिग्रह कहलाता है। बाह्यपरिग्रहका त्याग तो निष्परिग्रह आत्मतत्त्वकी भावनाका फल है। जब अपने आपके आकिंचन्यकी भावना बढ गई,

तब इसके होनेपर परिग्रह संभाले कौन ? अत छोडना ही पडता है । उदारता भी उसीके बढती है जो आकिञ्चन्यकी, निष्परिग्रहकी भावना करे । उच्च परिणामोका होना ही सबसे बडी उदारता है । अत: कषायोको मत पकडो । अपने प्रति कोई कैसा भी व्यवहार क्यो न करे, किन्तु उसके प्रति रंचमात्र भी रज, विषाद न लावें, यह सबसे बडी बात है ।

जीवनमे आगे बढनेका सबसे पहला यही काम है । यह तो कठिन है कि अपने शरीर मे पीडा हो और अनुभूति न हो, यह भी कठिन है कि जिस वस्तुकी इच्छा हुई वह प्राप्त न होनेपर विषाद न हो, किन्तु इसमे क्या कठिनाई है कि यदि किसीने प्रतिकूल वचन बोल दिया तो महसूस न करें, उसके प्रति विषाद ईर्ष्या न रक्खें । उसके प्रति कषाय रखना इसी का नाम तीव्र कषाय है । सबसे बडी जीवनकी शिक्षा यही है । कोई भी उपद्रव क्यो न आवे, बस यही विचार करें कि मैं तो चैतन्यस्वरूप हू अन्य कुछ नही ।

एक सुनार और एक सेठ पडोसी थे । सेठ धनवान था, सुनार गरीब । किन्तु इतना होनेपर भी सेठ उसे तंग ही करता रहता था । किन्ही कारणोको ढूढ-ढूंढकर उसे तग करता था, हानि पहुचाता था जिससे उसकी हानि हो सके, किन्तु यह सब होते हुए भी सुनार सेठके प्रति अच्छे भाव रखता था, उसका भला ही विचारता रहता था । सेठने कारण न रहनेपर भी उसे हानि पहुचानेके प्रयास किये, किन्तु सुनारने हानि पहुचानेके साधन रहते हुए भी उसे हानि न पहुचाई । एक बार सेठके यहाँ डाकू आ गये, उसकी लट्ठसे पिटाई करना चाहते ही थे कि सुनारने देखा और स्वय बीचमे आ गया, अपने आप पिट गया, घायल हो गया, किन्तु सेठको बचा लिया । उस दिनसे सेठके भी विचार बदल गये, और सुनारसे सेठने अपनी गल्ती की माफी माँगी । अतः हे प्राणी ! सबके प्रति क्षमाभाव धारण करो, चाहे वह अनुकूल है या प्रतिकूल । देखो—जैनधर्म पाया, जैनकुलमे पैदा हुए, समागम भी ऋषियोका मिलता रहता है, शास्त्र भी सुननेको मिलता रहता है । ये सब होते हुए भी यदि हम इतनी बात न कर सके कि क्षमाका भाव धारण करें, तो समझो कि प्रतिकूल बोलने वालेपर क्षमाभाव न करके उस बातको और कठिन बना लिया ।

यदि क्षमा भाव रखते तो वह उपद्रव वही समाप्त हो गया होता । किन्तु उसमे विषाद करके आगेके लिये उस बातको कठिन कर दिया । क्षमा करनेसे मेरा घटता भी क्या है ? जितना भी क्षमाभाव धारण करोगे उतनी ही इज्जत प्राप्त होगी । यदि इस प्रकार अपनेको बना पाये तो समझो कि हम भगवान्के कुलमे सम्मिलित हो गये, उनके वंशके हो गये । यह कुटुम्ब जिसे प्राणी अपना मान रहा है यह तो विनाशीक है, किन्तु भगवान्का कुल सत्य है । अतः उस भगवान्के कुलके लिए यदि अपना विनाशीक यह लौकिक कुल भी छो-

डना पडे तो सहर्ष त्याग कर देना चाहिये किन्तु भगवानका कुल नही छोडा जा सकता। सब कुछ सहन हो सकता है किन्तु धर्मपर आक्षेप सहन नही हो सकता। जैसे सब काम फिर हो जायेगा ऐसा कहकर टाले जा सकते हैं, किन्तु देवदर्शनके समय दर्शन न करे यह अपनेको सहन नही होगा। जो जीव अपना हित किसमे है—इसकी वास्तविकताको पहिचान गया वह न तो धर्म छोड सकता है, न उसपर आक्षेप ही सहन कर सकता है।

मैं परिग्रहरहित हू। समस्त इन्द्रियोको वशमे करके स्थिर होकर अपने आपमे जो दीखता है वही आत्मतत्त्व है, इस प्रकार आत्मतत्त्वकी जो भावना भाता है उससे परिग्रह धारण नही हो सकता। अत: मैं अपरिग्रही हू। यह जीव निजपरमात्मतत्त्वकी दृष्टिको ही हित मानता है परिग्रहको नही। यह आत्मा सम्यक्दर्शन, ज्ञान, चारित्रकी दृष्टियोसे भी नही दिख सकता, एक कैवल्यदृष्टिको छोडकर। अत. मैं अपनेको कैवल्यदृष्टिसे देखता हुआ अपनेमे अपने लिये अपने आप सुखी होऊँ। घर गृहस्थी चलाते हम सब कुछ सहन करते है, लडाई-भगडा, मुकदमा आदि आदि। किन्तु जब ही स्वभावदर्शन धारण किया कि सब कुछ क्षणभरमे छूट गया। पद्मपुराणमे बताया है कि उदय-शकर अपनी बहिनको लेने आया तो उसका जीजा वज्रभानु, वह उसकी बहिनसे बहुत ही मोह करता था। अत: मोहवश वह भी उसके साथ हो लिया। रास्तेमे जगल पडा, वहाँ एक मुनि तपस्या कर रहे थे। यह वज्रभानु उनकी ओर देखता ही रह गया और उसे वही वैराग्य हो गया। सालेने मजाक करने हेतु कहा कि क्या तुम भी मुनि होना चाहते हो, जो ऐसे देख रहे हो। वज्रभानु इसी पशोपेशमे पडा था कि मैं इनसे क्या कहकर इजाजत मांगू किन्तु स्वय ही कारण मिल जाने पर बोला, यदि मैं दीक्षा ले लू तो क्या तुम भी ले लोगे? उदयशकरने सोचा कि यह तो महा मोही है यह क्या दीक्षा लेगा? अत. प्रकटमे कहा कि ठीक है, मै भी ले लूंगा। वज्र-भानुने तुरन्त ही दीक्षा धारण कर ली। उदयशकर आश्चर्यसे उसे देखता ही रह गया। और फिर क्षणभरमे ही उसे भी वैराग्य हो गया। यह बात नही कि उसने वज्रभानुके शब्दोको यादकर ऐसा किया किन्तु इस मुनिकी मुखमुद्रा ही ऐसी शान्त और आनन्दयुक्त भाव वाली थी कि वैराग्य हो जावे। और वज्रभानुका आश्चर्यकारक चरित्र देखा कि वैराग्य हो गया। फिर अन्तर्मुहूर्तमे ही उस औरतको भी वैराग्य हो गया। बताओ क्षण भरमे क्या से क्या हो गया? जा रहे थे कहाँ, पहुच कहाँ गये, न इधर खबर है, न उधर। और हम ऐसे मोहमे पडे हुए हैं कि यदि कही सफरमे रेल आदिसे जाते हैं तो हर अगले स्टेशनसे पत्र डालते रहते है कि अब मै अमुक स्थान पर पहुच गया, अब अमुक स्टेशन आवेगा, वहाँ से भी पत्र लिखूंगा, मै आरामसे हूं आदि, और फिर पहुचकर पत्र डालते रहते हैं। यहाँ न चिट्ठी, न पत्री थी। बीच जंगलमे मुनिदर्शनसे मुखमुद्रा ही देखकर तीन प्राणी

वैराग्यको प्राप्त कर अपनी आत्माके, अपने कल्याणमे लग गये। यह मुखमुद्रा अन्तरगके स्वानन्दसे, सन्तोषसे ही प्राप्त हो सकती है। हम चाहे विशेष आनन्द होने पर खूब ठठ्ठा कर हस दें। किन्तु वह मुखमुद्रा बननी कठिन है। वह तो तभी होती है जब कि स्वानुभूति हो जाती है। अपनेको पहिचान लिया है कि मैं चैतन्यस्वरूप हू, बाह्यपदार्थोंसे मुझे कोई प्रयोजन नही। अपने आपके आत्मतत्त्वके अविचल प्रत्ययसे जो सहज आनन्द जगता है, उसकी सानीका आनन्द और कोई है ही नही। यह मै तो केवल शुद्ध चैतन्यमात्र हूँ। मेरे कोई उपद्रव नही, मेरे कोई द्वन्द्व नही। मै सहज निर्विकल्प हूँ, समस्त परिग्रहभारसे स्वतः मुक्त हू। अत मै भ्रमजालको छोडकर अपने ही स्वरूपमे स्थिर होकर, अपनेमे अपने आप सुखी होऊँ।

निर्वशश्चेतनावशो निर्गृहश्चेतनागृह।
चेतनान्यन्न मे किञ्चित्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-११॥

मैं निवेश हूँ, अग्रवाल, खण्डेलवाल, आदि जातिभेदसे भी रहित हू तथा क्षत्रिय, ब्राह्मण वैश्य आदि जातियोसे भी रहित हू। यदि मेरा वश ही है तो मेरा वश चेतना है। जिसकी परम्परा अनादिसे अनन्त तक चलती रहती है। अन्य कोई वश मेरा नही है। वश वही होता है जो परम्परा बनावे। मेरी परम्परा जाति कुलादिसे नही बल्कि चेतनामे बनती है। अत मेरा वश है तो वह है चेतना, और मैं निर्गृह हू, घररहित हू, महल, मकान आदि से रहित हू, मेरा असली घर चेतना है। जिसमे हम बराबर बने रहते हैं। जो कभी टल नही सकता, कभी हट नही सकता। चेतनाको छोडकर मेरा अन्य कोई नही। लोकमे अन्य घर भी तो हैं, फिर हम उन्हे क्यो नही अपना मानते, वह इसलिये कि लोकव्यवस्थामे हमे यह अधिकार है कि यहासे कोई हटा नही सकता, किंतु पापादिकमे उदयसे या कर्ज आदिके कारण कुडकी हो जानेसे यह मकान छूट सकता है, किन्तु मेरे स्वरूपसे, चेतनासे कोई नही हटा सकता। प्रत्येक पदार्थ अपना अपना स्वरूप रखते हैं, चतुष्टय उनका भी है। द्रव्य, समुदायका नाम है। क्षेत्र, प्रदेशका नाम है और काल पर्यायका नाम है। भाव शक्तिका नाम है। इनको छोडकर उसका दुनियामे है क्या ? इसके अतिरिक्त दुनियामे कुछ नही। इसी प्रकार मेरे प्रदेश गुण, पर्यायको छोडकर और दुनियामे है क्या ? यही चेतना मेरा घर, वश है, जहाँ मै बेअटक बना रह सकता हू। वहाँसे मुझे कोई नही हटा सकता। अपना ही स्वभाव मेरा सब कुछ है। इससे अन्य कुछ नही। जिसकी जैसी प्रवृत्ति है उसका उसी रूप परिणमन होगा। उसे देख दुखी न होवे, क्योकि वहाँ पर मेरा है क्या ? जैसे किसी आलसी व्यक्तिको देखकर बुरा लगता है किन्तु ऐसा नही होना चाहिये। वह जैसा है होने दो, किन्तु रागादिक परिणामोके

कारण ऐसा सब दु:ख करता है। ज्ञानसे जानो कि इसका परिणमन ही ऐसा है, किन्तु उसे देखकर विकल्प करना अपराध है, अविवेक है। अतः इसे मिटानेसे ही शान्ति मिल सकती है। यदि विपरीत मानना है तो मानते रहो, उससे लाभ कुछ है ही नही। जैसे छोटे बच्चे गुड्डे गुडियाका खेल खेलते है, उसमे छोटे ककरोको मिठाईका रूप देकर सब क्रिया करते है। जो बराती बनकर आते है वे भी कुछ झूठमूठमे उन मानी हुई मिठाइयोको खानेका उपक्रम करते हैं, खाते नही, किन्तु यह सब है क्या ? केवल कल्पनाकी ही तो सब वस्तु है। क्या ऐसा करनेसे वास्तविकता आ गयी ? उसी प्रकार हम भी कल्पनामे लगे हुए है कि यह मेरा है आदि, किन्तु इन सबमें कोई वास्तविकता नही है। धन्य है वे ज्ञानी जो सोचते है कि मेरा हिती तो मेरा ही स्वरूप है, अन्य नही। मेरे इस चैतन्यस्वरूपसे अन्य कुछ नही। बाह्य-पदार्थोंसे जितना त्याग बढता जाता है उतनी ही महत्ता है। त्यागका ही तो महत्त्व है। यदि अन्तरगसे त्यागके भाव आ जावें तो अनन्त चतुष्टयके दर्शन हो जावें। और यदि ऐसा ज्ञान आ गया तो समझो कि उसका बेडा ही पार है, अतः चैतन्यस्वरूप ही मेरा स्वरूप है। एक जीवद्रव्यको दूसरा कोई भी जीवद्रव्य उपाधि नही बना सकता। साद्दश्यमे साद्दश्यकी उपाधि नही बनती, ये जीव मेरे सद्दश है, अतः मेरी उपाधि नही बन सकता। विपरीत जो शरीरादि पौद्गलिक वस्तु है वह उपाधि बन जायेगी। एक स्वच्छ कांचके सामने एक कांच रख दो तो वे आपसमे मलिनता जाहिर नही कर सकते। इसीलिए समानगुण परमाणुका समानगुण पर-माणुके साथ बध नही होता, विषममात्रामे हो जाता है। अतः मेरी उपाधि अजीव व पुद्गल से ही बन सकती है। वह स्वभाव मेरा नही, मेरा स्वभाव तो चेतनास्वरूप है। आत्माको यदि समझना है तो इसका साक्षात् उपाय प्रयोग है। जैसे तैरना सीखना है तो उसका साक्षात् उपाय प्रयोग ही है।

पुस्तककी बात सीखनेमे तो मदद करती है किन्तु साक्षात् उपाय प्रयोग ही है। रोटी बनाना, मुहसे सब विधि बता दो। थालीमे इतना आटा लेना, फिर आटा पतला भी न हो, गाढा भी न हो, पहिला पर्त कम सेकें, दूसरा पर्त अधिक सेकें, रोटी ऐसे बनाना आदि सब विधि बता दो। फिर उसे बिठा दो रोटी बनानेके लिए। क्या वह बना देगी ? नही। साक्षात् उपाय तो प्रयोग ही है। कितना ही सगीत पुस्तकसे सिखा दो किन्तु क्या वह बिना प्रयोगके सीख सकता है हारमोनियम आदि ? नही। साक्षात् उपाय सीखनेका प्रयोग ही है। अतः यदि आत्माके स्वरूपको समझना है तो साक्षात् उपाय प्रयोग ही है। ज्ञान मदद करे तभी, नही, बल्कि चारित्र भी हो ताकि हम एकचित्त होकर अपनी आत्माके कल्याणमे लग सकें। बाह्यपदार्थोंके भूलनेसे ही आत्माके दर्शन होगे। जैसे कोई सभा हुई, उसमे कोई प्रस्ताव

रखा गया, उसपर अमल करो। किन्तु ऐसा कहनेसे ही क्या अमल हो गया ? नही। जब तक प्रयोग नही होगा तब तक कुछ नही। प्रयोगसे ही विजय है, ज्ञान है, यह तो ठीक, किन्तु बिना प्रयोगके काम बनेगा नही। हमारा समागम ऐसा होना चाहिए कि सुबुद्धि बनाकर आरामसे रह सकें नही तो यह सब कमानेसे ही क्या फायदा ? सुबुद्धि बनाकर ऐसा समय निकालो ताकि दो क्षण अपनी आत्माके कल्याणमे भी लग सकें। किसी भी दु खीको देखकर हम दयाकी बातें तो खूब करते है किन्तु उसे वहाँसे उठानेका उपक्रम नही कर सकते। देख रहे हैं कि बेचारा असमर्थ है, गन्दे नालेमे गिर गया। न निकल पानेके कारण तडफडा रहा है। हम चिल्ला चिल्लाकर इतना तो अवश्य करेंगे कि "भैया इसको निकालना बेचारा बहुत दुःखी है, किन्तु स्वय निकालनेके नाम पर कदम नही बढाते, नहाना पडेगा उसको सकटसे उबारकर।" प्रयोगका लोकमे भी, परमार्थमे भी बहुत महत्त्व है। मै वशरहित हूँ। यदि मेरा वश है ही तो वह है चेतना। वशको जो पवित्र करे उसे पुत्र कहते हैं। मेरा वश है चेतना और उसे पवित्र करने वाला मै स्वय हूँ।

जहाँसे कोई निकाल न सके उसे घर कहते हैं। ये ईंटोके घर क्या घर हैं ? इनमे रहनेका कुछ ठेका है क्या ? एक साधु जा रहा था। उसे आगे एक हवेली मिली। बाहर उसका चौकीदार बैठा हुआ था। साधुने पूछा यह धर्मशाला किसकी है ? चौकीदार बोला—महाराज यह धर्मशाला नही है। साधु बोला—हम यह नही पूछते हम यह पूछते हैं कि यह धर्मशाला किसकी है ? यह सब वातावरण देख नौकर मालिकके पास भागा। मालिक बोला कि महाराज यदि आपको धर्मशालामे जाना है तो हम नौकरको साथ भेज देते हैं, वह बता देगा, यह धर्मशाला नही है। साधु बोला—हम यह नही पूछ रहे हैं, हम पूछ रहे हैं कि यह धर्मशाला किसकी है ? मालिक ने दिमागसे सोचा, इसमे कुछ न कुछ राज अवश्य है, बिना मतलबके यह नही कह रहा है। सेठने गद्दीके पास बुलाया और कहा महाराज यह धर्मशाला नही है, मेरी हवेली है। साधुने पूछा इसे किसने बनवाया था ? सेठ बोला महाराज मेरे दादाने इसको बनवाना शुरू किया था, फिर वे तो पूरी न बनवा सके मेरे पिता जी ने इसे पूरा कराया। साधु बोला—पिता जी फिर कितने दिन इसमे रहे ? सेठ बोला कि ३ वर्ष रह सके फिर गुजर गये। साधु बोला कि तुम कितने दिन इसमे रहोगे ? सेठ सहम गया। साधु बोला कि जिसे तू हवेली समझ रहा है इसके छोडनेके समय तुझे एक मिनट भी ठहरनेकी इजाजत न मिलेगी। हाँ उस धर्मशालामे भले ही इजाजत मिल जावे मत्री से कहकर। फिर यह धर्मशाला ही तो है। इस प्राणीको ऐसा मोह लगा है, ऐसे मोहजालमे फसा हुआ है कि यह मेरा है, यह उसका है आदि ही रट लगाये हुए यह दु ख भोग रहा

है । सोचो तो जब पूर्वभवका हमे कुछ ज्ञान नही कि हम कहाँ थे ? कौन हमारे माता पिता थे ? तब इस जन्मकी ही अगले भवमे क्या याद रहेगी ? अत: मैं अपने चेतनके घरको पहिचानकर अपनी आत्माके कल्याणके मार्ग पर लगूं । सदा यही भावना भानी चाहिए । विषय कषाय आदिका जल जिसमे नही चूता, उस निजचेतनागृह को छोड अन्यत्र संसारकी इस बरसातमे कहाँ घूमूं ? अतः इससे बचनेके लिए चेतनारूपी घरमे रहकर सुखी होऊं ।

निर्मित्रश्चेतनामित्रो निर्गुरुश्चेतनागुरुः ।
चेतनान्यन्न मे किञ्चित्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-१२॥

मेरा इस जगत्मे कोई नही । लोकमे जो मित्रकी तरह दीखते है वे केवल विषय भोगोमे ही साथी है । वास्तवमे कोई मित्र नहीं । घर कुटुम्बमे भी जिन्हे हम अपना समझते है, उनसे अच्छे भगवान् हैं या वे पुत्र स्त्री आदि, जिसने अपने सहजस्वरूपको पहिचान लिया वे भगवानके अतिरिक्त अपने सहजस्वभावके अतिरिक्त किसीको अपना नही समझते और मोही जीव बाह्यपदार्थोंको ही अपना समझता है । किन्तु वास्तविकता यही है कि अपना यदि कुछ है तो वह है चेतना, अन्य कुछ नही । उनसे, घरके पुत्रादिकोसे तो पडौसी अच्छे हैं जो ज्ञानकी बात बताते है, सिखाते है और ज्ञानमे लगनेके लिये प्रेरित करते हैं ।

ये मोही जन तो अन्धेरेमे ही रखे रहेगे । उनसे अच्छे तो वे है जो हितका उपदेश देते हैं । ये ज्ञानी, उपदेशक संसारका अन्त करनेमे कारण होगे और ये रागके कारणभूत अन्धेरेमे रखनेके सिवाय कर ही क्या सकते हैं ? अंत. यही सोचो कि मेरा कोई मित्र नही, यदि हैं तो चेतना । चेतना स्वभाव ही मेरा मित्र है । इसी प्रकार मेरा कोई गुरु भी नही है । गुरु तो सूर्यकी तरह होते है । सूर्यका काम है, प्रकाश कर देना याने मार्ग बता देना, मार्ग दिखला देना । किन्तु जब हम चलेगे तभी तो वहाँ पहुच सकते है । चलना तो मुझे ही पडेगा । इसी प्रकार गुरुमार्ग बताने वाले ही है, सही ज्ञान देने वाले हैं किन्तु यदि मैं उस पर आचरण करूगा तभी तो मेरा हित होगा । अत: वे मार्ग बतानेमे कारण तो हैं, उसमे सूझ बनाओ तो कल्याण है । उस पर चलना तो तुम्हे ही है । अतः मेरा गुरु मैं स्वयं हू । तुम्हारे गुरु तुम हो । मेरा स्वभाव ही मेरा गुरु है । चेतनाको छोडकर अन्य मेरा कुछ नही । जिस मोहमे फसे हुये हम सोचते हैं कि अमुक बहुत अच्छा है, वह सब विपदाका कारण है । विपदाका का कारण होता है अज्ञान । जो हितकी अभिलाषा करे, हितकी बात बतावे, हितके मार्गमे चला देवे उसे गुरु कहते हैं । वास्तवमे कोई न मेरा हित चाह सकता, न अभीष्टका मार्ग बता सकता, न अभिलाषा करा सकता । जो कुछ करूंगा मैं ही करूंगा । कोई यदि करणा करेगा तो उसका उसमे ही परिणमन होगा, मेरा कुछ नही, सब कुछ करना

तो हमे ही पडेगा । अतः वस्तुत· मेरा कोई गुरु नही है । मैं ही अपना गुरु हुआ । तुम्हारे गुरु तुम स्वय हो । मेरा सब कुछ मैं ही हू । उस आत्मतत्त्वकी श्रद्धा करो, दृष्टि लगाओ तो ये सब विपदायें नष्ट हो जावेंगी । जन्म जरा मरणके चक्कर मिट जावेंगे अन्यथा दुनियामें देखे जाने वाले ये दुःख सहन करने होगे । सोचो तो एकेन्द्रिय जीवमे पृथ्वी भी हम ही बने, दूसरोंके द्वारा तोडे गये, फोडे गये, खोदे गये, गीला किया गया, क्या कष्ट नही पाये । हम ही जल भी बने । उसके दु·ख देखो—गर्म किया गया, ठण्डा किया गया, कीचडमे मिलाया गया, बहाये गये, दु ख हमने ही तो सहन किये । अग्नि बनकर उसके दु.ख देखो—वह जलाया गया, पीटा गया आदि यह सब दु ख भी हमने ही सहन किये । हवा बनकर भी उसके दुःख टायरमे बन्द किया गया, पखेसे हिलाया गया आदि भी दुःख हमने ही सहन किये तथा कीडे मकौडोमे रहकर भी हमने ही दुःख सहन किये ।

आजकल लोग जूतोमे नाल लगवाते हैं, उनमे कितने कीडे-मकौडे नही मरते, कुचल दिये जाते है । वनस्पतिके दुःख कुल्हाडीसे काटने आदिक भी हमने ही सहन किये । तिर्यंचके दु खोको भी, नरकके, देवोके दुःखोको भी हमने ही अपने अज्ञानके द्वारा सहन किया । कोई तो चूहेको बन्द कर देते हैं फिर बिल्लीको सामने खडी कर खोलते हैं वह उसको खा जाती है । हिंसक लोग रस्सीसे उसकी पू छ बाँध लेते हैं और अग्निपर लटका देते हैं । वही तडप-तडपकर उसके प्राण निकल जाते हैं । भैया, ये दुःख भी तो हमने ही उन पर्यायोको धारण कर सहन किए । मुर्गे, मच्छियोका तो कहना ही क्या है ? कितने-कितने दुःख सहन करने पडते हैं ।

वे भी दु ख अज्ञानके कारण हमने ही सहे और यदि हम अब भी अपने विवेकमे न लगें तो फिर ये दु ख सहन करने पडेंगे और हितकी बात जानेंगे, करेंगे तो भी हमे ही आनद होगा । कोई उसमे क्या कर देगा ? हितमे लगना भी हमारे लगनेसे ही होगा । तब मैं ही तो स्वयका गुरु हुआ । यदि अन्य गुरु हैं भी तो सूर्यकी तरह । अत गुरुजनोने जो हितका उपदेश किया अब मैं उसपर श्रद्धा कर चल सकू तो चल लू अन्य उसमे कोई क्या कर देगा ? जो कुछ करूँगा मैं स्वय ही करूँगा । इष्टवियोग या अनिष्टसयोग होनेके कारण जब यह प्राणी बहुत दु.खी हो जाता है तो पडौसी आकर बहुत समझाते हैं, किन्तु वह चुप नही होगा । क्योंकि दूसरा उसमे परिणमन तो नही कर देता । अतः चेतनसे अतिरिक्त मेरा कुछ नही । जिस शरीरकी रग-रगमे हम समाये हुए हैं, जब वही मुझसे भिन्न है, वही मेरे स्वरूपसे अलग है, तब बाह्य पदार्थोंमे कैसे कहा जावे कि ये मेरे है ? चेतनको छोड़कर अन्य मेरा कुछ नही । जो ज्ञानीजन ऐसा मानते है वे अपने आपमे प्रकाश पाते हैं, दुष्ट होते हैं । हम तो समस्त

पदार्थोंके साथी हैं, उन पदार्थोंसे भिन्न है सो उन्हे अंगीकार न करें। गवाह उसे कहते है जो जैसी बात हो उसको उसी रूपमे कह देवे, गवाह घटनाका होता है, हमारा तुम्हारा नही। यह पदार्थ ऐसा है, इसका परिणमन भी ऐसा ही है, बस यह जानता रहे। ज्ञाता तो रहे किन्तु यह विचारे कि मेरे चैतन्य भावको छोडकर मेरा जगतमे अन्य कोई नही। अतः बाह्य-पदार्थोंकी उपेक्षा कर अपनेमे अपने लिए अपने द्वारा अपने आप सुखी होऊँ। सत्य जो है उसे मान लो, उसीकी उपासना करो। प्रत्येक पदार्थका अपना-अपना जैसा सहज स्वभाव है वही सत्य है। जिस मकानमे रहते हैं, क्या यह सत्य है कि वह अपना है ? नही, यह असत्य है। सत्य होता तो सदा रहता। ये सब असत्य है, शरीर तक तो असत्य है। कर्मोदयसे मोहमे ऐसा भाव बन जाता वास्तवमे ऐसा है नही। मेरा तो चेतनाको छोडकर अन्य कुछ नही। क्रोधादिक भाव सब नाशवान हैं, अन्तरंगके दर्शन हो जानेसे वे सब नष्ट हो जावेंगे क्षणभरमे।

एक पुरुष बहुत व्यसनी था। उसकी स्त्री बहुत भली थी। उसने दुर्व्यसनोका त्याग करनेके लिए बहुत समझाया, किन्तु वह न माना। एक दिन उसकी स्त्रीने उसे एक बटरिया दी और कहा कि ये हम सबके देवता है। तुम एक बात मानो इसकी पूजा कर लिया करो और चौबीस घटोके लिए ऐब छोड दिया करो। उसके पतिने स्वीकार कर लिया। प्रतिदिन चावल चढावे, घटी बजावे, नमस्कार करे और २४ घटोको पाप छोड देवे। इस प्रकार जब कुछ दिन बीत गये तो एक दिन उसने देखा कि बटरियाके ऊपर चढकर चूहा चावल खा रहा है। उसने सोचा कि इस बटरियाकी पूजा करना बेकार है, क्योकि इससे बडा तो यह चूहा ही है। अब वह प्रतिदिन चूहेपर चावल चढावे, घंटी बजावे, नमस्कार करे और २४ घण्टोंका पाप छोड देवें। कुछ दिन बाद उसके ऊपर बिल्ली झपटी। उसने सोचा कि इससे बडी तो बिल्ली है। अत वह अब बिल्लीकी पूजा करने लगा। प्रतिदिन चावल चढावे, नमस्कार करे, घटी बजावे और २४ घटोके लिए पाप त्याग देवे। कुछ दिन बाद उसपर कुत्ता झपटा। अब वह कुत्तेपर देवताके भाव रख उसे पूजने लगा और सब कार्य उसी प्रकार किये। एक बार वह कुत्ता रसोईमे घुस गया, औरतने उसको डडेसे मार दिया। उसने सोचा कि इससे बडी तो मेरी औरत ही है, मैं व्यर्थ ही भटक रहा हू। अतः अब वह औरतकी ही पूजा करने लगा। प्रतिदिन चावल चढावे, घटी बजावे, नमस्कार करे और २४ घटेके लिए पाप छोड देवे। जब कुछ दिन इस प्रकार बीत गये तो एक दिन वह खाना खा रहा था। नमक अधिक हो गया था खानेमे। अतः वह अपनी पत्नीसे बोला कि आज नमक कैसे अधिक हो गया ? औरत भी पूजाके कारण अब बढ गयी थी, अत. उत्तर भी जोर शोरसे ही दिया

कि हाथ ही तो है अन्दाजमे अधिक डल गया होगा। उससे यह सहन न हुआ और अपनी औरतको पीट दिया। फिर उसने सोचा कि यह तो मैं ही बडा हू, बेकारमें आज तक इन सबकी पूजा करता रहा। तात्पर्य यह कि उसको छोड, इसको ग्रहण कर। इस प्रकार करते करते स्वयपर आ गया। अत सब लघु है तुम्हारे लिए। तुम्ही महान् हो, अन्य कोई नही। अतः अब पर-दृष्टि छोडकर मैं अपनी आत्मामे रमकर अपनेमे अपने लिए अपने द्वारा अपने आप सुखी होऊँ।

निर्वित्तश्चेतनावित्तो निष्कलश्चेतनाकलः।
चेतनान्यन्न मे किञ्चित्स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वय ॥१-१३॥

मैं धनरहित हू, वित्तरहित हू। धनका दम लोकमे अधिक माना जाता है। प्राण, दम, शक्ति जैसे अर्थमे वित्तका प्रयोग होता है। कुछ पढ लिखे तो धनको ग्यारहवां प्राण कहते है। वैसे दस प्राण ही होते हैं, किन्तु धनको भी प्राण मान लिया है। बताइये कितना मोह है इस धनके प्रति प्राणीको? दुनियादारीमे, व्यवहारमे आज धनका बहुत बडा महत्त्व है, किन्तु दूसरी दृष्टिसे यदि सोचोगे तो पाओगे कि यही पापका पक्का कारण भी बनता है। अत. वास्तवमे तो चेतना ही धन है।

चेतना है धन जिसका ऐसा मै हूँ। मैं शरीररहित हू, न मै वित्तरूप हूँ, न शरीर-रूप। वित्त तो प्रकट हो अचेतन वस्तु है। शरीरसे चेतनाका सम्बन्ध भले ही हो, किन्तु वह भी अचेतन ही है। मेरा धन, शक्ति, बल सब कुछ चेतना ही है, इससे अन्य कुछ नही है। अत। मै शरीररहित हू, कलकल रहित हूँ, झगडारहित हू, उपद्रवरहित हू। कल कहते है शरीरको। जैसे कहते हैं कि क्या कलकल लगा रखी है अर्थात् क्या शरीर शरीर लगा रखा है। यह सब जो नृत्य हो रहा है, सब कलकलका ही तो है। अतः मै कलकलरहित हू। यदि मेरा कल है ही तो वह चेतना है। मेरा स्वरूप सिद्धोके समान है। वे शरीररहित हैं, अत. मैं भी शरीररहित हूँ। निज तत्त्वपर दृष्टि की जावे तो ऐसा बोध होगा, और यदि कायपर दृष्टि दी जावे (क्योकि अस्तिकाय आदिमे भी काय शब्द आया है, तो मेरा शरीर ज्ञान है) मेरा सर्वस्व ही ज्ञान है। चेतना मेरा लक्षण है, और यदि अन्य प्रकारसे अपने ऊपर दृष्टि दो कि मै कितना लम्बा चौडा हू, तो ऐसी दृष्टि करनेसे आत्मानुभव नही हो सकता। क्या क्रोधी, मानीका परिणमन देखकर आत्माका लक्षण समझा जा सकता है? नही। भैया, आत्माका लक्षण तो चैतन्यस्वरूप है—चेतना। अतः आत्माका शरीर है तो ज्ञान है। ज्ञानसे ही आत्माकी समझ पडती है और ज्ञानरूपमे ही आत्माको समझा जावे। तो समझमे आ जावे। अत। जो सिद्ध है वही मै हू।

वास्तविकता तो यही है कि मनुष्य कषाय बिना आत्मानुभवका पात्र हो सकता है। सम्यग्दृष्टि हो क्यो न हो वह भी तीव्र कषायके रहनेसे आत्मानुभवका पात्र नही हो सकता। यदि विपदा कुछ है तो इस कषायकी ही विपदा है। मेरा तो चेतनाके अतिरिक्त कुछ भी नही है। आज संसारमे इस शरीर व धन दोनोंका ही बहुत बडा महत्त्व है। बहुतसे ऐसे प्राणी होते हैं चाहे कितना ही धन हो पासमे, दान करनेके भाव भी हो, किन्तु अपने हाथसे खर्च नही कर सकते। स्वयं मुहसे भी स्पष्ट कह देते हैं कि मुझसे खर्च नही हो सकता। प्रकृति ही कुछ ऐसी है। भले ही लडकेसे दिला देगा, किन्तु अपने हाथसे नही दे सकता। कुछ ऐसी वासना हो जाती है कि नही दिया जा सकता। यह हुई धनकी तृष्णा, लालसा और शरीरकी तृष्णा है—मैं बहुत अच्छा हूं, मेरा आकार ऐसा है आदि संस्कार बनाये रखना। जैसे धनके लोभमे अपने हाथसे लाभ नही होता, उसी प्रकार शरीर रहते हुए भी शरीरका कार्य नही किया सकता। ये दोनो ही मोह प्रबल है। अतः मेरा स्वरूप न तो धन है और न शरीर है।

मेरा सब कुछ चेतना ही है। जिसे आत्मदृष्टि है उसका भाव होता है कि सब धनादि मैं परोपकारमे ही लगा दूंगा। यह मन भी विनाशीक है, अतः यही सोचे कि सब जीव सुखी होवें। अन्यथा दूसरोके प्रति बुरे भाव रखनेसे अगले भवमें मनरहित जन्म होगा। वचन भी दूसरोको कठोर बोलोगे या ऐसे बोलोगे जिससे दूसरोको दुःख हो तो आगे वचन रहित जन्म लेना होगा। यदि इस तनका दुरुपयोग किया, परोपकारमें न लगाया तो निश्चय ही पृथ्वी वृक्षादि अगले भवमे बनना पडेगा। किन्तु ज्ञानी जन यही सोचते है कि मेरा तन, मन, धन लगकर जनता प्रसन्न हो तो मैं ये सब उनकी सेवामे लगा दू। ये तो नष्ट होने वाले हैं अतः जितना भी तन, मन, धनसे दूसरोका भला हो सके करना चाहिये। और यदि कहो कि मोह वालोमे लगा रहे हैं तो उससे क्या लाभ ? अरे, सबको समान देखो और सबके प्रति अच्छी भावनाए सोचो, परोपकार करनेके लिए दूसरोका दुःख तन, मन, धन, वचनसे दूर करनेके लिए तत्पर रहो। ऐसा न हो कि कही इनको दुरुपयोग करनेसे अगले भवमे इनसे रहित अवस्थाको प्राप्त हो, और रही अपनोमे उपकार करनेकी बात, वह तो तुम उनके मोहवश स्वयं बिना किसीके समझाए भी करोगे ही। ज्ञान तो जब है जब कि सबको एक दृष्टिसे देखते हुये तन, मन, धन, वचनसे जहाँ तक हो सके दूसरोकी सेवा करो। एक पडितको परोपकारके लिए कुछ रुपया जीवदयाके लिए एक बडे फण्डके रूपमे दिया गया कि परोपकारमे लगा दो। बादमे जब हिसाब पूछा गया तो बोले कि मैंने परोपकारमे खर्च कर दिया है, अपने घर वालोपर जो रुपया इसमे से खर्च किया, वह भी तो परोपकार

ही है।

सोचो भैया ! क्या पर वह उपकारमे शामिल है ? नही। आप देखेंगे तो पायेंगे कि घूमनेके समय पर भी ऐसे सज्जनोसे वास्ता पडता रहता है कि भले ही उनके लिए आप या अन्य कोई परिचित नही, फिर भी नम्र वाणीसे बातचीत करेंगे। जहाँ अवसर होगा परोपकार किये बिना चूकेंगे नही। उत्तम सद्बुद्धि रखनेसे अध्यात्म मार्गपर चलनेका पात्र बनो। अत मेरा तो इस ससारमे चेतना को छोडकर अन्य कुछ नही। तब मैं अन्यपनेकी दृष्टि न लगाकर अर्थात् अन्यमे उपयोग न लगाकर अपनेमे अपने लिए अपने द्वारा अपने आप सुखी होऊ। इसको छोडकर दुनियामे सुखका अन्य कोई उपाय नही। दुनियामे जो लेनदेनकी प्रथा है, उसमे देने वालेको साहु कहते हैं। तो वह कोई भी जब रुपया नही लेने आता है तो उनकी इस प्रकारकी कहावत हो गयी है कि साहु जी ठीक-ठीक बता दें आप देंगे या नही। "क्योंकि हाका मरे और नाका जीवे।" अर्थात् आपने हमारे मांगने पर हाँ कर दिया और समय पर न दिया तो हम बेमौत मारे जावेंगे। और यदि स्पष्टमे देनेसे इन्कार कर दिया तो कमसे कम अपना अन्य उपाय तो कर लेवेंगे, भरोसे तो न रहेंगे। इसी प्रकार दुनियाके पदार्थोंमें करोगे कि हां यह भी अच्छा, इसमें भी अच्छा यदि तब तो समझो कि मरे। और यदि इस प्रकार सोचोगे, नही, पुत्रमे भी सुख नही, पत्नीमे भी आनन्द नही, दुनियाके किसी पदार्थमे भी आनन्द नही। आनद है तो केवल अपने चेतनास्वभावमे जो समझे वह अमर हो गया। आत्मबल ही एक ऐसा बल है जो कषी हुई अर्थात् कषायकी स्थितिमे भी अनाकुलताका ज्ञान करा देता है। अन्तर्ज्ञानसे उठी हुई अन्त परिणति पूर्ण होती है। जिनके अन्तर्मनमे श्रद्धा है वे बाहर भी वैसे ही दिखायी देते हैं, किन्तु मिथ्यात्वके कारण ही आज धर्मपर आक्षेप आता है।

धर्म तो सदा सुखका ही हेतु है। धर्मकी ओटमे जो अधर्म चलता है उससे लोक धर्म पर आक्षेप करते हैं। धर्म तो धर्म ही है। जैसे कि एक किसानके तीन बैल थे। दो को तो वह जानता था, एक बैल बँधा रहता था। जहाँ वह बधता था उसके ऊपर एक अलमारी थी, जिसमे वह किसान अपना खाना रखता था। एक बन्दर प्रतिदिन आता, अलमारी खोलता, खाना खाता और जूठन आदि बैलके मुहपर मल जाता था। किसानकी दृष्टि बैलपर ही रहे कि इसीने खाना खाया। यही मेरा सब खाना खा जाता है सो वह खूब उसको पीटे। १०-१५ दिन जब इसी प्रकार बीत गये तो पडौसिनने उस किसानको समझाया कि भाई इसे क्यो पीटता है ? यह किस प्रकार आलमारी खोल सकता है, अलमारी तो इससे ऊपर है, किन्तु वह किसान बोला कि मै यह सब नही जानता। मुंह तो इसीका पुता हुआ है फिर

सन्देह कैसा ? उनके काफी समझानेपर छुपकर देखनेके लिए वह तैयार हो गया। प्रतिदिनकी तरह वह बन्दर आया, उसने अलमारी खोली, खाना खाया और झूठन बैलके मुंहपर पोत दी। उसी प्रकार वृषभ तो हुआ धर्म और बन्दर हुआ पाप। सो भैया! खोटी करतूत तो पाप करता है, अपयश धर्मका होता है। कितनी ही बडीसे बडी विपत्ति क्यो न हो, ज्ञानी तो यह विचारता है कि मै तो चैतन्यस्वरूप हू, फिर कहाँ है विपत्ति, कहाँ है दुःख ? इस विचारके बाद विपत्तियां दूर हो जाती हैं। ज्ञानी सम्पदा, विपदा, सुख दुःखको एक ही दृष्टि से देखता है। मैं भी ज्ञानस्वरूप हूं सो अपने चैतन्यस्वभावको पहिचानकर अपनेमे अपने लिए अपने आप अपने द्वारा सुखी होऊँ।

यह बात केवल शुद्ध निज चैतन्यस्वरूपकी दृष्टि द्वारा प्राप्त हो सकती है। एतदर्थ हम लोग अन्य सब बातोकी असारताका निर्णय कर अब अपनी ओर आयें। भैया! यदि तुम इसका निर्णय करना चाहते हो तो यह तो निश्चय है कि ये धन, मित्र, पुत्र, पत्नी आदि मेरी शान्तिके कारण नही है। इतना ज्ञान दृढतापूर्वक करके इन सबकी उपेक्षा करो और यही सोचो कि ये बाह्यपदार्थ मेरे ज्ञानमे न आवें, मेरा ज्ञान निर्मल रहे। अतः उसको निर्मल रखनेके लिये अपने अन्दर इन बाह्यपदार्थोंकी कल्पना न करो। उधर अपना उपयोग लगने ही मत दो। बाह्यपदार्थोंमे लगकर सुखका कोई रास्ता नही मिलेगा, विपदा ही विपदायें मिलेंगी। बाह्यपदार्थोंसे जब तक राग दृष्टि रहेगी तब तक शान्ति प्राप्त नही हो सकती और जहाँ इनकी उपेक्षा की, इनके प्रति मोह न रखा, इनमे उपयोग न लगने दिया तो अशान्ति कही रह ही नही सकती। अत. भैया! यदि सुखी होना चाहते हो, वास्तविक आनन्द प्राप्त करना चाहते हो तो इन बाह्यपदार्थोंकी बुद्धि न रखो। ससारी जीवोमे ये छंटनी मत करो कि ये मेरा है, यह पराया है सबपर समान भाव रखो। सबके प्रति यही भावना भावो कि सब जीव सुखी होवें, सबके प्रति क्षमा भाव रखो। तन, मन, धन, वचनसे जितना परोपकार हो सके, इनका उपयोग करो। अपने आश्रित व्यक्तियोमे ही नही, जो अपरिचित हैं उनके प्रति भी मधुर वाणी बोलो, नम्रतासे पेश आवो, उनके भलेके ही सोचो, अपने परिश्रम करनेसे किसीको फायदा पहुच जावे तो सामर्थ्यके अनुसार उसका उपकार करो। आत्मा तो अमर है। शरीरसे भैया तुमने कुछ परिश्रम भी कर यदि दूसरेकी सेवा शुश्रूषा कर भी दी तो तुम्हारा क्या घट जावेगा ? तुम तो शाश्वत हो, धन देकर किसीकी सहायता हो तो चूको मत। आगे भी इससे अधिक जिस प्रकार पूर्वभवके पुण्यकर्मसे इस जन्ममे प्राप्त किया, प्राप्त किया जा सकता है। फिर भी इसकी चाह नही करो, ऐसा हो जाता है सो होने दो। हाँ धनका दुरुपयोग करना बुरा है या तो सदुपयोग करो या सब त्यागकर अपनी उपासनामे लग जाओ।

दुरुपयोग करनेसे इस लोकमे भी विपदा है और आगे भी दुर्गति ही है। यदि सत्य उपाय बन गया, तो उसे परम शान्ति प्राप्त होगी। परम विश्राम होगा एवं अपने सहजस्वभावके दर्शन भी कभी हो जावेंगे। इसका आनन्द सब सुखोकी अपेक्षा विलक्षण होगा। तब वह उस स्थितिको छोडना नही चाहेगा, और यही सोचेगा कि मैं इसे किस प्रकार बनाये रखू ? यह तो वही स्थिति है जिसे मै आज तक खोजता रहा, जिसके दर्शन न कर नाना गतियोमे घूमता रहा, किन्तु अब मै अपने उद्देश्यको पा गया हू, इसीमे मेरा कल्याण हैं। ऐसा करने पर पाप स्वय ही छूट जावेंगे, और पापोके छूटनेका नाम ही तो धर्म है। अतः भैया! अपने आपको पहिचानो फिर कोई सता नही सकता। समझ लो फिर बेडा पार हो गया। अपने आचरणोको ठीक रखनेसे ही मुक्तिके मार्गपर जीव लग सकता है। अत व्यसनोका त्यागकर अपनी आत्माके स्वयसिद्ध ज्ञानस्वरूपका ध्यान कर अपने कल्याणमे लगो। यही तो अपना धर्म है।

निष्कीर्तिश्चेतनाकीर्ति—र्निष्कृतिश्चेतनाकृतिः।
चेतनान्यन्न मे किञ्चित्स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वय ॥१–१४॥

यह जीव कीर्ति चाहता है। प्रत्येक ससारी जीव चाहे वह किसी भी दशामे क्यो न हो किन्तु वह यशकी कामना मनमे रखता है कि सब मुझे अच्छा कहे। भैया! यदि शरीरकी कीर्ति चाहते हो तो यह तो कठोर सत्य है कि यह साथ नही देगा, यह नष्ट होने वाली चीज है, तब इसकी क्या कीर्ति ? जो वस्तु स्वय ही नष्ट होने वाली है उसकी कीर्ति कैसी ? और जब आत्माको पहिचाना ही नहीं तब आत्माकी कैसी कीर्ति ? अतः मैं चैतन्यस्वरूप हू। मैं कीर्तिरहित हू। मेरा स्वरूप कीर्तिरहित है। मेरी कीर्ति यदि है तो वह चेतना ही है। आत्माके स्वभावका कार्य हाथ पैर चलाना आदि नही। इसका काम तो जानना, देखना, श्रद्धान करना है। क्योकि यह तो मात्र चैतन्यस्वरूप है। यह सब जो क्रिया हो रही है वह सब पुद्गलकी हो रही है। यह पैसा, धन, वैभव, ऐश्वर्य, पोजीशन, पिता, पुत्र, स्त्री, बन्धु, बान्धवादि का जो मोह लगा हुआ है हम इसीमे पिले जा रहे है, आत्मचिन्तन नही करते। हम जिनको पराया समझते है, जिनसे हमारा परिचय नही, जो अपरिचित हैं, उनसे हमे क्लेश नही पहुचता किन्तु उन मोहियोसे, जिनसे हम मोह बढा रहे है, जिनको हम अपना हितैषी मान रहे है उनके कारण ही क्लेश होता है। यदि गैर आदमी हमारी आज्ञा नही मानता, यदि हमे उल्टा-सीधा कह देता है तो हमे क्लेश नही पहुचता किन्तु जिनसे हम मोह बढाये हुए हैं, वे यदि आज्ञा न मानें या विपरीत बात कह दवें तो क्लेश पहुंचता है। फिर भी मोहसे उन्हे छातीसे लगाये फिरता है। क्या किया जा सकता है ? जब मैं इतना भी

नहीं समझता कि जिससे तू मोह कर रहा है वही तुझे अनिष्ट पहुंचाने वाला है। सबके प्रति समताभाव धारण कर सुखी होनेकी भावना न करके यों ही दुःखको सुख मानकर भटक रहा है। सुखका उपाय यदि है तो वह है ज्ञान व वैराग्य। सच्चा ज्ञान व परपदार्थोंमे उपेक्षाभाव ही सुख प्राप्त करा सकता है, अन्य नही और सब ये बाह्यपदार्थ तो ससार-समुद्र मे भटकाने वाले ही हैं, पार लगाने वाले नही। इस जीवका परपदार्थोंमे कुछ भी शरण नही है। यदि शरण है तो वह अपना ज्ञान व परपदार्थोंसे उदासीनता ही है। जितना ज्ञानका विकास करोगे उतना ही सुखी होवोगे। परपदार्थोंमे मोहका नाम ही विपदा है। जिसने अपने आपको पा लिया वही अन्तरात्मा है और वही सुखी है।

सुखका उपाय सत्संग, स्वाध्याय, भगवद्भक्ति है। सबको समान दृष्टिसे देखता हुआ उन्हे अपनेसे गैर समझो। हम जो भी कर रहे हैं व जिनसे मोह है उनके प्रति कर रहे हैं, किन्तु सब कुछ समर्पण करना चाहिये ज्ञान व वैराग्यके हेतु। अन्यायसे, अनीतिसे, झूठ बोलकर, तात्पर्य यह कि जिस उपायसे हम आजीविका कमा रहे है, उनके लिए जो हमारे कुटुम्ब के हैं, जिनको हम अपना समझते है, किन्तु वे ही विपदा व पतनके कारण बनते हैं। बाल्मीकिजी का काम यही था कि वे आते जाते मुसाफिरोको लूटते थे, उनका सब माल छीन लेते थे। एक बार एक साधु जा रहा था उसी मार्गसे। बाल्मीकिजी ने ललकार कर कहा कि हे मुसाफिर! जो भी तेरे पास है वह सब निकालकर यहाँ रख दे, नही तो मैं तुझे मार डालू गा। साधु जी के पास जो भी लोटा कम्बल आदि था, सब देकर बोले कि भैया! इनको या तो कही रख लो या मुझपर विश्वास कर एक काम करो कि अपने घर यह पूछकर आओ कि जो मैं यह पापकी कमाई कर रहा हूँ, उसमे तुम भी साथ दोगे या नही? पाप तुम भी बांट लोगे? बाल्मीकिजी अपने घर जाकर अपने मां, बाप, भाई, बहिन, पत्नी आदि सबसे पूछते हैं कि मै जो यह पापकी कमाई रात-दिन परिश्रमपूर्वक कर रहा हू, इसमे तुम लोग भी साथ दोगे या नही? भैया! पापका नाम ही बुरा होता है, कौन उसमे हिस्सा बांटनेके लिए तैयार होगा? सबसे इन्कारीकी बात सुनकर वापिस आया वह, और उसी दिनसे ज्ञान की साधनामे लग गया। वैराग्य प्राप्त हो गया, यही जानकर कि मै जिनके लिये यह कृत्य कर रहा हू वे कोई साथ नही देंगे, हिस्सा नही बाँटेंगे, तब साधुजी को सब वापिस कर बाल्मीकि जी आत्मप्रगति करनेके हेतु साधु बन गये। अब बताइये कौन है अपना इस आत्मा के सिवाय, चैतन्यस्वरूपके अतिरिक्त? अतः हे भाइयो, सबको चैतन्यस्वरूप देखो व सोचो कि सब जीव दुनियाके सुखी होवें, कोई दुखी न रहे और मुझसे जो भी तन, मन, धन, वचन द्वारा उपकार हो सके उसे करनेमे मैं न चूकूं। इसपर बहुत विचारो कि हमारा किसी

के प्रति कभी दुर्व्यवहार न हो। यह ध्यान रखो कि जो हमको प्रतिकूल प्रतीत होगा, हमारी प्रकृतिसे विरुद्ध हमको होगा उससे दूसरोको भी तो कष्ट पहुंच सकता है, सो जिन बातोंसे हमे अच्छा प्रतीत नही होता तो दूसरोके प्रति वह दुर्व्यवहार न करें।

हमारे शरीरमें यदि कांटा लग जावे या सुई चुभ जावे तो कितना दुःख पहुचता है? फिर आजकल जो ये मांस, मच्छीको खाद्य बनाया जा रहा है, भोजन बनाया जा रहा है, उसमे तो मुर्गा, बकरा आदिको काटा जाता है, उनको कितना दुःख होता है, उनको कितनी छटपट लगती होगी, और वही कुछ लोगोकी स्वादिष्ट सामग्री बनती है, उनकी तो जरासी रसनाकी तृप्ति और उनका प्राणान्त और वह भी वेदनापूर्वक। हाय रे मानव! कितना पतन हो गया है, क्यो भूल रहा है कि तेरा यह कर्तव्य नही, इसमें सुख नही, विपदा है, जन्म मरणके चक्कर है। बडे अफसोसकी बात है कि यदि मानवजीवन पाकर भी तपस्या न की, तो अवश्य हो हम बुरे मार्गपर हैं। कितनी दुर्लभतासे मिला है ये मानव जीवन और इसको यो ही गंवा दिया तो पछताना पडेगा। मनुष्य, देव, तिर्यञ्च और नरक—इन चारो गतियो मे यदि उत्तम गति है तो वह है मानवपर्याय, मानवगति और इसे पाकर भी यो ही गंवा दोगे तो समझो कि तुमने अप्राप्य वस्तुको पाकर मूर्खतावश उसकी कीमत न समझी। अतः भैया! इसकी कीमत समझो और समझ बूझकर, दृढ विश्वास कर आत्मकल्याणके मार्गपर लगो। मन, वचन, तन और धनसे जितना हो सके परोपकार करो, नही तो क्या है, जैसे जीव जीते हैं वैसे ही हमारा भी जीवन, वैसे ही मरण, इनके बीचका जीना चलता रहेगा। फिर चौरासी लाख योनियोमे भ्रमण। अतः कीर्ति व कृतिको असार जानकर पारमार्थिक ज्ञानस्वरूपमे उपयोग देकर सत्य कीर्ति व कृति प्राप्त करो।

जीविताशा प्रतिष्ठाशा विषयाशा जनैषणा।
अभिर्मुग्वो विनष्टोऽहं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१–१५॥

ज्ञानवान् पदार्थ शरीरसे जुदा है। मैं तो आनन्दस्वरूप शान्तिस्वरूप हू और इसीको अभिलाषामें लगा हुआ भी हू। केवल यही लक्ष्य है मेरा कि मैं शान्तिवान् बनूं, अन्यकी अपेक्षा नही। अमुक कुलका हू, अमुक जातिका हूँ, अमुक धर्मका हू आदि बातोसे प्रयोजन नही। मैं जो कुछ भी हू, शान्तिकी खोज करने वाला हूँ। ऐसी प्रत्येक प्राणी की इच्छा है, किन्तु वह ज्ञान न होनेके कारण व्यवहारसे बाह्यपदार्थोंमे आकृष्ट हो, विषयवासनामे आकृष्ट हो, उसीमे शान्तिकी कामना करता है। लोगोको आकृष्ट करनेके लिए बाह्यपदार्थोंमे ही उपयोग लगाये रहता है किन्तु शान्ति प्राप्त नही होती। मैं तो शरीरसे भिन्न निराला ज्ञानपुञ्ज हूँ, शान्तिस्वरूप हूँ, बस मुझे यही चाहिये, अन्य कुछ नही। बाह्यपदार्थों

से जब उपेक्षा होगी तब समझो कि हम अपनी अमूल्य निधिको प्राप्त करनेके पात्र हैं। जिस पदार्थका जो स्वभाव है उस स्वभावको ही धर्म कहते है। अपनेको धर्मरूप मानना सो धर्म को हा प.ना है। आत्माका स्वभाव सो आत्माका धर्म। अपने स्वरूपमें ही उसे मानना, सो धर्मका पालन है।

धर्मका पालन बाह्यक्रियाओसे न हैकर ज्ञानभावनासे होगा। अन्य कोई उपाय नही धर्मके पालनका। धर्मपालन अपनेसे ही किया जाता है। तन, मन, धन, वचनके सदुपयोगसे जितना भी हो सके स्व-परोपकार करे। जो धर्म करने वाली आत्मा है वह शरीरमे ही तो है। ज्ञानी जन तन, मन, धन, वचनसे जैसे भी हो सके स्वोपकार व परोपकारमे ही लगा रहता है तथा सुखी भी वही है। इनके सदुपयोगमे ज्ञानी जीव पथभ्रष्ट नही होता। और इनका सदुपयोग न करनेके ही कारण ये सब विवाद लगे हुए हैं। इनके कारण ही नाना भेद बन गये। परमार्थदृष्टिसे तो ज्ञानी जीव सबके प्रति उपेक्षा भाव रख धर्मके स्वरूपको समझते हैं, अन्तर्दृष्टि बनाकर धर्मका पालन करते हैं। यह स्वभाव अनादिसे अनन्त तक एक सा रहता है। शाश्वत जो सत् है वही द्रव्य कहलाता है। क्रोध, मान, माया, लोभ आदि मेरा स्वभाव नही। इनको धर्म मानना अधर्मका पालन है। मेरा स्वरूप तो चैतन्य है, इसका कार्य ज्ञाता, द्रष्टा रहना है। बाह्यपदार्थ व परभावका मैं कर्ता नही, यही दृष्टि धर्मका पालन है। दुर्लभ इस मानवजीवनको पाकर संयमज्ञान बढ़ाना जितना हो सके उतना ही कल्याण है। जीवन प्यारा है तो धर्मपालनसे जितना हो सके उतना भला कर लेना चाहिये। जीवन प्यारा है तो वह धर्मपालनके लिए है, खाने-पीनेके लिए नही। भैया ! जीनेके लिए खावो। खानेके लिए जीना मानव जीवन नही। जीवन है धर्मपालनके लिए। सबसे बडा धर्मपालन तो यही है कि अविकार आत्मस्वरूपको देखो, सबपर समता भाव रखो, क्रोधादि कषाय मत करो। कषाय करना क्या इस जीवका स्वभाव है ? नही। हम कहते हैं कि किसीसे कहा जाय कि तुम एक घटे तक क्रोधी बनकर रहो तो क्या वह रह सकता है ? कुछ समय पश्चात् ही वह अपने वास्तविक स्वरूपमे आना चाहेगा। जैसे जलको आगपर रख दो, गर्म होगा, बादमे वह अपने वास्तविक स्वरूपमे नीचे रखते ही आने लगेगा। इसी प्रकार मान भी। मान करना, घमण्ड करना क्या जीवका स्वभाव है ? नही। न माया, न छल-कपट ही जीवका स्वभाव है और न लोभ ही जीवका स्वभाव है। इनके रहते हुए आत्मकल्याण नही हो सकता, अपने स्वरूपका दर्शन नही हो सकता। अपने स्वभावको पहिचानना है, अपने आपका दर्शन पाना है तो भैया ! ज्ञानके स्वरूपको ही जानने लगो, समता रसका स्वाद लो, सब जीवोपर समता भाव रखो। इन संसारी प्राणियोंमें छंटनी मत करो कि यह मेरा भाई

है, यह मेरा सिश्र है, मेरी पत्नी है आदि। रागभाव ही विपदाका कारण है।

जितना भी यह नाटक हो रहा है सब उपाधिका है। कषायसे कषाय मिल गयी तो मित्रता और विपरीत अवस्थामे दुश्मनी। छोटे-छोटे बच्चोको ही ले लो कि जिस खेलको एक बच्चा जानता है यदि उसीको दूसरा भी जानता है तो तुरन्त पक्के मित्र बन जावेंगे, अन्यथा दुश्मनी कर लेंगे, लडाई हो जावेगी। जो कुछ भी आज हो रहा है, किसीसे दुश्मनी, किसीसे मित्रता यह सब कषायोका ही प्रताप है, उपाधिका ही नाटक है। अतः हे भाइयो! इस सबको असार जान अपने स्वरूपकी ओर आवो। उसीमे तुम्हारा हित होगा, और अन्य जो तू परपदार्थमे रागद्वेषकी बुद्धि कर रहा है वह सब विपदाको देने वाली है, ससारका भ्रमण कराने वाली है। आत्माका आनन्द इन बाह्यपदार्थोंमे नही। ये सब वैभव, धन, बडे-महल, पोजीशन, आत्माका स्वभाव नही, किन्तु इनमे पडकर अपनी पर्याय बिगाडना है, विकल्प करनेसे जग-जाल नही छूटेगा। देख लो, जितने भी बडे-बडे सेठ साहूकार होंगे वे भी प्राय: दुःखी होंगे क्योकि तृष्णा जिनकी अधिक रहती है, वे दुःखी होते रहते हैं। ये सब वैभव जो तुम्हे आज प्राप्त है यह पुण्यकर्मकी कमाई है। पूर्वजन्ममे पुण्य किया था उसीका फल है जो आज प्राप्त है। और यदि इस जन्मने यह सब पाकर परोपकारमे न लगाया, बाद मे, धनके बीत जानेपर, शरीर ढल जानेपर पश्चात्ताप होगा, क्लेश होगा कि इनके रहते हुए मे दान न कर सका, दूसरोका उपकार न कर सका। यदि धन दानमे देता तो कमसे कम उसका सदुपयोग तो हो जाता, किन्तु धनके चोरी हो जानेपर, आग लग जानेपर, सन्तान बुरे कर्मोंमे फसी हुई होनेके कारण पछताता है कि मैं समय रहते न चेता। अत: ये सब तो नष्ट होने वाली चीजें हैं। इनका जितना भी परोपकारमे उपयोग करोगे उतना ही सुख उतना धनादि स्वय प्राप्त होता जावेगा। कोई यदि ये सोचे कि परिश्रम करनेसे शरीर घटता है सो बात नही, बल्कि और शक्ति ही प्राप्त होती है। यही लोकधर्मका पालन है। ऐसा करनेपर उसे लौकिक सतोष प्राप्त होगा।

मुमुक्षुको विकल्पजालोमे न पडना चाहिये। मेरी प्रतिष्ठा हो, मान हो आदि आशाए ही विपदा हैं। इन सबमे उपेक्षाभाव रखो। विषयोकी आशा करना भी निर्मूल है। ये यदि प्राप्त हो गये तो भी शान्ति न मिलेगी और यदि न मिले तो भी अशान्ति ही है। इन सबमे बरबादीके सिवाय हाथ कुछ न लगेगा। मैं यह सब कुछ नही, मैं तो ज्योतिपुञ्ज हू—इस विचारके रहनेसे विपदा सब नष्ट हो जावेगी। जो अपनेको इस प्रकार मानता है वह सबको चैतन्यस्वभाव वाला ही जानता है, सबकी विनय करता है। इस प्रकार स्वय भी सुखी होता है और दूसरोको भी सुख पहुचाता है। और इससे विपरीत दशामे तो दुःख ही दुःख है।

इन बाह्यपदार्थोंसे क्या सुख है ? यदि सुख मिलेगा तो वह ज्ञानसे ही मिलेगा । अतः सबपर समताभाव रखो और सब कुछ समता दृष्टिसे ही देखो । अपने आपको पहिचानना है, प्रभुके दर्शन करना है तो अपना आचार-विचार व ज्ञान निर्मल बनाये रहो, बाह्यपदार्थोंमें वैराग्य की भावना रखो । अन्यायका त्याग, संयमसे रहना, ये सारी बातें ज्ञान व चारित्रको निर्मल बनाती हैं । आशा कुछ रखो तो अपने निर्मल परिणामोसे रखो । अन्य आशायें रखना केवल विपदामे गिरना है । यही प्रयत्न व यही उपयोग हो कि मैं सर्व आशाओंको त्यागकर नैराश्य की आशा कर अपनेमे सुखी होऊ ।

भवेऽप्यस्मिन् मुहुर्नाना दु खं प्राप्तं क्व रक्षकः ।
को भूतः कस्य भूतोऽहं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१—१६॥

मैंने इस भवमे भी तो नाना प्रकारके दुःख पाये, उनमे बताओ कौन रक्षक हुआ ? भैया, किसीसे रक्षाकी आशा मत करो, रक्षक कोई हो ही नही सकता, क्योकि हमारी परिणति कोई अन्य बदल नही सकता । यदि बदलेगी भी तो स्वयं की स्वयंमे हुई परिणतिसे ही बदल सकती है । देखो जन्मसे ही विचार कर लो, जब बच्चा था तब अपनी इच्छा व्यक्त न कर सका था, तब भी आत्मा पूर्ण ही था किन्तु इन्द्रियोके कारण बोल नही सका । बचपन मे भी क्लेश हुआ है, कुछ इच्छाके अनुकूल प्राप्त न हुआ कि झट रो दिया । अब बताओ, कौन रक्षक हुआ इसका ? कुछ बडा हुआ तो स्कूल भेजा गया । खेलकूदमे मन लगता था उसे छुटाकर स्कूलमे भेजा तो वह भी उसके अनुकूल न हुआ, अतः दुःखी हुआ । तब भी इसका कोई रक्षक नही हुआ । पढ़नेमें रत भी हुआ, पढ़ने को चित्त भी लगाया तो अपनेमे अधिक दूसरेके नम्बर देखकर दुःखी हुआ । विफल होनेपर तो कई छात्र क्लेशकी अधिकताके कारण आत्महत्या तक कर लेते हैं । जवानीमे शादीका दुःख, सगाई शादीके प्रति उत्सुकता, उसमे देरी होनेसे क्लेश पाया । कहीसे शादी न हुई तब दुःख पाया । यदि हुई तो ब्रह्मचर्यका खण्डन हुआ, फिर बच्चे हो गये तो ऐसा दबा कि फिर वह ज्ञानकी बात सोच नही सकता । कही लडकी उत्पन्न हो गयी तो फिर दुःखोका कहना ही क्या है ? और जिसकी दो चार लडकियाँ हो जायें तो वह तो शुरूसे आखिर तक उसी ऊहापोहसे लगा रहता है, कहाँ कहाँकी चिन्ता करनी पड़ती है ? यदि लडका हो गया तो दु.ख कैसे ? कुपुत्र हुआ तब तो दुःख है ही, सुपुत्र हो तब भी दुःख ही दुःख है क्योकि उसके लिए यही चिन्ता करता रहता है कि इसके लिए ऐसा कुछ प्रबन्ध कर जाऊँ ताकि यह दु.खी न हो, उसके मोहमे दु.खी होता रहता है । केवल ज्ञानवान् ही दुःख नही मानता, वह सब परिस्थितियोमे सुखी रहता है, क्योकि उसमे सच्चा ज्ञान है, अतः अपने ज्ञानबलके कारण ही

आत्मा आनन्द पाता है। फिर यह भी तो सोचो कि मैं ही किसका रक्षक हुआ ? भैया ! यह सब भ्रम है। किसीका किसीसे प्रेम है तो दुःख और बैर है तो दुःख। अन्य पदार्थोंकी ओर उपयोग गया कि दुःख है और अपनी ओर गया अपने स्वरूपकी ओर ध्यान दिया तो सुख ही सुख है। सबसे बडी विपदा तो सकल्प विकल्प, अज्ञान, विषयवासना इनकी है। यदि किसीने कुछ कह दिया तो क्या हो गया, उसका उसमे परिणमन हुआ मुझे क्या ? किसकी ताकत है कि मुझे दुःखी कर दे और किसकी ताकत है कि मुझे सुखी कर दे ? खुद का ही परिणमन दुःख पहुचाता है और खुदका ही परिणमन सुख पहुचाता है। वे बिरले ही ज्ञानी जीव हुआ करते हैं जो समतापरिणमन रख सोचते हैं कि मेरा कौन और पराया कौन ? जिसे हम अपना मानते हैं वही तो दुःखका विपदाका कारण बनता है, अन्य पराये क्या बनेंगे, जब कि उनमे उपेक्षाभाव है। तो सबसे अधिक विपदा तो इनसे ही हैं, जिन्हे हम अपना मान-मानकर दुःखी हो रहे हैं।

वास्तवमे देखा जावे तो ये ही मेरी आत्माका स्वरूप न जानने देने वाले है, ये ही बाधक है। वे मेरे है नही, उन्हे मानना भ्रम है और यदि कुछ हैं तो दुःखके देने वाले हैं। उन्हें प्रेमसे देखो तो दुःख और विरोधसे देखो तो दुःख। सुख प्राप्त हो सकता है तो ज्ञान-बलसे ही हो सकता है। जहाँ ज्ञान नही वहाँ दुःख ही दुःख है। ज्ञानी तो ज्ञाता द्रष्टा है। ज्ञानबलसे जैसे-जैसे वस्तुका स्वतन्त्र स्वरूप समाता जाना है वैसे-वैसे ही विषयोसे राग हटता जाता है। अत सुखके लिए जो अनेक प्रयत्न करते हैं यदि हम उनकी अपेक्षा यह प्रयत्न करें कि जो वस्तुका स्वरूप है वह हमारी दृष्टिमे अधिकसे अधिक आवे तो अधिक सुख अथवा शुद्ध आनन्द मिलेगा। हम स्वय ज्ञानवान् है, पूर्ण हैं। कहाँ तो मेरा चैतन्यस्वरूप और कहाँ विषयवासनाओमे फसा हुआ मैं। जैसे गीदडोमे फंसा हुआ शेर अपनेको गीदड मानता है किन्तु उसे यदि यह ज्ञान हो जावे कि मैं शेर हू तो फिर देखो। वही दशा मेरी भी हैं। मेरा तो स्वरूप भगवान् जैसा है। भगवानके दर्शन करनेका यही तो प्रयोजन है और है क्या ? यदि इच्छा रखकर दर्शन किये कि भगवान् हमे सुख दुःख देने वाले हैं, इनकी पूजा करें तो क्या सुख दे देवेंगे। तो इन परिणामोमे निर्मलता कहाँ, ये तो मिथ्यात्व है. अज्ञान हैं। निर्मलता तो वहाँ है जहाँ आत्माका सच्चिदानन्द स्वरूप सोचा जा रहा है। मेरा स्व-रूप तो केवल ज्योतिपुज है, चैतन्यमात्र है, ऐसी उपासना कर जो यह ख्वाब लाता है कि मेरा भी वही स्वरूप है जो तुम्हारा है, वह परमात्मतत्त्वका भक्त है, परमात्मस्वरूपका दर्शक है। क्योकि द्रव्यत्व वही है किन्तु व्यक्त नही है। जैसे दो बर्तन नये लिये, दोनो एक जैसे हैं,

उनमेसे एक चूल्हे पर चढा दिया तो वह काला हो गया। जो उनमे भेद आ गया बस वही भेद प्रभुमे और मुझमे है। स्वभाव तो एक ही है किन्तु मुझमें तो कलंक लगा हुआ है और प्रभु उसी प्रकार है। हम परपदार्थोमे लगे हुए है और वे इन सबसे उपेक्षाभाव रखते है। जानते सब कुछ हैं किन्तु जानते हुए भी उपेक्षा भाव रखते है। किसीके मर जाने पर यह प्राणी करुण विलाप करता है और कहता है कि हाय, मैं तो मर गया, मेरा तो घर ही उजड गया, मेरा दुनियामे कोई न रहा। हे आत्मन् तेरा स्वरूप तो अरहन्त सिद्धो वाला है। सोचो। कहाँ तो यह महत्ता और कहाँ ये विचार कि मैं लुट गया। हे भैया! तेरा लुट क्या गया? तेरा स्वभाव तो तेरे अन्दर है। जो कुछ है वह स्वयंमे है, अन्तर्दृष्टिसे मन, वचन, कायकी प्रवृत्तिको एकाग्र करके देख तो सही। किसी कामको करेंगे तो वह होगा और यदि बात ही करते रहेगे तो क्या वह होगा? घरमे यदि कूडा इक्ट्ठा हो जावे तो क्या वह बातें बनानेसे दूर हो जावेगा? वह कार्य तो खुदके श्रम करनेसे ही होगा। अतः हे आत्मन्, तेरे अन्दर आनन्द तो पूरा भरा हुआ है, आनन्दसे लबालब है, किन्तु अन्तर्दृष्टिसे उपयोग करे तभी तो पानकर सकेगा। ऐसा भाव जगावे तो उसका बेडा पार है अन्यथा भटकते रहना होगा इन्ही चौरासी लाख योनियोमे। मैंने इसी भवमे नाना दुःख सहन किये, बताओ कौन हुआ मेरा रक्षक और किसका मैं रक्षक हुआ? मैं तो सबसे भिन्न चैतन्यस्वरूपमात्र हूँ। इसका जितना भी दृढ विश्वास होगा, दृढ श्रद्धान् होगा उतना ही सुख पावेगा यह जीव। सब प्राणी अलग अलग हैं, अपने अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावमे परिणमन करते हैं। एक जीवका दूसरे पदार्थोसे अत्यन्ताभाव है। जो त्रिकालमे भी मेरा कुछ नही हो सकता उसमे अपनेपन की बुद्धि करना विपरीत मार्गमे लगना है। और जो उस विपरीत मार्गपर चलेगा वह विपरीत अवस्थाको प्राप्त होगा, दुःख उठायेगा। नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देव, इन चारो गतियोमे भ्रमण करते हुए दुःख सहन करेगा। मैं तो सब जीवोसे, इस शरीरसे, रागद्वेषके भावोसे इन सबसे न्यारा हू, मैं तो चैतन्यशक्तिमात्र हूँ। यह अन्यत्र कहाँ प्राप्त होगा? यह तो यही ही है। मेरा यह सर्वस्व है।

जो इसकी भावना करेगा सो सुखी होगा। अतः मैं इसे प्राप्त कर आत्माका कल्याण करता हुआ अपनेमे अपने लिए, अपने द्वारा अपने आप सुखी होऊं।

दुस्त्याज्या चेद्रतिस्त्यक्ता मृतत्यक्तकुटुम्बिनाम्।
स्वातन्त्र्यस्यानि किं स्वस्य स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१—१७॥

जो आज नही है अर्थात् मर चुके है या अलग हो गये हैं, उनमे मेरा सबसे अधिक स्नेह था, मोह था, अब जब वही छूट गये तो इन छोटे छोटे विषयोमे क्या राग करना?

जिस कुटुम्बमे जिससे भी सबसे अधिक मोह होता है फिर एक दो साल बीत जाने पर याद भी नही करते, तब कहाँ गया वह मोह ? फिर जब तूने सबसे अधिक मोहको ही, ममताको ही छोड दिया, फिर इन अन्य बाह्यपदार्थोंकी ओर क्यो आकृष्ट होता है ? आखिर छूटेंगे तो ये सब ही एक न एक दिन, तब क्यो इनमे राग बढाकर दुखी होता जा रहा है। ऐसी प्रकृति क्यो बना रखी है कि एकसे छूटकर दूसरेमे मोह करने लगे। जैसे तुझे सबसे अधिक स्नेह जिस किसीमे था, उसकी मृत्यु हो गयी, तब कहाँ गये वे सुख विलास, कहा गया वह मोह, ममता ? जब तुझसे इतना बडा ही मोह बीत गया, छूट गया तब इन बाह्यपदार्थोंमे फिरसे क्यो राग–द्वेषकी वृद्धि करता है, छूट तो ये भी जावेंगे एक न एक दिन। फिर इनमे पडकर क्यो स्वतन्त्रता खो रहे हो ? क्यो न इनके प्रति मोह ममताकी, द्वेषकी बुद्धिको नष्ट करूं ? मरनेपर, किसीके बीत जानेपर सोचता है कि मेरा शरण कोई न रहा, मैं लुट गया हे प्राणी ! चेत और विचार कर तो देख तेरा क्या लुट गया, तेरी शरण है कौन ? तेरा सब कुछ तेरेमे ही है। तेरी शरण भी तू ही है। उपादान ज्ञान बिगडा हुआ है अत एक बातके, एक पदार्थके बीतनेपर तू दूसरेके प्रति मोह करता है, व्यर्थमे स्वतन्त्रता खोता है, मामूली बातोमे अपनी स्वाधीनता खोता है। अब अपना ज्ञान इतना निर्मल बनाओ ताकि बाह्यपदार्थोंमे रागबुद्धि ही न जावे। जब अपनी योग्यता ठीक नही है तब प्रत्येक स्थानपर दु:ख ही प्राप्त होगा। अपनी आत्माका ध्यान करो और सुखी होओ। सबसे बडा सुख स्वतन्त्रता है। इसका यह मतलब नही कि उद्दण्ड हो जावो। दूसरोके साथ उद्दण्डतासे पेश आवो। कर्मकी आधीनता न रहे उसे स्वतन्त्रता कहते हैं। व्यवहारमे भले ही स्वच्छन्द हो जाओ किन्तु कर्मोका उदय होनेपर तो पराधीन ही है। अत अपने स्वरूपको पहिचानो और परपदार्थोंसे स्नेह हटाओ, इसीका नाम स्वतन्त्रता है। अपने स्वभावका भान हो, सम्यक् दर्शन उत्पन्न हो, उसका नाम स्वतन्त्रता है। कितनी ही आपत्ति क्यो न आवें तो भी ज्ञाता द्रष्टा रहो, ऐसी सद्बुद्धि अन्तरगमे आवे तो उसका नाम सच्ची आजादी है।

जब जिससे तीव्र मोह था उससे ही मोह छूट गया, तब इन छोटी छोटी बातोमे क्यो राग करते हो ? जैसे एक सेठका एक व्यक्तिपर एक लाख रुपया चाहिये था। वह हो गया गरीब, तो अन्य व्यक्तियोने सेठजीसे कहा कि बेचारेकी वह दशा न रही अत अब केवल ५००) ही ले लो, ९९५००) छोड दो। तो सेठजी ने सोचा कि जब सभी छोड दिया तब ५००) के लिये क्यो लेनेका नाम करना ? इसी प्रकार सोचना चाहिये कि जब हमे जिससे कुटुम्बमे सबसे अत्यधिक राग मोह था वही बीत गया तब इन थोडी थोडी बातोमे क्या राग करना, क्यो ममता करनी ? मोही जन इष्टके बीत जाने पर बहुत अधिक शोक करते हैं—

हाय मैं लुट गया, मैं मर गया। अरे, तेरा क्या लुट गया, तेरी आत्मा तो तुझमें है, उसका भजन कर। यदि एकाकी जीवन मिला तो उसमे खेद क्यो ? अब तो बल्कि और खुशी होना चाहिये कि भगवान्का ध्यान करनेकी योग्यता तो आ गयी, मेरे भाव अब निर्मल बनेंगे, ऐसा विचार करना चाहिये उस परिस्थितिके तो, न कि दुःख करना चाहिये। रामचन्द्र जी को सबसे अधिक मोह लक्ष्मणसे था। ऐसा कि उसके मरनेपर भी उसे लिये-लिये फिरे और जब उससे ही उनका मोह छूट गया तब किसीसे मोह न रहा। फिर वे दिगम्बर निर्ग्रन्थ मुनि हो गये और मुक्त हो गये। अतः जब सबसे बडा मोह ही बीत गया फिर छोटी छोटी बातोमे क्यो पडना ? मोही जीवोमे ऐसी आदत पडी है कि यदि बडा राग छूटा तो भी छोटेमें प्रवृत्ति करके राग बढा लेता है। आचार्योंने कहा है कि रागी होगा तो कर्मोंसे बन्धेगा और वीतरागी होगा तो कर्मोंसे छूटेगा। कर्ममुक्त होना है तो राग छोड दो। जिन की हम पूजा करते है, दर्शन करते है, उन्होने और किया क्या ? अपनेको निर्मल बनाया, अपना ज्ञान निर्मल रखा, वीतरागी रहे, ज्ञान दर्शन शक्ति अनन्त प्रकट हुई, स्वच्छ हो गये, कर्म रहित हो गये, परम आनन्दको पाया, तब वे परमात्मा हो गये। अतः उनके दर्शन कर यही विचार पैदा करो कि जैसा तुमने किया है वैसा ही मैं भी करू और वह होगा भेदविज्ञानसे। भेदविज्ञानके बलसे परपदार्थसे हटकर निज आत्मामे लगें। चैतन्यमात्र अपने आपको निरखा, यह उपाय किया, कर्मबन्ध टूटे, आत्मामे विकास हुआ। सब पदार्थोंको जानकर भी अपने आनन्दके रसमे लीन रहे। यह विचार कर दर्शन करना चाहिये। ऐसा नही कि मेरे बाल बच्चे सुखी रहे, इस भावसे दर्शन करें; इससे परतन्त्रता बढती है।

अपने भावोसे ही यह प्राणी पराधीन होता है और अपने भावोसे ही स्वाधीन होता है। वैसे परमार्थ दृष्टिसे देखा जावे तो यह किसी के आधीन है नही किन्तु अज्ञानवश काल्पनिक अपने भाव बनाकर आधीन बनता है। यह आत्मा तो ज्ञान आनन्दका पुञ्ज है। न इसमे ज्ञान बाहरसे आता न आनन्द ही। वह तो स्वय ज्ञानमूर्ति है। ऐसा अपनेको सोचे तो आनन्द प्राप्त हो। सब जगह घूम आओ, आखिरमे अपनेको ही बडा पाओगे। अपना ही सहज स्वभाव बडा मिलेगा। राग छोड दो तो उपद्रव रहित हो जाओगे अन्यथा क्लेश ही प्राप्त होगा। रागके कारण ही अन्तरमे ऐसा भावका वातावरण बनता कि मरण के बाद फिर भी शरीरको पाता है जो कि दुःखका मूल है। अब शरीरके भी रागको छोड कर अपने वास्तविक स्वरूपको पहिचानो, उसका ध्यान करो। मोह भी करो और ध्यानका आनन्द भी मिल जावे—यह दोनो बातें परस्पर विरोधी है। अतः राग त्याग कर अपने स्वरूपको पहिचानकर मैं अपनेमे अपने लिए अपने आप सुखी होऊ।

देखो—यह रागभाव जो कि दुस्त्याज्य बन रहा है, क्या है ? केवल कल्पनाका पुलावा है। वस्तुका विचार करो तो राग न तो आत्माकी चीज है, न कर्मोंकी चीज है और न विषयोंकी चीज है। फिर भी इस मायामे कैसा बानक बन रहा है कि विषयोका तो आश्रय है, कर्मोदयका निमित्त है और आत्माका उस क्षणका वह एक परिणमन है। परमार्थ से देखो तो कुछ भी तथ्य नही है। ये विषय भी छूटेंगे, टलेंगे। जो परपदार्थ हैं इनका सयोग अललटप है, कोई कायदेसे या सिलसिलेसे या खातिरीसे नही है। वे कर्मोदय भी उसी क्षण मिट जाते है जिनका कि निमित्त पाकर ये रागादिभाव होते हैं, अगले क्षण अन्य कर्मोदय हो जाते है। इतनी विडम्बना रहती है जिसका परिणाम यह है कि बन्धन चलता रहता है। ये रागादि भाव भी एक क्षण होकर मिट जाते हैं। यह बात और है कि और और रागादिभाव निरन्तर होते चले जाते हैं। इन भावोमे तथ्य कुछ नही है। रागादिभाव असार हैं, दुःखरूप है। मिटते तो ये हैं ही, ज्ञानबलसे खुद मिटा दिया जाय तो आनन्दमय प्रभुके दर्शन भी होगे। इन रागादिभावोके कारण ही स्वतन्त्रताका विनाश है। वास्तविक स्वतन्त्रताका विनाश होने पर भगवान्‌का दर्शन असभव है, आत्मदर्शन असभव है। सो अब रागादि भावोसे भिन्न अपने ज्ञायकस्वरूपको लक्ष्यमे लेकर स्वतन्त्र होऊँ और स्वय स्वयमे आनन्दमग्न होऊँ।

ज्ञात्वा रागफल दुःख जीवानां भ्रमतामिह।
राग मुञ्चानि नो मुक्त्वा स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-१८॥

जितने भी जीव घूम रहे हैं यह सब रागका फल है। इनको दुःख ही रहा ममताके कारण, मोहके कारण। ये आज तक भी क्लेश भोग रहे हैं। इन्होने सुख प्राप्त नही किया। किसीको भी बिठाकर उसकी कहानी सुन लो, सब कुछ सुननेके बाद अन्तमे परिणाम यही निकलेगा कि किसीमे राग है, अतः दुःखी है। अपने दुःखकी जितनी भी कहानी बनावेगा उसमे किसी न किसीसे राग मिलेगा। बस उसी रागके ही परिणामके कारण वह दुःखी है। कोई दुःखकी कहानीमे यह बतावेगा कि मेरी समाजमे इज्जत न हुई, कोई यह बतावेगा कि जैसा मैं चाहता था वैसा न हुआ। यह सब दुःख रागादिकके ही कारण तो हुआ है, अन्य कुछ नही। जिसे दुःख नही चाहिये उसे राग, मोह, ममता छोड देना चाहिये। शादी हो गयी, बच्चे हो गये, अब करना तो सब पडेगा ही। किन्तु हे भैया! सब कुछ करते हुए भी यही भाव रखो कि ये मेरे कोई नही, मै इनका कुछ नही, न ये मुझे सुख पहुचा सकते है, न मैं ही इन्हे सुख पहुचा सकता हू। इनसे मेरा कोई सम्बन्ध नही है, ये तो मुझे करना पड रहा है, ऐसा विचार करनेसे दुःख न होगा। क्या इन सब दुःखोको देखकर तथा अपने दुःखो

को विचारकर क्या मुझे राग नही छोडना चाहिए ? अवश्य ही त्याग करना चाहिये। शराब पीने वाला शराबकी दुकानपर शराब खरीदने जाता है तो कहता है कि देखो भाई, मुझे विलायती असली माल चाहिये, मुझे बढिया वाली शराब चाहिये। तब वह उसको यही दिखाकर कहता है कि क्या तुझे इन बेहोश पड़े हुए अपने बाप, चाचाको भी देखकर विश्वास नही होता कि मेरी शराब बहुत बढिया व अच्छी होगी। अतः हे भाइयो ! यदि रागका फल देखना है तो स्वयंके दुःख देखो और इन सब ससारी प्राणियोके दुःखोको देख लो कि रागके कारण कैसे कैसे कष्ट उठाये जा रहे है, और तूने स्वय कैसे-कैसे कष्ट झेले ? अब क्या ये देखकर भी तुझे विश्वास नहीं होता कि यह राग-बुद्धि छोडने योग्य है। यदि जाननेमे आ गया कि मैं तो स्वचतुष्टयरूप हू, तो कोई क्या इस ज्ञानको नष्ट कर सकता है, विपरीत कर सकता है ? कोई कुछ नही कर सकता। जितने भी दुनियाके जीव हैं उन सबसे मै निराला हू। ये सब रागके परिणाम देखकर यही धारणा बनावे कि मै तो चैतन्यस्वरूप अपने सहजस्वरूपमे रहने वाला अनाद्यनन्त हू। अत. मै इन सबको त्यागकर ज्ञायक भगवानके दर्शन करूँ। यह जीव भगवानके दर्शन ज्ञानसे ही तो करता है और उपयोगमे यदि राग बसा हुआ है तो भगवान कैसे दिख सकता है ? उपयोगमे राग न हो तो भगवानके दर्शन हो सकते है। जब राग पर उपयोग है तब स्वभावपर नही और जब स्वभावपर उपयोग है तब उपयोग रागपर नही। तब मैं राग छोडकर अपनेमे अपने लिए अपने द्वारा अपने आप सुखी होऊँ।

भैया ! यह राग तो एक न एक दिन छोडना ही पडेगा, तथा रागद्वेषरहित वीतराग अवस्थाको एक न एक दिन तो अवश्य ही धारण करना पड़ेगा, तभी मुक्ति प्राप्त हो सकेगी। तब क्यो अपना समय नष्ट करके दुःखमे रुलता फिरू ? इसके लिए कोई अवस्था विशेष निश्चित नही कि वृद्धावस्थामे ही रागद्वेष छोड़ना चाहिये या अमुक अवस्थामे त्याग करना चाहिए। ये तो जितना शीघ्र छूट जावें उतना ही अच्छा है। जैसे-जैसे राग बुद्धि करोगे वैसे ही कर्मबन्ध होते जायेंगे, और जैसे-जैसे वीतरागी होओगे तो कर्म स्वय ही तडातड टूटते चले जावेंगे। अतः हे आत्मन् ! तू अपना आत्महित पहिचान, तेरा स्वभाव पापरूप नही। स्वय का सहजस्वभाव चेतन है, ज्ञानपुञ्ज है, ज्योतिपुञ्ज है। भैया ! राग था शादी की, राग था बच्चे पैदा हुए। अब इनके फन्दको स्वय ही तो भोगेगा। अन्य कौन भोगेगा ? आनन्दका घातक राग है। आनन्दका और रागका बैर है। एकके होनेपर दूसरा नही ठहर सकता। जब ये शरीर भी अपना नही तब दूसरोको अपना मानना कहांकी बुद्धिमानी है ? सोचो तब अपना कैसे हो सकता उनका शरीर ? और जब दूसरे जीव अपने नही बन सकते फिर ये अचेतन पदार्थ, धन, वैभव आदि कैसे अपने हो सकते है ? जब अपना है ही नही तब ऐसा

मान कि ये तो छूट जावेंगे। "माननेमे ही राग है, और माननेमे त्याग है।" माने बिना तो रहते ही नही, सो मानते जावो, किन्तु मानो सच्ची बातको ही। जिसने अपने भीतरमे ऐसा उपयोग कर लिया तो बेडा पार है। चाहे कर न सको, किन्तु अन्तरंगसे मान तो लो। ज्ञान सम्यक् रखो, स्वयं सुखी होवोगे।

एक शिष्य था। पढ लिखकर बोला कि गुरुजी! मैं तीर्थाटन करने जाता हू। गुरु बोले—क्या करेगा जाकर अपने अन्दर तो सब हैं। शिष्य नही माना, बोला कि मैं तो जाऊँगा ही। गुरुजी ने आज्ञा दे दी कि ठीक है चले जाओ। जब वह चल दिया तो आगे रास्तेमें उसे एक बारात मिली। दूल्हेको उसने देखा तो पूछा कि भाई यह सब क्या है, क्योंकि बचपनसे गुरुजी के पास रहा था, अतः वह ये सब जानता था नही। तब उसे बताया गया कि ये एक बारात है। फिर पूछा कि बारात क्या होती है? तो वे बोले कि भैया! इसमे एक दूल्हा होता है, उसकी शादी होती है, औरत घरमे आती है, फिर बालबच्चे पैदा होते है। इतना सुनकर वह आगे चल दिया और आगे जाकर एक कुएपर सो गया, तो उसे वही सब दृश्य सपनेमे दिखायी देने लगा कि मेरी शादी हो गयी, औरत घर आ गयी और वह पासमे लेटी है, बीचमे बच्चा लेटा है, औरत कह रही है कि थोडा उधरको सरक जाओ, वह वास्तवमे सरक गया। फिर वह बोली कि थोडा और सरक जाओ। तब वह जैसे ही सरका कि कुएमे गिर पडा। पानीमे गिरनेसे उसकी आँख खुल गयी, तब वह सोचने लगा कि अब इससे बाहर कैसे निकला जावे? कुछ समय बाद उस गाँवका जमीदार लोटा लेकर पानी भरने आया। जैसे ही उसने लोटा कुएमे लटकाया कि उस शिष्यने पकड लिया और बोला कि भैया! मैं भूत नही हू, तुम मुझे बाहर निकालो तो मैं सब कहानी बताऊँगा। उसने उसे बाहर निकाला व पूछा—अब बताओ क्या बात है? कहाँके रहने वाले हो? कैसे कुएमे गिर गये? तब वह शिष्य बोला कि आप हमारे उपकारी हैं, मुझे बाहर निकालकर उपकार किया है, अतः आप पहिले अपना परिचय दीजिये। तब वह जमीदार बोला कि मैं इस गाँवका जमीदार हूँ, मेरी इतनी जमीन है, इतनी दौलत है और भरपूरा परिवार है। तब वह शिष्य कभी उसे नीचेसे देखे, कभी ऊपरसे। वह जमीदार बोला कि तुम मुझे इस प्रकार क्यों देख रहे हो? शिष्य बोला कि मैं तुम्हें नही देख रहा हू। मैं तो यह सोच रहा हू कि जब मैंने तो स्वप्नमे ही गृहस्थी बसायी, तो कुएंमे गिर गया और तुम इस प्रकार अपना समाचार बता रहे हो। अतः मैं समझ नहीं पा रहा हू कि तुम जिन्दा कैसे हो? सो, भैया! जिन्दा तो वही है जो अपना धर्म पालता है, वही जीवन है। वह जीव क्या जिन्दा, जिसे अपना धर्म ज्ञात भी नही। अब तक इस जीवने अनन्त भव प्राप्त किये,

अनन्त जन्ममरण किये। आज यह जन्म है सो इसकी भी गिनती क्या ? जीवन तो तबसे मानो जबसे निज सहजस्वरूपकी दृष्टि बने कि मैं तो स्वतःसिद्ध, अनादि, अनन्त, अहेतुक, नित्य, अन्तः प्रकाशमान, चैतन्यज्योति हू। यह मैं स्वय ज्ञानघन एवं आनन्दमय हू। मैं अपने मे ही अपने आप स्थिर होकर आनन्दमग्न रहूं।

द्रष्टारं स्वयमात्मानं पश्य पश्य न चेतरम्।
तिष्ठानि निर्विशेष चेत्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-१६॥

हे आत्मन्! तू अपने को ज्ञाता व द्रष्टा देख और अपने स्वरूपको अपनेमे पहचान। तू मात्र जानता-देखता है, शुद्ध स्वभाव वाला है! तू ज्ञान स्वरूप सर्वस्व है, तू ज्ञानी है। तेरा काम केवल ज्ञान है, अर्थात् ज्ञानमात्र रहे, यह तेरा काम है, इसके अतिरिक्त और कुछ काम नही।

तू परिपूर्ण है, तू अपनेको ज्ञानमय देख, अपने स्वरूपसे आगे बढकर जहाँ किसी तरगरूप अपनी श्रद्धा हुई वही पर क्लेश है, जन्म मरणकी परम्परा है, ससारका रोना और नाना दुःख उठाना है। वह सब पर्यायबुद्धिको लिए हुए है, सामान्यस्वरूपमे कोई क्लेश नही। जैसे किसी बिरादरीकी पगत है, उसम गरीब भाई, करोडपति, लखपति भाई बहुतसे बैठे हैं, परन्तु उस समयपर कोई अपनेको नाना रूप नही समझता, केवल अपनी जातिका एक सेवक समझता है, वहाँ करोडपति, लखपति, गरीब व पडित सभी एक है, वहाँ नानापन न रहे, यदि रहे तो उनका तिरस्कार हो जाय, उनकी शोभा नहीं होती। इसी तरहसे इस जगत्के अन्दर जितने जीव हैं वे सब एक जातिके हैं, चैतन्यस्वभावमय है, इनमे परस्पर एक दूसरेमे अन्तर नही है। जो अन्तर यहाँ है वह उपाधि साथ लिये रहनेसे आ गया है। फिर भी जो परिणतिको अपनाता नही है, उस अन्तरकी उपेक्षा करता है और चैतन्यस्वभावमात्र रूपसे सबको निरखता है, वह जीव मोक्षका मार्ग पाता है। किन्तु मोही अपनी पर्यायबुद्धिके कारण स्वभावसे विपरीत अपनेको नाना रूप मान लेता है, मैं अमुक कार्य वाला हू, यशवाला हू, कुटुम्ब वाला हू, लडके बच्चो वाला हू, इज्जत वाला हू। किसी भी प्रकार से अपनेको बेकार करना, बस यही वज्रकी चोट—उसके गले पडी, इससे फिर आगे जन्म मरणका चक्कर लग गया। सो भैया! विकल्प छोडकर सब जीवोको समान देखकर जो अपनेको ज्ञाता-द्रष्टा मात्र देखता है वह मुक्तिका मार्ग प्राप्त कर लेता है।

यदि अपने आपको केवल द्रष्टा देखें और सब प्रकारकी विधिसे अपनेको प्राप्त करता रहे याने सामान्यरूप रहे तो अपन आप सुखी हो सकते हैं। सुखस्वरूप तो हम है ही, सो यदि सुखस्वरूप अपनेको जाने तो यह पूर्ण सुखी हो जायेगा। मैं केवल ज्ञानमात्र हू, इस

आत्माका किसी भी पदार्थसे किसी भी प्रकारका सम्बन्ध नही है, मैं स्वतन्त्र हू, अविनाशी हू, ऐसा अपनेको भावनेका निरन्तर प्रयत्न करना चाहिये।

जो कुछ मुझे दीखता है वह सब रूप, रूप ही तो है, और जो आत्मा पदार्थ है वह शरीरसे परे बहुत बडे गुप्त अनूप जातिमय एक वस्तु है। वह सब किसीको दीखता नही है। ऐसा वह बढता ज्ञान मानो शून्यरूपमे बदलना चाहता है। देखो, जो दिखता है वह जानने वाला तत्त्व नही, व जो जानने वाला है वह दिखने वाला तत्त्व नही है। इससे हम स्वय कह सकते है कि अब बोलनेकी कोई गुन्जाइश नही, इस जगत्मे बोलनेका कोई स्थान नही। जो दीखता है वह जड है, उससे बोलनेसे लाभ क्या, जो जानने वाला है वह दिखता नही, उससे बोला ही कैसे जा सकता है, और जो जानने वाले तत्त्व हैं उनके यथार्थरूप विचारो तो केवल ज्ञानमय प्रतिभास ही है, उसका कार्य ज्ञान ही है, इसके अतिरिक्त अन्य कुछ कार्य ही नही है, वह तो अनन्त, अविनाशी, चित् है, इसका कोई नाम ही नही है।

जैसा यह प्रभु है एवं ज्ञानरूपसे साकार यह ज्ञानमय पदार्थ है, ऐसा इस तत्त्वको न जानकर और इसको नाना रूप मानकर यह नाथ दुखी हुआ है। इस जीवको आत्म-स्वरूप दिखाने वाला दुनियामे अन्य कोई उपाय नही है, यह स्वय देख लेता है। जैसे एक कथानक है कि एक आदमी ज्ञानी आदमीके पास गया। कहता है कि महाराज, मुझमे ज्ञान कर दीजिए, ज्ञानी बोला कि यह तो मामूली सी बात है, जो उस नदीमे मगर बैठता है, उसके पास जाओ और उससे पूछ लो। वह वहां गया, जब मगर निकला तो उससे आदमी बोला कि मेरेमे ज्ञान नही है, मेरेमे ज्ञान कर दीजिए। मगर बोला—भाई कुएसे जरा पानी ले आइये, मुझे प्यास लगी है। प्यास बुझा लू, तब तुम्हे ज्ञान बताऊँगा। आदमी कहता है कि तुम तो नदीमे बैठे हुए हो, फिर प्यास कैसी? मगर कहता है कि भाई तुम भी तो ज्ञानस्वरूपमय आत्मा हो, तुम स्वय ज्ञानस्वरूप हो, फिर ज्ञानकी प्रार्थना कैसी?

इस ज्ञानमय पदार्थमे ज्ञान है ही, मैं जानता हू, इसके अतिरिक्त और कोई कार्य ही नही है, जाननेके अतिरिक्त यह जीव कुछ नही करता, तुम अपनी स्वरूपमय आत्मा हो, जगत्के सारे पदार्थ अपने स्वरूपमय है, आत्मामे तो उसका अपना ही काम है, वह अपने स्वरूपसे बाहर कुछ नही करता। आप अपने अन्दर ही स्वयं देख सकते हैं, स्वय यह ही ज्ञाता है, बाहरसे आंख मूदकर अन्तरमे देखो, क्या महसूस होता है? बाहर गये कि उस जालमे फसा, मैं सत्य कुछ देख ही न सकूंगा। बाहरसे भीतरकी वस्तुका बन्धन कैसे लगेगा, बाहरी स्वरूपका बन्धन कैसे लगेगा? वस्तुतः हम अपने ही कल्पना जालमे बँधते है।

कहते हैं, एक बार राजा जनकके पास एक व्यक्ति गया, बोला कि मे बहुत फँसा हू,

परिवारने मुझे बांध डाला है, महाराज ! उस बन्धनसे छुडाएँ। राजाने कोई उत्तर नही दिया, क्या किया कि सामने जो लोहेका डडा खडा था उसके पास गया और डडेको अपनी जेटमे भर लिया व बोला—मुझे इस खम्भेने पकड लिया है, इस बन्धनसे छूटूं तब तुम्हे उत्तर दूंगा। उस व्यक्तिने कहा कि खभेने तुम्हे पकड लिया है कि तुमने खम्भेको पकड़ लिया है। राजा जनक बोले—यही तो तुम्हारा उत्तर है, अरे भाई, तुम्हे परिवारने जकड़ लिया कि तू ही कल्पनासे उन्हे जकडे है। तेरेमे तो तेरा स्वरूप है, प्रभु है और दूसरा कोई नही। तू ही अपने स्वरूपको भूलकर कल्पनाका जाल पूरता है और खुदको बन्धनमे बांधता है।

यह तो अपने-अपने ज्ञानकी बात है, जीवोका उद्धार कहास होता है ? ज्ञान ही उन शान्तिका कारण बनेगा। जैसे-जैसे उस ज्ञानका आदर करेगा वैसे-वैसे ज्ञान बढेगा, जैसे जैसे हम बाहरी बातोमे उपयोग लगायेंगे वैसे वैसे ज्ञानका तिरोभाव बढेगा। सो भैया ! इतना ऊँचा पद पाया है, उत्तम कुल पाया है, इतना साधन होनेपर भी हम अपने ज्ञानका सुधार नही करते तो क्या है ? सब व्यर्थ है, अन्तमे पछताना ही हाथ आयेगा। एक मनुष्य था, उसको किसीने ऐसा उपाय बताया कि इस पहाडमे बहुतसे पत्थर है, इस पहाडसे तू पत्थर ले आ, उनमे कोई पारस भी मिलेगा। उससे तू फिर मनमाना लोहेका सोना बना लेना। तब उसने दो चार ट्रक पत्थर समुद्रके किनारे गेर दिये और समुद्रकी ओर लोहेका खम्भा जैसा मोटा डंडा रख लिया, वह पत्थरको डडेसे मारे, देखे व समुद्रमे डाल देवे। एक पत्थर मारा तो देखा कि लोहेका खम्भा सोना नही हुआ। उसने पानीमे डाल दिया, अब ऐसा बार बार करता गया। एक बार पारस पत्थर भी हाथ आया, उसे भी, उसी धुनमे लोहेके डडेसे मार समुद्रमे फेंक दिया। अब देखता है कि लोहेका डडा सोना हो गया, समझता है कि वह पारस पत्थर था जो समुद्रमे फेंक दिया। इसी तरहसे फिरसे जन्म लिया और फिर मरण आ गया। इस तरह मानवका जन्म-मरण होता रहता है तथा उन्ही-उन्ही विषयोके कार्यमे लगे और मरे, उसी ध्वनिमे लगे रहे, और विषयभोगोमे लगे-लगे मरण किया। बडी अवस्था हुई कि पछतावा होगा, यो ही जिन्दगी गंवा दी। न आत्माको धैर्य दिया, न विश्रामसे रहे, न ज्ञानका अनुभव किया। जो कुछ भी किया, वह मिट जाने वाला ही काम किया।

प्रभो ! तू केवल ज्ञानमय तत्त्व है, तेरेमे दूसरे पदार्थका कुछ नही आता। जो तुझ पदार्थमे है वह बाहर नही जाता। तुम अपनेको स्वय देखो, अपने आपको जाननेकी पद्धति प्राप्त करो। कही कोई भी अन्य तत्त्व इस नाथमे नही है। इसका स्वरूप ज्ञानघन है, आनन्दमय है, इस प्रभुसे अन्य पदार्थका सम्बन्ध नही है। और ऐसा ही देखे तो इसकी दुनिया अलौकिक हो जायेगी और फिर उस भावसे समस्त विपदाए समाप्त हो जायेंगी।

जगत्के प्राणियोको जितना भी क्लेश है वह सब रागका ही क्लेश है। जैसे इच्छा हो कि क्लेशको दूर करना चाहिये, तब उसका अर्थ यह समझो कि राग दूर करना चाहिये। इसका भी उपाय सोचना चाहिये कि रागको कैसे मिटाना है? राग मिटे तो क्लेश मिटेगा और राग न मिट सका तो क्लेश नही मिट सकता। राग मिटनेका उपाय क्या है? उसका उपाय यह है कि अपने स्वभावको रागरहित देखना चाहिए और अन्य उपाय करो तो यह राग दब तो जायगा पर मिटेगा नही, जैसे किसी वस्तुका राग है तो उसके खिलाफ किसी काममे लग जावे। तपमे, पूजामे, परोपकारमें लगे और कोई उपाय है तो उसे करना चाहिये जो कोई और उसका उपाय है वह सब करना तो चाहिए परन्तु इस उपायसे राग दब तो जायगा, पर राग मूलसे नष्ट न होगा। मेरा रागमे रहनेका स्वभाव नही है यह तो सब मोह की लीला है। अपनेको रागरहित ज्ञायकमात्र देख सकता है। यदि वह शान्तिका व राग मिटनेका मूल उपाय है, जो इसके आगे देखता है, अपना वैभव कुटुम्ब आदि देखता है, यह सब उसके मोहके मोहकी लीला है।

हे आत्मन्! तू मात्र ज्ञानस्वरूप है, तू अपनेको केवल ज्ञानस्वरूप तो देख, इतना तेरा सर्वस्व है, इतनी यह उसकी सारी दुनिया है, इसके अलावा और मैं कुछ नही हूं, इस रूपसे तू अपनेको देख, इतना तो साहस कर कि एक बार समस्त पदार्थोंकी उपेक्षा कर, मैं ज्ञानमात्र हू, ऐसा अनुभव कर। विकल्प जब दूर होगा तो विपदायें सारी दूर होगी जगत् के पदार्थोंसे इसको विपदा नही आती, यह प्राणी अपने विचारोको बनाकर स्वय दुःखी हो जाता है, बस इसीका नाम विपदा है। बाहरी तो बाहरी ही है। बाहरी पदार्थोंसे कैसे विपदा आयेगी? विपदा तो उसके ही अन्दरसे आती है, विकल्पका नाम ही विपदा है। कोई मानता है कि उसके पास धन कम है, धन कम होनेसे विपदा नही है, किन्तु धनसे अपना हित समझकर, फिर धनकी कमी सोचते रहना ही विपदा है। इसलिये विपदा तो ज्ञानसे दूर होगी। भ्रमसे उत्पन्न हुई विपदाका नाश भ्रमनाशक ज्ञानसे होगा। इसका एक-मात्र उपाय है—रागरहित अपना स्वरूप देखे।

जैसे किसी पुरुषको किसी बातका भ्रम होनेसे वह दुःखी हो जाय तो दुःख दूर करने का उपाय केवल भ्रम दूर कर लेना ही है। जैसे कि स्वप्न देखनेसे दुःख हुआ, स्वप्नमे खोटी बात देखी, खोटी बातसे जो दुःख उत्पन्न होता है उसका नाश नीद खुल जानेसे होता है। जैसे स्वप्नमे देखा कि मैं जगलमे घूम रहा हू। देखा कि एक सिंह सामने आ रहा है, वह मुख बाये चला आ रहा है, यदि यह देखते हैं तो क्लेश होता है। उस दुःखको मिटानेका कोई उपाय है, सुन्दर हवा चले तो क्या क्लेश दूर हो जायगा, क्या माता पिता पास बैठे हो तो

अपने बारेमे तो सोच नही पाता, दूसरेको जरूर अनित्य समझ लेता है यानी दूसरेकी अनित्यता तो मनमे भर रक्खी है कि यह उसका है, मिट जाता है, लड़के उसके हैं, वे मर सकते हैं, यह दूसरा है मर सकता है किन्तु मैं यह मरने वाला हूं, अपने पक्षका खण्डन कुछ नही कर सकता हू। दूसरोके परिवार, धन, बच्चोके प्रति कह लेता कि इनका है क्या, भला अपने घर वालोको ऐसा कह पाता है क्या, उस जीवका स्वरूप विलक्षण कुछ अलग बैठा है क्या ? किसका कौन है ? कोई आदमी अपने देशसे भागकर लुटिया डोर लेकर चला, दो एक रुपया लेकर चला। किसी शहरमे ठहर गया। वह १०-५ वर्षमे हो गया लखपति। उसने यह नही सोचा अपनेको कि यह लाखोका धन मेरा नहीं है किसी सालमे आ गया टोटा। रह गये कोरे, तब उसने समझ लिया कि मैं लुटिया डोर लेकर ही तो आया था मेरा क्या है ? ऐसे ही आया ऐसे ही गया, इसी तरहसे वियोग होने पर तो हमने समझ लिया कि हमारा कुछ नही है, न मेरा कुछ होगा, पहले भी कुछ नही था। पुण्योदयसे जो जो मिला है वह सब हमारा कुछ नही है। यह सब तो परवस्तु हैं, यह बात तब समझमें आती है जब उसका वियोग हो जाता है जैसे दादा, दादी वगैरह जो मर चुके हैं उनके बारे मे तो यह निर्णय कर लिया है कि वे मेरे नही थे किन्तु जो अभी समागममे हैं उनको नही सोच पाता कि ये मेरे नही हैं। सत्य विश्वास हो जाना कि उसका कुछ नही है यह कठिन है, सत्य है, विश्वास न करें तो भविष्यमे भी जरा भी संतोष नही होगा। अपने यथार्थ-स्वरूपको समझता है जो उसीको ज्ञानी कहा है। जो वर्तमानमे मिला है वह अत्यन्त भिन्न है, इसका कोई स्वरूप मुझमे नही है ऐसी दृष्टि वर्तमानमे मिली हुई पदार्थोंमे आ जाय उसे कहते हैं ज्ञानी। जिसने यह कर लिया उसका बेडा पार और नही कर लिया तो यहाँ भी दुखी और मृत्युके समय भी दु:खी और जहाँ जन्म लेगा वहाँ भी दु:खी सब जगह दुःख। जैसे यहाँ सब लोग कहते है कि ससुराल चनेकी खेती है, जैसे शुरूमे चना उग गया उसमे हरे पत्ते आये, पत्तोंकी साग काम आयी, हरे चने लगे तब बेटी तोडकर चने खाये और गदरा हुए तो होला बनाकर खाया, जब खूब पक जाय तब दाल बनाकर खाया, सेव बनाकर खाया। ऐसे ससुरालमे सगाईमे रुपये पाये, शादीमें धन लूटा, बच्चे हुए तब धन लूटा, बच्चे की शादी हुई तो धन लूटा, लूटते चले जाते हैं। ऐसे ही यह अज्ञान है इस अज्ञानमे हर जगह दुःख है। जिस समय अज्ञान है तब तो दु:ख होगा, मरणके समय वियोग है तब दुःख होगा, मरनेके बाद जो भव पाया वहाँ दुःख। सो भैया! अज्ञानसे हटकर अपने स्वरूपका निर्णय कर लो। पैसा अपने पास न्यायसे थोड़ा श्रम करके जितना आये उसीमे हिम्मत करके गुज़ारा कर। अपने हाथके परिश्रमसे जो आता है, उसका संतोष कर शर्म छोड दे

कि दुनियाको कुछ दिखाना है। केवल भगवान्‌को देखो तुम्हारे ज्ञानमें यह प्रभु आया कि नही। जो न्यायसे मिले उससे गुजारा करना एक तपस्या है, कुछ क्लेश है और बने तो कुछ भी नही, तब तो इसका आनन्द समझमे आयेगा, नही, तो धोखा खायेगा। अपनेको ही देख ले मेरा भगवान् स्वरूप मेरी रक्षा कर सकता है दूसरा कोई नही, जब घरेलू कार्य घने बढते है तो इसके मोक्षमार्गमे बाधा डालते हैं। सादगीसे रहना मोक्षमार्गकी बाधाओको दूर करना है। जब शान शौकत कम करदी जाती है तब सन्मार्गमे बुद्धि चलती है। जो ज्ञानी जीव है उस जीवको इतनी फुरसत कहाँ कि वह शरीरके श्रृङ्गार करे। ज्ञानी तो गृहस्थोमे रहता जरूर है किन्तु जलमें कमलवत् भिन्न है, उसको तो लौकिक काम करने पड़ते हैं, किन्तु भावना यह है कि कब घर छोड़कर अपने स्वरूपमे रम स्वय ज्ञातामात्र बनूं। ऐसा ही स्वरूप सब जीवोमे है। जो सर्वस्व मेरा स्वरूप स्वाधीन है समतासे भरा हुआ है, मैं अपने स्वाधीन उस शान्त स्वरूपको देखकर अपनेमें अपने आप स्वय सुखी होऊं। दूसरोकी आशा न करें कि यह जीव उसे सुखी कर देगा, यह पदार्थ कर देगा। जब भी सुखी होगे तब अपने ज्ञानसे अपनेमें स्वयं ही सुखी होगे।

यत्रैव भासते विश्व सोऽहं विश्व न साकृति।
ज्ञाता द्रष्टा स्वतन्त्रोऽहं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-२४॥

मैं क्या हू, जहाँ यह सारा विश्व प्रतिभासित होता है वह मैं हू। ज्ञानका काम जानना है, थोडा जानना नही, बस जानना है सब जानना है, क्योकि आत्माका स्वभाव जानना है। उस जाननेमे सीमा नही है, कितना जानना उसका तो जाननेका स्वभाव है और जानना कोई सापेक्ष नही है कि सामने की ही जाने, जान जावो सामनेकी, ठीक है, किन्तु उसके हिसाबसे जानना नही है किन्तु यदि कोई वस्तु है उसको जानना है, सतके हिसाबसे जानना है, सामनेके हिसाबसे जानना नही है, १०, २० कोसके हिसाबसे जानना भी नही है, किन्तु है तो वह सब जानन, चाहे वह क्षेत्रकालकी दूरीके रूपसे है चाहे किसी तरहसे है, है तो जान लेना। फिर आत्माके ज्ञानका कितना जाननेका स्वभाव है? कितना है? कितना जाननेका काम हैं? सब जो कुछ भी सत् होता है वह सब जाननेमें है किन्तु यहाँ मुझमे जगत् नही है और आत्मामें जो यहाँ आकार बन गया, आत्मामें ज्ञेयाकार बन गया, प्रतिभास बन गया वह भी मैं नही, ऐसा मैं शाश्वत हू, किन्तु दुःखकी बात है कि उस पर दृष्टि नहीं, जहाँ पर सारा विश्व प्रतिभासमान होता है जहाँ सारा विश्व प्रतिभासित होता है वह तो मैं हू पर मैं प्रतिभास नही, क्योकि मैं आनन्दनिधि ज्ञान चेतनामात्र हूं, शक्तिमात्र हूं। आत्म-स्मरण करके ज्ञानमे ज्ञान समझा तब योगी महासुखी हुए। ससारमे

रहता तो किसीका कुछ है नहीं, सब मिटेगा, सबका बिछुडना होगा, लेकिन जब यह मिलता है उस समय ऐसा समझ ले तो उसका बेडा पार है और यदि उल्टा समझ ले और मरण के समय छोडना पडे तो सब बेकार है। जगत्मे ठाट-बाट हैं, मोहके साधन हैं, पैसा है, धन है, नौकर है, चाकर है, अच्छे अच्छे महल बने है मगर समझाने वाला विवेक जब भीतरसे आता है तो आरामके साधन सब विष लगने लगते हैं। समझाने वाला कोई हो छोटे बडेकी अपेक्षा ही नही। जब भविष्य अच्छा है तो उसका ज्ञान बढ़ेगा, विरति होगी, आत्मदृष्टि जगेगी, भीतरकी प्रेरणा हा इस जीवको समझा सकती है।

गुरुजी एक कथा सुनाते थे कि एक बाजारमे कुजडिया थी, भाजी बेचने वाली। बादशाह सामनेसे निकला। देखा कुजड़ियाकी लडकी भी वहां बैठी थी, बादशाहने इच्छा की कि शादी हो जाय। वजीरने कुजड़ीको बहुत समझाया कि बादशाहकी ऐसी इच्छा है कि हमारी शादी इस लड़कीसे हो जाये। कुजडियेके यहाकी भड़वे-भडवेकी बोली, सो कुजडी यही गाली देकर बोली कि लड़कीकी शादी वहां होगी जहां १० बातें गालीकी भी सुनाई जावेंगी, बादशाहके यहां ऐसी कुछ बोलचाल ही नही। दीवान गया, और भी लोग गये सबको गाली सुनाई। एक सिपाही बोला—महाराज, अभी मैं ठीक कर सकता हूं। उसे क्या चाहिये था? बस, सिपाही गया, कुजडियेकी चोटी पकडी और खूब झटकारा। कुजड़ियेने कहा बात क्या है आखिर बताओ तो क्या बात है? बात क्या है, देख यह बात है कि तेरी लडकीकी शादी बादशाहसे की जायगी, कुजड़ी बोली कि ठीक है, सिपाही बोला कि तू तो पहले करनेको तैयार नही थी। कहने लगी—भडवोका भडवा कोई समझाने वाला नही मिला जो मुझे यों बताता। हां यो इस तरह समझाने वाला कोई है नही। जैसा मोहियोने चाहा वैसा किया कर्तव्य कुछ नही सोचा। हां, तो इस जीवको जैसे कर्तव्य करना हो तो विवेक उसको सभाल सकता है। पर अन्य कोई ऐसा जीव नही है जो उसकी रक्षा कर सके। विवेक ही रक्षक है। संसारमें हम अपनी परिणतिको देखते है तो अभी हीन हैं, पराधीन हैं। इस परिणति का क्या है कुछ धन हो गया, क्या मिला? तू तो ऐसा स्वरूप वाला है कि सारा विश्व तुझमे प्रतिभासित हैं। सर्वद्रष्टा बन, इतना बड़ा तू है, मगर इस बड़प्पनको भूल गया, लौकिक इज्जतको क्या समझता? यदि मरकर कोड़े-मकोड़े बन गये तो फिर क्या होगा? अपने आप कैसा है शुद्ध, सबसे निराला, चेतनामात्र, नामरहित एक आत्मतत्त्व है, एक ऐसे जीवसे उसका जरा सम्बन्ध नही। अगर मै मानूं कि परिवार मेरा है तो वह भी मूर्खताका नाम है। सब वस्तुओमे से उत्कृष्ट तो निज भगवान् है, परिवारको समझा कि यह मेरे हैं, साधु इत्यादिको समझा कि मेरे है, वहां मोह है। जहां भगवान्को समझा कि मेरा है वहां

भी मोह है। केवल एक शुद्ध मैं ज्ञानस्वरूप द्रष्टा , वहां मेरा क्या है ? इसका ऐसा मोह हो गया कि वह दुश्मनसे भी ममत्वका प्रेम दिखाता है कि यह उसका दुश्मन है। मेरा तो मान लिया औरोको कि यह मेरा है। सबसे निराला जो आत्मस्वरूप है उसे तो समझा ही नही। किसीको अच्छा खाना मिलता है। कुछ बढिया खाना मिला तो क्या हो गया ? इससे बढिया काम, तो आत्मस्वरूपके दर्शन है, क्योकि विषयकषायोसे पूरा ना नही पड़ सकता, पूरा तो पडेगा आत्म-विश्वाससे। पर देखो यह सारा विश्व कितना बडा है ? ५२६ $\frac{6}{19}$ योजन और एक योजन होता है २ हजार कोसका। ऐसे ५२६ योजनका यह भरतक्षेत्र है। यह क्षेत्र जम्बूद्वीपमे है। यह सब माप इसलिए बता रहे हैं कि यह ध्यानमे आ जाय कि इतना बड़ा यह सब लोक है और इसमे एक भी प्रदेश ऐसा नही बच जाता है जिसपर यह अनन्तो बार जन्म मरण न कर चुका हो। इस जम्बूद्वीपके चारो ओर समुद्र है। इस तरह समुद्रके बाद द्वीप चलते चले जाते है। अरब, खरब, नील, दस अरब, शख, महाशंख, शंखसे अधिक आजकी भाषामे संख्या नही, किन्तु इनमे कई गुणा असंख्य याने जिनकी गिनती नही है इतने द्वीप समुद्रके हैं। अन्तमे स्वयंभूरमण समुद्र है यह सब मिलकर भी एक राजू नही कहलाते। इस तरह ३४३ घन राजू दुनिया है। इतना बडा यह सारा विश्व है। इस सारे विश्वके बीच अगर एक कोनेमे आ गये याने १०-२० मीलकी इस एरियामे परिचित हो गये तो क्या बडी बात हो गयी ? जगत्मे अनन्तानन्त जीव हैं। इन अनन्त आत्माओमे मनुष्य कितने है ? अनन्तानन्त जीवोके मुकाबलेमे सारे मनुष्योकी कुछ गिनती नही। समुद्रमे तो एक बूंदकी फिर भी गिनती है। थोड़ेसे जीवनमे अपना आत्मबोध करके अगर कुछ अपने हितका यत्न कर रखा है तब तो तुम्हारी तारीफ है और अपने इस थोडे समय बाद आयु समाप्त हो जाय और जन्म मरणके झगडे लगाये रहे इसमें कुछ बुद्धिमानी है क्या ? अच्छा बताओ कोई ऐसा समय था कि जिससे पहले समय ही नही था। क्या यह हो सकता है कि कोई भविष्य मे ऐसा समय आयेगा कि उसके बाद कोई समय ही न रहे। ऐसे अनन्तकालके बीचमे यह ५० वर्षका समय बीत जाता है। यह ६०, ७०, ८० वर्षका समय क्या कुछ गिनतीमे रहता है, फिर थोडेसे समय ५०-६० वर्षके लिए इतना उत्पात मचाना, गर्व करना, पक्षपात करना बाहरी पदार्थोंसे झपटते रहना और उसमे अपनेको एकमेक समझना क्या यह विवेक है ?

सो भैया ! यह सब मायामय चीज हैं। अपने अन्तरमे स्वयको देखो और शुद्ध ज्ञानमात्र बनो। कैसा भी समय हो अपने भीतरकी दृष्टिसे भावात्मक निजमें उपयोग कर लो स्वरूपमे केवल आनन्द ही आनन्द है, दुःखका नाम नही है। ऐसा चैतन्यभावात्मस्वरूप जहां कोई लोग कहते हैं—ब्रह्म है और एक है। यह चैतन्यस्वरूप आत्मतत्त्व जब भावदृष्टिसे ही

दृष्ट हो तब इसमें अनुपम आनन्द है । हम अपने चैतन्यस्वरूपको देखें वह एक भी नही है, अनेक भी नही है, वह तो स्वरूप ही स्वरूप है वह अन्य अन्य रूपोमे नही और एक भी नही है । मैं स्वरूपमात्र हूं ऐसा वह तत्त्व है । जहाँ लोग पुरुष या ब्रह्म या ईश्वर मानकर उपासना करते है ऐसा शुद्ध तत्त्व मैं हूं, ऐसा मानकर अपनी ओर दृष्टि करें तो मुझे सुख है । जहाँ विश्व प्रतिभासमान होता है वह तो मैं ईश्वर, विश्व मैं नही हू, वह ज्ञेयाकार भी नही हूं, बाहरी कोई भी चीज सुखके लिए नही है । रागमे अन्धा बनकर चाहे कुछ भी कर लें । विवेकसे सोचो तो कौनसा सम्बन्ध सुख है वैभवका या परिवारका सम्बन्ध इस सुखके लिए है कोई भी नही है, सब सम्बन्धोमे दुःख ही दुःख हैं । मैं ही स्वयं हितरूप हू, सहज अनन्त आनन्दमग्न हूं, सर्वदर्शी हूं, मैं तो ज्ञानी हूं, द्रष्टा हू, स्वतन्त्र हूं, अतः मैं अपने इस ज्ञानस्वरूपसे अपनेमे अपने लिए स्वयं सुखी होऊँ । किसी भी बाहरी पदार्थमे दृष्टि की या अगर किसीकी आशा की तो इतने ही मे याने बाह्यवस्तुकी आशा करने भरमे ही दुःख हो गया । भैया ! अपने ज्ञानस्वरूपको देख उसमे सुख है । मैं आत्मा ज्ञानस्वभावमात्र हूं यह नही समझता, इसलिए चमत्कार बाह्यपदार्थमें सब कुछ देखना चाहते है जहाँ यह सारा विश्व प्रतिभासित हो वह मैं हूं, मैं तो उसे जानने वाला हू । बस जान लिया, अपने ही को जान लिया, इसमे समस्त ज्ञान आ जायगा । लोकमे भी देखो यदि इतना ही कहो कि हम तो जान गये, कोई पूछे क्या जान गये, उत्तर दो । बस जान गये, सब जान गये, हम तो जान गये तो वह इतना समझेगा कि वह क्या-क्या जान गया, सब जान गया होगा । फिर परमार्थमे तो यही सही है कि केवल जानता रहे तो वह सारा विश्व जान गया । आत्माका यह स्वरूप ऐसा महत्त्वशाली है कि यह ज्ञानमे आ जाय तो सर्वोत्कृष्ट वैभव मिल गया । बस मोह करना मिटा दे कि ज्ञानचक्षु काममे आए । मैं ज्ञानस्वरूपकी आराधना करूं उसमे ही आनन्द है ।

स्वाभिन्नं न हित किञ्चिदद्वैतोऽहं हिते क्षमः ।
द्वैताश्रिता मुधा बुद्धिः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१–२५॥

अपने से भिन्न कोई भी पदार्थ अपने हितरूप नही । एक ही यह मैं अपना सर्वस्व हूं, अपना हितस्वरूप ही मै हू । मैं ही अपना हित करता हू और मैं ही अपना अहित करता हूं । जहाँ विषय कषायोमे लगे वहाँ अपना अहित कर डाला और जहाँ अपने सहज शुद्ध स्वभावमे झुक गये कि अपना हित कर डाला, हित और अहितका उपाय इतना ही मात्र है । यावन्मात्र विषय कषाय परिणमन है वह सब अहित है । उन विषयोमे छटनी कर ले कोई कि ये हित करने वाले है व ये अहित करने वाले हैं वह सब अज्ञानके स्वप्न हैं । जो

भी समस्त विषय हैं वे सब हानि करने वाले हैं। आनन्द तो ब्रह्मरुचिमे है और सब व्यर्थ की बात है। प्रभु जैसी आनन्दकी झलक हो और सब व्यर्थकी बात है। धन, वैभव बढ गया, चार लोग पूछने लगे इस बातसे क्या लाभ है, कुछ आनन्द नहीं होगा, सब जंजाल विपदाएं हैं, शुद्ध ज्ञानसे आनन्दका अनुभव है। सो वह काम उसका स्वभाव है। अंतरसे विकल्प विपदाको हटा दिया जाय तो उसका हित है। इसका सुख आत्मानुभव ही है, इसका सुख किसी अन्यके आधीन नही। मैं केवल यह मात्र अद्वैत अपनेमे अपना कार्य करनेमे समर्थ हू। मुक्तिका काम मिल जुलकर नही होगा, मिल-जुलकर तो कोई भी काम नही होता है, पर फिर भी दुनिया मिल जुलकर करती चलती दिखती है। लोगोमे मोक्षका काम मिलकर होगा क्या? शातिका उपाय एक ही अद्वैतभाव है। जब रामचन्द्रजी तपस्या कर रहे थे वहां सीताका जीव प्रतीन्द्र आया, इसने तपस्यामे बडी बाधा डाली इसलिए कि इन्हें अभी मोक्ष न हो जाय, फिर हम दोनो मिलजुल कर जावेंगे। सो भैया ऐसा हो जायगा क्या? जहां मिलने जुलनेकी बात है वहां मोक्ष बन्द है और जहां केवल अपने आपमे अकेला रह जाना है वहां मोक्ष पदार्थ है। मेरी हानि करने वाला मैं ही स्वय हू कोई दूसरा नही। परतन्त्रताका तनिक भी अनुभव न करना, स्त्री है तो क्या, बच्चे हैं तो क्या, बडा है तो क्या, परतन्त्रताका अनुभव न करो, हां यह बात जरूरी है कि जब जब व्यवहार लगा है तो प्रेमयुक्त विनय व्यवहार करो। एक दूसरेसे ठीक बोलना, जहां तक बने अपना कष्ट उठाये रहना, दूसरोको कष्ट न देना, जहां तक हो सके दूसरोकी सेवा उपकार कर देना, ठीक वचन बोल देना, पर अन्तरंगमे दूसरोंकी अपेक्षाका अनुभव न करना कि मेरी रक्षा करने वाले ये हैं, यह पिता हैं, मेरी रक्षा करने वाले हैं, यह पति है, मेरी रक्षा करने वाले हैं, यह स्त्री है मेरी रक्षा करने वाली हैं। मेरा भगवान ही मेरी रक्षा करने वाला है। कायरताका अनुभव न करो, नही तो यह जीवन दुखी हो जायेगा।

देखो भैया! अपनेको मिला भी क्या है? वह तो प्रगट न्यारी वस्तु है। उसमे सम्बन्ध ही क्या? दुनियावी दृष्टिसे मन, वचन कायका संयोग है। इनका सदुपयोग करो, अपनेको ही पुण्य बना लो, ईमान साफ रखना। फिर कभी कोई गल्तीकी बात भी नही की हो और यदि लोगोमे पक्षपात है जिससे तुम्हारा अपमान हो तो भी मान अपमान क्या मानना? अहकार है तो किस बातका है? तुम्हे तन मिला है, मन मिला है वचन मिला है, धन की तो कोई बात कहना ही नही, धनकी तो विचित्रता है, किसीके पास धन है किसीके पास नही; पर तन, मन वचन तो सबके पास हैं, वे तो विनाशीक हैं उनका सदुपयोग कर लो। वह जीवन सुखमय होता है जब तक तनमे बल है तब तक जो दूसरोकी सेवा करे

दूसरोका उपकार करे और न करे तो इस तनमें बलका संचय हो जायगा क्या और करोगे सेवा तो हानि नही हो जायगी, करोगे तो लाभ होगा। तो वचन मिला बोलनेको तो प्रिय हित वचन बोलो। प्रियवादीको कही विपत्ति नही और अप्रियवादीको जगह जगह विपत्ति है एक ऐसा कथानक है कि एक बार दांत और जीभमे झगडा हुआ। दांत बोला, तू क्या इठ॰ लाती है तू तो अकेली है हम ३२ है। तू अकेली है हम ३२ के बीचमे, जिस दिन मनमें आयेगा बस तू खत्म हो जायेगी। बड बड़ मत कर, जीभ बोली। ३२ हो तो क्या हुआ हममे तो वह कला है कि हम बत्तीसोको तुडवा दें। सो देख लो भैया, तुम अप्रिय किसीसे बोल दो, फिर तो दो चार मुक्कोमे ही बत्तीसी झड़ जायगी। आपको मिला है भिन्न और विनाशीक तन, मन, वचन। सो भैया, तनसे सेवा नही करेगा तो तन वेकार है, करेगा तो सफल है, नही करेगा तो नही। मन है अच्छा, अच्छा विचार कर लो, सोच लो दूसरोका सबका हित सोच लो। दूसरोका बुरा सोचा तो अपना कल्याण करेगा? दूसरोका अहित सोचनेसे तेरा मनोबल कम हो जायगा, दुःखी हो जायगा। जीवनमे एक गुण तो यह आना ही चाहिए कि हम तन, मन, वचनको बरबाद न करें। परमार्थसे तो तू अपने दर्शन कर आत्मरूपमे रम। अपने बलमे विश्वास करो तो तुम्हे अलौकिक आनन्द प्राप्त होगा। वह आनन्द बाहर कहाँ रक्खा है जिनमे तू मोह करता है। सबसे विरक्त रह व्यवहार जरूर

मित प्रिय वचनका कर। ममतापूर्वक दूसरोकी ही सेवामे तू क्या पावेगा? दूसरोसे सुख नही होगा यदि ठीक भी बोले तो क्या? सभी बार ठीक बोल लेंगे परिवारके लोग और यदि दो बार कडुवा कहा तो अच्छाई खत्म हो जायगी। जैसे कि बढ़िया बढ़िया भोजन बनाकर खिला दो और फिर बादमे कहो कि तुम्हारे बाप, दादाने कभी ऐसा अच्छा खाया है, बस सेवायें की और एक खोटा वचन बोला तो जितनी सेवा होगी वह सब वेकार हो जायगी।

सो भैया! आप पहलेसे ही समझते जायें कि यह लडका जुदा है। इसका पालन-पोषण करने वाला अन्य कोई नही है यह अपने पुण्यसे पलता है। फिर आपका तो यह मात्र कर्त्तव्य है कि उसको पालपोस लें, अगर बापसे बढ़कर पुण्यवान् लडका है तो फिर क्या है भाग्यसे ही तो यह लड़का इतनी सेवायें पाने वाला हुआ। बापसे भी बढ़कर पुण्यवाला लडका हो क्या यह नही हो सकता। कैसा ही हो मगर बच्चेकी जो रक्षा होती रहती है उसमें ऐसा सोचना आसान है—लडका मेरा है मैंने ही तो पाला है, इसका कुछ ठिकाना लगाया कुछ बेडा पार किया। मोह अगर बढ आवेगा तो उसका फल घोर दुःख ही है। यदि ज्ञान पहले ही से बना रहेगा तो जीवनमे क्लेश न होगा। आपसे न्यारा कोई अन्य

पदार्थ आपको हानि कर दे ऐसा कदापि नही हो सकता। प्रत्येक पदार्थ अलग-अलग स्वरूप लिये हुये हैं, अपने अपने ही मे वे परिणमन करते है, एक बात जरूर है एक भले संगमें रहने से संगमे रहने वाले भी भले हो जाते हैं और बूरे संगमे रहनेसे खराब हो जाते हैं, पर भाग्य सबका न्यारा है। एकत्वका आश्रय ही अद्वैतका आश्रय है, मेरी रक्षा करने वाला मैं ही हो सकता हू और वह कैसा है ? सहजस्वरूप लिये हुये है, सहज सत्ता लिए हुए है। ऐसा मैं हू स्वयं स्वरूप लिए हुए हू, यह है अद्वैत बुद्धि और अपना स्वरूप भूलकर दूसरा ही मेरा सर्वस्व है, ऐसी बुद्धि करना सो द्वैतबुद्धि करना है। दूसरोका आश्रय करके जो विकल्प करने वाली वस्तु है, उससे अहित ही होता है। अन्यकी ओर दृष्टि करनेसे विकल्प होते हैं, विकल्पसे मलिनता बढ़ती है।

एक कोई ब्राह्मणका लडका था, पढ लिख गया, उसने कहा हम शादी करेंगे तो अन्धी लड़कीके साथ करेंगे, हमारी अन्धीसे शादी हो। शादी हो गयी, उस स्त्रीने कहा तुमने ऐसा क्या कर लिया। कुछ दिन बादमे दो तीन लडके हो गये। बाद वह अन्धी जिद करने लगी कि मेरी आख खोल दो, तुम तो मंत्र बहुत जानते हो उसने आँखें खोल दी। दो तीन वर्ष बादमे एक बच्चा और हो गया। एक दिन उस स्त्रीने कहा कि तुम मेरी आँखें पहिले क्यो नही खोलते थे ? पुरुष बोला अच्छा, आज एक काम करना, रोटी मत बनाना लडके आयें और कहे कि रोटी क्यो नही बनायी तो कहना कि तुम्हारे बाप हम गाली देते हैं, नाराज होते इस कारण हमने रोटी नही बनायी, फिर जो वे उत्तर दें मुझे बताना। उसने रोटी नही बनाई। बडा लडका आया बोला माता जी आज रोटी नही बनायी, माँ बोली कि तुम्हारे बापने गाली दी है इससे रोटी नही बनाई। लडका बोलता है कि आप माता हैं और वे पिता हैं आप लोगोके बीचमें हम क्या कह सकते है किन्तु दुःख नही सह सकते, हम भूखे नही रह सकते हैं।

दूसरा आया, तीसरा आया, वही बात हुई। चौथा लडका आया और बोला अम्मा आज रोटी क्यो नही बनाई ? माँ ने उत्तर दिया कि हमे तुम्हारे बापने गालियाँ दी है, इस से रोटियाँ नही बनाई। तो वह चौथा लडका बोला कि अम्मा, बाप बापको हम अभी देख लेंगे, तू तो रोटी बना, हमे तो भूख लगी है। देखो भैया ! आँख खुलनेके बाद स्त्रीमे चतुराई आयी, लोगोको देखा विकल्प बढे, विकार बढ़ा, उस ही का फल देखो चौथे लडकेने क्या कहा ? भैया ! यहां कोई आनन्दका साधन नही, आपको जो आनन्द आता है वह लौकिक एव विनाशीक आनन्द है। आपको चाहे जो समय हो, कुछ भी साधन हो सर्वत्र जो आनन्द मिलता है वह आनन्द स्वयंका ही मिलता है।

इस रास्ते ऐसा निर्णय करके मेरे वास्ते मैं ही जिम्मेदार हूं, मैं अपने परिणामको सदा शुद्ध बनाता व अपने स्वभावका दृष्टि कर सकूं ऐसा भाव बनाए रहे। किसी भी प्राणी का अकल्याण मनमे न पाये ऐसा भाव बना लें तो बेडा पार है अन्यथा दुःख ही है। भैया! मनुष्य कुछ कर तो सकता नही, केवल भाव करना है। जैसे बच्चोकी पंगत होती है तो है क्या उनके पास, कुछ नही और कहते हैं पत्ते परस कर कि रोटी खावो, केवल ककड परोस कर कहते हैं गुड खावो। अरे जब कल्पना ही करना है तो पत्तोको रोटी कहकर क्यों परोसते हो, पूड़ी कहकर परोसो, कंकड़को लड्डू कह लो। इसी तरह केवल सोचना ही है तो बढ़िया कल्पना करो। वहाँ तो भैया! परमार्थ नही, यहाँ तो परमार्थ है, सत्य है। सो मनुष्य कुछ कर नही सकता सिवाय सोचनेके, तब बुरा ही क्यो सोचे, अच्छा सोचे, अपना निधि अपना भगवान् अपना स्वामी जो कुछ है वह मैं ही अपने आप हू। इसलिए मैं अपने आप अपनेमें अपने लिए स्वयं दृष्टि करूँ और कष्टमुक्त होऊँ।

सहजानन्दभाव: क्व क्वेमे रागादि वैरिणः।
सहजानन्दसम्पन्न: स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१–२६॥

मेरा सहज आनंदस्वभाव है, उस आनन्दस्वरूपमें जो करता हूं वह मैं हू। यदि राग मे वैरी व्यभिचारी भाव नही उठा तो आनन्दमे कभी नही हो सकती, परन्तु जो इनमे किसी विकारमें झुक गया वह आकुलित ही होता है। आत्मन्, तू निज आनन्दस्वभाव व विकार परिणति इनका अन्तर तो देख, कहाँ तो उसका आनन्दस्वभाव है और कहाँ यह रागद्वेष? यह राग भाव दुश्मन है। इस जीवका कोई वैरी है तो वही राग है और कोई पदार्थ दुनियामे इस जीवका वैरी नही है। अपने आपमे उठा विकार ही बुरा है और कोई बुरा नहीं। अन्य सब तो पदार्थ हैं, चेतन अचेतन पदार्थ है। जो बाह्यदृष्टि करता है और बुरा समझता है उसे दुःख है। अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशवत्व व प्रमेयत्व–इन ६ गुणोंको लिये हुए पदार्थ है। वह भी एक वस्तु है। आप कहेंगे कि यह मेरे लिए खिलाफ परिणति कर रहा है। किसी जीवके कषायके अनुकूल अपनी परिणति कर रहा है। किसी जीवको तू मन से बुरा मत समझ। तेरा बुरा कोई नही है दुनियामे, वह तेरे खिलाफ नही परिणम रहा। वह अपने कषायके अनुकूल अपना परिणमन कर रहा। यह तो उसके अपने कषायका पोषण है। कोई तेरा बुरा नही है, तेरा बुरा है रागभाव। रागके कारण सर्वज्ञताका स्वभाव ढका हुआ होता है। रागादि वैरीके निमित्तसे ही तो, देखो परमार्थस्वभाव ढक गया। इससे बढकर वैरी और तेरा कौन हो सकता है? तेरा बुरा है राग। यदि वैरी पर तुझे झुंझलाहट होती है तो तू अपने रागपर झुंझला। और कोई तेरा

दुश्मन नही। राग तो इस जीवको बर्बाद करता है। राग एक पर्याय है, पराधीन है। कर्म के उदयसे होता है। तेरा स्वयंका कुछ अस्तित्व नही, फिर तुझे तेरा ख्याल बर्बाद कर रहा है। अथवा मुझे कौन बर्बाद करता है ? मैं ही अपने आपकी कलासे सुखी व दुःखी हूं।

जरा अपने स्वभावमे और इस पराधीन परिणतिमे अंतर तो देख, एक अपनेको देख, कुछ हो समय सही ऐसा उपयोग बना ले, इसका सारा सुख, दुःख अपने हाथ है। यह सब कुछ ज्ञानकी कलाके आधीन है। जो लोग मानते हैं कि ईश्वरकी जो इच्छा होती है कि मैं सृष्टि कर लूं—इतनी इच्छा करनेसे सब सृष्टि हो जाती है। सृष्टि कैसे बनती है ? जगत्मे ये एक ईश्वर हो तो है। यह इच्छा करता है कि मैं ऐसा बन जाऊ, तो हो जाता है। आखिर प्रभुका स्वरूप ही तो है। इसकी प्रभुता विकाररूपमे विकसित हो रही है। पर हे भैया ! जरा अपना स्वभाव तो देख। कुछ तो मेहरबानी कर अपनेपर। बहुत कुछ बर्बाद हुआ। बहुत मरा, बहुत पिटा, कुछ तो अपनेपर करुणा कर। इस दुनियामे तू अकेला है, तेरा कोई साथी नही। भ्रमजालको भुला दे। तेरा साथी केवल तू ही है। अगर अच्छे ढगसे चला तो स्वय तेरा साथी तू है और अगर खराब ढगसे चला तो तू ही तेरा बुरा है, दूसरा कोई कुछ नही करता। अपने ही उस सहज आनंदको देख। कैसा यह तेरा स्वभाव है और कैसा यह रागद्वेष बैरी है ? यह मिट जाता है, तो स्वभाव मिटता नही। यह अज्ञानमय है तो स्वभाव ज्ञानमय है। यह स्वभाव तो सदा रहता है और यह विकार सदा नही रहता है। जो सदा रहता है, स्वाधीन है, आनन्दसे भरपूर है, ऐसा तू ज्ञानमय है, विकटस्वरूप विराजमान है। ऐसे अपने भगवान् स्वभावको देख भूल गया और इन झगडोमे रम गया, इन बाह्य पदार्थोमे रम गया। वही वही स्वभाव देखता है, वही वही सारा देखता है। उसीमे बुरा होता है। बुरे विचारसे बाहरी पदार्थ बुरे हैं। जब तेरे लिए तू दुश्मन बनेगा तो तेरे लिए तू बुरा है। इसलिए तू तेरे लिए भला है तो दुनियामे तेरा कोई बुरा नही। एक श्रावक व श्राविकाकी घटना है कि वे स्त्री और पुरुष चले जा रहे थे दूसरे गावसे। आगे पुरुष था और स्त्री पीछे। पुरुष ४०-५० कदम आगे निकल गया, स्त्री पीछे रह गयी। आगे देखा पुरुषने कि ३०-४० मोहरें पडी हुई हैं। सोचा कि पीछे स्त्री आ रही है, उसका दिल न दुःखी हो जाय। इन मोहरोमे इसका परिणाम न आ जाय कि मोहरें ले लूँ ऐसा सोचकर मोहरोमे धूल डालने लगा। इतनेमें थोडी देरमे स्त्री पास पहुची तो स्त्रीने कहा कि क्या कर रहे हो ? पुरुषने कहा कि ३०-४० मोहरें पडी थी तो मैं उनपर धूल डाल रहा हू। स्त्री कहती है कि चलो आगे बढ चलो, क्या धूलपर धूल डाल रहे हो ? तो पुरुषके परिणाममे यह आया कि मोहरें हैं और स्त्रीके परिणाममे यह आया कि यह धूल है। परिणाम अपने

आपका अपनेमें होता है। परिणाम ही रक्षक है, हमारा और रक्षक कोई नही। बुरा परिणाम करके करोड़का धन आया। यह परिणाम कुछ नही है। अच्छा परिणाम करके अगर कुछ टोटा पडता है तो कुछ टोटा नही। अच्छे परिणामका फल मिलेगा। परिणाम निष्फल नही जाता। भला परिणाम है तो भला फल मिलेगा और बुरा परिणाम है तो बुरा फल मिलेगा। देखो सबसे ऊँचा परिणाम क्या है ? जब सत्य ज्ञान हो जाता है तो विश्वका प्रत्येक पदार्थ स्वतंत्र है, अपने अपने अस्तित्वमें है। किसी पदार्थका किसी पदार्थसे कोई कार्य नही होता है। प्रत्येक पदार्थ स्वतः परिणमता रहता है। इसमे परिणति करनेका स्वभाव है। किसीका किसी अन्यके साथ कुछ भी सम्बंध नही है। ऐसा स्वरूपमे भी मैं एक वस्तु हू। मैं स्वतः हू और स्वतः परिणमनस्वभाव लिए हुए हूं। मेरेसे दुनियामे कोई सम्बन्ध नही, ऐसा ज्ञानी हूं मैं। फिर जब ऐसा परिणामस्वभाव है तो फिर अब किसको बिगाड सकूँ, किसको अपना सकूँ, किसे छोड सकूंगा ? वस्तु तो सब पृथक् पृथक् ही है। उनका तो किया ही क्या जा सकता है ? हाँ विकल्प ही किए जाते है। जैसे विकल्प छोडना है। अब विकल्पको छोड दे तो सर्वसिद्धि है। निर्विकल्पताके साधनमे जो आनन्द आता है वह अनुपम आनन्द है। देखो अभी यहाँ कुछ महिलाएं जाप भी कर रही; कोई पाठ भी पढ रही है। देखो एक बातका ही विकल्प कर लो और कही किसीकी बातमे न लगो। जो अपना है उसमे ध्यान दो। और सयम क्या है ? अगर ऐसी इच्छा न करो कि हमारे चारो काम हो ही जायें, पाठ भी हो जाय, नियम भी हो जाय, सुबहके प्रवचनमे भाग भी लें, चारोकी चिंता न करो। अगर एक ही करो और रागको अपनेसे बाहर करना है। और करनेका काम क्या है ? बाहर के काम न करो, तेरा साथी है ही कोई नही। तेरा साथी तू ही है। तू भले परिणामसे रहा तो तेरा साथी तू ही है और यदि रागके परिणामसे रहा तो तू ही अपना बैरी है।

बच्चे लोग यह खेल खेलते है कि एक घडेमे पानी भर दिया और दो खिरनाके डडे तोड लिए एक-एक हाथ बराबरके, दोनो डंडोको कलमकी तरहका बना लिया। उन दोनो डडोको जोड दिया। उसमे लगा दी मिट्टी। एक डडा डाल दिया घडेमे। बाहरसे जो डडा दूसरा है उसे मुँहसे जरासा चूस लिया। अब उसमेसे पानी पिया। अब मुंह दूर कर लिया फिर भी पानी गिरता जायगा। सारा घडा खाली हो जायगा। एक बार ऐसा आना चाहिए कि विकल्प छोडकर, अपने आपके विकृत व विकल्पको छोड़कर अनुभव तो करना चाहिए एक बार जीवनमे। फिर बार बार तू अनुभव करेगा। वही आनन्ददाता है। एक बार ही यदि आत्मीय आनन्दका अनुभव हो गया तो आनन्दके स्मरणमे भी सुखी रहेगा। आनन्दकी उपेक्षा न कर। उसका ज्ञान ही जीवनभर आनन्द देता रहेगा। पर वह आनन्द कैसे आये ?

बाहरके सारे पदार्थोंमें मोह न डालो, मोह डालकर नफा नही मिलेगा। अच्छे परिवार आदि मे लग लो। ज्यादासे ज्यादा १०-२० वर्ष तक होगा क्या ? १०-२० वर्षके बाद प्रथम तो यह बात है कि १०-२० वर्षमे भी मन नही भरेगा। दिनमें कुछ परिणाम है, सुबह कुछ परिणाम है, शामको कुछ परिणाम है। यह तो पराधीन व विकृत चीज है। मोह किया तो संसारमे दुःख ही रहेगा। अब छूटा तो छूटा सही। सो मैं अपनी इन राग, द्वेष बुराइयोंसे हटकर स्वाभाविकरूप स्वभावमे आकर अपनेमे अपने लिए अपने आप सुखी होऊँ।

यह निश्चय समझो कि मेरा आनन्द मेरेसे दूर नही है। बाहरके किसी भी पदार्थसे आनन्दकी किरण नही आती कि जिसमे आनन्द भरा हुआ हो, ऐसे परचैतन्यपदार्थसे भी आनन्द नही आता। उनका आनन्द उन्हीमे है, मेरा आनन्द मुझमे है। कोई किसीका नही है। जो मोहके समय बडा अच्छा लगता है उस प्रभुकी प्रभुताकी दुर्गति करने वाला तू ही एक है। यदि मोह नही है तो यह प्रभु आनन्दमय बनेगा। यदि मोह है तो इस जगत्मे जीव नाना सकट सहता रहेगा। निःमोहताकी प्रशंसामे श्री समतभद्राचार्य स्वामीने बताया है—

गृहस्थो मोक्षमार्गस्थो निर्मोही नैव मोहवान्।
अनगारो गृही श्रेयान् निर्मोही मोहिनो मुनेः॥

निर्मोही गृहस्थ मोक्षमार्गमे स्थित है, पर मोही मुनि मोक्षमार्गस्थ नहीं। इस कारण मोही मुनिसे निर्मोही गृहस्थ अच्छा है। मोह क्या है कि भीतरमे यह भाव आ जाना कि यह चीज मेरी है और मेरा जीवन इनसे ही है। मेरा हित इनसे ही है, मेरा बडप्पन इन चीजोसे ही है—ऐसा भाव है, तो यही मोह दुश्मन है, बैरी है। अहो! यह मोह अन्धेरा इतने बडे जीवोके है कि पछतानेकी भी गुञ्जाइश नही। इतनी बडी विपत्ति मे पडा है। यदि यह अधेरा है कि यह जितने भी पदार्थ हैं इन्हीसे मेरा जीवन है, ये ही मेरे सब कुछ हैं, तो मनुष्य होना व्यर्थ है। यदि परिणाम बुरा है तो मनुष्य होकर नबर भी क्यो खोया ? कीडे मकोडे ही बने रहते, ऐसे मनुष्य बनकर कोई लाभ नही। ओह, अंधकार से ही प्रेम किया तो कीड़े मकोडे ही बनना अच्छा था। मनुष्य बननेकी गिनती तो नही आती। २ हजार सागरके बीच मनुष्य बनकर २३, २४ बारके मौके तो आते, मगर मनुष्य बन गया तो मनुष्यके कार्य तो करने थे। अगर यह विषयकषाय करना ही था तो कीडे मकोडे बनते। एक कहावत है कि ये दिल्ली रहे, १२ वर्ष रहे। क्या काम किया ? भाड झोका। अगर भाड झोकना था तो क्या भाड यही गाँवोमे न झोक दिया जाता। विषयकषायोमे रहे, बुरे कामोमें रहे तो मनुष्य होकर क्या किया ? सगी बनकर खोटा बना

तो उसकी दुर्गति ज्यादा होती है । ग्तरसे देख, हम कैसे आनन्दमय हैं, हम कैसे ज्ञानमात्र हैं ? जो भगवान है वह मैं हूं । इतना पवित्र मै हूँ । अपने स्वरूपको भूलकर बुराइयोंको अपना लिया, इन धोखे वालोंको अपना लिया । भेद करना है तो धन उसका नही, दौलत उसकी नही । यह तो ऊपरी बात है । भेद यह करो कि रागद्वेष अपने नही हैं । हे राग बैरी अब तू नष्ट होनेके लिए ही तो आया है, मिटनेके लिए ही तो आया है । ये रागादि आते हैं तो आ जायें, मिट जायें, ये तो सर्वज्ञतामे बाधा डालते हैं । मैं तो सहज आनन्दमय हूं, इस तरहसे अपनेमे हुए रागादिको आस्तीनका सांप जैसा कहा है । अपनी ही कमीजमे आस्तीनमें सांप बैठा हुआ है । अपने ही प्रदेशमे यह रागादि बैठा हुआ है । यह महिहमान है । जानेके के लिए आया है । महिमानका अर्थ है—महिमा + न याने महिमा नही । यह रागद्वेष, बुराई महिमान हैं । महिमा तो इस ज्ञानस्वभावकी ही है, रागादिकी महिमा नही । प्रभुकी आराधना कर, आनन्द मिलेगा । भिखारी कहता है कि भगवान, भगवान, भगवान, भगवान देगा अल्ला ही देगा । देखो बराबर पैसा मिलता है । अगर इसे किसीसे पूछना पड़े तो पैसा नही मिलेगा । भगवान देगा, प्रभु देगा, मेरे स्वभावकी दृष्टि ही मेरी रक्षा करेगी । ऐसा दृष्टा अगर बनू तो मिलेगा, यह कायरता न कर । मेरा आनन्द मेरेसे ही निकलेगा । अचेतन पदार्थमें मेरा ज्ञान नही । इसी तरह अचेतन पदार्थमे आनन्द नही । पत्थरपर लड्डू, पेडा सब कुछ धरे हो तो क्या आनन्द आयगा ? परचेतनसे भी मेरेमें ज्ञान व आनन्द न आयगा । लड्डूसे आनन्द नही आयगा । इसी मेरे सबसे ही आनन्द आयगा । आनन्द बाहरसे नही आयगा । सो तू उस आनन्दस्वभावको निहार । बस यही एक उपाय है आनन्द पानेका ।

प्रयत्नो वांछया तस्माद्वातो यन्त्रम् प्रवर्तते ।
स्वे तान्यारोप्य किं दु.खी स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-२७॥

यह प्राणी केवल अपने भाव करता है । यद्यपि उसकी किसी भी पदार्थमें किसी भी प्रकारकी परिणति नही है, लेकिन देखनेमे ऐसा आता है कि हमने तो ऐसा किया है । घर बनाया है, दुकान चलाई, घरसे यहाँ तक आया हू, वचन बोलता हूं, अनेक तरहके काम करता हूं, लगता ऐसा है, किन्तु दुनियामे प्रत्येक जीव केवल परिणाम ही करता है, अपने परिणामके सिवाय और कुछ नही करता है । पर ऐसा लगता क्यो है, ऐसी लोगो की विपत्ति क्यो है ? इसका कारण है—निमित्तनैमित्तिक भाव । जैसे आगके सामने गर्म पानीका बरतन रखा है तो पानी तो स्वयकी परिणतिसे गर्म होता है, परन्तु लोगोको ऐसा लगता है कि आगने पानीको गर्म किया है अथवा कोई पुरुष २० हाथ दूर खड़ा हुआ है और लोगोने देखा कि वह कोई गाली देता जा रहा है और वह चिढ़ रहा है । लोगोको ऐसा

लगता है कि वह -रको दुःखी कर रहा है, चिढा रहा है, किन्तु ऐसा नही है। चिढ़ने वाला अपने विकल्पसे दुःखी होता है और दूसरा अपनी कषायसे चेष्टा करता है। इसी तरह जीव केवल अपना भाव करता है, भावके अतिरिक्त और कुछ काम नही करता है। जैसे हाथसे कोई चीज उठाकर १० हाथ दूर रखे तो लोगोको यह प्रेम जरूर हुआ कि यह जीव ही चोज उठाकर रखता है। वास्तवमे जीवके द्वारा रखनेकी कोई चीज ही नही। जीवने तो केवल अपना परिणाम ही किया, भाव बनाया, इच्छा का कि मैं इस चीजको उठाकर रख दूं और इसी तरह उसके प्रदेशमे योग हुआ।

इस तरह आगे जो काम हुआ वह अपने आप हुआ, जीवने तो केवल परिणाम किया, इच्छा की, प्रदेश परिस्पन्द हुआ। उसका निमित्त पाकर जिस शरीरसे उसका सम्बन्ध है उस शरीरका अग चला और इस चलते हुए अंगके बीचमे चीज भी चलती हुई वहाँ पहुचती है। जीवने तो केवल परिणाम किया। देखनेमे आता है कि देखो यह जीव कितना काम कर रहा है ? कपडा नापा, पैसा बनाया, हिसाब लगाया, पैसा रखा। कहता जाता है कि मैंने १०० रु० कमाये। क्या ऐसा काम बाहरमे कुछ ठीक कर लिया है ? नही। तब तो केवल अपना परिणाम करता है, इसके अतिरिक्त और कुछ नही। जैसा भी परिणाम किया, धन आना चाहिए, धनसे लाभ हुआ। अभी परिणाम किया और उस परिणामको निमित्त पाकर योग हुआ और योगके निमित्तसे देह व्यापक वायु चली, वायुके निमित्तसे अवयव चले, उसके निमित्तसे सयुक्त पदार्थ चला। यह सब होता रहता है, परन्तु यह जीव बाहरी चीजोसे अपने को भिन्न समझ जाये कि मै आत्मा ज्ञानमात्र हू, अपनी सत्तामात्र हूँ, जगत्के किन्ही भी कामोको नही करता, केवल परिणामको बनाता है। संपदाकी स्थिति है तो विपत्तिकी स्थिति है अर्थात् सर्वत्र जीव अपना परिणाम बनाता है, केवल अपने भावको करता है और जैसे भावको करता है उसी भावको भोगता है। इसके अतिरिक्त और कुछ काम नही करता। मेरा कही सम्बंध नही, मै तो अपना स्वरूपमात्र हूँ, एक पदार्थ हूं और परिणतिमे रहता हूँ, सबसे निराला हूँ, इसमे कोई परभाव नही, मै एक ज्ञानमात्र और निरतर, लगातार, हर समय परिणाम कर रहा हूँ—इतना मैं हूँ, ऐसी श्रद्धा, ऐसी प्रतीति अपनेमे रहे तो वहाँ दु.ख का कोई नाम नही। यह दु.ख तो बनाया जाता है, लेना न देना। दु ख होता रहता है।

इस जीवसे उसका क्या सम्बन्ध है ? सदा न्यारा-न्यारा है, स्वय जुदा जुदा है। सब अपने आपमे स्वरूप बना है, फिर दूसरे पदार्थोंके साथमे क्या सम्बन्ध है ? इस शरीर को भी भूलकर तू ध्यान अपने आपका कर। जो कुछ है वह ज्ञानमात्र तू है। तू केवल अपने स्वरूपमात्र पर दृष्टि द। जैसे भोजन खाना हुआ तो इस स्थितिमे केवल बात खानेके

कामकी ही न गी, वहां तो काम करता है, बनाता है, खाता है. तब उसका सुख मालूम करता है। इसी प्रकार अपने आपके स्वयके विचारमें केवल बात ही करनेसे काम नही चलता। जैसे इनका स्वरूप है, तैसे-तैसे चलनेसे काम चलेगा। लोग कहेगे, कैसा आदमी है, जो न घरकी फिकर, न पैसे की फिकर, न आगे की फिकर, क्या करता है, कैसा अलफतिया बना हुआ है ? जो इस दीर्घ संसारमें पड़ा हुआ है उसे वह घन छोड़ना पडेगा। जो घर द्वार संभालनेमे लगा हुआ है, संभालते हुए भी नही सभाल पायेगा। जैसे कोई कमोजके पल्ले पर मेढक भरे तो एक यहांसे उछलता है, एक वहांसे उछलता है। इसी प्रकार सम्पति, परिवार आदिसे मोह करके बस नही चलता। एक यहांसे भागा, एक वहांसे भागा और अपने मोहके झोलेमे उन्हे भरना चाहता है, किन्तु यह काम बननेका है नही और अहंकार यह करता है कि मैं संभालने वाला हूं, मैं पालने पोसने वाला हूं। इस तरह काम नही चलेगा। इन सब राग, मोहकी बातोको छोडकर असली तत्वमे आना होगा कि पदार्थ अपने आपमे जैसा है वैसा मानें। मैं आत्मा अपने आप कैसा हू ? मैं अपने आप हूं, केवल अपने आप पर तू ध्यान दे तो पता चल जायेगा। किसी दूसरे पदार्थका ध्यान न रक्खो। कोई भी पदार्थ हो, कोई भी बाह्यपदार्थ हो, एक ही का ध्यान दे तो आत्माके बुरे परिणाम हो जाते है।

कोई व्यक्ति यह कहे कि आंखके सामने तिल ही रक्खा है और कुछ नही रक्खा है, आंखके आगे तिल भर कागज रख दो तो सब पहाड ढक गया। वहां यह प्रश्न न चलेगा कि उसने तो जरासा ही कागज सामने किया है। अरे देखने मे तो यह जरासा तिल बराबर का है, यो उसने पहाड ढक दिया। इसी प्रकार आत्माके दर्शनमे एक भी पदार्थका मोह हो तो भगवान आत्मा ढक जाता है। कोई कहे कि मैं पदार्थोंका मोही नही हू, मेरे यहां केवल एक लल्ला है, और कोई नही। केवल लल्ला ही एक मोहमे रह गए हैं, जरासी थोडी कसर रह गयो है, बाकी तो सम्यक्त्व है। सो ऐसा नही। एक लल्ला हो, चाहे आधा लल्ला हो, मोह है मिथ्यात्व है। जो ढेरके ढेर पर्वतके बराबर मोह रखता है उसका तो कहना ही क्या है ?

जब जगत्मे इस आत्माका कुछ नही, तो अतरग ही ऐसा बना लो कि भीतरसे विश्वास और ज्ञान हो ऐसा बनें तो शान्तिका मार्ग मिल जायेगा। एक कहावत है कि रपट पड़े की हर गंगा। बात क्या हुई कि बरसातमे सड़क पर था थोडा बरसाती पानी। एक आदमी जा रहा था उसका पैर रपट गया। लोग उसको देखकर हंसने लगे। जैसे साइकिल से कोई गिरे तो हसी आ जाती है वैसे ही वह गिर गया। पर उसने लोगोको यह नही

महसूस होने दिया कि मैं गिर गया हूं। वह कहने लगा कि हर गंगा, हर गंगा। गंगाजी मानकर अपना धर्मका काम कर रहा है, कहता है हर गंगा। दुनियामे कुछ नही है। तू इसका ख्याल छोडकर ध्यानमे लग जा, क्योकि इतनी बात मानते हो कि सब कुछ मिटेगा, चाहे १० साल बाद अथवा २० साल बाद। हम भी चले जायेंगे, आप भी मिट जायेंगे। किसीकी आशा ही क्या ? जो ऐसे रपट पडे कि हरगंगाकी तरह पहले ही परसे हट जाओ, फिर तेरा धर्म न छूटेगा। जैसे रपट पडा और गिर ही पडा तो चतुर व्यक्ति हरगंगा कहकर अपनी मजाक खत्म करवा लेता है। चलो, इसी तरह अपनी दुर्गतिका मजाक धर्मकी ओर मुडकर खत्म करा लें। जब यहाँ कुछ नही रहना है, सब मिटने वाला है तो स्वय ही उपाय दूसरा कर ले। भाई ! यहाँ कुछ रहना ही नही है तो अपने ज्ञानको बना। यह सब रहने का नही, यह सब मिटनेका है, यह तेरे पास कुछ नही रहेगा। इनसे मोह हटा लोगे तो अपनेमे आत्मा स्वय ज्ञानस्वरूप है, परमे तेरा कोई तत्त्व ही नही है। जहाँ तुझे तरस आनी चाहिए। तू आनदमय आत्मा है। अतः एक विश्वास करके २४ घटेमे १५ मिनट तो सबका ख्याल छोडकर, ज्ञानानन्दमय एक आत्माका तो ध्यान कर। सब यदि अलग हो जाते हैं तो अलग हो जायें, परके हिसाबसे तेरा कुछ बिगडनेका तो नही है। हमेशा अकेला तो तुम्हे रहना ही है, दुकेला कब तक रहेगा ? हम दुकेले, तिकेले कब तक रहेगे, चौकेले, दसकेले कब तक रहेगे ? इस जीवनमे क्यो दुःखी होता है। कोई शका नही कर, नि.शंक रहना। इस विषय मे आत्मानुशासनमे कहा है—

जीविताशा धनाशा च येषां तेषां विधिर्विधिः।
किं करोति विधिस्तेषां येषामाशा निराशता ॥

जिसको जीनेकी इच्छा है और धन वैभव की इच्छा है और जिसको निराशाकी ही एक आशा है अर्थात् कुछ आशा ही नही करता उसका कर्म कर्म नही है। ज्यादासे ज्यादा कर्म तो यही हानि कर सकता है कि जीवन न रहे या धन न रहे। किन्तु जो इसमे राजी है, जीवन व धनसे विविक्त आत्मतत्त्वमे अपने आपकी भावना बनाए रखते हैं, भाग्य उनका क्या कर लेगा ? भाग्य तो उन्हे ही दुखी कर सकेगा जिनको जीनेकी इच्छा है, धनकी इच्छा है। भाग्यका ज्यादासे ज्यादा बस इतना ही तो चलता है—मुर्दा हो जाए, जीवन खत्म हो जाए, टोटा पड जाए, परन्तु ज्ञानी इन बातोको चेलेंज देते हैं कि ऐसा होता है सो होओ। होगा वही जो होना है, जो ऐसा प्रत्यय बनाए हैं तो आत्माको प्रबल बनानेसे दुःख न होगा। उतना ही मिलेगा जितना होगा। आत्माको प्रबल बना लेनेसे आत्माको क्लेश नही रहता। इस कारण तू ऐसी भावनाएँ भरकर आत्माको प्रबल बना। मैं एक ज्ञानवान्

हू, आनन्दमय हूं, मुझे पहिचानने वाला यहाँ कोई नहीं है, मै ऐसा हूं कि यहाँ मेरी पहुंच वाला भी कोई नही है । जो कुछ यहाँपर दिखता है वह चलचित्र है, यह सब चलता-फिरता सिनेमा है । वहाँ तो १ गज चौडे, २ गज लम्बे परदेमे सिनेमा होता है । यहाँ इस दुनियामे चलता-फिरता सिनेमा है । केवल परिणतियोकी ही बात ह, उसमे सार नही, सार जो तत्त्व है वह छिपा होता है ।

इस तत्त्वको अतरमें लगाकर अन्य किसीका ध्यान न कर । "जिन खोजा तिन पाइया गहरे पानी पैठ" जिन्होने खोजा उसको भगवान् मिले । जो इस पानीके ऊपर ही देखता रहे उसको कुछ नही मिलेगा । ऐसी उदारता करो । तेरी भक्तिके प्रसादसे हे नाथ ! तेरे गुणोके प्रसादसे हे नाथ ! तेरी ऐसी उदारताका परिणाम हो कि इस जगत्के जीव मुझे एक समान दीखें । यह भावना बने कि यह मेरा प्यारा है और यह मेरा दुश्मन है, यह मेरा भला है और यह मेरा बुरा है, ऐसा परिणाम मत बना । कोई मित्र है इस दुनियामें ? कोई नहीं है । ये सब अकेले ही अपनी परिणतिसे बने है । अपनी अपनी कषाय हैं । उसके अनुकूल इन सबकी चेष्टा है, मेरा यहाँ कुछ आता जाता नही है । तू स्वयं जब बुरा बनता है तो दूसरोको बुरा देखता है । तू जब भीतरसे चगाभगा रहता है । चंगा कहते हैं सुखीको, शुद्ध आनद वालेको और भगा कहते हैं कल्याणको । जब तू स्वयं चंगामंगा रहता है तो दूसरोको मित्र देखता है, भला देखता है, अच्छा देखता है । तू जैसा है वैसा स्वयं बाहरसे देखता है । देखेगा तू जैसे तेरी आँखें होगी, जानेगा तू वह स्वयं जैसा तेरा ज्ञान होगा, तू जैसे बाहर देखता है और प्रसन्न है तो तुझे सब प्रसन्न दीखेगा । देवता है, कैसा शांत है, कैसा धर्मके बारेमे कहता है, धर्मके प्रति प्रेम है, ऐसा आपको बाहरमे देखना होगा और यहाँ भी कोई ऐसा हो कि बाहरसे ठीक है व अतरमे नाना चालें रखता है, और देवतासा बना बैठा हो तो उन्हे सब मायाचारी दीखेंगे । साधुसे पवित्र चित्त वाले जो होंगे उनको सब जगह पवित्रता दीखेगी ।

जैसे हम है वैसे ही बाहर देखें । किसी भी जीवको गैर मत समझो, अपना विरोधी मत समझो । हम तो उसे अपने समान ही समझें । यह बहुत हो सम्भव है कि आपका व्य-वहार देखकर पवित्र बन जायेंगे । अपने उस कषायको छोड़ देंगे, पर जो दूसरोके प्रति बुरे ही बुरे ख्याल करते हैं तो वे तो स्वय तुरत बुरे हो जाते है ।

भाई ! परमार्थकी बात तो यह है कि अपनेको इस तरह देखें कि मैं केवल परिणाम करने वाला हू, अपने परिणामके अतिरिक्त मै और कुछ नही करता । हर जगह हर समय केवल अपने परिणामके लिए अपना परिणमन करता हू । जब मैने पहले भी कुछ किया नही,

न आगे कुछ कर सकूंगा। केवल अपना परिणाम बनाया था, अपना ही परिणाम बनाया है और अपना ही परिणाम बनाता रहूंगा। व्यवहारका भी देख तो क्या बात है? सबसे आप बोलते हैं, लेकिन यह पता आपको चल जाय कि यह बोलना तो प्रिय है, किन्तु इसका परिणाम बडा खोटा है, तो आपको उसके प्रति ईर्ष्या हो जायेगा। और किसीसे आपका बिगाड भी हो जाये और यह आपको विदित हो जाये कि इसका परिणाम अपने कल्याणके लिये था। तो उससे प्रेम बना रहेगा। सब तो अपने परिणामके आधीन ही खेल बना है, परिणाम के सिवाय और कुछ नही कर सकता। कोई जो कर्तव्यबुद्धि करेगा, वह संसारके जन्ममरण के चक्करसे नही छूट सकेगा। अपने आपको यह स्वय जान जाय कि मैं एक भावात्मक पदार्थ हू और मैं केवल अपने परिणामको ही करता हूं। इतना ही यह कर्तव्य भोक्तृत्व है और इसके अतिरिक्त कुछ नही, ऐसा अपने आपको निराला बना ले। आपको यह अनुभव हो जायेगा कि मैं अंतरके सिवाय और कुछ कर ही नही सकता, तो मै अपने परिणामको सोच समझकर चलूंगा। सब कुछ मैं स्वयं हू, किसीका किसीसे कोई ताल्लुक नही है। ऐसा दृष्टा बन तो इससे बढकर दुनियामे और कोई वैभव नही है।

पङ्ग्वोर्दृष्टिर्यथान्धे न तथा स्वस्यैव नो तनो।
दर्शनं मात्रमस्म्यस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-२८॥

लोग कहा करते हैं कि यह मनुष्य देखता है, जानता है, परन्तु मनुष्यसे उनका प्रयोजन शरीरसे है। तो यह शरीर न तो देखता है और न जानता है, देखने जाननेकी शक्ति तो जीवमे है। ज्ञानदृष्टि तो जीवमे विद्यमान है, वह शरीरमे नही पाई जाती है। लेकिन जैसे लंगडे और अधे आदमी मिलकर चलनेका काम करते हैं अर्थात् अधा तो चलता है और लंगडा उसके कधे पर बैठता है। ऐसा देखकर लोग कहते हैं कि अधा देखकर चल रहा है, परन्तु उस जगह तो लगडेकी दृष्टि काम कर रही है, अधेके दृष्टि है ही नही। परन्तु इस सम्बन्धमे ऐसा कहा जाता है कि अंधा अपनी दृष्टिसे काम कर रहा है। इसी तरह दृष्टि तो जीवके हैं, पर जीवका इस समय सयोगसबध शरीरसे है। इस कारण लोग यह कहते हैं कि यह मनुष्य, यह प्राणी देख रहा है, जान रहा है। परतु देखने, जानने वाला तो आत्मा ही है। लगडा तो चल नही सकता और अधा देख नही सकता। यदि ये दोनो अलग-अलग रहे तो दोनो बेकार है। न लगडेका कोई काम बने और न अधेका कोई काम बने, दोनो जब मिल जाते हैं तो हरकत करने लगते हैं। इसी तरह आत्मा और शरीर दोनो अलग अलग हो जायें, आत्मा अलग हो व शरीर अलग हो जाये तो दोनोकी हरकत बद हो जाती है। आत्मा बाहरी, दिखावटी क्या करे और शरीर भी क्या करे? आत्मा और शरीर जब

दोनो मिलते हैं तो आत्मा भी हरकत करता है और शरीर भी हरकत करता है। ऐसी अवस्थामे शरीरकी हरकत देखकर दुनियाके लोग जीवको कहा करते हैं कि यह सब जीव कर रहा है, यह सब जीवकी हरकत है। पर जो ज्ञानी जीव है, भेदविज्ञानी जीव हैं वे जीव का काम जीवमे देखते है और उनको परस्पर केवल निमित्त मानते है। अज्ञान इसीको कहते है कि है तो निमित्त और मान ले उसे कर्ता, जैसे कर्मको माना है निमित्त और अज्ञानी मानता है कर्ता। होता क्या है ? जीव तो भाव ही करता है, कर्म स्वयं बंधनको प्राप्त होता है। भाई, कर्म तो केवल अपना परिणमन करने वाला है। जैसे जीवके विकार रूपसे होने वाले परिणाममे निमित्त कर्मोदय है, उसको कर्ताके रूपमें देखना यही अज्ञान है। प्रत्येक पदार्थको उनके ही अस्तित्वमे देखना, एकसे दूसरेको अपनत्व न समझना, यह ज्ञान है। हमारा अपना अस्तित्व अपनेमे ही है, हमारा गुणपर्याय हममे ही है, इस ज्ञानस्वरूप आत्माका सर्वस्व आत्मा ही है, इसके बाद बाहर अन्यसे क्या संबध है ? मैं हूं और परिणमता रहता हूँ, इतनी ही मेरी सारी दुनिया है। क्यो ऐसा न मानकर बाहरी पदार्थोंको अपनेमे समझकर दुखी हो रहा है ? जो इस अपने ज्ञानमे आता है वह ही योग्य है, वह ही ससारके पूज्य है। पूज्यता पवित्रतासे बनती है। पवित्र केवल रह जाना इसको ही पवित्रता कहते है। यह अपना तो केवल जैसा है तैसा चैतन्यस्वरूप मानता रहे, मैं यह हो हूँ, इसके आगे मेरा कोई काम नही, न मेरी कोई इच्छा है और न मैं कही अन्यत्र जाना चाहता हूँ। जान गया कि मैं यह हूँ और स्वतः परिणमता रहता हूँ। इस तरह अपने ही स्वरूपकी तरह रहे तो आत्माका फिर कोई काम नही है। पर जो नही रह सकता है उसकी आत्माका आकुल होना प्राकृतिक बात है। मैं तो एक दर्शनमात्र हू, प्रतिभास मात्र हू, मैं अपनेमे अपने लिए स्वयं सुखी होऊँ, बस यही एक कर्तव्य है कि वस्तु वस्तुको स्वतत्र जान लें, इसीमे पूर्ण ज्ञान होगा।

लोकमे उस ज्ञानकी महत्ता मानी जाती है जो जितना जितना बाहरी चीजको जानता जाये, जितना-जितना बाहरी पदार्थोंका आविष्कार करता जाये। पर अध्यात्ममार्गमे ज्ञानकी महत्ता उसमे बताई जाती है कि जितना जितना बाहरी पदार्थोंके विकल्प छोडकर अपनी ओर आता जाये, अपनेको ज्ञानस्वरूप अनुभव करता जाये, ज्ञान सामान्यमात्र अपनेको लक्ष्यमे ले। और छोडो ज्ञानकी विशेष तरग, वितर्क विचार। ऐसे सामान्य ज्ञानमे अपने अपनेको अनुभव कर तो परमार्थमे ज्ञानकी महत्ता है। लोगोमे बाहरी चीजोके अज्ञानकी महिमा है, पर आत्मज्ञानसे परमार्थमे आपकी महिमा है। इसमें कोई एक विशेष पदार्थकी बात ही न उठे। यह ज्ञानका ही स्वरूप है अन्य पदार्थका कुछ नही। इसमे महत्व ज्ञानका

है, इसमे ज्ञान आयेगा, इसको ही सम्यक्ज्ञान कहते हैं, और इस ही ज्ञानकी ऐसी महिमा है कि जिसके बलपर चिरसंचित कर्म भी भस्म हो जाते है। ऐसा जाना है तो बस यह ज्ञान है। विज्ञान ज्ञानके स्वरूपको जाना करे, यही ज्ञान अन्य कुछ कुछ जानता है तो उसमे इसका कोई मान नही। वह सब क्षणिक और अधूरी बातें हैं, उनमे ससार फन्द बद नही हो सकते। जन्म मरणकी परम्परा उनके अज्ञानसे निवारित नही हो सकती है। यही वह ज्ञानस्वरूप है जिसके द्वारा कर्म ध्वस्त हो जाते है।

ज्ञानी ज्ञानके स्वरूपको जानता है। ज्ञानका जानना, इमीसे तो आत्मज्ञान हो जाता है और लगन भी मालूम पड जाती है। हमे करना क्या है? क्या जानना है? कहाँ जानना है? जाननेका स्वरूप क्या है? जाननेका स्वरूप जानो यह यथार्थज्ञान कहलाता है। बोधि-दुर्लभ भावनामे आता है कि सब मिलना सरल है। सोना, चाँदी सब मिलना सरल है, परतु यथार्थ ज्ञान मिलना कठिन है। और सब ज्ञान मिल जाता है, परन्तु जाननेका जानना कठिन है, जानने वाला है वह क्या है? इस शोधका पता नही लगता अज्ञानियोको। भूलमे भूलकर देना यह कितनी बडी भूल होगी। एक कथा है कि एक दामाद अपनी ससुराल गया। उन दिनोमे उसका ससुर बाहर शहरमे गया था, बीमार पडा रहता था, बीमारीकी चि
रही थी। कुछ दिनोमे एक चिट्ठी आयी, जब दामाद भी वहाँ था। लोगोने कहा लालाजी से चिट्ठी पढ़वा लें। अब लालाजी मनमे पछताने लगे कि अगर हम पढ़े-लिखे होते तो चिट्ठी बांचते। लालाजी दुःखी होकर बैठ गए, और दुःखके आसू भी आ गये। सास आदिने जब रोना देखा तो सब यह समझे कि उनका ससुर मर गया है, ऐसा समझकर घरके लोग रोने लगे, पडौसके लोग आ गए वे भी रोने लगे। गावमे हल्ला मच गया, जमीदार भी आये, कहा— क्यो रोते हो? वह बोला—करम फूट गया है। यह दुनियाकी बात कह रहा हूँ। जमीदारने पूछा कि खबर आया है या कोई आया है या कोई चिट्ठी आई है? चिट्ठी मगाई गयी, उसे पढा तो क्या लिखा था कि हमारी तबियत ठीक है, तीन दिनमे आ रहे है। अब जडका पता किसीने लगाया। भूलमे था क्या? उसमे लिखी चीजका तो कुछ पता नही लगाया, उसका फल यह अनर्थ हुआ। हम मूलमे क्या है, इसका कुछ पता नही लगा। हम ज्ञानमय है, सबसे निराले है, हम झझटी नही है। मैं एक पदार्थ हू, इसमे कोई विवादका काम ही नही है, मै अपने स्वभावको भूल गया और स्वरूपको भूलनेके कारण दुनिया भरमे भटकता रहा। जो देखा, जो सुना बस उसीमे ही मग्न हो गए। सोर्सका पता तो लगावे, मूलमे है क्या बात, इसका पता लगावें, अपने स्वरूपको जानें तो उसका सारा परिभ्रमण व आश्रव खत्म हो जाय। आश्रवको माना है नाला। नालाके माने है न ला, न लावे, इमीको

नाला कहते है । यह आश्रव क्या है ? नाला । ज्ञानसे विरुद्ध या ज्ञानके अतिरिक्त जो परिणाम है यह सब आश्रय है, इसे न लायें । आश्रय ही सारे दुःख उत्पन्न करता है । अपने स्वभावको देखो तो एक दुःख नही, और अपने स्वभावसे बाहर देखो तो सब झंझट है । एक चैतन्यस्वरूप मात्र मैं आत्मा हूं । तो यहांपर अपनेमे स्वयं अपने लिए अपने आप सुखी होऊँ । जब कोई बड़ी विपत्ति आवे, कोई झंझट आवे तो इस आपको देखो, सब विपत्ति दूर होगी । क्षणमात्रको २-१ मिनटको यदि सबको भूलकर अपने ही स्वरूपको देखो तो सारे झंझट खत्म हो जायें । गृहस्थीमे है तो उसको करना ही पड़ेगा । मगर कभी-कभी तो आत्मस्मरणका आनन्द लूटना ही चाहिए । सब कुछ है मगर अपने स्वरूपकी दृष्टि करके उसका आनन्द तो लूट लो । अब झंझट है वह भी चलते हैं तो कभी-कभी आत्मस्वरूपकी दृष्टिका आनन्द तो लो । यही आनन्दका उपाय है, यही आपकी साथ देने वाली चीज है, तो अब मैं अपने स्वरूपको देखकर अपनेमे अपने आप स्वयं सुखी होऊँ ।

यस्मिन् ज्ञानमये यत्ने मत्तपाषाणवत्क्रमात् ।
विकल्पो नापि तत्रान्ते स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१–२९॥

मैं ज्ञानमात्र हू, इस स्वरूपकी बार-बार भावना करनेपर अपने स्वरूपका अनुभव हो जाता है, बाहरी पदार्थोंसे विकल्प हट जाता है । ऐसी स्थितिमे यह ज्ञानी जीव केवल अपने आपके तत्त्वमे ही अनुरागी रहता है, अपने आपके ही आत्मतत्त्वके दर्शनमे मस्त रहता है । बाहरी पदार्थोंका ख्याल, विकल्प उसका कम हो जाता है । दुनियावी लोग ज्ञानीको देखकर हसते हैं कि क्या यह पागल हो गया है ? न इसे धनकी शुर्त है, न इसे बाहरी पदार्थोंकी शुर्त है । कैसी कहा चिता लगाये है ? ऐसा देखकर दुनियाके लोग उसे पागल कहते है कि यह पागल हो गया है । इसे धनकी शुर्त नही है, ज्ञानी अज्ञानीको पागल देखता है कि कैसा पागल हो रहा है कि दुनियामे अपनी कोई वस्तु है तो नही और बाह्यका लक्ष्य करके कैसा बरबाद हो रहा है ? यहां परमाणुमात्र भी तो अपना नही है, किसीसे कुछ सबध नही है, फिर भी देखो असार पदार्थोंमे विकल्प करके मर रहा है । कुछ भी सोच लो, यहां मिलना कुछ नही है । इसलिए ज्ञानी अज्ञानीको पागल कहते हैं । अज्ञानीके चित्तमे यह बात है कि जो अपना घर सभाले वह चतुर आदमी है और ऐसी बात दूसरेमे याने ज्ञानीमे नही देखता है । तब अज्ञानी ज्ञानीको पागल मानता है । ज्ञानी अज्ञानीको मात्र देखता है और यहां अज्ञानीका भाव देखो, वह सोचता है कि यह ज्ञानी पागल हो गया है । इसे धनकी कोई शुर्त नही है, चित्त कहां चला गया है ? सत्संगमे ही प्रायः समय बिताता है । इस तरह अज्ञानी ज्ञानीको पागल देखता है । परन्तु जिन्होने शुद्धतत्त्वको पहिचान लिया, जिनका किसी भी परतत्त्वमे

भ्रम नही, कोई भी शल्य नही, ऐसे ज्ञानी अज्ञानीको पागल कहते हैं।

जब सुकौशल स्वामी अपनी बीस-बाइस वर्षकी अवस्थामे विरक्त हो गए थे, उनको अनेक लोग पागल कहने वाले होगे। अभी-अभी शादी हुई, तो घर छोड़कर चल दिए। इस तरह दुनियाके लोग अज्ञानीजन पागल कहने वाले हो गए तो यह ज्ञानी भी लोगोको पागल देखते हैं। क्योकि जो जैसे स्वभावका है जिनकी जैसी आदत पड गयी है उसी तरह वे दूसरे को देखते हैं। यह कल्पना हो जाती कि यह मूर्ख है या पागल। एक सूमकी घटना है कि एक समय सूम शहरमे घूम रहा था, उसने देखा कि एक व्यक्ति भिखारियोको मनमाना अन्न बांट रहा था, कपडा बाट रहा था, दान कर रहा था। जब सूमने यह देखा तो वहासे उदास चित्त घर आ गया। स्त्री कहती है कि क्या पतिदेव कुछ गिर गया या किसीको कुछ दे दिया है।

"क्या तेरा कुछ गिर गया या काहूको दीन।
तिरिया पूछे सूमसे काहे बदन मलीन॥"

अरे, आपका बदन मलीन क्यो है ? तुम्हारा कुछ गिर गया या किसीको कुछ दे दिया है ? सूम कहता है कि—

"ना मेरा कुछ गिर गया, ना काहूँ को दीन।
देतन देखा और को तासो बदन मलीन॥"

मैंने किसीको कुछ दे नही दिया है और न मेरा कुछ गिर गया है। मैने दूसरोको देते हुए देख लिया है कि कैसे धन लुटा रहे हैं, कैसा यह सब दे रहे हैं, उसको मैंने देख लिया, इसलिए दुःख है।

दूसरोको लुटाते देखा और दुःखी हुए। उसको तो वह दाता पागल मालूम हुआ, इसकी हैरानी भी सूमको है। सत्यवादीको, सरलको, ध्यानसे चलने वालेको, रूखा सूखा भोजन मिला उससे सतुष्ट होने वालेको लोग बेवकूफ कहते हैं, क्योकि लोगोंके प्रति यह भावना है कि वह उतना होशियार है जो दूसरोको धोखा देता है। किसी तरहसे अपना धन बढाए, इज्जतको बढाए तो लोग उसे चतुर कहते हैं। मगर जीवका धन परिणाम है, जिनका परिणाम सही है धन वही है। क्योकि भविष्यमे वहाँ परिणाम फलेगा। जिसका परिणाम मलीन है वह गरीब है, उसका परिणाम भविष्यमे फलेगा। इसलिए भाई परिणाम निर्मल रखनेका जो यत्न है वह सबसे बडा व्यवसाय है। यदि दो-चार पैसे आते हैं और परिणाम मलीन होता है तो ऐसा लाभ लाभ नही, क्योकि परिणाम अच्छा नही बना है। तो क्या बना है ? बाहरी बात बनी है। तो यह तो बाहरी चीज है। मुख्य काम तो यह है कि तू

निर्मल परिणाम करके ज्ञानमय रहनेका यत्न कर । निर्मल परिणाम करनेका यत्न यह है कि अपनेमे ज्ञानमात्र भावनाएँ भरो, ज्ञाता द्रष्टा बनो कि परिणाम शुद्ध सहज हो जायेगा । इस ज्ञानमय यत्नके करनेमे यह ज्ञानी आत्मा पहले तो पागलसा जँचने लगता है । इसी ज्ञानका यत्न अधिक हो जाये तो फिर वह पत्थरसा निश्चल लगने लगता है । जब ज्ञानमय पूर्ण अनुभूति जगती है तो उसका सब कार्य बन्द हो जाता है । सब कुछ अतरमे मालूम होता है तब वह पाषाणकी तरह निश्चल मालूम देता है और फिर कितने ही विकल्प उसके अन्दर नही रहते हैं, ऐसा जो ज्ञानमय अपनेको कर दूं तो मै अपनेमे अपने लिए स्वय सुखी होऊँ ।

जब तक अपने स्वरूपका पता न हो तब तक यह अज्ञानमे ऐसा लगता है कि मैं यह काम ठीक तो कर रहा हू और ऐसे ही ये लोग ठीक जानकर ठीक कर रहे हैं, किन्तु अपनी आत्माका भ्रम जब जान लेता है कि यह सब विकार है, उसमे ठीक हो रहा है, यह काम आत्माका नही है, आत्मा तो केवल ज्ञानमात्र है, ज्ञानका स्वयं काम करता है, इसके अतिरिक्त आत्माका कोई काम नही है । परन्तु जब तक मोहका उदय है तब तक इस जीवको सही-सही जाननेकी दृष्टि नहीं हो सकती । अकेला तो यह रहता है और कितने विकल्पोका बंधन बांधे हुए है । आत्माका स्वरूप तो आनद ही है, वह अभी तो सुखी है, परंतु जो विकल्प बना रखा है उससे निरन्तर दुःखी रहता है । बाह्यपदार्थमे क्या करता है ? कुछ नही । यह भीतरसे यह आवाज नही उठाता कि मेरा अपनेको कुछ करना है । दूसरोको निष्कटक बनाना है, दूसरेकी उन्नति करना है, दूसरेका काम करना है, दूसरोको साथी बनाना है, दूसरोको परमात्मा बना देना है । दूसरे दूसरेकी बातें तो आ रही हैं, मुझे भी कुछ करना है ऐसी आवाजें भीतरसे नही निकलती । मुझे अपना भी कुछ करना है, तो क्या करना है ? समस्त बाह्यपदार्थोंको भूलकर जैसे मैं यह चेतनामात्र हू, ज्ञानमात्र हू तैसे ही अपना लक्ष्य बनाना है, अपनेको मानना है, करनेका काम इतना ही है । मोक्षके लिए, कार्यके लिए, शाति के लिए, कर्मसे छूटनेके लिए, उद्धारके लिए यही एक स्वाधीन पुरुषार्थ करना है । दुनियाकी उन्नतिकी बात तो ज्ञानी पुरुषके विपदा जंचती है । इतनी ही बात नही, किन्तु इस ज्ञानीको खुदकी ही ऐसी चेष्टाएँ पागलपनसी जंचती हैं जो रागादि होते उनके प्रति मैं यह क्या काम कर रहा हू, इसका मैं करने वाला कहा ? ज्ञानीको अपना ही विकार पागलपनका काम दीखता ह । मैं तो ज्ञाता, दृष्टा हू । जैसा भगवान् कर रहे हैं वैसे ही करनेका स्वभाव मेरा है । ये विकार कर्मोदयके होनेपर होते है । उन्हे यह अपना माने तो यह पागलपनका काम हुआ । जो मेरे आधीनताकी बात नही उसमे मै लगू, यह मेरा अज्ञान है । विकल्प उत्पन्न होता है, यह सब अज्ञानताकी बात है, पागलपनकी बात है, यह पागल हो गया है । है तो

यह परमात्माकी तरह शुद्ध, मगर प्रकृतिके विकारमे लगकर यह पागल हो रहा है। ज्ञानसे अपना स्वरूप विकार पागलपनका काम मालूम होता है। यह ज्ञान भीतर देखता है। मैं निश्चल चैतन्यस्वरूपको देखता हू। कैसा चैतन्यस्वरूप जो खुद ही मौजूद है और खुद ही प्रकट होता है। जो यह स्वभावपूर्ण विकसित होता है बस उसे परमात्मा कहते हैं। मुझमे धनवान् स्वरूप आ जाय इसके लिए कुछ बाहरी चीजें लिपटती नही। वह खुद ही भगवान स्वरूप हो जाता है।

जैसे कोई एक पत्थर मूर्ति बनानेके लिए लाया गया। भाई, इसमे श्री रामचन्द्रजी की मूर्ति बनाना है और देखो यह है एक रामचन्द्रजी की मूर्ति, तपस्वी, ध्यानमग्न, दिगम्बर मुद्रामे। ऐसी ही मूर्ति इस पाषाणसे बनानी है। कारीगरोने व्यक्तमूर्ति व पाषाणको देखा। अब कारीगर क्या करते हैं कि छेनी हथौडा लेकर मूर्ति बनाते हैं। तो मूर्ति नही बनाते किन्तु मूर्तिको ढकने वाले जो पत्थर हैं उनको अलग करता है। आवरण पाषाणखड अलग हुए कि मूर्ति प्रकट हो जाती है। मूर्ति तो उसके अन्दर है ही। केवल मूर्तिको ढकने वाले जो इधर उधर पाषाण हैं उनको अलग करके वह मूर्ति अलग हो जाती है। उसी प्रकार यह परमार्थ-स्वरूप प्रत्येक जीवमे बसा होता है। यह तो स्वभावकी चीज है। एक क्षणको भी अलग नही होता और न अलग होगा। चाहे वह भव्य जीव है चाहे अभव्य जीव, सबमे वह स्वरूप होता है। जीव जीव एक समान हैं। अभव्य नाम इसलिए पडा कि उसके परमात्मस्वरूपका आवरण कभी दूर नही होता, पर ऐसा नही है कि अभव्य जीवमे परमात्मस्वरूप ही न हो। सब जीवोमे परमात्मस्वरूप है। उसका आवरण करने वाले ये विषयकषाय हैं। इस आवरण को जो लोग दूर कर सकते हैं उनका परमात्मस्वरूप प्रकट हो जायगा। परमात्मस्वरूप कही बाहरसे लेकर नही बनाया है। यह आवरण मोह, रागद्वेषका है। इसके दूर करनेका उपाय है, अपने ज्ञानस्वरूपकी भावना करना। मैं आत्मा शुद्ध ज्ञानस्वरूप हू, ज्ञानमात्र हू। आवरण रहते हुए भी विषयकषाय भावसे परे हू। यही इसका स्वभाव है। जरा भी इसके अन्दर विकार नही है। यह ज्ञानस्वरूप है और ज्ञान ही इसका कार्य है। इसलिए सर्वत्र ज्ञान ही ज्ञान है। मै ज्ञानमात्र हू, अपनेको दुःख, द्वेष, मोह आदिसे दूर करनेका यही उपाय है। अपने को ज्ञानमय ही देखना। स्वभाव उसका कैसा है? ज्ञानमात्र। यह आत्मा कर क्या सकता है? ज्ञानमात्र। भोग क्या कर सकता है? ज्ञानमात्र। जिसका सब कुछ ज्ञानभाव है ऐसे स्वभावकी ओर दृष्टि करना मोहको दूर करनेका उपाय है। रागको दूर करना उसका स्वभाव है। यह राग कर्मोदयसे आता है। जब कर्मोदय रहता है तो राग आता है। कर्मका उदय आयेगा तो राग आयेगा। रागका सबध कर्मोदयसे है। राग उसकी चीज नही, राग उसका

स्वभाव नही। रागरहित रहना मेरा स्वभाव है। रागरहित अपनेको निरखना, अपनेको रागरहित स्वभावमे देखना, आवरणरहित अपनेको देखना आवरण अलग कर देनेका उपाय है, सो यह कहते हैं कि ज्ञानमयताके यत्न करनेमे यह जीव पहले तो अज्ञानियोंके बीच पागलपन जनाता है और पीछे पाषाणोकी तरह निश्चल जचता है, वह वेकार काम जंचता है अथवा उस ज्ञानीको भी अपना सब विकार चलना, फिरना, बात करना यह सब पागल-पनसा जंचने लगता है। उसका विकृत काम पागलपनका है और ये पागलपनकी चेष्टाएं हैं और जब भीतर प्रवेश करता है तो उस ज्ञानमे उसका भाव जम जाता है। और अपनेको पाषाणकी तरह स्थिर देखने लगता है। इसी तरह जिस ज्ञानकी खुदकी चेष्टाएं पागलपनकी जंचती हैं और खुदका स्वरूप पत्थरकी तरह निश्चल जंचता है वह ऐसा ही सब जीवोमे देखता है। जीवोकी विकारचेष्टाएं पागलपनकी चेष्टाएं जंचती है। अज्ञानी सोचता है कि ये सब भगवानस्वरूप हैं किन्तु इनके अन्दर कैसी चेष्टाएं हो रही है, कैसा स्वभाव है? परिणामके भीतरका स्वभाव देखता है तो निश्चल देखता है। यह तो सब व्यापकस्वरूप है। यह क्या है? क्या कर रहा है? बाह्य बात देखी जाती है तो वह पागलपनकी चेष्टा जंचती है। भीतरी स्वरूप देखा जाता तो वहां निश्चलता जंचती। खैर इतने चिन्तनके बाद मे विकल्प शांत हो जाते हैं और पूर्ण शांतिमय हो जाता है। इन सब अपने भीतरके मर्मोके समझनेके फलमे अपना क्या कर्तव्य है कि मैं ज्ञानस्वरूप हूं, ज्ञानस्वरूप मेरा काम है। जान लू कि मेरा स्वरूप ही इतना है। किसी वस्तुको अपनी नही मानो और अपने ही ज्ञानमे, आत्मामे मोह कर मैं अपनेमे स्वयं सुखी होऊ।

सुखी होनेके लिए मैं अपने आपके स्वरूपमे झुकता हू। उस झुकनेमें आपदाएं समाप्त हो जाती हैं। एक दृष्टि दो कि दो आदमी हैं, उनको एक पहाडमे घूमना है और पहाड़पर कांटे बिछे हुए हैं। तो एक कहता है कि सारे पहाड पर चमडा बिछाकर मैं घूमूंगा। जब सारे पहाडको मैं ढक दूंगा तो मैं खूब दौडूंगा। एक आदमी सोचता है कि मैं अपने पैरोमे मोटे जूते पहन लूंगा तो सारे पहाड़मे जहां चाहूंगा, घूमूंगा। तो बताओ। पहाड़मे अपने ही पैरमे जूते पहिन लें और घूमे तथा चमडेसे सारे पहाडको ढक दें और घूमे इन दो आशय वालोमे कौन आदमी सफल हो सकता है? इसी प्रकार एक कोई आदमी यह सोचता है कि मै आत्माकी ओर दृष्टि डालू व कोई सोचता है कि इन पदार्थोंको ऐसा बनालूं फिर आरामसे रहूगा, कोई दुःखका काम न रहेगा और पहिलेका यह सोचना है ये कि दुनियांके पदार्थ मेरे आधीन हैं, इनमे कुछ अस्तित्व नही। इन्हे मै कुछ नही करना चाहता हू। इस कारण परपदार्थोंसे मुख मोडो कि मै अपने स्वरूपमें रहूंगा। अब बताओ

कि सफल कौन हो सकता है ? इन दोनोमे सफल वह होगा जो अपने आप ज्ञानरूपमे अपने ही को देखता है। सफल वही हो सकता है। ज्ञानमात्र अपनेको बनाए रखना ही शान्तिका उपाय है। चैतन्यमात्र, मूर्तिस्वरूप अपनेको देखो, रागरहित अपनेको अनुभव करो केवल जाननेका तेरा अधिकार है। तो दुनियाको जानते हुए मरना यही शांतिका मार्ग है।

आत्मजागरण यत्र चाभावे लोकजागृतिः।
अहं स ज्ञानमात्रोस्मि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१—३०॥

जिसके दर्शन होने पर आत्मजागरण रहता है और जहाँ दृष्टि नही रहने पर लोकमें जागरण रहता है वह ज्ञानमात्र मैं हूं। मैं ज्ञानमात्र हूं—ऐसी दृष्टि रखने पर आत्मामे जागृति रहती है, परम सतोष होता है और जिस अपने ज्ञानमात्र की दृष्टि समाप्त होनेपर वह अपने व्यवहारमे रहता है, जो बाहरकी ओर इस मायाके तत्त्वमे सार दीखता है, वह ज्ञानमात्र मैं हूं। ज्ञानमात्र आत्मामे जैसा है वैसी ही दृष्टि डालते रहना, यह चारित्र है। ज्ञानमात्र मैं हूं—इस प्रकार प्रयोग बनाए रखना यह परम चारित्र है। अन्य जो चारित्र कहे जाते हैं, नीति, अणुव्रत और महाव्रत, वह इस चारित्रके समीप ले जानेके निमित्त कारण हैं। इस कारण उन्हे चारित्र कहा जाता है। यहाँ पर चारित्रका सम्बन्ध आत्माके साथ है। जो शारीरिक कार्य है, मानसिक विकल्प है, वाचनिक चेष्टाएं हैं, वे पौद्गलिक चेष्टाए है, उनमे चारित्र नही है। चारित्र जैसी आत्मा है वैसा ही बनाया जाय, इसको चारित्र कहते हैं। अपना स्वरूप सुहा जाय, अपने स्वरूपकी ओर आकर्षित हो जाय, झुक जाय, स्वरूप ही मे लग जाय इसको कहते हैं चारित्र, उपासना, पूजा, आराधना, सयम यही सब। आत्माके स्वभावमे रुचि हो उसकी ओर ही झुकना, यह सब चारित्र है। बाहरी बातें तो थोडे साधक की ओर हैं कि नियम अथवा यह बाहरी पूजा, भक्ति जो बनी रहती है तो इतना अतरमे लाभ है कि बाहर जो विषयकषाय हैं उनमे झुकनेका मौका नही रहता इसलिए कारण है जिस तरह कर्मका क्षय होता है वह तो आत्मारूपकी साधन ही है। आत्माके स्वरूपके समीप होना, आत्मस्वरूपका उपयोग होना और आत्मस्वरूपमे स्वयं रमते रहना, यह कर्मोंके क्षयका कारण है। सो जब उपयोग आत्माकी ओर रहता है तब आत्मामे जागरण रहता है और जब यह उपयोग बाहरी पदार्थोंमे चला जाता है तो वहाँ मायामे जागरण रहता है, परमार्थका जागरण खत्म हो जाता है। आनन्द आत्मजागरणमे है। दुनियाके प्राय. सब जीव उससे अत्यन्त दूर है। इस जीवके साथ जो प्रकृति लगी है उसका परिणाम यह सब दुःख है। स्वभावसे तो जीव आनन्द वाला है, अतः ज्यो ज्यो बाह्यसे निवृत्ति रहे वैसा परिणाम बनता रहे, उपेक्षा जैसी रहे सो ज्ञान कर।

हे आत्मन्, तू किसको अपनी कला दिखाना चाहता है । जो ये दृश्यमान जीव है ये सब दु:खी प्राणी है, असहाय प्राणी है । इन्हे कुछ दिखाकर क्या लाभ पावेगा ? मोह संसार मे रुलाने वाला है, विपत्तिके संबधमे खोटी आदत वाला है। जितना खोटापन हो सकता है वह सब संसारी जीवमे पाया जाता है । ऐसे मलीन, खोटे, बिगडे जगत्के जीवोमे हम कुछ अपनी बात दिखाकर लाभ उठायेंगे ? ऐसा उनको देखनेसे कोई लाभ नही । वे सब अत्यन्त दु:खी हैं, उनसे मेरी कोई आशा नही । वे मेरी किसी परिणतिके स्वामी नही, ऐसा विचार० कर सब जीवोसे उपेक्षा भाव आना चाहिए और वस्तुओका स्वरूप ऐसा है कि प्रत्येक पदार्थ अपने आपमे ही रहता है । उसका सर्वस्व अपने आपमे ही है ।

मैं ही स्वय अपने आप अपनेमे रहता हू, अपना जिम्मेदार हूं, अपना ही परिणाम करने वाला हू, अपनेमे ही सदा रहूगा, इसका अपनेसे ही पूरा पड़ेगा, ऐसा अपने आपको जान, अपने आपमे झुक । ऐसा होनेपर आत्मामे जागृति होती है, आत्मामें अनुभव जगता है, स्फुरण होता है । इस स्वरूपमे शक्ति है कि कर्मोंका क्षय हो जाय तो अपने आप इस रूपमे बार-बार धारणा कर कि मैं ज्ञानमात्र हू, मैं जाननमात्र हूँ । जो जाननेका स्वरूप है वह मैं हू । अपनेको ही अपने आपमे मान । इतना ही मेरा सबध है, इतनेसे ही मेरा काम है, इतना ही तत्त्व है । इसके आगे यह सब प्रकृतिका विकार है, कर्मोदयका विकार है । जो कुछ दुनियामे दीखता है और वह सुन्दर दीखता है। जैसे बाहरके दृश्य, आनंदमय दृश्य, जगलके दृश्य, बाग बगीचोके दृश्य; जहाँ देखकर कहते हैं कि यह देखो प्रकृतिकी सुन्दरता है, प्राकृतिक सुन्दरता है । वह प्रकृति है क्या, वह प्रकृति कर्म है । एकसौ अड़तालीस प्रकृतिका यह कार्य है । बाग बगीचोमे क्या अच्छे फूल हैं, अच्छी पत्तियाँ हैं, अच्छे पेड हैं, सुगधित हैं ? यह क्या है ? प्रकृति उदयसे, कर्मके उदयसे होने वाली अवस्था है । उसीको प्रकृतिकी सुन्दरता कहते हैं । प्रकृतिकी चीजें छल धोखा व बरबाद भरने वाली वस्तुयें हैं । यह सब उसीकी ही माया है और है क्या ? जो अच्छी चीज है वह सताए जानेके लिए है । जंगलमे रथी फूल हैं जिनमे न रूप है, न गंध है, उन्हे कोई नही तोडता है । गुलाबके फूल, बेलाके फूल, चपाके फूल, जो सुगन्ध देते है, देखनेमे अच्छे लगते हैं वह तोड़े जाते है । जो प्रकृति सुन्दरताकी बातें है वे स्वभावको छोडे है । ऐसी ही बात पुरुषोकी है । ये जंगलके प्राणी स्वय दु:खी है। स्वभाव इत्यादिके लिए जो स्वय असहाय हैं, संसारमे भटकने वाले हैं उनमे तू क्यो झुकता है ? तू स्वय ही ज्ञानानन्दमय है । इतना तो यहाँ भी देखा जाता है कि बड़े आदमीसे दोस्ती करनेसे गरीबको फायदा कुछ नही रहता है । खर्चा भी गरीबका हो, समय भी उसका जाय, गरीब कभी सभामे आदर नही पावेगा । बडेकी मित्रतामे छोटेको लाभ नही । फिर दुनियाके

बड़े-बडे पदार्थोंकी ओर झुकनेमे जो दुनियामे बडे माने जाते हैं। जैसे धन, वैभव, सोना, चांदी, इज्जत इनकी आशामे, बडोकी दोस्तीमे अथवा बडे बननेके सम्बन्धमे जीवको सुख नही मिलेगा। सुख तो केवल आत्मज्ञानसे मिलेगा। सही सवाल एक प्रकारसे हल होता है। गलत सवाल दसो प्रकारसे हल होते है। एक सवाल बोला १० बच्चोंके बीचमे। तो जो सवाल सही होंगे वह एक प्रकारके होगे और जो गलत होगे वह दसो प्रकारके होगे। उनमे दसो प्रकारकी गल्तियां होगी। इसी प्रकार आनन्दका एक उपाय है, दूसरा नही। आनन्दके गलत उपाय तो हजारो है। खा लो, पी लो, मांस खा लो, बडोसे दोस्ती कर लो, मदिरा पी लो, कितने ही तरहके काम है। यह करना है, वह करना है, सर्विस करना है, किन्तु आनन्द का जरा उपाय तो बताओ। आनन्दका सही उपाय केवल एक है। कोई कहे यह सब किए बिना तो गुजर नही चलती। हां भैया! ठीक कहते हो, गुजारा तो नही चलता। पर ऐसे ही पडे रहना क्या सदाके लिए ठीक है? यह तो अपने अधिकारकी ही बात नही। जो मनुष्य होता है वह स्थावर हो जाय तो कुछ बताओ क्या करेगा? यहांकी ये सब बातें यहीं ही रह जाती हैं। इसी तरह विकल्प करनेसे लाभ नही है। और जैसा ही परिणाम निर्मल होगा वैसा ही फल अच्छा मिलेगा और जैसा ही परिणाम खराब होगा वैसा ही फल बुरा मिलेगा।

परमात्माके दर्शन न्यायसे होते हैं। परमात्मा जैसा है उस ह स्वरूपमे दर्शन होगा, और रूपमे नही होगा। परमात्मा ज्ञायकस्वरूपमे है, ज्ञानमात्र है। वह ज्ञानमात्र है तो ज्ञानमात्रके रूपमें ही तो दर्शन होगे कि हाथ पैरके रूपमे दर्शन होंगे? ज्ञानमात्र अपने आपका अनुभव है वहां भगवान्का दर्शन है। क्योकि भगवान् तो ज्ञानमात्र है। जैसे ज्ञान मात्रके दर्शनमे आत्माका जागरण है वैसा ज्ञानमात्र मैं हू। मैं परमात्मत्वके उपयोग बनाकर उसके दर्शन कर लू। परमात्मा ज्ञानानन्दका पिंड है। मैं यदि लम्बे चौडे आकारमे ताकू तो परमात्माके दर्शन नही होगे। मैं परमात्माको किसी भी प्रकारकी अवस्थामे देखूं तो परमात्माका दर्शन नही होगा जबकि केवल चैतन्यस्वरूप, प्रतिभासमात्र, ज्ञानमात्र, ज्ञानस्वरूप अमूर्त चैतन्यभावस्वरूपके दर्शन करूं तो परमात्माके प्रगट दर्शन हो स्पष्ट दर्शन हो, उस परमात्माकी भेंटसे जो आनन्द मिलता है उस आनन्दमे ही सामर्थ्य है कि भव-भवके सचित कर्म भी स्वयमेव नष्ट हो जाते हैं पर देखनेको सामर्थ्य चाहिए तो वह सामर्थ्य परपदार्थों से हटकर अपनेमे आनेसे बढ़ती है और परपदार्थोंमे लगनेसे वह सामर्थ्य नष्ट होती है। इस लिए अगर प्रभुताको रखना है और प्रभुताको बढाना है तो उसका एक उपाय है कि बाहरी पदार्थोंसे उपयोग हटावे और अपने आपको ज्ञाता द्रष्टा बनावे, स्वरूपमे रुचि लगावे। इस

आत्माके दर्शन होनेमे जागरण रहता है, आश्वासन रहता है, आनन्द बढता है और यदि उस ज्ञानमात्र आत्माका अनुभव नही है तो लोकव्यवहारमे लगा रहना पडता है, बडा कष्ट होता है। देखो परको जानना तो सरल है किन्तु कष्ट बहुत है। मान लिया कि यह उसका पुत्र है, यह उसका घर है, यह उसके बच्चे है, पर जो इस तरह बरबादी मिलती है वह तो कष्ट है। गुरु बनाना तो सरल है पर दक्षिणा देना सरल नही है। यह पदार्थ मेरे हैं—इतना मनमे विकल्प कर लेना तो सरल है किन्तु इतना माननेके फलमें क्या बीतती है सो देख लो। बाहरी पदार्थोंमे जितना लगा रहेगा उतनी ही सामर्थ्य इसकी घटती चली जायगी। और बाहरी पदार्थोंसे जितना अलग हो जायगा उतना ही इस आत्माका बल बढता चला जायगा। मोहीका बल घटता है और निर्मोही मे बल बढता है। मोह मदिराके क्या परिणाम है ? सो जगत्मे देख लो। एक आदमी मदिरा वालेके यहाँ गया। बोला बढिया शराब दो। उसने कहा—यह ले लो। यह बहुत अच्छी है। कहता है कि सबसे अच्छी दो। उसने कहा—यह ले लो, यह सबसे अच्छी है। इसका प्रमाण क्या ? इसका प्रमाण इन १०-२० आदमियोको देख लो। दुकानमे १०-२० आदमी मदिरा पीने वाले बेहोश पड़े थे। इसका ख्याल और प्रमाण कर लो कि यह मदिरा ऐसी है। इस दुनियामें भी मोह-मदिरा ऐसी विकट है इस मोहमदिराका नशा देखना है तो देख लो। इन पेड वगैरा स्थावरोको, कीडे मकौडोको, छोटा कहलाने वालोको, सबको देख लो। यह मोहमदिराका फल है। जगत्में जितनी तरहके जीव हैं, ये बेचारे नाना प्रकारके जो जीव बने हैं तो यह सब उसीका तो फल है। बोलो मोहकी मदिरा चाहिए। यह भव पाया है तो यह सब मोहका फन्दा है। यदि इसमे फंसना न हो तो मोहसे अलग रहिए। और फिर व्रत, नियम, भगवान्की पूजा आदिकी क्या जरूरत है ? परन्तु मोहका फल यह होता है कि स्थावर बन गया, कीडे मकौडे बन गया, चूहा, बिल्ली बन गया। किसे बड़ा कहा जाय ? ऐसा ही तो मनुष्य बना हुआ है, इसीसे ही कष्ट हो रहे हैं। जिनवाणी सरस्वतीका प्रसाद है। जो कुछ समय कष्टरहित व्यतीत हो रहा है यदि यह नही है तो रात-दिन क्लेश है। कही स्त्रीसे कलह है, कही पडौसियोसे कलह है तो कही दोस्तोसे कलह है। कितनी ही प्रकारको चिंताएँ हैं। तो कौन बडा है ? बडा वह है जिसने अपने परमात्मस्वरूपके दर्शन किये है और जिसके प्रसादसे यह जीव आनन्दमग्न होता है। किसी जीवकी अपनेसे बडी अपनी आत्मा ही मिलेगी। किसी जीवकी शरण अपनेको अपनी आत्मामे ही मिलेगी, दूसरोंका कोई सहारा नही।

एक स्त्री पुरुष थे। पुरुष कुछ व्यसनमे लग गया था। स्त्रीने बहुत समझाया, परतु न माना। स्त्री बोली कि तुम केवल एक ही काम यह कर लो और कुछ न कीजियेगा।

एक मूर्ति दी, बोली कि यह भगवान्की मूर्ति है इसकी रोज पूजा कर लिया करो। पूजा करनेमे २० मिनट लगेंगे तथा पूजा करके केवल २४ घटेको व्यसनका त्याग कर दिया करो। पुरुषने स्वीकार कर लिया। वह रोज पूजा करे व २४ घन्टेको व्यसनका त्याग कर दे। १० दिन गुजर गए। एक दिन यह देखा कि एक चूहा आ गया। जो भगवानकी मूर्ति पर से चावल ले गया। उसने देखा कि मूर्तिसे तो चूहा बडा है। तो चूहेको पूजने लगा। चूहेको जब बिल्लीने डराया तो बिल्लीको बडा मानने लगा। बिल्लीको जब कुत्तेने डराया तो कुत्ते को बडा मानने लगा और यह जानने लगा कि इससे बढकर कुछ नही है, उसकी पूजा करने लगा। एक दिन स्त्री रोटी बना रही थी, रसोईमे कुत्ता घुस गया। स्त्रीने एक बेलन मारा। कुत्ता खूब चिल्लाकर भाग गया। उसने सोचा कि कुत्तेसे स्त्री बडी है। स्त्रीकी पूजा करने लगा। एक दिन आप भोजन करने बैठा। दालमे नमक ज्यादा था। बोला—नमक ज्यादा क्यो पड़ गया। स्त्री बोली—हाथ ही है ज्यादा पड गया तो क्या किया जावे ? एक सेर पानी दालमे डाल दो। उसने स्त्रीके एक तमाचा मारा। स्त्री रोने लगी। अब उसने समझा कि मैं सबसे बडा हू। मैं बेकारमे दुनियामे भटकता रहा। मैं आप ही अपने बलसे दुनियाका काम निकाल सकूँगा। अत. जिस ज्ञानमात्र आत्मापर दृष्टि होनेपर यह आत्मा जगती है और जिसपर दृष्टि नही रहती तो लोकव्यवहारमें जागरण रहता है। वह मैं आत्मा ज्ञानमात्र हूं। मै आत्मा जो कि 'ज्ञानमात्र हू' की उपासना कर अपनेमे अपने लिए अपने आप सुखी होऊँ।

अहं स्वं जन्ममृत्यादि सुख दुःखं नयाम्यहम्।
मुक्तो नेता गुरुस्तस्मात् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-३१॥

मेरा जो कुछ होता है उसका मैं ही जिम्मेदार हूँ। और अब तक जो कुछ मेरा हुआ है उसका जिम्मेदार मै ही था और भविष्यमे भी जो कुछ होगा उसका भी जिम्मेदार मैं ही रहूगा। जो भी जन्म, मरण, सुख, दु.ख इत्यादि मुझे सताया करते हैं उनका करने वाला मैं ही हू। तभी तो अन्य लोग भी ऐसा कहते हैं कि भगवानकी लीला विचित्र है। भगवान्की जो इच्छा होती है उसके अनुकूल सारे काम अपने आप बन जाते हैं—एक बात। दूसरी बात यह है कि जब चर्चा आती है कि भाई वह ईश्वर उपादानकर्ता है कि निमित्तकर्ता है। यदि उपादानकर्ता है तो जैसा चेतन ईश्वर है तैसी ही सृष्टि होनी चाहिए, फिर अचेतन सृष्टि भी क्यो होती है ? यदि ईश्वर निमित्तकर्ता है तो यह सब उपादान पहलेसे ही हाजिर हैं। इन सब पदार्थोंमे ईश्वरने भूलसे क्या किया ? जैसे ये दो प्रश्न ईश्वरके लिए कहे जाते हैं कि ईश्वर उपादानकर्ता है या निमित्तकर्ता है ? तो उसका उत्तर होता है कि वह उपादानकर्ता भी है और निमित्तकर्ता भी है। यह बात तो यहाँ रखो। इस निजनाथकी ओर आवो। यह

तो सारी-सृष्टिके लिए जन्ममरण करना, सुख दुःख करना, शरीर धारण करना, सबके यह उपादानकर्ता भी हैं। कितनी ही सृष्टियां इसके अन्दर ऐसी हैं जैसे कषायकी सृष्टि, योगकी सृष्टि, ज्ञानकी सृष्टि, दर्शन लेश्या। कितनी ही सृष्टियां ऐसी हैं जिनका उपादानकर्ता यह प्रभु ही है याने जीव है, और कितनी ही सृष्टियां ऐसी हैं कि जिनका निमित्तकर्ता यह जीव उपादान नही है।

इसकी सृष्टिका यह जीव निमित्तकर्ता है और उपादानकर्ता भी है। हम जन्म मरण, सुख दुःख आदि जो करते है उन सबमे ले जाने वाला मैं ही तो हू, यह दूसरी बात है। अब पहली बातपर आवो। जैसे ईश्वरवादी कहते हैं कि ईश्वरकी इच्छा हो तो तुरन्त काम हो जाय और उसे कुछ नही करना पडता है। यही बात देखो कि जो इस प्रकारके परिणाम करता है तो सारे काम अपने आप होते चले जाते है। यह प्रभु केवल परिणाम करता है। अभी इसे क्या बनना है कि सशरीर वाला बनना है, मनुष्य या देव बनना है। यह सब अपने आप हो रहे है। जीवने तो केवल परिणाम भर किया। तो मै ही अपने आपको जाननेमे ले जाने वाला हू, यह तो हुई ससारकी बात। मुक्तिमे भी ले जाने वाला मै हू, इस कारण मेरा गुरु मैं ही हू।

इष्टोपदेशमे लिखा है कि—

स्वस्मिन् सदभिलाषित्वादभीष्टज्ञायकत्वतः।
स्वयं हितप्रयोक्तृत्वादात्मैव गुरुरात्मनः॥

अपने ही मे आप सत्की इच्छा करता है और अपने अभीष्टको ही उसमे पहुंचाता स्वयं ही हितमे प्रयोक्ता होता है। इस कारण आत्माका गुरु आत्मा ही है। यह सब मायाजाल है। जो कुछ तो जीवके निमित्तसे पुंगल उपादानमे होते है और कुछ पुगलके निमित्तसे जीव उपादानमे होने वाले हैं। बडे विकट मायाजाल है—इच्छाके परिणाम, रागके परिणाम, मोहके परिणाम। परिणाम करनेमे बहुत सुहावना लगता है और इतना ही नही इस रागमे अंधा हो जाता है। और क्या है कि इन्द्रिय, विवेक, मन किसी भी उपायसे इसको कुछ सूझता नही है। आंखका आंधना तो आंखसे ही नही सूझता है। किन्तु मोहके अधेको किसी भी तरह सूझता नही है। ये सुहावने लगते अवश्य है मगर विवेक तो कर। मनको नही संभाला, ज्ञानको नही जगाया तो ये सब उसको दुःखी करनेके लिए हैं। यह संसार क्यों बना हुआ है? इस जगत्के जीव क्यो रुल रहे हैं? दुःख सुखकी पहिचानमे क्यो नही आते? 'मोह, राग, रुष, दुःखकी खान।' मोह, राग, द्वेष ही दुःखकी खान है। "निजको निज और परको पर जान।" मैं ही अपनेको दुःखी करता हू और मै ही अपनेको सुखी करता हू।

कोई उसके दु:ख सुखको मानने वाला नही।

एक कथानक है कि एक अतृपुण्य नामका राजपुत्र था। उसने पूर्वजन्ममे कोई पुण्य नही किया। सदैव देवताओ, साधुवोका अपमान ही किया। ऐसा जीव राजाके यहाँ पैदा हुआ। पैदा होते ही राज्यमे क्षीणता आ गयी। पब्लिकको दु:ख हुआ। पब्लिक ने राजासे कहा कि आपके इस पुत्रका जन्म जबसे हुआ महाराज तबसे प्रजामे दु:ख छा गया। मतलब यह है कि उस लडकेको राज्यसे निकाल दिया जाय। पर माँ को पुत्र प्यारा होता है। माँ भी लडकेके साथमे चली गयी। महाराजने गाडियो सामान लड़केको द दिया। खूब धन दौलत लडकेको दे दी जिससे कि बच्चा हमारा दु:खी न हो। परन्तु दुर्भाग्यवश अनाज मार्ग मे छिडकता गया। सारा दु.खी न हो। परन्तु दुर्भाग्यवश अनाज मार्गमे छिड़कता गया। सारा खत्म हो गया। मोहरें देखो आग बन गयी। जब उदय पापका आता है तब पापका समागम भी दु खका कारण बन जाता है, और जब पुण्यका उदय आता है तब आपको पता नही कि कहासे क्या आता है? चला आता है। यह सब अपने आप होता है। पर उन सबका जो कारण है वह मैं ही खुद हू। परिणाम सबका सही है तो मेरा भवितव्य अच्छा है और यही परिणाम मेरा है तो भवितव्य भी खराब है। मैं ही तो गुरु हू। जैसा मैं अपने को चाहू वैसा मैं अपनेको ले जाऊँ। ऐसी दृष्टिया ३ होती हैं—एक शुभदृष्टि, दूसरी अशुभ-दृष्टि और तीसरी शुद्धदृष्टि। इन्हीमे यह कमाल है कि सारी सृष्टियाँ होती रहती हैं।

मनुष्य मै हू, अमुक नाम वाला हू। राग द्वेष जो कुछ मैं करता हूं ठीक करता हूँ। मेरे जो विचार है वह ठीक है। अपने आपको मैं जन्मसे विचारता चला आ रहा हूँ, यह सब ठीक है। ये अशुभ दृष्टियोका फल पापको बनाना है। पाप वर्तमानमे भी आकुलित करता है और भविष्यमे भी आकुलित करेगा। शुभदृष्टि क्या है? भगवानका गुणानुवाद करना, भक्ति करना, पूजा करना, जीवोको दयाके भावसे देखना यह सारी शुभ दृष्टियाँ है। इनका फल सम्पत्ति, वैभव जो कुछ प्राप्त हो, हितकर कुछ नही है।

मैं आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वरूप हूँ। मै अपने आप क्या हूँ? मै केवल चैतन्यमात्र हूँ, ज्ञानस्वरूप हूँ, जानने वाला हूँ। चैतन्यस्वरूप एकवस्तु हूँ, ज्ञानमात्र हूँ। जिसकी जाननेकी ही काया है। ज्ञानघन हूँ। मै ज्ञानसे अतिरिक्त और कुछ नही हूँ। ऐसी मै चेतना हूँ। ऐसी दृष्टिको शुद्धदृष्टि कहते हैं। इस शरीरके अतिरिक्त मै जीव केवल ज्ञानस्वरूप हूँ। यही मैं आत्मा एकवस्तु हूँ। और मैं कुछ नही हूँ। ऐसी दृष्टिको शुद्धदृष्टि कहते है। आदमी सोता है तो सोतेमे भी जागता है। सोतेमे भी विकल्प होता है। इनकी बातें भी कभी कभी झलक जाया करती है ऐसी दृष्टि ज्ञानकी शोधी हुई है। जैसी अपनी दृष्टि की है वैसी दृष्टि बनाता

है। देखो जैसे नामकी वासना दृढ़ है, कोई नाम ले तो चौकन्ना तुरन्त हो जाता। बडी भीडमे बैठा है और नाम कोई ले लो तो तुरन्त चौकन्ना हो जाता है। कैसा नामके प्रति अनुराग है। और उस नामका शब्द कितना सुहावना लगता है। कही नाम लिख दें, कही नाम बोल दें तो उससे कितना अनुराग हो जाता है? दूसरोको वशमे करनेकी सबसे बडी दवाई यह है कि उसके नामकी प्रशंसा कर दे, उसका नाम लिख दे, नाम बता दे, या कहिए कि जिसे चाहे वश कर लें। जीवनको वश कर लें, दुनियाको वश करें, जो बुरा है उसको वश करलें यह क्या? वशीकरण मत्र नामकी कीर्ति गा लें, नाम लिख दें, नाम ले लें। इनमे सब वश हो जायेगे। यह डायरेक्ट वशीकरण मत्र है। यह महाविष है। यह इस लिए विष है कि इसमे सब प्रभुता नष्ट हो जाती है। सब जीवोमें मिलाजुला ससारमे एक चैतन्य वस्तु है, मेरा इसका नाम ही नही है और न मैं दुनियाके अन्य जीवोसे कोई खास हू। इसलिए नामरहित शुद्ध अपनेको देख, यही ज्ञान है, यही शुद्धदृष्टि है। जहां अपनेको नाम वाला समझा, बस समझो कि ससारमे रोनेका साधन बना लिया तभी तो शुद्धदर्शनमे नामको पहिले रखा है। सर्व आपदाओका मूल नामकरण है।

परमार्थसे मैं नामरहित हूँ, शुद्ध हू, सबसे निराला हू, अकेला हूं, चैतन्यमात्र हू, इसलिए उसकी जो उपासना करेगा दृष्टि पवित्र हो जायगी और शुद्धदृष्टि बढती चली जायगी और उस दृष्टिकी दृष्टि है, मोक्षका होना और पर्यायकी दृष्टि है संसारमे रोना, जन्म मरण बना रहना, सुख दुःख बना रहना तो देखो सुख दुःख आदिमे मैं ही अपने को ले जाता हू, मैं ही अपनेको प्रकाशमे ले जाता हू। इसलिए मैं अपना गुरु स्वय ही हू और दूसरा मेरा गुरु कोई नही है। मेरा मार्ग बनाने वाला मैं ही हूं और कोई दूसरा नही है, इस विषय कषायकी फिसल रिपट कहिए, ऐसी विचित्र है कि जरा भी मनकी ढिलाई की कि वह बढती चली जायगी। जैसे बरसातमे कीचड वाली सडकमे असावधानीसे चलें तो जरा भी फिसलते हैं तो फिसलते ही चले जाते हैं। इसी तरह धनके आकर्षणमे, नाममे, यशमे, इच्छामे परिवारके रागमे झुके, शिथिल बनें, इस दुनियामे ठीकसे रहना, शानसे रहना, फिर देखा जायगा, बड़ोसे सम्बन्ध हो, बडा काम करना है फिर अन्तमे देखा जायगा, अपनेको सभाल ले जाऊगा— ऐसी कुछ ढीलकी कि ढिलाईकी तरफ स्वयं बढता चला जाता है।

मैं आत्मा धर्ममय हूँ, इसलिए प्रतिदिन धर्मकी दृष्टि होना चाहिए। जीवनके रोजके २४ घटोमे धर्मका हिस्सा होना चाहिए। जीवनमे सब आयु की बांट नही करो कि हम ८० वर्ष तक जीवेंगे। सो ७० वर्ष मनमाने चले, फिर १० वर्ष अन्तमे धर्म देख लेंगे। तू २४ घटोमे ३ घटे तो धर्मका काम कर। इतनो समय यदि धर्म काममे जायगा तो शांति

का मार्ग मिलता रहेगा। कही व्यापारिक कामोमे फसे हुए है, कोई भी स्थिति हो हर स्थितिमे अपने को इन २४ घटोके बीच धर्मपालनका समय देना चाहिए और अगर आयुमे ही समयका भाग करना है तो पहला काल धर्मका लाए। ५ साल खूब धर्म कर लिया जाय आत्मतत्त्वका मर्म ही समझ लिया जाय तो क्या है ? कमानेको जिन्दगी बहुत है फिर देख लेना कमानेंकी बात। अगर आयुके बाँटमे धर्मका समय देते हो तो पहले धर्ममार्गको दो। एक कथा है कि विधाताने कहा एक जीवसे कि बालिग होनेके बाद तुम्हारी आयुमे एक दो वर्ष तो देता हू तुम्हारे सुखके लिए, मौजके लिए, सम्पदाके लिए, धर्मके लिए बाकी ५०, ५५ वर्ष वह देंगे तुम्हारे दुःखके लिए। अब तुम्हारी मर्जी हो तो एक दो वर्ष चाहे पहिले ले लो चाहे आखिरी पीरियड ले लो, दस वर्षके बादमे वह आदमी बालिग हो गया। वर्ष १० वर्षका हो गया तब वह बहुतसा धन रोज कमाता, उसने सोचा कि एक दो वर्षमें सब सुख करलें सबसे ठीक बोलेंगे, सबके साथ ठीक तरहसे रहेगे। उसने खूब धर्म भी किया। अगर यह जाना कि आगे तो वर्ष खोटे आवेंगे तो जो कुछ उत्तम हो वह सब जल्दी कर लेना। उसने २ वर्ष धर्ममें बिताए तो भविष्यके पाप भी कट गए। सो भैया! यदि यह सोचो कि अभी तो बहुत आयु है, अभी तो ५०, ६० वर्ष मौज कर लो, फिर धर्म करना देखा जायगा तो प्रायः यही समझो कि ये ५०, ६० वर्ष तो व्यर्थमें जा ही रहे हैं, सारा समय तो यूँ ही खत्म हो जायगा तो अपना सारे जीवनका कुछ आगे पीछे का भाग न करके २४ घटेमें अपना कमसे कम ३ घटेका समय धर्मसाधनामें लगाना चाहिए। एक घटा ज्ञान आराधनामें गया और कुछ समय भक्तिमें गया, कुछ समय साधु जनोकी सेवामें गया। २४ घटेमें कमसे कम ३ घटेका समय धर्मसाधनामें व्यतीत होना चाहिए। कोई कहे कि धर्म साधना कैसी ? सो कहते हैं।

धर्मसाधनाका मतलब यह नही कि कोई सोचे मैं मूर्तिपूजा करता हू और मुझे ज्ञान से साधुओसे जनसेवा से मतलब है तो यही भले समझ ले कि मैंने धर्म कर लिया है, किन्तु धर्मकी प्रवृत्ति सब अगोमें होती है। मैं अपनेको जन्ममें ले जाने वाला, मरणमें ले जाने वाला, दुःख और सुखमे ले जाने वाला हूँ। मेरा गुरु मैं ही हू, और मेरा गुरु कोई नही है ऐसा जानकर कुछ अपनेमे आना चाहिए। इस जगत्मे यह तो होता ही रहा है कि दूसरे पदार्थ उसका कुछ करनेमे समर्थ नही होते, तब किसीको उसकी आशा ही नही रखना चाहिए। कारण यह है कि दूसरोकी परिणतिसे इसमे कुछ बढता नही है, यह तो अपने ही परिणामका फल है। दूसरे लोग भी उसके किसी काममे सहायक हो जाते हैं। यह अपने ही परिणामकी कला है। कल एक प्रश्नमे आया था निमित्त और उपादान। निमित्त कुछ

करता है कि नही ? निमित्त और उपादान किसे कहते हैं ? उपादान तो वह है कि जिसमें परिणति होती है, जिसमे कार्य करे उसको उपादान कहते हैं। और जिस दूसरी चीजके बिना कार्य न बन सकता हो उस दूसरी चीजको निमित्त कहते है। यह तो उपादाननिमित्त के सम्बन्धमें ऐसा दृष्टा देखे कि वह दूसरी चीज जो निमित्त है, क्या उसके उपादानमें परिणति कोई आ गयी ? उनका क्षेत्र, काल, भाव कुछ भी उपादानके अन्दर नही गया। और फिर भी हैरानी इस बातकी कि निमित्तकी उपस्थिति बिना उपादानमे कोई विभाव कार्य नही हो सका। ये समस्याएं सामने हैं कि निमित्त करता कुछ नही परन्तु निमित्तके बिना कुछ होता नही। यह तो कैसी विचित्र बात है ?

फलित क्या कि यह सब उपादानकी कलाएं है, यह सब उपादानकी ही योग्यताएं हैं कि यह उपादान ऐसे पदार्थोंको सामने पाकर खुद ही खुद अपने आप रूपमें ऐसा बन जाता है। जैसे इस चबूतरे पर हम बैठें तो इस बैठनेका उपादान कौन है ? हम ही हैं। हमके मायने पिंडोला, हाथ, पैर, बिस्तर, बंडल यह पैर मुड़े आगे ऐसे बैठें तो इसके उपादान हम ही हैं। पर इस चबूतरेको निमित्त पाकर मैंने सब कुछ कर लियो, इस चबूतरेने कुछ नही किया। ऐसी कोई जबरदस्ती की है ,या कोई कसूर किया है। पर मैंने ही अपनी इच्छासे पैरके अनुसार मैं स्वय ही निमित्त पाकर अपने आप ही इस पर बैठ गया। यह समझना चाहिए कि जितने भी विषय होते हैं जन्मके, मरणके, सुखके, दुःखके उन सबमे ले जाने वाला मैं हूं। इन सबमे सारी अपनी प्रवृत्तियो को मैं ही करने वाला हूं, दूसरा कोई नही है। मैं दु.खी होता हूं तो मुझे दुःखी करने वाला मैं ही हूँ। मैं जब सुखी होता हूं तो मेरे सुखका करने वाला मै ही हूँ। मैं यदि गड़बड करता हू तो मेरा गडबड़ करने वाला मैं ही हूँ। और यदि मोक्षमार्गमे लगता हू। तो मुझे मोक्षमार्गमें लगाने वाला मैं ही हूं। दूसरो का न अपराध सोचें और न ऐहसान सोचे। क्योकि दूसरे पदार्थोंसे मेरा कुछ आता जाता नही है। यह तो उसके ही कर्मसे उसके ही ज्ञानसे आया है। मेरे घरमे १० आदमी हैं पर यहां मन बिगडा है यदि वह दूसरोको ऐसे बैठा हुआ देख ले तो वह सोचता है कि यह मेरे प्रति कुछ सोचता है। मेरी ओर यह कैसे बैठा ? हाथ पैर तो उसके कही जा नही सकते वह तो रहेगे ही, दूसरा विकल्प करके दुःख होता। अपने आप दूसरा विकल्प करके दुःखी हो रहा है। सोचो कि यह स्वयं गिरा है सो दुःख हो गया, वह स्वयं दुःख हो गया। दूसरा कोई दु ख नहीं करता। मदिरमे जो शुरूमे विचार करता है और देखता है कि आज वह भगवान् बहुत प्रसन्न हैं। मालूम होता है कि अब भगवान् बोलना चाहते हैं। जैसा परिणाम किया वैसा दुनियाको देखता है। उसमे हमारा जो भी परिणमन होता है उसका करने

वाला, मैं ही हू अत. परके कर्तव्यका भ्रम छोडकर अपनेमे ही विश्राम करके अपने आप ही सुख होऊ ।

देहे बुद्धया वपु· स्वस्य बुद्धया स्वः प्राप्स्यते मया ।
ज्ञानमात्रमतिर्मेऽस्तु स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१ ३२॥

सब दु खका मूल शरीर है, यह सब साधारण वर्णन की बात है । कल्पना कीजिए कि जीवके साथ शरीर न हो और केवल यह जीव ही होता तो इसे क्या क्लेश था ? जो शरीर सब क्लेशोका मूल है, उसमे ऐसी जो ममता रहती है तो यह विवेक नही । यह शरीर अपने से अत्यन्त जुदा है । इसका होना, इसमे ममताका होना कितने बडे दु.खकी बात है ? आत्मा तो स्वयं भगवानस्वरूप है, आनन्दमय है, ज्ञानानन्द है, अनुपम सम्पत्तिवान है; फिर भी अपने स्वरूपको न पकडकर बाहरी बातोमे केवल दृष्टि लगाना यही हम सबकी खुदकी विपत्तिकी बात है । जैसे दुनियामे कहते हैं कि गजब हो गया । क्या हो गया चोरी हो गई । बडा गजब हो गया । अमुक आदमी गुजर गया । क्या हो गया ? बडा गजब हो गया । यह तो विचार दुनियावी है । सबसे बडा गजब तो यह है कि ऐसो आनन्द मय आत्मामे अपनी दृष्टि न रखकर बाहरी पदार्थोंमे दृष्टि लगाई है—यह गजब है । बाकी कुछ और नुक्सान नही है । जिसे खोटा समझा वे पदार्थ है, परिणमते हैं, वर्णनशील हैं । उनका काम हो रहा है । उनके होनेसे नुक्सान नही है । नुक्सान तो यह होगा कि हम अपनी बेवकूफी मात्रसे अपने आपमे अनन्त ससार बनाए रहे । यह गर्व हो गया । भैया ! सिर्फ ज्ञानका ही तो काम कर रहा है । चिंता कुछ न कर वस्तुओ का तू कुछ न कर, उन को ठीक तरहसे समझ ले । केवल समझसे आपकी दृष्टि होती है । बाहरी चीजें मेरी दशाके लिए कुछ नही है । वे किसी भी तरहसे मेरे लिए जिम्मेदार नही हैं । जो आप समझते है उसीपर सुख दु ख निर्भर है । केवल इतना समझना कि समझकी शैलीमे मेरा शरीर बनना निर्भर है । आना-जाना कुछ नही, किन्ही पदार्थोंसे वास्ता कुछ नही । मगर तू उन्हे अपना न माने तो लाभ है । केवल यह जीव समझता है । समझनेके अलावा और कुछ नही करता है । बस इसी समझनेपर ही हमारे शरीरका बनना, न बनना निर्भर है । यह सारा शरीर दु.खोकी जड है । सुख दु ख जन्म मरण जो कुछ हैं वे शरीरके ही द्वारा होते हैं ।

इस तरह यह सिद्ध है कि दु खोका कारण शरीर हैं । दु खोका कारण मिटता रहे, इसमे प्रसन्न हो या दु खोका कारण न मिटे इसमे प्रसन्न हो । दुःखोका कारण मिटे ऐसी बात हमारेमे उठती ही नही है । ससारी जीव दुःखका कारण जो शरीर है उसे ही चाहता है । यह वर्तमानमे सोच लिया जाता है । शरीर न मिटे यह जल्दी सोच लोगे । ऐसा सोचो

कि यह न रहे तो ठीक ही रहेगा। पर यह सब बातें हमारे किसीकी समझमें नही आती। केवल वचनोमे हमारी बातें चलती हैं उनसे काम नही बनेगा। यह उपयोग संस्कारमे बने तो काम हो। जब मेरा कुछ जगत्मे है ही नही, न शरीर रहता है, न परिवार रहता है, न धन-दौलत रहती है, जब तुम्हारा जगत्मे कुछ रहता ही नही। मेरा तो केवल ज्ञान ही मेरा है। इसीसे मेरा पूरा पडेगा। केवल एक निजसे दृष्टि लगा तो अपने हाथ सब कुछ है। बाह्य दृष्टि न रहे तो शांति सहज ही है। मतलब सब कुछ मुफ्तमें मिल रहा है। कही ऐसा यदि सोच ले तो समझो कि उसे सब कुछ मिल गया है। यह पदार्थ सब अपनी-अपनी सत्तामे हैं। एकका दूसरेसे अत्यन्त अभाव है। एक दूसरेका कुछ भी नही करता है। सभी अपने अपनेमे जुदा रहते है। एक दूसरेसे कोई सम्बन्ध नही है। सो चेतन पदार्थोंमे सब अपना अपना ईमान चला रहे हैं। पर हम हैं कुछ मानते है कुछ चलते हैं। उनकी यह बात अचेतनमे नही पायी जाती है। वे अपनी सत्तासे ईमानपर निर्भर हैं। पर यह भगवानरूप चैतन्यप्रकृतिके संबंधमे अपने ईमानको खो बैठा है सबमें सम्यक् गुण और चारित्र गुण विद्यमान है। यह मुख्य दो गुण चेतना वाले तो चेतन नहीं हैं। सम्यक् चेतन वाला गुण नही है, जानने वाला गुण नही है। यह दृष्टि नही जानी कि चेतनमे जितना गुण है वह चेतन हो रहे। यहाँ तो कार्य अपेक्षाकृत कर रहे हैं। आत्मामे अनेक गुण है जिसमे चेतन वाले दो गुण हैं। ज्ञान दर्शन तथा इसके अलावा अन्य गुण होते है वे चेतन नही। सो भैया! अचेतन प्रकृति सगसे क्या चारित्रमे बिगाड होता है ? यह भी ईमानदारीकी ही बात है या रागद्वेष एव उपाधिवश अचेतन गुणके विकार हैं। ईमानदारी छोड दी, ईमानदारी छोडनेका नाम मिथ्यात्व है। अचेतन गुण बिगडता है, विपरीत होते है। वह सब होती है न्यायकी बात। पर उनमे राग हो जाना यह बेईमानी है। रागद्वेष भावोको अपने स्वरूपमे बैठाता है, यह बेईमानी है। और फिर इस जगत्मे दीखने वाला जो धन है, वैभव है, परिवार है उनको अपना मानना यह तो बेईमानी है ही। अपनेपर अन्याय है, अपने आपको जगत्मे रुलाते रहनेका उपाय है। उसीमे यह शरीर है। वह शरीर भिन्न है, दुःखका कारण है, इसे जो अपनेमे मिलाता है वह बेईमान होता है।

जो पवित्र है वह मैं हू, ऐसी आत्मबुद्धिको देहमे आतमबुद्धि करना यह बेईमानी है, अन्याय है, पाप है और मोह है। इस पापके करनेसे क्या होगा कि दुःखके कारण यह शरीर मिलता ही रहेगा। जैसे किसी लड़केसे प्यार नही है, कदाचित् वह एक ओरसे भूलसे ऐसी चीज माँग बैठे जिसमे कोई भी सार नही है या जिसे अलग डालना चाहता था वही मांगे तो उसके देनेमे झिझक नही होती है। इसी तरह यह ससारी जीव एक असार चीजको मांग

बैठा। शरीरको जीव माँग बैठा तो इसके देनेमे कोई झिझक नहीं होती है। ले जाओ, ले जाओ, ससारमे जाकर खूब जन्म मरण करो। यह इसका फल है तो शरीर मिलता जायगा। इस शरीरमे आत्मबुद्धि करनेसे यह शरीर मिल तो जायगा तो दुःख बढते ही चले जायेंगे। जैसे जैसे भवमे जायगा उसे उसी भवमे समागम दुःख मिलेगा और उसीमे राज करके अपना समय निकलता रहेगा। यहाँ तो यह समागम चल रहा है कि इस रागमे कुछ समय गुजर रहा है, पर यह सब अन्तमे न होगा। अन्तमे मरकर ऐसी दुनियामें वह कीडे मकोडे बन गया तो फिर क्या वस चल जावेगा ? अब तो दुःख मेटनेका उपाय जल्दी बन जायगा। अगर सुख करना है तो मोह न करो और सम्यक्ज्ञानकी ओर दृष्टि दो, सम्यक्ज्ञानमे अपना समय दो। देखो तो मैं तो केवल ज्ञानमात्र हूं, पर अपनेमे स्वरूपदृष्टि न देकर दूसरे पदार्थोंमे आ गया हू। फल उसका क्लेश है।

हे प्रभु तू तो आनन्दघन है, अत. आनन्द विराजमान है, प्रकाशवान है। इसको वही देख सकता है जिसकी मोहपर विजय है। जिसको पर्यायमे उपयोग नही है वह अपने आपमे विराजमान प्रभुको निरख सकता है। जो पर्यायमे आत्मबुद्धि करता है उसको भगवानके दर्शन नही होगे। वह सुखके जजालमे ही पडा रहेगा, यहाँपर प्रभुकी भेंट व शरीरका मिलन दोनो मुफ्त मिलते हैं। पसन्द कर लो क्या चाहिए ? यह एक ऐसा दुर्लभ तत्त्व है तथा कैसा मुफ्तका तत्त्व है ? तुम्हारी इच्छा हो तो तुरन्त मिल जाय, देर नही लगेगी। जरा भी इच्छा हो तुरन्त मिल जाय। इसमे जरा भी परेशानी नही। जैसे जलपूर्ण देशोमे और बरसातके समयमे जगह जगह पानी भरा होता है। वहाँ पानी मिलना कितना सरल है। उससे भी अधिक अपने भगवानकी भेंट सरल है। बिजलीके बटन दबानेसे बिजली जलती है, उसमे तो अधिक समय लगता है। एक सेकेन्डका हजारवाँ हिस्सा भी नही लगेगा। भगवान मिल जायेंगे, परन्तु शर्त यह है कि दृष्टिरूपमे ही केवल समझ कर लेनेकी बात है, भीतरसे ज्ञान विज्ञान कर लेनेकी बात है। एक साथ जगत्के सब पदार्थोंसे अपनेको अलग कर लो। यह सब कुछ भी मैं नही हू। मैं तो एक ज्ञानस्वरूप आत्मा हू। एक साथ सबको अलग मानकर क्रमसे मान करके लक्ष्य नही मिलेगा। इसे कल अलग कर देंगे, इसे दो चार साल बादमे अलग कर देंगे। ऐसा मत करो सबको एक साथ अलग कर दो। उपयोगमे मै सब कुछ स्वय हूँ। इस जगतमे कोई भी तत्त्व मेरा नही है। ऐसा निश्चित करके और भगवानसे भेंट कीजिए अन्य कोई भी उपाय नही है। वर्षों कोई उपाय कीजिए और यदि किसी दिन कोई एकत्वदृष्टिका उपाय समझ जाओ तो अपने आपको कुछ अकेला अनुभव करो, भगवानसे भेंट हो जायगी। भगवान बाहरसे आकर नही मिलेगा जो बाहरसे आकर खुश कर दे। बहुत

बहुत यत्न करके कोई भगवानको खुश कर ले सो नही होगा। कोई दूसरा भगवान् खुश नही होगा, अन्य और कोई खुश नही होगा, मेरा प्रभु ही प्रसन्न होगा। मेरे प्रभुकी प्रसन्नता के बिना काम नही बनेगा। मेरा प्रभु ही प्रसन्न होगा। पहले प्रभुके सामने तो आओ, अपने सामने ही आनेमे प्रभुका सामना हो जायगा। तुम्हारा यह प्रभु दयालु है। इतना सरल है, इतना भोला भाला है कि जरा भी सामने आओ तो सब कुशल कर देगा, सब माफ कर देगा। प्रतिक्रमण मे आता है कि मेरा पाप ऐसे मिथ्या होता है। जहाँ चैतन्य चमत्कारमात्र निष्पाप स्वभावको देखा वहाँ अन्य बातें मिथ्या हो जाती है। इस अपने प्रभुके सामने आवो दुष्कृत माफ हो जावेंगे। अपने प्रभुके सामने आनेका मतलब अपने आपको ऐसा अनुभव करो कि मैं प्रभुका स्वरूप हू। शुद्ध ज्ञानमात्र चैतन्यमात्र, ज्ञायकस्वरूप इसका स्वभाव अपने आपको अनुभव हो तो यह प्रभुके सामने आना हुआ। ना होनेपर वह अपना दुष्कृत माफ हो जाता है। कैसे मिथ्या हो जाता है ? पाप तो सम्यक् बढा मैं तुरन्त मिथ्या हो गया। वह मैं नही था, वह पापमे नही था। वह मेरा स्वरूप नही था। वह तो प्रकृतिके विकार का खेल था। मैं तो सदा ज्ञानमात्र हू। ऐसी बुद्धि बनाना था। प्रभुसे भेंट करना एक ही बात है। ज्ञानमात्र मै हू ऐसी बुद्धि बनावो। इन सब बातोको एक साथ भूल जावो। मैं अमूर्त हू, शरीर वाला हू, सम्प्रदाय वाला हू, इतने घन वाला हूँ, ऐसी दुकान वाला हू, ऐसा जानने व ऐसा सुनने वाला हू, ऐसा करने वाला हू—यह भाव मिथ्या है। मुझमे यह सब बिल्कुल नही है। ऐसा सब कुछ नहीं है। यह अनुभव लाओ कि मैं ज्ञानमात्र हू। जब यह अनुभव होगा तब समझो कि भगवानका सामना हो गया। सब हितमे हो जायेंगे।

मोक्षका मार्ग सामने आयेगा। ज्ञानमय आत्मस्वरूपका अनुभव कर बाहरी पदार्थों मे से निकट संबध शरीर का बना रहता है। इसकी बुद्धिसे किसीको गाली दे दिया। शरीर मे है आत्मबुद्धि, सो उसे बुरा लग गया। क्यो लग गया ? शरीर को तो आत्मा माना था। यह आत्मा तो हवासे भी पतला है, आत्मा पानीसे भी पतला है, परमाणुसे भी पतला है। यह पतला ही नही है यह एक अमूर्तिक भावमात्र पदार्थ है। इसे गाली नही लगती। अब अपने स्वरूपकी दृष्टि छोडकर अन्य पदार्थोंमे दृष्टि लगाएगा तभी दुःखी होगा। और जब अन्य पदार्थोमे दृष्टि न लगाकर अपने स्वरूपमे दृष्टि लगाएगा तो दुःखी नही होगा। शरीरके ही हिस्से जिन्हे मोही अपना कहता कि यह मेरा बाप है, यह मेरी बुआ है यह मेरी मौसी है, यह मेरी सास है—यह सब सारे शरीरके नाते हैं, कुछ नही है। नाते शरीरमे ही हैं। यह शरीर जिस शरीरके निमित्तसे हुआ वह शरीर बाप है। दूसरा शरीर भी उसी निमित्त से हुआ वह भाई बहिन है। जितने रिश्तेदार है शरीरके सबधसे ही है। इस शरीरको पैदा

करने वाली माँ है, वह जहाँसे उत्पन्न हुई वहीसे जाकर शरीर उत्पन्न हुआ, वह मौसी है मामा है।

सारे नाते शरीरके साथ है। मै आत्मा सबसे निराला हू, ज्ञानमात्र हू, विशुद्ध हूँ। जगत्के मायाजालसे हटकर अपने आपमे परिणाम करके विश्राम करनेको जाते हैं। जो इनका साथ करेगा सो पार होगा। जो नही करेगा उसको हित नही मिलेगा। शरीरमे आत्माको जो दुःख करे तो उसका शरीर मिटता चला जायगा। और यदि आत्मामे आत्म-बुद्धि करके ज्ञानमात्र यह आत्मा है तो ज्ञानमात्र यह आत्मा मिलेगा और शरीरसे सब छूट जायगा। इन सबकी अवस्था करने वाला मै हू। यह शरीर रहे या मुक्ति हो इन सबका जिम्मेदार मै हू, मै ही सृष्टि करता हू, अन्य जीव कैसी भी व्यवस्था हो नही करते। यद्यपि शरीर अत्यन्त भिन्न है तो भी शरीरका मिलते रहना आनन्द होना आपके परिणाम पर निर्भर है, जब केवल बुद्धिमात्रसे समझने भरसे जानने मात्रमे इन दोनोकी प्राप्ति होती है तो शरीर की प्राप्ति कर लो या भगवान्की प्राप्ति कर लो। जिनको आना हो आवे। पास बना हुआ है। केवल अपने सोचनेसे ही अपने प्रभुसे मिल सकते है। यह आत्मा अपने समझमे परसे मिलता है। तब इसके आगे और क्या चाहिए? कितना बडा अवसर प्राप्त है कि जिसकी उपमा नहीं दी जा सकती है। अपने आपकी महत्ता तब मालूम होती है जब अपनेसे छोटोको देखो। यदि १० रु० हैं और महत्ता जानना चाहते हो तो भिखारियोके बीचमे घूमो। सबके देखने के बाद अपनी स्थितिका संतोष होगा। अब जरा ससारके सब जीवोको देखो, स्थावर कैसे हैं, कीडे मकौडे कैसे हैं? खोटे मनुष्य खोटी जातिके खोटे कुल के ये सब कैसे है? जरा भो ससारमे दृष्टि तो डालकर देखो तो अपने वैभवका पता चलेगा। जिससे सदाके लिए लाभ मिले ऐसा करो जिससे क्लेश मिटें सदाके लिए। अपने आपको ज्ञानमात्र स्वय मानकर अपने आपमे रमकर आपमे स्वय सुखी होओ।

महान् स्वभ्रान्तिजः क्लेशो भ्रान्तिनाशेन नश्यति।
यथात्स्य श्रद्दधे तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-२३॥

जगत्मे जितना भी क्लेश है वह सब आत्माके भ्रमका क्लेश है। जैसे मनुष्य सब एक ढगसे पैदा होते हैं, एक ही ढगसे मरते और एक ही ढगसे रागद्वेष होते हैं, इसी तरह जगत्के समस्त प्राणी एक ही ढगसे दुःखी होते हैं। यहाँ यह कोई अन्तर नही कि भाई अमुक आदमीके दुःखका ढग और है, दुनियाके दुःखी होनेका ढग और है, और बडे लोगोके दुःखी होनेका ढग और है। ऐसा यहाँ ढग नही है। दुःख होनेका ढग एक ही है। और वह है भ्रम। बाहरी पदार्थोमे आत्मतत्त्वका भ्रम हो गया, इसीलिए इन्हे क्लेश हुआ। यह क्लेश

स्वयंने ही तो बनाया। भ्रम किया कि दुःख हो गया। धन वैभव कुछ होता है नाशवान् होता है, दुःख होता है, क्योकि जो परपदार्थ है उन सबमे सत्ता जुदी है। उसमे यह उपयोग कर लिया कि मैं हू, यह मेरा है, बस दुःख होने लगता है। यह तो है अन्यायकी बात। अभी जीवनमें, घरमे, पास पडोसमे, समाजमे, मित्रोमे अधिक तरहके भ्रमोका क्लेश रहा करता है किसी भी बातका भ्रम हो गया बस अलग बैठे बैठे दुःखी हो रहे हैं। यह भ्रमका क्लेश हमने ही तो स्वयं बनाया है और हम ही इस भ्रमको नष्ट करेंगे। तो यह क्लेश नष्ट हो सकते है अन्यथा नहीं होगे। जैसे एक उदाहरण लो कि एक करोडपति अपनी हवेलीमे दोपहरमे पडा हुआ सो गया। उसे स्वप्न आया कि उसको गर्मी बहुत लगी है, सहा नही जाता। इसलिए चलें समुद्रकी ठंडी ठडी लहरोमे थोडा घूम आवें। वह चला। वह चला नही स्वप्नमे देख रहा है, समुद्रके पास गया। नाविकसे बोला कि हमे एक घंटे तक इस समुद्रकी सैर करा दो। बोला—ठीक है, ५ रु० फीस है। बोले कि ठीक है। इतनेमे स्त्री बोली कि हमे भी ले चलो, हम भी चलेंगी। घरके बच्चे वगैरा भी ऐसा कहने लगे कि हमको भी ले चलो। पहरेदार बोला—हमको भी गर्मी लगी है, हमे भी ले चलो। सब नावमे बैठकर करीब आधा मील पहुचे तो समुद्रमे भँवर आयी। सेठ नाविकसे बोला—'तुम बडे दयालु हो उसने कहा—नाव डूबनेसे नही बचेगी, हम तैरकर निकल जावेंगे। सेठ बोले– ५ हजार रु० ले लो, ५० हजार रु० ले लो परन्तु नावको पार कर दो। पार कर दो नही तो हम सब मर जावेंगे। इस समय स्वप्नमे देखो कि दु ख कितना हो रहा है ? स्वय हम भी मरेंगे और हमारे सहायक भी मरेंगे। अब क्या होगा ? सारी बातें सोच सोच करके क्लेशित हो रहे है। पर सेठजी होते तो है देखो बंगलेमे, मित्र लोग देख रहे है कि सेठ जी बगलेमे सो रहे है। कब जागेंगे ? नौकर चाकर भी काम कर रहे है। सेठजी स्वप्न देख रहे हैं। नौकर चाकर तथा मित्र कोई भी उनके दु खको मिटानेमे समर्थ नही है। उनका दुःख केवल एक ही उपायसे मिट सकता है कि जाग जाएँ, नीद खुल जाए, और उनके दुःखोके मिटानेका कोई दूसरा साधन नही है। जाग गये तो देखा कि वहाँ समुद्र नही है और न वे सारे दुःख है—वह सोचने लगे।

इसी तरह इस जगतके प्राणी मोहकी नीदमें सो रहे हैं और मोहकी नीद वह है जहाँपर सब दुःखी रहते हैं। यह मेरा घर है, यह मेरा वैभव है, यह मेरा परिवार है, इतना मेरा बन गया है, इतनेका नुक्सान हो गया है, अपमान हो गया है, इज्जत धुल गयी, सारे अपने मोहको ही देख रहा है। देखो कैसा वह ज्ञानानन्दस्वरूप है। यह जीव अपने आनन्द

की सत्तामे है । जिसका स्वरूप भगवान्स्वरूप है ? ऐसा ज्ञानानन्दस्वभावमे यह सब है । लेकिन मोहमे पडे हुए हैं और सारा जगत् लाभ हानि मानकर दु:खी हो रहा है । इस जीव के दु खोके मिटाने मे कौन समर्थ है ? क्या परिवारके लोग या मित्रजन, क्या अपनी चेष्टा करके दुःख मिटा सकते है ? क्या भगवान ऐसे मोहके दुःखोको मिटा सकते हैं ? कोई दु:ख मिटानेमे समर्थ नही है । यद्यपि यह जीव शुद्ध परमस्वरूप है, भगवान् स्वरूप है, ज्ञानानन्द-घन है । लेकिन मोहकी नीद जो आती है उसी दुःखको भूल गया है कि मैं अपने वैभवमे हू । भूलका फल तो आयगा । बाहरी पदार्थोंमे उपयोग कर लिया । इसके फलमे महान क्लेश होना ही है । इसके मिटानेका सामर्थ्य है केवल अपना पुरुषार्थ ।

रत्नकांडमे एक कथा आती है मुछमक्खनकी । एक व्यक्तिका नाम मुछमक्खन था । वह एक जैनके यहाँ गया । वहाँ मट्ठा पिया । मू छ पर हाथ फेरा । जब हाथ फेरा तो मू छ मे मक्खन लग गया । सोचा कि यह काम बहुत बढ़िया है । ऐसा रोज करू गा । रोज किया । एक सालमे अच्छा घी लगभग एक सेर उसकी मूछोमे जुड गया । अब जाडेके दिनो मे माहके महीनेमे डबली को ऊपर लटकाया । नीचे आग जलाई और सो गया । अब वह स्वप्नवत् पडे पडे मनमे कल्पनाए करने लगा । घी को दो रुपयामे बेचूगा । दो रुपयासे और कोई सामान खरीद कर ४, ५ रु० मे बेचूगा, ५ रु० का सामान खरीदकर १०, २० रु० मे बेचू गा । जब १०, २०, रु० हो जावेंगे तक फिर बकरी खरीदूंगा, गाय खरी-दू गा, बैल खरीदू गा । बादमे जमीदारी खरीद लूंगा, विवाह करू गा बच्चे होंगे । इतने में एक बच्चा आ गया बोला कि माँ ने रोटी खाने लिए बुलाया है । कहता है कि अभी नही जाऊगा । दूसरी बार फिर कहेगा कि माँ ने रोटी खाने को बुलाया है । कहा—अभी नही जाऊँगा । तीसरी बार फिर कहेगा कि माँ ने रोटी खानेके लिए बुलाया है । कहा—अबे कह तो दिया कि नही जाऊँगा । ऐसा कहकर लात फटकारी । लातकी फटकारसे डबलीमे धक्का लगा, नीचे गिर गई और फूट गई । उसकी झोपडी भी जलने लगी । अब तो झोपडी के बाहर निकलकर चिल्लाने लगा कि स्त्री मरी, बच्चे मर गए, गाय भैंस खत्म हो गये । लोग जो पासमे थे, बोले कि कल तक तो भूखो मरता था । आज कहाँसे यह सब कुछ आ गया । बादमे उस मुछमक्खनने सारा किस्सा सुनाया । एक सेठने कहा कि तू कल्पनाएँ ही तो करता था । तू इन कल्पनावोमे ही क्यो दु खी हो रहा है ? पासमे जो चतुर आदमी खडा हुआ था, बोला—सेठ जी, क्यो समझाते हो ? तुम भी तो ऐसे ही हो ।

किसीसे तेरा सम्बन्ध नही । तू स्वय एक आत्मतत्त्व है । तेरी सम्पदा कहाँ है ?

कल्पनाएँ कर रखी हैं कि यह मेरा है, वह मेरा है। सम्पदा बना रखी कि मोह जुड गया। यह तो अपना ही राज्य हो गया। सब व्यवस्था चलने लगी। परमार्थसे देखो तो यह आत्मा केवल ज्ञानमात्र है। इसका वहाँ कुछ नही है। ये सब कल्पनाएँ है, भ्रमजाल है। उसे भ्रम के कारण दुःख होता है। हमने अपने दुःखको भ्रमसे ही पाला है। हम ही अपने ज्ञानका सहारा करके तथा भ्रमको नष्ट करके सारे क्लेशोंको दूर कर सकते है। आत्माके भ्रमसे पैदा होने वाले दुःख भ्रम नष्ट करनेसे ही दूर किए जा सकते हैं और इसका कोई दूसरा उपाय नही है। तुमने और भ्रम बढा लिया तो क्या दुःख खत्म हो जायेंगे ? दो चार बच्चे हो गए। वह अच्छे अच्छे ओहदेपर हो गए तो क्या दुःख खत्म हो जावेगा। कितनी ही स्थिति बढ जावे पर जब तक आत्मज्ञान नही होगा तब तक दुःख नही मिट सकते है। जब भ्रम खत्म है तब दुःख खत्म है। एक कथानक है कि दीवालीमे जब घरकी पुताई होती है, तो एक लालाजीके यहाँ गेरुवे रगकी पुताई हो रही थी। लाला जी की लडकीने जो गेरुवे रगका भरा लोटा था लालाजी के पलगके नीचे रख दिया। रोज वहाँ एक लोटा रखा रहता था। उनकी आदत थी कि सुबह सबसे पहले वह लोटा लेकर टट्टी जाया करते थे। झट उठे और गेरुवे रंगसे भरा लोटा लिया, टट्टी चले गए। शौच की, शुद्धि की। देखा तो वहाँ लाल लाल दिखा। सोचा कि अरे सारा खून निकल गया, सिरमे दर्द हो गया, बुखार आ गया। वहाँसे हाँफते हाँफते मुश्किलसे घर आए। खटियामे लेट गए। बुखार बढने लगा। इतनेमे बिटिया आती है और कहती है कि पिताजी मैंने खाटके नीचे गेरुवे रगका लोटा रख दिया था, वह कहाँ है ? अरे वह तो गेरुवे रगका लोटा था। ऐसा दिमागमे आते ही उनकी तबियत ठीक हो गई। वह बोले कि मै यह लोटा लेकर टट्टी गया था, इसलिए बुखार आ गया। भ्रम कर लिया तो बुखार आ गया। भ्रम मिटते ही शान्त हो गया। जगत्मे किसका क्या है ? बड़े करोडपतिको सामने कर लो। उसका क्या है ? दुःखकी बात देखो तो करोडपतिको भी महान् दुःख है, रातको नीद अच्छी तरह नही आती है। भ्रम बना रहता है कि चोर यहाँ गए हैं, वहाँ गए है। सुखसे नही रहते है। है कुछ नही उनका, पर आरामसे नही रहते हैं। विवेक यह है कि गृहस्थका कर्तव्य है कि वह धर्म करे। पालन-पोषणके समयमे भी जो कर्तव्य है सो करे। मगर धनका आना न आना भाग्य पर छोड दे। और फिर भाग्यके अनुसार जो आता है उसमे अपने लिए सात्विकवृत्तिसे खर्च करे। यही गृहस्थका गुण है। जिसने खूब कमाया है वह भी मनमाने ठाटबाटसे नही रहता है। इसलिए रहन-सहन द्वारा हम ऐसा न करके सात्विकतासे रहे। ऐश आरामका बढ़ाना यदि किया तो शीलता बनाये रहना अच्छा

है। और जो अपनी आय हो, कामके मुनासिब व्यय करके शेष दूसरोंके उपकारमे खर्च हो। इसमे प्रसन्नता नही होती कि तृष्णा करके सोच रहे हैं कि हमने जोडा क्या है ? हमे अभी और जोडना है। हमे अभी चार आदमियोमे इज्जत बढाना है। अरे ये चार आदमी मर मिटने वाले है। चार आदमियोके लिए शान क्या बनना है ? भगवान्के ज्ञानमे शान बनावे तब तो ठीक है। जो अनन्त, जो शुद्ध भगवान् है, उस प्रभुमे ध्यान दो। यदि ज्ञान आए तो तुम्हारा लाभ है। सर्व सिद्धि होगी। यहाँ सबकी दृष्टिमे इज्जत चाहना भी क्लेश है। वह सब आत्माके भ्रमके क्लेश हैं। वह क्लेश हैं। वह क्लेश भ्रमके नाशसे समाप्त होगे। इस कारण यह कोशिश करनी चाहिए कि प्रत्येक पदार्थका यथार्थस्वरूप ज्ञात हो। यथार्थस्वरूप ज्ञात होना ही दुःखोके मिटानेका उपाय है। अभी सामने रस्सी पडी है, कुछ अंधेरा और कुछ उजेला है। सामने देखा तो भ्रम हो गया कि यह साँप है। इस भ्रमके कारण उसे डर हो गया, आकुलता हो गई, दिल काँपने लगा, हाय यह तो साँप है। कुछ नही, रस्सी पडी हुई है। उसने कहा कि आखिर देखें तो कि कौनसा साँप है ? जहरीला है कि और कोई है। देखें तो कि कौनसा साँप है ? जरा थोडा पास गया। कुछ और हिम्मत की। फिर और चला तो देखा कि यह तो रस्सी है। लो भ्रम खत्म हो गया, आकुलता खत्म हो गयी, दुःख खत्म हो गये।

जितना भी क्लेश होता है यह सब भ्रमसे होता है। तो अपने आप ऐसा अनुभव करो, ऐसा उपयोग बनाओ कि मैं अपने सत्त्वमात्र हू, ज्ञान और आनन्द भव मात्र हूं, शरीर से न्यारा हू, सब पदार्थोंसे निराला हू। केवल मैं आनन्दको करता हू और ज्ञानानदको ही भोगता हू। ज्ञानानन्दमे रहनेके अतिरिक्त और मैं कुछ नही हू। इसी तरहसे तू अपने स्वरूप का अनुभव कर तो वहाँ कुछ क्लेश नही है, कोई विपत्ति नही है, विपत्ति तो भ्रमसे बनती है, भ्रम समाप्त हो जाते ही विपत्ति समाप्त हो जाती है, पदार्थ उसे दुखित नही करते। पदार्थ तो पडे है, जहाँ हैं तहाँ हैं। वे अपना स्वरूप व परिणमन लिए हुए हैं, निरतर परि-णमन करते रहते हैं। कोई भी पदार्थ हमे दुःखी नही करता। न वह दुःखी करते थे और न वह सुखी करेंगे। यह जीव अपने आप स्वयं भ्रम बना-बना करके नाना कल्पनाएँ करके स्वय अपने आप दुःखी होता है। बडे-बडे महापुरुषोने राम हनुमान इत्यादि महापुरुषोने सब कुछ छोड दिया, घर छोड दिया। न वे रहे। अपने स्वरूपमे बसे, आत्मसाधना की। क्या वह कम बुद्धि वाले थे ? यह तो बडे पुरुष थे, पूज्य पुरुष थे, आराध्य देव थे। ऐसा उन्होने कोई इसलिए किया कि यहाँ तो सब असार है। इससे उनसे वास्ता कुछ नही, फिर उनपर दृष्टि क्यो की जाती है ? सम्यक् ज्ञान हुआ। अतः उन्होने इन सबको छोड दिया। और

उन्हे अपने आप आनन्द मिला। उन्होने सब कुछ छोडा इसलिए कि उन्हे शुद्ध आनन्द मिला। यह आत्मा खुद स्वतत्र है। बाहरी पदार्थोंसे दृष्टि हटाओ और अपने आनन्दस्वरूपमे दृष्टि लगाओ। सब विकल्पोको छोडकर अपने आपमे रमो तो वह आनन्द मिलेगा कि जिसके निमित्तसे भव-भवके सञ्चित कर्म भी मिट जायेंगे। बडे बडे रागद्वेषोकी आपदायें भी क्षणभर मे ही भस्म हो जावेंगी। यह इस ज्ञानकी ही सामर्थ्य है और किसीमे सामर्थ्य नही है।

अब स्वय मायाजालको छोडकर जो मेरा स्वरूप है उस स्वरूपमे ही दृष्टि डालूँ और अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होऊं। सुखी होनेका कितना अच्छा एकमात्र सरल व स्वाधीन उपाय है। जहाँ हम है वहाँ हमारा भगवान् है। यदि अपने स्वरूपको देखो तो मोक्षका मार्ग मिलेगा, सर्वकल्याण होगा। और यदि अपने स्वरूपको भूलकर बाहरी पदार्थोंमे दृष्टि लगाई तो दु.खी होनेका उपाय है। केवल समझने पर ही सब कुछ निर्भर है। अपनी समझ करना तो सरल काम है। इसमे अनंत लाभ है। मैं बाह्यपदार्थोंमे दृष्टि लगाता हू तो यह खराबी है, इसमे जन्म मरणके चक्रमे फसना पडता है। परमार्थत अपना उपयोग तो किसीमे फसता नही, उपयोग ही स्वय फस जाता है। वह तो स्वयकी चीज है। हम स्वाधीन बने रहे और सर्वत्र सुखी रहे। दुःखका कोई काम ही नही है, हम स्वय स्वाधीन बने रहे और सर्वत्र सुखी रहे। दुःखका कोई काम ही नही है, हम स्वय स्वाधीन है। मैं जैसा हू वैसा अपनेको समझता हू। मैं अमूर्त ज्ञानमात्र हू। इसी अनुभवमे आवो फिर जो कुछ कल्याणकी बात होनी है वह स्वयं होगी। और आत्मस्वरूपके जानने पर शुद्ध जानना ही रह जायगा और समस्त विकल्पजाल समाप्त हो जायेंगे। इसी सम्यक् मार्गमे ही मोक्ष का मार्ग है।

देहे स्वबोधता दुःख सुख स्वे स्वस्य चेतनम्।
सुखं स्वायत्तमेवातः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१–३४॥

जो मैं हू, जैसा मैं हू तैसा ही अपनेको जानें सोई सुखी है और जो न जानें, जो शरीर, धन, परिवार इत्यादिमें आत्मबुद्धि करे सोई दुखी है। सुख और दुःखके मिलनेका स्रोत यहाँ पर मैं ही हू। इसके अभ्यासके लिए बहुत बहुत ज्ञान करना पड़ा है। सब ओर की बातोको जानना पडता है और इसीलिए जितना भी ज्ञानका विस्तार है, शास्त्रोका प्रसार है यह ज्ञान करानेके लिए है। यदि कोई शास्त्रोमे घूमे, विवेकवश एक अपने ज्ञानानन्दकी पहिचान करले तो उसने सब शास्त्रोका मर्म जान लिया और कोई पुरुष सब शास्त्रो का विद्वान् हो तो भी यदि अपने इस सहजस्वरूपका अनुभव न कर सका तो वह कुछ भी नही कर पाया। जगत्के जितने भी क्लेश हैं वह सब परपदार्थोंमे आत्माकी बुद्धिसे है, नही

तो क्लेश ही कहाँ है ? किसी दुःखीकी कहानी सुनो। उस कहानीमे यह मिलेगा कि इसको अमुक चीजका राग है। उसकी अमुकमे आत्मबुद्धि है, इसलिए क्लेश हो रहे हैं। आत्मासे मन अमूर्त है। इस ज्ञानमात्र अमूर्त आत्मामे बाहरकी क्या चीज आयेगी और उसमे इसका क्या सुधार होगा ? यह तो खुद ही कल्पनाएं करके अपना आकुल परिणाम करता है। आप कल्पनाएं छोड दें और जो अपना सहजज्ञानस्वरूप है, ज्ञानमात्र स्वभाव है, उसका ही तु उपयोग करले तो वहाँ कोई दुविधा नही है। दुविधा तो बनाई जाती है। आत्मामे विपत्ति नही होती है। क्लेश तो बनाया जाता है, आत्मामे क्लेश नही हैं। आत्मा तो एक चैतन्य वस्तु है जो ज्ञानघन है वह ज्ञानसे सर्वथा परिपूर्ण है। ज्ञानका ही ऐसा कमाल है कि वह आनन्दको लिए हुए है, ज्ञान और आनन्दस्वरूप आत्मा ही सम्पत्ति है। वह स्वभाव से है जो आपको सत् बनाए हुए है। ज्ञानशक्ति, आत्मशक्ति मिटती नही है। लेकिन इस जीवमे वैभवशक्ति है। जिससे बाहरी कई निमित्त पाकर विकारकी परिणति लेता है। यदि अपनेको जैसा है तैसा मान लें कि मैं अपने आप कैसा सत् हू ? मैं अपने आप कैसा अस्तित्व रखता हू ? यदि यह स्वयं समझमे आ जाय तो यह विश्वास तुरत बन जाए कि लोकमे मेरा प्रभु मैं ही हू, मेरा कोई दूसरा नही है। मैं जैसे परिणाम करता हूँ वैसी ही सृष्टि करता चला जाता हू। शरीरमे आत्मबुद्धि होना सोई दुःख है। बडे बडे पुरुषोके जीवन-चरित्र देखो तो जब तक उनको मोह रहा, रागका लगाव रहा तब तक चैनसे नही रह सके कौरव पाण्डवोका चरित्र देखो, राम लक्ष्मणका चारित्र देखो, किन्ही का चारित्र देखो जब तक लगाव रहा तब तक वह चैनसे नही रह सके और जब ही उनका ज्ञान परिपूर्ण हुआ, बाहरी दबाव छूटे तो अब उनका वर्तमान सत् देखो वह कर्ममुक्त भगवान हैं, अनत सुखो द्वारा सर्वसम्पन्न है। आज हम उनकी आराधना करते हैं और उनकी आराधनामे अपना सौभाग्य समझते है। रावणको देखो दु'ख मिला जिन्होने लगाव नही छोडा। जीवनके अत तक मोह ही मे रहे, ममता ही मे फसे रहे। उनका नाम लेने वाला कोई नही है और नाम भी लिया जाता है तो एक घृणाकी दृष्टिसे लिया जाता है। तो बडे बडे पुरुष भी इस जगत् मे नही रहे। वह अच्छे हुए तो मुक्ति पाकर भगवान हुए और जो अच्छे न हुए वह जन्म मरणके चक्करमे पडे रहे। जो भी उत्पन्न हुआ है वह यहाँसे गया ही है। क्या वह हमारी स्थिति नही आयेगी जिस दिन हम यहाँ नही होगे ? हम नही रहेंगे उस दिन हमारा क्या रहेगा ? कोई भी चीज हमारी नही होगी। कौनसे पदार्थ हमारे साथी होगे ? हम बिल्कुल अकेले हैं, अपने ही स्वरूपको लिए हुए हैं। जगके सब पदार्थोंसे मैं अत्यन्त जुदा हूँ। मेरेमे शरीर भी नही है। वह भी एक सूक्ष्म स्कन्ध है और राग, द्वेष इत्यादि विकार भी नही हैं।

मैं तो एक शुद्ध ज्ञानमात्र हूँ, चैतन्यशक्तिमात्र हूँ। ऐसा मैं बडा हल्का, भाररहित, अमूर्त, अत्यन्त पवित्र सारे पदार्थोंमे उत्कृष्ट एक चैतन्य वस्तु हूँ। जैसा मैं हू तैसे ही सब है और जैसे सब है वैसा मैं हूँ। ऐसा मैं सचेतनामें साधारण एक चैतन्यवस्तु हूँ। यही हूँ और कुछ नही हूँ, नाना रूप नही हूँ। ऐसा जानकर अपने ही स्वरूपमे मस्त रहना सोई सुखका उपाय है, दूसरा कुछ नही है।

जगत्के कौनसे ऐसे पदार्थ हैं जो सुन्दर है, रमणीय हैं, विश्वासके योग्य है, मेरे सुख के कारण है, मेरे हितके हेतु हैं, ऐसे कौनसे पदार्थ हैं ? कोई हो तो बतलाओ। मोहके अज्ञान से चाहे यह जच जाय कि यह मेरे बच्चे, परिवारके लोग यह सब बडे सज्जन है, कल्याणकारी हैं, प्रेम करने वाले है, परन्तु जाँचो तो उनसे कुछ नही मिलेगा। आत्माके आनन्दका मार्ग साफ नही हो सकेगा। उन विकल्पोमे अपनी ही अवस्था बिगड जायगी, जन्ममरणके चक्कर की फांस लग जायगी, लाभ कुछ नही होगा। और जो प्रेमदर्शन वाले हैं वे तो कषायके अनुसार अपने ही तो परिणाम कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त मुझमे क्या कर सकते है ? यही सब जीव जो कुछ करते हैं वे खुद अपना परिणाम करते है। इनसे बाहर कुछ उनका कर्तव्य नही है। उनसे कोई भी बात मुझे नहीं आती, हम उनकी प्रवृत्तियोको देखकर फूले नही समाये। वे प्रेमको उत्पन्न कर लें। यह मैं अपना ही तो परिणाम कर रहा हू। जिसके बदलेमे खुद ही मुझको कुछ मिलेगा। क्या मिलेगा ? आकुलता। अब दूसरा कुछ नही मि-लेगा। ऐसा जीव बिल्कुल स्वतंत्र है। मगर इस लोकमे बडी विवशता हो रही है। जैसे कही कोई जुवा होता है या कोई ऐसा खेल होता है जिसमे दो आने वाला नम्बर आए। जो खेलेगा उसको पैसा मिलेगा। दो आने, चार आने लगाते जायें, जब पैसे चले गए तो सोचा जो कुछ बचे हैं वही घर ले चलें। तो पासमे बैठे हुए लोग ऐसा कहेंगे कि वह उठ नही सकता है। कहेंगे कि बस इतनी ही ताकत थी। उठ नही सकेगा। सब लुटाकर अपने घर जायगा। इसी तरह यह सब जीवन लुटाते चले जा रहे हैं और सोचते है कि जरा भी समय मिले तो हम झझटोसे हट लें, और अपने घर चलें, लेकिन यहाँ ऐसे वचन मिलते है कि वह जा नही सकता है। यहाँ वचन ही नही, अपितु दर्शन मिलते है तथा ऐसे ही समागम मिलते हैं कि जिसे चाहते हुए भी हिम्मत नही है कि अपने पूरे बलके साथ अपनी आत्मामे मिलकर प्रभुके दर्शन तो कर लें। कैसा प्रभुका आनन्द है ? ऐसा तो निकट ससारी ही साहस करता है। प्रायः यहाँ तो ढला चला शुरूसे चला आ रहा है। मना करना, लडाई करना ही द्वेष करना, ज्ञान बनाना, इज्जत बनाना, हम भी कुछ जगत्मे हैं ऐसा देखना—यह सारे खेल खेला करता है। पर हम अपनेको नही बचा सकते है, न हम अपनी रक्षा कर सकते है और

न अपने जीवनको बरबादीसे अलग कर सकते हैं, न हम अपने परमात्माके लिए कुछ कर सकते है। यह इसी मोहका ही तो कारण है, अपनी ही तो कमजोरी है। जैसे कहते हैं कि 'नाच न जाने आँगन टेढा'। कोई साधारण नाच जानने वाला था, लेकिन लोगोंसे खुद कहा कि हम भी नाच दिखावेंगे। जैसे कोई गर्वसे कला दिखाता है कला अच्छी तरह जानता है, फिर भी चार आदमियोके बीचमे यदि वह स्वय दिखावेगा तो कलामे कोई फर्क आवेगा। उसने नाचा, किन्तु ठीक नाच न हो पाया। तब उसने कहा कि मेरा नाच तो बढिया है, पर जचेगा नही, क्योकि यह आँगन टेढा है। इसी तरह जीव आनन्दकी कलामे तो अभ्यस्त नही, सो आनन्द मिलता नही, दु खी होता है। वही उस दुःखमे अपना अपराध तो देखता नही, परका कसूर कहता है। क्योकि अज्ञानको अपना रहा है और यथार्थस्वरूपको नही देखता है। अज्ञानको बनाता है और दुःखी होता है; स्वच्छन्द बन गया है। मनमे जो आए करने को तैयार होता है। जिन पदार्थोंमे अपना राग मनाता है वह करता है, ऐसी अवस्थामें दुःख तो होगा ही। दु ख अज्ञानसे ही तो होता है। लड़का ठीक नही यह बडा दु.ख है। यह काम नही हो रहा है, इसका दुःख है। अरे जगत्के सारे पदार्थ चाहे जो कुछ हो उनसे दु ख नही होता है। अपनेको ज्ञानस्वरूप देखा तो मैं ज्ञानमात्र हू, ज्ञानस्वरूप हू, ज्ञान करनेके अलावा और मैं कुछ नही हू। ज्ञान करनेके अलावा मेरा कोई काम नही है। मैं ज्ञानस्वरूप सर्वस्व हू। एक ज्ञानमे ही रुचि जगाओ और फिर यदि कोई क्लेश हो तो बताओ। क्लेशकी जड अज्ञान है। उस क्लेशको मिटानेके लिए सुधारका प्रयत्न करता है। मगर अज्ञानको मिटानेका प्रयत्न नही करता है। सेठ अथवा होदेदार कोई भी हो, कहीं कहीपर ऐसे मिलेंगे जो अपना आधेमे अधिक समय धर्ममे, सत्संगमें, दयामे, उपकारमे, भक्तिमे लगाया करते हैं और लक्ष्मी वैसे ही आया करती है। लक्ष्मी जोडनेसे नही आती। परिणाम निर्मल हो, परिणाम तृष्णाका न हो, पदार्थोंसे उपेक्षाका परिणाम हो, अपने आपके स्वरूपमे प्रेम हो, स्वय ही लक्ष्मी आती है। लक्ष्मी आती है वह मुझको भला करनेके लिए नही आती है, लक्ष्मी प्रायः पतन करनेके लिए आती है। आती हो तो आए और न आती हो तो न आए। मुझमे ऐसी कला है कि सब स्थितिमे सुखी रह सकता हू। कोई भी परिस्थितियाँ हो सबमे मुझे सुख हो सकता है। ऐसी आत्मामे कला है, बल है, तप है, फिर बाह्यपदार्थोंमे क्यो झुकता है?

मैं अपने आप स्वरूपको जानूं, मैं ब्रह्मत्वको पहचानूं और उसकी दृष्टिसे ही सुखी होऊँ—यह मेरा लक्ष्य हो।

अच्छा सोचिए पहले हम कुछ थे या नही थे। यह बात तो है नही, क्योकि नही

थे तो आज हो नही सकते थे । जो है, वह न नही बन सकता । जो नही है, वह है नही बन सकता । जो सत् है वह मिट नही सकता । जो सत् नही है वह हो नही सकता । हम है तो हम पहलेके थे । क्या थे ? ऐसे ही कुछ होगे । मनुष्य हो या देव हो या और कोई हो । कौन था ? कुछ था और उसके पहले अनादिसे था कि नही था । उससे भी पहले था । तब फिर आप ये कबसे है ? अनादिसे । जन्ममरण होतें चले आए, अनंत भव हो गए, अनतकाल हो गया । उन भवोमे भी तो कहीं कही बाबा दादा हुए होगे । अब कुछ उनसे क्या लाभ है ? मुझे तो उनका पता भी नही । उन भावोंका कुछ साथ है क्या ? कुछ भी तो नही । हितका नाम नहीं, दूसरोंके पुण्यका उदय है । जिनके लिये बरबाद होना पडता है । अपने सर्वोत्कृष्ट सारतत्त्वमे आवो तो आनन्द मिलेगा । परमे आत्मबुद्धि होना ही दु ख है और अपने आपमे अपने आपका अनुभव होना ही सुख है । यह जीव जाननेके अलावा और कुछ नही करता है । ज्यादासे ज्यादा बढो तो इच्छा कर लेता है । इसके बाद जो कुछ परपदार्थमे होता है वह आटोमेटिक होता रहता है । निमित्तनैमित्तिक भावोसे जैसे होता रहता है उनका करने वाला मैं ही हूं । अधिकसे अधिक इच्छा करने वाला हू । इच्छासे आगे मेरी करतूत नही है । अब ज्ञान और इच्छामें जहाँ साधारण ज्ञान रहा वहाँ आनन्द मिलता है । और ज्ञानसे बढकर जहाँ इच्छामे चले गए वहाँ दुःख पैदा हो जाता है । उसका इस लोकसे पूछने वाला कोई नही है । कहाँ पडा है ? कैसे पडा है ? इसका पूछने वाला कोई नही है । इस ही भवकी बात देख लो जिन इष्ट पुरुषोका बाबा पिता आदिका वियोग हो गया उनका अब हम क्या कर रहे हैं ? क्या कर सकते हैं ? वास्तवमे तो उनका तब भी कुछ नही करते थे । जरा पहलेकी बात स्मृतिमें लाकर जरा देखो तो हम चाहते थे, हम उन्हे पूछते थे, वे हमे पूछते थे । वह कहाँ गए ? कोई भी उनका पता नही । हम इतना भी नही मालूम कर सकते कि बाबा और पिता इस समय कहाँपर हैं ? इतना भी उनके विषयमे पता नही चल सकता है तो और क्या क्रिया जा सकता है ? जो लोग प्रतिवर्ष श्राद्ध असौजमें किया करते हैं कि यह भोजन दे दिया, यह कपडा दे दिया, दादा बाबाके पास पहुंच जायगा । उनसे कभी इतना कहते हैं कि अरे तुम हमारे मरनेपर श्राद्ध करोगे, जिन्दामे दो कटोरा पानी तो दे दो । जिन्दा में तो उनको दुःखी करते, हैरान करते और मरनेपर श्राद्ध करते, ऐसा विचित्र लोक है । मोहके बारेमे भी एक ग्रन्थमे लिखा है कि जो लोग आसक्ति करते है कि भाई तुम्हारे सुखमे मुझे सुख है और तुम्हारे दुःखमे मुझे दुःख है, तुम्हारी बेचैनीमें हमे बेचैनी है, तुम्हारी जिन्दगी तक हमारी जिन्दगी है और तुम्हारा मरण है तो हमारा मरण है । जिनको ऐसा तीव्र मोह है वह क्या है ? निगोद जो काम करेगा उसका यह अभ्यास कर रहा है । निगोदमे एक

मरा तो अनन्त मरे, एक जीवका स्वास हुआ तो अनन्त जीवोके स्वास हुए, एकका जन्म हुआ तो अनन्त जीवोके जन्म हुए। उसीका तो यहाँ अभ्यास किया जाता है। वह चैनमे है तो हम चैनमे है, वह मरा तो मैं मरा—ऐसा अभ्यास कर रहे हैं। जिससे निगोदके काममे कोई बाधा न आ सके। यह ससार विचित्र है, गोरखधधा है, इसमे फसा रहता है और कोई काम नही करता। किन्तु जो ज्ञानी है वे बडे आदमियोकी, महात्माओकी खबर लिया करते हैं। तो सब इसी कारणसे कि वह अनुपम कार्य कर सकता है। जो कार्य हमे करने चाहियें वे सब कार्य किये जाने चाहियें। इसीलिए तो उनकी आराधना करते है, नही तो कौन आराधना करता है? अब जो आखिरमे मर गया है उनकी प्रशंसा करता है, मरते समय सबको छोड दिया था कि हमारा कोई कुछ नही है और मरते समय प्रभुका नाम लेकर मरे और ऐसा अपनेको कर गए तो उनकी प्रशसा हुई और कोई अगर ऐसा कहे कि हमारे बाबा मरे और वह मोह करके मरे और बहुत तडपकर मरे। हाय, मेरा घर छूटा जा रहा है—ऐसा जो कहेगा तो बाबाकी प्रशसा नही हुई, निन्दा हुई। प्रशमा भी ज्ञानमे ही है, ज्ञानके बनानेमे ही उत्कृष्टता है और ज्ञानका बडप्पन और महिमा है। यदि सब अज्ञानके विकल्पोको छोड दें तो दुनियामे इससे बढकर कुछ नही है, सबसे बढकर यह बात है। लक्ष्मी सम्पदाको तो भाग्यपर छोडो और अपनेको सदा क्लेशसे दूर होनेका पुरुषार्थ कर लो, यही उत्तम बात है। सम्पदाका काम श्रम करते रहनेसे नही हो जायगा। वह भी जैसे परिणाम करो आती है। तो पुण्यका उदय अपने परिणामको निर्मल करनेका, समता पैदा करनेका, जो जैसा है वैसा समझने रहनेका है, पुरुपार्थ कर, कषाय न कर अपने आपमे स्वय झुक और अपने आपमे ही प्रभुके दर्शन कर, ऐसा अगर हुआ तो लोकव्यवहारमे शांति रहेगी, परिवारके लोग भी सज्जन होगे, सभ्य बन जायेंगे और हम चाहें कि हम कैसे ही रहे और परिवारको सज्जन बना दें तो परिवार सज्जन नही बन सकता है। खुद ही ऐसा है कि जिससे तुम उत्कर्ष करते हो, ऐसा हो सकता है तो कुटुम्बपर असर जावेगा। खुद खोटा है तो उसके परिवारके लोग सभ्य तो नही बन सकते, पर जो परिणाम किया जाता है उसका लोकमे फल मिलेगा और भविष्य मे भी फल है। ऐसा यह ज्ञान रखना कि एक अमूर्त ज्ञानमात्र ज्ञायकस्वभावका हू, मैं अपने ज्ञानके परिणमनका करने वाला हू। इसके अतिरिक्त मेरा कोई सत् नही, मैं स्वयं ज्ञानानन्द हू। ऐसे स्वरूपके दर्शन करता रहू बस यही एक इच्छा है।

तिर्यङ्नारकदेवानां देहे तिष्ठन् पृथक् तथा।
न देहेऽपि नरो नाहं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-३५॥

जगत्मे जितने भी सत् हैं वे अपने आपमे ही सत् है। तभी यह सत् रह सकते हैं।

यदि कोई पदार्थ दूसरे पदार्थकी चिंता करने लगे, उसका कुछ भी सम्बन्ध दूसरोंसे बन जाय तो जगत्मे कुछ भी नही रहेगा। न वह खुद रहेगा और जिसे करता है वह न रहेगा। यह पदार्थ है। इसका यही कारण है कि वे सब स्वतंत्ररूप लिए हुए है। किसी पदार्थसे किसी अन्यका कोई सम्बन्ध नही है। तभी ये पदार्थ हैं अन्यथा सबका अभाव हो जाता। पदार्थोंमें ५ जो अजीवतत्त्व हैं वे भी पदार्थ है। उनमे कुछ गडबडी नही। पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल इत्यादि ५ तत्त्व हैं। धर्म, अधर्म, आकाश, काल इनमे तो कुछ गड़बडीका प्रश्न ही नही, क्योंकि ये त्रिकाल शुद्ध है क्योंकि पुद्गलमे भी गडबडीका प्रश्न नही है। वहाँ जैसी योग्यता व जैसा निमित्त व संयोग होता है परिणमनसे तो अपना परिणमन होते रहनेसे जीव पदार्थ है उसमे भी परिणमन ठीक चल रहा है। जैसी योग्यता है तैसा सम्बन्ध होता है, परन्तु यह करता कुछ है और मानता कुछ है। यह इसके अन्दर गडबडी चल रही है। यह गडबडी अन्य पदार्थोमे नही है, जीवमे ही है और इसके ही फलमे यह संसारमे जन्म मरणका चक्र हो रहा है। यहाँ मोही स्वप्न देख रहा है। ८-१० आदमी ये मेरे है जिन्हें आँखो देख रहे हैं, सारे सम्बंध जोड रहे है। अभी यहाँ भी नही रहेगे, यहाँका ख्याल भी कोई न करेगा और यहाँ वालोको पता भी नही रहेगा। जो अपना प्रेम देखते रहेगे अथवा प्रेम कौन देखता है ? सब अपने-अपने कषायका परिणमन कर रहे हैं। यहाँ मैं ही खुद अपने रागकी कल्पनायें करके उनकी ओर झुक रहा हूँ। जिनकी ओर झुक रहे है यह मेरे मरनेके बाद भी यह न जान सकेंगे कि मैं कहाँ हू ? जो गए है उनका क्या पता कि वह कहाँपर है ? इसलिए मैं तो सबसे जुदा हू। परिवार, मित्रजन कोई भी यह न जान सकेंगे कि मैं कहाँपर हूं ? मै अपनेमे रमनेका साहस नही करता। इसका फल यह है कि जैसे जगके सब जीवोको हो रहा है। यह भव मिला, वह भव मिला। स्थावर, कीट, पशु-पक्षी, कुमानुष, सूअर आदि जितने भी प्रकारके जीव हैं उन सबमे जन्म लिया, मरण किया। यही चला करता है। जो अब यहाँ चाहता भी है कि कुछ तत्त्वज्ञान ही मिले, अपने कल्याणकी बात ही कर लें, विवेक ही जगे, आवश्यक ज्ञान वैराग्य हो जगे, तब भी लोक समागम व चीजोके सस्कार इनको ज्ञान और वैराग्यमे बैठने नही देते। यह संस्कार झट उठा देते हैं। यह शरीर इससे बिल्कुल जुदा है। जैसे और देहोको हम विचार लेते हैं कि इनकी आत्मा पृथक् है और यह शरीर पृथक् है। हम झट जान लेते है कि आत्मा जुदा जुदा, शरीर जुदा जुदा निकल गया है, हम जैसे इसका अनुभव करते है वहाँ हम भी इस मनुष्यदेहमे रहकर अपनेको पृथक् जानें। इसकी दृष्टि शुद्ध हो। जैसे इसका सहजस्वरूप है वैसा इसका उपयोग बना तो सब अपना अपने आप हो जायेगा। धर्ममे भी अनेक बातें नही करना है। केवल एक बात करना है कि शुरूसे अत

तक आत्मस्वभाव साधना करना है । आखिरी तक केवल एक बात करना है कि जैसा अपना सहज अस्तित्व है उस ही मे झुकना, उसपर दृष्टि बसाना, उसका ज्ञान करना । प्रथम हो यह कल्याणके लिए ठीक है । मैं एक ज्ञानस्वरूप हूँ, अन्तरदृष्टि करके देखो । बाहर दृष्टि न करके देखो । शरीर जो लगा है उसे भी भुला करके देखो ।

केवल अपने आपको स्मरण करके अपने आपमे देखो । क्या इसके अदर मिलता है ? क्या कुछ ग्रहण करनेकी चीज मिलती हैं ? क्या कोई इन्द्रियोसे रूपादि दर्शाने वाली चीज रहती है ? इसके अदर क्या मिलता है ? केवल ज्ञानभाव और इसीको करके आनंदभाव मिलता है । ज्ञान और आनदभावके अतिरिक्त आत्मामे और कुछ नही मिलता है । कैसे विचित्र पदार्थ है कि जितने भी हैं सब यहाँ एकवस्तु है । यह ज्ञान है, वह निराधार नही । ऐसा केवल जाननेमात्रसे एकवस्तु है । जिनका और कुछ काम ही नही है और कोई बाहरी पदार्थों से सम्बध ही नही है । केवल जानने मात्रसे आत्मतत्त्व मिलता है । क्या कोई अन्य पदार्थोंसे इसका सम्बन्ध है ? फिर क्यो इतनी जबरदस्ती परतत्त्व बसाते हुए हो कि यह लडका है, यह स्त्री है, यह नाती है और यह पोता है । यह कुछ नही है । जरा इसके चैतन्यस्वरूप को देखो । मेरा तो सब कुछ यही है । मेरा कुछ बाहर सत् ही नही, यह सब मोहके भासित पदार्थ हैं, यह सब मोहका नशा है । क्या जैसा है वैसा उपयोग बनाया नही जा सकता है । ऐसा किए बिना शांति नही रहेगी । यह आत्मा एक ज्ञानमात्र वस्तु है और आनन्द स्वभाव को लिए हुए है । कोई आकुलता नही रहती—ऐसा स्वभाव इसमे पडा हुआ है । जब हम केवल ज्ञानस्वरूप को देखते है तो आत्मा कितनी बडी है ? अरे ज्ञानका नाम ही आत्मा है । जितना बडा ज्ञान है उतनी ही आत्मा बडी है । ज्ञान कितना बडा है ? देखो कितना बडा है ? जितनी जानकारी है उतना ज्ञान है । सारे विश्वकी जानकारी है तो सारे विश्वका जितना ज्ञान है । असख्याते लोकप्रमाण है । इतना ही नही वह सर्व आकाश प्रमाण है । परन्तु उसमे जो दूसरा आनद स्वभाव पडा है उस आनदस्वभावकी दृष्टिसे देखते हैं तो जितनेमे यह पिंडका फैलाव है, इसके प्रदेशका फैलाव है उतनी बडी आत्मा है । आनंदका अनुभव होता है तो आनद प्रदेशकी सीमामे होता है और जब ज्ञानका फैलाव होता है तो सारे विश्वमे अनुभव होता है । इसका स्वरूप ही जगमग ज्योति है । यह तो ज्ञानका स्वरूप है । सारे लोकका प्रमाण ज्ञान हो गया और यह आत्माका स्वरूप है । मग आनंदको को कहते हैं । और जग ज्ञानको कहते है । मैं जगमगस्वरूप हू, ज्ञानानदस्वरूप हू, आत्मतत्त्व हूं । ऐसा यह आत्मामे अगर कदाचित् प्रदेशमे फैलता है तो सारे लोकमे फैल सकता है । इसलिए मैं लोकप्रदेश बराबर असख्यातप्रदेशी आत्मा हू । यह सब जितना है मैं अपने शरीर

मे ही अपने आपको पाता हूँ। क्योकि आनंदका सीमामे ही सबंध है अथवा कर्मके वश आत्मा शरीर प्रमाण रहता है। इस कारण प्रमाण रहता है। इस कारण शरीरप्रमाण ही चला आया है। जिस शरीरमे यह क्षेत्र है उस शरीरमे यह आत्मा है। यदि ठीक दृष्टिसे देखो तो शरीर जुदा है। आत्मा अपने भीतरमे रहती है।

जैसे दूध और पानी एक गिलासमे मिला दिए जाएँ, एक एक पाव तो गिलासमे दूध है और सब पानी है। और स्वरूप दृष्टिसे देखो तो पानी अपने स्वरूपमे है और दूध अपने स्वरूपमे है। यदि कोई यंत्र है तो उससे दूध अलग हो जायगा और पानी अलग हो जायगा। इसी तरह यह शरीर और आत्मा भी पानी और दूधकी तरह मिले रहते है। जिस जगह आत्मा है उस जगह पर शरीर है। अतर मिटने तक रहता है। शरीरके एक क्षेत्रावगाहमे आत्मा भी पडा हुआ है। इतना होते हुए भी शरीरका असर शरीरमे और आत्माका असर आत्मामे होता है। हर तरहके भावसे यह आत्मा शरीरसे जुदा है, ज्ञानानन्द पिंड है, आत्मा अपने अमूर्त प्रदेशमे है और शरीर अपने मूर्त प्रदेशमे है। आत्मा अपनी शक्ति में है और शरीर अर्थात् ये परमाणु अपनी शक्तिमे हैं। आत्मा अपने प्रदेशमे रहती है। शाति, विकल्प, शोक, क्रोध, इसमे रहना है तो शरीर रस बदले, गध बदले, इन बातोमे रहता है। शरीर निरतर अपना काम कर रहा है और आत्मा निरतर अपना काम कर रहा है। इसलिए यह शरीर आत्मासे सभी बातोमे अलग रहता है और यह आत्मा अपनेमे अलग रहता है। लेकिन मोहवश अज्ञानवश अपनी जुदाई अपनेको समझमे नही आती तो बाहरमे सतोष ढूंढते, बाहरकी बातोका अनुभव बढाते और बाहर सुख ढूँढते है। किसी भी पदार्थसे कुछ नही मिलेगा। किसी भी बाहरी पदार्थोंसे कुछ नही मिलेगा। अच्छा शरीर से ही देखो अच्छी इन्द्रियोका विषय साधनभूत पदार्थ है। उससे भी कुछ नही आयेगा। मैं ही धर्मसे चलूंगा, मैं ही अपना बनूंगा और अपनेमें झुकूंगा, यदि इस बुद्धिसे चलूंगा तो मेरे दुःख मेरेसे ही मिट जावेंगे। जगत्में अनेक भव मिटते चले गए अथवा अनेक भवोमें जो भी जन्म लिया है एक भी भवका स्मरण नही है। अनेक भव बीत गए परतु एक भी भव अपने को स्मरण नही है। जब एक भी भव आपको स्मरण नही आ रहा है तो फिर औरकी गिनती ही क्या है? जैसे उन अनतोकी कुछ याद नही है इसी प्रकार इस भवको भी कुछ याद नही रहेगी। तब हम हिम्मत करके कि मै इस जगत् में अणुमात्र भी नही हूँ। किसीको तू न मान कि मेरा है, क्या यह बात हो नही सकती है। देखो सब जुदा जीव है, उनके कर्म ही उनके हाथ हैं। शरीर जैसे जुदा है आत्मा भी ऐसे ही जुदा है। कौन सी ऐसी चीज है कि वह उसके भीतर है, कोई नही। अज्ञान करके बुरा ही फल मिलेगा, जिद

और हठ करके बुरा ही फल मिलता है । जिद करने का, भ्रम करनेका फल बुरा है ।

एक किसान था । वह हल चला रहा था । बीचमे एक सांप आया और बैलके पैरके नीचे आ गया और घबडाकर उसने थोडासा उस किसानके दात मार दिया । उसे थोडीसी रिस बढ गयी, मगर सांपके विषसे वह पागलसा बन जाता है । सो वह डंडा लेकर बैलोको बहुत तेजीसे मारने लगा । कहने लगा कि मेरे ऊपर पैर क्यो रख दिया है ? सांपके विषका असर पड़ गया था, सो बैलोको बहुत पीटा । इतनेमे एक वृद्ध आदमी आया, उसने बहुत समझाया कि न मारो बैल मर जायगा । तुम्हारे पास केवल दो बैल है । अगर बैल मर गया तो किससे जोतेगा, क्या खायगा, परिवार कैसे चलेगा ? कुछ सोच समझमे आया तो छोड़ दिया ।

इसी तरह जब स्वरूपके विरुद्ध हम हठ करते हैं । भीतरसे बाहरी पदार्थोंको मान लेने हैं कि यह मेरे हैं । इस अज्ञान सर्पका ऐसा विष चढ जाता है कि जिसका कुछ कहना नही । जरा इन्द्रियोको सुहावना लगा तो हम मानते हैं कि बहुत अच्छा है । हठ कर लेते हैं, विवेक नही कर पाते है, २४ घटे हम कषायमे रहते है तो इसका फल कौन भोगेगा ? खुदको ही भोगना पडेगा । दुष्टकर्मका उदय आयेगा तब ऐसी कुस्थिति आवेगी, जन्म मरणके चक्कर आवेंगे, सुख दुःखमे घूमना पडेगा । समय फेरमे ज्ञानका खोटापन बना रहेगा और वर्तमानमे कितनी ही विपत्तियोका भार रहेगा । बात जरासी है कि यह भीतरसे कल्पनाए ही तो करता है कि यह मेरी है । पर इसका फल कितना बडा है ? सारे ससारको लिए हुए है, यह उसीका फल है । कैसे सृष्टि बन जाती है, कैसे देह मिलने लगती है, क्या क्या अवस्थाएँ गुजरती हैं ? यह समस्त विपदायें जगत्‌मे आ जाती हैं । देखो सब इस जरासी गल्तीका फल है कि सारे ससारमे दुःख रहता है । यहाँ चूहे, बिल्ली, केचुवे, कुत्ते, गधे जो-जो नजर आ रहे हैं किसीकी टाँग टूटी है, किसीका पेट फटा है वह सब मूल की भूलका परिणाम है । ऐसे यहाँ देखो कि जीव कितने आते हैं यह सब क्या है ? यह सब भी अपने मोहका फल है । यह नही समझा कि मेरा तो केवल मैं ही हू । मेरेसे बाहर मेरा कुछ नही है । अन्तरस्वरूप सत्ताकी खबर न रखी तो इसका बडा कुफल होगा । यह सब हमारी ही गल्तीका बडा फल है, मेरा फल है, मेरे लिए फल है । यदि वह भूल छूट जाय तो मैं यथाशीघ्र आनन्दमय बन जाऊँ, मैं सर्वज्ञ बन जाऊँ । यद्यपि सर्वज्ञ बननेसे लाभ नही है मगर सर्वज्ञ बन जाना पडेगा । लाभ कुछ नही मगर स्वयं ऐसा है कि बनना पडेगा । अगर शुद्धदृष्टि रखोगे तो बनना ही पडेगा । लाभ तो उतना है कि यह दुःखजाल सब खत्म

हो जायेंगे । भगवान्के शुद्ध परिणमनसे लाभ तो उतना ही है कि विपदायें सब समाप्त हो गई । जब स्वरूप शुद्ध होता है तब अनन्तज्ञानी होना ही पड़ता है । इसका प्रयोजन भी कुछ नही, मगर ऐसा होना ही पडता है ।

मैं सर्वत्र पदार्थोंसे भिन्न सत्ता वाला एक आनन्दमय तत्त्व हू । इसके अतिरिक्त मेरा और कुछ नही है । ऐसा उपयोग करके अमृतका पान करू तो मैं अमर हू । मै यदि इससे हटू तो मेरे सामने दुःख है, सुख है, यह विपत्ति हम वना डालते है । जैसे सब पदार्थ है वैसा मै पदार्थ हूँ । क्या हूँ ? सब परिणमते हैं, मैं परिणमनशील हू, मैं शक्तिसम्पन्न हूँ । सब ठीक हो रहा है, मगर जहाँ मूलमे भूल हुई तो उसका फल अत्यन्त बुरा है । मोह ऐसा ही फल करेगा । जैसे किसीका किसीसे विकट झगडा हो जाय । कचहरियाँ चलने लगें, उनका धन बरबाद हो जायगा । पुलिसकी पिटाई भी चलेगी । एक दूसरेकी जान लेनेको तैयार है । इस लडाईके मूल कारणको यदि सोचा जाय तो उसमे कोई जान नही, कोई सार नही मिलेगा । वह मूल कारण अंतमे झूठा ही मिलेगा । अपना कुछ नही है, मगर जब अगीकार कर लिया तो बुरा फल हो रहा है । वैसे देखो तो कोई ज्यादा भूल नही है । यहाँ केवल सोच लिया कि परपदार्थ मेरे हैं । इतना ही तो किया, मगर इसके फलमे सारे ससारमे रुल गया । यही सबसे बडी भूल है । इसमे जाता सब कुछ है और मिलता कुछ नही, अत यह भूल छोडकर मैं अपने स्वरूपका अनुभव करू और अपनेमे झुककर अपने सत्य आनन्दका अनुभव करू ।

अन्योन्यत्वेन दुःखं स्वत्वेन सुखपूरितः ।
यतै स्वदृष्टितः स्वार्थे स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१–३६॥

जैसे लोग कहा करते हैं कि जो अपना है सोई अपने काम आयेगा, सोई देगा और जो पराया है दूसरा है वह अपने काम नही आयेगा, वह अपने सुखका कारण नही बनेगा । दूसरा तो दूसरा ही है । वह तो मेरे लिए व्याधि है । दुःख है और सुख है तो वह ही है । दुःख है और सुख है तो वह ही है । वह अपने लिए सुखमय है । इसका स्पष्ट मतलब क्या है कि जो मैं हू, सोई मेरे लिए सुखरूप है और जो पर है वह मेरे लिए सुखरूप नही, बस परवस्तुका रूप मेरे लिए सुख नही है । मै परमे जाऊं तो वह मेरे दु खका निमित्त होता है । स्व स्वमे परिपूर्ण है और जो स्व नही है, पर है वह दुःखका ही निमित्त हो सकेगा । जगत्मे जितने भी पदार्थ है वे अपने ही गुण और पर्यायमे हैं, अपने ही गुण और पर्यायमें तन्मय हैं । ऐसे अपने गुण, पर्यायमे तन्मयको सुन्दर बताया है और किसीका कुछ गुण या कुछ पर्याय किसी अन्यमे तन्मय है—ऐसी दृष्टिको विसंवादक बताया है, झगडा बताया

है। केवल समझकी शैलीमे ही सब कुछ निर्भर है। ससारमे रुलना, ससारसे छूटना केवल एक समझपर निर्भर है। विपत्तिमे पडे रहना या आत्मीय आनंदका अनुभव करना एक समझ पर निर्भर है। हर तरहसे बर्बाद हो जाना या हर तरहसे सम्पन्न हो जाना केवल समझ पर निर्भर है। लोकमे भी बडे धनी, इज्जत वाले, नेता, राजा महाराजा, चक्रवर्ती इत्यादि हो जाना और दरिद्र, भिखारी, कीडे मकौडे, स्थावर, हो जाना केवल समझ पर ही निर्भर हैं। जैसी सच्ची समझ है वैसी सब कुछ सम्पत्तियाँ हैं और जैसी उल्टी समझ है वैसी सारी विपत्तियाँ हैं। मोही अज्ञानी पुरुष किसी भी स्थितिमे रहे, चाहे वह धनी हो गया हो, चाहे वह राज्याधिकारी बना हो, किसी भी स्थितिमे हो। यदि उसके मोह और अज्ञान हैं तो उसके फलमे तो उसे अशान्ति ही रहेगी। चाहे कुछ बन गया हो, क्योकि उपादानमे तो दुखी होनेकी बात भरी हुई है। मोह करता है तो शान्ति कहाँसे आए ? यही कारण है कि यह देखा जाता है कि छोटेसे लेकर बडे तक इस लोकमे दुःखी नजर आ रहे हैं। कोई सोचता है कि लखपति सुखी होगा, क्योकि इसके पास लाखकी माया है, पर लखपति स्वय समझते है कि वह क्या शान्तिमे है ? लखपति सोचता है कि करोड़पति सुखी होगा। क्योकि इसके पास बडा वैभव, बडे महल है, नौकर चाकर है, बडे बड़े अफसर भी इसको प्रणाम किया करते है। पर उनकी आत्माके भीतरका ढाचा देखो तो वहां भी दुःख नजर आयेगा। वह सोचता है कि अरबपति सुखी है। सर्वत्र ही जिधर देखो दुःख ही नजर आयेगा। इसका कारण है कि सुख दुःखका निर्णय बाहरी चीजोपर निर्भर नही है। वह अपने ज्ञान और अज्ञानपर आधारित है। जब तक अज्ञान रहता है, उल्टा ज्ञान रहता है तब तक यह जीव दुःखी रहता है। जब ज्ञान होता है तब वह सुखी हो जाता है।

बडा महान् हो जाय, चक्रवर्ती हो जाय, अत्यन्त वैभव हो जाय और एक अपने स्वरूपका पता न हो तो उसे अशान्ति ही रहेगी। चाहे वह जो कुछ हो जावे, यह सब अनुभव था उन महापुरुषोको जिन्होने यह निर्णय किया परको छोडकर केवल आत्मदृष्टि करो केवल आत्मापर जायें याने अन्तरदृष्टि रहे। मै अमूर्त, भावमात्र, चैतन्यशक्तिमात्र, आनन्द ज्ञानमात्र, सबसे अछूता, अपने स्वरूप सत्तामात्र, यह मै आत्मा स्वयं अपनी दृष्टिमे बना रहूँ। इसके अतिरिक्त मेरेमे कोई न आवे, उपयोगमे अन्य कोई नही बसे, ऐसी ही उन्होने आराधना की, तो क्या था ? सत्य बात यह थी। परमार्थकी बात यह है कि परमार्थस्वरूप जाने बिना जो उनके आगे जाता है झांझ मजीराओे, बाजोसे तथा सगीतोसे उनकी आराधना करता है, वह केवल श्रम है। तत्वदृष्टि करके जो उनके लिए अपना सर्वस्व सौप देता है, झुक जाता है, नम जाता है, उनके योगको अनुभूत किए बिना अपने जन्मको निष्फल समझता है, वह

कामयाब हो सकता है। हम प्रभुकी भक्ति क्यो करते है? क्योकि वह सर्वद्रष्टा है, जो हमें करना चाहिए, वह उनसे मार्ग मिलता है। इसी कारण हम उनपर बार बार अनुरक्त हो जाते हैं, सब कुछ न्यौछावर करनेको हम तैयार हो जाते है। यह जगत्की इकट्ठी की हुई माया विकार है, अनर्थ है, स्वयं लाभ करने वाली नहीं है। अन्य तो अन्य ही है, पर तो पर ही है, अत्यन्त जुदा है। मुझसे इस आत्मामे कुछ बन नही पाता। प्रत्युत परको ओर झुकें तो क्लेश ही थोड़ा आता है, क्योकि परकी ओर झुकना यह अज्ञान है, वहाँ क्लेश ही क्लेश है। एक कथानक है जो सुनाया भी था कि दो स्त्री-पुरुष थे। जिनके नाम थे बेवकूफ और फजीहत। दोनोमे लडाई हो जाती थी और थोडे ही मे मेल हो जाता था। उनमे लड़ाई चलती ही रहती थी, पर उससे कुछ बिगड़ नही जाता, क्योकि जल्दी मेल भी हो जाता था। एक दिन ऐसी लड़ाई हुई कि दोनोने घर छोड दिया। वह बेवकूफ गांवमे जाकर पूछता है कि क्यो भाई, हमारी फजीहत देखी है? पूछा—क्यो क्या भाग गई? कुछ उत्तर नही दिया। ५ से पूछा, ८ से पूछा, कुछ पता न चला। एक अपरिचित आदमी था। पूछा कि भैया, तुमने हमारी फजीहत देखी है। उसने पूछा कि तुम्हारा नाम क्या है? बोला कि मेरा नाम बेवकूफ है। उसने कहा कि भाई बेवकूफ होकर भी तुम्हे क्यो फजीहतको तरस रहती है? जरा उल्टा बोल लो, उससे ही दूसरे लोग लाठी, घूंसा, जूते इत्यादि मारनेके लिए तैयार हो जावेंगे। तुम्हे तो हर जगह फजीहत मिल जायेगी।

इसी तरह यहाँ भी जो अज्ञानी है, मिले हुए स्वरूपको नही अपनाते, अपनी ओर नही झुकते, अपनेमें वह प्रभु समाया हुआ है—ऐसा जब तक नही जानते और बाह्यपदार्थो को तरसेंगे और उनकी तरफ झुकेंगे—ऐसे अज्ञानी बने रहेगे। ऐसे मोही जब तक बने रहेगे तब तक इस मोहीकी विपत्तिकी क्या कमी है? किसी भी स्थितिमे रहे। धन बन गया तो क्या? अच्छे कुल वाला बन गया तो क्या? कुछ भी हो जाय। आत्माकी वर्तमान स्थिति तो पर्याय ही है। कुछ भी बन जाय मगर विपदा नही छूटेगी, चाहे तीन लोकमे उसकी सम्पत्ति एकत्रित हो जाय। वह सम्पत्ति उसके हाथमे आयेगी क्या?

यह मैं स्वय दृढ चैतन्यस्वरूप हू, इसमे दूसरेका प्रवेश नही। यह खुद ही अपनेको बुरा बनाकर, बुरा देखकर दुखी हो रहे हैं। इसको दुःखी करने वाला दुनियामे दूसरा नही है। अन्य तो अन्य ही है, पराए तो पराए ही है, उनसे मेरी भलाईकी मुझे क्या आशा? मैं, मैं ही हू, मेरेसे मेरेको मैं ही कल्याणस्वरूप होता हू। ऐसा हमे होना चाहिए। यह मैं स्वयं ज्ञानानंदमय हू अथवा गुणोकी प्रति समय परिणतियों हो रही है। बस इतनी बात है कि जब किसी परकी ओर दृष्टि करके परिणति बनती है तो केवल अज्ञान और दुःखकी परिणति

बनती है और उनमें उनको अंगीकार न करें तो मन शुद्ध होता है तब ज्ञानाकारकी परिणति बनती है। सब कुछ बनाने वाला मैं ही हू। आत्माके झुकावसे आत्मकल्याण होता है, स्वय होता है, भरपूर होता है। ऊपरसे ही दुःख होता है आनद तो पडा हुआ है। क्योंकि आनदस्वरूर मैं ही हूँ। पर यह जीव प्रभु है ना। समर्थ है ना। तू अपनी बर्बादी इस प्रकार बतला रहा है कि बाहरी पदार्थोंकी दृष्टि करके अपने आनन्द स्वभावमे ढला हुआ अपनेमे क्लेश बनाए हुए है। आनद तू स्वयं है, स्वयं ही अपनेमे आनन्द प्रगट करेगा, अन्य जगहसे आनद नही लाना है। केवल जो अपना क्लेश बना रक्खा है उसका परिहार करना है। देखो यह बात अन्य पदार्थसे नही होगी। अन्य पदार्थ तो यदि किसी काममे निमित्त हो सकता है तो उसके उल्टे काममे ही निमित्त हो सकता है। केवल अशांतिका ही निमित्त हो सकता है। जन्म मरणके चक्करमे पडे रहना पसद हो तो परपदार्थ इसमे निमित्त हो सकता है। परन्तु परपदार्थ हमारे किसी हितके कामके नही, सूक्ष्मदृष्टिसे देखो तो यहाँ तक देखते चले जाओ। सत्सग है, सत है, परमात्मा है, ये भी तो परपदार्थ हैं। परमार्थ सभी मेरे भलेके लिए नही होते। मेरी भलाई उनसे बाहर रहनेमे है। पर आपेक्षित बात होनेसे ऐसे ही कहा जाता है कि सब साधु, सतदेव ये सब मेरे हितकर हैं। जैसे परमार्थदृष्टिसे वे प्रभु बने हैं, उनसे ही दृष्टि करनेका उत्साह इनमे मिलता है। सत, देव, साधु, गुरु, सत्सग इत्यादि जिन परिणामोमे निमित्त होंगे वे परिणाम शुद्ध होगे। साधारण शुद्धपदार्थकी दृष्टि मे प्रत्येकको विवाद नही। शुभ अशुभमे आपको विवाद है। पर वह ऐसा शुद्ध है जो मोक्ष मार्गमे हमे अधिक बाधा न दे। जैसे कोई आदमी शिखरजीके पहाड़ पर चढ रहा है। दो ढाई मील चढने पर अधिक थक गया। एक वृक्षके नीचे बैठ गया १० मिनटके लिए हमे बतलाइये कि वह जो १० मिनटके लिए बैठ गया, वह यात्रामे साधक है या बाधक? उस जगहपर बैठ जानेसे यात्राका काम रुक रहा है या बन रहा है ? परमार्थसे साक्षात् देखो तो रुक रहा है एक दृष्टिसे देखो तो यात्राका काम बन रहा है क्योंकि वह थक गया था, आगेको चल नही सकता था। वह स्फूर्ति लेगा, शक्ति लेगा। इसको क्या कहेगे ? उस १० मिनटके बैठनेको साधक भी कह सकते हैं और बाधक भी कह सकते हैं। परमार्थसे तो बाधक है, परम्परासे साधक भी है। इसी तरहसे यह शुद्धपरिणाम हमारा मोक्षमार्गमे साधक है या बाधक ? परमार्थसे तत्काल तो वह बाधक है, क्योंकि तत्काल तो वह एक विकल्प अवस्था है परन्तु वह जहाँ विषयकषायमे रहनेसे अधिक हानिमे था, आत्मबल शिथिल हो गया था, अपने आपको खोया हुआ सा बैठा हुआ था, सो तो अब साधुवो, सन्यासियोके स्मरणके प्रसादसे स्फूर्ति आ रही है, एक बल पैदा हो रहा है। उस विषयकषायसे दूर होकर

आत्माके अंतरमे जाऊंगा—इस स्फूर्तिके योग्य बन रहा है। देव गुरु भक्तिमे वस्तुतः वह भी तो एक विकल्प हैं अतः बाधक है, पर एकदृष्टिमे वह साधक है अथवा किसी भी परपदार्थमे दृष्टि करें तो वह साधक है अथवा मैं किसी भी परपदार्थमे दृष्टि करूँ, तो मेरे किसी काममे निमित्त हो सकता है। शांतिमे आत्मशुद्धि ज्ञानके अनुभवमे कोई निमित्त नही हो सकती है। इसका कारण यह है कि वह अनुभूति जिसको हम ज्ञानमे रख रहे है वह स्वाधीन है। मैं एकसे उत्पन्न होने वाला हू, एकके लिए उत्पन्न होने वाला हू, एकमे उत्पन्न होने वाला हू। मेरा दूसरोसे मेल नही है। मुक्तिको, किसी शुद्धआनंदको, किसी कल्याणको, किसी दूसरेसे मेल नही है। इसीलिए जहा भी होगे अकेले ही होगे, सहज होगे, स्वरूपमात्र होंगे, अन्य तो अन्य ही है। वह तो जितना भी जब कारण होगे तब विकल्पके कारण ही होगे। परन्तु वह निमित्त ज्ञानानंदघन, यह आत्मतत्त्व आनंदसे परिपूर्ण स्वय हैं। सो आनंदका आश्रय करनेसे आनद ही होगा। तो मैं अपने ही अर्थमे अपने ही प्रयोजनमे अपनी ही दृष्टि बनाकर कोशिश करूं और अपनेमें अपने लिए अपने आप सुखी होऊं।

मेरी जिम्मेदारी करने वाला इस लोकमे कोई नही; मेरी शरण, रक्षक, अधिकारी, मालिक इस लोकमे कोई नही है। अरे दूसरोकी आशा करना क्या है? यह दूसरे भी सब मेरी ही तरह असहाय है। दुःखमे, क्लेशमे पैदा होकर चक्कर काट रहे हैं। जैसा मैं हूँ वैसे वैसे ही सब है।

जैसे नदीमे डूबते हुए चार छः आदमी हैं जो तैरनेका काम नही जानते है और इकट्ठे एक जगह आ गए है। गहरे पानीमे उनमे एकको दूसरेसे क्या आशा है? क्या वे एक दूसरे का हाथ पकडकर बच सकेंगे? वह तो सब डूबनेके लिए हैं।

इसी तरह इस विभावमय ससारमे डूबते हुए प्राणी परिवार सब अथाह जलमें डूब रहे है तो हम कैसे उद्धार कर सकते हैं? यह किसी मोहको बसाकर उपयोगमे सुख शान्ति की आशा करते हैं। यहां कोई रक्षक नही, तेरा रक्षक तू ही है। साधुवोने गुरुजनोने चेतावनी दी है, जागते रहो लुटेरे है, श्रद्धासे लुटोगे। फिर तुम्हे कौन माफ कर देगा? अपना जिम्मेदार अपनेको मान मोहमे वहे चले जाना यह सब क्या अविवेक नही है? जैनधर्मका पाना न पाना बराबर है। जैनसिद्धान्त कहता है कि सत्यस्वरूप एवं निष्पक्षस्वरूप वस्तुओ को स्वयं पहचान लो। वस्तुओको ज्ञानमे रक्खो और परीक्षाएं कर लो। परपदार्थोंसे तुम्हे कुछ नही मिलेगा।

हे आत्मन्! खुदके स्वरूप वाले, खुदकी सत्ता वाले तुम हो, फिर यह किसको अपना माना है, किसे अपना स्वरूप माना है? अपने ही कामके लिए अपने ही आप अपनी ही दृष्टि

लगाकर स्वय सुखी होनेका प्रयत्न करो । सुख अपने आपमे यही मिलेगा ।

आत्मलाभस्पृहैव कामे तदन्यास्तु मा गतिः ।
नश्य वन्तर्जगच्चादः स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-३७॥

ज्ञानी पुरुष सदा सहज आनन्दकी ही भावना करते हैं । जो अपने आप जैसे हैं तैसा हो अपना स्वरूप निरखते है, वे ज्ञानी पुरुष हैं । उन्हे विकार स्वीकार नही हैं । सर्वविकारसे हटे हुए निज स्वभावकी दृष्टि वाले हैं । वे एक शुद्ध चैतन्यस्वभावमात्र अपनेको निरखा करते है, इसी ही मे उनको लाभ जचता है । अतः वे आत्माको आत्मामे रमाते हैं । ज्ञानी आत्माने अपनी दृष्टिसे अपनेको अपनेमे मिलाकर अनुपम ज्योतिका दर्शन किया है । किसी भी परमे उनको लाभ नही दिखता है । इसी कारणसे ज्ञानी पुरुष ऐसी भावनाए रखते है कि मेरी तो केवल आत्मलाभकी ही चाह है । यह जो सम्पत्तियां आती हैं, पुण्योदयवश आती हैं । उनमे किसी प्रकारकी आसक्तिका होना तो बहिरात्मपनेकी बात है । ज्ञानीको उसमे भी बहुत वियोग बुद्धि बनी रहती है । इस विभूतिसे, इस नटखटसे मैं कब अलग होऊँ, कब अपने आपमे अपने आपको देखूं—इस प्रकार इस समस्त जालमे वियोगबुद्धि रहती है । केवल एक चाह है, जैसा मैं सहजस्वरूप हू वैसे मैं अनुभवमे रहू, वैसे उपयोगमे रहू, केवल एक यही चाह है । इसके अलावा कही मेरी बुद्धि न जाय । वैसे तो भुक्त भोगीके नाते सभीको विरक्ति हो जाना चाहिए क्योकि विपत्तियां तो सभीमे आती है, वे तो सभीमें भागती है, किन्तु मिथ्यात्वकी ऐसी प्रबलता है कि दु खके गड्ढेमे भी हसकर बसते हैं । अब ज्ञानीके निकट ससार है । सम्यक्ज्ञानका उदय है, इस कारण जो भीतरका अनुभव होता है, उनका स्मरण होता है और उन स्मृत अनुभवोसे उनके दिलमे यह बात घर कर लेती है कि परपदार्थोंमे आत्मबुद्धि लगानेसे शान्ति मिलना तो दूरकी बात है अशान्ति ही अशान्ति रहती है । समस्त पदार्थ उन्ही समस्त पदार्थोंमे हैं, उनकी सत्ता अन्यत्र नही रहती । उनसे मेरी परिणतियां नही बनती और न आकुलता ही समाप्त होती है । घरमे पुत्र है, माता पिता हैं, स्त्री है, चाहे कैसे ही आज्ञाकारी हो, वे अपने कषायभावके कारण आज्ञाकारी बने हुए हैं, वे अपने सुखकी आशासे आज्ञाकारी बने हुए हैं । कोई दूसरी वजहसे आज्ञाकारी नही बने हुए है । आपको सुखी करनेके लिए वह आज्ञाकारी नही है । वह खुद अपनेको सुखी करनेके लिए आज्ञाकारी बने हुए हैं । और ऐसे जितने भी जगत्के जीव हैं उनकी जो-जो चेष्टाएँ हैं अपनी ही शान्तिकी आशासे है । आपको शान्तिकी चाह है तो आपमें कोई आशा बनना आपकी अपनी शान्तिके लिए है । जब आपके चित्तमे यह बात जम जायगी कि उनको तो मेरी शान्तिकी चाह है, तो आप उन लोगोके लिए परिश्रम करेंगे सुखी करनेके लिए । पर परमार्थसे कोई किसीकी शान्ति नही कर सकता

और न चाह सकता है । कभी लगता होगा ऐसा कि चाहा तो करता है कोई दूसरोकी शांति, किन्तु ऐसा नही है । अपनेको शान्त रखनेके लिए कोई ऐसा करता है वह न दूसरोको शान्ति कर सकता है और न दूसरोकी शान्ति चाहता है, चाह ही नही सकता । दूसरोकी परिणति से दूसरोका रंच भी सम्बन्ध नही तब ऐसे पदार्थ मुझसे विमुख है । कितनी ही आराधना करें, ध्यान करें, परपदार्थ कभी भी मेरी ओर नही आ सकते हैं । वह तो अपनेमे ही रहेगे । जब जगत्का ऐसा स्वरूप चल रहा है तब किसी भी परपदार्थको अपना मानना यह कितनी मूढ़ता है, लगती हैं अपनेको मामूली बात, किन्तु इसका फल होता है अनन्त ससार । अपनी मोह ममता बडी सस्ती रहती है । मोह करना, प्रेम करना, परपदार्थको अपना मानना कितना सस्ता लगता है, किन्तु यह महगा बहुत पडेगा । नरकमे, कुयोनियोमे रहकर दु ख भोगना पडेगा ।

भैया ! अब तो सजग रह ले, सावधान हो ले और विवेक कहते है किसको ? यथार्थ विवेक ज्ञानी पुरुषसे छिपा हुआ नही है । देखो ना अब तक सब कुछ चाह-चाहकर सारे समय व्यतीत कर डाले, पर इस आत्माके साथ क्या रहा ? इस ही भवमे बचपनसे लेकर अब तक कितने प्रकारको, चाहे की, उन चाहोसे जो कुछ लाभ हुआ हो तो बताओ, वे सब स्वप्नकी बात रह गई । गई सो गई उनमे जो विकल्प और पाप कर डाले उनका फल तो कुछ है नही । बाकी तो इन पापोका फल जब समय आयेगा, होगा । होगा क्या ? बरबादी होगी । पाप ही केवल हाथ है । पाप क्या कोई अच्छी चीज है ? यही तो दु.खका कारण है और यदि अपने उस ज्ञानमय चैतन्यस्वरूपकी इच्छा हुई, इस ओर दृष्टि द्वारा प्रयत्न हुआ तो कुछ पल्ले भी रहेगा । मै बाहरकी ओर रहा इससे मेरे पल्ले कुछ भी नही पडा । अब केवल यही चाह है कि मेरेमे केवल आत्मतत्व रूपका ही उपयोग बना रहे । यह समस्त जगत् जैसा है वैसा जानता भर रहू । यह मेरे दुःखका कारण नष्ट हो जावे, यह मैं नही चाहता क्योकि वह दुःखका कारण ही नही है उसे दुःखका कारण समझें और जो सुखका कारण नही है उसे सुखका कारण समझें । बस ये ही खोटी समझ मेरी दूर हो, यह बाह्य जगत् दूर हो । इसका भी मुझे विकल्प नही । यह कहाँ दूर होगा ? यह भी सत् है । यह सदा रहेगा । केवल मुझमे उठने वाली तरगें समाप्त हो जायें । बाह्य पदार्थोंसे बिगाड़ समझते हैं, वह समझ मेरी दूर हो । यह बाह्य जगत् नष्ट हो यह मै नही चाहता यह अन्तर जगत्, मेरी भीतरकी दुनिया, भीतरका संसार, भीतरका कुटुम्ब, भीतरके विकार ये सब समाप्त हो—यह एक मेरी चाह है । बाहरी पदार्थ आपके भीतर नही हैं । वह तो वह ही है, आप आप ही है, किन्तु किसी एक जीवमे वह मेरा पुत्र है, ऐसी जो भीतरकी कल्पनायें हैं ये आपको दुःखी कर रही है ।

बाहरका कोई कुछ नही है—हाँ भीतरसे कल्पनामे बस गया कि यह मेरा पुत्र है, यही कल्पना पुत्र बनकर आपको दुःखी कर रही है। बाहर कोई आपका पुत्र नही। इसी तरह धन वैभवकी बात है। बाहरी धन वैभवसे आप अपने को धनी न अनुभव करें। मेरे पास कितना धन वैभव है ? इस प्रकारकी भीतरमे जो कल्पनाएँ आ गई हैं। उन कल्पनाओसे अपने को धनी अनुभव करते हो, बाहरी वस्तुवोसे आप पर कुछ असर नही है। क्योकि बाहरी पदार्थोंको सोच सोचकर जो अपना परिणाम बनाते हैं उन परिणामोका असर है। मुझमे मेरा असर है दूसरेमे मेरा असर नही। आपका आप पर असर है, दूसरे पर नही।

कभी कोई साधारण आदमी को किसी कारणसे कचहरीमे जाना पडता है तो बाउन्डरीमे पैर रखते ही दिल कांपने लगता है, और जजको देखकर उसकी हुलिया बिगड जाती है। क्या उस जजका असर उस आदमी पर है ? नही, उस आदमी पर असर उसकी बेवकूफी व देहातीपने के उपयोगका असर है। वह सब उसका अपना ही असर है, जिसका जज को देखकर दिल घबडा गया। जैसे कोई कहता कि मैं वहाँ नही जाऊंगा, अरे क्या उसे कोई दूसरे खा लेंगे ? खुद ही मे खुदका ही असर पडता है, किसी दूसरेका असर नही पडता है। मुझमे जो असर है वह मेरे अतर जगतका असर है। इस बाह्य जगतका असर नही। मैं जो कुछ कार्य कर सकता हू सो अपने विकल्प और निर्विकल्प स्थितिका कर सकता हू, उससे आगे मैं कुछ नही कर सकता हू। मैं जो कुछ भी भोग सकता हू, मैं अपने ही परिणामको भोगता हू। इसलिए किसी अन्य पदार्थको तू अपना न मान, अन्य पदार्थोंसे तेरा कुछ संबध नही है। अन्य अन्य ही है, मैं, मैं ही हू। वह अपने आप परिणमते हैं। मैं अपने आप परिणमता हू। उनकी दुनिया उनमे हैं। मेरी दुनिया मेरेमे है। मेरा किसीमे रंच भी सबध नही। राम, लक्ष्मणका जब तक सयोग रहा, संबध रहा, रामकी वजहसे लक्ष्मणने शाँति पाई हो तो बताओ, लोग कह देंगे कि वाह उसने उसका साथ किया सुख ही तो दिया। पर परमार्थसे, भीतरसे वहाँ अशाँति ही रहती है। रामके वियोगकी बातको सुनकर लक्ष्मणके प्राण निकल गए और लक्ष्मणके प्राण निकलते देखकर राम पागल से हो गए। रामचन्द्रको शान्ति कब मिली ? जब समस्त बाह्य पदार्थोंको त्याग दिया और अपनेमे रमे तब उनको शाँति मिली ? सीता जी मोहके रागमे विचरती रही, उनकी सारी कहानी देखलो। उनको शाँति कब मिली जब सम्यक्ज्ञानके जोरसे अपने आप ज्ञान किया और उसमे ही लीन हुई तब शाँति प्राप्त हुई। इस जीवको इस जगत्मे कोई शाँति देने वाला नही, कोई दुःखोसे दूर करने वाला नही। अपना यह विवेक, अपना यह ज्ञान अपनी रक्षा कर सकने वाला है।

इस कारण ज्ञानी जीवके ऐसी भावना जगती है कि मेरेको केवल आत्माका लाभ हो, यही इच्छा है। परमार्थ दर्शनके अतिरिक्त ब्रह्म प्राप्तिके अलावा अन्य किसीमे मेरी मति न जावे, अन्यत्र कही भी मेरी मति न हो। मेरा यह अतर जगत नष्ट हो। मैं इस दुनियाके बीचमे ही हू, और रहूगा, सदा रहूंगा। सिद्ध प्रभुको देखो, वह भी मुक्त होकर दुनियासे बाहर नही है, दुनियामे ही है। राम, हनुमान इत्यादि महापुरुष सिद्ध हो गए और सिद्ध होकर इस दुनियाके अन्दर है, दुनियासे बाहर नही। मोक्षस्थान इस लोक के अदर ही तो है, इस लोकसे बाहर नहीं है। दुनियामें रहनेसे मुक्त आत्माओका कोई बिगाड नही, पर मैं दुनियामे रह लूँ तो मेरी ही बर्बादी है, जैसे नाव पानीमे रहती है, वह जलको छोडकर जावे कहाँ, पानीमे नाव रहनेसे बिगाड नही किन्तु नावमे पानी रहनेसे बिगाड़ है, नाव पानीमे बैठ जायगी। मैं दुनियामें हू इससे मुझमे बिगाड नही, पर मैं दुनियाको बसा लूँ तो मैं ही बिगाड करने वाला बन बैठा हू। यही बिगाड है, अतर जगत् की सफाई कर लो, बाह्यकी सफाई की चिंता न करो। हमारा अंतर जगत् हमने किया है तो अपने अतर जगत्के मिटानेका हमें अधिकार है। इस अन्तस्तत्वके बनानेका, समुन्नति करने का हमें अधिकार है, हमे अपने आपमे ही कुछ बनाने या मिटानेका अधिकार है, किसी दूसरे को बनानेका अधिकार नही है, और मेरी ही यह उन्नति मेरी ही आत्माकी उन्नतिका नाम है, और उस उन्नतिका उपाय है कि परमार्थका दर्शन किया जाय, कितने लाभकी बात है सदाके लिये छूटनेकी बात है, अत्यन्त पवित्र हो जानेकी बात है और उसका उपाय भी कितना सरल है, कितना मुफ्त है। अपनेमे दृष्टि ला लाकर और बाह्य पदार्थोंको भूल भूल कर केवल ज्ञानमय, चैतन्यमात्र, जगमगस्वरूप ही अपने को मान लो। इतनी बातमें कितना आनन्द भरा है ? इसके उत्थानका यही उपाय है कि जिसकी समता करने वाला और कुछ नही है, और उसे करनेके लिये हम सब समर्थ हैं। कीडे मकोडे होते तो कहा जाता कि हम विवश है, कोई खोटा सग होता तो मैं कहता कि भाई मैं क्या करू विवश हूं। यहाँ तो आराम है, कमाईसे भी किसी की चिंता नही करना है व खूब खाते पीते हो अन्यथा शिकायत तो कही भी समाप्त न होगी। हजार और लाखकी भी आमदनी हुई तब भी कुछ नही है। ऐसा विचारने में क्या देर लगती, ऐसा बोलनेमें जीभके हिलानेमें क्या देर लगती ? वैसे तो सब कुछ है कोई कष्ट नही, तृष्णाकी बात अलग है। लाखोकी आमदनी भी हो तो और चाहिए। ऐसा सोचा जा सकता है। यह तो आपके मनकी बात है।

यदि आप शान शौकत दिखाते हैं तो यह अधर्मकी बात है। पर कोई चिंता नही, कोई बात नही आराममें रहते हो। ज्ञान इतना हो गया है कि सोचने समझनेकी शक्ति है,

धर्मको पकडनेकी शक्ति है, आत्माके तत्त्वको पकडनेकी शक्ति है। ऐसी अवस्थामे भी हम अपनेमे जरा भी हिम्मत नही कर सकते तो क्या विवेक है ? जैसे जाडेके दिनोमे कुछ लडके मिलकर तालाबमे नहाने जाते है तो तालाबके पास गए और किनारेके पत्थर पर या भीत पर बैठ गए। नहानेमे डर लगता है, जाडा लग रहा है। पानीमे कैसे जावें ? उनको शांति नही है। पर चबूतरेसे कूदकर पानीमे गिर जावें तो आधे मिनटमे ही सब जाडा खत्म हो जाय। वह एक सेकेन्डका साहस तो करें, इतना कर लें और फिर अच्छी तरह नहाकर अपने घर आ जावें, पर इतना साहस नही करते है, बैठे रहते है और बातें करते रहते हैं, हिम्मत नही करते हैं तो बिना नहाए ही घर चले आवेंगे। इसी तरह भैया हम धर्म करने के लिए चाहे जो चाहते है, परन्तु किसी क्षण हम यथार्थ पूर्णतया मान जाए, हम अपने कल्याणके रास्तेमे लग जावें।

बहुतसे लोग ऐसे हैं जो धर्मकी ओर आते ही नही हैं और धर्मकी ओर आनेकी भीतरसे प्रवृत्ति ही नही है। कितने हो मनुष्य भरे पडे हैं। हम आप तो कितना निकट आ गए हैं। जो वाणी सुनते है, इसके तत्त्वको हृदयमे रखते हैं, कल्याणकी इच्छा भी रहती है। अभी थोडा काम और बाकी है। किसी क्षण वस्तुके स्वरूपको देखकर हिम्मत तो कर लो कि यह मैं चिच्चमत्कारमात्र आत्मा हू, मेरे स्वरूपमे केवल मैं ही हू। अन्य जीवके स्वरूपमे केवल वे ही है। उनसे मुझमे कुछ नही आता और न मेरेसे कुछ उनमे जाता है। किसीसे किसीका कुछ सम्बध नही। इस तरह अपने शुद्ध स्वसत्तामात्र चैतन्यस्वरूपको मान लेनेकी हिम्मत तो बनाओ। फिर अनुभवका आनन्द पाकर अपने घरमे मौजसे बैठो, परमात्माकी तरह सदा आनन्दमय रहोगे, संसारके सारे विकल्प समाप्त हो जायेंगे। ज्ञानी मनुष्यकी केवल एक चाह है कि उसको शुद्ध आत्मतत्वका लाभ हो, इसके अतिरिक्त और कुछ नही है। मेरा यह अंतर जगत् नष्ट हो और मैं अपनेमे अपने लिए यही अपने आप सुखी होऊँ।

यत्र चित्तस्य न क्षोभ स्वे वैकान्ते वसाम्यहम्।
जनव्यूहे हित किं मे स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-३८॥

जहाँ चित्तको क्षोभ नही है, मनमे अशान्ति नही है, आकुलता व्याकुलता नही है, ऐसे विज्ञानघन स्वरूप अपनेमे मैं रहू। वह अपना कहाँ है तो परमार्थसे देखो तो वह अपना अपनी आत्मामे ही है। अपने आपकी आत्माको शुद्ध, सबसे निराला, अपनी सत्तामात्र जैसा सहजस्वरूप है उस रूपको निरखता हू। मै सबसे उत्कृष्ट स्वय एकान्त हूँ, मनुष्यके सम्पर्कमे हू तथा मैं मनुष्य हू आदि विकल्पके सम्पर्कमे तो अशान्ति आयेगी। मै एकान्तवासी हू। जैसा शुद्ध एकाकी निजस्वरूप है उस स्वरूपमे बसनेको एकान्तका निवास कहते है। और जहाँ

अपने स्वरूपसे हटकर किन्ही विकल्पोमें पड़े बस वह एकान्तसे पृथक् है। बाह्य एकान्त निश्चय एकान्तके तैयार करनेमे सहायक है। बाह्य एकान्तसे शान्ति नही आती, पर अन्तरङ्ग एकान्तसे शान्ति आती है। यह आत्मस्वरूप शान्ति और आनन्दका भंडार है। इसको अकेले निरखो, शुद्ध विधानसे देखो तो इसमेंसे शान्ति और आनन्द प्रगट होगा और यदि इसमें कुछ दूसरापन आ गया तो शान्ति और आनन्दमे कमी पड जायगी। इस मनुष्यके समूहमे क्या कुछ हित है ? इन विकल्पोंके बीचमे पडकर बहुत हानि है। विकल्प करते करते अनन्तकाल व्यतीत कर डाले, पर आज देखो संसारका प्राणी किस परिस्थितिमे है ? इस जगत्के प्राणियो ने जगत्के अन्य जीवोको अपना माना। इतनी हैरानी कर डालनेपर भी जिधर देखो उधर जीव दीन हीन ही बसे है। आज जो हम आपने स्थिति पाई है उसमें अपना काफी उद्धारका उपाय किया जा सकता है, पर उस अपनेको अपना काम करनेकी रुचि होनी चाहिए। जो अपने थोड़े समयके लिए जैसे आया है वैसे ही मिट जाता है, वह अपना गौरव कायम नही रख सकता है। यह जगत् एक मायाजाल है। इस जगत्मे जो बाह्य आनन्द मिलता है उसमें भी यह प्राणी दुःख ही पाता है। अतएव इस बाह्य सम्पर्ककी रुचिमे कोई हित नही है। मेरा जो विकल्पजाल है, वह जंजाल है।

हम समाजमे गृहस्थीमे रहते हुए भी फंसे नहीं हैं, क्योकि जो विकल्प नही रखते हैं वे नही फंसते हैं। यह आत्मा तो एक ही है, अपने स्वरूपमें है। इसका इससे बाहर कुछ नही है, किन्तु अनुभव तो होना आवश्यक है। उसके लिए भी क्या करना है ? बस समझना ही समझना है। बाहरसे किसीको कैसा ही मान ले, इसमे कुछ बाहरसे फेर पडनेका नही, बस अपने आपको मान लो। ये परबुद्धियाँ तो सब चक्कर है। इन्हीमे पड़े हुए हो। मान लो कि यह मेरा लडका है, इससे आत्मामे क्या गुण हो गया ? अरे वह मेरा नही है, वह तो एक दूसरा पदार्थ है। मेरा किसी भी परसे कुछ सम्बन्ध नही। सब अपनी-अपनी कषायमे चलते है। किसी परको मान लेनेसे कुछ अपना हो जाता हो, ऐसा नही है। परको अपना मान करके अपनेको अधेरेमे और डाल लेते हैं। अपने स्वरूपका अनुभव किसी प्रकार हो कर लो। बस यह एक ही कार्य कर लो जिसका सानी और कुछ नही है। ऐसा भी कोई निरापद स्थान है तो वह है जहाँ आत्माको शुद्ध दर्शन है। जिसको इस उपयोगमे विराजमान कर हम शान्त रह सकते हैं। जनसमुदायमे, परिणमन बुद्धिमे हम क्या कर सकते हैं ? अपने एकान्तमे हम रहे तो अपने मर्मका हम पता लगा लेंगे। समस्त आपदाओको सहकर भी मैं इस निज एकान्तमे ही बसना चाहता हू।

आज जो रक्षाबन्धनका दिन है। क्या हुआ था कि इसी दिन इस तिथिको आजसे

लाखो, करोडो वर्ष पहले चतुर्थकालमे एक महान् ७०० ऋषियोमे अथवा ऋषिगणोमे जिनमे अकम्पनाचार्य प्रमुख थे, वे सब इसी हिन्दुस्तानमे एक बार उज्जैन नगरीमे एक जगह ठहर गए। वहाँ बहुतसे लोग दर्शनार्थ गए हुए थे। राजा भी गया। उन मन्त्रियोको भी साथमे ले जाना पडा था जो धर्मसे द्वेष रखते थे। अकम्पनाचार्य जी ने निमित्तसे यह जान लिया कि यहाँ कोई विपत्ति आवेगी। सब लोगोसे कह दिया कि यहाँ सबका मौन रहेगा जब तक यहाँ ठहरेगे। जब यहाँ सब दर्शनको गए तो मोही मंत्री भी दर्शन करते रहे किन्तु किसीने उनको कुछ नही कहा। मत्री कहते थे कि राजन् देखो ये सब बेवकूफ है, मूर्ख है, वे सब समझते होते तो बात तो करते। वापिस जाते हुए उन मन्त्रियोंको श्रुतसागरजी मिले, जो आहार करके वापिस आ रहे थे और जिन्होने आचार्यजी का उपदेश न सुन पाया था। उन मुनिजीसे मंत्रियोने विवाद छेड दिया। परन्तु विवादमे वे मत्री हार गए। मत्री लोग अपने अपने घर चले आए और उन्हे इस गतिका बहुत बडा धक्का लगा। जब यह घटना आचार्य को मालूम हुई तब यह सोचकर कि सघपर सकट आयेगा, सो श्रुतसागरजी को विवाद स्थान पर ही रात्रिप्रतिमायोग करनेकी आज्ञा दी। रातमें सब मत्री तलवार लेकर पहुचे। श्रुतसागर जी को देखकर मंत्रियोने सोचा कि इसीको मारो। सबको मारनेसे क्या फायदा? मन्त्रियोने श्रुतसागरजी पर तलवार एक साथ चलाई पर वे चारो मत्री कीलित हो गए। एक भी तलवार उनपर न लगी। राजा भी सुबह आए, बोले—इन मन्त्रियोको फाँसी दी जायगी। आखिर मुनिने बनदेवतासे कहा कि इनको छोड दो। यह सब अपने-अपने कर्मके अनुसार सुख दुःख उठाया करते है, सबको छोड़ दिया। मुनिजनोंने मन्त्रियोका प्राणदड राजासे हटवा दिया। किन्तु राजाने गधेपर चढाकर उन मंत्रियोको देशसे निकाल दिया। ये मत्री हस्तिनापुरमे पहुचे, वहाँ पद्मराजाके मत्री हो गए। यह राजा सिंहबलको आधीन करनेके लिए चिन्तित था। इन मन्त्रियोने हल करके सिंहबलको पकड लिया। तब राजाने मुँहमांगा इनाम माँगने को कहा, कि जो चाहो सो माँग लो। बलि मत्रीने कहा कि अभी भडारमे रख लीजिये, जब चाहूंगा माँग लू गा। समय बाद वे साधु हस्तिनापुर पहुचे। बलिने बदलेका मौका देखकर कहा कि महाराज हमारा वचन भंडारमे है सो दीजिए। राजाने कहा, ले लो, क्या चाहिये? तब मन्त्रियोसे सलाह लेकर बलिने कहा कि महाराज हमे ७ दिनका राज्य दे दो। बस क्या था राज्य मिल गया। अब तो बलिने उन साधुओको बाडेमे बेड दिया। अपवित्र वस्तुयें डाल दी, और ईंधन भी। सब लकडी कडा आदिमे आग लगा दी। साधु जलने लगे। श्रावण शुक्ला चतुर्दशीकी रात थी। श्रवण नक्षत्र कांपा, कही पर्वतपर बैठे दूसरे मुनिने ज्ञान से जाना। उन्होने एक क्षुल्लक जी को मुनि विष्णुकुमारके पास भेजा। क्षुल्लक जी ने कहा

कि महाराज ऐसा उपसर्ग है कि आपको विक्रिया ऋद्धि है, आप उसे दूर कर सकते हैं। विष्णु जी ने विक्रिया ऋद्धि जाननेको हाथ पसारा, पसारते ही रह गए। तब राजाके यहाँ भगवान् विष्णु बावनरूप धारण कर पहुंचे। बोले—महाराज हमे कुछ मिलना चाहिये। महाराजने कहा कि जो चाहो सो माँग लो। भगवान् विष्णु ने कहा कि महाराज हमे तीन कदम भूमि चाहिये। महाराज बोले कि—१००, ५० कदम मांगलो, तीन कदमसे क्या होगा महाराज! विष्णुने तीन ही कदम मांगी। भगवान विष्णुसे बलिने संकल्प किया। तब मुनिराज विष्णुने अपना रूप बढा लिया। एक पैर तो मेरू पर्वत पर, दूसरेसे मानुषोत्तर पर्वत घेर लिया। अब तीसरा पैर रखनेको जगह नही रही। अब राजा बलिका बस नही चलता कि वह क्या करे? सब लोग थर्रा गए। कहा, महाराज कष्ट निवारण करो, शांत होओ, भगवान विष्णु ने अत्याचारी मन्त्रियोको धिक्कारा व उपसर्ग शान्त कराया।

तबसे यह रक्षाबंधन चला है। धर्मके कार्योंमें सब सावधान रहो व अपनी रक्षा करो। कैसे भी उपद्रव आवें हम उनसे विचलित न होकर अपनी ओर दृष्टि करें। धर्ममें हानि होती हो तो उसे भी न होने दें। अधर्मको खुद न होने दें, इसका यह सूत्र है।

जिसने अपने बलसे ऋषियोंके उपसर्ग दूर कर दिए, वह मुनिराज विष्णु थे। कितने ही संकट थे, महान् आत्माओ, ७०० ऋषियोकी रक्षा करके विष्णु मुनिराज समाधिविचलन का प्रायश्चित्त लेकर फिर समाधिस्थ हो गए। महात्मा लोग फिर अपनी तपस्यामे लग गए।

इस जगत्में अपना क्या है? यह परिवार, कुटुम्ब इत्यादि त्याग करके यदि अपने धर्मकी रक्षा करनी पड़े तो धर्मकी रक्षा कर लो। यदि तुम्हारे अंतरङ्गमें धन, वैभव इत्यादि का मोह आए तो उसका त्याग कर लो। मेरी बुद्धि धर्मके कार्योंमें हो, बुद्धि निर्मल हो, ज्ञानमय हो, ज्ञानका प्रसार हो, धार्मिक कार्योंकी प्रीति बढ़ावें। ऐसे कार्योंके लिए अपना कुछ उत्सर्ग भी करना पडे तो वह भी करना चाहिए।

मेरा धन मै ही हूँ। मै ही सब कुछ हूँ। इस संसारमें यह शरीर नही रहेगा, यह घरद्वार भी नही रहेगा, यह धन वैभव इत्यादि भी यहाँ कुछ नही रहेगा। यह सब अपनी अपनी परिणतिसे है और अपनी ही परिणतिसे चले जावेंगे।

जगत् बाह्यपदार्थोंमे मोहकी नीदका जो स्वप्न हो रहा है, इसमे नाना विकल्प जग रहे हैं और कीचड अपनेमे लपेट रहे है जिसके फलमे भविष्यका फल भी बिगड़ेगा अपने शुद्ध फलको बनानेके लिए और दूसरोसे बर्बादी न होने देनेके लिए साधारण सहज भावमे अपने अपने उपयोगको बनाते रहे। हम इस सहज चैतन्यस्वरूपसे बढकर कुछ नही है। धर्म ही आनन्दकी खान है। ऐसे धर्ममे हम लगे रहे। यदि धर्मके कार्योमे हमारी क्षण गुजरे तो

समझो कि हमारा जीवन सफल है और मोह चितामे अगर हमारी क्षण गुजरती हैं तो समझें कि जहाँ हमारी आखें मुदी तहाँ सब कुछ यहाँका यही खत्म है। परमार्थसे तो जब अपन गए ही। धर्मकी ओर हमारी दृष्टि है तब जीवन सफल है अन्यथा नही।

ऐसा कौनसा स्थान है जहाँ रहने पर क्षोभ नही हो, वह स्थान बाहर कही भी नही मिला। क्योकि बाह्यसे अपने आपसे कोई सबध नही है, बाह्यपदार्थं न तो क्षोभका कारण होता है और न शांतिका कारण होता है। वह स्थान तो स्वय यह ध्रुव आत्मा है, जो अपने सब परिणमनोका स्रोत है, आधार है, वह मैं ही हू। यह मैं सबसे निराला, शुद्ध चैतन्यमात्र भगवान आत्मा हू, ज्ञानमय हूं, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान आदि रूप मेरा परिणमन होता है, किन्तु ये सब पर्यायें हैं दूसरे क्षण नही रहती हैं। ये सब रूपपर्यायें जिस शक्तिकी होती हैं वह शक्ति मैं हू, वह है ज्ञानशक्ति। वह ज्ञानशक्तिमात्र मैं हू। ऐसा यह मात्र ज्ञानस्वरूप मैं स्वय एकांत हू। इस एकान्तमे मैं बसूं तो वहाँ कोई क्षोभ नही है। ऐसे इस निज सहज ज्ञायकस्वभावमय अपने आपमे मैं रहू और स्वयं स्वयमे सुखी रहूँ। सुखका अर्थात् आनन्दका एकमात्र उपाय यही है। आनन्द यही हमारी आत्मामे है। यह सहज-आनन्द तो प्रगट होनेके लिए अनादिसे इसीकी बाट जोह रहा हैं किन्तु यह रागादि भाव उस पर अनादिसे ही पानी फेर रहे हैं। यह रागादि भाव मात्र मायाजाल है। यहाँ सारा ठोस चीज कुछ नही मिलती, कैसे मिले यह रागादिक भाव स्वय सत् तो हैं नही, यह एक परि-णमन हैं सो वह परिणमन भी जीवके स्वरूपसे उठा हुआ भी नही, यह तो अज्ञानमे एक कल्पना हो गई है जो प्रकृतिके निमित्तसे जीवमे एक झलकरूप है। उसकी अमूलताका पता ज्ञानियोको है, इसी कारण वे रागादिभावमे आस्था नही करते। अज्ञानी जीवोको न तो अपना पता है और न रागादिभावोकी असारताका पता है। इसका कारण बिना पता लिखे या गलत पता लिखे लिफाफेकी तरह यहाँ वहाँ डोला करते है और जिन चाहे विषयोमे आ-सक्त होते रहते हैं। आसक्त ही हो लेंवे, पल्ले कुछ उनके पडता नही है, कारण कि परवस्तुसे परमे कुछ परिणति नही आती और न परपदार्थ पर कोई अधिकार है कि मनमाफिक उसे पास रखलें या परिणमन करा दें। अनहोनी बात तो कभी होगी नही परन्तु अज्ञानी जीव अनहोनीको होनी करना चाहते है। इसका परिणाम केवल यह होता है चित्तमे उनके क्षोभ होता रहता है।

जहाँ चित्तको क्षोभ न हो ऐसा यह तो सम्यक्त्व है, अपने शुद्ध स्वतःसिद्ध स्वभाव का उपयोग है। जब कभी जिस किसी प्रकारका क्षोभ हो उसका तात्विक और सत्य इलाज केवल एक यही है, करना भी यही चाहिए हमको जब कभी कोई क्षोभ हो, क्योकि सर्ववि-

कल्पजालोको असार अहित जानकर उनसे मुख मोड़कर आनन्दनिधान ज्ञानघन निज सहज परमात्मतत्वकी उपासना करने लगे। मै सर्व परपदार्थोंसे अत्यन्त भिन्न हूँ, अतः शुद्ध हूं। मैं सर्वांग नमककी डलीमे जैसे क्षार है वैसे ही विज्ञानघन एकरस हूँ, ऐसा चित्स्वभावमय हूँ अतः शुद्ध हूँ। मैं समस्त बाह्य उपाधियोसे व आन्तरिक उपाधियोसे अनादिमुक्त हूँ, ऐसा चित्स्वभावमय हूँ अत. निरजन ही ऐसा मै स्वय धर्ममय हूँ, एकान्तस्वरूप हूं। इस ही निज तत्त्वमे रहकर मैं अपनेमे अपने आप आनन्दमय रहूँ, अन्य समूहसे कोई प्रयोजन नहीं, किन्ही भी विकल्पोसे मेरा कोई हित नही।

हितैषी हितयन्ताऽस्मि हितज्ञोऽस्मादहं गुरुः।
अस्यैव साक्षितायां शं स्यां स्वस्यै स्वे सुखी स्वयम् ॥१—३६॥

हितका चाहने वाला मैं ही हूँ, और हित की बातको जानने वाला भी मैं ही हूं। और हितरूप बर्तावमे रहने वाला भी मै ही हूं। इसलिये मेरा गुरु भी मैं ही हूँ। इसि मुझ आत्मतत्वका साक्षी बना रहूँ तो इसमे ही सुख है। अन्य पदार्थोंकी उपासनामें उनके आदरमे, उनके आकर्षणमे रच भी हित नही है। यह आत्मा अनन्तगुणोका पिण्ड है। जिनमे मुख्य है ज्ञान दर्शन, चारित्र, सुख, शक्ति आदि। ये गुण इसमे अनादिसे है, और अनत काल तक रहेगे। ये गुण इसमें एक ही है और एकरूप ही रहेगे। ध्रुव है किन्तु इनका प्रतिसमय परिणमन कोई न कोई चलता रहता है। जैसे पुद्गलमें रूप है, रस है, गध है, स्पर्श है, चारो शक्तियां है और उस पुद्गल परमाणुमे प्रतिसमय कोई न कोई परिणमन होता रहना आवश्यक है। जैसे रूपमे उसका परिणमन चाहे काला हो, पीला हो, लाल हो, सफेद हो या इसके मेल वाला कोई रंग हो, पर होता रहना आवश्यक है। इसी प्रकार आत्मामे जो गुण है वह तो अनादि अनत हैं, किन्तु इसका जो परिणमन है वह परिणमन सादि शान्त है और मिट जाता है, और यही आत्मा अगर अपने स्वरूपमे जो इसमे ज्ञान है उस ज्ञानका परिणमन कर ले तो इतना ही यह कर पाता है। तब यह इच्छा जिसके वशमे सारा जगत है, जिसके कारण विवश होकर मिथ्यात्व अन्याय अभक्ष्यका सेवन करता है। ऐसी इच्छा यह है क्या ? यह इच्छा आत्माकी चारित्रशक्ति बिकार है, आत्माका जो चरित्र गुण है, जिसका स्वाभाविक विकास आत्मामे रम जानेका है, सो स्वभाविक विकास न होकर वैभाविक विकास जब चलता है तो यह परिणमन होता है। चारित्रगुणके बिकार लोभ, मोह आदि हैं। लोभका ही एक प्रकारको इच्छा है, और इच्छा जीवमे होती है और अपने जीवको ही चाह सकता है। मै क्या चाह सकता हूँ ? क्या मैं धन चाह सकता हूं ? धन कभी नही चाह सकता हूँ। आप क्या धनकी चाह करते हैं ? आप धन नही चाह सकते है। आप जो चाहते हैं सो अपने आपको ही चाहते हैं। धनको नही चाहते, वैभवको

नही चाहते, इज्जत प्रतिष्ठा को नहीं चाहते । आप जो चाहते हैं, वह अपनेको चाहते हैं । जगत्के सभी जीव केवल अपनेको चाहते हैं, दूसरोको नही चाहते । क्योकि यह एक परिणमन है और वह परिणमन आत्मामे ही हो रहा है, तो उस परिणमनका कार्य आत्मामे ही है, तो चाहमे आतमा ही चाहोगे । धन नही चाहोगे मै धनी कहलाऊँ ऐसा अपनेको चाहते हो । धनको नही चाहते, परन्तु ऐसी शुद्धदृष्टि मोहमे नही हो पाती है । आत्माकी ऐसी चाह होते समय तो वस्तुतः कोई भी प्राणी अपनेसे बाहर किसीको नही चाह सकता । जो चाहता है वह अपनेको चाहता है । मैं धनी कहलाऊं ऐसी चाह है पर धनकी चाह नही है ।

अपने आपमे जो तरंग उत्पन्न होती है उसकी ही वह जीव चाह करता है । चाहकी बात तो दूर रही, बाहर किसी भी चीजको यह जीव जानता नही, जानता है तो अपनेको । बाहरी पदार्थोंको नही जानता है । यह जीव स्वतश्च ज्योतिस्वरूप है । इस कारण इसका स्वरूप जाननेका है । सो सब कुछ जो कुछ इसमे प्रतिबिम्बित हो, ग्रहण हो, सो इसकी ज्योतिको जानता हू । धनको, वैभवको, कुटुम्बको न जाना, पर अपने आपमे जो आकार आया है उसको जाना, बाह्यपदार्थोंका जो आकार आया है उसको तू जानता है, बाह्यको नही जानता ।

जैसे एक दर्पणको सामने रक्खें तो हम केवल दर्पणको देख रहे हैं पर पीठ पीछे दशो चीजें दर्पणमे झलकेंगी । हम तो केवल दर्पणको देख रहे हैं पर उसमे दिखता है कि अमुक आदमी को देख रहा हूँ, अमुक लडके को देख रहा हूँ, अमुक पेडको देख रहा हूँ । हम दसोको क्या देखते हैं ? हम तो दर्पणको देख रहे हैं । दर्पणमे दसो चीजोका आकार बन गया, प्रतिबिम्ब आ गया, जिसपर उनको देखकर हम दस चीजोका बयान कर देते हैं । इसी तरह हम केवल अपनेको जानते हैं कि अपनेमे इन सब चीजोका आकार आ गया है । हम बताते है कि जानते है, पखा जानते हैं, बिजली जानते है, सब कुछ जानते हैं । पर वास्तव मे अपनेको जानते हो, सबको नही जानते हो । यह अंतरात्मा ज्योतिर्मय है । सबका आकार आ जाता है । हम जानते है, अपने आपमे वर्णन करते हैं सारे जगत्का । अब बतलाइए कि जब तुम्हारा इन पदार्थोंके साथ जानने तकका भी संबंध नही है तो फिर यह मेरा है, यह उसका है, यह सुख देता है । यह सबध कैसे हो ? कोई पदार्थ किसी अन्यका कुछ हैं—ऐसी मान्यता करना यह सब भूल है । आपकी आत्मा दूसरेको साक्षात् जानती भी नही है । केवल अनंतकारी होने से इस अनंताकाररूप परिणमते हुए आत्माको जानता है, बाह्य चीजों को नही जानता । जब हम इन पदार्थोंको जानते ही नही हैं, जानने तकका भी इनसे संबंध नही है तब भला अन्य पदार्थोंके साथ सबध ही क्या है ?

यह मैं आत्मा जगत्के सब पदार्थोंसे अछूता है। यदि मेरा भवितव्य अच्छा है, मुक्ति मेरी निकट है, अल्पकालमे ही भगवान् होने वाला है तो यह ज्ञान मुझमे जग जायगा कि मैं दुनियामे सबसे अछूता है। मैं जगके सब पदार्थोंसे न्यारा है, किसीसे छुवा हूं ऐसा नही है। ऐसा अवृद्ध अस्पष्ट यह आत्मा मैं अपने नजरमें आ जाऊं। मैं अपने आपको, अपने आपकी आत्माको अपने ज्ञानकी ओर बिना छुवे हुए देख सकूं। यह बात तो तभी आयेगी जब निकट कालमे परमात्मा होने वाला होगा। आप जब निकट कालमे परमात्मा होने वाले होगे तो अंतरमे ज्ञान जगेगा और अपने आपका अछूता शुद्ध चैतन्यस्वरूप नजर आयेगा। यदि अपने आपको पर्यायमात्र ही मानते रहे तो इसके फलमे क्या होगा? संसारके जन्म-मरणके चक्करमे ही तो जाना होता है। मनुष्यसे मरकर पशु होते है और पशुसे मरकर अन्य किसी योनियोमें जाना होता है। ऐसे ही योनियोमे चक्कर लगाना पडता है तो संसारके पदार्थ जिन्दगी भर तक छोड नही सकेंगे। अतः आत्माको बडा बनानेका समय है। यह महान् बनेगा तो इसकी सद्बुद्धि चलेगी और इसको ऐसे ही रहना होगा तो मोहमे, बाह्य-पदार्थोंमे ही जकड़ा रहेगा। यह बडे सौभाग्यकी बात है जो इस आत्माको अपने शुद्ध ज्ञान-स्वरूपमे देखें। इससे बढकर ऊंचा भवितव्य और नही कहा जा सकता है। स्वप्नमे बड़े हो गए तो क्या वह बडप्पन आगे रहेगा? बल्कि स्वप्नमे देखा हुआ बडप्पन थोड़े समय बादमे दुःख करेगा। जैसे एक कथानकमें कहते हैं कि कोई घसियारा था। वह सिर पर घासका गट्ठा धरे जा रहा था। साथमे ४, ५ घसियारे और थे। और एक पेडके नीचे बोझ उतार कर आरामसे लेट गए। उनमेसे एक घसियारेको नीद आ गई। नीदमें स्वप्न आ गया। स्वप्नमे देखता है कि लोगोने उसे राजा बना दिया है। एक अच्छा महल है। बडी हालमे अनेको दरवाजे लग रहे है। बड़े बडे राजा मुकुटधारी आ रहे हैं। लोगोके द्वारा प्रशंसा हो रही है। गाने ताने हो रहे है। सब झुक रहे है। इतनेमे एक घसियारा जागता है और कहता है कि चलो समय हो गया, बड़ी देर हो गई है। जब वह जाग गया तो बोला हाय, हाय मेरा सब कुछ कहां गया? रोने पीटने लगा।

इसी तरह मोहकी नीदमें जो सोए हुए हैं उनको जो स्वप्नमें बडप्पन दिखाई दे रहा है, मैं ऐसा हू, ऐसा बुद्धिमान हू, मैं भी सरकारकी पहुंच वाला हूँ आदि जो स्वप्न देख रहे हैं वह सच्चे लग रहे है। घसियारेको स्वप्न सा नही लग रहा था, जब तक स्वप्नमें था। पर जब वह जाग गया तो उसे झूठ लगा। मोह छूट जाने पर यह भी झूठा लगेगा। मोहकी नीद खुल जाने पर यह जगत्का बड़प्पन अच्छा नही लगेगा। पर जब तक मोह ममत्व है, जब तक अपनेको भिन्न-भिन्न नही परखा तब तक यह सब कुछ है। बड़ा अच्छा है मेरा

लडका है, मेरा पोता है, मेरा बढावा है, मेरा उत्थान है, मेरा आदर है, मेरे परिवारके लोग खुश रहे। दुनिया चाहे दुःखी रहे। मेरे लडके, नाती अच्छी तरह रहे। दुनिया चाहे जिस तरह रहे। मेरा व्यापार अच्छी तरह चले। दुनियाके चाहे चलें चाहे न चलें। पर्यायबुद्धिमे जब तक बसे रहेगे तब तक मोहके स्वप्न सच्चे लगते रहेगे। यह ही मैं अपना हू। मेरा अपना मेरा आत्मा ही तो है। जगत्के सब जीव एक समान हैं। सब अपने अपने स्वरूप वाले हैं। सब मुझसे अत्यन्त भिन्न हैं। सबका स्वरूप मेरे ही समान है। मोही जीव इस प्रकारका ज्ञान नही करता, यह मेरा है, यह पराया है—इस प्रकारका अतरंगमे जो घर बन गया है यह भूल निरन्तर इस जीवको शूलकी तरह दुःख दे रही है। रात दिन आकुलता उत्पन्न हो रही है। हम धर्मके समयमे भगवान्को भजते हैं, पर भगवान्के भजनेमे जो भगवान्का हुक्म है उसको नही करते हैं। भगवान्का हुक्म है कि इस जगत्मे अपनेको अछूता निरखो। अछूता मानना यह बहुत बड़ी भक्ति है और वातें बना देना यह कोई भक्ति नही है। हम भगवान्के हुक्मका पूरा पालन नही कर सकते तो भगवान्के हुक्मकी नजर तो कर सकते हैं। भगवान्का हमको हुक्म क्या है? यह ध्यान तो बना सकते हैं। हम ध्यान ऐसा न बनाएं और २४ घटोमे कुछ भी जोड़ छोड़ करें, इस अपने स्वरूपका उपयोग न बनाए और भगवान्के भक्त बननेका अपने ही मनमे दावा रक्खें उससे तो काम नही बनता। भगवानकी भक्ति यही है कि जैसा भगवानका स्वरूप है तैसा ही अपने अन्दरमे ऐसा स्वरूप दीख जाये और गद्गद् होकर अपने ही स्वरूपमें मिल जाय; इससे बढकर भगवानकी भक्ति और क्या होगी? भगवान कुछ नहीं चाहता है। उनके धन दौलत नही है, उनके कुटुम्ब परिवार नही है जो आपसे कोई सेवा करवावें। आपसे भोग चढ़वावें और द्रव्य चढ़वावें। यह भोग भगवानके पेटके अन्दर नही जाता। भगवानकी भक्ति हम अपने आपके अन्दर करें तो होती है। बाहर दृष्टि डालकर करें तो नहीं होती है। भगवानकी भक्ति यह है कि हम शुद्धदृष्टि वाले बने और पापरहित बनें, अपनेसे अधिक दूसरे को समझें। अपनेको तो कुछ दुःखी करना पसंद करलें, पर दूसरोको दुःखी कर देना पसंद न करें, यह है भगवानकी भक्ति।

हे प्रभु! आप भी कभी इस अनाथ ससारमे रुलने वाले और विनोदमे सडने वाले थे। प्रभु इस प्रकार मेरी जैसी अवस्था आपने भी कभी पायी थी। किन्तु मुझ जैसा साधारण भाग्य भी आपने पाया तो वहाँ आपका विवेक जगा था। उस समय आपने अनोखा उत्थान किया जिसके फलसे अपनेको शुद्धदृष्टि पूर्ण किया। केवल अपने आपको निरखते रहे। आप केवल अपने आप स्वरूपमे सब कुछ हो गए। आप आज ऐसे स्थान पर पहुचे

कि सारा विश्व आपके ज्ञानमे झलक रहा है। अनंत आनंदमे आप निरंतर डूबे रहा करते है। ससारकी कोई भी आपदा आप पर नही आ सकती है। ऐसा उत्तम स्थान आपका हुआ है। स्वरूप तो मेरा और आपका एक ही है। केवल एक प्रस्तावको कर लिया। दूसरे प्रस्तावको कार्यान्वित कर लिया जाता है—इतना फर्क है। हम प्रस्ताव कर रहे हैं। क्या 'आत्माके अहित विषय कषाय, इनमे मेरी परिणति न जाय।' विषय कषायोमे आत्माकी अहित करने वाली मेरी परिणति न जावे। मेरी अपनी कमेटी इन विषय कषायोमे न जावे। पर यह प्रस्ताव कार्यान्वित नही होने पा रहा है। आपने कार्यन्वित कर लिया है। यदि ऐसा साहस हम कर लेते है कि विषय कषायोमे उपयोग न जाय। ऐसा दृढ कदम उठा लेते हैं कि अपने ज्ञानमे ही सदा लक्ष्य रक्खेंगे तो मेरी भी परिस्थिति विशुद्ध हो लेगी। कभी हम साहस भी करते है कि ऐसा कदम उठा लें किन्तु यह करते करते इसे मुन्ना मुन्नीका ख्याल आ जाता है। यदि ५ मिनट किसीका ख्याल न रक्खें तो क्या वे गुजर जाते हैं, मिट जाते हैं। सब मिल जायगा, मगर भीतर तो कुछ और है। कैसे काम बनें ?

सम्यक्मे सीमा नही होती है। चारित्रमे तो सीमा होती है। सम्यक् तो वह है जिसका वह पूरा हो। न हो तो रंच नही है। श्रद्धामे अपनी ओरका झुकाव है। पूर्ण है, नही है तो नही है। चरित्रसे हम नही प्रबल हो पाते हैं। नही सही, पर श्रद्धा तो हमारी मजबूत रहे। क्योकि देखो पूजामे भी कहा है कि—

कीजे शक्ति प्रमाण शक्ति बिना सरधा धरै।
द्यानत सरधावान अजर अमर पदको लहै॥

अपनी रुचि ही अगर नही बनाई तो वह आत्मा मिले कहाँसे ? हमारे लिए हमी सहाय हैं, दूसरे मेरा हित नही कर सकते है और दूसरे न मेरे हितकी बात जानते हैं। यह सब स्वप्नके बडप्पनकी जिम्मेदारी अपने पर नही समझे। यह तो सब पुण्यकी जिम्मेदारी है। ये घरमे बसने वाले सबके पुण्यकी बात है। यह उपयोग किसकी जिम्मेदारी लेकर शुद्ध करें, अपने आप निर्मल बनाएं, अशुद्धोपयोगी रहे व ससारमे रुलते रहे—यह तो योग्य नहीं। अतः मैं अपने आपकी ऐसी श्रद्धा बनाऊ कि मैं अपने आप ज्ञानमें परिणमता रहू। जो कुछ करता हूं, वह अपने भीतरकी दुनियामे ही कर पाता हूं। इसका इससे ही ताल्लुक है, इसका किसी दूसरेसे सम्बन्ध नही है। किसीसे यह छुवा हुआ नही है। यह तो स्वयमे ही जगमग रहता है। इतना ही मैं हू। इस मेरेको दूसरा पहचानने वाला भी कोई नही है। जब दूसरा मेरा कोई पहिचानने वाला नही है तो कौन मुझपर रोष करता है जब कि मुझे किसीने पहचाना भी नहीं है। लोग तो हमे जानते ही नहीं है और भीतर ही भीतर कल्प-

नायें करके विपत्तियाँ किया करते हैं। मुझे कोई जानता नही है और यदि कोई जान जायगा तो उसकी दृष्टि मेरे ऊपर भली बुरी हो नही सकती और आगे देखता है कि वह उससे रुष्ट क्यो है और वह उससे खुश हो गया है ? यह पुद्गलकी चीज है। मूर्ति ही मूर्तिको देख कर रीझती है। इस अविनाशी को कोई देखने वाला है क्या ? अगर १० आदमियोने हमारा सम्मान कर दिया तो यह इसी हाड लूथड़का ही तो सम्मान किया। जिसको यह मान रक्खा है कि यह धनी है, यह पडित है, यह साधु है। वह सब तो खाक हो जाने वाला है। मेरा पहिचानने वाला दूसरा कोई नही है। मैं तो अछूता हू। अपने आपके स्वरूप को देखो तो क्या यह करोड रुपयोसे कम है या ज्यादा ? अरबो तथा खरबो रुपयोसे कम है या ज्यादा ? अरे 'चक्रवर्तीकी सम्पदा इन्द्र सरीखे भोग काकबीटसम गिनत हैं सम्यक्दृष्टि लोग।' यह दुनिया ज्ञानी जीवको नही/सुहाती जिनको अपने ज्ञानका भण्डार मिल गया है तो उनको भगवानका सही आनद प्राप्त होगा। ज्ञानीको यह सम्पदा पापकी तरह लगती है, क्योकि ज्ञानी जीवको सर्वोत्कृष्ट आनद प्राप्त हुआ है।

आप लोग दुकान करते हैं। साल दो साल पहले दुकानमे टोटा ही पडता है। साल दो साल पहले धन ही लगाना पडता है। धनका लगाना ही लगाना है और फिर बादमे मुनाफा मिलता है। जिसमे ज्यादा मुनाफा मिलनेका प्रोग्राम है तो लम्बा धन लगाना पड़ता है। लम्बा परिश्रम लगाना होता है और शुद्ध भगवानका पाना यह कितना बडा मुनाफा है। इसके लिए तन, मन, धन, सर्वस्व सब कुछ अर्पणको समर्पित कर देना पडेगा। मेरा कुछ नही है—ऐसी दृष्टि लेकर केवल ज्ञानमय अपनेको दर्शन करना होगा। इतना करते हैं तब यह लाभ होगा। मेरे इस कार्यको केवल मैं ही कर सकता हू, दूसरा इसको नही कर सकता है। अपने आपकी जिम्मेदारी महसूस कर धर्मपर ध्यान अवश्य देना चाहिए।

ज्ञान स्वमेव जानाति तदा स्वस्वामिता कुतः।
अहमद्वैतबुद्धिः सन् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-४०॥

ज्ञान आत्मामे जानने वाला गुण है। ज्ञान किसको जानता है ? ज्ञान, ज्ञानको जानता है। ज्ञान सबको जानता है। यह कथनव्यवहार है। अंगुली किसको टेढी करती है ? अंगुलीको टेढी करती है। दीपकने प्रकाशित कर दिया। किसको प्रकाशित कर दिया ? दीपकको प्रकाशित कर दिया। ज्ञान वास्तवमे अपनेको जानता है परको नही। इस आत्माने स्वाद ले लिया। किसका स्वाद ले लिया ? अपना स्वाद ले लिया, भोजनका स्वाद ले लिया, यह कहना व्यवहार है। भोजन करते समय आत्माने यह ज्ञान किया कि यह मीठा है, स्वादिष्ट है, इसी प्रकारका ज्ञान करनेसे उसने आनंद माना तो आत्माने एक विकल्पका

स्वाद लिया। उस ज्ञानने एक ज्ञानका स्वाद लिया है, भोजनका स्वाद नही लिया है। भोजनका रस भोजनमे है। भोजनका रस आत्मामे नही आता है। भोजनको निमित्त करके आत्माने जो ज्ञान किया उस ज्ञानका रस आत्मामे आया और यह जीवको जो खुशी हुई तो अपने ज्ञानके रससे खुशी हुई, भोजनके रससे खुशी नही हुई। लोगोको भोजन ऐसा लगता है कि शायद उसका रस ले लेता है, सामने जो दीखने वाली चीजें है। अच्छा, भोजनके अलावा और देखो। सिनेमा देखा, नाटक देखा, बंदरका खेल देखा, रीछका खेल देखा। अब उनके खेलसे आनन्द आया। किसके स्वादका आनन्द आया? बदरके खेलका आनन्द आया या रीछके खेलका आनन्द आया या अन्य किसी खेलका आनन्द आया? इन किसी भी परवस्तुवोका आनन्द नही आया। उनको देखनेसे ज्ञान हुआ, उस ज्ञानका रस आत्मामे आया और खुश हो गए। आत्मा स्वाद ले लेता है, अपने आप ले लेता है। आत्मा ज्ञान करता है, अपने आप करता है, अपने आप ले लेता है। आत्मा ज्ञान करता है, अपने आप करता है। मेरा अपना जो कुछ होता है वह अपनेमे ही होता है और अपने लिए होता है। ऐसा मैं अत्यन्त न्यारा आत्मा हू। पर मोहके वशमे बाह्यपदार्थोंमे मैं मिल रहा हूं और अपनी स्वतन्त्रताको भूल बैठा हूं। मान लिया कि यह मेरा है, अच्छा है, बुरा है आदि। इसके विकल्पोमे मैं पड़ा रहता हूं, अज्ञान मिटे तो ज्ञान जगे, ज्ञान जगे तो अज्ञान मिटे, कुछ कह लो, ज्ञानी हूं, ज्ञानमात्र हूं, शरीरसे भी न्यारा हू, केवल ज्ञानस्वरूप हूं। इससे आगे और मैं कुछ नही हू, मेरा इसके आगे और कुछ नही है। यदि अपने स्वरूपका ज्ञान बने तो ससारमे भटकना नही पड़ेगा। देखो भैया ज्ञान ही दूसरेको नही जानता है। ज्ञान अपने आपको ही जानता है। जब जानने तकका भी संबध दूसरेसे नही है, फिर और बातोकी चर्चा करना बेकार है। क्या मेरा धन है? मै धनको जानता हू। क्या मैं शरीरको जानता हूं? क्या मेरा शरीर है? यह मोही जगत्के सारे स्वप्न देख रहा है। स्वप्नके समय जैसे स्वप्नकी बातें झूठ नही मालूम होती हैं, इसी तरह मोहकी बातें मोहमे असार नही मालूम होती है, झूठ नही मालूम होती हैं मोहमे त्याज्य त्याज्य नही मालूम होता। इस जीवमे सबसे अधिक विपदा छाई है। भ्रमसे होने वाले दुःखका मुकाबला है किसी औरसे नही किया जा सकता है। हम दूसरोके भ्रम और बेवकूफीको देखकर कितना अधिक मजाक करते हैं। जैसे कोई चारपाई है, खाली ढांचा पडा हुआ है और उसमे अच्छी तरह चादर तान दी जाय और कच्चे धागेसे चारो ओर बांध दिया जाय और किसी बालकसे कहा जाय कि आवो भाई साहब बैठो। यह बैठ जाय तो दूसरे लड़के कैसे हँसेंगे। पीठ नीचे और

पैर उसके एक जगह हो जावेंगे । क्यो हँसे ? उसके गिरनेसे नही हँसे, ये उसके भ्रमको देखकर हँसे । जब यह समझमे आता है कि इतनी बातमे सार कुछ नही था और सार मानकर इसमे फंस गए और नष्ट हो गए । दूसरोके भ्रमको देखकर हम बेवकूफीका अदाजा लगाते और हम उसका कितना मजाक करते हैं । इन बातोमे सार तो कुछ है नही और ये भ्रम मान लेते है । अभी किसी लडकेको गोद ले लें और जबरदस्तीका वह बाप उस लड़केसे भारी प्रेम करे, खूब खिलाये, गोदमे रखे रहे तो देखने वाले हँसेंगे । है कुछ नही इसका और देखो कितना बेवकूफ बना रहा है ? और अगर खुदका लड़का है तो जो समझदार होगे वह यह अन्दाज नही लगावेंगे कि यह बेवकूफ है, यह स्वतंत्र परमात्मा सदृश चैतन्यमात्र है और ऐसा भ्रम हो गया और कैसा अटक गया है । यहाँ इस दुनियामें कैसी विपदाओमें पड़े है, दुःखी भी होते हैं और हठ भी नही छोडते हैं, मरे भी जाते हैं पर हठको नही छोडते हैं, बरबाद हुए जाते हैं । यह जगत्के प्राणियोका हाल है । जिनका निकट ससार है, भवितव्य अच्छा है, वह अपने आपमे अपने आपको लक्ष्यमे ले सकता है अन्यथा तो मोही प्राणी बाहर ही बाहर घूमता रहता है । मेरा परवस्तुवोसे किसीसे क्या सम्बन्ध है, कौनसा सम्बन्ध है, कौन सा आनन्द है ? जानने तकका तो परसे सम्बन्ध है नही औरके सम्बन्धकी तो बात ही क्या है ? मैं अमुक अमुक चीजोको जानता हू ऐसा कहना केवल व्यवहारसे है, कल्पनाके विचारसे है, निश्चयसे यह बात नही है । मेरा अपनेमे बाहरका क्या है ? कुछ नही है ।

यह किताब किसकी है ? किताबकी है । यह चौकी किसकी है, यह चौकी अपने काठ की है, यह चौकी आदमीकी नही है । यह हाथ किसका है ? हाथका हाथ है । मेरा हाथ होता तो मेरे ही साथ रहना चाहिए । हम तो चले जायेंगे और यह यही खाक हो जायगा । जो जिसकी चीज है वह त्रिकाल तक उसके साथ तन्मय रहती है । जो आज यहाँ है कल वहाँ है, उसको कौन कह सकता है कि यह मेरी है । वेश्याको कौन कह सकता है कि यह मेरी स्त्री है । आज यहाँ है, कल वहाँ है । ५ मिनट यहाँ रही और १० मिनट वहाँ रही । किसी एकका उसपर कोई अधिकार नहीं, घरकी विवाहीको लोग स्त्री कहते हैं क्योकि हमें विश्वास है कि जब तक यह जिन्दा है तब तक मेरी है । ५०-६० वर्षकी अवस्था जब तक है तब तक मेरी है और आगे चलो तो घरकी स्त्री भी उसकी स्त्री नही हैं । आप जीवनको छोड़कर चले जावेंगे, वह यहाँ रह जावेगी । और आगे चलो तो यह शरीर भी आपका नही है और आगे चलो यह कर्म भी आपके नही है, यह सब झड जायेंगे । और आगे चलो तो यह राग, द्वेष, कषाय भी आपके नही हैं, यह होते हैं । और तुरंत चले जाते हैं । जो राग, द्वेष जिस समयमे हो वह दूसरे समयमे नष्ट होगे, दूसरे समयमे नये राग होगे । जैसे कोई

किसी बातकी तृष्णा करता है कि इसमे २० हजारका फायदा हो जाय। २० हजार हो जाने के बाद फिर तृष्णा तो नही रहेगी पर दूसरे २० हजारमे फिर तृष्णा हो जायगी। यह तृष्णा का गड्ढा इतना बडा है कि बढता ही जाता है। बडा कूडा करकट डालने वाला गड्ढा कूडा करकट डालनेसे कम हो जायगा, पर तृष्णाका गड्ढा बढता ही जाता है। तृष्णामे कितनी ही विभूतिका कूडा डालते चले जावो, तृष्णा बढ़ती ही चली जाती है। इसी प्रकार राग, द्वेष मिट गए, फिर सब राग, द्वेष आ जाते हैं। इसी तरह राग, द्वेष चलते रहते हैं। जैसे चक्की मे गेहूँ पिसता है उससे भी अधिक पिसता है। उसमे तो फिर भी अधिक दाने होते है। यह ऐसा पिस जाता है कि इसके स्वरूपका विकास ही नही हो पाता है। जैसे कहा है कि "सूत न कपास कोलीसे।" वैसे ही लेना न देना मोह पूरा बना हुआ है। यह मेरा है, यह पराया है। तन लगाया गया परिवारके लिए, मन लगाया गया परिवारके लिए, धन लगाया गया परिवारके लिए। अगर पडौसका बच्चा बीमार है या कोई दूसरी परेशानीमे है तो उसकी ओर उसकी दृष्टि ही नही जायगी। यह है मोहका तेज नशा। यदि वह तुम्हारे ही घरमे पैदा होता तो उसे अपना मानते। यदि यह आत्मा तुम्हारे ही घरमे न आयी हुई होती तो तुम उसे अपना न मानते। तुम्हारा कुछ है क्या, तुम्हारी कल्पनाओमे जो अपना आए, बस वोई तुम्हारा बन बैठा है। बाह्य चीजें तुम्हारी नही हैं, कल्पनाओमे जो परिणमन हुआ वह परिणमन तुम्हारा है। उसमे सब अन्दाज किया करते हो, बाहरसे तो कोई अन्दाज करते नही, मेरा किन्ही परपदार्थोंसे कोई सम्बन्ध नही है। मैं किसी भी अणुमात्र परपदार्थका स्वामी नही, किसी परद्रव्यका स्वामी नही, मैं केवल अपना ही स्वामी हू।

करि विचार देखो मन मांही।
मूदहु आंख कितहुं कछु नाही॥

अन्धे पुरुषोको देखा होगा, प्रायः वे बेलिहाज होते है। जैसे यहाँ सूझते, दूसरेकी शर्मसे कोई काम कर दे, दूसरेका ऐहसान मान ले, यह अनुभव अन्धेमें कम होता है। कुछ थोडासा फर्क तो प्रायः रहता है। क्योंकि जो आंखसे देखते हैं वह थोडासा लिहाज करते हैं। यदि समाजमे कोई बात कहना है तो कोई नही कह सकेगा और अगर अधेसे कह दो तो वह झट कह दगा। कई लोग सोचते रहेगे कि कैसे कह दें। पर अंधा भाई आंखोसे नही देखता है, वह कह देगा। जब हम बाहरी पदार्थोंमे लग रहे है, इनको देख रहे हैं, इनकी ओर मुड रहे हैं तो हम लिहाज करते है, शर्म करते है, अपेक्षा करते है। कैसे राग छोड दें, कैसे द्वेष छोड दें। अभी दो स्त्रीमे, दो पुरुषोमे दो लडकोमे बोलचाल बद हो जाय और जो दो चार महीने तक चल जाय तो इच्छा होती है कि मैं बोलू, चालूं, मनमे है कि मैं बोलूं, तो भी

शर्मकी कषाय कहती रहती है कि न बोलो। अरे कोई सुन पायगा कि यह पहिलेसे बोल गए तो देखनेका, बाहरमे जगनेका, बाहर रहनेका, लिहाज चलाता है। अपेक्षा चलती है, पर 'मूंदहु आँख कितहुं कोऊ नाही।' बाहरके विकल्प हटा दो, कही कुछ नही है, केवल ज्ञानानन्दमात्र ब्रह्मस्वरूप है। वह ज्योतिमात्र है, अपनेको ज्योतिर्मय करता है। यह ज्ञान ज्ञानको जानता है, यह ज्ञान यह अनुभव न करके कि मैं केवल अपने स्वरूपको जान रहा हूँ। मानता रहा हू कि मैं अमुक चीजको जानता हू। बस इसी भ्रममें बडा दुःख है।

मैं करता हूँ तो अपने आपको करता हूँ, भोगता हूँ तो अपने आपको भोगता हूँ दुःखी होता हू तो खुदबखुद अपने आप बिना जड मूलके दुःखी होता हू और सुखी होता हू तो अपने आप कल्पनायें बनाकर सुखी होता हू। दूसरे पदार्थोंसे कुछ संबंघ नही है, लगाव कुछ नही है। खुद ब खुद अपने आप कल्पनाएं बनाकर अपनी नाना प्रकारकी अवस्थाएं कर रहा हूं। इसका किसीसे सबंध नही है। आपका बाहरी किसी भी चीजोसे रंच भी सम्बन्ध नही है, मेरा कुछ नही है। मैं किसीका स्वामी नही हू। मैं अद्वैतबुद्धि वाला होता हू। केवल अपने आपको अपने ज्ञानमे लेता हुआ केवल प्रतिभास मात्र ज्ञानस्वरूप अपनेको अनुभव करुगा। यह मैं हूं, शांत हू और अपनेमे अपने लिए अपने आप सुखी हूं। अपना प्रभु, अपना रक्षक, अपनी शरण मैं ही हूँ। अंतमे तुम ही मिलोगे, दूसरा नही मिलेगा। दो पुरुष थे, वे स्वाध्याय करते थे। उनमे आपसमे बात हुई कि जो कोई मर जाय और देव हो जावे तो वह देव दूसरेको समझाने आवे। उनमे एक गुजर गया। और देव हो गया उसने ज्ञानसे सब जाना कि वह पुरुष स्वाध्याय कर रहा है, तब वह देव आया। अब तो राग, द्वेष छोड दो आत्मध्यानमे आवो। पुरुष बोला, अभी बात समझमे नही आती है। माता, पुत्र सदा हित ही हित चाहा करते हैं। पुत्र बडा अच्छा है, गड़बडझाला कुछ नही है। तुम्हारी शिक्षाकी बात समझमे नही आ रही है। बोला—कल १२ बजे दिनमे समझायेंगे। हम देव बनकर कह देंगे। तुम पेटका बहाना करके बीमार पड जाना। वह पुरुष बीमार बन गया। बडा दर्द हो रहा है। डाक्टर आए, कुछ आराम नही। देव १२ बजे सडक पर घूम रहा है। कह रहा है कि मेरे पास सब पेटेंट दवा है जो व्यर्थ नही जावेगी। उस पुरुषके घरके लोग बोले, इसके पेटमे दर्द है सो ठीक करदो। कहा बहुत अच्छा। एक चाँदीका गिलास ले आओ उसमे स्वच्छ पानी ले आवो। अपनी थैलियोंसे सफेद सफेद शक्कर झूठमूठकी दवा उसमे मिला दी। उस पुरुषकी माँ से बोला, माँ जी इसे पी लो, उसका पेट ठीक हो जायगा। लोगोने कहा कि पेट किसका दर्द करता है और दवा किसको पिलाएगा ? बोला, यह मन्त्रसिद्ध दवा है। यह दवा जो पी लेगा वह मर जायगा और यह

अच्छा हो जावेगा । माँ सोचने लगी कि मेरे चार लडके है । अगर एक गुजर गया तो तीन लड़कोका सुख देखूंगी और अगर मै ही मर गई तो मै किसीका भी सुख न देख सकूंगी । उसके पिताजी से कहा, पिता जी ने भी ऐसा ही सोचा । स्त्रीसे कहा कि तुम पी लो । तो स्त्री सोचती है कि अगर मैं मर गई तो पुत्रोका भी सुख न देख सकूंगी । वैद्यजी कहते हैं कि मैं पी लूं । हाँ हाँ पी लो, सब बोले । उसने कहा कि अच्छा आप लोग जावो, ठीक हो जायगा । अब कानमे देव कहता है कि तुम्हारे लिए कोई मर मिटने वाला है क्या ? उसकी समझमे आ गया । भैया ! यह तो वस्तुस्वरूप है । तो इसका बुरा न मानना चाहिए कि मेरे लिए हाय कोई मर मिटता नही । अगर कोई कभी मेरे लिए मर मिटे तो हमारे लिए नही मरा, वह अपने ही विषय कषायके लिए मर मिटेगा । अगर कोई मेरे लिए मर गया तो वह मेरे लिये नही मरता । वह अपने मनमे कल्पनाए करके अपने विषय कषायकी पूर्तिके लिए मरता है । इसीसे पदार्थोंका कोई दूसरा पदार्थ स्वामी है क्या ? किसीका कोई अधिकारी है क्या ? किसीका कुछ लगता है क्या ? आप लोग सोचते होगे । आपसे अच्छे तो विदेशी लोग है । वह सरकारको लडके सौप दें तो सरकार ही लड़कोका पालन पोषण करती है, पढाती लिखाती है ? वहाँ किसीका कोई नहीं है । वहाँ मोह ममता कम होगे । परन्तु अपने आपमे पर्यायकी ममता है, कार्योंकी ममता है । मगर इससे झगड़ा कितना बढ़ेगा ? बड़े बडे जो भवके चक्कर लगेंगे उनमे कितना झगडा बढेगा ? ऐसा क्यो हुआ ? यो ही हुआ । भूलमे बात कितनी मिली कि मैंने अपने आपको नही समझा । पर-वस्तुको यह मान लियो कि यह मेरी है, यह उसकी है । मूलमे केवल इतनी बात मिली कि इससे झगडा सारा बढ गया । ८४ लाख योनियोमे इसे भटकना पडा । जैसे पुत्रादिके हैरान होनेपर लोग कहते हैं कि झगड़ेकी जड़ विवाह है, न विवाह करते न झगडा होता । इसी तरह संसारके सब झगडोकी जड़ परकी दृष्टि है । इससे यह सारी विपदायें ले ली, यह सारे चक्कर हो गए । इसकी विपदा करली कि यह मेरा है, परपदार्थोंको अंगीकार कर लिया। इससे इतना बडा झगड़ा बढ गया । अब मैं अद्वैत बुद्धि होकर केवल अपने आपको अपना सर्वस्व समझकर ज्ञानमय बुद्धि रखकर अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होऊ ।

ज्ञप्तिमात्रदशायां न दुःखं स्यात्कर्मनिर्जरा ।
सैषोऽहं ज्ञप्तिमात्रोऽतः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-४१॥

जिसका आत्मा केवल जानता है, जाननेके अलावो जाननेके विषयभूत पदार्थमे कोई राग, द्वेषकी तरग नही उठती है तो वहाँ दुःख नही है । अब देखिए जीवका कुछ है, तो है नही और उसपर मर रहा है । पहले तो यह निर्णय कर लो कि जीवका यहाँ कुछ है क्या ?

इसी निर्णय पर सब कुछ दारमदार है, सब कुछ सार है, यही है ऋषीजनोका उपदेश और वास्तविकता यही है कि मेरा कुछ है नही। कुछ लोग ऊपरी ढगसे कह रहे हैं, मान रहे हैं कि मेरा अन्य कुछ नही है, क्योकि कुछ भी साथ नहीं जाता। कोई कही रहेगा, कोई कही रहेगा, कोई साथ नही रहेगा। यह तो है ऊपरी ढंगका वर्णन, वस्तु स्वरूप का वर्णन यह है कि जगत्मे अनन्त पदार्थ है। कैसे कैसे कि अनन्त जीव हैं, अनंत पुद्गल है, एक धर्मद्रव्य है, एक अधर्मद्रव्य है, एक आकाशद्रव्य है व असख्याते कालद्रव्य, यह है इनकी सख्या। यह जो कुछ चीज है, एक एक चीज नही है। जैसे एक किवाड यह एक नहीं है। एक चौकी यह एक चीज नहीं है। यह अनत चीजोसे मिलकर बनी है। क्योकि एक तो उतना होता है जिसका दूसरा टुकडा नहीं। जो वास्तवमे एक होता है उसका दूसरा हिस्सा नहीं है। एक टुकडा हो जाय तो समझो कि दो चीजें थीं न्यारी न्यारी हो गई हैं। यह चौकी अनत परमाणुओका पुंज है। शरीर यह एक या अनत परमाणुवोका पुज है। मेरे हाथ, पैर इत्यादि जो टूट जावें तो सब अलग अलग वस्तु हैं तभी टूट जाते हैं। तो जहाँ कहते है कि एक चीजका हजारवाँ हिस्सा तो वहाँ वह एक नहीं है, वहाँ हजार है। सब मिलकर एक पिड बना और व्यवहारमे उसके लिए एक पिंड कहते हैं। एक चीजका हिस्सा ही नही हुआ करता है। जो दृश्यमान पदार्थ हैं उनको एक एक चीज नही मानना। उनको हम एक पिंडकी तरह ही देखें। जो एक ही उसका स्वरूप अलग नही होता है। वह एक दिखाई नही देता है, पर ज्ञानमे समझमे आता है। जब यह अनन्तपरमाणुवोका पिंड है तो एक एक जो वस्तु है वे अनन्त हैं, वे स्वतन्त्र हैं। उनमे मेरा कुछ दखल नही है। यहाँ यह देखना है कि मेरा कुछ नही है तो क्यो दुःख हो? जैनधर्म किस तरह देखता है कि हमारा कुछ नहीं है। जब लोग सीधा बोल देते हैं कि हमारा कुछ नहीहै क्योकि न मेरे साथ आया है और न मेरे साथ जायगा। इसमे तत्व नहीं निकला। तत्त्व तब निकलेगा जब हम वस्तुस्वरूपसे देखते है, अनन्त जीव हैं, अनन्त पुद्गल है, एक धर्मद्रव्य है, एक अधर्मद्रव्य है, एक आकाशद्रव्य है व असख्यात कालद्रव्य हैं।

एक कहते किसको है जिसका दूसरा हिस्सा हो नही सकता है। आकाशका दूसरा हिस्सा नही हो सकता है। आप यही कहते हैं कि यह दूसरे तल्लेका आकाश है, नीचे यह तीसरे तल्लेका आकाश है तो एक आकाशका टुकडा हो गया। नही हो गया। एक कहते ही उसे हैं जिसका दूसरा टुकडा नही है। इसी तरह धर्मद्रव्य उसे कहते हैं जो जीव और पुद्गलोके चलनेमे सहायक हो। वह तुम्हे नही दिखता। उसमे रग, स्वाद, गध नही

होती। वह सारा अलगसे एक द्रव्य है। इसी तरह एक अधर्मद्रव्य होता है। अधर्मद्रव्य उसको कहते हैं जो ठहरनेमे सहायक हो। हम चलते है तो चलकर रुकनेमे यह मददगार है। अगर अधर्मद्रव्य नही है तो हम रुक नही सकते। निरंतर चलते ही रहेगे। इन परमाणुवोमे से एक परमाणु पुद्गल ले लो। यह भी एक द्रव्य है। उसका भी दूसरा हिस्सा नहीं हो सकता है। परमाणुवोका क्या दूसरा हिस्सा हो जायगा ? नहीं होगा। हम अपना एक जीव ले लें। क्या इसके हिस्से हो सकते हैं ? नहीं हो सकते हैं और दूसरी पहिचान क्या है ? एक परिणमन जितनेमे हो पूरेमे होना पडे। और जिससे बाहर कभी नहीं हो उतनेको एक कहते है। जैसे इस चौकीका कोई भाग यदि जल जाय, इस खूंटमे यदि आग लग जायगी तो यही जला, सारा तो नहीं जला। जिसमे यह भाग जल रहा है तो यह परिणमन यही तो हो रहा है, सारेमे तो नहीं हो रहा है। एक कहते उसे हैं जिसमे एक परिणमन उस पूरेमे हो। इस चौकीने एक जगह रूप बदल लिया तो सब जगह तो नहीं बदला। एक चीज उतनी होती है कि एक परिणमन जिसमे पूरेमे होना पड़े। जगत्‌का कोई भी पदार्थ मेरा नहीं है। इसकी मूल बात चल रही है। क्यो नही है ? यो नहीं है कि सब पात्र अपने अपनेमे रहते हैं। एक परिणमन जितनेमे पूरमे होना पडे उतनेको एक कहते हैं। जैसे मेरा जीव एक है। क्यो एक है कि इसमे कोई सुख परिणमन है तो यह पूरेमे यही होना पडेगा। ऐसा नहीं है कि पेटके हिस्सेमे आत्मप्रदेश तो सुखी हो रहा है और पेटके नीचेका आत्मप्रदेश दुःखी हो रहा है। कभी ऐसा होगा कि हाथमे फोडा है। फोडेमे दुःख हो रहा है। ऐसा नहीं है कि हाथका अगला हिस्सा तो सुखी हो रहा है और पिछला हिस्सा दुःखी हो रहा है। कभी ऐसा होता है कि हाथमे दुःख है, मगर दुःख परिणमन जो है वह फोड़ेका नहीं है। आत्माको जो मुझमे दुःख हो रहा है वह परिणमन मेरे हाथको फोड़ेका निमित्त पाकर कहते हैं कि फोड़ेका दुःख है, हाथको दुःख है। देखो परिणमन सारे जीवमे हो रहा है। एक परिणमन जितनेमे पूरेमें होना ही पडे और जिससे बाहर कुछ नहीं है। नहीं तो एक वस्तु है। इस जीवका जितना परिणमन है वह मेरे जीवमे होता है। बाहर कहीं नही होता है। प्रत्येक वस्तुका परिणमन उनमे ही होता है। उनसे बाहर कहीं नहीं होता है। जगत्‌मे जितने भी जीव है, मित्र हैं, दोस्त हैं, कोई भी हो, उनका परिणमन उनमे ही होता है। उनका परिणमन उनकी आत्मामे ही होता है। उनसे बाहर उनका परिणमन कही नहीं होता है। मेरा परिणमन मेरी आत्मामे ही होता है। मेरा परिणमन मेरी आत्माके बाहर कहीं नहीं होता है। तब मैं जो कुछ भी कर सकता हू, अपनी आत्मामे ही कर सकता हू। मैं अपनी आत्माके बाहर कुछ नहीं कर सकता हूं।

दूसरे जीव जो कुछ कर सकते हैं वह अपनेमे ही कर सकते हैं। अपनेसे बाहर वे कुछ नहीं कर सकते है। क्योकि वह एक सत् है। क्योकि उनका उत्पाद व्यय ध्रौव्य उनमे ही होता है। उनसे बाहर नही होता है। जब किसीका उत्पाद व्यय ध्रौव्य कोई परिणमन, कोई कार्य किसी अन्य द्रव्यमे नही हो सकता है फिर कौनसी ऐसी गुंजाइश है कि उसमे किसी दूसरेका सत्व माना जा सके। कोई सबध ही नही है। देखो मेरा तो परको जाननेका भी सबध नही। मैं व्यवहारसे केवल कहता हूँ कि मैं परपदार्थोंको जानता हू, पर मैं परमार्थसे केवल अपनेको जानता हू। अपनेके अतिरिक्त और मैं किसीको नही जानता। मैं केवल अपनेको जानता हू, पर दुनिया भरका बयान करता हू। जैसे दर्पणको सामने रख लें तो पीठ पीछेकी बातें, यह लडका है, यह गिर रहा है, यह अमुक है, यह कुछ कर रहा है। जैसे दर्पणको हम जानते हैं इसी बलसे हम सबका वर्णन कर डालते हैं। इसी तरह हम अपनी आत्माको ही जानते हैं परको नही जानते हैं। यह है ज्ञानियोकी दृष्टि जो जगलमे रहते हैं और प्रसन्न रहते हैं। हम दूसरेको जानते ही नही हैं, तो दूसरे हमारा करेंगे क्या ? दूसरे मेरे कुछ नही है। अगर श्रद्धामे यह बात पूरी तरह जम जाय और जडसे सबका सबध काट दिया जाय, उसको सम्यक्त्व होगा ही। जिसको सम्यक्त्व होगा उसको दुःख नही होगा। चाहे १ भव, चाहे १० भव, चाहे हजार भव रहना पडे, दुःख उसको नही होगा। अगर सम्यक्त्व लगातार बना रहे तो ७, ८ भव तकमे मुक्ति हो जावेगी। अगर सम्यक्त्व छूट जाय, मिथ्यात्व आ जाय तो वह अनेको भव संसारमे रोक सकता है। कुछ कम अर्ध पुद्गल परिवर्तनकाल तक रोक सकता है। परन्तु फिर सम्यक्त्व पाकर रत्नत्रय पूर्ण कर मुक्ति हो ही जावेगी। एक बार सम्यक्त्व प्राप्त हो जाय फिर इस जीवका भला ही है। आप यह बतलाइए कि इस सम्यक्त्वका प्राप्त हो जाना अरबो और खरबो रुपयोसे बढकर है या नही। अरे धन तो जिसके भाग्यमे होगा वह खायगा। वह दूसरोके लिए है। इसमे तो केवल आपके हाथ पैरके श्रमका काम है। वह धन उनके लिए है जिनके निमित्त पापी बन कर आप संसारमे रहते हैं। यह धन धर्मियोंके लिए नही है, वह उनके लिए है जो पापी बनकर संसारमे रुलेंगे। स्त्रीके लिए बच्चोंके लिए, अपने लिए, परिवारके लिए ससारमे रुलेंगे और अगर सम्यक्त्व मिल जाय तो सदाके लिए कल्याण है। मोह कैसे छूटे, इसका साधन है कि जगत्के ये जो परपदार्थ हैं, वे परपदार्थ अपनेको ही अपना परिणमन करते हैं, अपनेको ही अपने परिणमनमे विलीन करते हैं और अपना जो निजी स्वरूप है, निजी स्वत्व है उसको त्रिकाल लिए रहते हैं। इसलिए परपदार्थ अपने ही ढंगमे बने रहते हैं। तब फिर किसी पदार्थका किसीसे सबध है नही। इसी प्रकार जैनसिद्धांत समझाता है कि हमारा जगत्

मे कुछ है नही। जब ऐसी दृष्टि बनेगी और ऐसा दूसरे पदार्थोंको देखने लगोगे तो एक जगत् को देखते, जानते रह जावोगे। इष्ट अनिष्ट माननेका विकल्प छूट जायगा। जब तक सही ज्ञान नही है तब तक इष्ट अनिष्ट बुद्धि है।

बच्चेकी तकलीफ देखकर किसीने कहा कि मेरे तकलीफ है। कैसी तकलीफ है ? मेरा स्वतंत्र स्वरूप है। वह अपने चतुष्टयसे है। पक्की हिम्मत बनाओ। दूसरे लडकेको देख कर तो जल्दी मान लेते कि यह अन्य है अगर घरके लडकेके प्रति यह हो जाय कि मेरा कुछ नही है, मेरा किसीसे संबंध नही है याने जिनमे अज्ञान बस रहा था, मोह बस रहा था उनमे ऐसा अगर दृढ प्रत्यय हो जाय कि मेरा कुछ नही है, मेरा तो मात्र मैं ज्ञानस्वरूप हूँ। ऐसा निर्णय हो जाय तो सम्यक्त्व हो जाय। ऐसा निर्णय करनेके लिए सारा शरीर सौंप दिया जाय, सारा धन सौंप दिया जाय, अगर यह एक श्रद्धा मिल जाय तो सब कुछ मिल गया। मान लिया कि धन किसीके पास है तो उसे सरकार भी सताए, चोर भी सतायें, धोखेबाज भी सताए, औरकी बात छोड़ दो खुदको ही वह चिंता करके सतायेगा। खुद ही दुःखी होता है। इस वैभवसे पुरुषको क्या आनन्द होता है ? अपने ज्ञानसे ही अपने उपयोग मे रहूँ तो मैं आनन्द भोगता हूँ। ऐसा आनन्द कितना सरल है ? मेरे ही अधिकारकी चीज है। यह आनन्द मेरे ही मे बसा हुआ है। आत्मीय शक्तिके अनुभवसे उत्पन्न हुआ आनन्द ही भीतरकी निर्जरा है। जैसे तपस्या करें मगर भीतरसे क्लेश है तो क्या दुःख व कर्म कट जावेंगे ? नही कटेंगे। ये दुनियाके लोग जो खुद मोही है, दोषी हैं, पापी हैं, दुःखी हैं, संसार मे रुलने वाले हैं, उनमे अपनेको अच्छा कहलानेकी या कहलवानेकी बुद्धि लगाए बैठे हैं कि इनमे मैं अच्छा कहलाऊं, इनमें मैं धनी समझा जाऊं, इनमे मैं खास समझा जाऊं। यह सब दृष्टि छोडकर मुझे किसीसे कुछ नही चाहिए। ऐसी हिम्मत करो कि मुझे अपनेमे खुद सुखी रहना है। यह हिम्मत ज्ञानीके होती है। उस ज्ञानमे जरा भी दुःख नही होता है और कर्मों की निर्जरा है। ज्ञाता बन जाना, केवल जाननहार बन जाना, यह तो मेरा स्वभाव ही है। यह तो मेरे अन्दरमे स्वभावसे ही कला भरी हुई है। जैसे कूदना, फांदना, छलांग मारना, हिरनके बच्चेमे प्रकृतिसे ही होता है। हिरनकी मां हिरनके बच्चेको कुछ सिखाती है क्या ? उसमे खुद कला भरी होती है। इसी तरह केवलज्ञानी बननेकी कला इस जीवमे स्वयं भरी होती है। इस कलाको कोई सिखायेगा क्या ? भगवान बननेके लिए मेरे अन्दर यह कला भरी होती है। मेरे स्वभावमे ही भगवान् बननेकी कला है। आनन्दमय होनेकी कला मेरे स्वभावसे ही भरी हुई है। केवल ऊधम छोडना है, ऊधम जो लगा रखा है, बाह्यपदार्थोंको

अपना मान रखा है उसको केवल छोडना है बस आनन्दमय हो जावोगे। आनन्द करनेकी कला तो स्वयमे स्वभावसे भरी हुई है। ऐसा ज्ञानमय आत्मा मैं स्वय हू। ऐसे ज्ञानमात्रका अनुभव करके अपनेमे अपने लिए स्वय सुखी हूँ।

हमारा सुख कहाँ है? भोजनसे सुख है क्या? नही है। भोजन करके जो ज्ञान बनता है उसके ज्ञान रसका आनन्द है। भोजन करके आनन्द नही मिलता है। बाहुबलि स्वामी एक वर्ष तक तपस्यामे रहे। एक वर्ष तक भोजन नही किया, आनन्दरसमे डूबे रहे। बराबर एक वर्ष तक खडे रहे। वे आत्मीय आनन्दमे मग्न थे। अन्यथा क्या कोई यो खडा रह सकता है? या तो बैठ जायगा या खाने-पीने दौडेगा, पर बाहुबलि महाराज तपस्यामें खडे रहे।

आत्मीय आनन्द अपने ज्ञानरससे आता है, बाहरी पदार्थोंसे नही आता है और वह ज्ञान आनन्दरसमय है। तू भी ज्ञानघन है, अत: तू ज्ञानस्वरूपको देखकर और अपने ज्ञानका रस लेकर सुखी हो ले।

जैसे कभी कभी बच्चे दूसरे बच्चोसे जिसके हाथमे लूटका आम हो। आम ले लेनेके लिए छेडते हैं और पीटते है। यदि वह आमको फेंक दे तो सारे बच्चे पीटना छोड देंगे। इसी प्रकार पक्षी दूसरे पक्षीसे मांसका टुकडा छीनते है। उसपर अनेक आक्रमण होते हैं, पर यदि वह उस टुकडेको छोड दे तो पक्षी आक्रमण करना छोड देंगे।

इसी तरह ये जगलके जीव जो दु:खी हो रहे हैं, लोग जो पिट रहे हैं इसलिए कि परको अगीकार कर रहे हैं, परमे तृष्णाणु हो रहे हैं। एक काम कर लो, परकी तृष्णा छोड दो। सबसे मिलने वाली विपदा समाप्त हो जायगी, सारी तृष्णा यही खत्म हो जायगी। जानने मात्रसे ही आनन्द है और उसमे ही कर्मकी निर्जरा होती है। इसलिए अपनेको अपने ज्ञानमे रखो और शांत होओ।

यदुपासे तदाप्ति: स्यादत: शुद्धात्मतां भजे।
शुद्धाप्ति: शान्तिसम्पत्ति: स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-४२॥

मैं जिसकी उपासना करूँ उसकी ही मुझे प्राप्ति हो जाती है। पर उसमे शुद्ध, अशुद्धकी बात लेना है। हर एक बात नही लेना है कि मैं हजार रुपया चाहू उसकी उपासना करके वह रुपया मिल ही जाय। मैं यदि शुद्धतत्त्वकी उपासना करूँ तो शुद्ध तत्त्व मिल जायगा और यदि अशुद्ध तत्त्वकी उपासना करूँ तो अशुद्धतत्त्व मिल जायगा। जैसे धनकी उपासना की तो शुद्धतत्त्वकी उपासना की? नही, शुद्धतत्त्वकी उपासना नही की। यह मैंने अपनेको माना कि मै धनी हू, अमुक हू, मेरा कितना मान है, राग है? इस तरहसे अपनेको

देखो तो क्या शुद्धतत्त्वकी उपासना की ? अपनेको मोहरूप अनुभव कर रहा है कि यही मैं हू तो अशुद्धतत्त्वकी उपासना हुई । मै ऐसा जानने वाला हू, ऐसा बुद्धिमान् हू, ऐसा अपनेको समझने वाला हू, यह भी अशुद्ध तत्त्वकी उपासना हुई । मैं अच्छी समझ वाला हू, ज्ञान वाला हू, जानने वाला हू, यह भी अशुद्धतत्त्व हुआ ।

मैं केवल शुद्ध चैतन्यमात्र हूँ, इस तरहकी उपासना की तो वह शुद्धतत्त्व हुआ । मै केवल शुद्धचैतन्यस्वरूप हूँ, ऐसी उपासनाको शुद्धतत्त्वकी उपासना कहते हैं और इसके अलावा किसी भी रूपमे हो अशुद्धतत्त्वकी उपासना कही जायगी । मै अपने को एक समझ रहा हूँ । अपनेको समझने पर ही सारे सुख दुःख निर्भर है । सुख, दुःख न धन पर निर्भर है, न परिवार पर निर्भर हैं, न मित्र जनो पर निर्भर है । मै अपनेको जैसा समझता हूँ उसीपर सुख, दुःख निर्भर है । यदि मैं अपनेको सब जीवोंके समान शुद्ध चैतन्यमात्र जिसका नाम नही है किन्तु चेतनास्वरूप एकवस्तु हूँ— इतनामात्र अपनेको अनुभव करूँ तो वहाँ व्याकुलता नही है । जो अनुभव ससारमय अपनेको करता है, अपनेको नाना रूपोमे करता है, न जाने किन किन रूपोमे अनुभव करता है, वह जगजालमे रुलता है । जिसका निरन्तर ज्ञानमय चित्त रहता है, जो मोहियोके सगमे कमसे कम रहता है, जिसने दुनियामे कार्य करनेका भार नही लादा है, जिसके अपनेको दुनियामे दिखानेका अभिप्राय नही आता है वह शुद्ध तत्त्वकी उपासनाके योग्य है । दुनिया उसे जान नही जाती है । यह सब दुनिया मायारूप है । इसको समझनेसे मुझमें सुधार कुछ नही आता है । और यह दुनिया उसे जानती भी नही है और यदि जानती है तो वह और चीज है । शुद्ध ज्ञानमे जिसका उपयोग प्रायः लगता है, ऐसा पुरुष ही ऐसा अनुभव कर सकता है कि मैं शुद्ध चैतन्यमात्र हूँ ।

धर्म करो, धर्म करो, धर्म क्या करें ? एक टाँगसे खड़े रह जाएं । धर्म क्या करें ? यही धर्म करना है कि अपनेको ऐसा अनुभव करो कि मैं शुद्ध चैतन्यमात्र हू, चेतनामात्र हूं, इसे कोई पहिचानता भी नही है । लोग मुझे क्या कहेगे ? यदि यह समझमे आता है तो समझो कि मेरी बुद्धि कही बाहर फंसी है । लोग यदि कुछ कहते हैं तो समझो कि हमारी कही बाहरमे बुद्धि गई है । चाहे वह धर्मके नाममे हो ऐसी बात आवे । मैं धर्ममे कमी करूँगा, लोग मुझे क्या कहेगे ? तो भी समझो कि बाहरमे बुद्धि लगी है । लोग मुझे जानते ही नही तो मुझे कहेंगे क्या ? मैं अपने स्वरूपमे हू, अपनी चैतन्यशक्तिमे हू, प्रभु हू, भगवान् या भगवत् स्वरूप हूं, अपने कुलकी शान रखो, चैतन्य मेरा कुल है । ज्ञाता, द्रष्टा बने रहना ही कुलका उजेला है । यही उसका कल्याण है ।

सारा जगत् यदि मेरी प्रशसा कर दे तो क्या कुछ इससे मुझमे फेरफार हो जाय गा।

जगत्के लोग मेरी निन्दा कर दें तो क्या मेरा बिगाड हो जायगा । खोटे कार्य किये है तो मर कर नरक तिर्यञ्चमे जाना पडेगा । मैं अन्तरमे भला हूं, शुद्ध दृष्टि वाला हू, पूर्वोदयवश सारा जग निन्दा करे तो क्या मेरा स्वर्ग, मोक्ष रुक जायगा ? मेरे करनेसे ही मेरेमे फेरफार होगा । दूसरेके करनेसे फेरफार नही होगा । जहां अपने कल्याणका प्रश्न हो वहां अपने आपके परिणामपर ही सारा निर्णय छोडना चाहिए । कल्याणकी बात दूसरे जान जावें तो क्या कल्याण हो जावेगा ? लोग मुझे पूजा करते हुए देख लें तो क्या मेरा कल्याण हो जावेगा ? ऐसी दृष्टि जो रखते है वे लौकिक पुरुष हैं ।

मैं इस जगत्मे अनाथ हू, मैं तो लोकमे असहाय हू, केवल अपने आपका ही मैं आप हू, इसके लिए दूसरा कोई नहो है । मुझे अपनी जिम्मेदारी निभानी चाहिए । इस समस्या पर पदार्थ चाहे लाखो हजारोकी माया हो, चाहे सचेतन पदार्थ हो, कोई भी मेरी मदद करने वाला नही है । मैं तो मात्र परिणाम करता हू, फिर जैसे यह आटोमेटिक हो वैसे ही मेरी दशा हो जाया करती है । हमे अपने आपका ज्ञान व विश्वास निर्मल रखना चाहिए, जिससे मेरी रक्षा हो । मेरी इसीमे सहज व्यवस्था है कि मैं अपने सहजस्वरूपको देखू और उसे ही अपना मानू । मैं जिस रूपमे अपनी उपासना करता हू, मैं उसी रूपको पा लेता हू । मैं स्वय एक कल्पवृक्ष हूँ । मैं दूसरेसे क्या मांगू ? जो मैं अपनेको मानता हू, वही रूप मेरेमे हाजिर हो जाता है । यदि मैं शुद्धता अपनेमे भासता हूँ तो शुद्धता हाजिर हो जाती है और यदि मैं अशुद्धता अपनेमे मांगता हूँ तो अशुद्धता हाजिर हो जाती है । मैं अपनेको जैसा देखता हूँ उसी प्रकार अपनेको बना लेता हूँ । इसी कारण योगी जन अपनेको निरंतर अछूता, सबसे निराला, अनादि अनन्त अपनेको देखते हैं ।

एक कथानक है कि एक आदमी था । गर्मीके दिनोमे दोपहरीमे चला जा रहा था । जब गर्मी लगी तो सोचा कि अगर कोई वृक्ष मिल जाय तो आराम कर लू । रास्तेमे एक वृक्ष मिल गया । वह वही बैठ गया । वह कल्पवृक्ष था । वह सोचने लगा कि अगर थोडीसी हवा चल जाय तो और आराम मिले । हवा चलने लगी । फिर सोचा कि अगर थोडासा ठडा पानी मिले तो और आराम मिले । ठंडा पानी भी आ गया । अब उसने सोचा कि और फल मिल जावें तो बडा ही अच्छा हो जाय । फल भी आ गए । फिर सोचा कि यह क्या हो रहा है ? यहां कोई आदमी भी नही है । सोचा यहां कोई भूत तो नही है, जो आकर खा जाय । तो भूत भी आ गया और उसको खा गया । हां तो कल्पवृक्षके नीचे जैसा सोचे वैसा आ जावे ।

आप हम भी स्वय कल्पवृक्ष है या चिंतामणि है । जैसा मानो तैसा बन जाओ ।

अब बताओ कि शुद्ध बनना चाहते हो या अशुद्ध बनना चाहते हो। यदि हम अपनेको अशुद्ध देखना चाहे तो अशुद्ध बने रहेगे और यदि हम अपनेको शुद्ध देखना चाहे तो शुद्ध बन जायेंगे। जैसे मै अपनी उपासना करूँ तैसे मै बन जाऊँ। राम, हनुमान जी, भरत जी, बाहुबलि जी भगवान् कैसे बन गए ? इन्होने अपने आपमे मैं शुद्ध आत्माकी उपासना की। मैं शुद्ध चैतन्यमात्र हूं, मुझमे कोई बखेडा नही है। मुझमे किसी दूसरेका अस्तित्व नही है। मैं अपने ही तत्वमे हूँ, ज्ञानमे हूँ, सबसे निराला हूँ। जहाँ इस केवलकी भावना की तो केवल ही रहोगे। केवल रह जानेका नाम भगवान् है। अपनेको केवल देखो तो केवल बन जावोगे और अपनेको दूसरा रूप देखो तो दूसरा रूप बन जाओगे। जैसा ही अपनेको देखोगे वैसा ही अपनेको बना लोगे। मन्त्रोमे और क्या है ? मै बीमार हू तो मन्त्रोसे ठीक हो जाता हूँ। मन्त्र से यह भावना की जाती है कि मैं ठीक हूँ, अनन्त बलशाली हूँ तो मै ठीक हो जाता हूँ। कभी-कभी कोई आदमीके खराबी हो, कहते हैं कि टी. बी. हो जानेके लक्षण है और यदि उससे कोई कह दे कि तुम्हारे रोग है तो वह घबड़ा जायगा और यदि वह कह दे कि स्वस्थ है तो उसका दूसरा ही असर पडेगा। किसी सेठसे किसीका मुकदमा था। सेठके विपक्षी वकीलने सलाह दी कि सेठ मुकदमेमे जायगा, वहाँ तुम पहुच जावो। ५-१० आदमियोसे जैसे टिकट देने वालोसे, ताँगे वालोसे पुलिस वालोसे बता देना कि अगर सेठ जी आवें तो उनसे कहना कि सेठजी तुम्हारा चेहरा आज क्यो गिर गया है ? आज तो चेहरा बिल्कुल बदल गया है, बीमार थे क्या ? सेठ जी टिकट लेने गए तो टिकट देने वाले बाबूने सेठसे कहा कि आज तुम्हारा चेहरा क्यों गिर गया है ? आज तो तुम्हारा चेहरा बिल्कुल बदल गया है, बीमार थे क्या ? इसी प्रकारसे रिक्शे वालेने, ताँगे वालेने तथा पुलिस वालोने भी सेठ जी से पूछा। चेहरा तो बिल्कुल बदल गया है। अब सेठजी का हुलिया बिगड गया, बुखार आ गया, आखिर मुकदमेका ख्याल छोडकर घर लौट आए।

जैसी उपासना कर ली, वैसा परिणाम कर लिया। अपने आपमे अगर शुद्ध चैतन्य की उपासना करो तो शुद्ध चैतन्यस्वरूप बन जाओ। यह बड़े मर्मकी बात है। केवलज्ञान, जो सारे विश्वको ज्ञान करता है। ऐसा केवलज्ञान जो सारे विश्वको जाने। केवलज्ञान पैदा होनेका उपाय क्या है कि हम अपनेको केवल देखें, केवल ज्ञानमय देखें। केवल, सिर्फ, मात्र, (एलोन) ही अपनेको देखें कि मै ज्ञानमात्र हूँ। केवल ज्ञानमात्र अपनेको अनुभव करनेका फल है केवलज्ञान हो जाना। तो योगियोने क्या किया ? बस केवल अपनेको ज्ञानमात्र अनुभव करनेमे ही जोर दिया और केवल अपनेको ज्ञानमात्र ही अनुभव किया। बस केवल अपनेको ज्ञानमात्र अनुभव करनेमे सम्यक्त्वका अनुभव है। मैं केवल ज्ञानमात्र हूँ, यह अनुभव शुद्ध

तत्त्वका अनुभव है । शुद्ध तत्त्वका ज्ञान करनेसे शुद्धता मिलती है और अशुद्ध तत्त्वका ज्ञान करनेसे अशुद्धता मिलती है । भगवान् बननेका उपाय अपनी शुद्धता है । ऐसे मै अपने शुद्ध आत्मतत्त्वको भजता हूँ । स्थापना किसी चीजकी करते हैं तो हजारो, सैंकडो आदमी भावना करते हैं । जैसे यह मूर्ति केवलज्ञानी भगवान् की है, ऐसा मानकर हम भगवान्की स्थापना करते हैं । गर्भकल्याणक हुआ, जन्म कल्याणक हुआ, ज्ञान कल्याणक हुआ । भावना ही से तो सब है । भगवान स्वरूप हम अपनेको मानकर एक बार अपनेमे स्थापना तो कर लें । जैसे हम भगवान्की मूर्तिका आदर, सत्कार, पूजा इत्यादि करते हैं, वैसे ही हम अपने आपमे भगवानकी मूर्ति मानकर आदर व सत्कार तो कर लें ।

जैसे लडका, लडकी की शादी हुई । लडकी की यह भावना हुई कि यह मेरे पति है और लडकेकी यह भावना हुई कि यह मेरी स्त्री है । केवल भावनाओका अन्तर है । भावनाएँ भरकर वह ऐसा कहलाए कि वास्तवमे वह ही उसका सब कुछ है । केवल भावनाएँ भरकर वह ऐसा कहलाये । किसी स्त्री और पुरुषको देखकर कोई नही कहेगा कि यह उसकी स्त्री है और वह इसका पुरुष है । केवल भावनायें भरनेसे ही सकल्प हो गया है । वह स्त्री दूसरे पतिपर अपनी बुद्धि नही लगाती है और वह पुरुष दूसरी स्त्रीपर अपनी बुद्धि नही लगाता है । इसका कारण यह है कि उनकी भावनायें स्त्री और पुरुषकी भरी हुई हैं । जैसे मैं अपनेको देख लेता हू तैसे ही मैं अपनेको पा लेता हू । जब बालक लोग आपसमे खेलते हैं कि मैं चोर बन जाऊँ, तुम बादशाह बन जाओ, वह सिपाही बन जावे, वह कोतवाल बन जावे तो सब बन जावेंगे । जब जजके सामने चोरको पकडकर लाता है तो कभी कभी इसीमे बालकोमे झगडा हो जाता है, पिटाई भी हो जाती है । कही-कही नाटकोमे तो जैसे अमरसिहका नाटक बडा प्रसिद्ध बतलाया जाता है । उस नाटकमे एक बार जो अमरसिह बना था उसने जवाब सवालमे ही सलामतखाँको याने जो बालक बना था उसको मार डाला था । अमरसिहको जोश आ गया । उसने जो सलामतखाँ बना था उसको तलवारसे मार दिया था । उसकी भावना ऐसी भर गई कि मैं अमरसिह हू । उसने ऐसा नही सोचा कि मैं एक लडका हू । बस जो जैसी भावनाए करता है वैसी ही भावनाए अपनेमे प्राप्त कर लेता है । सो मै निरतर अपनेमे अशुद्ध भावनाए किया करता हूं । मै गृहस्थी हू, साधु हू, पण्डित हू, त्यागी हू, मैं अमुक हू, इत्यादि नाना प्रकारसे अपनेको अनुभव करता है । तू अपनेको अशुद्ध बनाता चला जाता है । अपनेको जो अशुद्ध मानेगा वह अशुद्ध ही बनता चला जायगा और जो शुद्ध मानेगा वह शुद्ध ही बनता चला जायगा । यदि मै नहा लेता हूं, तो भावना यह हो जाती है कि मैं शुद्ध हू, भावनासे ही शुद्ध है । पेटके अन्दर चाहे

विकार ही भरा हो परन्तु स्नान कर लिया तो शुद्ध हो गए। यह भावना हो गई कि अब मैने स्नान कर लिया है और शुद्ध हो गया हूं, अच्छा यह बताओ कि शरीर शुद्ध है कि आत्मा शुद्ध है। शरीर शुद्ध है कि नही ? यह तो डाक्टर ही जांच करके बतायेगा। तो न शरीर शुद्ध है और न आत्मा शुद्ध है। केवल भावनाकी बात है कि मै शुद्ध हू अथवा अशुद्ध। उस भावनाका क्यो बनानेका रिवाज चला ? केवल एक प्रकारका व्यवहार चलाने के लिए यह भावना चली कि मैं शुद्ध हू अथवा यह भावना बनी कि मै अशुद्ध हूं। पाप साधनोंसे दूर रहनेके लिए भावना बनी है। मनुष्य भावना बनानेके अतिरिक्त और कुछ नही कर सकता है। एक बार तू ऐसी हिम्मत किसी क्षण कर ले कि चाहे कितनी ही परिस्थितियोमें फंसा हुआ हो, चाहे कैसा ही अवसर हो, किसीका उपयोग ज्ञानमे न आवे मुझे कुछ नही सोचना है। सब असार है, सब पर चीजें है। इस मुझमे कुछ भी नही आता है। मै केवल ज्ञानमात्र हू, ऐसा ज्ञानमात्र ज्योतिर्मय अपनेको देख, ऐसी हिम्मत तो बन जाय। भीतरसे जो आनन्द आयेगा वह भगवानके समान है। अपने आप ऐसा अनुभव करनेका उपाय करना चाहिए। यदि मै इस प्रकार शुद्ध आत्मतत्त्वकी उपासना करता हूँ तो मैं शुद्ध बन जाऊँगा और यदि मै अपनेको अशुद्ध ही अनुभव करता हूं तो अशुद्ध ही बना रहूगा।

जगत्के जितने सुख हैं उन सब पर लात मारना होगा। इतनी हिम्मत जो कर सकता है वह शुद्ध आत्माको प्राप्त कर सकता है। मैं चार आदमियोमे अच्छा कहलाऊँ, यह भी एक जगत्का सुख है। मेरे दो चार बच्चे हो। लोग समझें कि बाल बच्चे वाला है। यह कल्पनाएं जगत्के सुख हैं। कोई भोजन करके सुखी होता है, वह भी जगत्का सुख है। कोई पूजा उपासना करके सुखी होता है, कोई पंडित बनकर सुखी होता है। धर्मकी बात अभी नही आयी। विद्या पढ़ो, देखो इसमे क्या रक्खा है ? यह भी एक जगत्का सुख है। धर्म वहां है कि इस जगत्की सारी सुखकी बातें हटा दें और केवल निराकुल ज्ञानमात्र का अनुभव जिसके आ रहा है, किसीका ख्याल नही है तो वह धर्म है। तो यह धर्म मिलता कैसे है ? इस धर्मस्वरूपकी ही ऐसी उपासना करें तो धर्म मिलता है। अधर्म किसे कहते हैं ? जब नाना रूपोमे उपासना करें तो अधर्म मिलता है। धर्मका मिलना, शुद्ध आत्माका मिलना सदा यह अलौकिक वैभव है, सुख है। मै अपनेमे शुद्ध आत्माकी भावना करके अपने मे सुखी होऊँ।

लोग कहते हैं कि ईश्वर पहले जब अकेला था, संसार न था। उसने सोचा कि मैं अकेला हूं। बहुत हो जाऊँ तो बहुत हो गए। जीव असख्य हो गए। उसमे समाधान मि-

लता है कि हम सब एक हैं, शुद्ध चैतन्यस्वरूप हैं। हम जब संकल्प करते हैं कि मैं अमुक हूं, मैं अमुक हो जाऊं तो अपनेको नाना रूप बनाता रहता है। नाना शरीरोमे जन्म मरण कर रहा है। जैसे १० तरहकी आग लगवी है, कोयलेकी आग, लकडीकी आग, कपडेकी आग, तृणोकी आग आदि आदि। उन सबमे आग है, मगर १० तरहकी नही। स्वरूप सब· का एक है। यह बताओ कि क्या आग गोल है, चौकोर है, टेढो टाढी है तिखूटी है, लम्बी लकडी यदि जल रही है तो क्या वह लम्बी है? आग कैसी होती है, बताओगे।

केवल गर्मीका नाम आग है, गोलका नाम आग नही, लम्बीका नाम आग नही। केवल मात्र गर्मीका नाम आग है, वह एकस्वरूप है। इसी तरह यह जीव नाना रूप हो रहा है। यह मनुष्य है, यह कीडा है, यह पेड है, यह पक्षी है, यह काला है, यह गोरा है, यह नाग है, यह देव है। इस जीवका स्वरूप उतना है क्या? नही वह तो एक है। क्या यह जीव लम्बा है, नही है। क्या वह दूसरे प्रकारका है? नही है। कैसा है वह जीव? एक चैतन्यशक्तिका नाम जीव है और वह चैतन्यशक्ति एक ही स्वरूप है। ऐसे एक स्वरूप चैतन्यस्वभावको जिन्होने उपयोगमे लिया वह ज्ञान है और जिसने नाना रूपोमे उपयोग लिया वह अज्ञान है। एक हमारा सहपाठी था। उसने यह प्रश्न किया था कि बोलो महाराज क्या बात है कि साधु जनोको यदि कोई नमस्कार नही करता तो वे गुस्सा भी होते हैं और दुःखी भी होते हैं। इसका कारण क्या है? हमने कहा कि तुम्ही बताओ कि इसका कारण क्या है? निर्णय निकला कि जो यह मानते हैं कि मै साधु हू, इसने नमस्कार मुझे नही किया तो गुस्सा आ जाता है। अरे मैं साधु नही हूं, मैं एक चैतन्य वस्तु हूँ। ऐसा उपयोग हो तो कषाय भर आवे मैं एक चैतन्यस्वरूप वस्तु हूँ। ऐसा अनुभव करे तो वह ज्ञान है। इसमे जैसे गृहस्थीने अनुभव किया कि मैं कुटुम्ब वाला हूँ और साधुने अनुभव किया कि मै साधु हूँ। अगर गृहस्थ अपनेको गृहस्थ अनुभव करे तो वह मिथ्यात्व है और अगर साधु अपनेको साधुका अनुभव करे तो वह भी मिथ्यात्व है।

तू ऐसा अनुभव कर कि मै शुद्ध चैतन्यमात्र हूँ, यदि ऐसा अनुभव नही करता है तो अज्ञान है। इसी प्रकार वह साधु भी अनुभव करे तो वह अज्ञान है। यह तो कर्मका उदय है कि इतना अनुभव कर चुकनेपर भी फिर आहार करना पड़ता, अपनेको गृहस्थ जीवन बिताना पडता है, गृहस्थ बनना पडता है, अपनेको महारथी बनाना पडता है क्यो ऐसा करना पडता है? यह सब कर्मोका उदय है। मैं आत्मा वास्तवमे एकस्वरूप हूँ। अत. अपनेको चित्स्वामी मात्र अनुभव करे तो वह शुद्ध होता है और यदि अपनेको नाना रूपोमे अनुभव करे तो वह अशुद्ध बन जाता है।

संयम्याक्षाणि मुक्त्वा च कल्पनां मोहसम्भवाम् ।
अन्तरात्मस्थिता क्षान्तः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-४३॥

यह जीव स्वभावसे ज्ञानघन एवं आनन्दमय है। इसका स्वरूप, इसका अस्तित्व इस ही प्रकारका रचा हुआ होता है कि ज्ञान और आनन्द ही इसका सर्वस्व है। पर इस स्वरूप की श्रद्धा न होनेके कारण किसी न किसी परपदार्थोंमे आनन्दकी आशा लगायेगा ही। फल यह होगा कि यह बाह्य पदार्थोंमे आशा लगाता है। बाह्य पदार्थोंका ज्ञान इन्द्रियोके निमित्त से हो रहा है। इसलिए इन्द्रियां उनके ज्ञानका कारण तो बनती हैं पर स्वभाव ही इन इन्द्रियोका ऐसा है कि किसी न किसी कुपथमे ले जानेमें सहायक होती हैं। फल यह होता है कि हम इनमे अपना हित मान लेते हैं। इन सब विपत्तियोका मूल इन्द्रियो द्वारा ज्ञात करना हो जाता है। जिन इन्द्रियोके द्वारा हम गर्व करते हैं उस गर्वके ही मूलमे हमारे पतन का कारण निहित है। जब आपको इन्द्रियज्ञान हो रहा है, चाहे इन्द्रियज्ञानसे देख रहे हो, चाहे सुन रहे हो, हर जगह इन्द्रियज्ञान चला करता है। यही इन्द्रियज्ञान हमको भूल देनेमे कारण बन गया। हम जानते है कि इन इन्द्रियोके द्वारा हम तो समझ रहे है, स्वाधीन हो रहे हैं, पर इनके कारण हम अपनेको भूल रहे हैं। आँखोसे बाहर देखा तो जो देखा वह सही लगा। भूल गया अपने आपको। कानोसे जो सुना वह सही लगा। अपने आपके परमार्थको भूल गया। इन इन्द्रियोंसे जो भोग किए वह सही लगे, हम अपने शुद्ध ज्ञानस्वरूपको भूल गए। इतनी बडी विपत्तिमे आ गए। इसी कारण ज्ञानी जीव अपनेको भूल गए। इतनी बड़ी विपत्तिमे आ गए। इसी कारण ज्ञानी जीव अपने कर्मविजयके मैदानमे कूदते हैं तो यह सबसे बडी इन्द्रियोका संयम करते हैं। जहां इन्द्रियोका संयम हुआ, इन इन्द्रियो द्वारा काम करना बन्द किया। इनकी ओर हम ज्यादा उत्सुक न रहे। इन्द्रियविषयोका नियंत्रण किया कि हमने अपने आपका अपने आपको दर्शन पाया। जब तक ये इन्द्रियां जीवित हैं, जिन्दा हैं तब तक हमको दुःख होना प्राकृतिक बात है। कुन्दकुन्द भगवानने तो प्रवचनसारमें जो लिखा, उसकी टीका करते हुए श्री अमृतचद जी सूरि कहते है—

'तेषां जीवदवस्थानि हतकरनीन्द्रियाणि तेषामुपाधिप्रत्ययं न दुःखं किन्तु स्वाभाविकमेव।'

जिन जीवोकी इन्द्रियां जिन्दा हैं, उनको दुःख होना प्राकृतिक बात है। उसमे उन्हे जो दुःख होता है उसमे उन्हे यह नही करना चाहिए कि मुझको किसी उपाधिसे दुःख होता है। नही, जहां इन्द्रियोमे रत हुए वहां उनको दुःख होना स्वाभाविक ही है। हाथी पकड़े जाते हैं स्पर्शन इन्द्रियके वशीभूत होकर। मछलियां पकडी जाती हैं रसना इन्द्रियके वशीभूत

होकर। भंवरे मर जाते हैं तो घ्राणके वशीभूत होकर। पतिगा दीपकमे जल जाता है तो नेत्रइन्द्रियके वशीभूत होकर। हिरन, साँप पकड़े जाते हैं तो श्रोत्रइन्द्रियके वशीभूत होकर। यह इन्द्रियज्ञान जिसमे हम रस इत्यादि पाते रहते है बड़ा विसवादपूर्ण है। इनके वश होकर जीव अपने आपको भुलाए रखते हैं। इन इन्द्रियोका सयम करना ही धर्मकी शुरूआत है, चारित्रकी शुरूआत है। ये इन्द्रियां हैं, भीतर आत्मा है। यह आत्मा इन्द्रियज्ञानसे सुखका अनुभव करता है। पर यह आत्मा इन्द्रियज्ञानको छोडकर केवल अपने स्वरूप रसका स्वाद ले तो अत्यधिक सुखी हो जाय। ज्ञानी गृहस्थको भी गुजर करना पडता है, खाना पडता है किन्तु इस तरहसे जीव चलाकर भी अपने आत्मास्वरूपकी ओर दृष्टि रखता है।

मेरा स्वरूप केवल ज्ञानमात्र है। ज्योतिर्मय, ज्ञानस्वरूप बनना मेरा कार्य है। यह सब जानते हुए भी उपाधिवश करना पडता है। यह सब पर्यायके चक्कर है, परन्तु मेरा स्वरूप तो शुद्धज्ञानमय है। यदि ऐसा कोई रहे तो वह इन्द्रियज्ञानसे ढका है तो भी उसके सम्यक्त्व कहा जाता है। एकका भीतर झुककर भी बाहरका काम करना पडता है और एक भीतर न रहकर बाहर ही करनेमे आसक्त हो जाता है। दृष्टियां मुख्य दो हैं। एक सम्यक्त्व दृष्टि, दूसरी मिथ्यात्व दृष्टि। मनुष्य खाते तो सभी हैं। भोगते, पालते पोषते तो सभी हैं परन्तु एकका अतरमे झुकाव है। एकको करना पड रहा है। आंखोको अदरसे कुछ पता ही नही है। यह सब कुछ उत्तम मालूम देता है और आसक्त होकर इसका उपयोग करता है। इन दोनोमे इतना अंतर है कि ज्ञानी कर्मोंका संवर करता है और यह बाहर झुका हुआ अज्ञानी कर्मोंका आस्रव करता है। समझके अलावा जीवके पास कुछ नही है। सारा जोहर समझका है। समझके द्वारा यह जीव दु.खी हो जाता है और समझके द्वारा ही यह जीव सुखी हो जाता है। सारी स्थितियोमे समझ ही मूल है। समझके अलावा इसके अन्दर और कोई कारण नही है। यह आत्मा अपने सहजस्वरूपमे कैसा है? इसकी सच्ची समझ ही सबको सुखी कर देती है और अगर इसमे समझ नही है तो वह विपत्तियोमे ही पडा रहता है। यह चार दिनकी चांदनी कितने दिन तक रह सकती है। फिर विपत्तियां आवेंगी और फिर वही अधेरी रात आवेगी। यह भाव कब छूटेगा, इसका भी ठिकाना नही है। चलते फिरते ही कई गुजर जाते हैं। ऐसी घटनाएं अनेको दीखती है। प्रथम तो इस जीवका भी भरोसा नही है और यह भी कर लिया, भरोसा भी कर लिया तो कोई दिन तो जरूर आने वाला है जब हम यहां नहीं रहेंगे। जैसा परिणाममे आयेगा, जैसे तत्त्वमें आयेगा तैसे ही एकदम परिणमन हो जायगा, परिणमन मिल जायगा। ऐसा यह जगत्का चक्कर है। यहां इस इन्द्रियज्ञानमे एक विश्वास बनाया। यह सब मेरे सुखके साधन नही

है। मैं इन्द्रियोंको संयमित कर लूं और मोहसे उत्पन्न कल्पनाओंका त्याग कर लू। जैसे कोई जा रहा है और अपने साथमें खाना लिए जा रहा है, जब उसे भूख लगती है तुरंत डिब्बा निकाल लिया और खा लिया। वह बिल्कुल स्वाधीन है। वह भूखसे छटपटा नहीं सकेगा। उसे किसीसे पूछताछ नहीं करना पडेगा। जब कभी भूख लगी तुरन्त निकाल कर खा लिया।

इसी प्रकार जिस ज्ञानी पुरुषको अपने आत्माके सहजस्वरूपकी दृष्टि मिल गई है, वह किसी भी परिस्थितिमें हो, कैसे ही झगड़ोंके बीचमें हो, जब वह चाहे सारी बातोंको भूलकर अपने ज्ञानमात्र स्वरूपको लक्ष्यमें लेकर तुरंत सुखी हो सकता है। वह जानता है कि जगत्में परपदार्थोंसे विपत्तियां कहां क्या होती है ? जब हम इन असार पदार्थोंकी ओर झुकते हैं तो विपत्तियां है। जब हम बाह्यपदार्थोंकी ओर झुकेंगे तभी विपत्तियां आवेंगी। ये बाह्यपदार्थ मुझसे अत्यन्त भिन्न है। जैसे जगत्के सब जीव भिन्न हैं, ठीक उसी प्रकार पूरे तौरसे जिसे स्त्री, पुरुष, बच्चे मान रक्खा है वह जीव भी उनसे भिन्न है। रंच भी गुंजाइश नहीं है कि यह जीव भी मेरा होगा। बस कल्पनाएं बन गईं कि यह मेरा है और परिस्थितियां ऐसी बन गई है कि वह छोड नहीं सकती हैं। घरमें हो तो रहना है और जीव कहां है ? वहां तो काम करता है और यह समझ लेना तो ठीक मानता है। परन्तु यह अपने स्वरूप व कर्तव्यको नहीं देखता कि क्या करना चाहिए ? मैं तो केवल ज्ञानमात्र हूं और ज्ञानमात्र रहना चाहिए, ज्ञाताद्रष्टा रहना चाहिए। पहली अवस्थामें गल्तियां कर डाली थी। परकी ओर झुकनेका संस्कार दृढ कर डाला था। उसके फलमें यह व्याकुल हो रहा है। यह संस्कार भी ज्ञानकी दृढतासे छूटेंगे। जैसे रस्सीकी रगडसे पत्थरमें भी लकीर हो जाती है, इसी तरह मैं ज्ञानमात्र हूँ, ज्ञानस्वरूप हूं, अन्य रूप नहीं हूं। मैं मनुष्य नहीं हूँ, मैं धन सम्पत्ति वाला नहीं हूँ, मैं गृहस्थ नहीं हूँ। अंतरङ्गसे देखा जाय तो मैं जगमग देखनहार तत्त्व हूं। जो चाहता है वह अपूर्व, ज्ञानमात्र, आनन्दस्वरूप है। मैं ज्ञानमात्र हूं, इसी प्रकारकी भावनाके बलसे यह मोहरूप संस्कार सब दूर हो सकता है। फल तो करनेसे ही मिलता है। बातोंसे फल नहीं मिलता है। प्रयोगसे ही फल प्राप्त होता है। रोटी बना लिया, खा लिया, अपना पेट भर लिया, इसके बजाय बातोंसे नहीं रोटी बनती है और न पेट भरता है। हम काम शुरू करते हैं। इसी तरह मोक्षमार्गके लिए ऐसा उपयोग बनाते हैं कि मैं ज्ञानमात्र, सम्पूर्ण सबसे निराला, सबसे जुदा हूं। सबसे न्यारा खुश मान लिया। परके एक दो पदार्थोंसे अपनेको मिला हुआ तू चाहे मान ले चाहे हजारोंसे मिला हुआ मान ले, उसमें अन्तर नहीं पड़ता है। किसी एक जीवसे मोह करो या अनेक जीवोंसे मोह करो, व्यवहार तो एक ही

है। इसे ज्ञानबलसे हटाना यह तुम्हारा ही तो काम रहा। आँखके आगे एक कागज लग जाय तो सब जगह अन्धेरा रहता है। इसी तरह एक भी परपदार्थमे, एक भी जीवमे, एक भी अणुमे यदि अपनेको मिला लिया है, मान लिया है, उसे अपनी श्रद्धामे मान लिया है तो यह ठीक नही है। वहाँ भी अंधेरा ही अंधेरा है। यह बात तो तब समझमे आयेगी जब अपनेको सबसे निराला, केवल ज्ञानस्वरूप देखो। यह लिया दियासे धर्मका पालन नही है। जैसे स्त्रीके साथ, बच्चोके साथ पूजा कर रहे हैं तो वहाँ भी राग लगा रहे हैं। अरे यह पूजा नही कर रहे हैं, यह तो जगत्का मोह कर रहे हैं। अरे धर्मका पालन करनेके लिए जगत्में अपनेको सबसे निराला अनुभव करो, बच्चोको साथमे लेकर पूजा करनेमे राग हो रहा है। लडकोने अगर पूजा पाठ पढ लिया तो बडे खुश हो रहे हैं। अरे यह धर्म नही है। धर्मका पालन तब होगा जब अपने आपको जगत्मे निराला अनुभव करोगे। सकल्प तो यह किया कि मै अपनेको एकत्वस्वरूपका अनुभव करूँगा। जब यह पढते हैं कि—

अर्हन्पुराणपुरुषोत्तमपावनानि वस्तूनि नूनमखिलान्ययमेक एव।
अस्मिन् ज्वलद्विमल केवलबोधवह्नौ पुण्य समग्रमहमेकमनाजुहोमि॥

हे पुराण, हे पुरुषोत्तम, यह फल है, यह अक्षत है, यह पुष्प है, यह चमर है, ये अनेक पवित्र चीजें है, पर मै इसे कुछ नही देख रहा हू। हमे केवल एक दिख रहा है। यह सारी चीजे मुझे तो एक ही दिख रही हैं केवल शुद्ध ज्ञानस्वरूप। यहाँ कुछ नजर ही नही आता है। अभी किसीसे कुछ हो जाय, कोई गुजर जाय तो नाना जी बैठे हैं, फूफाजी बैठे हैं, मौसाजी बैठे हैं, मगर उसे कुछ नजर नही आ रहा है। वे मन बहलाते है कि गप्पें लगाना चाहिए, पर उसे कुछ दिखता नही। न मौसा दिखे, न बुआ दिखे, न सिनेमा दिखे। उसे केवल एक ही दिखता है जो गुजर गया है, उसमे ही केवल नजर है। इसी प्रकार इस पुजारीमे ज्ञानस्वरूपका इतना प्रेम है, उस सारे तत्त्वका इतना प्रेम है कि इसे थाली भी नजर नही आती। उसे लोग भी नजर नही आते हैं, प्रभुकी प्रतिमा ही केवल नजर आती है। उसे कुछ दिखता नही है। उसे केवल ज्ञानस्वरूप, ज्ञायकस्वरूप ही दिखता है। जैसे इष्टदेवको एक ही दिखता है, उसे १० रिश्तेदार नजर नही आ रहे हैं। वह केवल एकके ही गुण गाता है। उसपर ही आसक्त होता है और इतने आनन्द और शोकमे गद्गद् होकर आँसू बहा देता है। आनन्द आया गुणोकी दृष्टि करके, और शोक आया वियोगकी दृष्टि करके। यह पुजारी जिसको यह ज्ञानस्वरूप ही रुचा है, उस एक परको ही वह तन, मन, धन सब कुछ वार कर जाता है। वह सब कुछ उसके लिए है जो कहते हैं कि मैं केवल ज्ञानकी अग्नि मे समस्त द्रव्योको एक मन होकर स्वाहा करता हू, त्याग करता हू। इतनेको ही जो यह

द्रव्य रखा है, यह तो मेरे दिल लगानेका साधन है। वह पुजारी तो उन समस्त सम्पदाओंको त्याग देता है, जो व्यवहारमे उसके है। वह केवल अपनेको एकाकी निरखता है। समस्त वैभवको त्याग देता है। सोना, चाँदी तथा अन्य सम्पदाएँ सब कुछ त्यागनेकी बात कह रहा है। कोई मानो भगवानका वकील पूछे कि उनको त्यागनेकी कौनसी बडी चीज है ? पुद्गल द्रव्य हैं, अत्यन्त भिन्न है तो आगे सुनो—जिस पुण्यके उदयसे वह प्राप्त है उसको भी त्यागता हू, पुण्य कर्म है उसको भी त्यागता हू। अब पुनः प्रश्न हो कि पुण्यकर्म भी तो अन्य द्रव्य हैं। केवल बातें करता है कि मैं पुण्यको भी त्यागता हूं। तो सुनो वे पुण्यकर्म भी किस भावसे बनते है, जैसे भक्तिका भाव है, उसको भी मैं त्यागता हू। जब निज शुभ भावका भी सन्यास ले लिया तो सारा वैभव कहाँ रहेगा, वह सब छूट जायगा। शुद्धभक्ति यह है। जिस भक्तिमे भगवानको तू तू मैं मैं हो जाती है, जब भगवानका स्वरूप ही दृष्टिमे रह गया है तो भगवानको भी कहते हैं कि मैं उनकी भक्तिको ही त्यागता हूं और मैं शुद्धदृष्टि भक्ति रखता हूँ, सब विकल्पोको त्यागता हू, ऐसी शुद्ध दृष्टि करते हुए पुजारी केवल एक तत्त्वको निरख रहा है। ऐसा विकल्प किए हुए पुजारी पूजामे खडा है।

केवल एक शुद्ध ज्ञानस्वरूप ही नजरमे आना चाहिए था। आँख खोलकर भगवानको देखो तो स्पष्ट नही दिखाई पडते हैं और यदि आँख मूँदकर देखो तो स्पष्ट दिखाई पडते है। ये इन्द्रियाँ इस इन्द्रियज्ञानको इतना दबा देती हैं कि मैं अपनी समझमे नही आता हू। इस इन्द्रियज्ञान का मोह छोड, यह इन्द्रियज्ञान पद है। कुछ ज्ञान भी नही है। मुझे इस ज्ञानकी जरूरत भी नही है। मैं हू और परिणमता हूं। इसके आगे मेरेमे कुछ काम होता ही नही है। मैं हूं और परिणमते चला जाता हू। ऐसे शुद्ध निजस्वरूपकी दृष्टि करके जो अपनी अनर आत्मामे दर्शन होता है वह यही अपने आप सहजस्वरूपमे आनंदमग्न हो जाता है। यह सब धोखेकी मायाके लिए है। इन्द्रियोकी माया ही असत्य ही नजर आता है, पर्याय ही नजर आता है। ऐसा पर्याय जो जाननेमे आता है वह सब असत्य है। सत्य तो वह है जो इन्द्रियज्ञानके परे है। यह सब कुछ मोहकी नीदमे स्वप्नसा हो रहा है। मैं इसको छोड़ कर अपनेमे अपने आप स्वय सुखी होऊ।

भावनाप्रभवः क्लेशो भावनातः शिवं सुखम्।
भावयेऽतः शिवं स्व शं स्यां स्वस्मै स्वे सुखीस्वयम् ॥१—४४॥

क्लेश जितने भी होते है वे सब भावनासे होते हैं। जैसी भावना हुई उसीके अनुसार सुख दु.ख भी होते है और जीव तो केवल अपनी भावना ही कर पाता है। बाह्यपदार्थों को परिग्रह कर ले, यह जीवके बसकी बात नही है। जीवके बसकी बात केवल परिणाम कर

लेना है। क्योकि वह जितना स्वरूपमय है, उतने ही स्वरूपमे रह सकता है। स्वरूपसे बाहर किसी भी पदार्थका अस्तित्व नही है। आध्यात्मिक मार्गमे इसीको मिथ्यात्व कहते हैं कि परिणाममे द्रव्यकी बुद्धि कर ले, असारमे सार बुद्धि कर ले, अध्रुवमे ध्रुव बुद्धि कर ले, इसीको ही मिथ्यात्व कहते हैं। पदार्थ जितने भी हैं वे सब स्वतः ही हैं। उनको किसीने बनाया है नही। जो भी पदार्थ बने होते है वे पदार्थ नही हैं किन्तु पदार्थोंकी पर्यायें हैं। सो पर्याय भी किसी दूसरेके द्वारा बनाए हुए नही होते हैं, पर अनुकूल परपदार्थ निमित्त पाकर परिणमन वाले पदार्थ परिणमन कर लेते हैं। कोई दूसरे पदार्थ उसको परिणमाते नही हैं। उनका किसी प्रकार कोई दूसरा कर्ता नही है। यह तो सब पदार्थोंका स्वभाव है कि वह है और निरंतर परिणमते रहते हैं। इसके अलावा उनका कुछ प्रयोजन नही है। किसी अन्यसे किसी अन्यका संबंध नहीं है। हैं और परिणमते रहते हैं। यही उनका काम है। पुद्गलमे कितने ही पदार्थोंका समूह बना रहे, वहाँ कोई झगडा नही होता है, क्योकि सब अपने अपने काममे लगे रहते हैं, अर्थात् स्वय परिणमते रहते हैं। पर जीव ही झगडा करता रहता है क्योकि वह कल्पनाएं करता, भावनाए करता, उल्टी सीधी बातें मानता रहता है। पदार्थ कैसा है, मानता और तरहका है। इतनी बात होनेसे जीवके साथ संकल्प लगा और किसीके साथ सकल्प न लगा। सब हैं और परिणमते हैं। एक लकड़ी है, एक और जल गई। जल जानेमे उसमे कोई सकट नही। राख हो गई तो यहाँ भी परिणमन है। द्रव्य वहीका वही है। उन्होने ही पर्यायमे यह अवस्था रख ली, पर बबाल तो इस जीव मे आ गया है। यह यो करता है तो करने दो। वह एक पदार्थ है, अपनी योग्यतासे परिणम रहा है। हमारा इसमे क्या अंश है? ज्ञाता द्रष्टा रहे, परतु जो जीव ज्ञाता द्रष्टा नही रह सकता है उसके बडे विकल्प सकल्प होते रहते हैं। यह ऐसा ही होना चाहिये, ऐसा विकृत स्वभाव बना लेता है तो दु:ख होता है। अभी किसी संगीतमे या नृत्यमे कोई कमी जानी जाय तो खेद हो जाय। अरे कैसी तान कर दी, कैसा तबला बजा दिया। क्यो दुःख होता है, क्योकि उनका राग है, कल्पना है।

परिवारमें, घरमे निरतर विवाद ही बना रहता है। झगडा हुआ, वह भी तो विवाद है, प्रेम है वह भी तो विवाद है। विसम्वाद दोनोमें है, मिल-जुल कर रहे, प्रेमपूर्वक रहे, वह भी तो विवाद है। झगडा कर रहे, प्रेम कर रहे, वह भी तो विसंवाद है। अपने स्वरूप से अलग होकर बाह्यमे किसीमे लगना, वह साराका सारा विसवाद है। अच्छी तरह रह लिया, कब तक रह लिया, अवधि तो है, सीमा तो है। अपने स्वरूपसे अलग होकर कौनसा सुख पाया, कौनसी शांति पायी? यह जीव अपनी भावनाएँ बनाता है और उन्हीके अनुसार

सुख, दुःख प्राप्त करता है। भावना ही संसारको नष्ट करने वाली है और भावना ही ससार की वृद्धि करने वाली है। जहाँ पर्यायमे आत्मबुद्धि किया वहाँ संसार बढने लगा जहाँ पर्याय को पर्याय मानकर, अध्रुव जानकर उससे हटकर संत् निज चैतन्य स्वरूपमे आए वहाँ ससार का नाश होने लगता है। अर्थात् अपनी गतियोंका विनाश होने ल ता है, प्रत्येक पदार्थ अनन्त ज्ञान वाले है, अनन्त शक्ति वाले हैं। जैसे यह आत्मा है इसमे ज्ञान, दर्शन चारित्र अनेक गुण हैं और वह अपनी अनंत शक्तियोसे भरा हुआ है। यह अपने शाश्वत गुणोमे रहता है, सामायिक पर्यायमे रहता है, व्यक्तिगत रूपमे रहता है। उनका कोई न कोई प्रगट रूप बना रहता है। जो प्रगट रूप बना रहता है उसको ही सर्वस्व मान लेना सो ही मिथ्यात्व है। जैसे मनुष्य पर्याय यहां प्रगट रूप है, कषायादिक यहाँ प्रगट रूप है। इसको मान लेते है कि यह मेरा है, इसको स्वीकार करना ही मिथ्यात्व है। तीन चीजें हुआ करती हैं— द्रव्य, गुण और पर्याय। जितना भी शास्त्रोंमे ज्ञान भरा है वह आपका तब सफल है, यदि पर्याय, गुण और द्रव्यकी बात ठीक समझमे आए। यदि वह समझमे नही आए और सब कुछ ज्ञान बढने लगे तो वह निष्फल है। सो द्रव्य, गुण पर्यायका निर्णय नही है तो फिर सारा जानना बेकार है।

द्रव्य, गुण, पर्याय क्या कहलाते हैं? द्रव्य तो वह चीज है जो अनादिसे है और अनन्त काल तक है। वह एक वस्तु है और द्रव्यकी जो नाना शक्तियाँ हैं, जो शक्तियाँ द्रव्य मे तन्मय हैं, अनादिसे अनन्त काल तक है, वह गुण कहलाती हैं। जो उत्पादन व्यय हो रहा है, जो बन रहा है, बिगड रहा है, यह सब पर्याय है। जगत्के जीवोमे प्राण पर्यायको सर्वस्व माननेका तो ज्ञान आ गया, किन्तु जिसकी पर्याय है उस ध्रुव पदार्थकी ओर दृष्टिपात भी नही किया। आँखोसे जो देखा है वह सब पर्याय है। इन्द्रियोसे जो ज्ञान आया वह सब पर्याय है। मोटी पहिचान यह है कि जो नष्ट हो जाय उसे पर्याय कहते हैं। जिसका नाश हो जाता है उसको पर्याय कहते हैं। न नाश होने वाली चीजोमे किसी बिरले जीवकी रुचि है और नाश होने वाली चीजोमे यहाँ सबका बखेडा लग रहा है। जो नष्ट हो उसे पर्याय कहते है। यह जो काला, पीला, नीला, लाल, सफेद दिखता है वह नष्ट हो जाता है। यह सुगध, दुर्गन्ध आदि जो प्रतीत होते है वे सब नष्ट हो जाते है। रूखा, चिकना, कडा, नर्म, ठडा, गर्म इत्यादि सब नष्ट हो जाते हैं। खट्टा, मीठा, कडुवा आदि ये पर्यायें भी नष्ट हो जाते है। गुण वह कहलाता है कि जिसकी ये पर्यायें चलती हैं। आपमे काला, पीला, नीला ये रंग बदलते है, पर रग जो शक्ति है, रूप जो शक्ति है, वह शुरूसे अंत तक एक है। उसको बदलनेकी बात नही है। परन्तु रूपशक्तिको ज्ञानसे ही जाना जाता है, रूप पर्यायको सब ही देखते हैं।

इसी तरह जो कषाय है या कषायरहित परिणमन हैं ये तो समझमे आ जाते हैं पर यह जो इन पर्यायोका स्रोत रूप है, जिसे चारित्र कहते हैं, इतना यह किसकी समझमे आता है ? चौकी जान लिया, भीत जान लिया, अमुकको जान लिया, यह सब समझमे आता है, परन्तु यह परिणमन जिस शक्तिका हो रहा है वह किसकी समझमे आता है ? पर्यायमे तो सारा मोह होता है, द्रव्यकी ओर दृष्टिपात नही है। पर्यायमे बुद्धि करके अनिष्ट बुद्धि इष्ट करता है परन्तु द्रव्योकी ओर दृष्टि भी नही करता है। यह मेरा भला है यह मेरा बुरा है। यह होता तो रहता है बडा सस्ता, क्योकि झट कह देते हैं, मान लेते है, परको अपना मान लेना, यह बडा आसान काम बन रहा है। झट अपना मान लिया, झट अपना सोच लिया, परन्तु यह बहुत महगा पडता है। इसके मीठे रसका कितना भयकर परिणाम होता है कि ८४ लाख योनियोमे भ्रमण होना, चारो गतियोमे चक्कर लगानेका फल सामने होता है। इतनी बातका ही यह भयकर फल है कि पर सत्को यह कहना कि यह मेरा है। इस बीजका इतना भारी यह ससार वृक्ष बन गया। ये ५ इन्द्रिय, ६ काय, ३ वेद, २ कषाय, ये क्या है ? यह संसारवृक्ष ही तो यह इतने भारी वृक्षका बीज केवल मिथ्यात्व है। मोहमें बहे जाते हैं। परवस्तुओंमे ममता लगाकर उन्हे अपना सर्वस्व समझकर, उनको ही अपना जानकर अपना जीवन गुजारते जाते है, पर इस बीजका कितना बडा फल है, तो यह सारे ससारमे भटकना ही फल है।

यह क्लेश सारे भावनामे ही बने है और यह भावनासे ही मिटेंगे। यह सारे उपद्रव केवल भाव करनेसे ही है और भावसे ही उपद्रव नष्ट होगे। जैसे लोकमे किसीको बुरा कह देना, गाली दे देना, कितना आसान काम है। झट जिसे चाहे जैसा चाहे बोल दिया, पर इसके फलमे दूसरेकी लाठियाँ लगी, मार पीट हुई और बाँधे भी जावें, यह सारी विपदाए कितनी बडी हो जाती है ? किसी किसीकी तो जान भी ले ली जाती है। इतनी बडी बात क्यो हो गई ? कहा कि मैंने उसको उल्लू कह दिया था। इतनी बडी बात कहनेका झगडा इतना बडा बन गया। न कहते, न झगडा बनता। यह सारा ससार जितना बहेगा उतनी ही विपत्तियाँ आयेंगी। ये विपत्तियाँ क्यो आ गयी ? भाव झूठा आ गया। ममताकी भावना आ गयी। ऐसे ही यह सारा ससार बन गया। हमारा काम क्या है ? हम अपना सही काम सोचें।

किसी नगरका एक राजा गुजर गया था तो मंत्रीने यह सोचा कि अब वह राजा बनाया जाय, जो कल सुबह अपनेको इस फाटकमे सोते हुए पडा मिले। ऐसा सब मन्त्रियोने इस सम्बंधमे निर्णय किया। सुबह फाटक खोला गया तो एक सन्न्यासी लगोटी पहिने हुए

मिल गया। मंत्रियोंने कहा कि चलो हम तुम्हें राजा बनावेंगे। उसने सुन लिया कि हमे राजा बनाया जायगा। सुना क्या मानो वज्रपात हो गया। संन्यासी ने कहा कि हम राजा नही बनेंगे। मंत्रियोंने कहा कि तुम्हे राजा बनना ही पडेगा। सन्यासीको पकडकर ले गए। सन्यासी ने कहा कि देखो राजा बन जावेंगे, मगर एक शर्त है कि हम राजपाटका काम नही करेंगे। हम तो केवल एक जगह पर बैठे रहेंगे। मन्त्रियोंने कहा कि मजूर है। मन्त्रियोंने संन्यासीकी लगोटीको उतार दिया और सारे कपडे जो राजाके होते है उनको पहना दिये। लगोटी को एक काठकी पेटीमे संन्यासी ने रख दिया। दो, चार वर्ष तक काम चलता रहा। इसके बाद किसी राजाने चढाई कर दी। मंत्री लोग घबडाकर एकदम राजाके पास आ गए पूछा, राजाजी क्या करना चाहिए? शत्रुओ ने चढाई कर दी है। राजा कहता है कि सोच कर बताता हूं। कहा, अच्छा हमारी काठकी पेटी उठाओ। पेटीसे लगोटा निकालो। राजसी कपडोको सन्यासीने उतार दिया और लगोटी पहन लिया। हम राम रामको यह करना चाहिए। जिसको जो कुछ करना हो वह जानें। सर्वत्र अपने अपने को सोचो कि हम राम को क्या करना चाहिए? सर्वत्र दृष्टि डाल लो, सर्वत्र घूम लो। सर्वत्र घूमनेके बाद यह सार मिलेगा केवल आत्म अनुभव एक अपना केवल आत्म अनुभव है, दूसरा अपना नही ह। जैसे मैं सहजस्वरूप मात्र आत्मा हू वैसे ही अपने को अनुभव करो बस इतना काम है सार भूत और इसके अलावा जितनी भी हमारी चेष्टाएं हैं, राग, द्वेष, अधर्म, मोह, पाप इत्यादि की है वे सब हमारे लिए विपत्ति है। सम्पदा केवल एक मात्र अनुभव ही है। धन्य हैं वे जीव जिन्होने मनुष्य भव पाकर यह काम किया। जो सार बनकर असारसे दूर हुए। जो चैतन्य सामान्य होकर बड़े बडे योगी ज्ञानी, बलधारियोके उपासनीय बनें। जब तक यह जीव अपने को विशेष विशेष मानता है तब तक यह संसारमे भटकता है और जब केवल अपनेको चैतन्यस्वरूप मानता है तो इन संसारी बधनोसे मुक्ति प्राप्त कर लेता है। जैसी उसमे सब विशेषताएं हैं वह उनको लादे फिरता है, बताता फिरता है। ज्ञानीकी दृष्टिमे, योगीकी दृष्टिमे उसका कोई सम्मान नही और जो अपनेको सबमे घुला मिला एक ही बताता है, उसकी दुनियांमे इज्जत है और ज्ञानीकी दृष्टिसे वे अन्तरमे उठते है और उठते ही चले जाते है। हम अपने स्वरूपको न समझकर यह समझ जाते हैं कि हम उठ रहे है किन्तु हमारे उतने ही कर्म उठते चले जाते है। धर्मका पालन यही है।

कहते है ना कि प्रभु कैसे कहां बाहर है? जब चाहो तब अपने प्रभुको गर्दन झुकाकर देख लो। प्रभु बाहर नही है। जहां यह गर्दन झुकाई, जहां दृष्टि गई तहां अपने प्रभुके दर्शन कर लो। जहांपर बैठे हो उसका भी ध्यान न हो कि मैं कहांपर बैठा हू? चाहे अनेक पदार्थों

के बीचमे बैठा हू तो भी मुझे यह ध्यान न हो कि मैं कहांपर बैठा हूं ? केवल अपने सामान्य स्वरूपका ही अनुभव अपनेमे पा रहा हो, ऐसी स्थितिको आत्मानुभव कहते है । यह सारा जगत् पर होता है । इसमे ऐसी छटनी करना कि यह मेरा है, हित है, उत्तम है, इष्ट है, ऐसे इन पदार्थोंमे छटनी करना अज्ञान है । मैं तो मै हू, मै गृहस्थी हू और सारे काम देखने पड़ते है । कमाना, पालन-पोषण करना, यह बात तो किन्ही औरके लिए होगी । इनसे मेरा क्या मतलब है ? ऐसी बात न सोचो ।

आत्मा जब विषय कषायमे थक जाती है तो इसको शांति देने वाला, यथार्थ जानने वाला यह ज्ञान ही है । बड़े बड़े वैभव उन्होंने पाए । बड़ा कठिन गोरखधन्धा है । दो बातें साथ-साथ नहीं हो पाती है—संसारका मजा लूटना और मोक्षमार्ग पा जाना । चित्त तो यह चाहता होगा कि यहांका मजा भी मिल जाय, और मोक्ष भी मिल जाय तो यह हो नही सकता है । जैसे एक सूई दोनो तरफमे नही सी सकती है, दो कपड़ोको एक साथ नही सी सकती है या कोई मुसाफिर क्या एक साथ दो दिशाओमे जा सकता है ? नही जा सकता है । जैसे कलकत्ता जाना है, एक ही साथ जयपुर भी जाना है तो क्या दोनो जगह एक साथ जा सकते हैं ? नही । इसी प्रकार यह दोनों काम भी एक साथ नही हो सकते हैं । विषय-भोग और मोक्षका मिल जाना । यह लौकिक आनन्द बना रहे और मोक्ष भी मिल जाय, यह नही हो सकता है । इन दोनोमे एक करना चाहिए । अरे एकको तो देख लियो, विषयभोगो को तो देख लिया । अब तो जागो और मोक्षका मार्ग देखो । यदि मोक्षका मार्ग देखोगे तो धर्ममे लग जाओगे । और धर्म ही ऐसा है जिसमे शांति मिल सकती है और कोई दूसरा उपाय नही है । यदि कोई भी जीवन बनाओ तो सही बनाओ । धर्ममे तो सबका जीवन लग रहा है परन्तु यह बात कि कोई किसी तरहका धर्म करता है और कोई किसी तरहका धर्म करता है । एक भी मनुष्य ऐसा नही मिलता, जो कुछ न कुछ धर्म न करता हो, निरन्तर दूसरोको सताता हो, ऐसा कोई नही हो सकता है । जहाँ यह जाना कि मैं ज्ञानस्वरूप हू, शुद्ध आत्मा हू वहाँ सब दुःख दूर हैं और जहाँ पर्यायमे बुद्धि की वहाँ क्लेश ही आ जाता है ।

देखा होगा कि कछुवा वगैरा पानीमे चलते फिरते रहते है । कभी कभी कछुवा अपना सिर ऊपर पानीमे करके चलता है । कोई चिड़िया आए तो झट कछुवा पानीमे चला जावेगा । इसी प्रकार हम अपनेसे बाहर उपयोग करके चीजोको देख रहे है । अरे अपना उपयोग अपनेमे लगा लो, अपनेमे डूब जाओ, जो सारी विपत्तियाँ है, दूर हो जावेंगी । जितने उपद्रव हैं सब समाप्त हो जावेंगे । अंतरमे अपनेको केवल देखो तो केवल ज्ञान ही सारा जौहर है । विपत्तियाँ हैं, स्वप्न देखने वाले जैसे घबड़ा रहे हैं । जब जग जाते है तब दुःख मिट जाता

है । अरे यहाँ कहाँसे रहे ? मैं आरामसे तो हूं, मेरे क्लेश मिट गए हैं । इसी तरह मोहके क्लेश है । अन्तरमे देखनेमें मैं ज्ञानमात्र हू, ज्ञानमात्र वस्तु हू । यहां किसीका कुछ लगा ही नही है । जो मौजमे बैठे हैं तो वहाँ क्लेश हो जाता है । मगर जिन्हें यह कला याद है उन्हें ज्ञानी कहते हैं, और अगर यह कला नही याद है तो उसे मोही कहते है ।

सारे देहिषु सर्वेषु व्यक्ताव्यक्ते बुधाज्ञयोः ।
ज्ञानमात्रे चिर तिष्ठन् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-४५॥

इस जगत्मे अनन्तानन्त जीव है और भिन्न-भिन्न प्रकारकी पर्यायोमे हैं । देखो यहाँ ये कितने प्रकारके जीव हैं ?-कोई पृथ्वी है, कोई अग्नि है, कोई जल है, कोई वायु है, कोई वनस्पति है, कोई लता वगैरा, कोई चींटी वगैरा तीन इन्द्रियके जीव । भौंरा, ततैया वगैरा चार इन्द्रिय जीव । गाय, बैल, भैंस आदि पचइन्द्रिय जीव होते है । मनुष्य पचइन्द्रियमे होते हैं, नारकी देव भी पंचेन्द्रिय ही होते है और भेदसे देखो तो असख्य प्रकारके जीव है । इन जीवोंमे सार बात कितनी तुमने देखी ? क्या वह सब जो है वह पर्याय है । यही सब सार है । मनुष्यरूप वगैरा जो है वह सब क्या सारभूत है ? इन सब प्राणियोमे सारभूत क्या है, बतलाइए ? इन सारे तत्त्वोंको क्या अज्ञानी बता सकेंगे ? वे अपने असारको ही सार समझ रहे है । तीसरे लोग सारकी चीजको क्या बतावेंगे ? पर ज्ञानी जीवको सारकी बात एकदम स्पष्ट है । वह सारकी चीज क्या है ? जैसे ये मनुष्य दिख रहे हैं, कोई बच्चे है, कोई जवान हैं, कोई बूढे हैं, कोई स्त्री हैं, कोई पुरुष हैं । ये सब जो नाना प्रकारके मनुष्य दिख रहे हैं, इन मनुष्योमे एक सारकी चीज क्या है ? सदा रहने वाली चीज क्या है ? वह है मनुष्यपना, वह है इंसानियत । अच्छा बतलाओ कि क्या किसीने ऐसा मनुष्य देखा है, जो जन्मसे लेकर वृद्धावस्था तक एक रूप रहता है, वह मनुष्य किसीने देखा है ? देखनेमे कोई जवान आ रहा है, कोई बूढा आ रहा है पर असलमे मनुष्य तो कोई भी आंखोसे देखनेमे नही आ रहा है । मनुष्य तो ज्ञानसे देखनेमे आता है । ऐसी दृष्टि लगानेसे जो जन्मसे लेकर वृद्धावस्था तक रहा वह मनुष्य है । जो मनुष्य एक है वही बच्चा हुआ, वही बड़ा बना, वही जवान बना और वही बूढ़ा हुआ परंतु मनुष्य वही एक है । क्या उसे किसी ने देखा है, जो एक जन्मसे लेकर वृद्धावस्था तक एकरूप रहा हो । क्या उसे किसी ने देखा है । एक रूप रहता है हो ऐसा क्या दिखाई देता है ? कोई ब्राह्मण है, कोई क्षत्रिय है, कोई वैश्य है, कोई शूद्र है, कोई धनी है, कोई गरीब है । ये सब मनुष्य एक दृष्टिसे बराबर हैं । जैसे कहे कि एक मनुष्य ले आवो । वह बूढा ले आवे तो कुछ नही कह सकता है कि सब एक है । तुम इसे क्यो लाये ? क्योंकि वह भी मनुष्य है । धनी या रंक ले आये तो भी नही कह सकते कि इसे क्यो ले

ले आए ? चाहे धनी हो चाहे गरीब हो सब एक समान हैं। मनुष्य मनुष्यकी अपेक्षा सब समान हैं। पर लौकिक प्रयोजन होने पर मनुष्य समान नही दीखते हैं। यद्यपि काम पडता है, व्यवहार होता है फिर भी किसी ने मनुष्यको समान नही देखा है। कोई शृङ्गार करता है, कोई ऐसा शृङ्गार करता है, कोई वैसा शृङ्गार करता है, ऐसे तो दीख रहे हैं पर मनुष्य नही दीख रहे हैं। सब मनुष्योमे रहने वाला जो एक मनुष्यपना है वह सबमे एक रूप है। चाहे आजका पैदा हुआ बालक हो वह भी मनुष्य है। चाहे ५०, ६० वर्षका जवान हो वह भी मनुष्य है। मनुष्य सब एक है। इसी प्रकार ध्रुवतत्त्वकी दृष्टिसे सब जीवो को निगाह दौडाकर देखो, सब जीव किसी दृष्टिके एकसे हैं या नही। कोई कीडा है, कोई मकौडा है, कोई पेड है, कोई छातीसे सरकता है, कोई पखोसे उडता है, कोई शरीरसे ज्यादा बलका काम करता है। अरे यह सब जीव किसी दृष्टिसे एकसे बराबर हैं या नही ? वह तत्त्व सबको नजर नही आ सकता, अज्ञानीको नजर नही आ सकता है। ज्ञानीकी दृष्टि मे आ सकता है। वह तत्त्व जिसकी दृष्टिसे सब जीव एक समान हो। जैसे हम हैं वैसे सब जीव है। इसका पता भी लग जाता सबसे बडा ज्ञान है। यही धर्मका पालन है। यही मोक्ष मार्गमे चलना है। यह सब है।

हम अपने ज्ञानके लिए, धर्मात्मा होनेके लिए बडा कष्ट सहते है, तप करते है, खाना पीना छोडते हैं, भक्ति करते है, पूजा करते हैं, सुबह नहाते हैं सब कुछ करते हैं।

मगर क्रोध, माया, लोभ इत्यादि कितने कम हुए, बताओ। अरे धर्मका पालन करने वालो, अपनेमे फर्क क्यो नही आया ? अधर्मोमे याने विषयकषायोमे तो वही परिस्थिति है। यह अधार्मिक जीवन क्यो है ? ज्यो का त्यो है। कर्मोंका श्रम करते बडा समय हो गया। धर्म नही किया था। अरे धर्म किया होता तो मोह, छल, अन्याय ये सारे कर्म हो जाते। धर्म नही किया, अब धर्म करना चाहते हो तो अब धर्मकी पार्टी शुरू करना चाहिए। पाटी कैसी है ? संसारके समस्त जीवोको एक समान नजरसे देखना। यह धर्मकी सीढ़ीकी पहली पाटी है। कुछ लोग कहते हैं कि यह बात तो कम समझमे आती है। हमने तो दस लक्षण पर्वके लिए बडे बड़े प्रोग्राम बना रक्खे हैं। ऐसी पूजा करेंगे, ऐसे शास्त्र करेंगे, ऐसी बिजली लगवायेंगे, और दो साडी नई खरीदकर रख लेंगे, गहने भी मांग-कर रख लिए थे धर्म करनेके लिए। दुकानका हिसाब भी ठीक-ठीक लगा लिया था, सब कुछ धर्म करनेके लिए कर लिया था। हम पहले ऐसी पूजा करेंगे, दूसरी सिफ्टमे ऐसी पूजा करेंगे, तीसरी सिफ्टमे ऐसी पूजा करेंगे, इस प्रकारकी भारी भारी तैयारियाँ कर रक्खी थी। वहाँ तो वह कहा जा रहा है कि सब जीव जिस तत्वकी दृष्टिसे एक समान है उस तत्त्वको

देखो। यही धर्मकी पहली पाटी है। प्रयोग करके देखो। विषयमे, कषायोंमें फर्क जरूर आयेगा। चाहे मैं ५० वर्षसे ही धर्म लगावमे हूं और फर्क न आया हो। कितने विषय कषाय हो पर धर्मका अन्तरमे पालन होनेसे उन विषय कषायोमे फर्क अवश्य आयेगा।

यह क्या कि सब प्राणी एक समान हैं, जैसे मां अपने बच्चोके दुर्गुण नही देखती है, बच्चेको बच्चा ही देखती है, दुर्गुणरहित देखती है। इसी प्रकार ज्ञानी जीवको इन समस्त जीवोके अवगुण नही नजर आते है। किन्तु एकस्वरूप नजर आता है, जिसकी दृष्टिमे सब जीव एक समान हैं। चाहे पेड़ हो, चाहे और कोई छोटा, बडा जीव हो सब एक समान है। सब चैतन्यस्वरूप, ज्ञानघन व आनन्दघन है। ये समस्त गुण समस्त प्राणियोमे व्यक्त हैं और यह स्वरूप सब प्राणियोमे सारभूत है। यह तत्त्व ज्ञानियोको तो व्यक्त है और अज्ञानियोको अव्यक्त है। अब उसी निगाहमे हम अपने आपमे भी चलें। मैं ज्ञानमात्र हूं, मैं अपने असली स्वरूपको देख रहा हू, साफ, शुद्ध जो कुछ मैं हू उसको लक्ष्यमे ले रहा हूं। जहाँ कोई अमीर भी नजर नही आता है, कोई रक भी नही मालूम पडता है, कोई तनासा खड़ा हो ऐसा भी नही मालूम पडता है। नजर केवल आता है शुद्धचैतन्यस्वरूप, जहाँ मै अन्य सबको भूल जाता हू। ऐसा मैं यह ज्ञानमात्र हूँ। जैसा कहते हैं ना कि जो गरजते हैं वह बरसते नही और जो बरसनहार है वे गरजते नही। इसी प्रकार जब मन कायकी चेष्टा है तो अनुभव नही और जब अनुभव है तो चेष्टाएं नही है। सत्य तो यह है कि मैं अपनेको सबसे निराला, ज्ञानमात्र देख लू ऐसा यदि कर पाया तो मनुष्य होना सार्थक है, और यदि न कर पाया तो मनुष्य होना निरर्थक है। प्रेम कर लिया, अपना मान जाओ, दुःखी हो जाओ और कभी दुःखो और कभी सुखी, जीवका यह जीवन तो निरर्थक रहेगा और एक सबसे निराला केवल ज्ञानमात्र अपनेको निरख लो तो सब कुछ पा लिया। तीन लोकका सारा वैभव अहितकर है, असार है, क्लेशका कारण है। कोई सोचे कि मेरे पास खूब धन है तो खूब खाते हैं, उपकार भी करते हैं, इज्जत भी बढती है, दश आदमी आते जाते है, दश आदमी पूछते है, सुख हुआ या नही। अरे सुख कैसे हुआ? भीतर तो अहकार वह तृष्णासे पिस कर मरे जा रहे है। देखने वाले बेचारे क्या जानें? वह तो जानते हैं कि यह सुखी है, पर वह सुखी नही है। वह दस आदमियोके बीच अपनी शक्ल सुखी सी बना लेता है। कोई नही जान पाता कि वह दु:खी है। वह भीतरसे अहंकार भरे हुए है। पर्याय, मोह और मूढ़ता इत्यादिकी चक्कीमे वह पिस पिस कर बर्बाद होता चला जा रहा है। जगत्के सब जीव दु:खी है, जगत्के सभी साधन दु:ख है। धन है वह भी दुःखका कारण है, परिवार है, चार आदमियोमे इज्जत है, वह भी सुखका कारण नही है। वह सब भी दुःखके कारण है

तो फिर सुखका कारण क्या है ? वह तो बतलावो । सुखका कारण धर्म है । और वह धर्म इसमे है कि जहाँ स्वरूपमे सब जीव-एक समान हैं, इस बातको अपने लक्ष्यमे लिया इसका नाम है धर्म करना । अगर धर्म करना धनके हाथमे है तो गरीब बेचारे मोक्ष ही न जा सकें । अथवा जो साधु मोक्ष गए है उनका रास्ता ही बन्द हो जाय । धर्म है एक शुद्धनिगाह, धर्म है निज आत्मदृष्टि । परकी दृष्टिमे, परकी निगाहमे धर्म ही नही । समस्त प्राणियोमे सार भूत चीज क्या है ? इस जीवन भावमे चैतन्यस्वरूप, ज्ञानशक्ति है, इस ज्ञानशक्तिको जिसने लक्ष्यमे लिया वह जीव ज्ञानी है, मोक्षमार्गी है, उसका जन्म सफल है । अपने आपको अधिक से अधिक ऐसा अनुभव करो कि मैं ज्ञानमात्र हू, सबसे निराला हू । कोई मेरी सहायता कर दे, ऐसा कोई नही है । कोई मेरी शरण हो जायगा ऐसा दुनियामे कोई नही है । मैं ही अगर सत्य हू, पुण्यवान् हू, योग्य उपादान वाला हू, तो मैं ही शरण रहूगा और दूसरे लोग भी मेरे सहारे बनेंगे । यदि अपने पल्लेमे कुछ नही है तो किसी भी घरानेमे पैदा हो, उसका सभी तिरस्कार कर देगे । और यदि पल्ले कुछ है, पुण्य है, धर्म सस्कार है तो उसको सब करनेको तैयार हो जावेंगे । यह सब निज परिणाम वैभवके संबधकी महिमा है, दूसरा कोई साथी नही है । अपनी आत्माके शुद्धस्वरूपका ज्ञान करो, शुद्धस्वरूपका ही विश्वास करो और उस शुद्धस्वरूप पर ही निगाह करो । सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान व सम्यक्चारित्रका पालन हो, तब हमारा भला होगा, उत्थान होगा । पर इस आत्मधर्मका पालन किए बिना इस अपने आपको विश्वास किए बिना, रुचि किए बिना मेरी गति नही होगी, मेरा उत्थान नही होगा । हम किसी भी प्राणीका यह विश्वास न करें कि मेरी रक्षा करने वाला अमुक है । अरे आपकी रक्षा करने वाला आपका धर्म है जिसके प्रसादसे ऐसा पावन अवसर बना, मनुष्य बना, अच्छे समागममे आया । अगर चीटी चीटा होता है, कीडे मकोडे होता तो क्या होता ? अरे हम ठीक हैं तो हमारा सब ठीक है और अगर हम ठीक नही हैं तो हमारा कोई ठिकाना नही है । धर्मकी पाटी यहाँसे शुरू होती है । सब जीवोको एक समान जिस निगाहसे देखा जा सकता है उस निगाहको बनाओ । सब एक एक चीज हैं, सब एक एक पदार्थ है । जो दीखता है आँखसे वह न दीखे तो सच्चा ज्ञान है ।

देखो भैया जब बहिन बेटी घरसे ससुराल जाती हैं तो पिताका, भाईका भेंट करती है । भेंट करती भी किस तरह हैं कि छातीसे लगाकर, रोकर, प्रीति दिखाकर रोया करती हैं । अब बताओ जो आंखोसे शकल, सूरत, रूप रंग दिखता है, क्या बाप व भाई के ज्ञानमे दिख रहा है ? नही । उस पिताके ज्ञानमे रग नही दिखता है । बाप, भाईको तो बेटी बहिन ही दिखती है । ज्ञानीको भी जो दिख रहा है वह आकार कीड़े, मकोड़े, पेड इत्यादि उसे

नही दीखते हैं। केवल उसे ज्ञानस्वरूप, चैतन्यमात्र ही दिखता है। जिस तत्त्वकी दृष्टिमे सब जीव समान हैं वही स्वरूप मेरा है। जैसे पिता घरमे बच्चोंको एक समान देखता है, उनसे एक समान बर्ताव करता है। अगर एक बच्चा हठ करता है, जिद करता है, उस बच्चेको यह पिता नही रुचेगा, वह अपने इस पितासे द्वेष करेगा, यह उसे महान् नही मान सकेगा। इसी तरह ज्ञानी जीव सबको एक समान निरखता है पर इन जीवोमे से कभी अपनी कल्पना करके कोई जीव ज्ञानीको बुरा देखता है, उपद्रव करता है, कही तो अज्ञानी ज्ञानीको आग लगा देता है, शरीर छील देता है, कष्ट देता है, जान ले लेता है। तिस पर भी ज्ञानी जीव की दृष्टिमे सब जीव एक समान है। जिस जीवत्वकी दृष्टिमे सब जीव एक समान है वह जीवत्व ही नजर आवे तो यह धर्मकी पहिली सीढ़ी है। ऐसा इस ज्ञानस्वरूप अपनेमे चिर-काल तक ठहरते हुए अपनेमें अपने आप सुखी होऊं।

अपनी दृष्टिको बन्द करके और भीतरसे भीतर ले जाकर जहाँ अपने शरीरका भी पता नही है, यह मैं केवल ज्योतिमात्र, ज्ञानमात्र उजेला स्वरूप हू, जिसको कोई पकड नही सकता है—ऐसा मै ज्ञानमात्र हू। ऐसी निगाह रखकर अपने आपमे मैं निर्विकल्प ज्ञानका अनुभव करूं इसीमे आत्म-अनुभव है। ऐसा करके ही इस जीवका गुजारा चलेगा, भला होगा, पूरा पडेगा। बाकी जितने काम है उनको हटाना पडेगा, सबसे निवृत्ति जरूर लेना पडेगा। जो वर्तमानकी परिस्थिति है उस परिस्थितिमे ही अपना धर्म करे, अपनेमे निर्विकल्प होनेकी व्यवस्था बनाले। और अगर कोई सोचे कि धर्मका पालन करेंगे दो तीन वर्ष बादमे पहिले दुकानकी परिस्थिति बना लें, फिर धर्म कर लेंगे। धर्मका पालन करेंगे तो वह नही हो सकता है क्योकि जो वर्तमानमे शिथिलता है, वर्तमानमे प्रमाद है वह क्या धर्मका कारण बनेगा? प्रमाद, प्रमादका कारण बनेगा। शिथिलता, शिथिलताका कारण बनेगी? इसलिए कैसी भी स्थिति हो, गरीबी हो, कठिन परिस्थिति हो तो भी अपनेको ही निरखनेके काममे प्रमाद न करो। जैसी शक्ति हो उस माफिक धर्मका पालन करो। पुण्यका उदय है तब तो जैन धर्मका प्रसाद मिला, तब तो आत्माकी बात मिली। जो बाहरी बात है वह तो पर है। जो इस आत्मस्वरूपको मानता है वही धनी है। जो परपदार्थोंमे अपना बडप्पन मानता है वह गरीब है। इस मनुष्यपर्यायमे मिले हुए क्षणिक समागमसे बडप्पनका निर्णय नही। गरीब तो वह है जो परमे रम गया और परमे ही अपना बड़प्पन समझने लगा। सम्यग्दृष्टि सब अमीर है और मिथ्यादृष्टि सब गरीब हैं। क्योकि मिथ्यादृष्टिका तो रास्ता बन्द हो गया। अब आगे बढनेकी गुञ्जायश नही है। पर ज्ञानी जीवका आगे सद्गतिका रास्ता खुला

है। तो मैं अपनी आत्मामे भी अपना ज्ञानस्वरूप पहिचानू, यही इस आत्मामे सारतत्व है। ऐसी आत्मामे ठहरते हुए मैं अपने आपमे स्वयं सुखी होऊ। सुख बाहर खोजना व्यर्थ है बाहरमे सुखके खोज करनेके परिणाममे हैरानी भरी हुई है इससे तो क्लेश ही होता है। अपनेको स्वतः स्वय आनन्दघन देखूं अपने आपका जो भी परिणमन हो रहा है चाहे वह प्रदेशपर्याय हो, चाहे गुणपर्याय हो वह सब क्षणिक हैं। उस उस पर आत्मस्वरूपकी श्रद्धा न करके जो उन सब पर्यायोका आधार ध्रुव सार तत्त्व है, चित्स्वभाव भाव है उसही निज सहज परमात्मतत्त्वमे उपयोग द्वारा ठहरू और स्वय स्वयमे चैतन्य चमत्कारमात्र परिणमता हुआ सहज आनन्दमग्न होऊं।

सद्दृष्टिज्ञानचारित्रैकत्व मुक्तिरद: सुखम्।
तच्च ज्ञानमय तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-४६॥

यह आत्मा एक भावात्मक पदार्थ है। यह भावोसे ही रचा हुआ पदार्थ है। भावोके अतिरिक्त इसमे अन्य कुछ नही मिलता। यह आकाशके समान अमूर्त है। रूप, रस, गंध स्पर्शसे रहित है। यह तो एकभावात्मक चीज है, चैतन्यस्वरूप वस्तु है, सर्वोत्कृष्ट विलक्षण, पदार्थ है। दर्शन, ज्ञान, चारित्र, श्रद्धा, आनन्द इत्यादि भावमय एक चीज है। यह आत्मा ऐसी विलक्षण वस्तु है कि जिसमे ज्ञान होता है, विश्वासका माद्दा है, कही न कही ज्ञानको यह लगाये रहता है और आनन्द या कल्पनाएं या सुख दुख विकल्पोको करता है। ऐसा यह एकदम सबसे छुट्टा पदार्थ है। किसी भी अन्य वस्तुसे जिसका कुछ लगाव नही है, अन्य पदार्थोंसे इसका अत्यताभाव है। लेकिन अज्ञानी जीव अपने इस स्वरूपको न देखकर अपना सारा पता भूलकर बाहरमे देखता है, बाहरमे ही उसको सार नजर आता है और इसी कारण यह दुःखी होता रहता है। बाहर पदार्थोंमें इसने इच्छाएं बनायी, मेरे पास अमुक चीज रहे, अमुक चीज इस प्रकारसे परिणम जावे, नाना प्रकारकी कल्पनायें बनी-परतु ऐसा तो कभी नही होगा कि कोई परपदार्थ किसी परके आधीन बन जाय। कोई भी परपदार्थ इस आत्माके आधीन तो बनते नही, इच्छा बराबर है। इच्छाका काम होता नही, बस यही तो दुनियामे दुखका साधन लगा हुआ है। इच्छाएं करते हैं, पर इच्छाओसे काम नही होता है। आनन्द तो तब आता कि इच्छा करें और इच्छा करनेसे तुरन्त काम हो जाये या कोई इच्छा ही न हो। अज्ञानी तो इच्छाके काममे लगा रहता है और ज्ञानी पुरुष इच्छाके अभाव करनेमे लगा रहता है। ज्ञानी अन्तरमे दृष्टि करके देखता है कि मैं तो यह ज्ञानमात्र पदार्थ हू। जानन जिसका स्वभाव है, जानना ही जिसका स्वरूप है, जानना ही जिसका सर्वस्व है ऐसा ज्ञानमय एकवस्तु हू। इतना ही विश्वास हो, इतना ही ज्ञान हो और इसमे ही लग जाओ, रम

जाओ। इन तीनोमे एकता आजाय, इसीके मायने मुक्ति है। कहते है कि धर्ममे लगो। धर्ममें जहाँ कहाँ लगें ? मंदिरमे लग जाएं कि जंगलमे लग जाएं। कहाँ लग जाएँ धर्म है ? तो धर्म उस आत्माके स्वरूपमे ही है। धर्म साक्षात् यह आत्मा ही है। इस आत्माको श्रद्धासे अपने स्वरूपमे देखो और देखते रहो। यही धर्मका पालन है। यह आत्मा मैं ज्ञानमात्र हू, ऐसा ही विश्वास हो, ऐसा ही उपयोग बनें और ऐसा ही उपयोग बनाकर स्थिर हो जाओ। इन तीनो बातोकी जहाँ परिपूर्णता हो जाती है इसीके मायने मुक्ति है। धर्मकी साक्षात् मूर्ति यह सहज ज्ञानमय आत्मा है। इस ही स्वरूपके श्रद्धान ज्ञान आचरणसे आत्माको सुख होना है। यह बात जब तक घटित नही होती है तब तक इसका उपाय करना चाहिए। इसका उपाय क्या है ? सबसे पहला उपाय वैसे तो सम्यक्ज्ञान करना ही बताया, किन्तु व्यवहारिक उपाय सच्चे देव, सच्चे शास्त्र और सच्चे गुरुकी श्रद्धा करना है। किसी भी कामको करना हो तो उसमे यह त्रितयकी पद्धति आती ही है। जैसे संगीत सीखना है तो संगीतमे जो अत्यंत निपुण है, इस लोकमे सर्वथा प्रसिद्ध है, परिपूर्ण है, ऐसे व्यक्तिकी ओर निगाह जरूर रहती है कि मुझे भी ऐसा बनना है, ऐसा संगीतज्ञ बनना है। लेकिन वह एक आदमी जो उसमे पूर्ण निपुण है, वह हमे मिल जाय, पहिले तो यही बात कठिन है। शायद कही मिल भी जावेगा अर्थात् कभी दर्शन भी हो जायेगा तो वह मेरे साथ दिमाग लगावेगा, ऐसा भी नही है। इस कारण अपने गाँवमे किसी उस्तादको देखें तो कहते है कि वह सिखा दे। यहाँ तक देव और गुरुकी दो बात हुई। तीसरी बात सरगमके शब्दोका उसे सहारा लेना है। यही सगीतका शास्त्र हुआ। इस तरह सगीतके देव, सगीतके शास्त्र और सगीतके गुरु हुए। किसी को रसोई सीखना है तो वह किसी निपुणका नाम जो जानता है उसे दिमागमे लेगा जो साग, दाल, भात आदि सब कुछ बहुत ही उत्तम बनाना जानता हो, यह तो हुआ रसोईविषयक देव, अब यह निपुण तो मिलना कठिन है। अगर ऐसा आदमी उसे मिल भी गया तो उसे अच्छी तरहसे सिखा दे यह मुश्किल है। तब क्या करना होता है कि जो सहज घरमे मिल जावे ऐसी कोई बडी हो जैसे बुवा हुई, जीजी हुई, जो भी हुए उनसे वह कहता है कि सिखा दो। जिसके प्रति श्रद्धा हो कि बढिया यह भी बना लेता है तो उससे ही वह बनाना सीखेगा। फिर सिखाने वाला कुछ शब्द तो बोलता ही है। जैसे यदि उसे चावल बनाना है तो वह बतावेगा कि १ घटा पहले चावल भिगो दो, फिर जब बटलोहीमे पानीका तेज उबाल आ जाय तो चावल डाल दो। और ऐसे ढक्कनसे बन्द कर दो जिससे भाप न निकल सके। पानी उतना रखो जितनेमे कि चावल समा जावें। शब्द तो बोलना ही पडता है। वही शब्द हो जाते है शास्त्र, देव, गुरु। शास्त्रकी पद्धति हर बातमे चलती है। तब मुक्तिका पाना

अगर हमे सीखना है, मोक्ष जानेका काम हमे करना है तो उसके लिए भी हमे धर्मके देव, शास्त्र, गुरुकी श्रद्धा रखना है। जो मुक्त हो चुके हैं, जो केवलज्ञानी हैं, अनंत आनन्दमयी हैं, ऐसे परम पवित्र भगवानकी श्रद्धा कर लो कि मैं ऐसा बन सकता हूं। यह तो हुई देवकी श्रद्धा। मगर यह देव रोज हमे कहां मिलेगा और कही मिलेगा भी तो वह हमारे लिए दिमाग लगायेगा क्या, वह हमसे बोलेगा कैसे, वह हमारी ओर झुकेगा कैसे ? देव तो न संगी हैं, न असंगी हैं, अनुभय हैं, कषायरहित हैं। वे तो अपने आनन्दरसमें मग्न हैं। उनकी तो श्रद्धा ही श्रद्धा काम करेगी। अगर हमारे गांवमे कोई उस मुद्राके सत्संगी हमे गुरु मिल जाय तो उसे भी ढूढना चाहिए। ऐसा गुरु जो आरंभपरिग्रहसे सर्वथा रहित है, जो ज्ञान, ध्यान, तपस्यामे ही निरत रहता है। ऐसा यदि होगा तो उसके सत्संगसे, उसके वचनोंसे हम कुछ धर्मकी बात पा सकेंगे। यह धर्मोपदेश जो हमारेमे गुरुओके द्वारा आया वह शास्त्र है। इससे देव, शास्त्र, गुरुकी श्रद्धा सर्वप्रथम व्यवहारमे आती है। मदिरमे भगवानकी मूर्तिकी पूजा करते हैं। मूर्तिकी मुद्रा कैसी है ? कषायरहित, कही आने जानेका काम नही, इससे पद्मासन मे बैठे हैं, कुछ करनेका काम नही, क्योंकि ज्ञाता द्रष्टा हैं, सो हाथपर हाथ लगाये बैठे हैं। कही कुछ देखनेका काम नही। इस कारण नासाग्रदृष्टिसे बैठे हैं। जिनका कोई शृंगार नही, जिनके पास परिग्रह नही, केवल वही वही हैं—ऐसी उनकी मूर्ति है, जिसको देखकर हम यह भाव कर सकते हैं कि जगत्मे अगर कोई सार काम है तो यही सार काम है कि सब माया-जालको त्यागकर, परिग्रमोसे दूर होकर अपने आपमे रमो। यही मोक्षमार्ग है, इसमे ही शान्ति मिलेगी। ऐसा उपदेश जिनकी मुद्रासे मिला है उनमे हम भगवानकी स्थापना करते हैं और ज्ञानसे हमे देखना है परमात्माको, जो शिवमय है। हमे उस परमात्मामे दृष्टि ले जाना है जो अनंत ज्ञानमय है, अपने आपमे परिपूर्ण विकसित है। ऐसी श्रद्धा करना यह व्यवहार मे प्रथम आवश्यक है। जिसने अपने आपको निरख लिया है ऐसा मनुष्य ही भगवानकी सच्ची श्रद्धा कर सकता है। जिसने भगवानकी सच्ची श्रद्धा कर ली, ऐसे मनुष्यमे वह बल है कि जब चाहे वह उसकी ओर झुक जाय और अपने आनन्द रसका पान कर ले।

हे आत्मन् ! तू स्वयं बना बनाया प्रभु है। तेरी आत्मामे भगवान बसा है। तेरी आत्मा भगवानसे न्यारी नही है। भगवान इन आत्माओमे वास करता है। यहा तक भी जहां भेद नही है यही आत्मा साक्षात् भगवान है, क्योंकि यह आत्मा ज्ञानघन है। भगवान का स्वरूप भी ज्ञानघन है। उस अपने स्वरूपको पहिचान ले तो ससारके सारे उपद्रव समाप्त हो जाएँ और यदि भगवानको, जो अपना है नही निरख पाता तो ८४ लाख योनियोमे चक्कर काटना, यही बराबर जारी रहा करेगा। सबसे बड़ा काम है अपने आपकी सही

जानकारी कर लेना। यह नही कर पाया तो कुछ नही रहनेका है, यह आत्मा तो केवल भावात्मक वस्तु है, भावमय है, भाव ही लेकर जायगा, भाव ही लेकर बना हुआ है, भाव ही हमारा सर्वस्व है। सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्रको एकता ही मुक्ति है और यह एकत्व ही वास्तविक सुख है।

अन्य है वह अन्तरात्मा जिसने सत्यका आग्रह किया है, असत्यमे असहयोग किया है। सत्यका असहयोग करना ही सत्य आन्दोलन है। यह सब दिखने वाला ठाट-बाट असत्य है। होकर भी नही है, न होकर भी है। यह सारभूत चीज नही है, यह परमार्थ चीज नही है। जैसे नीदमे स्वप्न आनेमे जो कुछ दिखता है वह सच लगता है, इसी तरह मोहकी कल्पनाएँ होनेपर जो मनमे आता है, जिसका संबंध अच्छा लगता है वह सब उसे सत्य दिखता है। पर सत्य है कुछ नही। सारा जीवनभर गुजर जानेके बाद अन्तमे वृद्धावस्थामे अक्ल ठिकाने आती है कि सारा जीवन गुजर गया, मैंने अपना हित कुछ नही किया। जिनके लिए विकल्प किया, दुर्भावविभाव किया वे लोग भी नही रहे। उनका कुछ पता नही, और जो बचे है वे भी छोडकर चले जा रहे हैं। यह शरीर भी यहाँ नही रह जायगा, हम स्वय यहाँ नही रह जायेंगे। यह मैं केवल आत्मा, मै अपना कुछ नही कर सका। जो बुद्धि थकनेके बाद, परेशान हो चुकनेके बाद, हर तरह शिथिल हो जानेके बाद आती है। यदि हाथ पैर चलते समय, दुरुस्त रहते समय यह बुद्धि आ जाय और अपनी ममता बाहर करके अपने आत्माका दर्शन करनेका प्रयत्न कर ले तो यह बडी सफलताकी बात है। और इतना नही कर सके तो कुछ नही है। कुछ तो कभी भी नही है, केवल कल्पना कर लो। पदार्थ तो खुदकी अपनी सत्ताके जुम्मे है।

एक साहबके एक चपरासी नौकर था। साहबने सोचा कि इस नौकरके नामसे १० रु० की लाटरी लगा दें। अगर इसका इनाम आ जायगा तो दो लाख रुपया दे देंगे। अपने लिए तो बहुत लगाया, हजारो रुपये बरबाद कर दिए, पर कुछ न आया। सुयोगसे उसी चपरासीके नाम लाटरी खुल गई। अब वह साहब सोचता है कि इसको अगर दो लाख रुपया यो ही दे देंगे तो यह फूला नही समायेगा और इसका हार्ट फेल भी हो सकता है। सो पहिले उसको बैंतोसे मारा और फिर कहा कि देखो तुम्हारे दो लाख रुपये आये हैं। वह हार्ट फेलसे तो बच गया। अब वह सोचता है कि रुपया तो रख नही सकता, कोई काम तो करना जरूर है। तब उसने कहा कि ये रुपये हमारे किस काममे लगेंगे ? आप ही किसी काममे लगा लें। उन साहबने मैनेजर बनकर कारोबार खोल दिया। अब उसका काम चलने लगा। कल्पना ही तो हैं कि उसके पास ये चीजें हैं और यह काम कर रहा है। खैर और आगे चलकर देखो

तो लाखो और अरबोंकी सम्पदा है तो क्या है ? यह मनुष्य तो यो का यो ही है । वे तो पुद्‌गलकी चीजें हैं उनसे इस आत्माकी सिद्धि नही है । आत्माकी सिद्धि बस आत्माके ज्ञान मे की जाय तो समझो कि सब कुछ पा लिया । इसमे ही अनुपम आनन्द आयेगा । बस अपने आपकी श्रद्धा होनेका नाम सम्यक्‌ज्ञान है और इस स्वरूपकी ओर झुके रहना, इसमे ही आनन्दका अनुभव करना, यह ही प्रिय लगना, इसकी ही भावना बनाते रहना, इसका ही नाम सम्यक्‌चारित्र है । इन तीनोकी एकताका नाम मुक्ति है । जो कुछ अच्छा लग रहा है, लडके हैं, लडकियां हैं, यह कुटुम्ब है, यह परिवार है, बडे अच्छे है, बडे भले हैं, जो कुछ भी दिख रहा है उसका विकल्प होना दुर्गतिमे जानेका रास्ता है, उपाय है, घोखा है, आत्माके पतनकी चीज है । यह सब कुछ तो छूटेगा ही, अगर इन सबको छोड दे, अपने उपयोगको बदल लें तो हम भी सुखी हो जायें । मगर जैसे जुवारियोका दल है, वहा दिमाग सही नही रह सकता है । इसी तरह जहाँ मोहियोका दल है, वहाँ समारमे इम झुडसे निकल जाना सरल नही हो सकता है । पर कोई प्राणी जिसने अपना ज्ञानबल बढाया, जिसने अपने आनन्द का स्वाद चख लिया ऐसे ही आत्मा इन सबसे विरत होकर अपने आपमे रम सकता है । ऐसा जिसका भाव है वही हमारा गुरु है । ऐसा भाव जिसका पूर्ण बनकर स्वभाव पूर्ण विकसित हो गया वह ही हमारा देव है और जो ऐसा बना रहा वह ही हमारा गुरु है । यह भाव जब हम करेंगे तभी सोचेंगे कि यह देव है, यह गुरु है । तो वास्तवमे मेरा भाव ही गुरु है और वही मेरा रक्षक है । और ज्ञानमय आत्मा ही अपना सर्वस्व है । अतः मै स्वयंमे रुचि करूं और अपने आप अपनेमे स्वयं सुखी होऊं ।

तत्त्वतो ज्ञानमात्रोऽहं क्व विकल्पावकाशता ।
ततोऽहं निर्विकल्पः सन् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-४७॥

मै क्या हू, कैसा हू, कितना हू, इस ओर दृष्टि करें तो यह ज्ञानमात्र मालूम होता है । जो जान लिया, जो जाननेमे आ गया, जो जानन बन गया । इसकी शक्तिरूप जो ज्ञानशक्ति है उतना ही मैं हूँ । इससे आगे इसमे कुछ नही है । इसमे कही पानी नही भरा है, जो कोई ढेला मार दे तो इसमे छीटे उछल पडें । इसमे कही आग नही जल रही कि लकडी घुसेड दें तो जल जायगी । यहाँ रूप, रस, स्पर्शका नाम नही है । यह तो केवल ज्ञानभाव शक्ति है, ज्ञानानन्दभाव है, उतना ही मैं हू । क्या मैं हवासे पतला हूँ ? अरे हवासे तो मै कितने ही गुना पतला हू । मैं तो आकाशकी तरह अमूर्त हू जिसमे किसी मूर्तिका नाम नही है । ऐसा मैं केवल ज्ञानमात्र वस्तु हू । बस अधिक बाहर न जाओ और यही देखो । जानने का ही नाम आत्मा है । ऐसी इस ज्ञानमात्र मुझ आत्मामे विपत्तियाँ कहाँ हैं, विपत्तियाँ कहाँ

से घुसेंगी ? यह तो मैं ज्ञानमात्र ही हूँ, वियोग कहांसे होगा ? सयोग कहांसे होगा ? यह तो मै ज्ञानमात्र हूं । लोग कहते है कि मुझे बडी तकलीफ है ? दादी गुजर गई, दादा गुजर गए, मां गुजर गई । मुझे बडी तकलीफ होती है । अरे तू अपनेको समझता है कि तू क्या है ? तू तो ज्ञानमात्र है, जाननस्वरूप है, इसमे कहां सयोग है, इसमे कहां वियोग है ? कही कुछ लगा हुआ है क्या ? मैने इस कामको कर लिया तो इसमे फस गया । इतना हमसे खर्च हो गया, बडी तकलीफ है । अरे तू आत्मा तो ज्ञानमय है । केवल तूने उल्टी सीधी कल्पना बना लिया है, इसीसे दुःख होते हैं और यदि सीधा सच्चा भाव बना लेता तो सुखी होता । केवल तेरे जानन पर ही सब कुछ निर्भर है । इस सारे संसारवृक्षमे यह जगत्के जन्म मरण अथवा अपने आपमे आनन्दका पाना, सारी बातें तेरी जाननेकी कलापर निर्भर हैं । इससे आगे तेरा कुछ करतब नही है । ऐसा प्रतिभासस्वरूप ज्ञान, ज्ञानमे बैठ जाए तो यह सारा अमृत है । यह सर्वोत्कृष्ट है । और तो चीजें सब मिट जावेंगी, नष्ट हो जावेंगी, किसीका भरोसा नही । केवल यह ज्ञान यदि मेरे ज्ञानमे आ गया तो मैं अन्तरात्मा हू । यही ज्ञान है, यही मोक्षमार्ग है, यही मुक्तिका उपाय है । किसी भी पदार्थमे ऐसी शक्ति नही है कि वह मुझे मोक्षमार्गमे लगा दे । सब कुछ मेरे ज्ञानकी कलापर निर्भर है । किसी भी पदार्थमे ऐसी शक्ति नही है कि वह मेरे मोक्षको रोक ले, यदि अपने आपमे इस ज्ञानस्वरूपका ज्ञान आता हो । जो अपनेको ज्ञानस्वरूपके अलावा और और किन्ही रूपोमे मानता है अथवा मेरा धन है, मेरा घर है, मेरा कुटुम्ब है, मेरा परिवार है, मेरे अच्छे मित्र है, मेरा अच्छा रुतबा है, कुछ भी माने, बस वही गरीब है । अन्य कोई इस दुनियामे गरीब नही है । अरे जो अपने सही स्वरूपको समझ ले कि यह तो मैं केवल ज्ञानमात्र हू, जो जानन चीज है, जो ज्ञानभाव है, वही मैं हूं, इसके अतिरिक्त मुझमे कुछ नही है—ऐसा जिनको स्पष्ट दिख जाय, अपने सच्चे विश्रामसे आ जाय, वह अमीर है और इन अमीरोमे सिरताज है । वह सिद्ध भगवान है जिनकी हम उपासना करते है । खुदकी चीज खुदमे पूरे रूपमे रहे, दूसरेकी चीज मुझमे रंच भी न रहे, यह सबसे बडी भारी पवित्रता है । जो मेरी चीज है वह मेरेमे परिपूर्ण रहे, जो मेरी नही है वह रंच भी मेरेमे परिपूर्ण न रहे, जो मेरी नही है वह रंच भी मेरेमे न आवे । इसीको पवित्रता कहते हैं ।

पवित्र दूध कैसे कहलावे कि जो दूधका स्वत्व हो वह उसमे पूरा पूरा रहे और बाहरी कोई चीज दूधमे रच भी न आवे । दूधका जो निजी स्वत्व है वह मशीनसे बाहर निकाल लिया जावे, केवल सपरेटा रह जावे तो वह दूध अच्छा है क्या ? पवित्र है क्या ? दूधमे बाहरी चीजें डाल दी जावें, पानी या दूसरीका दूध डाल दिया जावे तो क्या वह दूध

पवित्र है ? नही। दूधका स्वत्व दूधमे पूरा रहे और कोई चीज दूधमे न आवे तो इसको उत्कृष्ट दूध कहते हैं। इसी तरह आत्माकी निजी बात आत्मामे पूरी रहे और जो आत्माकी निजी बातें नही है वे आत्मामे रंच भी न रहे, इसीको परमात्मा कहते हैं। हमारा अपना हममे कुछ तो है। चाहे पूरा न विकसित हो मगर कुछ तो है। मेरी आत्मासे बाहरकी जो बातें हैं वे बहुतसी हममे नही है, कुछ तो हैं। जैसे बहुतसी बाहरी बातें हममे नही है, इसी तरह जो है उन्हे भी निकालकर फेंक दें और थोडा हम विकसित हैं तो जरा और बढकर हम विकसित हो जावें। यही भगवानका स्वरूप है। अपने आपके यथार्थस्वरूपमे आ जाना सबसे दुर्लभ धन है।

धन कन कचन, राज सुख, सबहि सुलभ कर जान।
दुर्लभ है ससार मे, एक जथारथ ज्ञान ॥

आज देवतावोके नाममे, धर्मके नाममे, परपदार्थोंमे अपनेको बडा विवाद है। कोई कहता है कि भगवानका स्वरूप यो है, कोई कहता है कि भगवानका स्वरूप यो है, कोई कहता है कि दुनिया ऐसी है, कोई कहता है कि दुनिया इस प्रकारकी है। जुदे जुदे शास्त्र है, जुदी जुदी उनकी कथनी है, जुदी जुदी उनकी पद्धतियां है। यदि तू कल्याणार्थी है तो उनके झगडोमे न पड। तू तो समझ ले कि तू यथार्थमें है क्या ? तू अपनी यथार्थ बातें समझना नही चाहता, बाहरसे मन लगाता है। इसीसे धर्मके नाममे, सम्प्रदायके नाममे विवाद होता है, झगडे होते हैं, मन मोटाव हो जाता है। अरे इन बातोके झमेलोमे तू मत पड। तू सबको छोडकर अपने आपका निर्णय तो कर ले। तू केवल अपने आपका ही निर्णय कर लेगा तो सभी निर्णय आ जायेंगे क्या होता है भगवान्, धर्म क्या कहलाता है, यह भी स्पष्ट हो जायगा और यदि अपना निर्णय नही कर सका तो कुछ भी नही वश चलेगा, कुछ भी निर्णय न होगा, विवादमे पडा रहेगा, विसम्वादमे बढ जावेगा, लोभ जरा जरासी बातोमे बढेंगे, शांति कही ढूढे भी न मिलेगी। तू अपने आपका ऐसा निर्णय करके तो समझ ले कि मैं एक ज्ञानमात्र पदार्थ हू। इसके आगे मेरी कोई शक्ल सूरत नही, रग नही, आकार नही, ढांचा नही। मैं केवल ज्ञानमात्र हू, ऐसा ज्ञानमात्र स्वरूपकी हाँ तो कर कि मैं यह हू। यह पक्का समझ। फिर चरित्र मोहके उदयमे भी अन्तरमे कोई झंझट नही आयेगा और यदि झझट पड भी जायेगा तो कोई परेशानी नही आयेगी।

"होता स्वय जगत परिणाम" पड़ौसका परिणमन है, जगत्का कुछ होना है, समाज का परिणमन है वह सब वही का वही है। यह मैं ज्ञानमात्र आत्मा किसी भी परपदार्थका क्या काम करता हू। इसका तो जाननेका ही काम है। जानता रहे और यह बिगड जाय

तो इच्छा कर लेवे, चाह कर लेवे, विकल्प कर लेवे, इष्ट मान लेवे, सो ऐसी नाना कल्पनायें भी कर ले तो वह कल्पनाओसे अधिक कुछ नही कर सकता है। इस आत्मामे दूसरे पदार्थ का प्रवेश नही है, दाखिला नही है, अधिकार नही है, ऐसा यह मैं शुद्ध केवल ज्ञायकस्वभाव मय हूं। यहां कुछ अपना नही है। तू अपने भ्रमको छोड और अपने ज्ञायक स्वरूपको देख, तू तू ही है। तू अपनेमे जगत्के सारे पदार्थोंका निषेध कर। तू अपने को ऐसा जान कि मेरे परिवार नही है, मेरे कुटुम्ब नही है, मेरेमे जगत्की कोई भी चीज नही है, किसी भी चीज का प्रवेश मेरेमे नही है। मैं केवल ज्ञानमात्र हू, ऐसा तू अपने आपको अच्छी प्रकारसे निर्णय कर ले। शायद यह संकोच हो कि घर वाले यह समझेंगे कि घरको नही समझ रहे हैं, यह मेरेको नही मान रहे हैं। अरे हम मानते हैं कि तू नही समझ सका, तू नही मान सका ऐसा समझ लेंगे। पर ये मानते हैं, ऐसा भी वे क्या जानते हैं? अरे तू तो अपने यथार्थज्ञान को तो कर। ऐसा ज्ञान जो अपने ज्ञानमे रख लेता है वह ज्ञानी पुरुष कोई अनुचित व्यवहार नही कर सकता है। फिर उस ज्ञानीके घर वाले लोग क्या बुरा मानेंगे? ज्ञानकी महिमा तो अलौकिक है। परमार्थसे तो मैं ज्ञानमात्र हू। यहां विकल्पोका वास नही, आत्मा॰ कोई झझट नही, यदि आत्माको अपने ज्ञानमे रक्खो तो। सोते हुएमे स्वप्न आना है तो वहां सारे झंझट है। और यदि जग जाएं तो सारे झंझट दूर हैं। अपने आपके यथार्थस्वरूपको ज्ञान मे न लिया, मोहके विकल्पोमे ही रहे तो उसके लिए सारे झंझट है।

जैसे कोई पुरुष मार्गमे कही बैठा है। पासमे कुंवा है। आने जाने वाले मुसाफिर कोई मोटरसे आ रहा है, कोई तांगेसे आ रहा है, कोई किमी चीजसे आ रहा है। कोई मोटरसे आने वाला मुसाफिर पानी कुवें पर पीने लगता है। खडी हुई मोट-को देखकर वह बेवकूफ समझ लेता है कि यह मेरी मोटर है। जब वह पानी पीकर मोटरसे चला जाता है तब वह मोटरको न देखकर रोने लगता है कि हाय मेरी मोटर चली चली गयी। इसी प्रकार इस संसारमें भटकते हुए एक मार्गमे हम आकर बैठ गए हैं, अब इसी जगह प्रयोजन वश १०, ५ आदमी आते हैं, मोटर, बग्घी, हाथी, घोड़े आते हैं, यह बेवकूफ मान लेता है कि यह मेरे हैं यह मेरे है, यह मानना ही बुरा है। तो इसका भिन्न-भिन्न रास्ता हैं, सब जुदा जुदा, पर मैंने मान लिया है कि यह मेरे है, यह मेरे दादा हैं, यह मेरी दादी है, यह मेरे बाबा हैं। अरे यह सब चले जावेंगे, दादा, दादी तथा बाबाका यहां कोई भरोसा नही है। मैंने इनको मनमे बसा लिया कि यह मेरे हैं। जिन्होने इन सबको अपने मनमे बसा लिया है कि यह मेरे है उनको दुःख होना है। वे रोते हैं, हाथ मिट गया, रास्तेमे बैठे हुए देखो प्राणी यो रोते हैं। लोग कहेगे कि यह पागल है। जैसे वह रोता था

कि हाय मेरी मोटर चली गई। रोता है तो रो। हाय यह गया, यह घट गया, अमुक हानि हो गई, हाय नुक्सान हो गया, यह चला गया। इस प्रकारसे उसे देखकर विवेकी लोग तो पागल कहेगे। अमसे यह मोही रोता है तो रोओ। इसका दुख तो अन्य कोई मेट नही सकता। ज्ञानी पुरुष ही यह समझ पाते है कि यह पागल हो रहा है। रोता है तो रो, रोने से तो कुछ मिलेगा है नही। दुःखी होनेसे तो कुछ आयेगा ही नही। अरे भाई अपने सही स्वरूपको तो देख, तू है क्या ? यदि अपने आपको नही देखेगा तो करेगा क्या ? तू शांति कैसे पायेगा ? तू अपने आपको समझ ले कि मैं ज्ञानमात्र हू। इसमे उपद्रवोका अवकाश नही। झंझट और विकल्पोकी निगाह नही। यह तो केवल जाननहार वस्तु है सो निरन्तर तू ज्ञानसे ही काम कर, मैं निर्विकल्प ज्ञायकस्वभावमात्र हू। इसलिए मैं निर्विकल्प होता हू।

अब क्या हू, अरे मैंने जान लिया कि यह मैं ज्ञानमात्र वस्तु हू। इसमे उपाधियोका प्रवेश नही, झझट इसे छू ही नही सकता। मुझे तो झझटोसे रहित तथा निर्विकल्प होकर सारे परपदार्थोंकी आशाओको, तृष्णाओको छोड़ते हुए केवल ज्ञानस्वरूप अपनेको निरखना है। और फिर अपनेमे अपने लिए अपने आप सुखी हो जाना है। सुखी होनेका दूसरा उपाय मत खोजो, वह सब धोखा है, उसमे सुख नही। कोई व्यापारका काम करते हैं वहाँ जब सुख नही मालूम देता है तो उसको भी छोड करके सर्विस करते है, कहते हैं अब यो करेंगे, अब यो करेंगे, कितना भी कुछ कर ले और ज्ञानको छोडकर वह सब मायाजाल है, ज्ञानातिरिक्त सर्वचेष्टाओसे रहित निज ज्ञायकस्वभावको देख, अन्य सबसे उपयोगको हटाकर निर्मल बनाए रहो, बाकी तो सब एकसा मायाजाल है।

एक ब्राह्मणी माँ के तीन लड़के थे—बडा, मझला और छोटा। एक बनिया था, बनिया तो बडा चतुर होता है, हर बातमे पैसोका हिसाब लगाता है। बनियेने सोचा कि एक ब्राह्मणको जिमाना है सो ब्राह्मणी माँ के लडको को जिमाऊँ। मगर छोटा लडका सबसे कम खाता होगा, उसीको जिमाऊँ तो अच्छा रहेगा। ब्राह्मणी माँ के पासमे बनिया गया, बोला कि माँ जी आज तुम्हारे छोटे लड़केका निमत्रण है मैं उसे जिमाऊँगा, माँ ने कहा—बहुत अच्छा है, हमारे तीनो लडके तिसेरिया है याने तीन तीन सेर खाने वाले हैं, किसीका निमत्रण करो, वे सब बराबर हैं।

इसी तरह ज्ञानके कामोको छोडकर बाकी दुनियाके पदार्थोंमे जितने भी काम है वे सब झझट हैं, एक बराबर हैं, झझटरहित तो केवल एक निज स्वरूपकी दृष्टि है, और यही धर्मका पालन है, यही करना है। घरमे बैठे हुए यह दृष्टि बन जाय तो अपना बडा काम कर रहे हो। यदि यात्रामे यही बात दृष्टिमे आ जाय तो समझो कि धर्म कर रहे है और मनमे

कषाय है, रंज है, सारी बातें हो रही हैं, लड़ाइयाँ हो रही है, झगड़े हो रहे हैं, वहाँ धर्म नही होगा। कहो चलते फिरते धर्म मिल जाय, किसी जगह मिल जाय और जहाँ धर्म मिलने का साधन बनाया वहाँ नही मिले और जहाँ मिलनेका साधन नही बनाया, वहाँ मिल जाय।

हमारा सब काम हमारे आधीन है। जैसे हम अपनेको बनाना चाहे, बना सकते है, अपने आपका निर्णय कर लो कि मैं क्या हूँ, मैं केवल ज्ञानमात्र हू, जिसमे दूसरी चोजका प्रवेश नही है, मैं यह ज्ञानमात्र हू सहज परमात्मतत्व हूं, ऐसी ही अपनी दृष्टि बनाकर मैं अपने आप अनुपम आनन्दका अनुभव करू।

देखो, यह ज्ञानमात्र आत्मतत्त्व ही भगवत्स्वरूप है, यह ज्ञानघनतत्त्व ही इन्द्रियोके विषयोको जीतता है, कर्मोंका क्षय करता है, इससे यह ज्ञानस्वरूप ही जिन है, यह ज्ञानस्वरूप ही पूर्णानन्दमय है, कल्याणस्वरूप है, इससे यह ज्ञानस्वरूप ही शिव है, यह ज्ञानस्वरूप ही समस्त ऐश्वर्य है और अपना काम करनेमे आप ही स्वयं सर्वकारणरूप है। इससे यह ज्ञानस्वरूप हो ईश्वर है, यह ज्ञानघन आत्मतत्त्व ही अपनी सृष्टिका मूल है अतः यह ज्ञानस्वरूप ही ब्रह्मा है। राम व्युत्पत्यर्थ हैं—"रमन्ते योगिनो यस्मिन्निति रामः।" जिसमे योगी जन रमण करें उसे राम कहते हैं, योगी जन इस पवित्र ज्ञानस्वरूपमे ही रमण करते हैं। अतः यह ज्ञानस्वरूप ही राम है, यह ज्ञानस्वरूप पूर्णव्यापक है, सर्वव्यापक है, समस्त लोकालोकज्ञ है, अतः यह ज्ञानस्वरूप ही विष्णु है, यह ज्ञानमय आत्मतत्त्व ही समस्त पापो और विकल्पोका हरने वाला है। अत' यह ज्ञानस्वरूप ही हरि एवं हर है, यह ज्ञानस्वरूप हो सर्व देवतामय है, सर्व प्राणिमय है, सर्वहितमय है। इसका स्वयसिद्ध स्वरूप निरुपद्रव है, निर्विकल्प है।

हमारे पुराण महापुरुषोने लोकके बड़े-बडे वैभवोको त्यागकर इस ही ज्ञानस्वरूपमें हित एवं आनन्दका अनुभव किया था, जिसके परिणाममे वे ज्ञानमय व आनन्दमग्न होकर भगवान हुए, ऐसे ही इस निर्विकल्प ज्ञानस्वरूपमें अपनेको उपयुक्त करके स्वयं शिवमय होऊँ।

स्वैकत्वस्य रुचिस्तस्माद् भव्यता निश्चयेन मे।
अस्वभावे कथं वृत्तः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-४८॥

जितने भी चेतन पदार्थ है उन सबमे किसी न किसी ओरकी रुचि रहा ही करती है। जिन्हे सम्यग्ज्ञान हो गया उनकी रुचि, उनका झुकाव अपने आत्मस्वरूपके उपयोगमे होता है, जिन्हे अपने यथार्थस्वरूपका पता नही उनकी रुचि बाहर रहा करती है। बाहर रुचि क्यो हो जाती है? इसका कारण यह है कि जीव तो आनन्दस्वभाव ही है। इसके आनन्दका परिणमन निरतर होता ही है, किन्तु पर-उपाधि सहित अवस्थामे अज्ञान होनेके कारण इन्हे यह

भ्रम लग गया कि मेरा आनन्द बाहरी पदार्थोंसे आता है, इसलिए उनकी दृष्टि विषयोकी तरफ दृष्टि होते रहते भी आनन्दगुणका परिणमन तो चलता ही रहता। सो वहाँ इष्ट विषय पानेपर आनन्दगुण सुखरूप परिणमन तो चलता ही रहता है। आनन्द तो अपने ज्ञानसे ही अपनेमे है। बाहर दृष्टि होनेसे इस बाहरी पदार्थोंसे आता है, लेकिन है बात उल्टी। आत्मा का ज्ञान और आनन्द बाहरी पदार्थोंकी दृष्टिके कारण ढका है, रुका है, प्रगट नही होता है। परतु इसकी शक्ति अद्भुत है। कितने ही आवरण, कितने ही विघ्न आवें तो भी मूलसे इस ज्ञान और आनन्दका निरोध नही हो सकता। ज्ञान और आनन्द तो हुआ ही करेगा। अब भ्रमके कारण यह दृष्टि बन गई कि आनन्द अमुक वस्तुसे होता है। सो भ्रममे इसकी उल्टी मति हो जाती है। यह यथार्थ ज्ञान है कि यह मैं आत्मा अपनी शक्तिस्वरूप हू, ज्ञानमय हू, आनन्दघन हू। ज्ञान और आनन्दके पिंडके अतिरिक्त यह मैं आत्मा कुछ नही हू। यह जो शरीरमे रुका है, इसको शरीरने नही रोक रक्खा क्योकि शरीर मूर्त है, वह अमूर्त आत्माको कैसे रोके ? यह ही शरीरमे मोह करके और अपना सस्कार बना करके रुका है। और कोई पदार्थ तो उसे रोक नही सकते हैं अर्थात् जब तक निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध नही हो पाता तब तक यह नही रोका जा सकता है। यह आत्मस्वरूप स्वत:सिद्ध तत्त्व है। इसके सहज-स्वरूपको देखो तो यह प्रभु है। इसमे किन्ही बातोकी कमी नही है। परमानन्दका स्वभाव अनादि अनंत रहता है। समस्त लोकके जाननेका स्वभाव अनादि अनत है। इसमे किन्ही बातोकी कमी नही। परिपूर्ण तो यह है ही। जो अपनेको ऐसा देखे वही तो परिपूर्ण बनेगा।

जैसे घरमे चाहे लाखोका धन गढा हो, जब तक उसे गडे हुए धनका पता नही है तब तक वह उपयोगमे दरिद्र ही है। उसकी प्रवृत्ति गरीबकी जैसी होगी क्योकि उसको पता नही है कि घरमे लाखोका धन गढा है। कही पता चल जाय, कहीपर लिखा हुआ मिल जाय या किन्ही पुरखोके द्वारा पता लग जाय कि तेरे घरमे लाखोकी निधि गडी है तो इतना मालूम होते ही उसको आनन्द आ जायगा। अभी उसने देखा भी नही है, परन्तु इतना पता लग गया, लिखा हुआ पा गया, उसीसे उसको आनन्द आ जायगा। वह आनन्दमय हो जा-यगा। अब उसको निकालनेका प्रयत्न करेगा। कुदाली लायगा, सब्बल लायगा, फावडा ला-यगा। उसको खोदेगा। ज्यो ज्यो वह खोदता जायगा, जो कुछ आसार देखता जायगा वह आनन्दमग्न होता जायगा। कही देखा कि मिट्टीकी खपरियाँ मिली, कही देखा कि कोई मटका मिला, इतनेमे ही वह बहुत खुश हो जाता है। जब धन निकल आता है तो धन पाने का जो अनुभव है उसमे सब कुछ भूल जाता है और विलक्षण सुखका अनुभव पाता है। इसी तरह इस आत्मामे बहुतसी निधि गडी हुई हैं। वह है अनंत ज्ञान और अनत आनंदकी निधि किन्तु यह निधि कर्मरूपी पृथ्वीके नीचे गडी है, अत: इसी कारणसे यह भिखारी होता हुआ

परकी आशा करके बेचैन हो रहा है, पराधीन हो रहा है । मेरा सुख तो अमुक भैयाके हाथ है । ऐसा समझकर भैयाका दास बन रहा है । मेरी जिन्दगी तो इन्हीके हाथ है ऐसा सोचकर उसकी ही दासता कर रहा है । ऐसी परिस्थिति है इस ज्ञानघन प्रभुकी, जिसको अपने धनका पता नही है । जब इसको पता लग जाय किसी भी प्रकार तो शास्त्रोमे लिखा हुआ देखकर, अपने पुरुखोके उपदेशोको बाँचकर, ज्ञानी धर्मात्माओसे सुनकर जब पता लग जाता है कि मैं तो आनन्दस्वरूप हूं, मेरेमे तो ज्ञान और अनंत आनन्द भरा हुआ है । इतना पता लगते ही वह आनदविभोर हो जाता है ।

मैं गरीब हूं, मुझे दूसरोंसे कम सुख है । इन कुवासनाओसे जो क्लेश होता है वह साराका सारा मिट जाता है । यदि अपने आनन्दस्वरूपको पहिचाना तो ज्ञानी अब इस निधि के विकसित करनेका प्रयत्न करता है कि मेरा ज्ञान और आनन्दस्वरूप शीघ्र विकसित हो । इसके लिए वह क्या करता है, भगवानकी स्तुति, बारह भावनाओंका चिंतन, वस्तुस्वरूपका अध्ययन, मनन, ध्यान, यही उसके खोदनेकी कुदाली और सब्बले होते हैं । इन साधनोसे ज्ञानी कर्मपृथ्वीको खोदता है । जैसे ही उसको कुछ आसार भावोमे मिलने लगता है वैसे ही वह एकत्वकी ओर आने लगता है और उसे हिम्मत बँधती है । ऐसे उसे आनन्द प्राप्त हो सकता है । वह आनन्दस्वभाव है । देखो ना, ज्ञानीने शुद्ध आनन्दभावको ही अपने उपयोगमे लिया है । यह आनद बढता जाता है, तब ही तो वह अनुभवमे आनेके लिए एकदम शीघ्रता करता है, अनुभव करता है और फिर आनन्दमग्न हो जाता है । ऐसी शुद्धवृत्ति आत्माके एकत्वस्वरूपकी रुचि होनेपर आत्माओमे होती है । जिसकी आत्माके एकत्वमे रुचि है, निश्चय है कि यह भव्य ही है । जरा अपनेको तो निहारो कि तुम क्या चाहते हो ? चाह लो, जो-जो चाहोगे सोई मिल जायगा । चाहे दो-चार लाख रुपये चाहते हो, वह भी मिल जावेंगे, इसके बाद शांति मिलेगी क्या, कुछ अन्दाज कर लो, तृष्णा बढ़ेगी, परिचय बढ़ जायगा, चोरो, डाकुओ, राजाओसे बहुत दुश्मनी बढ़ जायगी, लाखो, अरबो रुपया पानेके लिए बेचैन हो जावोगे । जैसा चाहो वैसा चाह लो, अपने भवितव्यका यथार्थ विचार कर लो, शांति कही नही मिलेगी । शान्ति है तो केवल अपने शुद्धस्वरूपके उपयोगमें है और इसके द्वारा पूर्ण शांति स्थित रह सकने वाली शान्ति है, मेरेमें जो सुख प्रगट होता है वह दूसरोके द्वारा होता है तो वह पराधीन है । कभी मिलता है और कभी नही मिलता है, इसमे सन्देह है । पर अपनी चीज अपनी ही है, वह अपने उपयोगसे ही मिलती है, और अपने ही उपयोगमे आयगी । यह मैं ही सदा रहने वाला हूं । इसका उपयोग भी सदा रहने वाला है । यह ससार का प्राणी अपने इस धनको छोड़कर पराये धनमे रहकर दुःखी हो रहा है । परन्तु यदि इस

एक अपने आत्मघनमे न आया तो क्या है ? इस जीवने सब व्यवस्थाएं की, यदि अपनी व्यवस्था नही की तो क्या है ? यह सब क्षणिक बातें हैं, मिट जाने वाली बातें है। इससे आत्माको क्या मिलेगा ? अपनी व्यवस्था करना सर्वप्रथम कर्तव्य है। अपनी व्यवस्थाके मायने अपने घरकी नही, अपने कुटुम्बकी नही, अपने परिवारकी नही परन्तु अपना रूप पहिचानमे आ जाय, यही इसकी व्यवस्था है।

एक कथानक है कि एक बाबू साहब थे। वह शामके बाद अपने दफ्तरकी सुन्दर व्यवस्थामे लग गए, जहाँ जो चीज रखना चाहिए उन्होंने वहाँ पर रक्खी, घड़ी जहाँ रख दी तो उस जगह लिख दिया घडी, छडी जिस जगह रख दी तो उस जगह लिख दिया छडी जूते जहाँ रख दिये तो वहाँ पर जूते लिख दिया। कमीज, कोट इत्यादि जहाँपर रख दिये तो वहाँ पर कमीज, कोट लिख दिया। इस तरह सारी व्यवस्था बनाते बनाते ९ बज गए, नींद आने लगी परन्तु व्यवस्थाओका बनाना नही छोडा। खुद पलग पर जब जाकर बैठे तो उस पलगमे भी लिख दिया मैं, और उसी पलंग पर सो गए, सुबह जब हुआ, सोकर जगे तो घूम घूमकर देखते है कि हमारी सब व्यवस्था ठीक है कि नही ? घडी की जगह पर घडी, छडी की जगह पर छडी तथा अन्य चीजें भी ठीक ठीक उसी जगह पर रक्खी हुई है जहाँ पर रख दिया था। पर मैं नही दिखता। गौरसे देखते हैं पर मैं कही नही दिखता। बोले कि मेरा मैं कहाँ गया है ? जब न मिला तो उसी पलगको झिटकाया पर मैं उस पलगसे नही टपका, उन्होने सोचा कि मैं तो गुम गया है। नौकरको झट बुलाया बोले मनुवा, ओ मनुवा यहाँ आवो, बडा गजब हो गया है, मेरा मैं कही गुम हो गया है। नौकर यह सुनकर हसने लगा और मनमे सोचा कि क्या बाबू जी का दिमाग खराब हो गया है ? नौकर बोला बाबू जी घबराओ नही, आपका मैं आपको मिल जायगा। आप थके हुए हैं जरा सा आराम कर लें। मैं आपका निश्चित ही मिल जायगा। बाबू जी को विश्वास हो गया कि यह पुराना नौकर है, झूठ नही बोल रहा है। बाबू जी पलंग पर लेट गए। जब सोकर जागे तो नौकर बोला कि अब आपका मैं मिला कि नही, बाबूजी ने जब अपने आप को टटोला तो बोले कि हाँ मिल गया मेरा मैं, बोले तुम्हे धन्यवाद है।

इस आनन्दको बनाने वाला यह भगवान आत्मा ही है और इस आनन्दका बनाने वाला कोई द्रव्य नही है। इस जीवको यह पता ही नही है। इसका ही मतलब है कि इस का मैं इसके लिए गुम गया। मै ज्ञानमात्र हू, इसका भी पता इस जीवको नही है। जो बाहरी पदार्थोंमे अपना ज्ञान माननेकी वासना लगाए हुए है उसको मै का पता नही, जो किन्ही भी विषयसाधनोमे आनन्द ढूंढता है उसको मैं का ही पता नही, मैं तो ज्ञान आनन्द-स्वरूप हू, निरन्तर परिणमता रहता हू, ज्ञानमय हू।

आनन्दघन है तो आनन्दके विकासमे परिणमेगा । जैसे इसका विश्वास भी परद्रव्योके प्रति हो तो भी परद्रव्योके विश्वाससे तो आनन्द नही आयेगा । अरं तू तो भगवत्स्वरूप है । तू इस अपने स्वरूपको छोडकर बाह्यपदार्थोंमे क्यो लग रहा है ? तुझे इन बाह्यपदार्थोंमें न लगना चाहिए । ज्ञान होने पर भी लगन बाह्यकी ओर कभी लगानी पड़ती है किन्तु रुचि को देखो, यदि अन्त:की ओर है, बाह्यपदार्थोंकी ओर रुचि नही है तो अन्य कार्योंके करनेकी लगन नही कही जायगी । जैसे कोई नौकर मन लगाकर काम नही कर रहा है तो उसे कहते है कि यह काम नही कर रहा है । काम करनेमे जब मन नही है, जब रुचि नही है तो उसे कहते हैं कि यह काम नही करता है । इसी कारण जैसे ज्ञानीको अपने भगवत्स्वरूप का पता नहीं है कि यह स्वच्छ है, सबसे निराला है, परिपूर्ण है, इसे कुछ बाह्य कार्य करने को नही है तो इसके पास झझट नही है । परन्तु परपदार्थ तो अपनी सत्तामे है और अपने आप परिणमते रहते हैं । यह आत्मा तो स्वयं स्वरूप सर्वस्वमय है और अपने स्वरूपमे परिणमता रहता है । देखो ना, इसमे कोई झंझट नहीं कोई विवाद नहीं, कोई क्लेश नहीं । पर इसका जब पता सही लगता है तो सारी विपत्तियाँ अपने ऊपर लग जाती है । गल्ती तो इतनी सी है कि परपदार्थोंको यह मान लिया कि यह मेरे हैं । केवल माननेकी गल्ती है और इसका फल कितना बडा है कि जन्म मरणकी परम्परा हो गई, संसारवृक्ष बन गया । इतनी बडी विपत्तियाँ आ गईं । बीज तो इसका छोटा होता है पर वृक्ष बहुत बड़ा हो जाता है । इतने बडे संसारका बीज केवल परको अपना मानना भर है । इतनी बड़ी गल्तीका इतना महान कुफल हो गया कि जन्म मरणके चक्कर लग गए । कीड़े मकौडे बनाना पड़ा । अरे तू केवल अपने मिथ्याभावकी गलती को मिटाकर अपनेको संभाल ले तो समझ जायगा कि हमने सब कुछ कर लिया । इसीसे मनुष्यजन्मकी सफलता है ।

इस तन, मन, समस्त बाह्यपदार्थोंको नश्वर जानकर इसका ध्यान न करो । अपने स्वरूपकी आस्थाको बनाओ तब तुम्हारा पूरा पड़ेगा । उसमे ही रमकर मैं अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होऊं । इसके आनन्दका उपाय अन्यत्र कहीं नहीं मिलेगा । ऐसी शुद्धस्वरूपकी भावना हो, इसीमे मेरा सब कुछ है । जीव तो अनेक मनुष्य जन्म पाते हैं और मनुष्यभवको छोड़कर चले जाते हैं । परन्तु मनुष्यभव पाना उन्हीं जीवोका सफल है जिन्होने इस भवमे पाए हुए श्रेष्ठ मन को निमित्त करके आत्मतत्त्वका अध्ययन किया है और इसके परिणामस्वरूप कभी निर्विकल्प निज ज्ञायकस्वरूपका अनुभव किया है । अपने आपकी अन्तर्दृष्टि करके देखो । क्या इस मेरेको अपने आत्मस्वरूपके एकत्वमे रुचि है या नहीं । यदि मुझे आत्मस्वरूपकी रुचि है तो निश्चयसे भव्य हू । मै परभावमे क्यो लगूं ?

अपनेमे हो अपने द्वारा रमकर सुखी होऊं।

अद्वैतानुभवः सिद्धिर्द्वैतबुद्धिरसिद्धता।
सिद्धेरन्यश्च पन्था न स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-४६॥

अपने आपमे अपने अकेलेका अनुभव करना, इस ही का नाम सिद्धि है। ऐसे अकेले का अनुभव करना कि जो वास्तविक अकेला है, स्वतःसिद्ध है, निजस्वरूप सत्तामात्र है, पर पदार्थों और परभावोंसे जो जुदा है, अपने आप चतुष्टयमे सत् है ऐसा ज्ञानमात्र व ज्योतिमात्र पर ग्रापका अनुभव कर इस ही का नाम सिद्धि है। अन्य कोई चीज अपनेमे कुछ मिलती मैं ... अन्यरूप नही हू अथवा मैं अन्य कुछ मिल करके भी नही हू। यदि किसी दूसरा ... अपनी बुद्धि रखते हो तो इसीका नाम असिद्धि है। मैं आत्मस्वभावमे साक्षात् भगवान् स्वरूप हू लोग कहते हैं कि भगवान् घट घटमे बसता है, भगवान् अलग नही है। ... घट घटमे जाता है या एकदमसे वह फैलकर घट घटमे आ गया है, ऐसा नही है किन्तु जितना घट घट है, जितना आत्मा है, जितना चैतन्यस्वरूप है, वह सब भगवान् है। हम स्वय ही सत्य आनन्दमग्न हैं, किन्तु अपने इस स्वभावका विश्वास न रखकर बाह्यपदार्थों से आनन्द हो या आनन्दमे बाधा होती है। ऐसी एक दृष्टि हो गई है। इस दृष्टिसे वह अपने आनन्दको रोकता है। वह स्वय आनन्दस्वभावकी निधि है। आनन्द कही बाहरसे नही आता है स्वय यह आत्मा ज्ञानमय है। ज्ञान किसीसे लेना नही है। इसी प्रकार यह आत्मा आनन्दमय है। कभी भी दूसरी जगहसे आनन्द इसमे लाया नही जाता है। यह खुद आनन्दस्वरूप है और इसी कारण किसीने इसे आनन्दमय ब्रह्म कहा है अर्थात् ब्रह्मका स्वरूप है आनन्दमय है और इसीको किसीने ज्ञानका स्वरूप कहा है और किसीने इसको सत्का स्वरूप कहा है। इस तरह पृथक् पृथक् कहा है किन्तु स्याद्वाददृष्टिने इसे सत्चिदानन्द बतलाया है। यह आत्मा अपने स्वभावसे बढते हैं, अतः यह स्वभाव वाला है। अतः इसे कोई ब्रह्म कहते हैं और कोई आनन्दकी प्राप्ति कहते हैं, किन्तु वह तो सत्स्वरूप भी है, चित्स्वरूप भी है, आनन्दमय भी है अतः उसे सच्चिदानन्दमय कहा है। जहाँ आनन्दका स्वरूप चित्का स्वभाव पूर्ण विकसित है, उसीका नाम परमात्मा है। प्रत्येक जीवको स्वरूपसे देखो कि ऐसा है कि नही। वह ऐसे ही है इन जीवोमे चैतन्य भी है, क्योकि अगर चैतन्य नही होता तो इन जीवोमे ज्ञान और समझ कहाँसे आती ? और आनन्द है कि नही ? आनन्द भी है। यदि आनन्द न होता तो जीवोमे आनन्द आता कहाँसे ? इस तरह यह सच्चिदानन्दमय आत्मा है। मतलब यह है कि जैसा यह स्वय है अद्वैत, वैसा ही अनुभव करना चाहिए। परपदार्थ भी अद्वैत है। किसी मे कोई दूसरा मिला नही है। दूध और पानी मिला हो, फिर भी दूधमे दूध ही है और पानी

में पानी ही है । दूधमे पानी नही गया और पानीमे दूध नहीं गया और यहाँ तक कि दूधके जितने परमाणु हैं वे सब पृथक्-पृथक् उसी दूधमे है और पानीके परमाणु पानीमे पृथक् है । वे स्वयं सत् है । यही बात है कि एकसे दूसरेमे परमाणु नही आते । प्रत्येक पदार्थ अपनी सत्ता लिये हुए हैं । प्रत्येक पदार्थ अद्वैत है । अद्वैत कहते उसे हैं जो दूसरेसे न लगा हो । जो दो चीजोंसे मिलता है उसे द्वैत कहते है और जो दूसरेसे नही मिला है, खुदबखुद अपने आप एक ही है उसे अद्वैत कहते हैं । जगत्के सब पदार्थ खुदबखुद अपने आपमे अपनी सत्ता लिये हुए हैं । इस तरह सभी अद्वैत है । सब पदार्थोंको अद्वैत निरखना है । प्रत्येक पदार्थ अपनेमे एक ही है । इसमे दूसरेका प्रवेश नही है । इसलिए दूसरेका प्रवेश न होनेसे स्वयंको अद्वैत निरखना है । और इसी प्रकार अपने आपमे भी अद्वैतका अनुभव करना कि यह मेरा भैया है, यह तो मेरा बच्चा है, यह तो मेरा घरद्वार है, यह मेरा वैभव है, यह मेरा शरीर है, मैं कुछ हूं, इस प्रकार द्वैतको अनुभव करना रहा तो उसीको असिद्धि कहते हैं, उसीके मायने ससार है । पदार्थ जैसे हैं वैसा न अनुभव करना, वैसा न मानना, बस इसीका नाम है जग-जालमे फँसना । जो अपनेको नाना वेशो रूप ही अनुभवता है उसे शांति नही मिलती है । क्योकि नाना रूप इसके बन गए सो ये तो वे हैं सब पराये हैं और फिर है नाना, अतः उनकी सभाल कैसे हो ? मुक्तिका रास्ता और कोई दूसरा नही है । यही अपने आपको जैसा शुद्ध अकेला स्वरूप है वैसा मान जाना बस यही मोक्षका रास्ता है, मुक्तिका पंथ यही है । अभी धर्मपालनके लिए बहुत बहुत काम किए जाते है । कर लो किन्तु अपने आपके इस अद्वैत स्वरूपका अनुभव नही है तो धर्मपालन नही हुआ, शांतिका मार्ग नही मिला, मोक्षका मार्ग नही पाया । धर्म एक ही होता है, धर्म पचासो नही होते । दुनियामे जो ये मजहब है वे तो मत हैं, धर्म नही है । आज जो दुनियामे प्रसिद्ध है यह अमुक सम्प्रदाय है, यह अमुक मजहब है, वह सब मत कहलाते हैं, धर्म नही होता है । मत अनेक होते हैं पर धर्म अनेक नही होते । धर्म अनेक हो ही नही सकते हैं । अब हमे धर्मपालन करना है या मतपालन करना है । अगर मतपालन करना है तो मतपालन किया जाय और अगर धर्मपालन करना है तो धर्मपालन किया जाय । धर्म है वस्तुका स्वरूप, वस्तुका अनुभव, यह मैं आत्मा कैसा हू, क्या हूं, कैसे स्वभाव वाला हू, जैसा हूं तैसा मानना इसीके मायने हैं धर्मका पालन । जैसे जातियाँ अनेक हो गईं, जैसे हिन्दू, मुसलमान ईसाई आदि । इन सबके रहन सहन अनेक प्रकार हो गए, बुद्धि अनेक हो गई । एकसा ही उन मनुष्योका जन्म हुआ और एकसा ही उनका मरण होता है । इसी तरह इन सब लोगोने अपने अपने मतको बदल दिया है, पर वह हैं सब एक किस्मके आत्मतत्त्व जैसे । उन सबने अपने अपने मत बदल दिए हैं, पर रंगको तो नही बदल पाया

अपना आकार तो नही बदल दिया है । उन परकी चीजोका फर्क बना लिया है कि कोई चोटी रखता है, कोई नही रखता है । यह सब कुछ हो जाता है पर उनका रूप नही बदलता है । जैसे मनुष्यका स्वरूप नही बदलता है, इसी तरह चाहे जितनी ही कल्पनायें आ जायें, चाहे जितने ही मत आ जावें उनकी आत्माका स्वरूप नही बदलेगा । उनको आत्माका एक ही स्वरूप है, एक ही स्वभाव है । कोई ऐसा भी जीव है जिसका यह मत है कि आत्मा फात्मा कुछ नही है । आत्माका अस्तित्व कुछ नही है । वे आत्माको मना कर रहे हैं । आत्मा का विरोध कर रहे हैं । आत्मा ही आत्माको निषेध कर रहे हैं । निषेधबुद्धि करनेसे सत् नही मिट गया । वैसे आत्माको अन्य रूपमे कल्पनायें कर ले तो कल्पनायें कर लेनेसे आत्मामे वह कुछ नही हो जायगा । आत्मा वही है जैसे रस्सीकी डोरका भ्रम हो जाय कि यह सर्प है तो भ्रम हो जानेमे कही रस्सीकी डोर सर्प नही बन जायेगी । वह तो रस्सी ही रहेगी । हम कितनी ही चीजोके बारेमे कितनी ही कल्पनायें कर डालते हैं परन्तु इतनी कल्पनायें कर लेने से ही वह चीज नही हो जाती । वह तो सत्तासे हो गई है, वही है । हम इस आत्माके बारे मे कितनी ही कल्पनायें करें, हम नाना नही बन जावेंगे । हमारा तो एक स्वरूप है, जो अनादिसे अनन्त काल तक रहेगा ।

यह निगोद कीडो जैसो पर्यायोमे भी पहुचा है, इस आत्माका प्रदेश आकार भी बदल गया है, फिर भी निगोद जैसी निम्न अवस्थाओमे भी इस आत्माका स्वरूप वही एक रहा है, वह नही बदल गया । उसका जो स्वत्व है, सो ही है, वह नही बदल गया । ऐसी आत्मा का वह अद्वैतस्वरूप जिनके ज्ञानमे आया है उनको सिद्धि होती है और जिसे द्वैत आया है, जिसने द्वैतका अनुभव किया है उसको असिद्धि होती है । उस एकको जिसने चाहा है उसको सर्वस्व मिला है और एकको छोडकर जिसने नाना पदार्थोंमे दिल लगाया है उनको कुछ नही मिला है ।

एक ऐसा कथानक है कि एक बार एक राजा किसी दूसरे राजासे लड़ाई करने गया । दो माह तक युद्ध होता रहा । उसमे उस राजाकी विजय हो गई । इसके बाद वहाँपर राजाने बड़ा उत्सव मनाया और खुशीमे देशकी सब रानियोको पत्र लिखा कि जिसको जो कुछ चाहिए हमारेको पत्र लिखे । तब किसी रानीने साडी लिखी, किसीने जेवर लिखा, किसी ने अमुक खिलौनेको लिखा, किसीने कुछ लिखा, किसीने कुछ लिखा । जो सबसे छोटी रानी थी उसने अपने पत्रमे लिख दिया केवल १ का अंक, और कुछ नही लिखा । पत्रको लिफाफे मे भरकर भेज दिया । जब राजाने पत्रोको खोला तो किसीमे कुछ लिखा था किसीमे कुछ मगर छोटी रानीके पत्रमे केवल १ का अंक लिखा था । राजा इस केवल एक या १ का अर्थ

न समझ सका। उसकी समझमे केवल १ का मतलब न आया। उस राजा ने मंत्रीसे पूछा कि इस छोटी रानीने क्या मंगाया है ? मंत्री पत्रको देखकर कहता है कि छोटी रानीने केवल एक आपको ही चाहा है और कुछ नही चाहा है। राजा सभी रानियोको किसीको साड़ी, किसीको गहना, किसीको खिलौने लेकर अपने देश जाता है। जब वह वहाँ पहुंचता है तो जो जो कुछ देना था वहां, उनके घर पहुंचा दिया और छोटी रानीके महलमे स्वयं पहुंच गए, जिसने केवल एकको चाहा था, पर अब यह बतलावो कि राजाको सारी चीजें, सारा वैभव, हाथी, सेना, शासन, इज्जत इत्यादि सब कुछ उसके महलमे पहुच गया या नही।

इस जगत्मे जितनी भी व्यवस्थाए चल रही हैं वह सब चैतन्य ज्योतिका ही तो प्रसार है। एक चैतन्य ज्योतिको जिसने चाह लिया, एक अद्वैत स्वभावको जिसने चाह लिया उसको सर्वसिद्धि है। इस आत्मानुभवकी ओर आवो। बाहरकी ओर दृष्टि कम करके अपनी प्रकृति, रहन सहनको सात्विक बनावो और मुख्य प्रयोजन जो आत्मसिद्धिका है उसे करो। बनावट, दिखावट, सजावट न करके कर्ममे दृष्टि दो तो बस यही धर्मका पालन है। शांति भी इसी उपायसे प्राप्त होगी। मोक्षमार्ग भी इसी उपायसे प्राप्त होगा। पर पदार्थोंमे भटकना, नाना प्रकारकी कल्पनाए करके उपयोग को बाहर फंसाना, यह सब अशांतिके साधन है, अधर्मका पालन है, धर्मकी उपेक्षा है। अपने इन २४ घटोंमे जबकि प्रायः सारा समय दुरुपयोगमे जाता है; मोह, राग, द्वेषोमे जाता है, नाना कल्पनाओके विकल्पोमे जाता है। भाई पन्द्रह मिनटका संकल्प करके, सत्यका आग्रह करके, अपने आपकी भी व्यवस्था बना लो अपने आपमे १०, ५ मिनट आनेमे कुछ बिगड नही जायगा। एक अमूर्ततत्वकी प्राप्ति होगी। अद्वैतका ही अनुभव हो, उसे ही सिद्धि कहते हैं। जगत्के जीव अहकार भरे हुए हैं। मैं परिवार वाला हू,धन वाला हू, इज्जत वाला हूं, यह मैं अमुक हू, उत्तम हू, शुद्ध हू, नाना प्रकार की कल्पनाए लिए हुए यह प्राणी विचर रहे है। अरे तू तो वह स्वरूप है जिसका स्वरूप सर्वत्र एक है।

यदि मैंने अपने ही स्वरूपको माना तो धर्मका पालन किया और यदि अपने अद्वैत स्वरूपको छोडकर नाना रूपोमे माना तो अभी धर्मसे बाहर हैं। अपने धर्मसे अर्थात् अपने आत्मस्वभावसे स्नेह करो। जगत्मे कहाँ भटक रहे हो ? शरण कही नही मिलेगी, हर एकसे धोखा मिलेगा, बहकावा ही मिलेगा। शरण तुझे अपने आपमे बसे हुए उस सहज परमात्मतत्वकी शरण लेना है। यही मुक्तिका मार्ग है। दूसरा कोई मुक्तिका मार्ग नही है। जैसे कहते हैं कि "सम्यग्ज्ञान-सम्यग्दर्शन-सम्यग्चारित्र विमोक्षमार्गः।" सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रकी एकता ही मोक्षका मार्ग है। जहाँ दर्शन ज्ञानचारित्रमे विकल्प भी नही

उठते। इसका एकरस उपयोग हो जाना, यहीं एक मोक्षका मार्ग है। जो कि सर्वसिद्धि है। जो इस आत्माके सहज चैतन्यस्वरूपकी श्रद्धा पा लेगा, वही अपने स्वरूपमे रम जायगा। ऐसी स्वाधीन शाश्वत सम्यक्की श्रद्धा बिना मोक्षका मार्ग नही मिलेगा। किसी बहकावे व किसी बालबच्चोकी उलझनमे पडकर शांति नही मिलेगी और आगेका रास्ता भी बन्द हो जायगा। बाहरी चीजोमे पडकर इस आत्माका हित कुछ नही है हित तो यह स्वरूप है। यह तो धर्मकी साक्षात् मूर्ति है। यह आत्मा चैतन्यस्वरूप आत्मा ही धर्मकी मूर्ति है। वह भगवानस्वरूप है। वही कल्याण है। मैं इस एकको छोड़ दूं तो संसारमे भटकते हुए कुछ पता भी नही लगेगा। कितनी योनियाँ हैं, कितने शरीरके कुल हैं, कितने जगत्मे लोकके साधन है। किस स्थानमे, कितनी बार, कहाँ जन्म लूगा, कितने कितने शरीरोमे कितनी बार जन्म लेते रहेगे, कुछ पता तक भी नही रहेगा। अभी मनुष्य है, ज्ञान साफ है, स्वाधीन है। हम दूसरोकी बात समझ लेते है। दूसरोको अपनी बात समझा देते हैं। पशु पक्षियोको देखो ऐसा जन्म होता क्या ? उनके अक्षरमय भाषा नही है। दूसरोकी बात वह दूसरोसे क्या कहेगे, उनमे धर्मकी चर्चा क्या होगी ? कीडे, मकोड़े बहुतसे जीव है, वे क्या कर सकते हैं ? उन जीवोके मुकाबलेमे देखें तो हमारी अब कितनी उच्च अवस्था है ? हम और आप सम्यग्दर्शनके पात्र है, सम्यग्ज्ञानके पात्र हैं और सम्यक्चारित्रके पात्र हैं। अपनेमे पुरुषार्थ करनेकी योग्यता है, हमे कुछ अपना हित भी निरखना चाहिए, घर, द्वार, धन-वैभव इत्यादिमे ज्यादा दृष्टि नही रखनी चाहिए। यद्यपि इस गृहस्थावस्थामे सबका प्रायः यह निर्णय रहता है कि इसके बिना गुजारा चल ही नही सकता है। परन्तु जब यह घर-द्वार, धन वैभव छूट जावेंगे तो क्या इसके बिना गुजारा नही चलेगा। धन वैभवके बिना, घर द्वारके बिना आत्माका गुजारा चल जायगा, पर सम्यग्ज्ञान बिना आत्माका गुजारा नही चलेगा। इस अपने सम्यग्ज्ञानको छोड़कर यदि परपदार्थको महत्त्व देगा तो अशांति, कर्मोपासना तथा कर्म बँधना ही रहेगा और यदि अपने इस शुद्धस्वरूपको महत्त्व देगा, वही रमेगा, वही पहचानेगा, वही झुकेगा तो उसके बधन कटेंगे, शांतिका मार्ग मिलेगा और भविष्यमे इसका जब तक ससार है, उत्तम उत्तम भव समागम मिलेगा और निकट समयमे मुक्ति प्राप्त होगी। इसलिए अपने आपका सम्यग्ज्ञान करो, प्रमादी मत हो, इस अपने स्वरूपको देखकर प्रसन्न रहो। यह मेरा शाश्वत आनन्दमय चैतन्यस्वरूप है, सदा अलग है, यह सब अहङ्कारोंसे दूर है, मैं अपने स्वरूपमें हू। एक अपने आपमे सही स्वरूपका पता लग जाय तो इससे बढ़कर कुछ जगत्मे नही है। इस तरह अपने अद्वैतका अनुभव करो, यही मोक्षका मार्ग है। और ऐसा ही अद्वैत सब पदार्थोंमे है। उन सबमे भी उनके अद्वैतस्वरूपका बोध करें इसीका नाम सिद्धि है। आत्माके ध्यानमें, चिंतनमे, मननमे, अध्ययनमे, अनुभवमे अधिकसे अधिक पुरुषार्थी बनकर अपने जीवनको

सफल बनावें ।

स्वैकत्व मगलं लोके उत्तमं शरणं महत् ।
रक्षादुर्गं तदेवास्ति स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-५०॥

आत्माके शुद्धस्वरूपको आत्माका एकत्व कहते हैं अर्थात् जो आत्माका अपने आप, अपनी सत्ताके कारण जो कुछ सर्वस्व है वह आत्माका एकत्व है । इस एकत्वमे दृष्टि जाना यही शरण है । आत्माके केवल स्वरूपकी निगाह होना यही रक्षाका सबसे बडा दृढ किला है । जैसे बड़े मजबूत किलेके भीतर राजा लोग अपनेको सुरक्षित अनुभव करते हैं, इसी प्रकार इस निज सहज स्वरूपमे ही यह मैं हूं । ऐसा अनुभव करने वाला ज्ञानी अपनेको सुरक्षित अनुभव करता है । जब इस दृष्टिसे हट जावेगा तब इसे नाना विकल्प होगे और उसकी रक्षा करने वाला कोई नही होगा । उसको आराम करनेका, सुख शांति मिलनेका साधन व मार्ग नही मिलेगा । देखो इस एकत्वका शरण गहे बिना ही इतना बडा जगजाल बिछ गया । इसीसे सैकडो आपदाएँ बिछ गईं । परन्तु जो आत्मा अपने इस स्वरूपके किलेमे प्रवेश करके बैठता है उसकी सारी विपदाएँ खतम हो जाती हैं । एक भी संकटमे प्रायः वह नही रहता है । यदि इस जीवने आज तक ऐसा कार्य नही किया है तो इसीको फल है कि उसका संसार मे जन्ममरणका चक्र आया । यहांका परिवार यदि अच्छा लगता है, स्त्रीका, बच्चोका, धन का यदि मोह लगा हुआ है तो खूब एकदम खुले हुए दिलसे डटकर मोहको कर लो । खूब मोह कर लो, इसके बीचमे मोह कर लो । अधकचडे क्यो रहते हो ? अच्छा अजमा लो मोह करके, फिर बताओ कि क्या अपनेमे लाभकी व्यवस्था हो जायगी ? यदि इसमे सार नजर आता है तो इसमे ही लग जाओ । अपने आपमे ही पता चल जायगा कि मुझे इससे हानि मिली है कि लाभ मिला है ? इससे कुछ नही मिलेगा, क्लेश ही मिलेंगे, आत्मबल ही घटेगा, नाना शल्य बढेंगे, बाहर दृष्टि एकदम फैल जायगी, फिर आनन्दका उपाय बनाना कठिन हो जायगा । अनेक खोटी परिस्थितियां आ जायेंगी, यदि बाह्यमे मोह कर लिया तो । बाह्यमे कोई मगल नही है, कोई मुझे सुख देने वाला नही है । मगल वह होता है जो मगल है । मग अर्थात् सुखको जो लावे वह मगल कहलाता है । आनन्दको, सुखको जो लावे उसे मंगल कहते है । आप लोग णमोकार मत्र पढकर फिर चत्तारिदडक पढ़ते हैं उसमे यही तो बोला जाता है ।

चत्तारिमगल, अरहंता मगल, सिद्धामंगलं, साहू मंगल, केवलिपण्णत्तो धम्मो मगल । अर्थात् चार मंगल हैं; अरहत मगल हैं, सिद्ध मगल है, साधु मगल हैं और केवली भगवानके द्वारा प्रणीत धर्म मंगल है । मगलका अर्थ है जो मंग लावे व मगलावे । म का अर्थ है पाप जो पापको गलावे । वही परिणाम सुख दे सकता है । पापोको बढ़ाने वाले जो परिणाम हैं

वह मोह और अज्ञानसे भरा अर्थात् विषयोमे लगा हुआ रुचिकर तो होता है परन्तु उसका परिणाम खोटा ही निकलता है। यहाँ किसीका कुछ करने वाला कोई नही है। आत्मा और कर्म इन दोनोके परस्पर निमित्तनैमित्तिक भाव चल रहे हैं। जैसे परिणाम हो तैसे ही कर्म इसमे बँधेंगे। जैसा बद्ध कर्मोंका उदय आवेगा वैसे आत्मामे भाव होगे। ज्यो ही आत्माने खोटापन किया त्यो ही आत्मामे कर्मके बन्धन हुए और वह बँधा हुआ कर्म जब अपना समय पायेगा, अपने उदय कालमे आयेगा उस समय हो आत्मामे दुःख और खोटा परिणाम उत्पन्न हो जायेगा। न इस आत्माको कोई समझाने वाला है कि देखो खोटा उदय आ रहा है तो खोटा बन जावो और न कर्मको समझाता है कोई कि आत्मामे खोटा भाव आ रहा है तो तुम बँध जावो। परतु ऐसा प्राकृतिक सुयोग है कि जहाँ आत्मामे खोटा भाव आया कि वहाँ कर्म बँध गए। तात्पर्यकी बात यहाँ यह समझनी चाहिए कि यहाँ करने हरने वाले कोई नही हैं जिनकी भक्ति करें, जिनकी मिन्नत करें। तो कुछ अपनी जूस निकाल लें, यहाँ तो ओटोमेटिक सब हो रहा है। खोटेपनको रख लो तो दुर्गति प्राप्त कर लो, अच्छे भाव कर लो, लो सद्गति पा लो। यह तो जिस समय किया उस ही समयपर निर्भर है, इस कारण सदा अपने परिणामको स्वच्छ व संयत बनानेका यत्न होना चाहिए। परिणामकी निर्मलताके लिए क्या करना है? जैसा यह मैं हूं तैसा समझ लेना है। यह मैं आत्मा सबसे निराला हू ना, हू तो सबसे न्यारा, सबसे निराला मान लो। बस यही मौलिक यत्न आवश्यक है। अच्छा देखो यह पीछी चौकीसे न्यारी है कि नही, पुस्तकसे न्यारी है कि नही? है ना न्यारी, फिर न्यारा माननेमे कौनसा हर्ज होता है? है नही यह शरीर सबसे न्यारा, जो बैठे है उन सबसे यह शरीर जुदा है कि नही? है जुदा तो जुदा मान लो, इसमे कौन सी कठिनाई पडती है? अब जरा भीतरकी बात परख लो कि यह मैं आत्मा जो दु खी होता, सुखी होता, विकल्प करता है, समझनेकी चेष्टा करता है, यह आत्मा है ना सबसे न्यारा। यदि यह न समझमे आए, यह बात तो फिर धर्मके लिए और काम छोड दो, पहिले यह निर्णय कर लो। यह बताओ कि मैं सबसे न्यारा हू कि नही?

भैया! इस निर्णय बिना तो धर्मका पालन ही नही होगा। अपने आपकी ठीक ठीक समझ बना लो। यह काम सबसे बडा है और यह बात स्वाधीन है। जरा विकल्प छोड करके सच्चा विश्राम लेकर देखो कि तुरन्त समझमे आ जाता है। यदि कोई ज्ञानी ज्ञानका निषेध भी करे तो भी ज्ञान ही तो यह है, जो निषेध करेगा। इस ज्ञानसे इस ज्ञानको इस ज्ञानके अन्दर ले जायें और देखें कि इस ज्ञानका स्वरूप है क्या? जिस ज्ञानके द्वारा हम सारी दुनियाको जाना करते हैं वह ज्ञान खुद कैसा है? मैं ज्ञानके स्वरूपको देखनेमें लग

जाऊं तो सब ओरके विकल्प हट जावेंगे क्योंकि हम ज्ञानस्वरूप ही ज्ञानके स्वरूपको देखनेमे चल उठें और कुछ विशेष अन्तरमे पहुंच करके देखें तो शरीरकी सूरत भी भूल जायगी। शरीर है या नही है, यह भी भान न रहेगा। वहाँ केवल ज्ञानज्योति, ज्ञानस्वरूप ज्ञानतत्त्व ही अनुभवमे आयेगा। यह ज्ञानघन पदार्थ देखो जुदा है सबसे या नही, इसका ठीक निर्णय कर लो। समझमें आवे कि जुदा है तो बस ऐसा मान लो। यही धर्मका पालन है और समझमे न आवे कि जुदा है तो अच्छी तरहसे पहिले इसी तरहके निर्णयमे लग जावो। अगर जुदा नही है तो ऐसा ही मानते रहो। जैसा है तैसा मान लो। यद्यपि आत्मा जुदा है ऐसा ज्ञान होनेपर भी गृहस्थीमे जुदी जुदी व्यवस्थावोमे भी यह ज्ञानी लग जाता है तो भी आत्मा जुदा है। यह उसकी आत्माकी प्रेरणा अन्तरमे रहा करती है। यह सब तो लोकव्यवस्थाके लिए है। सबका जुदा जुदा परिवार है और यह उठकर उसी परिवारमे जायेगा, बात भी करेगा, उसी दुकानमे जायेगा। यह सब व्यवस्था है। जैसे व्यवस्थाका काम ठीक चले तो सब लोगोने मिलकर व्यवस्था बना ली कि ये इतने लोगोकी व्यवस्था कर लें, ये इतने लोगोकी। यह बात परिवारके रूपमे दी गई, सो सब जुदा जुदा कर रहे है। सब काममे व्यस्त हो रहे हैं। केवल लोकव्यवहारमे उच्छृंखलता न आ जावे इसके लिए व्यवस्था बना रखी है। इस व्यवस्थामे ज्ञानी भी पड रहे हैं। लेकिन प्रतीतिमे यह रहता है कि मैं तो अपनेमे आ रहा हू, अपनेको सबसे निराला, चैतन्यमात्र एक पदार्थ जिसका कुछ भी नाम नही है, जिसका कुछ आकार प्रकार नही है। यह मैं एक चैतन्य वस्तु हू। इसके सिवाय अन्य किसी पदार्थमे इसका रंच भी सम्बन्ध नही है, ऐसा देखना बस यही मंगल है। पापके कामसे पाप नही कटेगा और पापके काममे सुख नही मिलेगा। करोडोका धन मिल जाय तो उससे सुख नही मिलेगा। कितना ही वैभव बसा लें, शांति नही मिलेगी। अगर बाह्य पदार्थोंमे शांति होती तो तीर्थंकर चक्रवर्ती जैसे महापुरुषोको लोकवैभवमे शांति क्यो न मिल जाती ? उन्हे ज्ञान जगा तब वे लोकका मोह छोडकर अपने एकत्वस्वरूपमे युक्त हो गए।

देखो मगल पाठ पढते है तब अरहंत सिद्ध साधुको मंगल कहकर, फिर अपने एकत्व को मंगल कहकर विश्राम पाते हैं। चार मंगल हैं ना, अरहत भगवान मंगल हैं, चार घातियाकर्मोंसे रहित, मोहसे अत्यत परे परम पवित्र ज्योति आत्मा अरहत भगवान्, हैं वह जिसके स्वरूपके स्मरणसे भव भवके पाप कट जाते है। वह अरहत मगल है जिसके स्वरूपके स्मरण करने व अपने स्वरूपका ज्ञान करनेसे और वर्तमानमे जो कुगति हो रही है उसको मद्दे नजर रखनेसे, जो आनन्दसे मिला हुआ पछतावा होता है उसमे जो आंसू बहता है उससे मानो भक्तके कितने ही पाप कट जाते है, पापकर्म धुल जाते हैं। बहुत शुद्ध चित्त होकर ध्यान तो

बनाओ कि आसमानमे यहांसे ५ हजार धनुष ऊपर, मायने २० हजार हाथ ऊपर एक प्रभु विराजमान हैं जिनकी पूर्ण महिमाके कारण स्वर्गके देवता लोगोने आकर एक बडा मंडप बनाया है जिसके आगे जगत्मे कोई ज्ञानीका वैभव नही हो सकता है। दस बारह कोशमे चौबीस कोशमे एक मडप बना हुआ है जिसमे कई गोलोमे कितने ही सुन्दर कोट, खातिका, बाटिका, चैत्यालय आदि रचे हैं, बीचमे प्रभुका दरबार है, स्फटिक भित्तिकाओसे घिरी १२ सभायें है, इसे समवशरण कहते है।

समवशरणका अर्थ है जीवोको अच्छा पूरा शरण मिले। इसके नीचे कितने ही सोपान लगे हुए हैं। बहुतसे पर्वत जहां नीचे आ गए हैं उस मडपकी ओर, जिसमे कहते हैं कि समवशरण अच्छी तरहसे पूरा है जहां शरण मिलता है, ऐसे समवशरणकी ओर देवता तथा मनुष्य लोग मनमे पुलकित होकर धर्मसाधनोमे उनके उपदेशोको सुनते जा रहे है। देखो ना, आनन्दमे नाना प्रकारके गुणानुवाद करते हुए नृत्य कलामे साथ चले आ रहे हैं। ये देवांगना व देवता लोग हर्षित हो रहे हैं और प्रभुमे गुणानुवादोके पीछे अपने परिवारको भूल गए है। देखो भैया, यहां हो जब आप किसी त्यागीका आदर करते है तो पहले अपने त्यागी को ही अपना मानते हैं, पहले त्यागीको खिलाते हैं, चाहे बच्चे भूखे पडे रहे, फिर तो यहां तीन लोकके नाथकी बात कही जा रही है। अपने प्रभुके पीछे अपने परिवारको त्यागकर चले जा रहे है। उन्होने अपने परिवारको भूलकर उस प्रभुको कितना अधिक माना होगा? उनका विश्वास है कि मेरा शरण मेरा प्रभु है। मेरे समस्त संकटोको टालने वाला मेरा प्रभु है। कितने ही प्रकारके गीतवादित्रोके दिव्य शब्द होते चले आ रहे है। धन्य है उन परम आत्मावोको जिनके विकासके कारण दुनियाके लोग एकचित्त होकर, आकर्षित होकर जिनका चरणसेवन प्राप्त कर रहे हैं। यही अरहत भगवान मगल है। फिर कहते हैं कि सिद्ध भगवान् मंगल हैं जो इस शरीरके झझटसे सदाके लिए मुक्त होकर ज्ञानानन्द स्वरूपमे विराज रहे हैं। ऐसा सिद्ध प्रभु वही मेरा सब कुछ है।

ममताके साधनभूत परिवारके बच्चे भी कुछ कहने आवें तो भी भक्तिके समय तो विशेषतया ही ज्ञानीके भाव रहता है कि मेरेको किसी कार्यसे प्रयोजन नही है। जगत्के बड़े बडे बाह्यपदार्थोंसे या सबसे उत्कृष्ट तो यह प्रभु हमारा है, जो समस्त राग, द्वेष, मोह भावोसे रहित और इस शरीरसे रहित, ज्ञानानन्दस्वरूप विराजमान है। वह प्रभु इसके लिए मंगल है। वह साधु जिसको केवल अपने शुद्ध स्वरूपके अनुभवका ही काम है, केवल अपने शुद्ध स्वरूपमे ही जिनकी रुचि है, इसी कारणसे जिनके शरीरमे एक धागा भी नही है, न वस्त्रो को रुचि है, न सांसारिक कार्योंकी रुचि है, जिनके वैराग्य मुद्राके दर्शन करने मात्रसे

उसके आत्मरसका भी अनुमान हो जाता है। शरीरका साधन समझकर यदि शरीरके लिए आवश्यक समझा विवेक ने तो यह विवेक दिनमे एक बार विधि मिली तो आहार करा देता है जिनको भोजनसे भी रुचि नही है, जो अपने स्वरूपके अनुभवके यत्नमे रहते है अन्य कुछ झंझट नही रखते हैं, ऐसे वे ज्ञानानन्दघन साधु परमेष्ठी हैं। ऐसे साधुवोके दर्शनसे भव भव के पाप कट जाते हैं। अरहंत सिद्ध इस आत्माका मगल बनकर अपने केवल स्वरूपमे परिणमता रहे। केवल भगवान् स्वरूपकी ओर दृष्टि होना यह धर्म है। सो धर्म ही मंगल है। इस आत्माका सहज शुद्ध जो स्वरूप है उसको लक्ष्यमे लेना यह धर्म बतलाया है। अन्तमे देखो वह धर्म ही मंगल कहा है। देखो जिसकी दृष्टि, जिसका विचार, जिसका उपयोग अपने काममे अधिक रहता है उसको बडे बडे पुरुष भी आदरसे देखते है। इस ही धर्म मंगलके प्रसादसे साधु पूज्य हैं, इस ही धर्म मगलके प्रसादसे साधु अरहंत सिद्ध भगवान् बने है। यह निजधर्म हमारा मगल है। इसका हम केवल भावका विचार करेंगे। हमको मिलता है या सबका काम बन सकता है, यह भी मालूम होता है। दूसरी बारमे शुद्धिके उपकारमे, आनन्द मे, अपने आपके धर्मसे धर्मका काम हो सकता है। उसके समान आनन्दमे किसीका उपयोग अपने द्वारा कुछ नही हो सकता है। केवल भगवान्‌की ओर अपना उपयोग करनेसे धर्म मंगल हो सकता है। इसी प्रकारसे ये चार उत्तम हैं और ये चार शरण है। देखो इन चारोमे पहिले हितकारी अरहतका ध्यान किया है जिनके कारण सिद्धका भी ज्ञान हुआ। बादमे सुगमप्राप्त उपकारी साधुका ध्यान भी किया है। अन्तमे पूर्ण सार शरण कहा है। केवली भगवान्‌के द्वारा कहा गया धर्म ही शरण है। केवल भगवान्‌ने इतना कहा है। क्या कहा है? इतनी बात जो हम भूल गए थे, इसका ही प्रभुने बोध कराया है। ऐसा केवल अपने स्वरूप सत्तामात्र चैतन्यमयकी दृष्टिमे अनुभवो तो यह एक ऐसी दृढ कला है कि ऐसा भी उपद्रव आ जाय कि जिससे तीन लोकके जीव अपना अपना रास्ता छोडकर कही भी हटकर घूमने लगें, बिछुडने लगें, डरने लगें, किन्तु यह ज्ञानी पुरुष अपने पंथसे विचलित न होगा, जो अपने स्वरूपरक्षाके किलेमे आराम कर रहा है। जैसे माना कि जीव पानीसे ऊपर मुंह उठाकर चलते रहते हैं और जरासा भी उपद्रव उनके सामने आवे तो वे पानीमे डूब जाते हैं। सारे उपद्रव तो शान्त हो गए।

इसी प्रकार ज्ञानी पुरुष भी कभी अपने ज्ञानसे बाहरी ऊपरी पदार्थोंकी ओर जब मुंह करता है और वहाँ आकुलता तो होती ही है तो तब झट ही बाहरी पदार्थोंसे मुख मोडकर अपने उपयोगको अपने ही ज्ञानमे डुबा दे तो सारे उपद्रव खत्म हो जाते हैं। पर ऐसा कर सकने वाले विरले ही ज्ञानी होते हैं। जगत्‌के ये बाहरी पदार्थ जहाँ अज्ञानी आनन्द

मानता है उसको ज्ञानका पता भी नही । इसी कारण ज्ञानियोंमे रहने वाले, ज्ञानियोंके संगमे ही वसने वाले शीघ्र आत्मानुभव करनेके योग्य हो जाते हैं । वस जिन्होने अपने आपके अन्त-र्मर्मका पता लगा लिया वे पुरुप उपास्य है । हम उनके गुणानुवादमे अधिक अनुरागी रहे। हमे जीभ मिली है तो इस जिह्वाका अधिक उपयोग कर लें । जिह्वाके द्वारा गुणी पुरुषोके गुणानुवादोसे अपनेको गुण लाभ मिलता है । जिह्वा मिली है तो हम कल्याणके लिए । हमे विनाशीक इस जिह्वाका मन मिला है तो गुणी पुरुषोका वैयावृत्य कर लो । सर्व व्यवहार धर्मका प्रयोजन आत्मधर्मका पालन है । आत्मस्वभाव व वस्तुस्वभावका दर्शन करना ही धर्म का पालन है । वस्तुस्वभावके जाननेका सुन्दर उपाय स्याद्वादकी विधि है कि भाई अपने आ-पको पहिचानो, सब वस्तुओको यथार्थरूपमे पहिचानो । देखो जितनी वस्तुयें हुआ करती हैं वे अपने अपने उत्पाद व्यय ध्रौव्यमे ही रहती है । वे सब केवल अपने आप सत्ता लिए हुए है । वे सब अनादिसे हैं और अनन्त काल तक हैं और वे अपने आप ही अपने स्वरूपमे परिणमते रहते हैं । अपने ही परिणामसे अपने लिए उत्पाद करते हैं और अपनेमे अपने लिए अपने आप अपनी पूर्व पर्यायका व्यय करते हैं । प्रत्येक पदार्थ अपनेमे अपने लिए अपने आप विकसित व विलीन होते हैं । फिर भी प्रत्येक पदार्थ अपने आप अपने लिए अपनेमे अपना सत्त्व बनाए रहते हैं । यही पदार्थोंका स्वरूप है ।

हे आत्मन् ! हम सब भी एक पदार्थ हैं । अपने आप बनते हैं । इन पदार्थोंका अन्य किसी पदार्थोंसे रच भी सम्बन्ध नही है । सम्वन्ध नही है तब श्रद्धामे पूरे तौरसे सबसे न्यारा अपनेको समझो । सत्य श्रद्धा नही पकड़ी तो ससारमे रुलना पडेगा ।

हे आत्मन ! तू पवित्र है, अपनी प्रभुताको देख, इस ही प्रभुके प्रभुत्वकी भक्तिसे तू पाप काटेगा व सुख पावेगा । यही मगल है, यही उत्तम है, यही शरण है, यही रक्षक है, यही महान् कला है । यह ही अपने आप और स्वय ही ज्ञानानन्दमय अपने आपको ससारके सर्वक्लेशोसे मुक्त करनेका उपाय है ।

स्वैकत्वमौषध सर्वक्लेशनाशनदक्षकम् ।
चिन्तामणिस्तदेवास्मिन् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-५१॥

जीवका शरीरसे घनिष्ट सम्बन्ध है और शरीरमे जब-जब रोग होते है तब तब इस जीवको दु.खी भी होना पडता है । पर इस रोगका मूल कारण क्या है और इस रोगके मिटने का मूल उपाय क्या है ? इस बातमे मोही जीवकी दृष्टि नही जाती । यह शरीर मिला है तो जैसे गति नामकर्मका उदय हुआ शरीर नामकर्म सघात, आपद नामकर्मका उदय हुआ, उस उसके अनुसार जीवको शरीर मिला करता है और वह नामकर्म कैसे मिलता है ? जैसे जैसे

जीवके परिणाम होते है वैसे वैसे कर्मोंके बन्धन होते हैं, शरीरमे रोग होते हैं, व्याधियाँ होती है, मृत्यु होती है, शरीर सड़ता गलता है, खोटा शरीर मिलता है, इन सबका कारण आत्माका परिणाम है। इन सब विपदाओंका मूल कारण क्या है ? इसके अन्तरमे कारण खोजो तो खोटा आत्मपरिणाम उनका कारण मिलेगा। जो जो गुजरते हैं उन सबका कारण आत्माका परिणाम है। जैसा परिणाम किया वैसा कर्मबन्धन हुआ। तैसी सामने स्थिति आ गयी। इस शरीरमे विपदाए, विपत्तियां कैसे मिटें ? इसका कारण सोचें तो वह भी आत्मा का परिणाम है। अर्थात् जो उपयोग निज आत्माके सहज, शुद्ध चैतन्यतत्त्वको पहचानता है, वहाँ ही रमता है, उसको ही आत्मा अंगीकार करता है। वह परिणाम तो सर्वक्लेशो, व्याधियोके नाश करनेके लिए औषधि रूप परिणाम है। सब क्लेशोको नष्ट करनेका शुद्धपरिणाम ही उपाय है। जो अपने आपके यथार्थस्वरूपको छोडकर अन्य किसी जगहमे लगते है तो विपत्तियाँ आती है, संकल्प होगे, विकल्प होगे, क्लेश होंगे। जगत्के सब कोई पदार्थ मेरे नही है, सब न्यारे-न्यारे हैं, एकका दूसरेसे त्रिकालमें कुछ सम्बन्ध नही होता। चाहे जितना वैभव हो, चाहे जितना पुण्यवान् हो, उन्हे अपना स्वरूप ही उनको मिलेगा। इसके अतिरिक्त परमाणुमात्र भी नही है। जो अपना नही है उसको अपना मान लेना उसको अध्यात्मलोक मे चोर चाहते हैं। कैसे चोर कहते है ? देखो यहाँ भी जो दूसरोकी चीजोंको उठा लें, अपने घरमे रखलें और मनमे यह धारणा बना लें कि यह चीज मेरी हो गई। यह धारणा जिसने बना लिया तो वही चोर है। इसी प्रकार जगत्के ये सब पदार्थ अपनी अपनी सत्ताके है। एक दूसरेसे परस्पर अत्यन्त भिन्न हैं। जो भिन्न चीजें है, जिनसे त्रिकालमे हमारा कोई सम्बन्ध नही है, जो अपनेमें ही अपना उत्पाद करता है, अपनेमे ही अपनेको बिगाडना है और अपने स्वरूपसे बना रहता है। त्रिकालमे उनका अपना यही काम है। किसीका किसी से रच-सम्बन्ध नही। फिर भी उनमे यह धारणा करना कि यह मेरा है। यही तो परमार्थकी चोरी है। यह भगवान् आत्मा तो शुद्ध स्वरूप है। यह भगवान् स्वरूप आत्मा अपने स्वरूपको भूलकर बाहरी पदार्थोंमे आपा अगीकार करता है। यह मेरा है, यह उसका है आदि। यही चोरी होती है। हमारा है नही पर मानते है कि हमारा है। जैसे लोकमे चोर क्यो कहते हैं ? हमारी चीज नही है पर मानते हैं कि हमारी चीज है। जो चोरी करते हैं वह गिरफ्तार किए जाते है, उनको सजा होती है। यही हमारी बात है। हम परमार्थकी चोरी करते हैं। कर्म हमारे गिरफ्तार कर लेते है। यह हमारी सजा उस सजासे अधिक है। नाना प्रकारके शरीर धारण करना, जन्म मरणके चक्रमे आना आदि यह भी जो विपदाए हैं, घर बार, स्त्री, बच्चे वगैरह इस आत्माको वह सत्य नजर आ रहे है, ज्ञान को दवा

रहे है, सच्चाईको नही सोच सकते है। ऐसी विपदाएं देखो परमे आपा माननेसे ही पैदा कर लेते है। जैसे यह मेरा है, वह मेरा है आदि प्रकारसे सोचा तो तभी उन्हे आकुलता हो जाती है। क्यो ऐसा होता है वे अपनी दृष्टि बाहर लगाते है, जो जैसे है उन्हें वैसा नही मानते। जो जैसा हो वैसा मानना ही आकुलताओंको दूर करनेमे समर्थ है। अपने शुद्धस्वरूपका परिज्ञान कर लेना, यह सब विपदाओंको नष्ट करनेमे समर्थ है। दूसरा और कोई इन विपदाओंको नष्ट करनेमे समर्थ नही है। कही बाहर दृष्टि न जावे। धर्मके प्रसंगमें, वेशभूषामे, मजहबोमे, क्रिया पद्धतियोमे उन सबमे दृष्टि न डालो। केवल अपने अतरंगमे दृष्टि डालो, अपनेको केवल ज्योतिमात्र समझो अपने आत्माके प्रकट रूपमे दर्शन करो। इसीमे अपने प्रभुका दर्शन प्राप्त होगा। दूसरा उपाय नही है कि विपदाए दूर हो सकें। एक यही अनुभवका उपाय है जो सब आपदाओ, विपदाओंको समाप्त कर देता है। जैसे बच्चे लोग एक कथानक कहते हैं कि किसी जंगलमे स्यार, स्यारनी थे। स्यारनीको गर्भ था, प्रसवका समय था। स्यारने स्यारनीसे शेरके बिलमे प्रसव वेदनाको समाप्त करनेके लिए कहा। बच्चे हो गए स्यारनीको विधि समझा दी। स्यार ऊपर चट्टानपर बैठ गया। स्यारनीने अपने बच्चोको समझा दिया कि जब कोई आवे तो रोने लगना। एक शेर आया। बच्चे रोने लगे। स्यारने स्यारनीसे पूछा—बच्चे क्यो रोते है? स्यारनीने कहा कि बच्चे भूखे है, शेरको खाना चाहते हैं। शेर डरकर वहाँसे भाग गया। इस इस तरहसे १०·२० शेर आए तो वह सब भी डरकर भाग गए। सब शेरोने मिलकर एक मीटिंग की। सबने सोचा कि चट्टानमे ऊपर जो बैठा है उसकी सब करतूत है। सब शेरोने हिम्मत की और उस स्यारके पास पहुचे अब सब यह सोचते है कि इसके पास कैसे पहुंचा जाय? सोचा कि एकके ऊपर एक खडे हो जावें। उन सबमे से एक लगडा शेर था। सलाह हुई कि यह ऊपर चढ़ तो सकेगा नही सो इसको नीचे ही खडा करो। लंगडा शेर नीचे खडा होता है और एकके बाद दूसरा, तीसरा, चौथा खडा होता चला जाता है। इतनेमे ही स्यारनीके बच्चे रोने लगते हैं। स्यार स्यारनीसे पूछता है कि बच्चे क्यो रो रहे हैं? स्यारनीने कहा कि बच्चे लंगडे शेरका माँस खाना चाहते हैं। लगडा शेर इतना सुनकर घबडा गया। वह एकदमसे भागा। दूसरे शेर जो ऊपर चढ गए थे, भद्भद् गिरने लगे और सब भाग गए।

इसी प्रकार हम सब पर अनेको विपत्तियाँ छाई हैं। जितने जगत्के क्लेश है वे सब परमे आपा बाँधे है, इस बुनियादपर अडे है। ये सारे क्लेश, सारी विपदायें यो ही खत्म हो जायें। यदि परमे ममत्वबुद्धि जो है वह खिसक जाय। अच्छा परीक्षा ही करके देख लो। जैसे कहते हैं कि यह मेरा घर है। बताओ आपके पास क्या निर्णय है कि आपका ही घर

है। आपका शरीर भी नही है। विषय कषाय, विकल्पोका परिणाम तक भी आपका नही है। यह जो कुछ होता है यह भी आपका नही है। यह विषय कषायोके परिणाम आपके स्वभावमे नही है। अन्य कषायोके करने वाली भी यह आत्मा नही है। केवल मैं अपने स्वरूपको भूल गया हूँ, इसलिए सारे झंझट लग गए है। अब इस आत्माकी दृष्टि करनेसे शुद्ध स्वरूपकी पहिचान करो। समस्त क्लेश इस आत्मस्वरूपकी दृष्टिसे नष्ट हो जाते हैं। सब क्लेशोके नष्ट करनेकी सामर्थ्य इस आत्मदृष्टिमें ही है। देखो अंतरंगमे तपस्या करके जो निर्मल परिणाम होते है जिनसे घातिया कर्म नष्ट हो जाते हैं तो अरहत अवस्था मानी जाती है। अरहंत अवस्था आते ही उनका औदारिक शरीर परमौदारिक शरीर हो जाता है। घातिया कर्मके क्षयसे पहिले कोई साधु रोगी हो, कोई जर्जरित हो गया हो, वृद्ध हो, कैसा ही हो अरहंत होनेपर सारा शरीर निरोगपूर्ण, देदीप्यमान हो जाता है। इस शरीरमे कितने ही परिणमन आते हैं परन्तु वीतराग सर्वज्ञ अवस्थामे जब आत्मा हो जाता है तो फिर वह शरीर औदारिक न होकर परमौदारिक हो जाता है। अब भी देखो जब कोई रोग हो तब यदि भगवानकी भक्तिमे लीन होता है, शुद्ध निर्मल परिणाम होता है तब देखो रोग भी दूर हो जाते है। इसी कारण जो रोगी बुद्धिमान् होता है, पड़े पड़े निरन्तर णमोकार मत्र जप किया करता है। इन मत्रोमे इतनी विशाल महिमा है कि ससारके क्लेश दूर हो जाना तो सरल बात है, भव भवके बन्धन भी नष्ट हो जाते है, क्लेश और झफट भी समाप्त हो जाते है। ऐसी आत्माएं शुद्ध होती हैं।

दो प्रकारके पवित्र आत्मा है, एक तो जो आत्मा शुद्ध हैं वे हैं और दूसरे वे हैं जो शुद्ध होनेके प्रभावमें सफल हो रहे हैं। जो शुद्ध है वे हैं अरहत व जो शुद्ध होनेके प्रयत्नमे सफलता पा रहे हैं वे हैं आचार्य उपाध्याय और साधु कहते किन्हे हैं जिनको अपने यथार्थ-स्वरूपका विश्वास हो गया है, जो अपने आत्माके केवलज्ञानस्वरूपको शुद्ध निरखते है। ये आत्मा किन्ही रोगोसे सम्बन्धित नही हैं, ज्ञानस्वरूप हैं। ऐसा जो आत्मचिन्तनमे दृढ हो जाता है, ऐसा जो अपनेको देखनेके लिए बड़ा उत्कृष्ट लालायित हो जाता है, उसे दूसरी चीज जगतमे नही रुचती है, उसका परिवार छूट जाता है। आसार परिग्रह छूट जाते हैं, यह शरीर नही छूट पाता है। यदि शरीर भी छोड़ा जा सकता तो वह शरीरको छोड़कर बाहर ही आत्माकी उपासना करता। वे तो आहार भी नही करते, किन्तु विवेक आहार करवा लेता है। यह शरीर धर्मसाधनके लिए है। शरीरकी स्थितिके लिए आहार आवश्यक है सो दिनमे एक बार ही वे आहारकी एषणा करते है। एक बारसे ही यह शरीर टिका रहता है। एक बार जो आहार कर ले और बाकी समय तपस्यामे व्यतीत करे, निरन्तर आत्मसाधनमें लगा

रहे, ऐसी आत्माको साधु पुरुष कहते हैं। उनमे जो ज्ञानी साधु हैं, औरोको पढाते हैं जिनको आचार्य उपाध्याय घोषित कर देते हैं वे ज्ञानी साधु उपाध्याय कहलाते है। जो बडे बडे ज्ञायक हैं, साधुवोमे प्रमुख हैं, जिनकी आराधनामे साधु रहते हैं वह आचार्य कहलाते हैं।

देखो यह आत्मा ही परमेष्ठीका स्वरूप है। आत्मा ही मोक्षका मार्ग है। इस निज आत्मतत्त्वको, परमेष्ठित्वको निरखकर अपनी दृढ आत्मसाधना द्वारा अपना आत्मकल्याण कर लेना महान् विवेक व पुरुषार्थ है। वह आत्मा जिनके ज्ञान दर्शन-चारित्र श्रद्धा पूर्ण विकास को प्राप्त हो गए है जिसके ज्ञानमे सर्वविश्वके सकल ज्ञेयतत्त्व प्रतिभास होते हैं, ज्ञात हो रहे हैं, वे हैं सिद्धात्मा। ये प्रभु सर्वज्ञ होकर भी अपने आनन्दरसमयी हो रहे है। ऐसा परमानन्दका जो पिंड है उसीको परमात्मा कहते हैं। भगवान्के दर्शन करना है तो अपने स्वरूपमे दृष्टि दो। बाहरी चीजोमे न अपनेका पता चलेगा और न अपने भगवान्का पता चलेगा। यह इन्द्रियाँ इनको आत्माका घात करने वाला कहा गया है। जब यह जीव इन्द्रियोके घात करने मे लगा रहता है तो यह बरबाद हो जाता है। मुझे केवल ज्ञानदृष्टिसे काम लेना है। मैं ज्ञानमात्र हूँ, ज्ञानका ही कार्य करता हू और इसके अतिरिक्त कुछ नही करता, मैं अपने आपकी दृष्टिमे रहूँ, ऐसे उपयोगमे जो आनन्द होगा उस आनन्दमे वह शक्ति है जिसके कारण भव-भवके सचित कर्म भी ध्वस्त हो जाते हैं। बाकी तपस्याए जो की जाती हैं वे इन्द्रियोका कन्ट्रोलमे लानेके लिए की जाती हैं। इन बाहरी चीजोसे कर्म नही कटते, पर आत्मदृष्टिमे जो सतोष होता है उससे कर्म कट जाते हैं। हम इस ससारमे अनतकालसे भटकते चले आए। उन अनन्त पर्यायोमे कितनी इच्छायें की होगी कर्मके प्रसगमे, किन्तु उन चेष्टाओसे कुछ नही हुआ। जब धर्मका सयोग होता है। ऐसेमे भी यदि हमारी दृष्टि बाहर रमी, बाहर ही हम उलझे रहे, हम केवल अपने आपको न पहिचान सके तो यह सब बाहरी बातें मिट जायेंगी, हम कोरेके कोरे रह जावेंगे।

एक सेठ था। उसकी राजासे बडी मित्रता थी। कुछ दिन बादमे वह सेठ गरीब हो गया। कुछ नही उसके पास रहा। एक दिन बोला—राजन्! कुछ निधिका सयोग हो तो पुनः व्यापार करूँ। राजाने कहा—२ बजेसे ४ बजे तकका समय देता हूँ। रत्नोके खजाने मे जाकर जितना तुमसे हो सके रत्न ले आवो। सेठ रत्नोके खजानेमे चला गया। ज्यो ही वह खजानेके अन्दर पहुचा वहाँ एक भारी महल था, हाल था। वहाँ देखता है कि यहाँ बहुत सुन्दर सुन्दर खिलौने भी हैं, बड़े कलायुक्त खिलौने हैं, चलते फिरते खिलौने हैं। खिलौने देखना शुरू किया। खिलौनोमे ही उसका मन रम गया। इतनेमे ही चार बज गए। चपरासी ने निकाल दिया। वह फिर राजाके पास आया। बोला—महाराज मैं तो खिलौनोमे ही रह

गया। मैं कुछ नही कर सका। राजाने कहा—कल २ बजेसे ४ बजे तककी इजाजतमें तुम्हे स्वर्णके खजानेमे जानेको देता हूं। बस सेठ उस स्वर्णके खजानेमे गया। वहांपर भारी मैदान था। वहां उसने सुन्दर सुन्दर घोडे देखे। वह घोडोका बडा शौकीन था। यह घोड़ा देखा, वह घोडा देखा, एक घोड़ेपर बैठ गया। चपरासीने जब चार बज गए तो खजानेसे बाहर निकाल दिया। वह सेठ राजाके पास गया। बोला—महाराज, यह भी समय मेरा यो ही गया। मैं घोड़ोमे ही पडा रहा। राजाने कहा—कल २ बजेसे ४ बजे तकका समय देता हूँ। एक चाँदीके खजानेमे जाना। जितनी चाँदी ला सको ले आना। वह सेठ चाँदीके खजानेमे गया। वहांपर उसने सुन्दर सुन्दर चित्र देखे। नाना रूपके, भिन्न-भिन्न प्रकारके चित्र देखे। उन बाह्यचित्रोको देखनेमें ही उसका मन रम गया। इस तरहसे ४ बज गये। चपरासीने खजानेसे बाहर निकाल दिया। सेठ फिर राजाके पास गया। बोला—राजन्, आजका भी दिन व्यर्थ ही गया। राजा बोले कि ३ दिन हो गए, तुम नही चेते, अच्छा तुम्हें एक दिनका समय और दिया जाता है। एक तांबेके खजानेमे कल जाना। जितना तांबा ला सको ले आना। चौथे दिन जब सेठ खजानेमे गया तो वहांपर एक बहुत ही अच्छा स्प्रिंगदार पलग था। पलंग की परीक्षाके लिए वह उसी पलंगपर लेट गया। नीद आ गई। इस तरहसे ४ बज गए। तब चपरासीने निकाल दिया। इसी तरह भाई इस मनुष्य पर्यायके चार पन होते हैं। बच्चा हुआ, फिर बालक हुआ, फिर युवा हुआ, फिर वृद्धावस्था हुई। कुमारावस्थामे भी धर्मपालन करना आवश्यक है। ८ वर्षका बालक भी अरहृत हो सकता है। बालिग जैनोंके सिद्धांतमे ८ वर्षका माना गया है। आठ वर्षकी आयुमे तो सम्यग्ज्ञान सम्यक्त्व व संयम करता है, परमात्मा हो सकता है। कुमार अवस्थामे भी धर्मसाधना नही किया, खेलोमे ही समय बीत गया। युवावस्थाका समय भी स्त्रीप्रेममे व्यतीत हो गया, वृद्धावस्थामे पडे पडे अधमरेसे हो गए। बताओ किस पनको इसने सार्थक किया? देखो छहढाला एक बहुत सुन्दर पुस्तक है। वह तो प्रत्येक गृहस्थको कठस्थ भी होनी चाहिए। उसमे पहली ढालमे चारो गतियोके दुःख बताते हुए मनुष्यगतिमे वर्णन किया है कि—

बालकपनमे ज्ञान न लह्यो। तरुण समय तरुणीरत रह्यो॥
अर्धमृतकसम बूढापनो। कैसे रूप लखे अपनो॥

बचपनमे तो ज्ञान नही किया, जवानीमे स्त्रीरत रहा, बुढ़ापा अर्धमृतकसम है, बताओ अपना रूप कैसे लख सकता है? भाई कुछ लोग ऐसा सोच सकते हैं कि बुढ़ापा तो आता ही है, सब कुछ कर लें, बुढ़ापा तो आयेगा ही और बुढ़ापेमे सब खराबी होगी तो किस लिए धर्म पुरुषार्थ करें। इसका समाधान यह है कि जिस जीवने बचपनमे ज्ञान नही

किया व उसी जीवने संयम न कर विषयरति की, ज्ञान नही किया तो युवावस्थाके बादमे यह जीव बूढा हो जाता है, अधमरा हो जाता है तो वह कुछ नही कर पाता है। जहाँ धर्म की ओर दृष्टि रहे ऐसा पुरुष बूढा है तो क्या हानि है? आत्मस्वरूपकी ओर तो दृष्टि ज्ञानी ही डाल सकता है। बडी अवस्थामे तो उन ज्ञानियोका ज्ञान ही मज जाता है, उनको हानि नही होती है। ज्ञानी तो वह है जिसकी आत्माके स्वरूपकी ओर दृष्टि रहे, वही ज्ञान वास्त विक है। बडे बडे रेडियोका आविष्कार, वैज्ञानिक कलाएं आ जावें तो यह वास्तविक ज्ञान नही है। मैं आत्मा ज्ञानस्वरूप हू, यदि ऐसा अनुभव नही है तो जगत्मे रच भी शाँति नही हो सकती है। यदि मैं बाहरी पदार्थोंमे दृष्टि कर लूँ, उनको ही अपना मान लूँ तो क्या बाहरी पदार्थोंमे कुछ अधिकार पाना अपने वसकी बात है। अरे इन बाहरी पदार्थोंका प्रवेश भी इस आत्मामे नही है। पर जिन्होने विकल्प बनाया है उन विकल्पोंके यो ही भ्रमसे परको अपना मान लिया है। इसका फल यह होता है कि वे कर्मबन्धनोमे बध जाते हैं। ऐसा एक निर्णय करो कि मैं आत्मा ज्ञानघन हू, मेरेसे ही मेरा काम पूरा पडेगा। यहाँके चकाचौंध चार दिनके हैं, मिट जावेंगे। यहाँ कुछ नही रहेगा, मैं एक सत् सार वस्तु हू, मैं रहूगा, अनादिसे हू और अनन्त काल तक रहूगा। अब हमे क्या करना चाहिए जो हमे क्लेश न हो। मैं अमुक जातिका हू, कर्मके उदय है, मैं अमुक कुलका हू, अमुक मजहबका हूं, अमुक धन वाला हू, इतना समझदार तथा धर्मात्मा हू—ये सब विकल्प ही विपदाएं हैं। ये बाधाए वह अपने आपमे डाल रहे है। इन सब बातोसे दूर रहना चाहिए। अरे तू तो निर्विकल्प है। तेरेमे विषय कषाय ही नही है। तू तो ज्ञानसे रचा हुआ है। इसके अतिरिक्त और कुछ नही है। यही दृष्टि धर्मका पालन है, यही कल्याणका उपाय है। यह अगर कर लिया तो सब कुछ कर लिया और अगर नही कर पाया तो कुछ नही कर पाया। यदि ऐसा नही कर पाया तो उद्धार नही होगा। दिखाकर नही, बनाकर नही, गुप्त ही रहकर तू अपना कल्याण कर सकता है। बनावट, सजावट, दिखावट इत्यादि करता है। गुप्त होकर आत्मरूपकी देखने की कोशिश नही करता है। बननेसे धर्मकी बात कैसे होती है? दिखानेसे धर्म हमारा खत्म होता है, सजानेसे धर्म हमारा नही रहता है। सो अपने आत्मस्वरूपको अपना लो और मनन करलो। इसमे ही रमने से तुम्हारा कल्याण हो सकता है अन्यथा कल्याण कोसो दूर है। जो अपनेमे है उसे देखो और अगर न देखो तो अहकारोसे घुलमिल जावोगे। कही कीडे मकोडे हो गए तो सारी इज्जत धुल जायगी। यह क्यो धुल गयी? यह सब क्या है? परिणाम आया, सारी इज्जत धुल गयी। एक जगह एक छोटी कहानी लिखी है कि एक साधु था और एक शिष्य। दोनो एक राजाके बगीचेमे पहुच गए। वहाँ पलग पडे हुए थे।

एक पर संन्यासी जाकर बैठ गया और दूसरेपर शिष्य जाकर बैठ गया। संन्यासीने शिष्यसे कहा कि तुम बनना नही। थोड़ी देर बाद राजा घूमने आया। उन्हे देखकर राजा ने सिपाही से पूछा कि बगीचेमे ये कौन बैठे हैं ? सिपाहीने कहा महाराज दो अपरिचित व्यक्ति बैठे हैं। पता नहीं है कि कौन है ? सिपाही शिष्यके पास जाकर कहता है कि तुम कौन हो ? शिष्य ने कहा कि तुम देखते नही हो कि हम साधु है। उस शिष्यको सिपाहीने कान पकड़कर बाहर निकाल दिया। सिपाही संन्यासीके पास जाकर पूछता है कि तुम कौन हो ? साधु कुछ नही बोलता है। जब सिपाही राजाके पास गया तो बोला कि राजन् एक मनुष्य है, मौन है, वह कुछ बोलता ही नही है और शिष्यसे पूछा कि तुम कौन हो ? उसने जवाब दिया कि देखते नही हो कि मैं एक साधु हू। सो मैंने उसे कान पकड़ कर बाहर निकाल दिया है। राजाने कहा कि जो मौन है, कुछ बोलता नही उसे छेडा तो नही था। अरे वह कोई संन्यासी होगा। राजाके पास जाने पर शिष्यने गुरुसे पूछा कि मैं क्यो पीटा गया ? आप तो यहाँ बैठे हैं। गुरुने कहा कि तुम बने तो नही थे ? शिष्य बोला कि मैं बना तो नहीं था, यही कहा था कि देखते नहीं मैं साधु हू। गुरु बोले यही तो बनना हुआ। अरे तू तो ज्ञानस्वरूप आत्मा है। तू अपने आप भ्रमवश मानता है कि मैं गृहस्थी हूं, साधु हू।

इन बाह्य वेशभूषाकी दृष्टि छोडकर अपने परमार्थ स्वरूपको देखो। है तो यह ज्ञानस्वरूप आत्मा, और बनता है और कुछ; अन्तर्दृष्टि करनेपर यह अनुभव करेगा कि मैं सर्व साधारण एक चैतन्यमात्र वस्तु हूँ। जो अपने आप चैतन्यमात्र ही अनुभव करे वह न रुलेगा। निकट समयमे ही उसकी मुक्ति हो जायगी। हमे न देखना है कि मैं दयालु हू अथवा न देखना है कि मैं तपस्वी हूं। मुझे अपने ज्ञानस्वरूपका सिंचन करना है। यह सिंचन ज्ञानसे होता है, ज्ञानकी उपासना की तो भी यह ज्ञान होता है कि मैं ज्ञानघन हू। यह दिखानेमे, बनावटमे, सजावटमे, सोचनेमे न मिलेगा। उससे कीडे मकौड़े बनते रहना होगा। अपने आपमे ही रमनेका प्रयास करो। इसीमे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र है। इस रत्नत्रयके एक तत्त्वमे आत्माके एकत्वका विकास है। यह एकत्वदर्शन चिंतामणि दर्शन हैं। इसके दर्शन बिना ही शरीरके क्लेशोका सम्बन्ध हो जाता है। यही ज्ञानमात्र स्वरूप हमारे और आपके उपयोगमे रहे। यह ही आत्माका रूप है। जिसने बाहरी पदार्थोंमे दृष्टि नही डाली उसका ही जीवनमे कल्याण है।

ज्ञायकत्वे विकारः क्व रागादेः सन्निधावपि।
सोऽहं ज्ञायकमात्रोऽस्मि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-५२॥

इस आत्मामे राग आदि विकार व्यक्त हो रहे हैं। उन रागादिकोके होते हुए भी

आत्माका जो ज्ञायकत्व है, उस ज्ञायकत्वमें विकार नही है। सफेद वल्बमें जैसे हरा रंग चढा देनेसे वह प्रकाश हरा मालूम होता है, खूब हरा मालूम देता है। पर क्या वह हरा होता है ? नही। उसपर हरा रग चढा दिया गया है। जैसे जल है, उसमे हरा रग मिला दिया जाय तो क्या जलमे हरा आदि रंग आ जायगा ? नही। जल जल ही रहेगा। जैसे विजली के तारका प्रकाश है वह प्रकाश क्या हरा, नीला, पीला आ जाय और उससे फिर हरा, नीला प्रकाश भी झलके तब भी बिजलीका जो काम है, बिजलीका जो निजी प्रकाश है, ज्योति है, क्या उस ज्योतिमे विकार आ जायगा ? नही। उस ज्योतिमे विकार नही आ जा-यगा। इसी प्रकार यह शुद्ध ज्ञायक स्वरूप भगवान आत्मा इस शरीर देवालयमे विराजमान है। इस शरीरमे कई प्रकारके रूप रग आदि नजर आ रहे हैं। क्या इन पौद्गलिक पदार्थोंसे जीवोमे विकार आ गया, ज्ञायकस्वरूपोमे क्या विकार आ गया ? नही। अन्तरमे क्रोध, मान, माया, लोभ, असयम, योग तथा नाना प्रकारके विकार होते रहते है। विकार हैं, पर इस आत्माको जो स्वरूप है वह ज्ञानमय है। क्या उस ज्ञानमय स्वभावमे विकार आ गया ? अरे विकार होते हैं फिर भी यहाँ विकार नही होते। ऐसा मर्म जब आपकी समझमे आता है तब आत्माके मर्मका पता चलता है। ५ सेर पानीमे लाल, गुलाबी, हरा कोई रंग डाल दो तो वह सारा पानी बिल्कुल हरा, नीला, गुलाबी या अन्य कोई रगका ही नजर आता है। यह पानीका स्वरूप है क्या ? उस पानीके स्वरूपमे हरा, पीला, नीला अथवा गुलाबी रग आ गया। वह केवल रंग डालनेसे ही रगीन नजर आता है, पर पानीका स्वरूप रगीन नही। पानी अब भी अपने स्वरूपमे स्वच्छ ही है, पर उस पानीकी स्वच्छता रगसे ढक गयी है। यह ज्ञायक स्वरूप भगवान अपने स्वरूपमे स्वच्छ है, अपने स्वभावमे अविकृत है, किन्तु इन विपत्तियोके सम्बन्धसे, इन कषायोके परिणामोसे इस भगवान आत्माका यह शुद्ध स्वच्छ स्व-रूप ढक गया है। ढक गया है तो भी स्वरूपमे विकार नही आया। स्वरूपमे विकार आ गया होता तो त्रिकालमे भी यह विकार नही मिट सकता था। पानीमे रग आ जानेपर भी कुछ समय बाद रग बैठ जाता है और ऊपर पानीमे पतला रंग मालूम होता है। कभी कभी पानी बिल्कुल ऊपर स्वच्छ ही दिखता है। रंगमे रंग है और पानीमे पानी है। रगको घोल दें तो सारा रग ही दिखता है और वहीका वही पानीमे सारा पानी दिखता है।

अब घरकी बात देख लो। घरमे पिताजी अपनी धोती और साफा पीले रगसे रगते हैं तो बोलते है कि साफा पीला कर दिया। साफा पीला हो गया, नीला हो गया, लाल हो गया। धोती पीली हो गई, लाल हो गई, नीली हो गई क्या ? चाहे इनको बार बार भीचें, फिर भी रग नहीं निकले तो भी रगमे रंग ही है, धोतीमें धोती है, वस्तुमें वस्तु है। वह

तो चीजें अपने स्वरूपको लिए हुए है। इतनी ऊपरी भेदकी बातें भी मोही जीव कैसे पा सकते हैं ? भीतमे कलई पोती गई तो भीत लगती है कि सफेद है अथवा यदि रंगमे परिवर्तन करके हरा रंग पोत दिया गया तो कहते है कि भीत हरी है। भीत हरी नही होगी। भींत भीत ही है, जैसी थी वैसी ही है। यह हरा रंग हरा हो गया है। भीत हरी नही हुई। इतनी बाहरकी भेदकी बातें समझमे जल्दी नही आती है, पर कुछ तो समझमे आ ही रही हैं। यह हरा रंग है, वह रग ही है। भीत इसमे वहीकी वही है। लेकिन लोग इसको भूल गए है। वह समझते हैं कि भीत हरी है। भीतका आश्रय पाकर वह आधी वर्ग इंचका रंगका ढेला १ हजार वर्ग गजमे फैल गया, पर देखने वाले लोग यह समझते है कि भीत हरी है, पर ऐसा नही है। भीत तो भीत ही है। ऐसे अनेक उदाहरण ले लो।

अब भाई धीरेसे अपनी आत्माकी ओर आवो। शरीरमे यह जीव बद्ध है। पर जीव इस प्रकार नही होगा जैसा कि यह शरीर है। बुद्धिमत्ता है तो अपने ज्ञानस्वरूपमे ही दृष्टि देकर परख लो कि हम हम ही मे है। गायको जेवरीसे बांध दिया जाय। लोग देखते है कि गायको इस जेवरीसे बांधा है। गायका गला रस्सीसे बांध दिया गया है पर गायका पूरा गला ज्योका त्यो है। वह रस्सीसे नही बँधी है। उसके गलेके चारो ओर रस्सी लटकी है। उसके चारो ओर रस्सी है। उसका ही एक छोर दूसरे छोरसे एकदमसे ऐसा लगता है कि गला रस्सीसे बँधा है। अरे गलेमे गला है, रस्सीमे रस्सी है, रस्सीका यह बन्धन है, गलेका बन्धन नही। देहमे देह है। शरीरमे आत्माका बन्धन नही है। जरा बाहर देख लो, फिर वही विकल्प आता है कि मैं देहमे बँधा हू। अरे बाहर न देखो। अपने आनन्दघन स्वरूपको देखो तो अपना स्वरूप अपनेमे मिलेगा। बहुत विषय कषाय हैं, होते रहते है, काम मेरा रह गया है, इसमे टोटा पड गया है, इसमे यह करना है। पुत्र, स्त्री तथा परिवारको नही छोडते हैं, उनको ही अपना सर्वस्व देखते हैं, विपत्तियां उठाते है। अरे तू केवल शुद्ध, ज्ञायकस्वरूप, सबसे निराला, ज्ञानघन, अपनेको निरख, तू एक पदार्थ है जिसमे वही वही है। वह तो एक पदार्थ है और ज्ञानस्वरूप परिणाम रहता है। जहां विकल्प एक नही हैं, ऐसा यह स्वयं स्वरूप है। चमड़ेकी आंखें खोलकर यदि अपनेको देखेंगे तो उतनी ही विपदाएं आयेंगी। सर्वज्ञदेव तो कहते हैं कि उन प्राणियोके रागादिक भाव जब होते हैं उस समय भी आत्माका जो स्वरूप है, स्वभाव है, ज्ञायकत्व है, उसमे विकार नही होते हैं। मैं शुद्धस्वरूप हू। यह दृष्टि हो तो आते हुए विकार भी खत्म हो जावेंगे। और यदि शुद्ध स्वभावमे दृष्टि नही है तो समझो कि विकार बुलाए जा रहे हैं। ख्यालमे ख्याल रखो तो ख्याल होता चला जायगा और अगर उस ओरसे मुडकर किसी आरामके स्थानपर उपयोग लगाया तो वह बात ख्याल

होते हुए भी भूल जायगा।

तात्पर्य यह है कि आत्माके स्वभावमे रागादि दोष नही है। जैसे कोयलेकी आग जल रही है और उसीमे गंधक, लोबान भी डाल देते है। गंधक लोबान डाल देनेसे हरे, पीले रंगकी लौ निकलती है। उस हरी, नीली लौ के होनेसे क्या अग्नि हरी, नीली हो गई। अग्नि तो इस उष्ण प्रकृतिमय सदा एकस्वरूप है। चाहे उसमे लौ हो या न हो, किसी रग या आकारकी हो इससे क्या? प्रत्येक परिस्थितिमे अग्नि एक समान ही है। इसी प्रकार कर्मोंके विचित्र सम्बन्धसे इस आत्मामे क्रोध आता है, मोह आता है, माया आती है, नाना प्रकारके विकार, नाना प्रकारके विकल्प छाये रहते हैं। इतनेपर भी इस भगवान् आत्माके स्वरूपको देखो तो वह सदा एक ही स्वरूप है। यह बात सुननेमे समझनेमे थोडी आती हो तो भी इस बातका पता लगाये बिना उत्थानका मार्ग नही मिलेगा, और और प्रकारसे तो धर्मके मार्गपर चलकर ही जहाँका तहाँ अन्य उपायोसे तो मात्र कल्पित सन्तोष प्राप्त किया जा सकता है। जैसे गर्मीके दिनोमे रातके समयमे समुद्रके पास एक नदीके किनारे खड़े हुए जहाजमे या बडी नावमे कुछ मनुष्य बैठ गए। जहाज या नाव रस्सीसे खूटेसे खोला नही और उसपर बैठ गए। नावको वे खे रहे हैं, ताकत लग रही है, परिश्रम लग रहा है, दो, तीन, चार घटे तक नाव चली, ६ घटे तक चली, सवेरा हो गया, सोच रहे थे मन ही मन कि अब चार मील पहुच गए है, अब ५ मील पहुच गए हैं, अब हम अपने गाँवके किनारे लगे जा रहे है, खुश हो रहे हैं। जब सवेरा हुआ तो देखा कि नाव अपनी ही जगहपर स्थिर है। बोले, अरे भूल हो गई। बहुत परिश्रम किया, ताकत लगायी, पर नाव वहींकी वही रही। क्या किया कि खूंटेसे रस्सो खोली ही न थी।

इसी प्रकारसे धर्मकी बातें सोचकर बहुत बहुत बातें कर डालीं। ४०, ५०, ६० वर्ष बहुत बहुत बातें कर लीं। इस तरहसे बहुत श्रम करनेपर भी जो हम अपनेको पाते हैं तो हममे अशांति ही नजर आती है। उस २४ घटेके समयमे कोई दो क्षण तक ऐसा नहीं नजर आता कि वह धर्म करता है। यदि ऐसा समय आ जाय तो उसे शान्ति मिलती है अपना स्वरूप तो देखो यहाँ सब कुछ है। मैं कृतार्थ हू, स्वरूपवर्तनके अतिरिक्त मेरेको कुछ करनेका नही है, लेकिन मोहके खूटेसे उपयोगकी रस्सी बँधी हुई है, उसे खोला नही है। हमारे १० लक्ष है, हमारे महल हैं, हमारे यही परिवारके लोग सब कुछ हैं। परिवारमे दो-चार लोग हैं, वे ही सबसे बढ़कर है। भगवानकी उतनी कदर नही है जितनी कि बच्चोकी है, उनका जो कुछ सर्वस्व है वही दो-चार लोग हैं। परम पवित्र ज्ञान जिसके दर्शनसे मिलता है उस स्वरूपका दर्शन ही नही हुआ। वह अपना आया कैसे?

अनेकों काम कर डाले, बड़े-बडे प्रयत्न कर डाले, और बड़े-बडे प्रयत्न करके भी जगत्मे जहाँ के तहाँ रह जाते हैं, किन्तु आत्मशांति, आत्म-आनन्दके लिए जो यत्न करना चाहिए उस यत्नके लिए तैयार नही होते। करते है पर तैयार नही होते। जैसे उपयोगमे कोई जमा ले जाता है कि हमको तो यह दूकान करना ही है। इस तरह जम करके यह बात नही आयी कि हमको तो आत्मशान्ति लेनी ही है। मुझे तो आत्मकल्याण करना ही है। इस तैयारीके साथ भाव उत्पन्न हुआ हो तो यह सब अपने स्वरूपकी बात बहुत जल्दी सुगमतया अन्तरमे बैठ जाय। देखो यह आत्माका स्वरूप जो केवल ज्ञानरसमय है, जानन जानन ही जिसकी पूरी बोडी है, विचित्र जगत्के सब पदार्थोंका सार यह ज्ञायकस्वरूप भगवान आत्मा है। इस आत्मामे न विकार हैं, न विपदाएँ हैं। स्वरूपकी बात यह है पर सत्के इस पिंडकी बात यही सब सामने है। क्रोध है, माया है, लोभ है, ये सब सत् पिंडमे हैं पर स्वरूपमे नही। शरीर तो केवल चल रहा है। हाँ केवल शरीरको पिंड मान लिया तो एक ब्रह्मवाद निकल आया है। मैं निर्विकार हू। ठीक स्वरूपसे निर्विकार हू किन्तु इस पिंडमे परिणमन तो निरन्तर चल ही रहा है। पानी गर्म हो गया है। पानीमे बहुत गर्मी आ गयी है, पर पानीके स्वभावमे गर्मी है क्या? पानीके स्वभावमे गर्मी नही है। इतनी बात सुनकर कि पानीके सत्त्वमे गर्मी नही है। कही उस खौले पानीको पी लिया जाय तो पता चल जायगा कि पानीके स्वभावमे गर्मी नही है पर इस पिंडमे तो अभी कोई पानी पी ले तो बोलता है कि हाय जीभ जल गई। कहता है कि यदि पानी स्वभावसे गर्म नही होता तो मैं जल कैसे जाता? इसका तो पता लगानेके लिए ज्ञानीसे मालूम कर पानीके पिंडमे गर्मी है, पानीके स्वभावमे नही। बस इतने ही अन्तरसे वेदान्तोके व स्याद्वादके स्वरूपमे ही अतर है। इस ज्ञायकस्वरूपमे विकार कहाँ है? जिस स्वरूपमे विकार नही है, ऐसा ज्ञायकमात्र मैं हू, मैं आत्मा अनन्तज्ञानानन्दस्वरूप हू।

हे आत्मन्! तू परमे दृष्टि न लगा। पर मिट जाने वाले है, तू मिटने वाली चीजोका विश्वास करता है। परमे दृष्टि लगानेसे दु.ख होगा। अभी घरमे दादाके गुजरनेसे दु.ख होता है। क्यो दुःख होता है? यो दु:ख होता है कि उनके बाबा, बच्चेके बारेमे यह निर्णय किया था कि ये सब अमिट हैं। जब तक उनके मनमे यह नही आया था कि जो समागम होगा वह मिटेगा ही। सो अगर कोई कह देता है कि क्या बापजी मर जावेंगे तो कहेगे कि कैसे तूने सोच लिया कि बापजी मर जावेंगे। यह तू असगुनकी बात क्यो सोच रहा है? अरे यहाँपर जो कुछ है वह सब मिटेगा। शिकारी आदमीको कोई अगर साधु मिल जाय तो उसे बडा गुस्सा आयेगा। शिकारीके लिए साधुका दर्शन असगुन हो गया। मोहियोके लिए ज्ञानी

और वैरागी तो असगुन हैं। यदि सत्यस्वरूपको देखा जाय तो समझमे आता है कि सगुन तो ज्ञान और वैराग्य ही है। मोह सम्बन्धी यदि तूने अपना समय असगुनमे ही व्यतीत किया तो कष्ट तो लगेगा ही। यदि अपने ,स्वभाव सगुनमे उपयोग दिया तो तेरेमे तू ही है, तुझे कष्ट नही होगे। जहांपर ज्ञानदृष्टि होगी वहांपर दुःख अनित्यमे अनित्यकी दृष्टि होनेपर वह पदार्थ मिट जाय तो वह ज्ञाता रह सकता है। वह तो यही कह उठेगा कि देखो वही बात हो गई ना, जो हम पहले समझते थे। अरे वही तो होगा जो हम समझते थे। किसी सौदेके खरीदनेमे तुरन्त यदि अनुभव हो जाय कि इसमे तो ठग गए, १० हजारका खरीदा हुआ बेचनेसे ६ हजारका पडता है तो इतनेकी हानि हो रही है। वह इस सौदेको वर्षभर रखकर बेचता है और उतना टोटा पडता है तो पडे, परन्तु इससे उसे दुःख नही होगा। क्योकि वह समझता है कि इसे एक वर्ष पहले खरीदा था, तब भी यह टोटा था। देखने सुननेका ही आत्माके भीतर कितना कमाल हो गया ? यह प्राणी अनित्यको नित्य समझे तो जब हम मरते है तब हम रोते हैं। इस असार शरीरको जब हमने सार समझ लिया तब रोते हैं। असार चीजको जब हमने सार समझा तब हम रोते हैं, दूसरेकी चीजोको जब हमने अपना समझ लिया तब हम रोते हैं, असत्यको सत्य समझ लिया तब हम रोते हैं। वहाँ पवित्रता नही है जहाँ मोह है।

लेकिन कहते क्या हैं कि नाली गन्दी है, यह पानी गन्दा है, सड़ा हुआ है, इसमे बदबू है अर्थात् इसमे बहुतसे गन्दे पदार्थ पहुच गए हैं, गन्दगी है, सडे गले माँसकी तथा अन्य बाह्यपदार्थोंकी वह गन्दगी कैसे हो गई ? सोचो तो सही। पहले तो इस गन्दगीमे मिष्टान्नके टुकडे थे, बर्फी थी, बून्दी थी, लड्डू थे, परन्तु अब तो विष हो गया। अब वह गन्दगी बन गई। अब जो गन्दगीकी शक्ल है वह भी पहले एक साफ पिंड थी और उससे पहिले देखो तो वे अणुस्कन्ध थे, आहारवर्गणायें थी। उनसे भी पहिले परमाणु परमाणु थे। उन स्कन्धो पर जब आत्माने कब्जा कर लिया, उन्हे ग्रहण कर लिया तो ये शरीरकी शक्ल बन गए। वे बनकर इस शक्लमे आ गए है। इन सब बातोका मूल कारण क्या है ? इनका मूलमे कारण यह हुआ कि इन परमाणुवोमें आत्माका कब्जा हुआ, जीभका सम्बन्ध हुआ तब उन्हे ये वि- चित्र शक्लें मिली। जब तक इस पिंडके साथ आत्माका सम्बन्ध न हुआ तब तक अपने आत्मासे सम्बन्ध होनेपर, मोही आत्मासे सम्बन्ध होनेपर इन वर्गणावो जैसी प्रगति होने लगी। ये सब गंदगियाँ अशुद्ध हैं, किसके प्रसादसे ? जीवोके सम्पर्कके प्रसादसे। जीवोंके नही, मोही जीवोके। तब मोह ही तो मूल हुआ। देखो लोकमें जो लड़का अशुद्ध हो जाता है उसको छूते तो नही हैं। बाहर रहो, बाहर रहो, कही छू न लो। यदि उस लडकेने छू लिया तो

अशुद्ध हो गए, दिलमे अशान्ति हो गई। दूसरेने तीसरेको, तीसरेने चौथेको छू लिया, जहाँ तक नजर चलती है वह सब अशुद्ध ही होते चले जाते है। यह क्यो अशुद्ध हो गए ? उसने हमे छू लिया। उन सबमे मूल खराब है केवल एक लडका। अरे यह तो शुद्ध है, किन्तु हो गया जठराग्निसे सम्बन्ध। यह जठराग्नि कैसे बनी ? मोही जीवके संबंधसे। लो जठराग्नि भी गन्दी हो गई जीवका सम्बन्ध होनेसे। अब सब गन्दी शक्लें बनने लगी। अब मूल कारण का विचार करें तो मूलमे क्या अशुद्ध है ? किस वजहसे सारी चीजें अशुद्ध हो गयी। अरे रागी जीवने कब्जा किया तो यह अशुद्ध हो गया। जीवके सम्बन्धसे यह अशुद्ध नही हुआ किन्तु रागके सम्बन्धसे यह अशुद्ध हो गया। फिर यह राग हुआ क्यो ? यह अशुद्ध राग बना क्यो ? अरे मिथ्यात्वकी वजहसे यह अशुद्ध राग बन गया। दुनियामे सबसे गन्दा होता है मोह। क्या मांससे गन्दा है ? हाँ मांससे भी गन्दा है, खादसे भी गन्दा है तथा अन्य अशुचि पदार्थोंसे गन्दा है। हाँ हाँ सब पदार्थोंसे गन्दा है। गन्दगी जो है उसका करने वाला भी यह मोह ही है। मोह है, मोहका सम्बन्ध जीवसे है तो राग पैदा हुआ। तो राग तो मोह परिणामोसे हुआ। शरीर बन बैठा तो यह मोह दुनियामे जो गन्दी चीज है तो केवल एक मोह है और कोई दूसरी चीज इस दुनियामे गन्दी नही है। मोहने इस समस्त जगत्को गन्दा कर दिया है। उसका महत्त्व इतना है कि भगवान् भी छूट जाय, धर्म भी छूट जाय, सबसे मुह मुड जाय, पर मोहसे मुख नही मोडते। यही वजह है कि हमारे धर्मके प्रयत्न तो होते है, धर्मकी नाव चलाते तो है किन्तु उपयोग की रस्सी मोहको खूँटीसे गडी हुई है ? ४० वर्ष तक धर्म किया, पूजा की, सेवा की ५० वर्ष तक, परन्तु आज हम उसी जगह पर है। कषाय मे फर्क नही पडा। वह सहज उजेला नही मिल सका। यही चीज समझनेकी है कि इस आत्माके ज्ञायकस्वभावमे क्या विकार है ? मैं तो मैं ही ज्ञानमय हू। ज्ञानमय होना ही मेरा स्वभाव है। ऐसा ही मैं शाश्वत निश्चल हू। यही साक्षात् भगवान है। भगवान होनेके लिए वाहरसे कुछ नही आता मैं तो बना बनाया भगवान हू। मेरेमे विषय कषाय नही है। विषय कषायोको ज्ञानदृष्टिकी छेनीसे काटकर बाहर कर देना है और फिर है बना बनाया प्रभु। जैसे पत्थरकी मूर्ति बनाई जाती है तो पत्थरसे जो कारीगरोने मूर्ति तैयार की। उसमे केवल बाहरी ढकने वाले पत्थरोको काट दिया, मूर्ति तैयार हो गयी। कुछ बाहरसे मूर्ति तो नही रची। इसी प्रकारसे मूर्तिको तैयार कर लेते हैं तो अन्य काम नही करने पडते हैं। यह मूर्ति वही तैयार कर सकते है जो कुशल कारीगर है। जो मूर्ति पहले थी वह अब भी है। जरासा ढकने वाले पत्थरोको काटकर हटा दिया मूर्ति तैयार हो गई। इसी प्रकार इस आत्मामे भगवान बननेके लिए कुछ नही बाहरसे लाना है। केवल ज्ञानस्वरूपको ढकने वाले जो विषय

कषायोके परिणाम हैं उन विषय कषायोको ज्ञान-छेनीसे बाहर करना है। यह स्वरूप कृत-कृत्य है। दूकान करनेको पडी है। यह नहीं चलेगी तो इसके बिना गुजारा नही होगा। ऐसा कुछ नही है। विषय कषायोकी गन्दगीको हटाकर इस ज्ञानस्वरूपमे भगवानके स्वच्छ व सही दर्शन तो कर लें, और अगर न कर सकें तो हम जहांके तहां मौजूद मिलेंगे।

दु खी कि विवश' किं मेऽत्रैव न्यायो विधिर्जगत्।
सुखागारोऽप्यय तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-१३॥

हे सांसारिक प्राणी, हे ज्ञानानन्दघन आत्मन्! दुःखी क्यो हो रहा है? विवश क्यो हो रहा है? अपने स्वरूपको तो देखो। तेरा तू ही है, एक ज्ञानघनरस, आनन्दपुञ्ज है। तुम्हारा आनन्दस्वरूप ही है। दु ख तो तूने कल्पनाएं करके बनाए हैं। स्वभावमे तो आनन्द ही भरा हुआ है। तेरा स्वरूप चतुष्टय तुझमे ही है, तेरा उत्पाद व्यय ध्रौव्य तुझमे ही होता है। सभी पदार्थोंका अपना अपना स्वरूप उन उन ही मे है। अन्य पदार्थोंका दूसरे पदार्थोंसे कुछ भी सम्बन्ध नही है, किन्तु जब यह चैतन्यमय ज्ञानमात्र वस्तु बाह्यपदार्थोंमे कल्पनाएँ करता है कि यह मैं हू, यह मेरा है, बस इन कल्पनाओसे दुःख उत्पन्न होने लगता है। दु ख का मूल दृढ नही है। एक केवल भ्रमसे बाह्यमे आ जानेसे, अध्रुवका आश्रय मान लेनेसे क्लेश उत्पन्न होते है। क्लेशोका मूल दृढ नही, परन्तु हिम्मत करना नही तथा अपने आपके स्वरूपमे ही आपा बुद्धि रखना नही और क्लेश यों ही मौज करते करते खत्म हो जायें, सो कैसे हो? सबसे न्यारा विज्ञानघन एक निजी आत्मतत्त्व मैं समझूं तो सारे क्लेश समाप्त हो जावेंगे। तेरा न्याय तू ही है तेरा न्याय करने वाला कोई दूसरा नही है। तेरी पुकारका सुनने वाला दूसरा कोई नही है। तेरी प्रभुता तेरेमे ही है। तू ही अपनी पुकारको सुन सकता है। तेरी आवाज तेरा प्रभु आत्मा ही सदा सुनता रहता है अर्थात् जैसे परिणाम उत्पन्न होते है- वैसे ही इस प्रभु आत्मामे परिणतियां होती चली जाती हैं। तेरा निर्णय तुझमे है। तू अन्यत्र दृष्टि मत कर। तूने अन्यत्र दृष्टि बहुत की, इसीकी वजहसे दुःख होते आ रहे है। यह मेरा स्वभाव नही है। परको तो महिमान जान। महिमान कहते है उसे जिसकी कोई महिमा न हो। आते हो तो जाओ, न आते हो तो चले जाओ। ऐसे ही महिमान होते हैं। जिनके प्रति लोग कहा करते है कि इसकी चाहे यह बडा भी हो, मेरे यहाँ महिमा नही है। तू अपने ज्ञानस्वरूपको देख और कर्मोंके स्वभावसे उत्पन्न हुए भाव, राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, मोह आदि यह तेरे स्वभावमें नही हैं। तू तो निश्चल एकस्वभाव मात्र है। तू अपने को ज्ञानस्वरूप ही अनुभव कर। जैसे कोई पुरुष इसके मित्र हैं, मैं इसका मित्र हूँ, इस तरह से जो अनुभव करता है जिनको मित्र माना है, जिनको वैभव माना है, उन्हीसे उसे क्लेश

होते है और उन क्लेशोंसे उसे रज होता है, दुःख होता है। इसी प्रकार यह किन्हीं पदार्थों को अपना मान लेते हैं तो इस बिगाडसे ही उसे दुःख उत्पन्न होता है। इन रागात्मक भावो को तू अपना मान लेता है तो दुःख उत्पन्न होता है। भेदविज्ञानकी चरम सीमा यह है कि तू अपने औपाधिक भावोंको अपने आपसे न्यारा समझ। यह धन वैभव तो प्रकट न्यारे दिखते हैं। मकान है देखो यह तो प्रकट न्यारा दीखते है, ये मित्र तो प्रकट न्यारा दिखते है, परिवारके लोग भी जुदा जुदा हैं और इसी आत्मभूमिकामे जो अष्ट प्रकारके कर्मबन्धन बधे हुए है, वे भी इस आत्मासे जुदे है। वे पुद्गल कहलाते है। रूप, रस, गंध, स्पर्श वाले है, ये सब भी न्यारे है। इस आत्मामे जो रागादि विकार उत्पन्न होते है उन्हीं से सुख व दुःख उत्पन्न होते हैं। अच्छा जरा परीक्षा तो करो कि न्यारा है कि नहीं। एक दृष्टिसे देखते हैं तो वह न्यारे नहीं जचते हैं।

मेरा द्रव्य ही तो इस समय यो परिणमता है। जब इसके कारण देखते हैं तो जुदा समझमे आ जाता है। यह विकार मेरा नही, यह मेरे स्वभावके कारण नहीं हुआ, रागादि भाव मेरे स्वभावसे उठकर नहीं होते किन्तु कर्मके उदयके निमित्त पाकर झलके होगे। जिन महात्माओने, जिन सौभाग्यशाली पुरुषोने इस निराले तथा चैतन्य चमत्कारमात्र स्वरूपको पहिचाना है वे आनन्दमय है और जिन्होने अपने स्वरूपको नही पहिचाना है वे प्राणी संसार मे रुलते हैं, रोते हैं। ए रोने वाले प्राणियो, व्यर्थमे दुःखी हो रहे हो, व्यर्थमे विवश हो रहे हो। तेरी सहायता करने वाला ससारमे है क्या, तेरे को दंड देने वाला कोई दूसरा इस जगत् मे है क्या ? तेरा अहित करने वाला, तेरा पहिचानने वाला, तुझे मुक्तिमे ले जाने वाला, तेरे को इस ससारमे भटकाने वाला कोई दूसरा इस जगत्मे है क्या ? कोई नही है। आप तो परिणाम करते है और ये क्लेश अपनेमे ही ओटोमैटिक बनते चले जा रहे हैं। इन दुःखोंसे बचना है तो अपने स्वरूपको देखो, दूसरा कोई उपाय नही है। धर्मका पालन इसीको कहते है। धर्म बाहर नही, वेशभूषामे नहीं, नाना स्थानोमे नही, नाना पद्धतियोंमें नही, केवल निज सहज स्वभावमे यह ही मैं हू—ऐसा मान लेनेसे, ऐसा अंगीकार कर लेनेसे, ऐसी दृष्टि बना लेनेसे धर्मका पालन है। इस ही बातके लिए यह व्यवहार धर्म है। सत्सग करते है किस प्रयोजनके लिए कि हमारी दृष्टि ऐसी बनी रहे कि हम धर्मके पालनके योग्य बने रहे। इसके लिए सत्संग किया जाता है। उपकार सत्संग जो किए जाते हैं वह इसलिए किए जाते हैं कि मेरी बुद्धि ऐसी व्यवस्थित रहे कि मैं अपने स्वभावके दर्शन करने के लायक बना रहू। अपने स्वभावके दर्शन करना सो ही धर्मका पालन है। दुःख तो कल्पनाओसे बनाया गया है। कोई भी दुःख हो रहा हो, यही निर्णय कर लो कि और कुछ नही है केवल कल्पनाए बनी

रहीं, बस इसीसे दु:ख होता रहा है। इन कल्पनाओंका बना लेना, इसीका नाम दु:ख है। जैसे न तो टोटा पडा है, न विपत्तियां आती हैं, न हमारे लिए कोई अनर्थ की योजना कर रहा है, केवल कल्पनाएं बना बैठा है कि हमारे अनर्थके लिए कोई योजना कर रहा है। वहां कुछ नही हो रहा है। वहां अपने हितकी बात बन रही है और मनमे कल्पनाएं कर लिया कि मेरी हानिके लिए योजनाएं ये बना रहे हैं तो इसीसे दु:ख होता है। बाह्य पदार्थ हैं, हैं, वे अपने आपमे परिणमते हैं, हम ऐसे हैं, वह वैसे हैं, इस प्रकारकी वस्तुस्वरूपके अनुकूल विचार बनें इससे उन्हें आनन्द है। सुख और दु:ख कहीं बाहरसे नही आते हैं। जैसी भावना है वैसे ही दु:ख तथा सुख हैं। वस्तु है, किसी दूसरे प्रकारकी और मान लेना उसे भिन्न प्रकारकी तो दु:ख होगा ही और वस्तु जैसी है तैसी मान ले तो सुख होगा। वस्तुका स्वरूप जैसा है तैसी बुद्धि बने तो सुख है। चाहे बाहरकी नरकगतिके दु:ख भी भोगे जा रहे हो किन्तु यदि आत्मामे मिथ्यात्व नही है तो आत्मामे सुख है, कोई क्लेश नही है और अन्तरमे सम्यक्त्व नही है तो उसकी आकुलता बराबर लगी चली जाती है। सम्यक्त्व बराबर सुखको पैदा करता है और मिथ्यात्व सदा आकुलताओंको पैदा करता है। जैसा है तैसा ज्ञान हो जाना यही ज्ञान है। ज्ञानी गृहस्थ यद्यपि असयमके काम करता है, चरित्रके प्रतिकूल भी चलता है, पर जैसे पतग उडाई गई, पतग कितने ही ऊपर चढ गई है तो डोर तो अपने हाथमे है। वह पतंग कही बाहर नही जा सकती है। इसी प्रकार सम्यक्त्व है तो चाहे उपयोग थोडा भ्रमकी ओर हो जाय, विचलित हो जाय, यहां वहां पहुंच जाय तो वह सब सम्यग्दृष्टिके आधीन बात है। वह अपने उपयोगको शीघ्र अपनी ओर बना सकता है। हालत भी ऐसा ही है कि श्रद्धा तो सही है फिर भी मार्ग पर नही चल पाता। कौन नही जानता कि हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह ससारमे भटकाने वाले हैं। इनकी निवृत्ति होने पर भलाई है फिर भी लोगोंको कुछ समय तक करना पडता है। पर यदि श्रद्धा है तो पाप कम हो जाते हैं।

जैसे सामने अग्नि पडी है, एक पुरुषको जबरदस्ती ढकेल कर कहा जा रहा है कि आग पर चलो तो वह पैरोंको आगममे ऊपर ऊपर रखकर निकल जायगा। पर एक ऐसा आदमी जिसके पीछे अग्नि पडी हुई है और कहनेसे नहीं किन्तु किसी कारण पीछे पैर रख लेता है। इन दोनो पुरुषोमे जरा बतलाइए कि अधिक कौन जलेगा? जिसने पीछे बिना प्रेरणाके पैर रख दिया है, उसको पता नही था तो वही अधिक जलेगा। उसको आगका पता न होने से जल्दी उठनेका परिणाम नहीं है सो अधिक जल जायगा और जो सामने देख रहा है वह जल्दी जल्दी पैर रखकर निकल जायगा। इसी प्रकार जिसको ज्ञान है, श्रद्धान

है, वैराग्य है फिर भी कोई परिस्थिति पाती है जिससे कुछ प्रतिकूल चलना पड़ता है। पर प्रतिकूल चलने पर भी उसके विपरीत खिचा हुआ रहता है। जिसके ज्ञानस्वरूप नहीं, विषयोमे आसक्ति है, उसके कर्मबन्धन विशेष है। ज्ञानीको विषयोमे आसक्ति नही होती, इससे वह मोक्षमार्गस्थ है।

एक कुत्ता जानवर होता है, वह बडा स्वामिभक्त होता है, आज्ञाकारी होता है। दो रोटीके टुकडोमे ही २४ घन्टे पहरा देता है। अपनी पूंछ हिलाकर बडे प्रेमसे अपने मालिकको बडा प्रेम दिखाता है। देखो कुत्ता कितने काम आता है? एक सिंहको देखते हैं तो दिल दहल जाता है। किसी किसीका तो हार्ट फेल हो जाता है। कोई कोई तो शेरसे डरकर मर जाता। कितना अहित करने वाला यह शेर है। क्यो जी जो उपकारी है, जो भला है उसकी उपमा देना चाहिए या नही। अच्छे पुरुषको किसी सभामे खड़े होकर कहे कि फलाने भाई तो बहुत उपकारी हैं, इनका कहना क्या है? यह बहुत ही उपकारी एव धर्मात्मा हैं। यह तो एक कुत्तेके समान हैं। इसकी बडी भव्य आत्मा है। यह बड़े उपकारी हैं और उसी को या अन्य किसीको यह कह दिया जाय कि यह शेरके समान है, याने दूसरोकी जान लेता है, ऐसा नाम सुनकर वह खुश हो जाता है, पर इसका बुरा अर्थ होता है। यदि किसी व्यक्तिको यह कह दिया जाय कि यह व्यक्ति कुत्ता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि वह व्यक्ति कुत्तेके समान स्वामिभक्त तथा आज्ञाकारी है। यह अन्तर किस बातका आ गया? यह आध्यात्मिक मर्मको बताने वाला अन्तर है। अगर कोई कुत्तेको लाठी मारता है तो उस लाठीको कुत्ता चबाने लगता है। वह समझता है कि मेरा दुश्मन यह लाठी है। मेरा अहित करने वाली यह लाठी है, यह हुई निमित्तदृष्टि अर्थात् निमित्त ही मेरा सब कुछ करने वाला है, ऐसी दृष्टि हुई कुत्तेकी जैसी दृष्टि। उसको यह पता नही चल पाया कि मेरा दुश्मन लाठी नही है बल्कि यह पुरुष है। जब कि शेरको कोई लाठी, तलवारसे मारे तो वह शेर यह नही समझता है कि मेरा दुश्मन लाठी और तलवार है बल्कि वह समझता है कि यह व्यक्ति ही मेरा दुश्मन है। इसलिए वह शेर पुरुष पर ही हमला करता है। एककी दृष्टि है कि मेरा दुश्मन लाठी है और एक की दृष्टि है कि दुश्मन मेरा पुरुष है। यही ज्ञानी और अज्ञानीमे अन्तर है। ज्ञानी देखता है कि धन, वैभव, परिवार किसीमे मेरा सुख नहीं है। मेरा सुख मेरे अन्तरसे उठता है परन्तु अज्ञानी यह देखता है कि धन, वैभव, कुटुम्ब, परिवार आदिमें ही सुख है। ज्ञानी यह सोचता है कि बाह्यपदार्थोंसे सुख नही होता, पर अज्ञानी यही सोचता है कि बाह्यपदार्थों पर ही सुख दुःख निर्भर है। अज्ञानी जीवने अपनी प्रभुताको बरबाद कर दिया है। वह सोचता है कि यदि प्रपच, परिवार, सदस्य तथा अमुक अमुकको मैं न देखूंगा

तो मेरा नुकसान है, परन्तु नुकसान है इसी बाह्य दृष्टिमें। यह आत्मा पूर्ण स्वच्छन्द हो तो दुःख नही होंगे।

एक पुरानी घटना है कि बज्रदत चक्रवर्ती जब फूलमे मरे हुए भवरेको देखते है तो देखकर विचार करते हैं कि यह भवरा फूलकी सुगधमे आसक्त होकर इस फूलमे ही छिपा मर गया। कोई फूल ऐसे भी होते हैं कि दिनमे तो खुले रहते हैं और शाम होते ही बद हो जाते हैं। भवरा मकरद रस चूसनेके लिए बैठ गया। शामको उसी फूलमे वद हो गया। जिस भवरेमे इतनी ताकत है कि काठमे छेद करता है। एक ओरसे छेद करके दूसरी ओरसे निकल जाता है। फूलकी उन कोमल कोपल पखुडियोमें आसक्त होकर भवरा मकरद रसका पान करता है और वही मर जाता है। इसी तरह आत्मामे तो अनतशक्ति है, आनन्द शक्ति है, केवल ज्ञानीकी शक्ति है। परन्तु विषयोमे आसक्त होकर अपने ज्ञान प्राणको बरबाद कर रहा है। आत्मामे क्लेश केवल जाननेकी कला पर निर्भर है। इसी प्रकार आनन्द भी जानने की कला पर ही निर्भर है। लो, शरीरको देखो, आनन्द खत्म हो गया और लो ज्ञानस्वरूप देखनेमे उपयोग बन गया तो आनन्द प्रकट हो गया। ऐसी महान् चमत्कारकी कलासे युक्त यह भगवान् आत्मा है। यह प्राणी बाह्यदृष्टि करके कि मुझे तो बाहरी चीजोसे आनन्द मिलता है, बाहरमे ही आसक्त होकर बाहर बाहर ही घूमता है। इस प्रकारका प्राणी बाहरी पदार्थोंको नही छोड सकता है। यह भूला हुआ प्राणी भ्रममे ही रह रहकर अपना आत्म-बल खो देता है और बरबाद हो जाता है। ऐ प्राणी! क्यो दुःखी हो रहे हो? तेरा तो स्वरूप भगवान्का है। तेरमे भी तो वही द्रव्य, वही गुण हैं। भगवान्की आत्माका तत्त्व शुद्ध दानके द्वारा आनन्दमय है, ज्ञानघन है, मेरी आत्माका उपयोग अशुद्धकी ओर है यही तो अन्तर हो गया है। चीज तो एक है जिसमे दुविधापन नही है। तो जैसा सुखका भडार प्रभु है वैसा तू है। परन्तु अपने आपको नही जानता है। इसी कारण बाहरी फसावमे फस रहा है। २४ घन्टेके समयमे २ क्षणको सबकी कल्पनाएँ छोडकर अन्तरमे तो देखो। तू उत्कृष्ट ज्ञानानन्दका पिंड है। कहते है कि जीव हवा है। फूँक मारा उड गया। यह जीव हवासे भी अत्यन्त सूक्ष्म हैं। शरीरसे अत्यन्त जुदा स्वरूप वाला है। शरीरके अन्दर है। इसमे निमित्तनैमित्तिक भावोका होना कारण है। नही तो शरीरमे इतना संयोग होने की भी गु जायश नही। तेरे परिवारके लोग तेरे नही है, जिनसे तू इज्जत चाहता है वह तेरे नही हैं। तू तो चैतन्यस्वरूप एक वस्तु है। ऐसा सुखका भडार तू है। अन्तर भीतरमे देखो और अपनेमे अपने लिए अपने आप देखते रहो।

भावयेद् भेदविज्ञानमिदमच्छिन्नधारया।
तावद्यावत् पराच्च्युत्वा ज्ञान ज्ञाने प्रतिष्ठितम् ॥

समयसार ग्रन्थ अध्यात्मका एक ही ग्रन्थ है। जिसमे अध्यात्मपद्धतिसे आत्माका स्वरूप बताया है। उसमे आत्माका स्वरूप बताते बताते उसका उपाय, भेद, ज्ञान कहते है और शिक्षा देते हैं कि हे आत्मन्! तब तक भेदविज्ञानकी भावना करो जब तक यह ज्ञान ज्ञानमे प्रतिष्ठित नही हो जावे। मैं ज्ञानमात्र हू, शुद्ध चैतन्यस्वरूप हूं, इस प्रकार सबसे निराला अपने आपके चैतन्यस्वरूपको देखो। यही काम अभी पड़ा हुआ है। यही काम कठिन है, पूजा सरल है। अरे नही भैया अपना यह काम सरल है पूजा कठिन है। पूजामे १० साधन जुटाने है। यहां क्या है? जैसे हो वैसे अपनेको देख डालो यह क्या कठिन है? धर्म का पालन यही है। बाहरी चीजें तो सहारा मात्र है, उनमे दृष्टि न दो। जैसे नीचेसे ऊपर आनेमे जो सीढियां हैं वे तो सहारा मात्र हैं, ऊपर आनेके लिए सीढ़ियोसे प्रेम नही करो सीढियां बहुत अच्छी है, बडी सुखद है, मैं नही छोडूगा। अरे तू न छोड तो वही पडा रहेगा। बाह्य तो तेरे सहायक हैं। पहली सीढ़ीपर कदम रखकर उसको छोड दे, दूसरीको छोड़ दे, तीसरीको छोड दे। ग्रहण किया है छोडनेके लिए। ऐसा न चलो कि हम तो पहलेसे ही छोडे है, पहलेसे ही छोडे पडे हैं। नही, ग्रहण करके छोडनेकी बात है। यहां कुछ छोड़ना नही। यथार्थ जान लो। इसमे ही ज्ञान है, इसमे ही आचरण है। ऐसा रूप वाला यह मैं निश्चल रूप अपने आपमे रहू और अपने आप सुखी होऊँ।

ज्ञानपिण्डोऽन्यभिन्नोऽहं निर्विकारी स्वभावतः।
स्वतन्त्रः सहजानन्दः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥ १-५४ ॥

मैं क्या हू, इस बातको समझनेके लिए इस श्लोकमे पांच बातें बताई गयी है। पहली बातमे कहा गया है कि यह आत्मा ज्ञान पिंड है, दूसरी बातमे अन्य समस्त पदार्थोसे भिन्न बताया है, तीसरी बातसे स्वभावसे निर्विकार कहा है, चौथी बातमे स्वतन्त्र कहा है और पाचवी बातमे सहजानन्दमय दिखाया है। इन्हीं पांच बातोके विवरणसे मनन करनेपर आत्मा मे यथार्थ बल बुद्धि हो जायगी। मैं ज्ञानपिण्ड हूँ, स्वरूप मेरा ज्ञान ही है। जैसे गर्मी ही अग्निका स्वरूप है वैसे ज्ञान ही मेरा स्वरूप है। जैसे कोयला तिकोन, चौखूटा है, जलता है तो तिकोना, चौखूटा अग्निका स्वरूप नही है। अग्निका स्वरूप तो केवल गर्मी है और बातें तो निमित्त पाकर होती है। यह मैं आत्मा मच्छके शरीरमे इतना लम्बा, चौडा हो गया और चीटीके शरीरमे इतना छोटा हो गया। ऐसा छोटा बडा हो जाना, फैल जाना यह आत्माका स्वरूप नही है। यह तो निमित्त पाकर होता है। आत्माका स्वरूप तो ज्ञान है। ज्ञान पिंड

यह आत्मा है और अन्यसे भिन्न है। मेरे अतिरिक्त जितने भी पदार्थ हैं उन सबसे मैं जुदा हू। यहां अस्ति और नास्तिका जिक्र किया है।

मैं मैं हूं, कुछ और नही हूँ। तू तो ज्ञान पिंड है और मेरे अतिरिक्त जितने भी पदार्थ हैं वे सब मैं नही हू। इसीको कहते हैं एकत्व विभक्त्व है। तू एकत्व विभक्त्व है। इसके आगे और कुछ नही है। वस्तुकी पहिचान स्याद्वादसे होनी है। स्याद्वादका आश्रय लिए बिना वस्तुवोसे परिचय नही होता। यह पिछी है तो यह पिछी ही है, और और नही है। पिछी चौकी हो जाय, पिछी ही दरी हो जाय तो यह सत् नही हो सकता है। पदार्थ सत् कहलाते हैं तब तब अपने स्वरूपसे हो और परके स्वरूपसे न हो। यदि वह परके स्वरूपसे न हो और निज स्वरूपसे हो तब तो वह पदार्थ रह सकता है अन्यथा नही। पदार्थ तभी रह सकते हैं जब अपने स्वरूपसे तो हो और परके स्वरूपसे न हो। यह चौकी है। यह स्पष्ट दिखती है। यह चौकी अपने आपमे तो है पर इसके अतिरिक्त जितने पदार्थ हैं, उन सब रूप नही है। तभी तो यह पदार्थ है। इसी तरह अपने आत्माकी बात लगाइए। यह मैं आत्मा अपने स्वरूपसे हूँ और परके स्वरूपसे नही हू। अपने आपमे हू, मैं अन्य जीव नही हू, अन्य किसी द्रव्य रूप नही हू, कोई पुद्गल नही हू। वह मैं क्या हूँ ? इसके बारेमे बताया है कि मैं ज्ञानपिंड हूँ। आत्मामे ज्ञानका ही तो सारा वैभव है, ज्ञानका ही सारा कमाल है, ज्ञान ज्ञान ही तो सारा आत्मा है, अमूर्त है, ज्ञान भावात्मक है। ऐसा ज्ञानरस इस आत्माके साथ अन्य अन्य गुण भी मालूम देते हैं। जैसे आनन्द है, श्रद्धा है, चारित्र है परन्तु यह सब भी लगा रहता है। मानो ज्ञान धर्मके अस्तित्वकी सेवाके लिए सर्व गुण हैं। सबमे प्रधान एक ज्ञान गुण ही है। जब हम आत्माको पहिचानने चलें तो और और बातोको देखकर हम आत्माको अनुभवमे न ला सकेंगे। जैसे सोचा कि यह मैं आत्मा कितना लम्बा चौडा हूँ। तीन चार हाथका लम्बा, एक हाथका चौडा और इतना ऊँचा सोचते रहे, पर ऐसा सोचनेसे आत्माका परिचय न मिल सकेगा। आत्माका अनुभव न हो सकेगा, आत्माकी पकड न आ सकेगी। यह मैं आत्मा कैसा हू ? अरे जो गुस्सा आ रहा है वह है आत्मा, दर्द का अनुभव है तो वह है आत्मा—ऐसा सोचनेसे आत्माका अनुभव नही हो सकता। तो है क्या आत्मा ? अरे आत्मामे अनन्त शक्ति है और उस शक्तिके प्रति समय परिणमन चलते रहते है। अनादिसे परिणमन चला आया और अनन्त तक परिणमन चलेगा। परिणमन तो होगा पर परिणमन या शक्तिभेदकी दृष्टिसे परिचय नही हो सकता, आत्माका अनुभव नही हो सकता। ऐसा पकडमे नही आ सकता कि जिससे स्पष्ट पहिचानमे आवे। यह तो है

आत्मा। जैसे हाथमें स्वर्णका ढेला रखा है, पहिचानमे आ जाता है कि यह है। एक दृष्टि ज्ञानसे आत्माको सोचो तो कि यह स्वरूपमय आत्मा है, जो जाननका ही काम करता है। त्रैकालिक जो ज्ञानस्वरूप है वह आत्मा है। इस तरह केवल ज्ञानस्वरूपको ही लक्ष्यमे रखो तो ज्ञानस्वरूप ही लक्ष्यमे रहते रहते यह लक्ष्य भी छूटकर ज्ञानमात्र आत्माकी ओर अनुभव हो जाता है। यह चीज प्रयोग की है। जितने शब्द कहें गए उतने शब्द सुननेसे आत्माका अनुभव नही, इतना बयान करनेसे ही आत्माका अनुभव नही। इसका तो भीतरमे ही उपयोग बने कि मैं ज्ञानमात्र हूं और जाननका जो काम है वह स्वरूप ही लक्ष्यमे लेवे, इतना मात्र मैं हू। ऐसा मनन करनेसे आत्माका परिचय मिलता है, आत्माकी पकड होती है। यह इस नास्ति वाले दूसरे न्यायसे अलग बात नही है। मैं अन्य सब पदार्थोंसे जुदा हू, इसको भी साथमे विचारना चाहिए। अरे नही यह तो पहलेकी बात है। जब ज्ञानानुभवका असर आ रहा हो वहां विभक्तानेकी बात सोचना विघ्न है। आनन्द तो आ रहा है।

मैं ज्ञानमात्र हूं। ऐसा उपयोग करनेसे ज्ञान ही ज्ञानमे पहिचानका आनन्द आनेको हो और वहां नास्तिका विचार करो तो वह विघ्न है। यह तो वस्तुस्वरूपके पहिचाननेकी जड़ है। अरे दूसरी बातसे तो निर्णय कर लो कि मैं जगत्के सब पदार्थोंसे न्यारा हूँ। अनुभवके मार्गमे सोचनेकी आवश्यकता नही। यह तो निर्णयकी बात थी। मैं तो स्वचतुष्टयसे हूँ, परपदार्थोंके चतुष्टयसे नही हू। यह बात निर्णय कर लेनेके लिए थी, पर जब ज्ञानके अनुभवका टाइम चल रहा हो उस समय स्याद्वादका आश्रय लेनेकी जरूरत नही। स्याद्वाद निर्णयके लिए है। निर्णय होकर फिर हमे उसके मर्ममे ही चले जाना चाहिए। फिर स्याद्वादके विकल्पोको न लिए फिरें। मैं ज्ञानपिंड हू और सब पदार्थोंसे भिन्न हू; स्वभावसे निर्विकार हू। यहा क्रोध, मान, माया, लोभ इत्यादि विकार मुझमे आते तो है परन्तु यह मेरा स्वभाव नही बन गया। स्वभाव होता तो सदा काल ही यहां रहा करता। जैसे अगुली टेढी कर दें तो टेढी ही रहेगी ऐसी बात तो है नही। क्योंकि टेढी रहना अगुलीका स्वभाव नही है। अग्निकी गर्मीका निमित्त पाकर पानी गर्म हो गया। गर्म तो हो गया, पर गर्म हो जाना पानीका स्वभाव नही है। विकार तो आ गए, पर विकारोका आना आत्माका स्वभाव नही है। मैं स्वभावसे निर्विकार हू, अपने आप सहज स्वरूप जो मेरी सत्ता है, तावन्मात्र ही हूँ। मैं कैसा सत् है इस बातको जब देखो तो मैं एक चैतन्य वस्तु हू, निर्विकार हू, ऐसा अपनेको देखना चाहिए। और मैं धनी हू, मै गरीब हू, मैं लडको बच्चो वाला हू, कुटुम्ब वाला हू, परिवार वाला हू—यह सब क्या है ? यह सब विकारमे फसना है। विकाररूप ही अपनेको माननेपर आत्मा विकाररूप नही हुआ। विकाररूप माननेसे आत्मा कही विकारमय नही हो गया,

किन्तु अपना उपयोग विकाररूप बनाना ही विकारोमे आना हुआ। मोही तथा अज्ञानी पुरुष ही अपना उपयोग अपनेको नाना विचित्र रूपोमें मानकर विकाररूपमे बनाते हैं, परन्तु ज्ञानी पुरुष मैं पुरुष नही हू, मैं स्त्री नही हू, मैं बालक नही हू, मैं बालिका नही हू मैं धनी नही हू, मैं गरीब नहीं हू, इस प्रकारसे सब विचित्रताओको अपना मानकर यथार्थरूपमे बनाते हैं।

मैं केवल चैतन्यमात्र वस्तु हूं। इस मुझ चैतन्य वस्तुका अन्य वस्तुवोके साथ रच भी संबंध नही है। वे सब पदार्थ हैं। वे अपने आपमें हैं। मैं एक पदार्थ हू अपने आपमे हू, सब पूर्ण स्वतन्त्र हैं, आजाद हैं, अपने अपने स्वत्वमे मौजूद है। किसी पदार्थका किसी दूसरे पदार्थके साथ रंच भी सम्बन्ध नही है। स्पष्ट देखो यह वस्तुका स्वरूप है। यह प्रत्येक पदार्थ अपने सत्मे है, अपने स्वतन्त्र स्वरूपमे है। पर ऐसा न मानकर किसी दूसरेके साथ सम्बन्ध हो—ऐसी झूठी बातें बनाए, ऐसा झूठा विश्वास बनावे, बस यही ससारके दुःखोकी जड है। धन्य है वह उपयोग, धन्य है वह आत्मा जो ससारके सारे पदार्थोका स्वयसिद्ध स्वतन्त्र यथार्थ समझते रहते हैं। ज्ञानी गृहस्थी जहां पर रहते हैं वह अपने कुटुम्ब, परिवार, पुत्र, स्त्री इत्यादिको भिन्न ही समझते हैं। उन्हे यह प्रतीत है कि मेरा कुछ नही है, रच भी इन से सम्बन्ध नही है। यह चीजें मेरी हो ही नही सकती है। और जो कुटुम्ब, परिवार, बच्चो स्त्री इत्यादिको अपना मानते हैं, अपना ही सब कुछ समझते हैं तो उनके हाथ केवल पापका कलंक रहता है। यह तो त्रिकालमें उसके नही हो सकते हैं। अगर कुटुम्ब, परिवार, स्त्री, बच्चोको अपना माना तो प्रोफिटमे पापका कलक आ जायगा और ससारमे रुलनेकी बात आ जायगी। अन्य वस्तु तो आ नही सकती। अरे इस ससारमे तेरा कुछ नही है। जगत्के बाह्य पदार्थोंको अपना माननेमे कितना प्रोफिट है? अपना मान लेनेसे क्या वह अपने हो गए। वह अपने नही हुए। वह तो अपनी सत्तामे है। त्रिकालमे भी वह अपने नही हो सकते है। मिथ्या समझकर अनेक विकार बन गए, अनेक कषाय बन गए, ससारमे बहुत समय तक दु.ख सहा, रुलते रहनेकी रजिस्ट्री करा ली। यह सब मुसीबतें आजीवन रही। अन्य वस्तुका तो कुछ अंशमे भी मुनाफा न हुआ। जो दुनियामे कुछ चाहता है उसको ऐसी ही हालत होती है।

एक सेठ थे, हजामत बनवा रहे थे। वह सेठ वहमी था। नाई बाल बना रहा था। अब सेठने जब देखा कि नाई तो बाल बना रहा है, इसमे तो मेरी जिन्दगी नाईके हाथ है। सेठ डरता है। वह सोचता है कि कही बाल बनातेमे गला न कट जाय। इस डरसे वह नाई से कहता है कि बहुत बढिया समझकर बनाना, तुमको हम कुछ देंगे। जब नाई बाल बना चुका तो सेठ जी ने एक चवन्नी निकालकर नाईको दी। नाईने कहा कि हम चवन्नी नही लेंगे

हम तो कुछ लेंगे। सेठ जी एक अशर्फी, दो अशर्फी, दस अशर्फी देते है पर नाई कहता है कि हम यह नही लेंगे, हम तो कुछ लेंगे। सेठ जी को कुछ भूख-प्यास लगी थी। नाईसे कहा कि आलेमे जो गिलास रखा है, ले आवो। दूध पी लें। हम भी पी लें और तुम भी पी लो। नाईने गिलासमे जो देखा तो उसमे कुछ काला काला था। नाईने कहा—सेठजी, इसमे तो कुछ पडा हुआ है। सेठ बोला कि कुछ है तो वह कुछ तू ही ले ले। तू कुछके लिए अडा भी था। उठाया तो क्या निकला, कोयला। जो कुछकी जिद्दमे पडा उसको क्या मिला ? कोयला।

इसी तरह यहांके प्राणी कुछमे ही पडे हुए हैं। उनको मुनाफेमे मिलता क्या है ? मिथ्यात्व। श्रम, सस्कार हो गए, कुछ मिला नही। मान लिया एक करोड, पर आत्मामे आता क्या है ? उसमे नए पैसेका हजारवा हिस्सा भी नहीं। सब अपने स्वरूपमें हैं किन्तु मुनाफा यह मिला कि मिथ्यात्व बढ़ गया, अज्ञानता बढ गयी, खोटे संस्कार हो गए। यही एक मुनाफा हो गया। चीजें तो कुछ मिलती ही नही। क्योकि जगत्के प्रत्येक पदार्थ स्वतन्त्र हैं। किसी भी पदार्थका किसी भी पदार्थसे रच भी सम्बन्ध नही है। यह आत्माके स्वरूपकी बात चल रही है और इस श्लोकमे पाँच बातोसे आत्माका रूप खोला गया है। जिसमे चौथा विशेषण चल रहा है कि मैं स्वतन्त्र हू, मैं स्वतंत्र हो सकता हू। जब मैं सबको स्वतत्र निरखू तब स्वतंत्र हो सकता हूँ अर्थात् मै अपने आप स्वतन्त्र श्रद्धामे रहता हूँ। जब तक प्रत्येक पदार्थको भी स्वतन्त्र स्वरूपमे न देखें कि वे स्वतन्त्र है तो मैं भी कैसे स्वतन्त्र रह सकता हू ? मैं तो स्वतत्र रहूँ व मेरे घरके बच्चे, अरे वह तो मेरे हैं, वे मेरे आधीन है, अरे वे भी एक सत् हैं। जब वे पराधीन बन गए तो तुम भी पराधीन बन गऐ। ये मेरे है, मेरे आधीन है सोचते हैं, पर बच्चे पराधीन नही बने, तुम स्वय पराधीन बन गए। तुम स्वय अपने अनुभव से पराधीन हो। जो मेरा नही है उसे मैंने मान लिया तो पराधीन बन गए। मैं तो स्वतन्त्र हूँ और जगत्के पदार्थोंको पराधीन देखू, उन्हे मैं अपने आधीन देखूं तो मै स्वतन्त्र नही बन सकूगा। अपने स्वरूपका अनुभव न कर सके कहे कि यह प्राणी जो लोकमे मोहको लिए हुए है वे राम हो जावें। अरे तू भी तो राम नहीं बना। कहते है कि स्त्री सीता हो जावें और पुरुष राम बनें। तो क्या स्त्रियां सीता नहीं बन सकतीं वे कहते है कि यदि पुरुष राम नही बनते, स्त्रियां सीता नही बनती तो सुख और शांति कैसे हो सकती है, आराम कैसे मिल सकता है ? तुम्ही उनके गुणकी श्रद्धा करने वाले हो सकते हो। खुद पुरुष रामका स्वरूप है। यदि खुदके स्वरूपको राम निरखोगे तब बात बनेगी। इसी प्रकार खुद स्वतन्त्र बनो व सबको स्वतत्र देखो। सब मेरे आधीन रहे ऐसी कल्पना जहां आई तहां पराधीन बन गए। यह स्त्री मेरी है, यह बच्चे मेरे हैं, ऐसी कल्पना आनेके माने है कि स्त्री तथा बच्चोके आधीन

बन गए। 'यह पदार्थ मेरे है' के मायने है कि आप पदार्थोंके आधीन बन गए। मैं स्वतन्त्र हूँ जगतके सभी पदार्थ अपनी सत्तामे हैं। कोई दूसरेके आधीन नहीं।

पाँचवीं विशेषता है कि मैं सहज आनन्दस्वरूप हूँ। सहज स्वाभाविक आनन्दस्वरूप हूं। आनन्द मुझमे लाया नहीं जाता। जैसे ज्ञानी जीवका स्वरूप है तैसे आनन्द भी जीवका स्वरूप है। जीवोका सर्व प्रयोजन इसी बातमें है और इसी बातमें प्रयत्न रहता है। एक तो जाननका और एक आनन्दका—इस जीवके यही दो प्रयोजन हैं। इन दोनो ही चीजोंको प्राणी चाहता है कि जानन भी खूब हो और आनन्द भी खूब हो। सो भाई ज्ञान और आनद यह आत्मामे ही हैं। आत्मामे स्वभाव है और आत्मामे स्वरूप है। ज्ञान और आनन्द कही बाहरसे नहीं लाना है। किन्तु जैसे हो तैसा अपनेको मान लेना, बस यही ज्ञान और आनन्द के प्राप्त होनेका उपाय है। इस श्लोकमें पहले विशेषणमे ज्ञान है और आखिरीमे आनन्द है। मेरा भी तो प्रयोजन ज्ञान और आनन्दसे है। वे मेरे ठीक बनानेके लिए और आनन्दके विकासके लिए है। ज्ञान और आनन्द ही जीवका वैभव है। यदि अन्य वैभवके दर्शन करेगा तो तू अपने अमूल्य वैभवको गँवा देगा। केवल यह मैं ज्ञानानन्द आत्मा हू ऐसा ही अपने को अनुभव करो तो अपनेमे अपने आप अपने आनन्दका अनुभव कर सकते हो। देखो जैसा मैं नही हू वैसी भावना करूं तो वैसा ही उपयोग बन जाता हू। तब मैं जैसा हू तैसा अनुभव करके वैसा ही उपयोग बनाऊ तो वैसा बन जानेमे कोई सदेह नही है। मैं भैंसा नही हू किन्तु अकेले बैठे बैठे समझ लिया कि मैं भैंसा हूँ तो ऐसी ध्वनि बन जायगी और अपने शरीरको भूल जाऊंगा। यही सोचूंगा कि मैं भैंसा हू, मेरे एक बडा पेट है, दो सीगें हैं, एक पूंछ है, चार पैर हैं। ऐसा यदि एकचित्तसे अपनेको भैंसा समझ लेवें तो मैं भैंसा ही नजर आऊंगा, मै अपने उपयोगसे भैंसा ही बनूंगा और अगर दिलमे ऐसा अनुभव आ जाय कि मदिरका दरवाजा छोटा है तो रज करूंगा कि मै कैसे निकलूं मैं मदिरसे बाहर कैसे निकल पाऊंगा। हमारा शरीर तो इतना मोटा है, दो सीगे हैं, एक पूंछ है, अच्छा काला काला बडा मोटा सा हू। मै कैसे बाहर निकल पाऊंगा? सारी बातें सोचने सोचनेमे ही अपने आप अनुभव कर डालता है। जैसा कि है नहीं, फिर जैसा यह है ज्ञान रस, आनन्दघन, ज्ञानमय, सबसे निराला तैसा ही अपनेको माने तब तो यह स्थायी रूपसे ऐसा ही हो जाता है। मै भैंसेकी कल्पना बनाए बैठा था तो क्या मै भैंसा बन गया? भैंसा मैं नही बन जाऊंगा; परन्तु यह तो आनन्दमय है और ऐसा ही मान लेवे तो स्थायी रूपसे ज्ञानमय यह आत्मा बन जायगा। तो यह मैं आत्मा सहज आनन्दरूप हू तो यह मै अपनेमे अपने लिए रमकर अपने आप आनन्दमग्न होऊं।

निजचेष्टाफलं ह्यन्ये दृष्टिः संसार उच्यते ।
विज्ञाय तत्त्वतस्तत्व स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।१-५५।।

थोडेसे शब्दोमें यदि कहा जाय कि संसार क्या है, सारी झंझटें क्या हैं तो कहा जा सकता है कि अपनी चेष्टाका फल अन्यमे होता है, ऐसी मान्यता ही झंझट है, इस ही को संसार कहते हैं। हम जो कुछ करते है उसका असर दूसरोंमे होता है, उसका फल दूसरो में होता है। इस प्रकारकी बुद्धि होनेका नाम संसार है, सारी विपदाएँ है ऐसी दृष्टिका नाम ही संसार है। संसार शब्दका अर्थ देखा जाय तो निकलता है कि 'संसरणं ससारः' परिभ्रमण करनेका नाम संसार है। बाहरी दृष्टिसे ३४३ घन राजू प्रमाण लोकमे परिभ्रमण करना संसार है और अध्यात्मदृष्टिसे अपने आपको विभावोमे आकुलित होकर, फिर फिर कर विकल्पोमे बने रहनेका नाम ससार है, परिभ्रमण है। यह संस्करण क्यो लग गया? इसका मूल कारण क्या है तो अपनी चेष्टाका फल दूसरोमे माननेकी दृष्टि ही इसका मूल कारण है। हम एक स्वतत्र पदार्थ है। जगके ये सभी स्वतत्र स्वतत्र पदार्थ है। किसीका किसी से रच भी सम्बन्ध नही है। अपने ही तो उत्पाद व्यय ध्रौव्यमे रह करके अपने ही स्वभाव से ये परिणमते रहते है। अपने रूपकी सीमाका उल्लघन कोई नही करता है। फिर कोई वजह ही नही कि किसीके करनेसे किसीको कुछ हो जाया करता हो। परन्तु यह मोही प्राणी भी करता है तो यह समझता है कि मैं अमुकमे यह परिणमन कर दूंगा। बस इसी दृष्टिके कारण संसारके सारे क्लेश लग गए। इसीको कहते है कर्तृत्वबुद्धि। अर्थात् परको कुछ कर लेनेका ख्याल मैं दूसरोको कुछ कर देता हू, दूसरे मुझे कुछ कर देते है। इस प्रकारका जो विकल्प चलता है, खोटा अभिप्राय रहता है। इस ही का नाम संसार है और इन विकल्पोसे छुट्टी लेनेका नाम ही मोक्ष है। घरमे, समाजमे, समूहमे जहां भी जो विवाद खडे होते हैं उन विवादोका मूल कारण देखो तो अहकार निकलेगा। अहकार बिना विवाद नही होता है। घरमे स्त्री पुरुषमे, देवर जेठानीमे, सास बहूमे अगर विवाद खडा होता है तो विवाद दो के बीचमे होता है ना, क्योकि एकसे विवाद क्या? सो जिससे विवाद खडा हो, समझो इसमे अहकार ही है। क्यो दुःखी होते हो? अमुक काम न हुआ तो न सही। वह भी पदार्थ है। वह ही परिणम गया। इसमे तुम्हारा क्या बिगड गया? मैंने हुक्म दिया, पर उसने नही माना अथवा मैं ऐसा कहता था, ऐसा क्यो नही किया? यह हो गया अह-कार। मैंने इनका बडा पालन पोषण किया और इनकी सेवा करता हू और फिर भी ये मेरे अनुकूल नही चलते यह भी हुआ अहकार। मेरे जितने विवाद होते है वे सब अहंकारसे होते है। धधे करनेके मामलेमे निरतर जैसे चिन्ताएँ रहा करती हैं—इतना क्यो नही हुआ,

इतना कैसे बचा लिया जाय, यह कैसे कमा लिया जाय अथवा इज्जत रखनी है। सारे जितने पाप हैं उनका भी मूल है अहंकार। उनका क्या बिगडा कि ५ लाख थे और २ लाख निकल गए, केवल ३ लाख रह गए। अरे इसमे क्या तुम्हारा तत्त्व बिगड गया? इन मायामयी मूर्तियोंके बीच इस मायामय मूर्तिको जो चाह रहा है इस मायामय शरीरको जिसने सामने रखा है और इस मायाकी दुनियामे अपनेको कुछ बताना चाहता है वह अहंकार ही उन व्याधियोंका स्वयं कारण है।

जगत्मे जितनी भी विपदाएं हैं सब विपदाओंकी व्याधियोंका कारण अहंकार है। हम कुछ करते है फल दूसरेमे होता है। कर्तृत्वको माननेका नाम ही ससार है। परमार्थसे बात तो यह है कि हम जो करते हैं उसका फल हम ही भोगते हैं। हम करते क्या हैं, क्या दुकान चलाते है, रोटी बनाते हैं, घरकी लीपापोती करते हैं? हम विकल्पका ही काम करते है। कभी विकल्पके अतिरिक्त अन्य काम नही करते हैं। हम तो विकल्प करते हैं फिर इसके निमित्तसे जो कुछ होना है वह अपने आप होता है। तुम आत्मा हो। आत्मा एक ज्ञानमय पदार्थ है। वह इस शरीरके अन्दर रहते हुए भी इस शरीरसे जुदा है। यह ज्ञानमय जीव पदार्थ केवल अपने परिणाम कर पाता है। परिणाम किया कि इस शरीरमे रहने वाला यह आत्मा जो शरीरसे न्यारा है। सब प्रदेशोमे हिल जाता है, कंप जाता है। जैसे अभी भयका परिणाम हो तो यह आत्मा हिल जाता है। कम भयका परिणाम हुआ वहाँ भी हिल जाता है। खुशीका परिणाम हुआ, चिंतनका परिणाम हुआ, इच्छा की, वहाँ भी हिल जाता है, यहाँ भी परिणाम करता है तो उस परिणामके फलमे यह जीव कँप जाता है, हिल जाता है, प्रदेश परिस्पन्द होने लगता है। इसे कहते हैं योग। पहली बातको कहते हैं उपयोग। यह जीव केवल उपयोग और योग करता है और दूसरा काम ही नही करता है। मैं तो केवल उपयोग और योग करता हू। इसके बाद जो कुछ होता है वह अपने आप होता है। देखो यह जो ज्ञानकी बात है, यही अमृत है। इसको पी लोगे तो अमर बन जावोगे। बस, अमर तो होना ही है। समझमे आ गया कि अमर क्या है।

मैं अपने स्वरूपसे हू, अपनेमे रहता हू, सदा अकेला ही रहने वाला हूँ। यहाँ तो यह मैं ही मैं दिखता हूँ, मैं ही मैं यहाँ हूँ। जरा आँखें खोलकर देखो, अरे यह तो शरीरमे है। परमार्थसे शरीरमे नही है यह तो व्यवहारकी बात है। शरीरमे तो वस्तुत यह नही है और व्यवहारसे है तो रहने दो। यह मैं इस शरीरको छोडकर दूसरी जगहके लिए जाऊँगा। तो मैं तो वहीका वही हुआ। यहाँसे छोडकर दूसरी जगह पहुच गया, मैं तो पूराका पूरा हू। उतनाका उतना, पूराका पूरा मैं अमर ही तो रहा। मरा कहाँ? मगर वह दृष्टि यह

विकल्प कर डालती है कि देखो हमारा कमाया हुआ यह धन छूटा जा रहा है अथवा इज्जत बनी हुई थी, अब वह छूटी जा रही है। यह जब ख्याल करता है तो दुःख हो जाते है। नही तो दु:खी होनेका कुछ काम ही नही है। मै यहाँ रहूँ अथवा न रहूँ, इससे उसमे क्या फर्क आयेगा ? मगर बाहर जब मोहकी दृष्टि बनी रहती है तब तो क्लेश उत्पन्न होते है। बाहर दृष्टि ही दृष्टि बनती है, पदार्थोंमे फेर ऊपर कुछ नही होता। व्यर्थ ऊधम मचाते हैं और दुःखी होते हैं। ये ऊधम तथा दुःख कहाँसे आ गए ? हमारे अज्ञानमे हम खुद कसूर करते है व दुःखी होते है, किसीसे ठिनकनेका क्या प्रयोजन, ऊधम किया तो दुःखी होगे ही। अब दूसरोमे क्या आशा रखते हो। उनसे मेरे हितकी बात होगी—यदि ऐसा विचार कर लेते हो तो दुःखी हो जाते हो। अनहोनीको होनी बनाना चाहते हैं। इसका तो फल दुःख ही है।

एक लडका था। वह इस बातमे मचलने लगा कि हमे तो हाथी चाहिए। उसका पिता हाथी वालेको बुलाकर हाथी ले आया। फिर लडका बोला कि इसे खरीद दो। बापने कह सुनकर हाथीको पालेमे खडा कर दिया और कहा कि खरीद दिया। लडकेने कहा कि हाथी मेरी जेबमे रख दीजिए। अब बताओ भैया, यह काम कौन कर देगा ? उसकी जेबमे हाथी कौन रख देगा ?

जैसे लडका मचलता है कि हाथीको जेबमे रख दीजिए उसी प्रकार जीव परपदार्थोंको लेनेके लिए मचलता है। अरे भैया, अनहोनी बात क्यों चाहते हो ? जो होना है सो होगा। उसे भगवान सब कुछ जानता है। जो कुछ वह जानता है सो होगा। वह जानते हैं इसलिए होगा ऐसी बात तो नही है किन्तु जैसा हुआ था, जो हो रहा है, जो भविष्यमे होगा सबको भगवान जानता है, यह बात है, और कोई बात नही। बाह्य दृष्टिमे आपदा ही आपदा है। आत्मामे धोखा है ? नहीं। यह परिचयकी जगहमे माया रूप है। परमार्थमे तो शुद्ध चैतन्य-स्वरूप है। यहाँ कोई यह प्रश्न कर सकता है कि जब जो भगवानने जाना है वह होगा, फिर पुरुषार्थ करना व्यर्थ है। भैया ! जो आप करेंगे वही प्रभुने जाना है। फिर इसकी ओरसे क्यो ऐसी उपेक्षा कर ली जाय ? हाँ परवस्तुवोसे क्या सिद्धि है सो परके बारेमे सोचो। यह जैसा होता है होने दो। अन्य पदार्थ तुम्हारे सोचनेसे वैसे हो नही जावेंगे। तब जैसा भी हो गया होने दो। उसका भी यह जाननेसे बिगाड कुछ नही होता और मोह है इसलिए दुःख होता है। जैसे कोई नाच रहा हो और नाचनेमे एडियां कुछ गलत उठ गयी हो, ठीक-ठीक ठेकेके अनुसार एड़ियां न चलें। नाचनेकी कलाको जानने वाले जो लोग बैठे हुए है वे दुःखी हो जावेंगे। वह गलती देखकर वे दुःखी हो जाते है इसका कारण है कि उनको भी शौक है, उनको भी अहकार है। देखो जाननेकी कलापर ही सब कुछ निर्भर है। जगत्के सब पदार्थो

से निराला अपने आपको जो शुद्ध ज्ञायकस्वरूप है वह जब तक अनुभवमे नही आता, कर्तृत्वबुद्धि नही मिटती तब तक अज्ञानी सदा अपने घमडमे रहता है।

कोई बडा धनी था और अब वह बिल्कुल गरीब हो गया हो तो वह अनेक कल्पनायें करगा कि मेरे दरवाजेपर सैकडो जूते उतरते थे, मेरा सम्मान होता था। ऐसा कहकर अपना बडप्पन जनाता है। चाहे अर्थ ऐसा निकले कि पापका उदय आ गया। सो देखो सब खत्म हो गया। यद्यपि उसके सुनानेमे इज्जत नही है, बेइज्जती है तो भी उनकी कर्तृत्वबुद्धि का नशा है सो कहता है। वर्तमानको बाबका भी कोई अहंकार करता व भविष्यका भी। वह यो बन जायगा, वह ऐसा हो जायगा, यों इज्जत वाली बातमें घमंड किया। इस कर्तृत्व-बुद्धिमे अपने हितका मार्ग नही सूझता। सो इन ससार भावोको छोडकर हमे मोक्षमार्गमे आना चाहिए। मैं जो करता हू वह उपयोग और योगको ही करता हू। इसके अतिरिक्त करनेका कही काम नही है। इतना कर लेनेके बाद शरीरमें जो वायु भरी है, चक्कर करने लगती है। तब आत्माके भावोके अनुसार चक्कर काटना शुरू हो जाता है। यो उपयोगके अनुसार योग व योगके अनुसार वायु चलती है। जब आत्माके प्रदेशमे बोखलाहट होने लगी तो यहाँ एक क्षेत्रमे रहने वाले इस शरीरके स्कन्धोमे भी वायुको बोखलाहट होने लगी। जहाँ इस शरीरमे वायु चले तो शरीरके अग भी चल उठे। जैसा उपयोग किया था उस ही के अनुसार योग हुआ, वायु चली, अनेक अग चले और उन चलते हुए अगोके बोचमे कोई रोटी ले आए तो उसके भी परिणमन हुए। उसको देखकर लोग कहते हैं कि इसने रोटी बनाया, दुकान, चलाई, वस्तुवें खरीदी इत्यादि बातें लोग कहने लगते हैं। परमार्थसे अन्य कुछ नही किया। जीवने तो केवल उपयोग और योग ही किया है। उपयोगके योग होनेके अतिरिक्त इस जीवकी करतूत कुछ नहीं है।

लोकमे कहावत कही गई है कि 'घी शक्कर मीठा या बहूके हाथ।' घी, शक्कर होनेके कारण पकवान मीठा है। हाथ निमित्त है। इसमे मीठा क्या है ? बहूके हाथ मीठे हैं क्या ? नही शक्कर मीठी थी। तो पकवान बहूने बनाया या शक्करने बनाया। देखो हाथमें हाथ चला और रोटीमे रोटी बनी। व्यर्थका हो अहकार होता है कि रोटी मैंन बनायी है। रोटीका उपादान तो वह आटा ही है। हाथ तो निमित्तमात्र हैं। निमित्त वह कहलाते हैं जो अलग रहा करते हैं। हाथ रोटोसे अब भी अलग है। लोकमे जो भी काम होता है उन सब कामोंसे भी हाथ अलग हैं। निमित्त अलगको ही कहते है। जो भिन्न चीजें हैं सारी अलग है तभी तो निमित्त पाकर भी यदि उपादान योग्य नही है तो काय नहो होता। आज भाई आटा नही बचा। अरे नही बचा तो नही सही, कैसे बनेगा ? धूल धर दो। क्या रोटी बन

जायगी ? नहीं। क्यो ? अरे उपादान तो है ही नहीं। कार्य जितने होते हैं वे उस ही द्रव्य मे होते हैं, जहाँ कि वह कार्य है। मै जो कुछ परिणाम करता हूँ, कार्य करता हू, मेरा असर मुझमे ही है, मेरेसे बाहर मेरा असर नहीं है। मोह करके दुःखी हो गया, बरबाद हो गया। दुःखी हुआ वो दुनियाके अन्य किसी वजहसे दुःख कुछ नहीं हुए। मोह हुआ उससे ही दुःख हुआ। मोहकी गंदगी जो दुनियामे है, हमारी ही है। बाहर कोई गंदगी नहो है। इस गंदगी का कारण यह आत्मा मोही ही है, मोहका परिणाम ही है। इस मोहके परिणामने हमे निगोद जैसी खोटी योनियोमे पहुंचने वाला बना दिया। बतलावो इसमे कौनसी स्थिति ऐसी है जो अच्छी है और संतोषके लायक है। जैसे कहावत है कि—'घर भरमे मिट्टीके चूल्हे।' घर घरमे क्लेश हैं, घर घरमे विपदाएँ हैं। कहीं चले जावो, कचहरीमे जज बैठता है कुर्सीपर और हुकूमत करता है। अनेक लोग आकर सलाम कर रहे हैं और बाबू बने हुए बैठे हैं। देखने वाले सब लोग सोचते है कि जज साहब सुखी है। अरे वह सुखी नहो है। वह अहंकारसे भरे हुए है। निरतर दुःखी होते हैं और चिताओसे युक्त हुआ करते है। तो बताओ कि वह मजेमे कैसे होगे ? ऊपरी शानसे सुखी हैं, पर वह भीतरी मनसे दुःखी हैं। जैसे ऊपर से चाँदीका घड़ा दिखता है और अन्दरमे विष्टा भरा रहता है तो वह कैसा है ? इसी तरह ससारके प्राणी ऊपरसे चिकने चुपडे लगते हैं व भीतरसे अज्ञान व अशांति भरी है। कहा है न वैसे ही। लखनऊ जैसी नजाकत है। यही बात है कि दिखने मात्रमे वह सुखी है, पर भीतरसे वह विकल्प भरे हुए हैं और दुखी हो रहे है। भीतरमे राग द्वेष, मोह इत्यादि भरे हुए है। कौनसी ऐसी स्थिति है जिससे अहकार किया जाय, संतोष किया जाय। जैसे रास्ता भूलकर कोई पुरुष कुछ आगे बढकर चला गया है तो भूल मालूम होनेपर सामनेके बडे बगीचो, वन उपवनोसे अपना मुख मोड लेता है, उन्हे मुडकर भी नहीं देखता है। इसी प्रकार खोटे मार्गमे, भ्रमकी बातोमे पडकर बहुत दूर तक चला फिरा, भटकता हुआ प्राणी जब यह समझ जाता है कि ये सब विषय कषाय है, भूलका मार्ग है। निज सहज स्वभावकी दृष्टि छोड़कर परपदार्थोंको अपना मानना यह सारी भूल है। हम मार्गको भूल गए हैं। यह तो व्याधियोका मार्ग है—जब ऐसा सही ज्ञान होता है तो यह जीव अपने कुटुम्ब, परिवार इत्यादिसे अपना मुख मोड लेता है। अपने धन वैभवका लिहाज नहो करता है। अपने लडको पर निगाह नही डालता है।

यदि अपनेको व्याधियोसे रहित मार्गमे लाना है तो सुमार्गकी ओर देखो। अपना चेष्टाओका फल दूसरोमे होता है ऐसी दृष्टि पाप फैलाए है। यही खोटा मार्ग है, यही ससार है। यह विपरीत मार्ग है, यही ससार है। इसमे चलनेसे इसमें ही भटकते रहोगे। जब

समझ आती है तब ज्ञान इससे मुड जाता है। मेरी शक्तियोंका परिणाम मुझमे ही होता है। मेरा मित्र मैं ही हू, मेरी विपदाए मै ही हू, यह ज्ञानानन्दस्वरूप भगवान् आतमा है, इसको ही अपने आपके लक्ष्यमे लो। इस शरीरकी समस्त आकुलताए समाप्त हो जाएगी। अपनी चेष्टाओंका फल दूसरोमे मानना सोई कुबुद्धि है, संसार है। अगर कुछ असंयममे भी पडा रहना पडता हो तो फिर भी प्रतीति तो पूर्ण सही रखना चाहिए। अपनेको ऐसा ही प्रतीत करना चाहिए कि मै सबसे निराला, केवल ज्ञानस्वरूप ही आनन्दमय भावात्मक एक बिलक्षण चैतन्य पदार्थ हू, जिसका यहा कुछ नही है। इसमे जो कुछ हरकत होती है, चेष्टा होती है वह इस आत्मस्वरूपकी होती है और जो असर बनता है वह इसके ही बननेकी चेष्टा हो रही है। जो होता है इसके ही प्रयोजनके लिए होता है, इसमे होता रहता है। इसके लिए ही होता है। जैसे सर्प कुण्डली बना लेता है, अपने लिए ही अपनेको घेर लेता है। इसी तरह इस जीव ने जो कुछ उपयोग किया और योग किया वह सब अपनेमे ही अपने लिए किया। इसका इसके बाहर कुछ वास्ता नही है। अन्तः दृष्टि होनेका नाम मोक्षमार्ग है और बाहरमे दृष्टि फैलानेका नाम संसार है संसारका मार्ग है।

देखिये—भावनासे ही यह संसार मिल जाता है। अब बुद्धिमानी यह होनी चाहिए कि हम किसे प्राप्त कर लें? केवल भावनासे ही मिल रहे हैं सब कुछ। रातको एक भाईने यह प्रश्न किया कि हम जैसी चीजोंका सौदा करते हैं, सौदा तो करते हैं और चीज खरीदते नही। केवल भावना ही कर लेते है। इसमे नफा नुकसान क्या होता है? बडे गजबकी बात यह हो गई। नुकसान तो सौदा लेनेपर होता कि भाव करने पर? लेकिन यह भाव कर्म का बन्ध करा देता। रोजगारमे भावना करनेसे नुकसान नही होता। नफा नुकसान तो सौदा कर लेनेपर ही होता है। सो भैया, प्रथम तो यह बात है कि तू जो केवल भावनाओंको बना सकता है, काम कुछ कर सकता नहीं है। भीतरसे विषय कषायके परिणाम भरे हुए है, उनसे कर्मबन्ध होता। हिंसा, झूठ आदिके कारण कर्म नही बंधता। यह विचित्र रोजगार है। जीव भाव ही कर पाता है और भावसे ही नफा नुकसान होता है। भावके कारण कर्मबन्धन है। हां यह बात जरूर है कि भाव बुरे हैं तो कार्य भी बुरा किया जाता है। इसीसे कहो कि हिंसा, झूठ आदि भावनाओंके कारण कर्मबन्धन है। यह रोजगार विलक्षण है। यदि अपनी खोटी भावनाओंसे हटकर सही रूपमे कार्य करने लगे तो नफा हो जाय। भाव खोटे नहीं तो बाह्य परिणतिसे पापबंध नही। ऐसे अनेक उदाहरण मालूम होगे।

सुदर्शन सेठ थे। रानीने सेठको बुला लिया। महलमे सब चेष्टायें कर ली, परन्तु सुदर्शन निरक्त ही थे। राजाने गुस्से मे आकर शूलीका आदेश दिया, परन्तु सुदर्शन सेठका

परिणाम रंच भी बुरा न था। उनका विचार था। रानीसे कहा था—माँ मैं तो नपुंसक हूं, उसका परिणाम निर्मल था। उसके कारण उसके कार्य बन्धन नहीं हुए। तथा परवस्तुवोंके कारण मोक्षमार्गमें बाधा नहीं आयी और ये दुनियाके विचित्र गुण्डे लोग परिणाम बिगाडते हैं, पर कहीं बस थोड़े ही चलता है, फिर भी कर्मबन्धन हो रहे हैं। जैन सिद्धान्त तो यह कहता है कि कायसे कर्मबन्धन नहीं, कर्मबन्धन भावनाओंके कारण है। हाँ यह बात और है कि भावनाओंके बिना कार्य हो नहीं सकता। यदि साधु ईर्या समितिसे जाते हो और अचानक मार्गमे कोई कुन्थु प्राणी मर जाता है तो प्राणिघात होते हुए भी कर्मबन्धन नहीं हुआ। उन्हें जीवहिंसाका पाप नही हुआ। कोई बिना देखे चले और उसके शरीरसे किसी प्राणीका घात भी न हो रहा हो तो कर्म बँधेंगे। कर्मबंधनका रोजगार भावसे चलता है, चीज के लेन-देनसे नही। सबसे बुरा भाव, बुरा पाप तो मिथ्यात्व है। अपनी चेष्टाका फल दूसरे मे देखना यह भाव भी मिथ्यात्व है। इस मिथ्या आशयको त्यागकर मैं निज चैतन्यस्वभाव मात्र देखू और अपने मैं अपने आप सहज विश्राम पाऊँ।

अनंतज्ञानसौख्यादिगुणपिंडोपि तृष्णया।
भ्रमाणि दीनवत्कस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-५६॥

मैं अपने आप किन तत्त्वोसे बना हुआ हू, किन तत्त्वो रूप हूँ—इस पर विचार करनेसे जब आत्मामे देखते हैं तो यही मालूम होता है कि यह एक ज्ञानमय वस्तु है, ज्ञानसे ही रचा हुआ है, ज्ञान ही उसका सर्वस्व है, ज्ञानके मायने जानना। जानना आत्माके आधीन बात है। परपदार्थोंके आधीनताकी बात नहीं। जाननेमे परपदार्थ आते है पर जानना तो आत्माकी चीज है, आत्मामे उठता है। जानना आत्माके स्वभावकी कला है। इस कारण जाननेकी सीमा नही होती कि इसको ही जान, आगे न जान, इससे अधिक न जान। ऐसा जाननेमे कोई सीमा नहीं है। स्वभावसे ऐसा जाननेका स्वरूप है। जिसे कहते है अनन्त ज्ञान। यदि ज्ञान कम जाने, इतना जान पानेका कोई कारण होता है। इतनी बात बतलाइए कि दस कोशका जान लेनेका काम है और ग्यारहवें कोशके जाननेका आत्माका काम नही है, क्यो? अरे इसमे तो जाननेका ही मात्र स्वभाव है। सीमा बनावेगा तो स्वभाव ही मिट जावेगा। जो है सो जाननेका स्वभाव है, जाननेका विषय सत् है, वह सब जाननेका स्वभाव है। आगे पूछनेकी गुंजाइश नही। क्यो ऐसा नही है? इसने हजार कोश तकका जाना, पर हजार कोससे आगे न जाना। पूछा जा सकता है कि वह हजार कोश तक सबको जानता है, इसके आगे वह किसीको नही जानता, इसका क्या कारण है? यह कितना जानता है? अरे यह सबको जानता है। इससे आगे वह किसीको नही जानता है। विश्वके समस्त

गुण पर्यायोको जानता है। क्यो जानता है ? जाननेका क्या कारण है ? अरे पूछनेकी बात नही। अनहोनीके होनेका कारण पूछा जाता है। कुछ उल्टा बन गया है, उसके ही कारण पूछा जाता है। जो स्वभावसे होने वाला है उसका कारण क्या पूछा जाय ? मेरा स्वभाव जाननेका है। जानना ही आत्मा है।

जैसे वर्णन किया जाता है कि आत्मामे अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व है, अगुरुलघुत्व, प्रदेशत्व, प्रमेयत्व तथा असाधारण गुणोमे श्रद्धा है, चारित्र है, आनन्द है, ज्ञान है। यदि इन सब गुणोमे से केवल एक गुण ज्ञानका न हो, ज्ञानको न मानो, ज्ञानको बाहर निकाल दो और कहे कि सब खुशीसे रहो, अस्तित्वसे रहो तो न रह सकोगे। एक ज्ञानभरको न रहने दो, निकाल दो, ऐसा मान लो तो अपनी कल्पनाए कर लो तो अस्तित्व न रख सकोगे, श्रद्धा और चारित्र न रख सकोगे। देखो ज्ञानके न रहनेसे कितनी विपदाए आ गयों ? ज्ञान हो जिसका एक स्वभाव है, वह सारा मैं आत्मा हूं। गुणोका अन्तर्भाव ज्ञानमे तो किया जा सकता है पर ज्ञानका अन्तर्भाव किसी अन्य गुणोमे नहीं किया जा सकता है। आध्यात्मिक शास्त्रमे तो सब कुछ यह ज्ञान ही है। श्रद्धा है तो ज्ञान है, सम्यग्दर्शन है तो ज्ञान है। जीवादि तत्त्वके जानने के स्वभावसे ज्ञानके होनेका नाम सम्यग्दर्शन है और रागादिका परिहार करनेके स्वभावसे ज्ञानका होना तो सम्यक्चारित्र है। ऐसा यह मै ज्ञानमय हू मैं ज्ञानमय वस्तु हूँ, ज्ञान ही जिसका सर्वस्व है। मै तो अनत ज्ञानादि गुणोका पिंड हू, फिर भी तृष्णाके वशीभूत होकर अपनेमे कैसे कैसे बखेडे पैदा कर डाले। हीन, दीन, दरिद्र, दुःखी अपनेको कर डाला।

जिसकी वजहसे जगह जगह भटकता रहा। सर्वत्र कल्पनाओका ही तो नाच है। दुःख है, कठिनाई है। इस तरहकी कल्पना कर डाली तो दुःख है। दुःख मिटाना है तो यह कल्पनायें बदल दीजिए। वस्तुस्वरूपके अनुकूल कल्पनायें कर ली जायें तो दुःख मिट जायगा। यह दुःख और सुख कैसे कल्पनाकी हवामे चल रहे हैं ? कल्पना कर ली दुःख हो गया। सही बात सोच ली तो आनन्द हो गया। यह जीव अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तवीर्य और अनन्त सुखोका पिंड है। लेकिन कोई ऐसा न माने तो वही दुःखी रहेगा। जैसे ज्ञानकी सीमा नही है इसी तरह अनन्त ज्ञानसे अनन्त जानने वाले आत्माके दर्शन भी अनन्त ही अनन्त हैं। आनन्दका अन्त तो उसका होता है जो आनन्द झूठा हो, पराधीन हो, कल्पना भावसे बना हो। जिसकी मूल जड कुछ नही है। केवल सकल्पका ही फल है। ऐसे सुखका अन्त तो आया करता है, और उस आनन्दकी सीमा भी नही रहती है। जैसे गुडसे शक्करमें रस ज्यादा होता है उससे मिश्रीमे रस ज्यादा होता है तो उस रसकी सीमा बन जाती है। इसी तरह आत्मीय आनन्दमे तो भेद नही, सो आत्मीय आनन्द रसकी सीमा नही हो सकती है।

आत्मीय आनन्द कितना आया ? देख लो कितना आत्मीय आनन्द है। ऋषभदेव और महावीर स्वामीके आनन्दमे अन्तर है क्या ? रामजी और हनुमानजीके आनन्दकी सीमा है क्या ? नही है। और यह ज्ञानी जीव भी जब आत्मीय आनन्द अनुभव करता है तो उसके आनन्द की भी सीमा नहीं है। सीमा कहाँ बताई जाय ? जिसकी कमी हो वह सीमा है। इसी प्रकार समस्त विकासको बनाए रहनेकी ताकत ही अनन्तवीर्य है। मैं अनन्त आनन्द, ज्ञानानन्दका पिंड हूँ। ऐसा होते हुए भी यह भगवान् आत्मा केवल कल्पनाओंके भुलावेमे पडकर बाधाके बन्धनमे आकर दीनवत् संसारमे भ्रमण करता है।

जैसे लोग कहते है कि हम अपने घरके बादशाह हैं और दूसरे लोग चाहे जो कुछ हो। अरे अपने घरका भी सही पता लग जाय कि मेरा निजी स्वरूप ही घर है, जो ज्ञानस्वरूप, ज्ञानमात्र है, इस मेरेका किसीसे कुछ संबध नही है, इसे कोई पहचानता नहीं है, इससे कोई बोलचाल होती ही नही है, मैंने कभी किसीको कुछ किया ही नही, कोई मुझसे अब तक बोला-चाला ही नही, मै सबसे निराला ज्ञानस्वरूप, ज्ञानमात्र हूँ, इस जगत्के प्राणियोको यदि निजी घरका पता लग जाय तो यह बात सत्य है कि वह अपने घरका सर्वस्व हो जावे। सारा जहान चाहे जैसा उसे माने, उससे कुछ अहित नही हो सकता है। सारा जहान अनीति कर यदि उसके विपरीत चले तो भी उसका अहित कुछ नहीं हो सकता है। अपना हित और अहित अपनी कल्पनाओसे, संकल्पसे होता है। लोग कहते हैं कि ईश्वरने संकल्प किया कि सारा संसार बन गया। ऐसी ही उसकी विचित्र लीला है, मगर कुछ नहीं करना पडता, हाथ-पैर नहीं चलाने पडते। वह तो सर्वव्यापक, सच्चिदानन्दमय एक अद्भुत शक्ति है। उस ईश्वरने संकल्प किया कि ससार बन गया। जैसे कि लोग कहते हैं कि अब इस ईश्वरके मर्मको विचार कर अपने आपका बोध कर। तू अपनेको ऐसा निरख कि मैं ज्ञानमय आत्मा हूँ। जिस आत्मामे हाथ पैर नहीं हैं, केवल ज्ञानका पिड है ऐसा मैं आत्मा हूँ। ज्ञानमे क्या जानना है ? ओह, ज्ञानका जानना। अरे जो है सो जान लो, वस्तुवोको जान लो। ज्ञान इस आत्माका प्रधान धर्म है।

इस दृष्टिसे देखो तो इस आत्मामे ज्ञान लोकालोक व्यापक है। यह आत्मा संकल्प करके ही अपने आपकी सृष्टि-रचना कर लिया करता है, और ऐसे सभी आत्मा हैं। तो उन आत्माओंके स्वरूपमे दृष्टि देकर विचार करो। यह ज्ञानमय स्वरूप अपने सकल्पमात्रसे सारे संसारको रचता है। संकल्प ही तो करता है। कर्मके बन्धन होते है। कैसे इसने संकल्प किया कि बधन हो गए ? पुण्यका बन्धन होता है। कैसे संकल्प तूने किए कि पुण्य नहीं हो पाया। पुण्यका बंधन होता है कैसे ? सेवा निर्जरा होती है कैसे ? अपने निर्विकार यथार्थ

स्वरूपको संकल्पमे लो। संकल्प मात्रसे अपनी सृष्टिकी रचना करते हैं। हम तो अनन्तज्ञान के पिंड है, मगर मोहसे, तृष्णासे रहते हैं, इसलिए इस असार ससारमे घूम रहे हैं। ये दस लक्षण प्रति वर्ष आते हैं। ये हमे ख्याल कराते हैं।

हे आत्मन् ! तेरा क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, सयम, तप, त्याग, अकिञ्चन व ब्रह्मचर्य जैसे पवित्र विकासरूप रहनेका स्वभाव है। ऐसे ही स्वभावमे रहे तो तेरे सारे सकट समाप्त हो जावेंगे। इस स्वभावको छोडकर अन्य बातोमे लगे तो ससारमे भटकना ही बना रहेगा। आज इस वर्षके दस लक्षणका प्रथम दिन है, क्षमाका दिन है। क्षमा करो, माफ करो, अरे अपने प्रभुको ही क्षमा कर, जानने वालेको ही माफ कर। अपने आपको मैंने कितना सताया है, अपने आप पर कितना गुस्सा किया है। अनन्तानुबन्धी यह कषाय अपने आप पर किए जा रहे हैं। अपने अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ इत्यादि अपने आप पर किए जा रहे हैं। क्रोध, मान, माया, लोभ इत्यादि उन्हे कहते है जो सम्यक्त्व नही होने देते। क्यो भैया, एक ऐसा मनुष्य है जिसके घरमे स्त्री व पुत्र दो प्राणी हैं, कमाते है, पैसा आता है, किरायेका आता है, कमाना भी नही पडता है, किसीसे गुस्सा होनेका कोई काम नही है, वह तो पडा रहता है तो उसमे सदैव क्षमा बनी रहती होगी। अरे इसमे क्षमा नही बनी रहती है, अपने प्रभुकी प्रभुताको भूल रहा है और अपने पर निर्दयी होकर अपनी प्रभु आत्मासे विमुख हो रहा है। अपने प्रभुकी प्रभुताको बिगाड रहे हो यह कितना बडा भारी क्रोध है।

हे आत्मन्, तू अब अपने आपको मत सता। तू तो ज्ञानमय ईश्वरसम परम पवित्र है। तू समस्त पदार्थोंसे अत्यन्त जुदा है। विवादोसे तू अत्यन्त परे है। तेरेमे झझटोका नाम नही है। ऐसे अपने महान ऐश्वर्यको तो देखो। उसकी रक्षा तो करो। अपने आप पर दया करो, अपने आपको माफ करो। अपने आपमे क्षमा आयेगी तो उत्तम क्षमा बनेगी। मैं दूसरे जीवोके कसूरोको बिल्कुल माफ कर देता हू। ऐसी दृष्टि अगर अपनेमे हो, ऐसा विश्वास अगर अपनेमे हो तो वह तो मिथ्यात्व है। जैसे लोग कहते हैं कि मैंने क्षमा कर दिया। अरे वह क्षमा नही है। उत्तम क्षमा हो तो अपनेको क्षमाकी मति बना देती है। अपने आपकी दयामे सबकी दया आ जायगी। जो अपने आपको सहज स्वरूपके दर्शनमे लगानेके लिए लालायित है, उनके लिए दूसरोके अपराधोके करनेमे क्या लगेगा या दूसरेके अपराधोको दिलमे रखेगा क्या ? दूसरोकी क्षमा सहज बन जायगी। विषय कषायोके परिणामोमे क्यो अधिक लगे हुए हो। धन कमाते हो तो अरे धन किसके लिए कमाते हो अथवा न्यायकी सीमासे बढकर किसलिए इतना श्रम करते हो ? अरे जिसके लिएश्रम कर रहे हो वे तुम्हारे कोई नही है,

कुछ नही हैं; और हैं तो तुम्हारी अक्ल ठीक करनेके लिए हैं, अर्थात् विपदाओमे गिरानेके लिए हैं, विपदाओमे डालनेके वे एक निमित्त कारण हैं, वे तुम्हारे कोई नही हैं। अपनेको संभालो। जैसी दृष्टि अपने आपको क्षमा कर देनेकी है वैसी दृष्टि परको क्षमा कर देनेकी बनाओ। अभी १००-२०० वर्ष पहले प० दौलतराम जी, भगवतीदास जी आदि थे। जिनमे यह निर्णय रहता था कि एक रुपया कमाया यही बहुत है। आज एक रुपयेसे १० रु० कमा लेनेका ही भाव रखें सो भी गनीमत है। एक रुपयेमे एक आना मुनाफा या एक पगडीमे एक आना मुनाफा। यदि १६ रु० का माल बेचा तो १६ आनेका मुनाफा हो गया, बस इतना होते ही तुरंत दुकान बंद कर देते थे और मन्दिरमे आकर धर्मध्यान करते थे, स्वाध्याय व चर्चामे समय व्यतीत करते थे। वे लोग थे ज्ञानी पुरुष, उनका ध्येय दूसरा था।

आत्माके दर्शन कर लें और उसी आत्मीय आनन्दके रसका पान कर लें तो यही आत्मानुभव पार कर देने वाला है और सब असार काम है। ऐसी धुन लगनेके कारण दुकान से होते हुए मुनाफेको छोड़कर चले आए और मन्दिरमे बैठकर विचारोमे लग गए। मंदिरमे धर्मकी चर्चा होती है उसको सुना। धर्मकी चर्चा सुननेसे स्वाध्याय तो हुआ। इतना तो संतोष कर रहे हैं कि रागकी आगमे जल नही रहे है। वीतराग मन्दिरमे बैठे हुए हैं। प्रभुकी वाणी तो सुन रहे है। ऐसे सुन्दर चरित्रसे रहें तो जगत्के सारे पाप दूर हो जावेंगे। मोहसे तो दूर हो रहे हैं, क्योकि यह बोध तो स्पष्ट है कि जो समागम प्राप्त है वह इस संसारमे कुछ नहीं रहेगा। जैसी दृष्टि वृत्ति बने, जैसा जिसने परिणाम किया उसके अनुसार ही जो कुछ भोगना होगा भोगेगा। क्षमा कर, अपने आपको क्षमा कर। परवस्तुवोके बारेमे अन्य जीवोके बारेमे राग, द्वेष, मोह, हठ इत्यादि न बनावे। राग होता है उसमे भी पछतावा होता है। द्वेष होते है तो अपने आपको दुःखी कर लेते हैं। सो भाई अपने आपपर दया करो, अपनेको क्षमा करो। अपने आपकी ही तरह जगत्के सब जीव है, अतः सब जीवोपर क्षमा करो। क्रोध सब गुणोको जला देता है। क्रोधको अग्निकी उपमा दी जाती है। सो यह बड़ा भारी क्रोध किया जा रहा है। हम अपने आपको सताते चले जा रहे हैं। दूसरोके प्रति नाना प्रकारके राग, द्वेष करते हैं तो यह बुरा ही तो करते हैं। यह परमे राग द्वेष क्या है ? अपने आपको सताना है। अतः अपने आपको सताते चले जा रहे हैं। सो भाई बढते हो तो बढ़ते जाओ, करोड़पति या अरबपति हो जाओ, यह तो मामूली बात है। वह मोक्ष जाये तो जाने दो, जाओ, बडी जल्दी जाओ। उससे मेरी कोई हानि है क्या ? अरे जाओ परमात्मा हो जाओ या जाओ अपने आपमे रमो। दूसरोको बड़ा बना देनेमे, दूसरोके बडा हो जानेसे यहाँ

कुछ कम नही हो जायगा। सबके प्रति कल्याणभाव हो, अपने आपके स्वरूपका परिचय हो क्षमा तभी पैदा होती है। सबने अपने-अपने यहाँ क्षमाकी महिमा गायी है। कोई कहता है कि तुम्हारे गाल पर कोई तमाचा मारे तो कहो अच्छा लो यह दूसरा गाल भी तुम्हारे तमाचेके लिये हाजिर है। यह ईसाई लोगोके यहाँ कहा है। अरे तमाचा तो केवल मन बहलानेके लिए लगाया है तो लो और बदला लो। किसी ने किसी प्रकार कहा। मतलब क्षमा को धर्म सबने कहा।

हे आत्मन्! निज नाथको पहिचाने बिना अंधेरा है। तूने अपने यथार्थ स्वरूपका अनुभव नही किया, इसलिये तेरेमे क्षमाका अनुभव नहीं हुआ। यदि तेरेमे क्षमा नही है तो समझो तूने कुछ नही किया। इस वर्ष भी ये भादोमे दस लक्षण आए और भादो सुदी पंचमीसे आए। ऐसा हुआ क्यो? एक एक कल्प कालमे प्रलय काल हुआ करता है तो इस कालमे भी प्रलय हो चुका था। प्रलयमे वर्षके अंतिम ४६ दिन खोटे होते हैं। बहु वर्षा, तूफान इत्यादि चला करते हैं। सारे विश्वमे नही चलते। भरत व ऐरावतके आर्य खंडोमे चला करते हैं। वे दिन आषाढ सुदी पूर्णिमा तक खत्म हो जाते हैं। फिर ४६ दिन तक अच्छी वर्षा होती है। उत्तम वृष्टि होती है, अमृत वृष्टि, दुग्ध वृष्टि होती है, जिससे कुछ शांति छा जाती है। वह ४६ दिन भादो सुदी चौथको खत्म हो जाते हैं। इसके बादमे आपके धर्मकी वृत्ति सिर्फ होती है। जो कुछ होना था इन्हीके ४६ दिनोमे हो गया। अब धर्म बुद्धि होती है। वह तिथि भादो सुदी पंचमी को पडती है। यह दस लक्षण पर्व प्रतिवर्ष हमे धर्मभावका स्मरण कराने आते हैं। हमको चाहिए कि अपनी शक्तिके अनुसार हम क्षमादि धर्मोको अपनेमे उतारें। सबसे बडी चीज यही है कि अपने पर यथार्थ क्षमा कर लो तो समझो कि सब कुछ कर लिया। हमने अनतज्ञानमय होकर भी स्वभावदृष्टिसे दूर रहकर इस ससारमे घूमकर अनंत दुःख उठाए। अब मैं अपने स्वरूपको देखकर, अहकारसे दूर रह कर अपनेमे अपने आप आनन्दमग्न होऊ।

ज्योतिर्मयी महानात्मा वञ्चितोऽक्षविषैरहम्।
सम्बन्धमात्ररम्यैस्तु स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१—५७॥

यह आत्मा ज्ञानज्योतिस्वरूप है। उस स्वरूपको देखकर जगतके सभी पदार्थोंमे दृष्टि डालते हुए जब निर्णय करते हो तो यह आत्मा सर्वमे महान् है। इसे समयसार कहा जाता है। समयका अर्थ है 'स एकत्वेन अयते स्वगुणपर्यायान् गच्छति इति समयः।' जो अपने गुणपर्यायमे तन्मयसे हो रहे उसे समय कहते हैं। सभी पदार्थ समय हैं, वे अपने ही गुण पर्यायमे तन्मय हैं। तन्मय होना तो स्वभाव ही है। इस कारण सब पदार्थ समय कहलाते

हैं। उनमें सार क्या है ? यह आत्मपदार्थोंमें ऐसा अनुभव करना कि जगत्मे सब कुछ होता है, धर्म है, अधर्म है, पुद्गल है, काल है, आकाश है, पर एक जीव न हो, एक चैतन्यपदार्थ न हो तो क्या हो ? व्यवस्थाएं न हो, कुछ चहलपहल न हो। इन सबका जानने वाला, इन सबमे व्याप्त यह जीव पदार्थ जीवतत्त्व ही व्यवस्थापक है। सबको जानने देखनेका ही इसका स्वभाव है। कितना भी दूर हो, इस आत्मामे कुछ सत् हो तो यह शक्ति है कि उन सबको जान लेना। सामने हो या पीठ पीछे हो लेकिन ज्ञान सबका रहेगा। कोई पदार्थ कही भी रहे। सामने हो तो क्या है ? ज्ञान तो अमूर्ततत्व है। इसमे स्वभावसे ही ऐसी कला है कि जो कुछ भी हो इसके जाननेमे आ जाता है। जाननेका जिसका स्वभाव है वह मैं आत्मा हू। उस आत्माका महत्त्व क्या होता है ? इस आत्माके महत्वको बतानेका कोई दावा करे तो वह विद्वानोमें हंसीका पात्र है। उस हमारी आत्माका महत्त्व और क्या हो सकता है।

जगत्के जितने भी जीव हैं सब भगवानस्वरूप हैं। राम, विष्णु, ब्रह्मा, हरि और बड़े राजा महाराजा जो महापुरुष हुए हैं, जितने भी हैं, वे सब क्या हैं ? उस आत्माकी ज्योति ही तो है, वह आत्मस्वरूप ही तो है। निगोदसे लेकर सिद्ध तक जो जितने विकास हैं वे सब इस आत्मामे ही तो हैं। कितने प्रकारके भोग विलास रहे ? यह आतमा वह है जिसमे अनन्त गुण हैं। यो तो कहनेमे ४, ६ आवेंगे पर गुण अनन्त हैं। ज्ञान, दर्शन, श्रद्धा, चारित्र, आनन्द, योग, शक्ति आदि अनेक गुण है। उन गुणोंमे से केवल एक गुणको लें तो इसमे अनन्त पर्याय हैं। उन पर्यायोमे से एक पर्यायको लें तो एक पर्यायमे अनेक अविभाग प्रतिच्छेद हैं। प्रत्येक अविभागप्रतिच्छेदोमे अनन्त रस है। ऐसे अनन्तरसका पिंड यह मैं आत्मा हू। परन्तु जो अब इस आत्माकी दशा हो रही है वह इन्द्रियोंके विषयोके वशीभूत होकर हो रही है। इन्द्रियोसे इस आत्माका लेन-देन कुछ नही है। फिर भी इस जीवने स्वयं भ्रम करके, अज्ञान बना करके अपनेको ऐसा बना रखा है कि न इसकी इन्द्रियोमे शांति है, न विषयोमे शान्ति है। शांति तो परमात्मतत्त्वसे होती है। अगर हम मान लें कि हमे शांति नही है तो हमे समझ आयेगी कि इन्द्रियोंके विषयोने ठग लिया है।

देखो तिर्यञ्चोमे हिरन है, हाथी है, मछली है, भँवरा है, ये जीव एक एक विषयमे तन्मय होकर मरणको प्राप्त हो जाते हैं। पर इस मनुष्यकी दशा तो देखो यह तो सर्वविषयो के आधीन है। जो समागम पाया उसका भी उपयोग विषयोके लिए किया। इस मोही प्राणी ने कभी धर्मका सेवन भी किया तो भोगके निमित्तसे किया। परिवार सुखसे रहे, मुकदमेमे विजय हो, पैसा मिलने आदिकी भावनाएँ धर्मसेवन हो जाती हैं। धर्मपालन किया तो भोग

के खातिर किया। केवल राग, अज्ञान, मोहमे आकर धर्मका पालन तो किया, मगर वह भोगके निमित्त हो रहा है। आत्माके लिए धर्मका पालन नही किया। आत्मा या स्वरूपमे ज्ञान दृष्टि रहना तो इस आत्माके स्वभावका काम है। इसका काम बस प्रतिभास मात्र जो सत् है वह झलक गया, बस इतना मात्र काम है। इसके आगे आत्माका काम नही है। आत्मामे देखो तो समस्त प्रदेशोमे ज्ञान और आनन्दरस ही भरा है, पर उससे रुचि नही है। जीवका उपयोग बाह्यकी ओर है, पर उस उपयोगमे शांति न मिल सकी। अपने आपको देखा तो सब पदार्थोंको त्यागकर ऐसी बुद्धि बन जाय कि यह तो मैं चैतन्यमात्रस्वरूप ही हू तो आत्माको शांति प्राप्त हो सकती है। यदि इस बुद्धिसे विलग हुए तो शांतिका कुछ पता है क्या ? विषयोमे पडकर भोग किया, मरणके समय क्लेश और विकल्प होंगे। यो विषयभोग का ही मार्ग लिया, यह तो शांतिका मार्ग नही। शांतिका मार्ग तो गुप्त है। शांति अपने ही अन्दर अपने आपसे ही प्रकट होती है। ऐसा यह महान् आत्मा इन्द्रियोके विषयोके कारण ठगाया गया, वचित रहा। ये इन्द्रियाँ तो सुन्दर लगती है पर आनन्दकी जगहपर क्लेश भोगना पडता है। औरकी बात छोडकर अपनेमे आवो, क्योकि बडी अवस्था हो जानेपर फिर पछतावा होता है। इतना समय गर्द कर दिया, दुःखो मे, चिंताओं मे समय गुजर गया। जो समय गुजरा वह समय वापस नही आता।

देखो उम्र १० वर्षकी हो गयी, ज्ञानकी वृद्धि हुई, बाह्य सिलसिले चलने लगे। युवावस्था आ गई। युवावस्थामे भी ज्ञान नही मिला। वह अवस्था भी दुःखोमे ही बीत गई। अब वृद्धावस्था आ गई तो पछतावा करते हैं। अरे अब तो सही परिणाम बनाओ, अभी काम बन जायगा। रागमे, मोहमे, विषयोमे आत्माको शांति नही प्राप्त हो सकती है। जगत् के कौनसे जीव तुम्हारे है जो राग करते हो। केवल मायामय मूर्ति ही तो देखते हो कि आत्मा भी देखते हो। अच्छा, तुम राग किससे करते हो ? क्या शरीरसे, इस अशुचि पिंड से ? इससे तो करते नही। तब क्या आत्मासे करते हो ? आत्मा तो अमूर्त चैतन्यमात्र है। जैसा एक चेतन है तैसे सब चेतन है। अतः आत्मस्वरूपके जाननेपर व्यक्तिभेद तक भी नही रहता, फिर राग ही क्या करोगे ? यही मायामय मूर्ति ही तो देखते हो। वह कुछ प्रीतिकी चीज है क्या ? आत्मासे प्रीति करना है तो आत्माके स्वरूपको देख। यह आत्मा एक ज्ञान भाव मात्र है। जाननमात्र, आकाशकी तरह अमूर्त किन्तु एक ज्ञानगुणको लिए हुए है। एक विलक्षण पदार्थ है। वह तो वह है और ऐसे ही सब है। स्वभाव और आत्मामें भेद ही नजर नही आता। मुझ ज्ञानमात्र आत्मतत्त्वको देखता ही कौन है ? अरे देखने से राग नही आ सकता है। वह ज्ञाताद्रष्टा ही रह सकता है। उस आत्मासे कौन प्रीति करता है ? ये

जितने भी बाह्य पदार्थ है वे सब बिल्कुल असार है। इनमे हितका नाम ही नही है। यदि पर पदार्थोंसे अपना हित मानते हैं तो समझें कि हम भ्रममे पड़कर उल्टे मार्गमे चल रहे है।

अरे इन विषयोके मार्गको छोड़ो और अपने स्वरूपमार्गमे आवो, जिसमे उस सहज स्वरूपके ज्ञानानन्दमय आत्मतत्त्वके दर्शन होगे। वह तो प्रभु पवित्र है। जैसा प्रभुका आनन्द है वैसा ही आनन्द उसका है। मैं अपने स्वरूपको देखूं बाकी सब व्यर्थ है। जगत्का कौनसा ऐसा तत्त्व है जो हितकर हो? फिर कौनसी बातमे अहंकार हो? आज दस लक्षणो का दूसरा दिन है और मार्दव धर्म है जिसका अर्थ है कोमलता, नम्रता ऐसी विनम्रता हो जो खुद खुदमें समा गयी हो, खुद खुदमे ही विलीन हो गयी हो। ऐसे आत्मानुभवका रस पी लो। यही शुद्ध आत्महितका मार्ग है। जगत्के अन्य पदार्थोंको तू न मान। कौनसे पदार्थ तेरे है? कोई नहीं। प्रत्येक पदार्थ अपने अपने ही सत् हैं और फिर विनाशीक है। नष्ट हो जाने वाले भी है। कौनसी ऐसी वस्तु हैं जो सदा रहती हो? भगवान् स्वामी समन्तभद्रने कहा है—

स्वास्थ्यं महात्यन्तिकमेव पुंसो स्वार्थोऽन भोगः परिभंगुरात्मा।
तृषोनुषंगान्न च तापशन्तिरिती दमाख्यद्भगवान् सुपार्श्वः॥

कहते हैं कि जीवका आत्यान्तिक स्वास्थ्य क्या है? अथवा उसका वास्तविक स्वार्थ क्या है? आत्मप्रयोजन क्या है? सदाके लिए स्वस्थ हो जाना यही जीवका परम स्वार्थ है, परम हित है। स्वास्थ्य कहते किसे है? स्वस्मिन्, तिष्ठति इति स्वस्थः स्वस्थस्य भावः स्वास्थ्यम्।' अपने आपमे ठहरे रहनेकी बातको कहते हैं स्वास्थ्य। सदाके लिए अपने आपमे रम जावो, ठहर जावो—ऐसा जो स्वास्थ्य है वह उत्कृष्ट स्वार्थ है। यह भोगविलास रहित नही, वह तो क्षणिक है। भोगकी प्रीतिमे केवल खोया हुआ है। देखो मोही जन जो कर रहे हैं वह सब कल्पनाके समय सस्ते लगते हैं पर ये भोग विषय बड़े मंहगे पड़ेंगे। हाथ पैर मिलते हैं, मन मिलता है, बहुतोमे हुकुमत चलाई जा सकती है, बहुतोसे बात बनाई जा सकती है। इस प्रकारके विचारो वाले प्राणीका स्वरूप या सर्वस्व खोया हुआ रहता है। वह नरक वाली योनियोमे भ्रमण करता रहता है। जन्म मरणके चक्रमे पड़कर वह कीड़े मकोड़े हो जायेगा और उसे सदा दुःख ही दुःख होंगे। देखो तो गजबकी बात हमारी यह विविध सृष्टि इतने जीवोके रूपमे कैसे बन गई? यह सब प्रकृतिकी उपाधिमे चेतन प्रभुकी अवस्था है। परमार्थसे तो मैं एक शुद्ध आत्मतत्त्व हू। यदि बाह्यपदार्थोंमे दृष्टि लगी है तो पतन है और यदि स्वमे दृष्टि लगी तो उत्थान है। जो शुद्ध आत्मतत्त्व, वीतराग सर्वज्ञ निर्दोष भगवान आत्मा अरहंत एव सिद्ध है और ऐसे शुद्ध बननेके प्रयत्नमे जो लगा रहता है वह साधु है,

ऐसा ज्ञानमय, चरित्रमात्र मैं सत् हू। अपने आपमे तन्मय हुआ ज्ञानानन्द आदि त्रैकालिक शक्तियोमात्र जो जो अनत विलासको लिए रहती है। जो अनेक प्रकारके पर्यायोको धारण करता है फिर भी वहीका वही है। वह चैतन्यप्रभु मैं हू। इसका ही पूर्ण विकास अरहृत व सिद्ध भगवान् है। ऐसे शुद्ध भगवान्की उपासना करें तो यह हमारे उत्थानकी बात है। शुद्धके आश्रयसे शुद्ध होता हू और अशुद्धके आश्रयसे अशुद्ध होता हूं। वर्तमानमे तो मैं शुद्ध नहीं, भगवान् पर हूं तो किसके लक्ष्यसे मैं शुद्ध बनूं ? स्वरूपको लक्ष्यमे लूं तो मैं शुद्ध हो सकता हूँ। शुद्धका लक्ष्य करनेसे आत्मा शुद्ध हो गयी और अशुद्धका लक्ष्य करनेसे आत्मा अशुद्ध हो गयी। अब क्या पसंद करोगे कि आपकी आत्मा अशुद्ध हो कि शुद्ध हो ? अब देखो शुद्ध आत्मा क्या है ? जिसकी आत्मा रागी है, द्वेषी है, जो विषय कषायोसे भरा हुआ है, जो घूम रहा है ऐसी आत्माको अशुद्ध कहेगे। उसके लक्ष्यसे बुद्धि नही होगी तथा भगवान् परआत्मा है। परका लक्ष्य परमार्थसे होता नही। उनके ध्यानसे, उनके आश्रयसे आत्मा शुद्ध नही हो सकती है। परमार्थसे देखो तो इस आत्माके लिये यह महान् शुद्ध द्रव्य कहलाता है। कहते हैं कि मैं प्रत्येकसे न्यारा अपने आपमे तन्मय हू। इस आत्माके अति-रिक्त जितने भी पदार्थ हैं उन पदार्थोंपर मेरा अधिकार नही है। मैं ही वह उपास्य हू, मैं ही परमात्मतत्व हूं—इस प्रकारका तू मनमे विचार कर। तू उन बाह्य पदार्थोंका ध्यान न कर। तू उनको ज्ञानका विषय न बनाकर अपने ही ज्ञानका परिणमन कर। अर्थात् अपने ही भावोका ध्यान बनाकर तू परमात्मोपयोगी बन। परद्रव्योमे ध्यान देकर कोई परमात्मा नही बन सकता है। सो एक तो यह बात है। दूसरी बात यह है कि वह अपने शुद्ध परिणमनको छोड़कर लुटेरे घसीटोका हाथ पकड मोक्षमे ले जाय, ऐसा हो नही सकता। अपने आपको ही देखो कि मैं आत्मा शुद्ध हू, सबसे निराला हू। अपने शुद्ध आत्मतत्त्वकी दृष्टिसे तू पार होगा। तू परमे दृष्टि लगाकर माया, मोह आदिमे पिसा जा रहा है। तो ऐसा करनेसे क्या हम शुद्ध बन जायेंगे, नही। हम आत्माकी श्रद्धा करके शुद्ध बन सकेंगे और आत्माकी श्रद्धा न कर सके तो शुद्ध न हो सकेंगे। तब फिर शुद्ध होनेका उपाय क्या है ? इस आत्माका जो शुद्ध सहजस्वरूप है, शुद्धस्वभाव है, वह स्वतःसिद्ध आत्मतत्व है। मैं शुद्ध आत्मतत्त्वकी श्रद्धा करनेसे शुद्ध हो सकता है। हमारे इस कूडे कचरे शरीरके भीतर जो चैतन्यस्वरूप है, जो ज्ञानमे आ रहा है उस शुद्ध आत्मतत्त्वको लक्ष्यमे लें तो यह गंदगी, कूडा करकट नष्ट हो जाता है। हम अपनी आत्मा तथा ज्ञानदृष्टिके बहुत भीतर चलकर शुद्ध-तत्त्वको जान सकते हैं। वह कोई एक पिंड जैसी चीज नही, बल्कि ज्ञानको लिए हुए है। ऐसा यदि अपना ध्यान नही करेगा तो जगत्मे तेरा कोई शरण नही है। बाहरमे जो शरण

माना है वह तेरे कोई नही हैं। वे सब स्वार्थी हैं, अपने अपने विषयोंमे वे लगे हुए हैं। वे सब अपने ही प्रयोजनमे लगे हुए हैं, वे मुझसे बात ही नही करते हैं, वे मेरा कुछ नही करते हैं। तो हम किसकी शरणमें जावें ? अरे वह तेरे लिए संकट है। उनसे तुझे शरण नही मिलेगी। तेरी शरण तुझे तेरी प्रभु आत्मा ही मिलेगी। मै अन्तर्दृष्टि करके देखूं तो वह ज्ञान-स्वरूप है, ज्ञानस्वभाव है। शरण तो सहीमे वह हमारा प्रभु है, भगवान् है, परमात्मा है, वही हमारा रक्षक है। तूने परको निज समझ लिया तो वह तेरे नही हो गए। वह तेरे हो नही सकते हैं। अन्यमे दृष्टि करनेसे हम बहुत गलत रास्तेमे बहे चले जा रहे हैं तो लौटना भी हमे उतना ही पड़ेगा। जैसे यदि हमें कलकत्ता जाना है और हम पश्चिममे चले जावें तो हमें वहांसे लौटना ही पड़ेगा। इसी प्रकार यदि हमारी दृष्टि परमे है तो हमें उतना ही उन सबसे निवृत्त होकर निजस्वरूपकी ओर दृष्टिको लाना पड़ेगा। यदि हम बाहरी तत्वों को उपयोगमे लाने लगें, अपने परिवार तथा मित्र जनोको सर्वस्व मानें तो मुझे मेरा प्रभु नही मिल सकेगा। यदि हम विषयभोगोमे आसक्ति न करें, अन्य तत्त्वोको अपने उपयोगमे न लें कुटुम्ब, परिवार तथा मित्र जनोको अपना सर्वस्व न समझें तब हमारा प्रभु हमे मिलेगा। जैसे कोई मुसाफिर भूलकर ५०० मील आगे चला गया हो तो उसे उतना ही तो लौटना पड़ेगा सही मार्ग पर आनेके लिए। इसी प्रकार इस जीवको जो अपने आपको भूलकर परमें दृष्टि लगाए हुए है उसे भी सर्व परसे निवृत्त होकर अपने निजस्वरूपको पहिचानना होगा। देखो, अपने धन, वैभव, कुटुम्ब, परिवारसे सबको प्रीति है पर अपने ज्ञानस्वरूपसे प्रीति नही है। ज्ञानस्वरूपमे प्रीति करनेमे तो कहीं रुकावट नही है। तू अपने निजस्वरूपसे प्रीति कर।

एक दुकान मालिक यहां बैठा है। कल्पना कर लें कि मैं अपनी दुकानमें गया, दुकानकी तिजोरी खोली, तिजोरीमे संदूक है, संदूकमे डिब्बा है और उस डिब्बेमे कपड़ेमें बंधा हुआ हीरा रक्खा है, उसमे अंगूठी रक्खी है तो वहां तक ज्ञानके पहुंचनेमे कमरा कोई बाधा नहीं कर सकता है। तिजोरी वगैरह कोई बाधा नही डालते। अरे तू अपने ज्ञानकी रुकावट न कर। ज्ञानकी रुकावट तो विषयकषायसे होती है। ज्ञानके आ जानेसे बाधाएं नही फैलती हैं भाई इन विषयोमे पड़ करके ज्ञानको खोए हुए हो। इन विषयोमे पड़नेसे तेरा कोई रक्षक नहीं। तेरी रक्षा करने वाला रुकावट करने वाला तू ही है। तेरेमे ज्ञान है, जरा अपने अन्तरमे दृष्टि तो दो। यथार्थ विकासोंके बिना तेरेको बड़ा कौन कर सकता है ? इन विषयोमे यह दम नही कि तुझे बड़ा बना दें। हे आत्मन् ! तेरी रुकावट करने वाला ही तू है। तेरी ही सैन पाकर कर्म व विषय प्रबल होते हैं। जैसे मालिकके साथ कुत्ता हो। यद्यपि कुत्तेमे कुछ दम नहीं, परन्तु मालिकके छू छू करने पर कुत्ता बलिष्ट बन जाता है।

वह नही देखता है कि यह युवक पुरुष है, इससे न जीत सकूगा, पर वह आक्रमण कर देता है। इसी प्रकार आत्माके विषय कषायकी सैन पाकर ये इन्द्रिय विषय दु:खदाई हो जाते हैं। इस आत्माको जब निजकी पहिचान मिल जाती है तो यह बाह्यकी इच्छा नही करता है और अपने निजस्वरूपकी उपासना करता है। इस निजस्वरूपकी पहिचानसे ही आत्मा बलिष्ठ हो जाती है।

अतः यदि हम अपने निजस्वरूप पर दृष्टि दें तो हम सुखी हो सकते हैं। यदि मैं निजस्वरूपमे दृष्टि न दे सका, बाह्यपदार्थोंसे ही संयोग रहा तो जीवन भर ही उसे दु:खी रहता है। यही पहिलेसे सोच लें। किसीमे ऐसी सामर्थ्य नही जो हमें सुखी कर दे। परको जिसने अपना इष्ट माना है वे दु:खी होते हैं। यदि वह विषयोमे आसक्त है तो उससे दु:ख होते हैं। यदि विषयोंमे आसक्त रहे तो विषयोमे कोई ताकत नही जो उसे सुखी कर दें। सर्वथा सुखी होना तथा दु:खी होना अपने ऊपर ही आधारित है। दूसरोंके सुखी करनेसे सुखी नहीं हो सकता और दूसरोके दु खी करनेसे दु:खी नहीं हो सकता। मैं दूसरोके दु:खी करनेसे दु:खी होऊँ तो इसका अर्थ है कि मेरी आत्मामे बल बुद्धि नहीं है। ऐसी कल्पना करने वाली आत्माओको पराधीन आत्माएँ कहते हैं। हम बाह्यमे दृष्टि न करें तो हम पराधीन नहीं होंगे। मुझे पराधीन होनेसे ही दु:ख होता है अर्थात् अपनी दृष्टि बाह्यमे लगा दू तो मुझे दु:ख होता है। बाह्यमे मेरा कुछ नहीं है। मेरेको बाह्यसे कुछ मिलता भी नही है। पर मैंने मन बना लिया है कि पर मेरे सब कुछ हैं, उनसे हमे बहुत कुछ मिलता है। यही कारण है कि दु:ख होते हैं। अरे बाह्यपदार्थोंसे तुझे गौरवके लायक कुछ मिलता है? शरीर है तो वह भी असार, धन-वैभव है वह भी असार है। वह किसीके लिए भी सार नही हो सकेगा।

तू तो अकेला है, ज्ञानानन्दमय है। ज्ञान और आनन्दके परिणमन कर रहा है। बाहर कुछ नही है। तू अपने पर कृपादृष्टि रखे तो आध्यात्मिक चक्रवर्ती बन जाय। तू बाह्य से अपनी बुद्धि छोड़ दे, तू अपने बाह्य उपयोगोको छोड दे और अपने आन्तरिक उपयोगोमे आ। यदि तू अपने आन्तरिक उपयोगोमे आया तो सुख होंगे और यदि बाह्यमे तूने अपना उपयोग बनाया तो तुझे दु:ख होगे और तुझे पागल बनना पड़ेगा। भाई, देखो कितनी पवित्र यह आत्मा है। यह आत्मा निरंतर विषयोंसे भी ठगाई गयी, फिर भी यह आत्मा अपने आपमें स्वभावसे ठगी नही गयी। तू अपने शुद्ध आत्माका अनुभव तो कर तो तेरे समस्त क्लेश समाप्त हो जायेंगे। यदि तू अपने आपका अनुभव न कर सका तो तू ठगाया जायगा। तुझे क्लेश होंगे। तूने यह कल्पनायें बना रखी हैं कि विषयोसे सुख है इसलिए तू उन विषयो मे ही समय लगा रहा है। हाय, तू विषयोमे पड रहा है। अरे विषय ही तुम्हे दु:खी बना

वह नही देखता है कि यह युवक पुरुष है, इससे न जीत सकूगा, पर वह आक्रमण कर देता है। इसी प्रकार आत्माके विषय कषायकी सैन पाकर ये इन्द्रिय विषय दुःखदाई हो जाते हैं। इस आत्माको जब निजकी पहिचान मिल जाती है तो यह बाह्यकी इच्छा नही करता है और अपने निजस्वरूपकी उपासना करता है। इस निजस्वरूपकी पहिचानसे ही आत्मा बलिष्ट हो जाती है।

अतः यदि हम अपने निजस्वरूप पर दृष्टि दें तो हम सुखी हो सकते हैं। यदि मैं निजस्वरूपमे दृष्टि न दे सका, बाह्यपदार्थोंसे ही संयोग रहा तो जीवन भर ही उसे दुःखी रहता है। यही पहिलेसे सोच लें। किसीमे ऐसी सामर्थ्य नही जो हमे सुखी कर दे। परको जिसने अपना इष्ट माना है वे दुःखी होते हैं। यदि वह विषयोमे आसक्त है तो उससे दुःख होते हैं। यदि विषयोंमे आसक्त रहे तो विषयोमे कोई ताकत नही जो उसे सुखी कर दें। सर्वथा सुखी होना तथा दुःखी होना अपने ऊपर ही आधारित है। दूसरोके सुखी करनेसे सुखी नहीं हो सकता और दूसरोके दुःखी करनेसे दुःखी नहीं हो सकता। मैं दूसरोके दुःखी करनेसे दुःखी होऊँ तो इसका अर्थ है कि मेरी आत्मामे बल बुद्धि नहीं है। ऐसी कल्पना करने वाली आत्माओंको पराधीन आत्माएँ कहते हैं। हम बाह्यमे दृष्टि न करें तो हम पराधीन नहीं होगे। मुझे पराधीन होनेसे ही दुःख होता है अर्थात् अपनी दृष्टि बाह्यमे लगा दू तो मुझे दुःख होता है। बाह्यमे मेरा कुछ नहीं है। मेरेको बाह्यसे कुछ मिलता भी नही है। पर मैंने मन बना लिया है कि पर मेरे सब कुछ हैं, उनसे हमे बहुत कुछ मिलता है। यही कारण है कि दुःख होते हैं। अरे बाह्यपदार्थोंसे तुझे गौरवके लायक कुछ मिलता है? शरीर है तो वह भी असार, धन-वैभव है वह भी असार है। वह किसीके लिए भी सार नही हो सकेगा।

तू तो अकेला है, ज्ञानानन्दमय है। ज्ञान और आनन्दके परिणमन कर रहा है। बाहर कुछ नही है। तू अपने पर कृपादृष्टि रखे तो आध्यात्मिक चक्रवर्ती बन जाय। तू बाह्य से अपनी बुद्धि छोड़ दे, तू अपने बाह्य उपयोगोको छोड दे और अपने आन्तरिक उपयोगोमे आ। यदि तू अपने आन्तरिक उपयोगमे आया तो सुख होंगे और यदि बाह्यमे तूने अपना उपयोग बनाया तो तुझे दुःख होगे और तुझे पागल बनना पडेगा। भाई, देखो कितनी पवित्र यह आत्मा है। यह आत्मा निरतर विषयोसे भी ठगाई गयी, फिर भी यह आत्मा अपने आपमे स्वभावसे ठगी नही गयी। तू अपने शुद्ध आत्माका अनुभव तो कर तो तेरे समस्त क्लेश समाप्त हो जायेंगे। यदि तू अपने आपका अनुभव न कर सका तो तू ठगाया जायगा। तुझे क्लेश होगे। तूने यह कल्पनायें बना रखी हैं कि विषयोसे सुख है इसलिए तू उन विषयो में ही समय लगा रहा है। हाय, तु विषयोमे पड़ रहा है। अरे विषय ही तुम्हें दुःखी बना

वह नही देखता है कि यह युवक पुरुष है, इससे न जी
है। इसी प्रकार आत्माके विषय कषायकी सैन पाकर
इस आत्माको जब निजकी पहिचान मिल जाती
और अपने निजस्वरूपकी उपासना करता है। इस
हो जाती है।

अतः यदि हम अपने निजस्वरूप पर
निजस्वरूपसे दृष्टि न दे सका, बाह्यपदार्थोंसे
है। यही पहिलेसे सोच लें। किसीमे ऐसी
अपना इष्ट माना है वे दुःखी होते हैं।
यदि विषयोंमे आसक्त रहे तो विषयोमे
होना तथा दुःखी होना अपने ऊपर
सकता और दूसरोके दुःखी करनेसे
होऊँ तो इसका अर्थ है कि मेरी
त्माओको पराधीन आत्माएँ कहते
मुझे पराधीन होनेसे ही दुःख
है। बाह्यमे मेरा कुछ नहीं है
लिया है कि पर मेरे सब कु
होते हैं। अरे बाह्यपदार्थों
असार, धन-वैभव है वह

तू तो अकेला है
बाहर कुछ नही है। तू
से अपनी बुद्धि छोड़ दे
था। यदि तू अपने अ
उपयोग बनाया तो ह
यह आत्मा है। यह
आपमे स्वभावसे ह
क्लेश समाप्त हो जा
तुझे क्लेश होंगे।
में ही समय लगा

उछलता है । उसमें कुछ करना नही पडता है । एक किवाड अपने आप लग जाते हैं । किवाड खोलनेमे तो यत्न करना पडता है, पर लगानेमे कुछ नहीं करना पडता है, छोड़ा और लग गए । जो जैसी स्थितिका स्वभावका है उसके लिए यत्न नही करना पडता है, क्योंकि उसमें कारण है । उसके खिलाफ बात है तो यत्न करना पडता है, क्योकि उसमें भी कारण है । हमारे ज्ञान कम है तो इसका कारण है और भगवानका ज्ञान सारे ससारमे विकसित है उसका कोई कारण नहीं है । वह स्वभावसे ही विकसित है । वह बीचमे नहीं पैदा हुआ है । अभी अल्पसुख है, फिर दुःख होंगे, फिर सुख होंगे । इसमें कारण चलता है, पर आत्मीय आनन्द है तो इसमे कोई कारण नहीं है ।

आत्माका स्वरूप ही है कि वह आनन्दमे रहा करे । भगवान पूर्ण ज्ञानमय है, पूर्ण दृष्टिमय है, पूर्ण आनन्दी है, पूर्ण शक्तिवान् है । इस शुद्धविकासके बने रहनेका कोई कारण नहीं है । क्यो कारण नही है, क्योकि वह स्वभावतः ही अपने आप जैसा स्वरूप है तैसे वे हैं । सर्वत्र ही देख लो किसीका ज्ञान बडा है और किसीका छोटा है । इस ज्ञानको आकुलताके कारण है । यह मोटा दृष्टान्त दे रहा हू । जलको अग्नि या धूपमे रख दें तो उष्ण हो जायगा, उसका कुछ कारण है । आत्मा शांत रहे इसका कारण नही है । आत्मा सर्वज्ञ है, परमानन्दमय है तो इस आत्माकी क्या तारीफ है ? क्या कमाल है ? अरे उसका तो यह स्वभाव ही है । तारीफ तो उन ससारमे रहने वालोकी है जो तिर्यञ्च बन जाते हैं, कीडे मकौडे बन जाते हैं । भगवान्‌की हालतमे क्या कमाल है, वह तो स्वय ही शुद्ध है । कमाल तो इनमे है जो कैसे थे और पेड़ हो गए, पत्तियां लग गयी । वाह, बाहरी आत्मा कमाल तो तेरा है । भगवान तो एक पदार्थ है, शुद्ध है, अकेला रह रहा है । भगवानका जो अंतिम शरीरके प्रमाणका आकार रहता है उसकी वजह यह है कि पहले जैसे शुरूमे थे, जब तक वह शरीरमे रह आए तब तक कर्मोंका उदय कारण था । जैसा कर्मोदय था तैसा उनको शरीर मिला, तैसा ही आत्माका प्रसार हुआ । अंतिम समयमे जो मिला उस शरीरमे आत्मा थी । पहले तो यह हुआ कि आत्मा फैलती है तो कर्मके कारणसे आत्मा सिकुडता है तो कर्मके कारणसे जैसा कर्मका उदय है उस ही प्रकारका आत्मा सिकुडता और फैलता है । अब अतमे शरीर भी चला गया तो जब शरीर छूटा तो अब कोई प्रस्तावको रख देवे कि इस आत्मामे क्या होना चाहिए ? जिस शरीरसे मोक्ष गए उस शरीरसे आत्माको फैलाकर बडा बनाना चाहिए या छोटा बनाना चाहिए । यदि बडा बनाना चाहते हो तो क्यों बडा बनाओगे और यदि छोटा बनाना चाहते हो तो क्यो छोटा बनाओगे ? यह बडा और छोटा

उछलता है। उसमें कुछ करना नहीं पडता है। एक किवाड अपने आप लग जाते है। किवाड खोलनेमे तो यत्न करना पडता है, पर लगानेमें कुछ नहीं करना पड़ता है, छोड़ा और लग गए। जो जैसी स्थितिका स्वभावका है उसके लिए यत्न नही करना पडता है, क्योंकि उसमें कारण है। उसके खिलाफ बात है तो यत्न करना पडता है, क्योकि उसमें भी कारण है। हमारे ज्ञान कम है तो इसका कारण है और भगवानका ज्ञान सारे संसारमे विकसित है उसका कोई कारण नहीं है। वह स्वभावसे ही विकसित है। वह बीचमे नहीं पैदा हुआ है। अभी अल्पसुख है, फिर दुःख होंगे, फिर सुख होंगे। इसमें कारण चलता है, पर आत्मीय आनन्द है तो इसमे कोई कारण नहीं है।

आत्माको स्वरूप ही है कि वह आनन्दमे रहा करे। भगवान पूर्ण ज्ञानमय है, पूर्ण दृष्टि-मय है, पूर्ण आनन्दी है, पूर्ण शक्तिवान् है। इस शुद्धविकासके बने रहनेका कोई कारण नहीं है। क्यो कारण नही है, क्योकि वह स्वभावतः ही अपने आप जैसा स्वरूप है तैसे वे हैं। सर्वत्र ही देख लो किसीका ज्ञान बडा है और किसीका छोटा है। इस ज्ञानकी आकुलताके कारण है। यह मोटा दृष्टान्त दे रहा हू। जलको अग्नि या धूपमे रख दें तो उष्ण हो जा-यगा, उसका कुछ कारण है। आत्मा शांत रहे इसका कारण नही है। आत्मा सर्वज्ञ है, परमानन्दमय है तो इस आत्माकी क्या तारीफ है? क्या कमाल है? अरे उसका तो यह स्वभाव ही है। तारीफ तो उन ससारमे रहने वालोकी है जो तिर्यञ्च बन जाते हैं, कीडे मकोडे बन जाते हैं। भगवान्की हालतमे क्या कमाल है, वह तो स्वयं ही शुद्ध है। कमाल तो इनमे है जो कैसे थे और पेड हो गए, पत्तियां लग गयी। वाह, बाहरी आत्मा कमाल तो तेरा है। भगवान तो एक पदार्थ है, शुद्ध है, अकेला रह रहा है। भगवानका जो अतिम शरीरके प्रमाणका आकार रहता है उसकी वजह यह है कि पहले जैसे शुरूमे थे, जब तक वह शरीरमे रह आए तब तक कर्मोंका उदय कारण था। जैसा कर्मोदय था तैसा उनको शरीर मिला, तैसा ही आत्माका प्रसार हुआ। अंतिम समयमे जो मिला उस शरीरमे आत्मा थी। पहले तो यह हुआ कि आत्मा फैलती है तो कर्मके कारणसे आत्मा सिकुडता है तो कर्मके कारणसे जैसा कर्मका उदय है उस ही प्रकारका आत्मा सिकुडता और फैलता है। अब अतमे शरीर भी चला गया तो जब शरीर छूटा तो अब कोई प्रस्तावको रख देवे कि इस आत्मामे क्या होना चाहिए? जिस शरीरसे मोक्ष गए उस शरीरसे आत्माको फैलाकर बडा बनाना चाहिए या छोटा बनाना चाहिए। यदि बडा बनाना चाहते हो तो क्यों बडा बनाओगे और यदि छोटा बनाना चाहते हो तो क्यो छोटा बनाओगे? यह बडा और छोटा

सो कर्मोदयका कारण हुआ करता है ।

जब नामकर्म मुक्त बन रहे हैं तो न फैलनेका कारण है और न छोटा होनेका कारण है । इसी तरह सिद्ध भगवान जिस शरीरको छोडकर मुक्त होते हैं वह जितने प्रमाणमें थे उतने प्रदेशमे वह रह जाते हैं । मैं एक शुद्ध निराला पदार्थ हूं । जैसा स्वरूप भगवानका है तैसा मेरा है । तो जैसा उनका स्वरूप है वैसा ही है । आचरण नही बदलता है । देखो यह स्वरूपकी भक्ति है । यह प्रभुकी भक्तिमे ऐसा दिखता है कि यह प्रभु क्या है ? हम जो हैं, सो ही रह रहे हैं । जैसा स्वरूप है तैसा ही सिद्धिका विकास हो गया । अब प्रभुमे रागबाजी नही चल रही है । क्षणमे कुछ, क्षणमें कुछ, लीलायें ससारी प्राणी रचा करता है । पर मालूम पडता है कि यह प्रभु प्रभुताकी ऐसी लीला करके थक गया है, इसलिए प्रभुने लीलायें बंद कर दी हैं ।

यहां देखो—वाह रे ससारी प्राणी ! तेरा तो थकनेका काम ही नही है । तू तो अनेक कल्पनायें करता है, समागम करता व सयोग वियोगके विकल्प तथा अनेक कर्मण्यताएं करता है । आजसे ५० वर्ष पूर्व तू किस योनिमे रहा होगा ? वहां क्या कोई कल्पनायें थी कि यह घर द्वार मेरा है, यह धन-वैभव, कुटुम्ब, परिवार मेरा है और अब यहां क्या कल्पनायें करने लगा ? जब मैं यहासे जाऊंगा तो यह कल्पनायें रहेगी क्या ? कितना श्रम कर यह संसारी कार्य कर रहा है । तू कितना कर्मठ बन रहा है । विकल्प, निरतर विकल्प, यह छोडा, वह छोडा और यह क्या है ? यह सब सांसारिक आपदायें हैं । जैसे किसी बड़े सग्राममे बड़े सिपाहीको चैन न ही, छिप-छिपकर, खेल खेलकर गोली चलाये, दोड़े, भागे । इस प्रकारसे दुनियाके लोग श्रम कर रहे हैं । इस तरहसे यह प्रभु इस ससारमे नाना खेल कर रहा है । आंख मिच गई कि आगे उसका कुछ पता नही । आगे गया और ढगका बन गया और आगे बढा तो कल्पनायें करके और ढगका बन गया । यो कल्पनायें करके दुःखी होता है । कोई भी इसका कुछ हो तो बतला दो । क्या है इसका, मगर कल्पनायें इतनी बड़ी बना लेता है । सो हे प्रभु ! आपने भी यह सब भारी काम किया । बडी कर्मठतासे ८४ लाख योनियोंमे चक्कर लगाये, अनेक लीलायें खेली । अब मालूम होता है कि उन कलाओसे तू थक गया है और थक करके ही उन अपनी लीलाओको छोड दिया है ।

हे प्रभो ! तुम शुद्ध पदार्थ हो, शुद्ध आत्मा हो । अरे अशुद्धिको मेटो तो शुद्ध हो जावो । अशुद्धि मेटी तो उसका परिणमन अच्छा हुआ । क्या गजब हो गयो, हां महान् जरूर हो । यहांपर क्या है ? स्त्री हो गई, बाल बच्चे हो गए । अरे हो गए तो इनसे तुम्हें क्या मिला ? लाखो और करोडो रुपयोका धन उनके लिए जोड़कर भर दिया । अरे वह सब

उछलता है। उसमें कुछ करना नही पडता है। एक किवाड अपने आप लग जाते हैं। किवाड खोलनेमे तो यत्न करना पडता है, पर लगानेमे कुछ नहीं करना पडता है, छोड़ा और लग गए। जो जैसी स्थितिका स्वभावका है उसके लिए यत्न नहीं करना पडता है, क्योंकि उसमें कारण है। उसके खिलाफ बात है तो यत्न करना पडता है, क्योंकि उसमें भी कारण है। हमारे ज्ञान कम है तो इसका कारण है और भगवानका ज्ञान सारे ससारमे विकसित है उसका कोई कारण नहीं है। वह स्वभावसे ही विकसित है। वह बीचमे नहीं पैदा हुआ है। अभी अल्पसुख है, फिर दुःख होंगे, फिर सुख होंगे। इसमें कारण चलता है, पर आत्मीय आनन्द है तो इसमे कोई कारण नहीं है।

आत्माका स्वरूप ही है कि वह आनन्दमे रहा करे। भगवान पूर्ण ज्ञानमय है, पूर्ण दृष्टि-मय है, पूर्ण आनन्दी है, पूर्ण शक्तिवान् है। इस शुद्धविकासके बने रहनेका कोई कारण नहीं है। क्यो कारण नही है, क्योंकि वह स्वभावतः ही अपने आप जैसा स्वरूप है तैसे वे हैं। सर्वत्र ही देख लो किसीका ज्ञान बडा है और किसीका छोटा है। इस ज्ञानकी आकुलताके कारण है। यह मोटा दृष्टान्त दे रहा हू। जलको अग्नि या धूपमे रख दें तो उष्ण हो जा-यगा, उसका कुछ कारण है। आत्मा शांत रहे इसका कारण नही है। आत्मा सर्वज्ञ है, परमानन्दमय है तो इस आत्माकी क्या तारीफ है? क्या कमाल है? अरे उसका तो यह स्वभाव ही है। तारीफ तो उन ससारमे रहने वालोकी है जो तिर्यञ्च बन जाते हैं, कीडे मकोडे बन जाते हैं। भगवान्की हालतमे क्या कमाल है, वह तो स्वयं ही शुद्ध है। कमाल तो इनमे है जो कैसे थे और पेड हो गए, पत्तियां लग गयी। वाह, बाहरी आत्मा कमाल तो तेरा है। भगवान तो एक पदार्थ है, शुद्ध है, अकेला रह रहा है। भगवानका जो अतिम शरीरके प्रमाणका आकार रहता है उसकी वजह यह है कि पहले जैसे शुरूमे थे, जब तक वह शरीरमे रह आए तब तक कर्मोंका उदय कारण था। जैसा कर्मोदय था तैसा उनको शरीर मिला, तैसा ही आत्माका प्रसार हुआ। अतिम समयमे जो मिला उस शरीरमे आत्मा थी। पहले तो यह हुआ कि आत्मा फैलती है तो कर्मके कारणसे आत्मा सिकुड़ता है तो कर्मके कारणसे जैसा कर्मका उदय है उस ही प्रकारका आत्मा सिकुडता और फैलता है। अब अतमे शरीर भी चला गया तो जब शरीर छूटा तो अब कोई प्रस्तावको रख देवे कि इस आत्मामे क्या होना चाहिए? जिस शरीरसे मोक्ष गए उस शरीरसे आत्माको फैलाकर बडा बनाना चाहिए या छोटा बनाना चाहिए। यदि बडा बनाना चाहते हो तो क्यों बडा बनाओगे और यदि छोटा बनाना चाहते हो तो क्यो छोटा बनावोगे? यह बड़ा और छोटा

उसने देखा कि सामने सडक है जिससे मुझे जाना होगा। अब वह निःशंक हो गया। ऐसा नि शंक होकर वह सोचता है कि मैं रास्ता भूल तो गया हूं, पर इतनी ही भूलमे पडा हूं। यह भूल यो ही मिट जाया करती है तो मिट जायगी। सवेरा हुआ तो सामने देखा कि थोड़ी दूर पर सडक है, सड़कपर लोग चल रहे हैं। वह भटक गया था, पर सतोष किए हुए था। इसी प्रकार यदि ज्ञानी विषयोसे भटककर अपने ज्ञानको भूल गया है तो कुछ भी विवेक हो तो वह भूलको न बढ़ायेगा, रुक जायेगा। कभी उसका ज्ञान सच्चाईको लेकर आता है तो वह समझ जाता है कि यह आत्मदर्शनका मार्ग है, जिसपर हमे चलना है ? देखो भूलका मिटना व ज्ञानका होना दोनो एक साथ होते है। इसमें ज्ञानका तो उत्पाद है और अज्ञानका व्यय है। यह सब धर्मपालन एक इस आत्मापर ही निर्भर है। क्या आनन्द भी आयेगा ? हाँ, इस आत्मामे आनन्द भी आयेगा। आनन्द तो आत्माका स्वभाव ही है।

जब भूले हुए पथिकको ज्ञान होता है तभी यह उत्साह बढता है कि अब मैं अपनी भूलसे उऋण हो रहा हू। अब मैं अपने सही मार्गमे जा रहा हूं। अब वह ऐसे उत्साहसे चलता है कि जो पगडंडियाँ सडकसे मिला देंगी उन्ही पगडंडियोसे समझकर चलता है। जब सडक पर वह मुसाफिर पहुच जाता है तो उसे बडा सनोष होता है। अब तो करने योग्य जो काम था कर लिया, अब आनन्दमे बढता चला। जहाँ जाना चाहता था उस स्थानपर पहुच जाता है। पहुचकर वह विश्राम कर लेता है। अब बिल्कुल निश्चिन्त हो गया। इसी तरह जगत्के प्राणी अज्ञानके अधेरेमे विषयकषायोकी गलियोमे भटक गया, वही अपनेको भूल गया है। इस भूलमे बढनेसे बढकर भूल हो जाती है तो वह सोचता है कि इस भूलसे बढो मत, नहीं तो जितनी भूल बढ जायगी उतना ही वापिस होनेमे कठिनाई पडेगी। विषय कषायोमे मत फंसो, तुम निर्णय कर शांतिका मार्ग ढूंढो, बस इसीसे प्रेम करना भक्ति होता-है। यदि तूने विषयकषायोसे अपनेको दूर रखा और शांतिके मार्गका पता लगाया तो तुझे सतोष आयेगा, भक्ति आयेगी। तो इन साधनोके बीच रहते हुए कभी अन्तर बिजली चमकती हैं तो निर्मूल अवस्थाका अवलोकन होता है और केवल ज्ञानमात्र स्वरूपका निर्णय करता है। शांतिका मार्ग यही है। इसी तरहके मार्गसे जो आप चलना चाहे तो मोह और विषयोमे जी लगा रहे तो उसको भूलकर सही मार्गका पता लगाओ। जब उस सही मार्गका पता लगा लोगे तब तुम्हे शांति प्राप्त होगी, सतोष प्राप्त होगा। जब तू अपनी भूलोमे पड़ जाता है, तू विषयोमे पड़ जाता है तो संतोष नही प्राप्त होता है। यदि अपनेको भुलावेमे डाल लिया तो शांतिका असर उसके दिलमे नही होगा। यदि वह ज्ञानसे अच्छे मार्गमे आ जाता है तो वह संतोष प्राप्त करता है क्योकि उसे भूलका पता लग गया। यह तो मत्र

भाववस्तु हैं। इनसे मेरा कुछ सम्बन्ध नही है। यह कल्पना बना लेनेसे कि यह परपदार्थ मेरे हैं उसकी शांति खत्म हो जाती है, मोक्षमार्गसे हटता रहता है और संसारके जन्ममरण के चक्रमे फंसा रहता है। उस मोही प्राणीकी यही स्थिति बनी रहती है। परन्तु यह मेरे नही है, ऐसी कल्पना जो बना लेता है उसे संतोष प्राप्त होता है और उसे जन्ममरणके चक्करसे मुक्ति प्राप्त हो जाती है। पानीमे कमलका पत्ता पडा हुआ है, पानीसे वह पत्ता बिल्कुल भिन्न हैं। पानीका पत्ते पर कुछ असर नही। पत्ता गला है या सडा। पानी तो सूखा ही सूखा होता है। निकालकर देख लो सूखा ही निकलेगा। यह गृहस्थी प्राणी भी घरमे रहते हुए भी सुखी रहता है। कोई उसका पता लगाने वाला नही है। घरमे रहते हुए भी घर वालोका उसपर असर नही है। वह सदा सुखी रहते हैं। जो बाह्यपदार्थोंसे सतोष प्राप्त करता है वह इस भूल जगत्से हट जावे और अपने निजस्वरूपसे ही सतोष प्राप्त करे। जो प्राणी इस जगत्के मोहमे पडकर भूल गए हैं वे यदि अपने निजस्वरूपको देखकर सतोष प्राप्त करें तो वे आनन्दमग्न हो जावें। जिस प्राणीको आत्मसंतोष प्राप्त करना है, आनन्दमग्न हो जाना है उसे सारे आनन्द परिग्रह त्यागना होगा और उसे कुछ काम करना नही है। यदि किसीने महान् पुरुषार्थ किया, कल्याण किया, संन्यास लिया और अपने आपसे प्रेम किया तो वह इस जगत्मे आनन्दमग्न हो जाता है। अशुद्धिको दूर किया और शुद्धिको प्रकट किया तो इस मार्गसे चलनेपर तो निर्विकार मार्गमे पहुच जायगा। अपने आपको यदि अशुद्धिमे रखा तो विकारयुक्त होकर उसे असतोष हो जाता है। हे प्रभु तुम कोई बडी गजबकी वस्तु नही हो। जानता हू कि अशुद्धिसे हटकर शुद्धिके मार्गमे अपने को ले गए हो। हैरानीकी बात कुछ नही है। गजब कुछ नही है किन्तु इसका स्वरूप बहुत महान् है। कैसी अद्भुत शक्तिका विकास है। इस अपने आपको देखनेमे भक्ति है और बातो भक्ति नही है। यह भगवान है, बडा है, बलशाली है इत्यादि बातोमे भक्ति नही है। मुझे तो कुछ गजब नही दिख रहा है कि भगवान् कोई गजबकी चीज है। जैसे बिरादरीमे कोई धनी है। कैसा भी हो बिरादरीका तो है। उसे कोई धनी नही देखता। यहाँ हम बैठे हैं, वहाँ वह धनी आदमी बैठा है। हम दोनोमे कोई अन्तर नही दिखता है। तुम्हारी नगर महापालिकाका उच्च अफसर जो तुम्हारे बगलमे बैठे हैं वे तुम्हें गजबका काम करते हुए नही दिखते हैं। अरे वह शुद्ध प्रभु भी मेरी बिरादरीका है। जैसी वस्तु वह है तैसा मैं हू। उस शुद्ध प्रभुकी अशुद्धि मिट गयी, विकार मिट गए, वह तो वहीके वही हैं। पर हे जगत्के प्राणी! महत्ता तो तुम्हारी है उस प्रभुकी कौन महत्ता है? उस प्रभुमे तो कोई गजब नहीं दिखता है। अपनेसे अपरिचितको जरूर गजब दिखता है। हाँ क्या है? कैसे हो गया? बडे

भाववस्तु हैं। इनसे मेरा कुछ सम्बन्ध नहीं है। यह कल्पना बना लेनेसे कि यह परपदार्थ मेरे हैं उसकी शांति खत्म हो जाती है, मोक्षमार्गसे हटता रहता है और ससारके जन्ममरण के चक्रमे फसा रहता है। उस मोही प्राणीकी यही स्थिति बनी रहती है। परन्तु यह मेरे नही है, ऐसी कल्पना जो बना लेता है उसे संतोष प्राप्त होता है और उसे जन्ममरणके चक्करसे मुक्ति प्राप्त हो जाती है। पानीमे कमलका पत्ता पडा हुआ है, पानीसे वह पत्ता बिल्कुल भिन्न हैं। पानीका पत्ते पर कुछ असर नही। पत्ता गला है या सडा। पानी तो सूखा ही सूखा होता है। निकालकर देख लो सूखा ही निकलेगा। यह गृहस्थी प्राणी भी घरमे रहते हुए भी सुखी रहता है। कोई उसका पता लगाने वाला नही है। घरमे रहते हुए भी घर वालोका उसपर असर नही है। वह सदा सुखी रहते हैं। जो बाह्यपदार्थोंसे सतोष प्राप्त करता है वह इस भूल जगत्से हट जावे और अपने निजस्वरूपसे ही सतोष प्राप्त करे। जो प्राणी इस जगत्के मोहमे पडकर भूल गए हैं वे यदि अपने निजस्वरूपको देखकर सतोष प्राप्त करें तो वे आनन्दमग्न हो जावें। जिस प्राणीको आत्मसतोष प्राप्त करना है, आनन्दमग्न हो जाना है उसे सारे आनन्द परिग्रह त्यागना होगा और उसे कुछ काम करना नही है। यदि किसीने महान् पुरुषार्थ किया, कल्याण किया, सन्यास लिया और अपने आपसे प्रेम किया तो वह इस जगत्मे आनन्दमग्न हो जाता है। अशुद्धिको दूर किया और शुद्धिको प्रकट किया तो इस मार्गसे चलनेपर तो निर्विकार मार्गमे पहुच जायगा। अपने आपको यदि अशुद्धिमे रखा तो विकारयुक्त होकर उसे असतोष हो जाता है। हे प्रभु तुम कोई बडी गजबकी वस्तु नही हो। जानता हू कि अशुद्धिसे हटकर शुद्धिके मार्गमे अपने को ले गए हो। हैरानीकी बात कुछ नही है। गजब कुछ नही है किन्तु इसका स्वरूप बहुत महान् है। कैसी अद्भुत शक्तिका विकास है। इस अपने आपको देखनेमे भक्ति है और बातो भक्ति नही है। यह भगवान है, बडा है, बलशाली है इत्यादि बातोमे भक्ति नही है। मुझे तो कुछ गजब नही दिख रहा है कि भगवान् कोई गजबकी चीज है। जैसे बिरादरीमे कोई धनी है। कैसा भी हो बिरादरीका तो है। उसे कोई धनी नही देखता। यहाँ हम बैठे हैं, वहाँ वह धनी आदमी बैठा है। हम दोनोमे कोई अन्तर नही दिखता है। तुम्हारी नगर महापालिकाका उच्च अफसर जो तुम्हारे बगलमे बैठे हैं वे तुम्हें गजबका काम करते हुए नही दिखते हैं। अरे वह शुद्ध प्रभु भी मेरी बिरादरीका है। जैसी वस्तु वह है वैसा मैं हू। उस शुद्ध प्रभुकी अशुद्धि मिट गयी, विकार मिट गए, वह तो वहीके वही हैं। पर हे जगत्के प्राणी! महत्ता तो तुम्हारी है उस प्रभुकी कौन महत्ता है? उस प्रभुमे तो कोई गजब नही दिखता है। अपनेसे अपरिचितको जरूर गजब दिखता है। हाँ क्या है? कैसे हो गया? बडे

भाववस्तु हैं। इनसे मेरा कुछ सम्बन्ध नही है। यह कल्पना बना लेनेसे कि यह परपदार्थ मेरे हैं उसकी शांति खत्म हो जाती है, मोक्षमार्गसे हटता रहता है और संसारके जन्ममरण के चक्रमे फसा रहता है। उस मोही प्राणीकी यही स्थिति बनी रहती है। परन्तु यह मेरे नही है, ऐसी कल्पना जो बना लेता है उसे संतोष प्राप्त होता है और उसे जन्ममरणके चक्करसे मुक्ति प्राप्त हो जाती है। पानीमे कमलका पत्ता पड़ा हुआ है, पानीमे वह पत्ता बिल्कुल भिन्न हैं। पानीका पत्ते पर कुछ असर नही। पत्ता गला है या सड़ा। पानी तो सूखा ही सूखा होता है। निकालकर देख लो सूखा ही निकलेगा। यह गृहस्थी प्राणी भी घरमे रहते हुए भी सुखी रहता है। कोई उसका पता लगाने वाला नही है। घरमे रहते हुए भी घर वालोका उसपर असर नही है। वह सदा सुखी रहते हैं। जो बाह्यपदार्थोंसे सतोष प्राप्त करता है वह इस भूल जगत्से हट जावे और अपने निजस्वरूपसे ही सतोष प्राप्त करे। जो प्राणी इस जगत्के मोहमे पडकर भूल गए हैं वे यदि अपने निजस्वरूपको देखकर सतोष प्राप्त करें तो वे आनन्दमग्न हो जावें। जिस प्राणीको आत्मसंतोष प्राप्त करना है, आनन्दमग्न हो जाना है उसे सारे आनन्द परिग्रह त्यागना होगा और उसे कुछ काम करना नही है। यदि किसीने महान् पुरुषार्थ किया, कल्याण किया, सन्यास लिया और अपने आपसे प्रेम किया तो वह इस जगत्मे आनन्दमग्न हो जाता है। अशुद्धिको दूर किया और शुद्धिको प्रकट किया तो इस मार्गसे चलनेपर तो निर्विकार मार्गमे पहुच जायगा। अपने आपको यदि अशुद्धिमे रखा तो विकारयुक्त होकर उसे असतोष हो जाता है। हे प्रभु तुम कोई बडी गजबकी वस्तु नही हो। जानता हू कि अशुद्धिसे हटकर शुद्धिके मार्गमे अपने को ले गए हो। हैरानीकी बात कुछ नही है। गजब कुछ नही है किन्तु इसका स्वरूप बहुत महान् है। कैसी अद्भुत शक्तिका विकास है। इस अपने आपको देखनेमे भक्ति है और बातो भक्ति नही है। यह भगवान है, बडा है, बलशाली है इत्यादि बातोमे भक्ति नही है। मुझे तो कुछ गजब नही दिख रहा है कि भगवान् कोई गजबकी चीज है। जैसे बिरादरीमे कोई धनी है। कैसा भी हो बिरादरीका तो है। उसे कोई धनी नही देखता। यहाँ हम बैठे हैं, वहाँ वह धनी आदमी बैठा है। हम दोनोमे कोई अन्तर नही दिखता है। तुम्हारी नगर महापालिकाका उच्च अफसर जो तुम्हारे बगलमे बैठे हैं वे तुम्हें गजबका काम करते हुए नही दिखते हैं। अरे वह शुद्ध प्रभु भी मेरी बिरादरीका है। जैसी वस्तु वह है तैसा मैं हूं। उस शुद्ध प्रभुकी अशुद्धि मिट गयी, विकार मिट गए, वह तो वहीके वही हैं। पर हे जगत्के प्राणी! महत्ता तो तुम्हारी है उस प्रभुकी कौन महत्ता है? उस प्रभुमे तो कोई गजब नही दिखता है। अपनेसे अपरिचितको जरूर गजब दिखता है। हाँ क्या है? कैसे हो गया? बडे

गजबकी बात है। भगवान् कोई और चीज हुआ करती होगी, ऐसा देखने लगते है। अरे हैरानी की चीज नही। भगवान्‌की अशुद्धि मिट गयी, विकार मिट गए। वह तो वहीके वही हैं। हे जगत्‌के प्राणी तू बलशाली है, तेरी महत्ता है, तेरेमे बलशाली ज्ञान भरा हुआ है। उस अपने ज्ञानको बाहरी पदार्थोंमें लगा रहे हो और अपने परिणामोंको अनन्तरूपोमे बना रहे हो। हे प्राणी ! अपने ही परिणामोंसे अपनेको अनन्तयोनियोंमे डाल रहे हो। कही कीड़े मकोड़े बन गए कही पेड़ बन गए, कही कुछ बन गए, कही कुछ। इस प्रकारके जन्म-मरणके चक्रमे डाल लिया। इसलिए हे प्राणी ! गजब तो तूने किया है। यदि तू अपने को अनन्तरूपोमे न माने तो समझ कि ज्ञान आ गया। यदि केवल एक ही ज्ञानका प्रताप तुझ में पड़ा हुआ है तो सारे क्लेश दूर हो जावेंगे। हे प्रभु ! आपके ज्ञानमें इतनी शक्ति है कि तीन लोकके समस्त पदार्थ आपके ज्ञानके एक कोनेमें पड़े रहते है। यदि प्रभुके होते विशाल ज्ञानका आदर है तो मेरे मनमे उनकी महत्ताका आदर है। मैं भगवान्‌में गजब कुछ नही देखता हूं। विकार हट गए, पवित्रता आ गयी, ऐसी दृष्टिसे वह ज्ञानी पुरुष हो गए। जिनकी दृष्टि प्रभुताके निकट विराजमान हो गयी उनके ज्ञानमे अनन्त बल है। जो बल उस भगवान्‌मे है अन्य प्राणियोमे भी वह बल हो सकता है। अरे यदि मेरेमे ज्ञान बल नही है, पवित्रता नही आ गयी है, विकार रहित नही हो गया हू, इससे मेरी पराजय है। यदि मुझे अपना भान हो गया है तो जब चाहूं भगवान्‌से मिल सकता हूं। इस ज्ञानी पुरुषका वह भगवान अत्यन्त निकट है। अन्तरदृष्टिमे देखो तो वह विराजमान है। शुद्ध प्रभु जैसी स्थिति मेरेमे भी हो सकती है। इसमें कोई संदेह नही है। आत्मा तो दर्शन, ज्ञान, सुख, शक्तिका पिंड है। इस ज्ञानमें कोई सीमा नही है। हमने अपनी अज्ञानतासे ही इसमे सीमा डाल दी है। वह अज्ञानताकी मेड बीचमें पड जाती है। इससे हमे क्लेश होते रहते है। मैं अज्ञान की मेंडको तोड़ डालूं, बाह्यपदार्थोंमे दृष्टि लगानेकी मेड़ तोड़ दूं तो सब ज्ञान एक असीम हो जायगा। अरे अपने आपके शुद्ध अशुद्ध स्वरूपको और वीतराग बुद्धिके विकासको तो देखो।

मैं वह हूं जो है भगवान, जो मैं हू वह है भगवान।

जलके स्वभाव और निर्मल जलमे कोई अन्तर है क्या ? निर्मल जल पहिचानमे झट आ गया और जलके स्वभावमे दिमाग लगानेका काम है। जैसा निर्मल जल मुझे मालूम पड़ रहा है वैसा ही जलका स्वभाव भी पड़ा हुआ है। उस कीचड़ वाले जलमे जल भी निर्मल है, कीचड़ मिला हुआ है पर वह जल स्वच्छ है, निर्मल है। इसी प्रकार संसारको नाना स्थितियोमे पड़े हुए इस मलीन आत्मामे भी स्वभाव वही है, वैसा ही स्वच्छ है। जैसा

कि भगवान शुद्ध है वैसा ही यह आत्मा शुद्ध है। शुद्धिके विकासमे कोई अन्तर नही है। इस प्रकार प्रभु अनन्तज्ञान दर्शन और अनन्तशक्तियोका पिड है। इस ज्ञानके विकासके लिए सामर्थ्य तथा अन्तरदृष्टि इत्यादिकी आवश्यकता है। अपनेको अपने सही रूपमे निरखकर स्वय ही अपनेमे शान्तिका मार्ग प्राप्त करें।

निर्द्धूयाज्ञानजान्ध स्व दृष्टा ध्यानाग्निना विविम्।
दहानि निष्कलंक. सन्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-५६॥

स्वरूप न सूझना और विषयकषायोमे ही उपयोगको बनाए रखना यह बडा अधकार है। यह अंधकार अज्ञानसे पैदा होता है। अज्ञान क्या वस्तु है? पदार्थोंका जैसा स्वरूप है वैसा न मानना अज्ञान है। प्रत्येक पदार्थ स्वतन्त्र है। अपनी अपनी सत्ताको लिये हुए है। अपनी ही सत्तासे परिणमता है। किसीका किसीमें प्रवेश नही है। इनके खिलाफ ऐसा समझना कि मैं अमुक वस्तुको कुछ कर दूंगा या अमुक मेरे लिए कुछ कर देंगे। इस प्रकार स्वतन्त्रताके खिलाफ विकल्प करना यह मोह है। पदार्थ अपनेमे ही उत्पाद करते हैं। अपनेमे ही अपनी अवस्थाको विलीन करते हैं और खुदबखुद सदा बने रहते है। जैसे एक अगुली है, अभी सीधी है इसको टेढी कर दी तो टेढी बन गयी। वह अंगुली उस टेढी अवस्थामे उत्पाद वाली हुई और टेढी अवस्थामे उसका व्यय हुआ यानी सीधी अवस्था विलीन हो गई और अंगुली वही की वही बनी हुई है। इसी प्रकार परपदार्थ अपने ही स्वरूपमे अपनी अवस्याका उत्पाद करते हैं, अपने ही स्वरूपमे अपनी ही अवस्याका व्यय करते है और अपने ही स्वरूपको बनाए रहते है। इसे कहते हैं त्रिगुणात्मक पदार्थ। पदार्थोंमे यह तीन गुण भरे हुए हैं। प्रथम अवस्थाका उत्पाद, द्वितीय पूर्व अवस्थाको विलीन करना और तृतीय वह खुदबखुद बनी रहे। ये तीन बातें परमार्थमे सदा चलती है। प्रत्येक पदार्थ प्रत्येकसे अलग है। जो खोटा रूप भी परिणमता है वह भी खुद ही परिणमता है। दूसरा उसके साथ मिलकर खोटा रूप नही परिणमता है, पर दूसरे पदार्थ जिसका निमित्त पाकर खोटे भाव होते हैं उन सबमे ऐसा मानना कि वे ही करते है, इसके मायने अज्ञान है। जो पदार्थ जिस रूपमे है उनको वैसा न मानना अज्ञान है और जो जैसा है तैसा मानना ही ज्ञान है। इस ज्ञानके कारण विषयोका अधेरा समझमे आ जाता है। वस्तुकी स्वतन्त्रताका उपयोग करके जो वास्तविक आनन्द आता है तो उसमें आकुलता रहती है। उसमे परिणमन नही रहता है और अज्ञान रहता है। एक दूसरेके साथ सम्बंध माननेकी बात रहती है, ऐसी स्थितिमे विषयोको लगाए रहना प्राकृतिक बात है, बाह्य पदार्थोंमे खपना प्राकृतिक बात है, यह बडा अधेरा है। विषयोमे प्रीति होना, यह बडा अंधेरा है। विषय ६ प्रकारके होते हैं—स्पर्श, रस, गध,

ठंडा नही बना रहता है तो हवा चाहिये, ठंडी लगती है तो गर्मी की जरूरत है इत्यादि यह वर्ण, शब्द व संकल्प विकल्प। इन ६ प्रकारके विषयोमें रति होना यह अंधकार है। अपने आपको टटोलना चाहिए कि हम अंधकारमे है या उजालेमे है। स्पर्श विषयमे तो मुख्य वेद संबंधी विषय है। फिर स्निग्ध रूक्ष ठंडा गर्म आदि जो ८ प्रकारके स्पर्श हैं वे हैं स्निग्ध, रूक्ष, उष्ण, शीत, कडा, नर्म, हल्का, भारी। यह ८ प्रकारके स्पर्श स्पर्शनेन्द्रियके विषय हैं। सो देखो निरन्तर ये प्राणी इनमे बहते ही रहते है। गर्मी लगती है तो ठडी चीज चाहिये, सब स्पर्शइन्द्रियके विषय हैं। नरकमे रहने वाले अन्य पशु पक्षियोमे हो तो क्या सहन न कर लिया जायगा। हम ही गरीब हो तो इतनी ठंडी गर्म न सह लेते। इन्द्रिय विषयमे मीठा होना, खट्टा होना, स्वादिष्ट होना ये रसना इन्द्रियके विषय है।

ससारके प्राणी इन रसोमे कैसे रत होते है? कितनी तरहके व्यञ्जन बने, कितनी प्रकारकी खानेकी चीजोका आविष्कार हुआ जिनका नाम लिया जाय तो ३००, ४०० नाम हो जावें। खानेकी चीजोका नाम हम कहते है और वस्तुओके नाम हम नही कहते है, फलो की बात हम नही कहते है। भोजन बनाया जाता हैं तो कितनी तरहके बनते है। मिठाइयाँ बनती, चाय बनती, नमकीन बनती इत्यादि अनेक वस्तुवें बनती है। यह सब क्या है? रसना इन्द्रियके ही विषय हैं। सामने मिठाइयाँ सेव वगैरह रखे हैं, दाल रोटी भी रखी हैं। दाल रोटीमे ही सतोष कर लें तो समझो विजय है। वस्तुओको देख लिया तो चख लिया, स्वादसे लिया, यह सब क्या है? यह सब रसना इन्द्रियके विषय है। रसना इन्द्रियका जो विषय है वह भी अंधकार है। एक अगुली या दो अंगुली की इस नाकको खुश करनेके लिए कितने प्रकारके सुगन्धित तेल हैं, कितने प्रकारके पुष्प है। इन सुगधित पुष्पो तथा तेलोंसे इस नाकको खुश करते हैं। कही फूल या इत्रका फोवा नाकमे लगा है, कही कानमे लगा है, कही इत्र लगा दिया, कही कोई दूसरा सुगन्धित तेल लगा दिया। यदि कोई तेल लगा दिया तो वह खुशबूदार होना चाहिए। ये सब घ्राण इन्द्रियके विषय हैं। विषय सेवते सेवते भी संतोष तो नही आता।

जो है वह ठीक है। यह हुआ तो क्या हुआ? इष्ट है उसमे क्या हुआ? यह सब अन्धकार है। विषयोंको रस सुहाया यह अन्धकार है और इस अन्धकारमे ही चुलबुल करता हुआ यह जगतका प्राणी छिन्न भिन्न बरबाद होता रहता है। चक्षु इन्द्रियका विषय देखो। नेत्रोने एक एक अंगुलमे नये नये खेल देखे तो मन बढ गया। जो कुछ देखा वह वही का वही है। पर जो कुछ देखा उससे मोह कर लिया। इस मोहके कारण वह दु खी रहता है। सिनेमा देखा, नाटक देखा, इनमे कुछ है क्या? किसीका रूप देखो तो क्या, वह तो अपने शरीरमे देखलो ना? शक हो तो अपने शरीरमे तोड़फोड़ कर देख लो। बरसातके

दिन है तो शरीर पर कपडे नही सुहाते । और भी जीव पदार्थोको सुन्दर सुन्दर रूप, ड्रेसेज, आकार तथा अन्य नई नई कमीजें वगैरह बनाना, नई नई डिजाइनोका बनाना, कही कुछ बनाना, कही कुछ बनाना । यह सब क्या है ? यह सब चक्षुइन्द्रियके विषय हैं । नेत्रइन्द्रिय के विषयमे यह रत होता रहा है, पर यह यही तो बनेगा ।

गुरु जी सुनाते थे कि सागरमे एक कान्सटेबिल था । वह वेश्यामे आसक्त था । जो कुछ धन-दौलत उसके पास थी सब वेश्याके पास पहुंच गयी । अब वह बडी अवस्थाका हो गया था । अब धन तो वेश्याके पास आ गया । अब उसे क्या परवाह है ? वह अपने घर न आने देवे उस सिपाहीको । कांसटेबिल उसके घरके सामने ही रात-दिन पड़ा रहे । किसीने पूछा—भाई साहब, तुम यहाँ क्यो पडे रहते हो ? कहा—पडा रहता हू । रात-दिनमे कभी तो घरसे निकलेगी ही, देख लूगा । हाय हाय क्या मिल गया ? रात-दिन पडे रहे । वह पदार्थ अपनी जगहपर है । आत्मामे आत्मा है, शरीरमे शरीर है, जो जहाँ है तहाँ ही रह जाता है, हाथमे कुछ आता नही है । यह क्या है ? यह नेत्र विषयके रूपोका अंधकार है ।

कर्णका विषय देखो—कितनी तरहके राग हैं । अभी कोई शब्द हो, सुन्दर गायन हो, तो यह संगीत सुनने चला कि कुछ सुन लें । देहातोमे रद्दी आलाप होते हैं उनको सुननेकी भी इच्छा होती है । सपेरा बीन बजाता है वह भी सुहाती है । हर तरहके जो सुहावने शब्द सुनाई पडते हैं वह भी सुहाते हैं । यह क्या है ? यह कर्णोंके विषयोकी रति है । यह विषयो का अधकार है । मनको देखो विषय उसका सबसे बडा है । मन चाहता है कि इतना धन वैभव रहे, किसीसे पीछे न रहू, आगे बढू, यह सब मन सोचता रहता है और ये ही विकल्प जन्ममरणके चक्रमे डालनेको प्रेरित करते है । जैसे कलकत्ताकी सोच लें तो सोचनेमे देर नही लगती है । एक मिनट भी नही लगता, आधा मिनट भी नही लगता, एक सेकेण्ड भी नही लगता । मनमे इच्छाएँ की कि हमे फलां चीज खाना है, फलां चीज पहनना है तो यह सोचने मे देर नही लगती है । यह है मनका विषय और जो पच इन्द्रियोके विषय हैं वे भी मनके विषय बन गए । ये मन वालेके विषय तो पंचइन्द्रियोके विषयोमे भी मनके साथ सदा चला करते हैं । ऐसे जो विषयोमे अधेरा है जो कि अज्ञान स्वभावसे उत्पन्न होता है, उस अंधकार को नष्ट करके अपने आपको सुखी करूँ, इस अंधकाररूप अज्ञानको दूर कर ज्ञानके द्वारा इस कर्मको जलाऊँ, कल्पनाएं करके दुःखी हो गया, फिर कल्पनाएं ही करके सुखी हो गया, आत्मध्यानसे आनन्दमय हो गया । कुछ लेना पड़ा न कुछ देना पड़ा, न कुछ खटपट पड़ी केवल अपना ध्यान बना लिया, सारे दुःख मिट गए ।

देखो—दुःख तथा सुख हैं क्या ? केवल कल्पनाएं बना लेते हैं । मैं इन कलकोंसे

रहित विषयकषायोके बन्धनसे रहित शुद्ध ज्ञानस्वरूपका अनुभव करूं और अपने शुद्ध ज्ञान तत्वमे रमकर इन कर्मोंको जलाऊं। यही ज्ञानावरणादि कर्म आत्माके साथ रम गए हैं ये कैसे दूर होगे ? इसका उपाय केवल यह है कि सबसे निराला, शुद्ध, ज्ञानमात्र अपनेको पक्का जानूं तो उपयोग बनानेका यह काम हो सकेगा। यह कर्म बाहर हो जाते है, शुद्ध स्वभाव वाला मैं प्रेक्टिकल हूं तो कर्म बाहर हो जाते हैं। केवल बोलीके सुननेसे कर्मोंमे असर नही होता है। जितने भाव बने हैं शुद्ध अशुद्ध उन भावोसे कर्मोंमे असर होता है। यदि शौकसे नाना ज्ञान सीखे तो यह तो मनका विषय बन गया, पर विषयकषायोमें फर्क है। इस मनके विषयके भीतर आत्मनिर्णयकी भावना साफ है और दुनियाके विषयोमें केवल मनको बुरा लगनेकी बात है। इतना ही अंतर है तो इन सब विषयकषायोंको तरंगोसे पर जो ज्ञायकस्वरूप शुद्ध आत्मतत्व है उस ही रूप अपनेको मानो, ऐसा ही उपयोग बनाओ। बस यह ही कर्मोंको बाहर करनेका उपाय है। कर्म और तरहसे अलग नही हो सकते। कर्म अलग है; धर्म भी करें, पूजा भी करें, भक्ति भी करें, दान भी दें, सब कुछ करें, मगर जितने अशोंमें भाव निर्मल है उतने अंशोमे काम हो रहा है। इसी कामके होनेसे सब कुछ मिल जाता है। क्रोध, मान, माया, लोभ ये तीव्र कैसे होते है ? अधिक क्रोध किसे कहा जाय ? पदार्थोंकी बातमे क्रोध बढ़ें उसे अधिक क्रोध कहा जाय। धर्मके कार्योंमे क्रोध बढ़े तो तीव्र क्रोध है। धर्मधारणा करके क्रोध बढे तो जैसे मुझे किसीने छू लिया अभी हम स्नान करके आए। धर्मका कार्य समझते हुए क्रोध करना तो यह तीव्र क्रोध हुआ। धर्मके इस प्रसगमे क्रोध साफ हो जाना चाहिए था। क्रोध तीव्र कैसे हो रहा है ? धर्मधारणा हो जाय तो क्रोध ठहरेगा नही।

मानकी बात भी देखो—एक आत्मा ऐसी है कि धर्मके होनेके कारण अपनी सभी इज्जत मान रहा है—यह तो हुआ उसका घमंड। गरीबसे धनी हो रहे हैं, धनको और जोडना चाहते हैं। एक आदमी ऐसा है जो पूजा उपवास आदि धर्मका काम करके अपनेको धर्मात्मा जानता है, यह अधिक घमंड हुआ। धर्मके काममे छल-कपट करना तीव्र माया है। धर्मके काममें लोभ करना तीव्र लोभ है। कोई पुत्र आदि बीचमें बीमार हो जाय। पांच सौ रु० मासिक उसमें निकल जायें, ६ मास पड़े ही रहे। यह सब करनेसे वह मोह कर रहा है। अपने पुत्रके लिए दवा कर रहा है कि ठीक हो जावे, उसमें भी मोह है। किसीका मोह किसी जगहपर उतरता है और किसीका अन्य दूसरी जगहमें। लोभ परिवारमें हो जाता है। जितना भी करते है वह सब अपने परिवारके लिये करते हैं, वे अपने परिवारके लोगोको ही सर्वस्व समझते हैं तो यह धर्म नही हुआ। इसमें लोभ है।

हे आत्मन् ! तेरा स्वरूप शुद्ध ज्ञायकस्वरूप है। अपने ज्ञानानन्द स्वभावको देखो। एक पुरुष पिताके खूब गुण गाता है, पर पिताकी आज्ञाका पालन नही करता है। पिताके भीतर होने वाली इच्छाओका आदर नही करता है और एक पुरुप वह है जो पिताकी आज्ञा पालन करनेके लिए तैयार है तो बतलाओ कि कौनसा पुरुष अच्छा है व भक्त है ? पुरुष वही अच्छा है जो पिताके गुणानुवाद तो नही गाता, पर पिताकी आज्ञाका पालन करनेके लिए तैयार है।

एक आदमी ऐसा है जो भगवानको दस बार पूजा करता है और भगवानको हैरान कर डालता है और एक पुरुष ऐसा है जो केवल भगवानका स्मरणमात्र कर लेता है, शुद्ध-स्वभावका ध्यान करता और भगवानका हुक्म मानता है तो बताओ कौन भक्त है ? भक्त वह है जो भगवानका हुक्म मानता है। भगवानका हुक्म यह है कि अपने आपको ज्ञानमात्र, सबसे निराला, शुद्ध ज्ञायकस्वरूप समझो। अब सोचो मैं अज्ञानसे उत्पन्न होने वाले अंधकारको नष्ट कर ज्ञानमात्र, आनन्दमय अपने आपको देख करके ध्यानरूप अग्निके द्वारा इन कार्योंको जलाऊँ और निष्कलंक होकर अपने आपमे अपने आप सुखी होऊँ।

रागादि पीडयेत्तावन्नाविष्टो ज्ञानसागरे।
अतो ज्ञानेऽवगाह्याह्ं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-६०॥

यह रागादि जीवोको बडी पीड़ा दिया करते है। देते हैं तो दें, कब तक देंगे ? यह तब तक ही पीडा देंगे जब तक कि मैं ज्ञानसागरमें डूब न जाऊँ। यह कर्म तब तक जीवको सताते हैं जब तक कि वे ज्ञानसागरमे नही डूब जाते। जैसे धूपसे पीडित मनुष्यको गर्मी तब तक सताती है जब तक उसको छाया प्राप्त नही होती। जब तक ज्ञानमे ज्ञान नही प्रवेश करे तब तक सतोष कैसे प्राप्त हो सकता है ? जब तक ज्ञानसागरमे डूबे रहे तब तक रागादि सताप नही रह सकते है। ज्ञान दो किस्मके है ? एक आत्माका ध्यान और दूसरा परवस्तुवो का ध्यान। परवस्तुवोकी कल्पनाओसे दुःख होता है और अपने स्वरूपका ध्यान करनेसे दुःख दूर हो जाते है। लेना-देना कुछ नही है केवल परिणामकी बात है। सुख दुःख आनन्द होना केवल भावोके परिणामकी बात है। देखो इतनी बडी समस्या, इतनी बडी प्रोबलम केवल एक विचार परिवर्तनसे ही हो जाती है तथा हल भी हो जाती है। कम धन होनेसे दुःख होता है। रोजगार करते हैं, यह करते हैं, वह करते हैं, कितने ही यत्न करते हैं, पर उनसे यह समस्या हल न होगी। घर आदिकी समस्या बाह्यसचयसे हल न होगी। लडकोको वशमे रखना, कुटुम्बको बांधकर रखना, परिवारमे रहना, इन सबसे घरकी समस्या हल नही हो सकती है। इस समस्याका हल विकारके तिरस्कारसे तथा स्वभावके दर्शनसे होगा। स्वभाव-

दर्शन क्या है ? जैसा खुदका स्वरूप है तैसा उपयोग बन गया, यह स्वभावदर्शन है । इसीसे समस्यायें हल होगी । कैसा है यह अपना स्वरूप पहले तो सबसे निराला, किसीसे मिला-जुला नही । अपनी स्वतन्त्र सत्ता रखने वाला, अपने आपके स्वभावको अपने आपके अस्तित्वमे लिए हुए हू, यह भाव मात्र है; उसमे कुछ खटपट नही, उसमें कोई झंझट नही । इस मुझमे लेने-देनेका कुछ नही मिलेगा, केवल भावमात्र हू । ज्ञानभावमात्र, आनन्दमात्र हूं । रंच भी दूसरे पदार्थके साथ सम्बंध नही है, मगर जहाँ मोह उठता है तो वह साराका सारा कैसा मालूम पड़ता है ? यह मेरा लडका है, यह मेरा घर है, यह मेरा परिवार है, जिसमे उछल-उछलकर रहता है । विपदाओका कारण यह मोह है, नही तो मैं आनन्दानुभव वाला तथा सबसे निराला हू ।

आत्मा स्वयं ज्ञानघन है, आनन्दमय है, पर मोह ऐसा गंदा विष है कि अनहोनीको होनी बना देना चाहता है । मोह ही तेरे दुःखका कारण है । दूसरा तेरे दुःखका कारण क्या है वह बतला ? अरे दुःखका कारण दूसरा नही, मोह ही दुःखका कारण है । यह मेरा है, यह उसका है, यह क्या है ? यह मोह ही तो है । अरे यदि यह मोह हट जावे तो दुःख भी हट जावेंगे । ये सब यहीके यही रह जावेंगे । जिनमे तू मोह कर रहा है वे भी नही रह जावेंगे, तू भी नही रहेगा । रहेगा तो हमारा स्वरूप ही साथ रहेगा । रागादिभाव पीडा देते हैं तो दें । अरे यह पीड़ा ही क्यो देंगे ? यह तेरेको तभी पीड़ा दे सकते है जब तक तू ज्ञान संसारमे डूबकर प्रवेश न कर जाय । तू जिसको जान रहा है उससे ही तुझे दुःख होते हैं । अरे तू इनको न जानकर अपनेको जान । परिवारके छोड़नेका क्या दुःख ? अगर तेरा ज्ञान परिवारमे लीन हो गया तो दुःख होगे और अगर तेरा ज्ञान याने तू ज्ञानसागरमे डूब गया तो सुखी रहेगा । दुःख तो तुझे तब होगे जब तेरा मोह, तेरा लगाव उनसे होगा । जैसे कहावतमे कहते है कि तुम्हे आम खानेसे काम कि पेड़ गिननेसे, तुम्हे आनन्दसे काम है या लड़को, बच्चोसे काम है ? तुम्हे यदि लड़को, बच्चोसे आनन्द मिलता है तो उनसे ले लो या अपने आपसे मिलता है तो अपने आपसे ले लो । आनन्द तो इस आत्मामे है । यदि आत्मामें ही दृष्टि रहे, आत्मामे ही झुकाव रहे तो सुखी रहेगा । दुःख तो तब है जब तेरा झुकाव परमे होगा, मोहमे होगा कुटुम्ब परिवारमे होगा । यदि आप अपने ख्यालको अपने कुटुम्ब परिवार से छोड़ दें तो दुःख कैसे होगा और यदि अपना लगाव अपने कुटुम्ब, परिवार, धन-वैभव आदिमे होगा तो तुझे दुःख होंगे ।

देखो भैया ! बाहरी बातोंमे क्या रखा है ? यदि तू धनी है तो ज्यादासे ज्यादा क्या

होगा कि दो चार मोही पुरुष यह कह देंगे कि यह बहुत धनी है। करोडोका धन जोड लिया और इसका फल क्या मिला कि केवल दो-चार मोही यही कहेंगे कि यह बडा धनी है और तुझे तो पेट भरना है और दो कपडे पहिनने हैं। इतना ही तो यहाँका काम है। इससे ज्यादा और क्या काम है ? तूने इतना श्रम करके, मिथ्या बन करके करोड़ोका धन एकत्रित कर लिया है। उसका परिणाम केवल इतना है कि दो चार मोही यह कह देंगे कि यह धनी पुरुष है। इतना फल है। कितनी मेहनतकी, रात-दिन चिन्ताएँ रही, विपदायें रही, यह चिन्तायें और विपदायें केवल इस प्रयोजनपर रही कि मोही पुरुष दो शब्द बोल दें। वे मोही ऐसे हैं जिन्हे अपनेका ख्याल नही है, जो गदे हैं, मोही हैं, संसारमे घूमने वाले हैं, संसारका पता भी नही है और ममत्वमे फँसे हुए हैं। ऐसे ही दो-चार व्यक्तियोके द्वारा उसे प्रशंसा मिलती है। इतना परिश्रम करनेपर हे ससारके प्राणी ! तेरेमे इतनी ही भूल भरी रहती है, नही तो धर्म का मार्ग गृहस्थोके लिए बिल्कुल सीधा है। अपनी दिनचर्यामे ६ घटेका काम करनेको दिया तो ज्यादासे ज्यादा ८ घटे काम करो। अपनी दुकानमे इतना ही समय दो और जो कुछ पुण्यके अनुसार मिल जावे उसका ही हिसाब लगाकर, व्यय कर संतोष प्राप्त करो। जो कुछ आमदनी हो जावे उस ही मे संतोष रखो। चाहे चना नमक खाने भरको ही हिस्सेमे आवे, उससे ही सतोष प्राप्न करना चाहिए और उसी स्थितिमे भी अपनी धुनको धर्ममे लगाना चाहिए। इतनी हिम्मत हो कि न्यायसे काम करूंगा चाहे कुछ मिले अथवा न मिले। अपने सादे कपड़े पहिनकर धर्मके गुणानुवादमे, स्वरूपके ध्यानमे अगर मन लगता है तो वह सुखी है। उसके चाहे खराब दिन भी आवें तो परवाह नही है। वह उत्साहसे कार्य करेगा, वह आनन्दमग्न होगा। यदि इन लुटेरोमे ही उपयोग बना तो दुःख होगा। यह तो सब घसीटे खचोरे हैं। इन सबमे तू अपना उपयोग न बना। नही तो तुझे दुःख होंगे। यहाँ जो कुछ आया है वह सब मिट जायगा। यह मालूम होते हुए भी यह मोही प्राणी केवल उन दो मोही प्राणियोके दो शब्दोको सुनना चाहता है। उसीके खातिर वह अनेक विपदायें सहन किया करता है। अपनेको पीड़ा दिया करता है। यह धनका राग उसे दुःख देता है। उसमे क्लेश उत्पन्न कर देता है।

जैसे कोई बच्चा अपनी माँके पास बैठा हुआ है। बच्चा अपनी माँ से यह कहेगा कि वहाँ चलो, वहाँ बैठो, वह लाओ और यदि माँ नही करेगी तो बच्चा अपना मुँह घुमा लेगा, रोवेगा, जमीनमे लेट जावेगा। केवल इतनी बात पर कि मेरी बात नही रही, माँ ने कहना नही माना। माँ से वहाँ चलने के लिए कहा, नहीं गयी, केवल इतनी ही बात है। बच्चा कितना उपद्रव करता है ? इसी प्रकारसे यह मोही प्राणी मायामे पड़कर दूसरोंसे

दुश्मनी कर डालते है। कौनसी बातका असर है जो दुश्मनी कर डाली। निजी चीज जिसे मानी वह भी निजी नही। यदि पूछा जाय कि दुश्मनी क्यो कर डाली तो यही कहेंगे कि मेरी बात नही रही। ये रागादि विकार करके दुःखी होते हैं। ये रागादि विकार कब तक दुःखी करेंगे जब तक कि ज्ञानसागरमे हम डूब न जावें। राम, लक्ष्मण, सीता इत्यादि महान् आत्माओके जीवन चरित्रको देखते है कि जब तक इन्होने संन्यास नही धारण किया है, त्याग नही किया है तब तक दुःखी रहे है परन्तु अन्तिम जीवनमे उन्होने त्याग किया, संन्यास किया तो उनका जीवन सुखी हुआ। आज उन्हीकी महिमाका गुण गाया जाता है। जब तक कि इन आत्मावोका जीवन घरमे ही व्यतीत हुआ है तब तक उनकी कोई कीमत नही थी परन्तु अपने अंतिम एक चौथाई जीवनमे ही संन्यास धारण कर अपने जीवनको सफल बनाया। जब तक वे अपने घरसे न निकले थे, पालनेमे भूला भूलते थे तब तक उनके गुणोका गान न होता था। परन्तु जब अपने घरसे निकलकर संन्यास हुआ तो उनके गुणोका गान हुआ और वह मोक्ष गए। इस कारण पुराना जो घरेलू जीवन था उसके चारित्रके भी गुण गाये जाते हैं। इसी तरह तीर्थंकर भी जब तक अपने घरमे रहते थे तब तक उनके गुणोका वर्णन नही होता था परन्तु बादमे चरित्र निर्मल हुआ, अपने आपमें रमे, अपने घर बार स्त्री आदिसे विमुख हुए और अपने जीवनको सफल बना सके। निर्वाण पधारे तब पुराना सारा जीवन प्रभु भक्तिकी पद्धतिमे आ गया।

हे जगत्के प्राणी! इतना जीवन गुजर गया और इस इतने जीवनमे बहुतसी बातें रही। उन उन बातोंमे क्यों रोते हैं? अब इस अपने इतने ही कारण वह मर गये। अनेक लोग उनके गुण गाने लगे कि जीवनको संभाल लें तो कल्याण है।

राजा श्रेणिक पहले तो मांस भक्षी थे, अञ्जन चोर आदि थे, वेश्यामें आसक्त थे, अत्यन्त दुराचारी थे। बादमे उन्हे ज्ञान मिला। उस ज्ञानके ही देखो यह कितने मांसाहारी थे और तर गए। बादमे उनकी महिमाका गुणगान हुआ।

उदयसुन्दर अपनी वज्रभानु स्त्रीमे अत्यन्त आसक्त था। वह मोह मायामे अत्यन्त लीन था। वे रास्तेमे मुनिमुद्राके दर्शन करके विरक्त हो गए। तबसे ही उनके गुणोका गान किया जाता है। लोग बादमे कहने लगे कि वाह, वह कैसे थे? अशुद्ध थे, शुद्ध हो गए। अच्छा चरित्र बनने पर पहिले चरित्र भी किसी रूपमे भावानुवादमे आ जाते हैं। हे आत्मन् तू अपने रागादिसे उत्पन्न दुःखोसे क्यों रोता है? तूने ही तो इन दुःखोको बनाया है। यह तेरे रागादि भाव तब तक तुझे पीड़ा देगें जब तक तेरी आत्मामे ज्ञान प्रविष्ट नही होगा। तू अपनी आत्मामें ज्ञान प्रविष्ट कर अपने आनन्दस्वरूपको निरख। इसीसे तेरे समस्त क्लेश

समाप्त हो जावेंगे । यदि तुम्हे आत्मस्वरूपमें आनन्द मिलता है तो उसमे झुको और यदि दुनियाके परपदार्थोंसे आनन्द मिलता है तो उनमे झुको । यदि तू अपने निजस्वरूपसे आनन्द प्राप्त करेगा तो तुझे आनन्द प्राप्त होगा और शांति मिलेगी । यदि बाह्य पदार्थोंसे आनन्द प्राप्त किया तो उसमे अशांति ही अशांति रहेगी । जिस काममे दो-चार वर्ष तक टोटा ही टोटा रहे तो उसको बुद्धिमान व्यापारी बदल देता है । इस बाह्य आनन्दमे ही यदि तू पडा रहा तो शांति नही मिलेगी । तो तू ऐसे रोजगारको बदल दे । अपने आपके आत्मस्वरूपमे आनन्द प्राप्त किया तो उससे शांति मिलेगी । इसलिए तू ऐसा ही व्यापार कर । यदि तूने एक जन्मकी बातें सही जान ली तो करने योग्य २० बातें खुद ही जान लेगा अन्य १० बातो को बतानेकी जरूरत नही ।

एक घटना है कि बुन्देलखंडमे एक राजा रहता था । वह राजा गुजर गया, उसका पुत्र नाबालिग था । अब वह लड़का २०-२१ वर्षका हो गया । उसकी माँ ने कहा कि मेरे लडकेको राज्य सौप दिया जाय । उसकी माँ ने उसे समझा दिया कि बादशाह जैसा पूछे उसका उत्तर देना । यदि यह प्रश्न पूछे तो यह उत्तर दे देना, यह प्रश्न पूछे तो यह, और यह प्रश्न पूछे तो यह उत्तर देना । इस तरहसे १० बातें माँ ने उसे समझा दी । उस राजकुमारने कहा कि यदि इन १० बातोमे से एक भी न पूछेंगे तो क्या कहेगे ? माँ बोली कि कुछ अपने आप उत्तर दे सकते हो । राजकुमारने कहा कि क्या मुझे कल्पना भी अपनानी होगी ? माँ बोली कि यह तो बडी बुद्धि और प्रतिभाकी बात है । राजकुमार बादशाहके सामने बुलाया गया । बादशाह कुछ नही बोला, उस लडके के दोनो हाथ पकड लिये और कहा कि अब तुम पराधीन हो गए, विवश हो गए, अब तुम मेरा क्या कर सकते हो ? राजकुमारने कहा कि अब क्या है ? अब तो मैं सब कुछ कर सकता हू और अब मैंने सब कुछ कर लिया । जब स्त्रीके साथ शादीमे हथेलवा होता है तो एक हाथ पकड लेनेसे स्त्रीकी जिन्दगी भर रक्षा करनी पड़ती है तो दोनो हाथोंके पकड़नेपर क्या कहना है ? हम तो अब बिल्कुल स्वतन्त्र हो गए । यह सुनकर बादशाह प्रसन्न हो गए और राजकुमारको राजगद्दी दे दी गयी ।

इस कमंडलको कैसे उठाना है, कैसे क्या करना है आदि बातोको क्या सीखना है ? यदि इस यथार्थ बातको समझ लिया तो इतना ही क्या है ? बीसो बातें अपने आप समझमे आ जावेंगी । यदि अपने ज्ञानस्वरूपकी प्रतिमा जग जाय तो सारी बातें आ जाए । यहाँ उपद्रव करने वाले बहुत हैं, मगर ज्ञानसागरमे प्रवेश करने पर कुछ नही ।

गंगा नदीके पानीमे एक जानवर था । आराम करनेके लिए मुह उठाकर पानीके बाहर

थोडा शरीर निकालकर जाता है। चारो तरफसे सैंकडो पक्षी उस जानवर पर हमला करने के लिए आते हैं। वह जानवर थोड़ासा पानीमे खिसक जाता है। वे सब पक्षी बेकार होकर भाग जाते हैं।

ये रागादिक भाव, नाना प्रकारके विकल्प, नाना प्रकारके विचार इस ज्ञानगंगाके बाहर मंडरा रहे हैं। सब हमारे ऊपर हमला कर रहे है। यदि हम जरासा इन रागादिक भावोसे बिलग हो जावें व ज्ञानगंगामे मग्न हो जावें तो ये हमारा कुछ नही कर सकते हैं। जिस प्रकारसे गंगा नदीमे जीवके दब जानेसे सारे पक्षी व्यर्थ हो जाते हैं, सारा उन पक्षियो का परिश्रम बेकार हो जाता है, उसी प्रकार इन रागादिक भावोको जो कि हमे पीडा देते हैं, हम अपनेको ज्ञानमे दबा लें तो यह रागादिक भाव हमारा कुछ नही कर सकते है। जब तक ज्ञानस्वरूपमे ज्ञान नही है तब तक ये रागादि पोडा देते है। सो अब उन मोहियोके दो शब्दोसे हटकर ज्ञानमे ही डूबकर मग्न होकर, ज्ञानके ही स्वरूपको ज्ञानमे देखकर जहाँ ज्ञान ही जानने वाला है, ज्ञान ही जिसमे जाना जाने वाला है याने ज्ञेय होता रहता है और वह जान जानकर ज्ञानी मात्र होता रहता है। इसी प्रकार ज्ञाताज्ञात और ज्ञेयमे भेद नही है। जिसमें भेद नही है उसमे ही यह अद्भुत परम आत्मोनुभवका आनन्द है। जानने वाला तो मैं हू और ज्ञेय बने रहते है दुनियाके अनेक पदार्थ जहाँ, वहाँ तो आकुलता रहेगी और जिनको जानने वाला मैं हूं और मैं ही ज्ञेय बना रहता हू। ज्ञेयको ज्ञानमे जाने, यह है सबसे अच्छा रोजगार, जिसमे तीन लोकका नाथ बना दे यह है विलक्षण व्यापार। किसलिए जान रहे हैं? इसलिए जान रहे है कि इस जाननेके आगे और कुछ प्रयोजन नहीं तो अब इस ज्ञानमे ही प्रवेश करके मैं अपनेमे अपने आप सुखो होऊँ। ये रागादिक उपद्रव तो तब तक होगे जब तक इस ज्ञानसागर निज आत्मतत्त्वमे अपने आपका प्रवेश न हो जाए। यही ज्ञान-योग ज्ञानियोका, योगियोका एकमात्र कार्य है। इस ही से महात्मा होते व महात्मासे परमात्मा हो जाते हैं। करनेको काम केवल एक ज्ञानानुभव ही है। सो अब ज्ञानमे ज्ञानका अनुभव करके मैं अपनेमे अपने आप आनन्दस्वरूप होऊँ।

स्वभावः सिद्धतैते तु पर्यायाः कर्मविक्रमाः।
त्वहं स्वविक्रमं कुर्यां स्यो स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-६१॥

इस आत्माका स्वभाव सिद्ध बननेका है। सिद्धि कहते हैं उसे जिसने अपने आपके गुणोंकी प्राप्ति कर ली है, जिसने अपने आपमे सब कुछ कर लिया है। जो अपना गुण है, अपनी शक्ति है, उसको पूर्ण कर लेनेका आत्मामे स्वभाव है अथवा पूर्ण विकासरूप बन जाने का इस आत्माका स्वभाव है; अनन्तज्ञानी, अनन्तदृष्टा, अनन्तसुखी, अनन्तशक्तिवान् हो जाने

का स्वभाव है। यह ही इस आत्माका विक्रम है, परिश्रम है, करतूत है, शूरवीरता है। पर अन्य जो इसमे पर्याय उत्पन्न होते है जैसे गतिमार्गणामें नारक, तिर्यंच, देव आदि व इन्द्रिय-मार्गणामे एकइन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय और पच इन्द्रियोमे बताया गया है अन्य कषाय, असंयम आदि जो कहा गया है कि वह किसके विक्रम हैं ? ये कर्मके विक्रम है। जैसे निर्मल शुद्ध कांच है वह शुद्ध बना रहे, स्वच्छ बना रहे तो कांचका ही विक्रम हुआ। जैसे कांचको किसीके सामने कर दो या कांचके सामने कुछ आ गया, मानो हाथ ही आ गया तब उसमे हाथ की छाया आ गयी, उसमे करतूत किसकी चल गयी ? हाथकी। तो यह हाथ निमित्त हुआ, हाथका ही विक्रम हुआ, हाथकी ही कलाएँ हुईं। यह एक दृष्टि है, इसी दृष्टिसे देखना चाहिये। इसी प्रकार जीवमे शुद्ध ज्ञानरूप बर्ताव केवल ज्ञानरूपमे रहना, ज्ञाता दृष्टा रहना, यह तो हुआ आत्माका विक्रम और इसमे क्रोध, मान, माया, लोभ, मोह आदि जो कुछ भी विभाव पर्यायें होती है वे सब कर्मके विक्रम हैं। यहाँ यह प्रेरणा लेनी चाहिए कि जो मेरा विक्रम है उस विक्रमको करूँ और कर्मके जो विक्रम हैं उनकी उपेक्षा करूँ। मेरा तो काम है ज्ञाता, दृष्टा रहना। यह चीज कठिन है, ऐसा जानकर भी निरुत्साही नही होना चाहिए। जैसे कि बहुत दिनोसे पढते आए, सुनते आए, कुछ लाभ नही दिखता है, अन्तर नही आता है। भाई बात तो कठिन है, जिस दिन ठीक होना होगा, ठीक हो जायेगा। कोशिश करते रहना है, उपयोग बनाए रहना है, जब होना होगा ठीक हो जायगा।

एक बाबूने एक कोरीको पायजामा दिया। अब वह नही जानता था कि कैसे पहना जाता है ? वह उस पायजामेको कभी कमरमे लपेटता, कभी हाथमे डालता तो कभी गलेमे लपेटता था। इस तरहसे उसने बहुत बहुत काम किये। एक समय उसने पायजामेका पैर अपने एक पैरमे डाला और पायजामेके दूसरे पैरको भी अपने दूसरे पैरमे डाला। अब पाय-जामा झट ठीक ढंगसे बन गया। उसकी समझमे आ गहा कि ऐसे पहिना जाता है। इसी तरह जो पढते है, सुनते हैं, कोशिश करते हैं तब भी बात फिट नही बैठती है। बात यदि फिट नही बैठती है तो न सही। कोशिश करना बन्द न करो। किसी दिन परद्रव्यकी अपेक्षा हट जायेगी और अपने आपमे सहज विश्राम पाने लगोगे। अपने आपका सहज अनुभव हो जायेगा कि यह बात है, यह प्रभुके स्वभावका मर्म है। मैं तो अपना विक्रम करूँगा। चीटी चढती है तो चढती ही चली जाती है। कभी-कभी गिर भी जाती है, फिर भी हिम्मत नही हारती है। वह ऊपरको चढती ही चली जाती है। बार-बार करनेके लिए काम यह है कि परमे उपेक्षा और आत्मामे दृष्टि हो और कुछ करने लायक काम नही है। धन कमाया है, चला जायेगा या अतमे मृत्यु हो जायेगी।

एक आदमीका भाई मर गया, पढ़ा-लिखा था। दूसरे लोग आकर पूछते हैं, सहानुभूति दिखाते हैं। कैसे परिणामोसे तुम्हारा भाई मरा ? आदमी बोलता है कि क्या बतायें, मेहनत करके बी. ए. किया, नौकर हुआ, पेन्शन मिली और अंतमे चले गए। भाई नौकरी करता था और अपना परिवार चलाता था। कितना बडा कार्य किया ? आज वह मर गया। जगत्के सब जीवोको ऐसा होता है कि नौकरी की, धन-वैभव जोडा, मर गए और चले गए। जीवनको छोड़कर अन्य योनियोमे पहुंच गए। आत्मप्रभुके, आत्मस्वभावके दर्शन हो तो परिश्रम सफल है। आत्मस्मरणसे जो आत्मसंस्कार बनता है उसका संस्कार तेरा भला करेगा, अन्यथा नही। कितनी दृष्टि फँसी हुई है ? घरके चक्कर, परिवारके चक्कर, यह काम, वह काम इत्यादि अनेक प्रकारसे दृष्टि फँसी हुई है। ये सब तेरे रक्षक नही। तेरा तो रक्षक अंतरस्वरूपका दर्शन है। जैसे रोते हुए बालकको किसी खिलौनेमे रमा दें तो उसका रोना बंद हो जाता है। इसी तरह दुःखी होते हुए इन प्राणियोंको जब कभी अपना खिलौना मिल जाये, चैतन्यस्वभावके दर्शन हो जायें तो यही मोक्षका मार्ग है, शान्तिका मार्ग है। यह कोई कठिन बात नही है। इस ही स्वरूपमे इस तरहका उत्साह लग जाये, अपने खिलौनेमे लग जाये तो सारे क्लेशके रास्ते ही उसके बन्द हो जाते हैं। यह अमोघ उपाय है। जैसे रेल, मोटर चलती है तो उनके जो यंत्र बनते है, घुमा दें, तेज चला दें, धीरे चला दें, जरासा दबा दें तो तेज चल देते हैं और यदि निःशंक होकर और थोडासा दाब दें तो अधिक तेजीसे चल देती हैं। जो चलने वाले यंत्र हैं उनको जरासा स्टार्ट कर देते हैं तो चल देते है। उनको चलानेके जो प्रयत्न है वह व्यर्थ नही जाते हैं।

इसी तरह आत्मस्वरूपका दर्शन भी ऐसा उपाय है कि अगर प्रयत्न करें तो व्यर्थ नही जाता है। परिणाम तो करता, स्वभावमे दृष्टि तो करता, श्रद्धा तो बनाता, प्रतीति तो बनाता है। मेरा तो रक्षक मैं ही हू। दूसरा कोई मेरा रक्षक नही है। मैं अपने प्रभुको पहिचानूँ तो मेरा रक्षक मैं ही हूं, मेरा शरण मै ही हू। मैं अपने परिणामोको पहले देखूँ। कर्म जो कुछ विक्रम करते है तो करने दो। मैं अपने विक्रमको करूँ, अपना पुरुषार्थ आप करो, कर्मका विक्रम होने दो। अपना पुरुषार्थ यह है कि अपने शुद्ध ज्ञायकस्वरूपको देखो। कर्मके विक्रम कषायादिक हैं, वह चारित्रमोहमें होने दो। आत्मस्वरूप दृष्टिका काम करे, कर्म चारित्र मोह करे, जीवके विक्रम और कर्मके विक्रममे होड लगने दो। तू अपने उपद्रवको समाप्त कर। जब तू अपना उपद्रव समाप्त करेगा तभी तेरा कल्याण होगा। हे प्राणी, तूने तो कल्पना बना ली। अपने परिवारको, अपने कुटुम्बको अपने सामने रख लिया और जन्ममरणका चक्कर ले लिया। मैंने तो अपने आपमे यह विक्रम लगाया है। अपने आपको

शुद्ध ज्ञायकस्वरूप, ज्ञानमात्र, जाननस्वरूप, जो केवल जानता है, जानना ही जिसका स्वरूप है, जो परपदार्थोंसे भिन्न है, किसी अन्यसे सम्बन्ध नही है ऐसे उपयोगमे हमे लगना है। यह प्रथम चीज है, इससे ही मेरेमे आनन्द आता है, इसके बिना गुणोका विकास नही। इस प्रकारका ध्यान बनाकर ज्ञानी जीव अपने को ज्ञाता द्रष्टा बनाये रहनेका अपना विक्रम करते हैं। क्रोधका उदय वहाँ नही है, अन्य प्रकारके विकार भी वहाँ नही है। इसमे मोह नही है, दुःखोसे रहित है। जहाँ पर मोह, मान, क्रोध, माया, लोभ हैं वहाँ पर विपत्तियाँ है। वे अपना विक्रम कर रहे है और यह अपना विक्रम कर रहा है।

देखो एक जानवर है कछुवा। उसे कोई सताए तो वह अपना मुँह भीतर दबा लेता है। और यदि वह अपना मुँह भीतर दबा ले तो वह भीतर ही घुस जाता है। केवल ढाँचा पडा रहता है, मुँह भीतर पडा रहता है। कछुवेका बाकी शरीर तो कडा रहता है, उसको चाहे ठोकते रहो, पीटते रहो परन्तु वह सुरक्षित रहता है। यह तो उदाहरणकी बात है। इसी प्रकार हमारे ऊपर चाहे जितनी आपत्तियाँ आयें आने दो। हमारे पास तो ताकत है, हम अपना विक्रम करें, अपने विक्रमको हम भीतर ले जाए और स्वरूप मात्र, आनन्दभाव मात्र अपने स्वरूपको निरखें। यहाँ तो मेरा कुछ नही है। मैं ज्ञानमात्र हू। क्रोध, मान, माया, लोभ, इत्यादि मेरेमे नही हैं, पर मेरे हो जाते हैं। कर्मका विक्रम है होने दो। मैं अपना विक्रम करूं अर्थात् ज्ञाता-द्रष्टा रहू और अपना विक्रम करके अपने आप सुखी होऊं।

करनेका एक यह ही काम है कि मैं अपना विक्रम करू परन्तु वह करनेमे नही आ रहा है। अपनी कमजोरीसे अपने भावोको ढीला कर दिया, मनको ढीला कर दिया तो हम स्वच्छन्द हो गए। अपने मनके स्वभावके दर्शन कर लिए तो उत्साह हो गया। मुझे क्या करना है? मैं तो कृतकृत्य हू, मेरा तो कृतकृत्यके अतिरिक्त और काम ही नही पडा है। कौनसा काम पडा है? अमुक अमुक। अरे वह तो मेरा काम ही नही है, वे प्रत्येक द्रव्य तो अपने आपमे परिणमते हैं। उनमे मेरा कुछ नही है, मैं कृतकृत्य हू मैं जो कुछ करूंगा वह यही [illegible] जानना चाहिए, ज्यादा जान जाऊंगा। चेतनाका चमत्कार है, केवल जानता हू, प्रति[illegible]स्वरूप हू, मैं इतना मात्र आत्माका मर्म हू। अपनी शूरवीरतासे हटे तो दुनियाके सभी पदार्थोंसे मुझे दुःख है, हम दुःखके कारण बन जावेंगे, और यदि हम प्रबल रहे तो दुनियाके कोई भी पदार्थ मुझे दुःखी नही कर सकते हैं।

कभी देखा होगा कि जब बच्चे अथवा कोई भी कहते हैं कि पीठपर मुक्के लगाओ, जितने लगा सकते हो, लगाओ। उस बच्चेकी हिम्मत बडी हो जाती है। वह पीठ कड़ी कर

लेता है और सांस भर लेता है, वह मुक्के लगवा लेता है, सह जाता है, उसे क्लेश नही होता है। उनकी बात क्या कहे ? जो व्यायाम दिखाने वाले होते हैं, अपनी छातीपर से हाथी का पैर रखवाकर निकलवा देते है, वे भीतरसे तैयारी कर लेते है, इस कारण उन्हे दुःख नही होता। उनका दिल कडा बन जाता है, वे क्लेश महसूस नही करते है। इसी प्रकार यदि भीतरके मनको कड़ा बना लिया जाय, संयम कर लिया जाय तो यह जानना ही तो है ना। अरे मैं तो जान गया, जानना ही तो मेरा स्वभाव है, मैं तो अपने आपके ज्ञानस्वरूपको जान गया। ऐसी कडी हिम्मत कर लो तो जो विपदाएँ भी आती हैं वे चली जाती हैं। इन विपदाओंका मुझ पर असर नही होगा, अपने विक्रममे रहे तो कर्मके निक्रमसे विपदाओंका असर न होगा। ढीले-ढाले बैठे हैं, भीतरसे कोई तैयारी नही है और यदि कोई मुक्का लगा देवे तो अत्यन्त दुःख होगा। इसी तरह ढीला-ढाला शिथिल मन पडा हुआ है तो यह असर करता है। यह आत्मा खुद ही बाहरी चीजोका निमित्त पाकर अपने आपमे आपका असर डाल लिया करता है। जैसे कहते है कि खुद तो जगते नही, खुद तो स्वाधीन नही होते और कहते है कि स्टेशन लुटेरा है। अरे खुद जगते रहो, कौन लूटेगा ? इसी तरह हम खुद स्वाधीन नही होते, नाम लगता है घरका, गृहस्थीका, धनका, वैभवका। इन चीजोने तो उसे लूट लिया, बरबाद कर दिया, फांस लिया। नाम बदनाम करता है परपदार्थोंका, यो ही देखनेसे उस अज्ञानीको दुःख हो रहे हैं। दुःख तो कोई चीज ही नही है। दुःखोका तो केवल नाम ही नाम है। ऐसी कल्पना करो कि जहाँ यह जचे कि दुःख कोई चीज नही है, तब सुख होगा।

तीन चोर थे। चोरी करने जा रहे थे। रास्तेमे एक नया आदमी मिला, बोला—कहाँ जा रहे हो ? बोले—चोरी करने जा रहे है। उसने कहा कि इससे क्या होगा, बोले—धन लूटेंगे, अगर धन लेना है तो तुम भी चलो। नया व्यक्ति साथमे चल देता है, वह यह नही जानता है कि घरमे कैसे घुसा जाता है और कैसे बाहर निकला जाता है ? घरके अन्दर सब घुस गए, एक बूढे आदमीने खांस दिया। वे तीन तो भाग गए, अब वह नया आदमी भागना नही जानता था, उसने और कुछ न सोचा, घरमे जो ऊपर कडी लगी हुई थी उसपर जाकर बैठ गया। गाँवके बहुतसे लोग एकत्रित हो गए, हल्ला मच गया, वहाँ दसो आदमी थे, सभी तरहके सवाल होते थे। घरके मालिकने कहा कि हम सब बातोको क्या जानें, ऊपर वाला जाने। उसके कहनेका तात्पर्य भगवानसे था कि भगवान जाने, पर उस छिपे हुए नये चोरने यही समझा कि यह मेरे लिए कह रहा है। उसने सोचा कि मैं पकड़ा न जाऊ, इसलिए बोला कि क्या मैं ही जानूं, वे तीन आदमी क्यो न जानें ? अब वह नया चोर पकड

लिया, बाँधा गया, मारा-पीटा गया, बन्द हो गया ।

महावीर उसने केवल कल्पना ही तो की थी कि यह मेरे लिए रहा है, इसलिए पकड़ा गया, मारा गया और बन्द कर दिया गया । अब मुझे अपने आपको उठाना है, इसमें विक्रम यदि चलते है तो अपने विक्रमको करूं, ज्ञाता द्रष्टा बनूं, इसके आगे हमें कुछ नहीं चाहिए । क्योंकि कुछ मिलेगा नहीं पर से । उनका परिणमन उनमें है, हमारा परिणमन हमारेमे है । जो कुछ मुझे ज्ञान होता है वह मेरेमे मेरेमे होता है । जो मुझको आनन्द प्रकट होता, वह आनन्द मेरेसे मेरेमे प्रकट होता है, दूसरा निमित्त नहीं, दूसरा न्याय नहीं, फिर किस बातकी आशा करते हो ? अपनी अन्तरदृष्टि बनाओ कि जैसी उसकी प्रतिमा है वैसे मेरी प्रतिमा है । सब अपनेमे है, मैं अपनेमे हू । इस प्रकारसे वस्तुके स्वरूपको निरखना यही पुरुषार्थ, यही विक्रम है । एक शुद्धज्ञानका पुरुषार्थ करके अपनी इन सब वासनाओको दूर करो, जो जो संस्कार भरे हुए है, जो जो वासनाएं भरी हुई है, जो-जो क्रोध मान, माया, लोभ इत्यादि भरे हुए है उन सबको अपने पुरुषार्थसे अपने विक्रमसे दूर करो ।

एक साप था । उसने यह विचार किया था कि मैं किसीको सताऊगा नही । वह शात था, सुबह उस घरमे बच्चेको एक कटोरा दूध दिया जाता था । वह बच्चा अपने सामने कटोरा रखे हुए दूध पी रहा था, इतनेमें साँप आया और उस कटोरेसे दूध पी लिया । उस बच्चे ने साँपके कई थप्पड मारे, पर साँपने सहन कर लिया । खूब दूध पीकर वह मस्त हो गया । इसी तरह वह नित्य प्रति दूध पीकर मस्त हो रहा था । दूसरे साँपने कहा कि तुम क्या खाते हो जो कि मोटे-तगडे हो रहे हो, उसने कहा कि तुम इसकी कला नही जानते हो । मैं नित्य प्रति बच्चेको पिलाया जाने वाला दूध पी लेता हू, बच्चा मुझे मारता है और मैं क्षमा करता रहता हू, थप्पड सहन करता रहता हू, खूब दूध पीता हू । दूसरा साँप बोला कि मै भी ऐसा ही करूँगा । पहलेने कहा—कैसे करोगे ? बोला कि मैं सौ थप्पड तक क्षमा कर दूगा । सवेरा हुआ बच्चेके लिए दूध आया, दूसरा साँप बच्चेका दूध पीने लगा, बच्चेने एक थप्पड मारा, दो थप्पड मारे, दस थप्पड मारे, पचास थप्पड मारे, निन्यानवे थप्पड मारे और सौ थप्पड मारे साँप सब सहन करता गया । जब उस बच्चेने एक थप्पड और मारा तो झट उस सर्पने फुंकार मारी । अब उस फुंकारको सुनकर सब लोग उसके ऊपर टूट पडे और उन्होने उसे मार डाला । वह सर्प मनमे वासनायें भरे हुए था कि मैं सौ थप्पड तक सहन करूँगा, आगे नही । इस वासनाके ही कारण वह मारा गया ।

अन्तरमे कषाय, विषय जो भरे हुए हैं, वे सब परेशान करते है । लोग कहते हैं कि

जब जाप करते है तो दसो जगहो पर मन जाता है और अगर अपनी दुकानपर रहते है तो एक ही जगह पर मन रहता है। इसलिए जापसे अच्छी तो मेरी दुकान है। अरे, दोनो एक ही जगह हैं, संस्कारसे कर्मबन्धन हुआ करते है। यह न समझो कि दुकानपर बैठनेसे उपयोग दस जगह नही जाता, सो कर्मबन्ध नहीं होता। जैसी वासना है, वैसा बंध है। बात तो बल्कि यह अच्छी समझनी चाहिए कि जो नाना विषय कषाय भरे हुए है उनको जापका प्रसग सब बतला देता है। अब ज्ञानोपयोग करके उन विषयकषायोको निकाल दो, अब यह करना चाहिए कि अपने ज्ञानस्वभावका, ध्यानका, मननका, चिंतनका विचार तो करना ही चाहिए और वासनाओका, कषायोका तिरस्कार करना चाहिए। यही मेरा विक्रम है कि मैं ज्ञानस्वरूप रहू और अपना विक्रम मानूँ। यदि मैंने यह विक्रम कर लिया तो मैं अपनेमें अपने लिए आनन्दस्वरूप हो सकता हूँ।

॥ सुख यहां प्रथम भाग समाप्त ॥

卐 आत्मभक्ति 卐

मेरे शाश्वत शरण, सत्य तारणतरण ब्रह्म प्यारे ।
तेरी भक्तीमे क्षण जाँय सारे ।। टेक ।।

ज्ञानसे ज्ञानमे ज्ञान ही हो, कल्पनाओंका इकदम विलय हो ।
भ्रांतिका नाश हो, शांतिका वास हो, ब्रह्म प्यारे । तेरी० ।।१।।

सर्व गतियोमे रह गतिसे न्यारे, सर्व भावोमे रह उनसे न्यारे ।
सर्वगत आत्मगत, रत न नाही विरत, ब्रह्म प्यारे । तेरी० ।।२।।

सिद्धि जिनने भि अब तक है पाई, तेरा आश्रय ही उसमे सहाई ।
मेरे सकटहरण, ज्ञान दर्शन चरण, ब्रह्म प्यारे । तेरी० ।।३।।

देह कर्मादि सब जगसे न्यारे, गुण व पर्ययके भेदोसे पारे ।
नित्य अतः अचल, गुप्त ज्ञायक अमल, ब्रह्म प्यारे । तेरी० ।।४।।

आपका आप ही प्रेय तू है, सर्व श्रेयोमे नित श्रेय तू है ।
सहजानन्दी प्रभो, अन्तर्यामी विभो, ब्रह्म प्यारे । तेरी० ।।५।।

❋ आत्म-रमण ❋

मैं दर्शनज्ञानस्वरूपी हू, मैं सहजानन्दस्वरूपी हू ।। टेक ।।

हू ज्ञानमात्र परभावशून्य, हू सहज ज्ञानघन स्वय पूर्ण ।
हू सत्य सहज आनदधाम, मैं सहजानद०, मैं दर्शन० ।।१।।

हू खुदका ही कर्ता भोक्ता, परमे मेरा कुछ काम नही ।
परका न प्रवेश न कार्य यहाँ, मैं सहजानद०, मैं दर्शन० ।।२।।

आऊं उतरू रम लू निजमे, निजकी निजमे दुविधा ही क्या ।
निज अनुभव रससे सहज तृप्त, मैं सहजानद०, मैं दर्शन० ।।३।।

मुद्रकः—मैनेजर, शास्त्रमाला प्रेस, १८५-ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ ।

॥ ॐ ॥

सुख यहां द्वितीय भाग

(सहजानन्द गीता प्रवचन)

प्रवक्ता—अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री
पूज्य श्री १०५ क्षु० मनोहर जी वर्णी
"सहजानन्द" महाराज

卐 अध्याय २ 卐
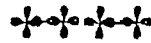
यः संयोगजया दृष्ट्या भाति संयोगजः किल ।
तौ नाहं मे न तौ हित्वा स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१॥

इस लोकमे इस संयोगजन्य दृष्टिके द्वारा जो जो कुछ संयोगजन्य पदार्थ मालूम हो रहे हैं सो न तो यह संयोगजन्य मैं हू और न सयोगजन्य पदार्थ मैं हूं । मैं देख रहा हू किन को देख रहा हू ? इन सयोगजन्य पदार्थों अर्थात् परमाणुओके सयोगसे बने हुए इन ढांचोको देख रहा हू । कमंडलु है यह भी संयोगजन्य पदार्थ है, अपनी स्वतन्त्र सत्ता रखने वाला पदार्थ नही है क्योकि यदि यह अपनी स्वतन्त्र सत्ता वाला है तो यह मिट नही सकता । जो सत् है वह त्रिकाल है वह मिटा नही करता है । दरी है, चौकी है, शरीर है ये सारेके सारे संयोगजन्य पदार्थ है स्वयं सारभूत नही है इसीलिए ये माया रूप है, परमार्थ नही है । जो कुछ भी देख रहे है वे कुछ परमार्थ नही हैं, ये सब सयोगजन्य है, माया रूप हैं मिट जाने वाली चीजें है । वास्तविक रूप तो कुछ और हो परन्तु रूप कुछ और बन गया हो, तो वे सब बनावटें है, माया है, इन्द्रजाल है । यदि कहा जाय कि यह ईश्वरकी लीला है तो विचार करनेपर निर्णय पावोगे कि खाली जीव खाली ईश्वरसे यह लीला नही बनती, यह कर्म उपाधिसे बनती है, यह प्रकृतिके निमित्तसे बनती है, प्रकृतिकी चीज है । किसी भी

तरफ देख लो ये सब मायामय वस्तु है, संयोगजन्य पदार्थ हैं, सहजरूप नही हैं। तो मोहमे मैं क्या बन रहा हू, यही सब मैं हू मैं और कुछ नही हूँ ऐसा अज्ञानी बन रहा हू, अरे भैया, ये असारभूत मायामय पदार्थ मायाकी वस्तुएँ है प्राकृतिक हैं याने प्रकृति विकार हैं। किन्हीं भी शब्दोमे कहे जो कुछ माया दिख रही है इसको देखने वाला कौन है ? किसके द्वारा हम देख रहे है, इस एकके द्वारा नही, जिस दृष्टिके द्वारा यह दिखता है वह दृष्टि ही सयोग जन्य होती है, जिसकी ओर देख रहे है वह भी मायामय वस्तु है, केवलके द्वारा होने वाली बात नही है। यह दृष्टि भी केवल पुद्गल नही है केवल जीव भी नही है जो देखनेका काम करती है। दिखने वाले तो ये पुद्गल हैं, वे कुछ नही देखते है। पुद्गल देखें तो मुर्दा शरीर भी देखें, जीव देखें तो ऐसी गदी दृष्टि सिद्धकी भी हो जाय, ऐसा देखना केवल न आत्माका काम है, न केवल पुद्गलोका काम है और दोनोका मिल करके भी काम नही, और काम होता रहता है। देखो तो यह दृष्टि भी गजबकी माया है। मायामय चीजें है। मायामय ही दिखाई पडती है। तो न मायामय चीजें मेरी है और न मायामय दृष्टि मेरी है और न ये दोनो मेरे हैं। इस कारण उन दोनोको समाप्त करके त्याग करके अपनेमे अपने लिए अपने आप सुखी होऊं।

भैया ! त्याग कहते किसे हैं ? यथार्थ ज्ञान कर लेना इसीके मायने त्याग है जैसे कहते हैं ना कि तुम्हारी इससे दोस्ती है और दोस्तीका त्याग कैसे होगा ? जब उसके सम्बन्धमे अहितपनेकी कल्पनाए बनावेंगे तो दोस्तीसे त्याग हो जायगा और यदि हितपनेकी कल्पनासे उसीको ढगसे जान लेंगे तो इसीके मायने दोस्ती हो जायगी। इसको मेरेसे अन्दर विरोध है इसी जाननेके माने मित्रताका त्याग है। तो जैसी ही कल्पना होगी वैसी ही मित्रता होगी और वैसा ही मित्रताका त्याग होगा। इसी तरह यह धन वैभव बना हुआ है तो यह कुछ मूल्य नही रखता है। वह भी भिन्न पदार्थ है, उनका लेना देना आत्मामे नही है।

यदि यह कल्पना बनी कि मेरे पास धन है तो मैं धनी बन गया और यदि यह मैंने मान लिया कि मेरे पास धन नही है तो मैं गरीब बन गया। इस जीवमे पूर्ण सामर्थ्य है। यह अपनेको जैसा माने तैसा हो जायगा। जो जो कुछ दिखते है वे सयोगजन्य पदार्थ हैं। खास यथार्थ परमार्थमे कुछ भी तत्त्व नही दिखता। जिस जीवमे प्रीति होती है मोह होता है वह परमार्थसे अत्यन्त भिन्न है, उसकी प्रीति करके उन पदार्थोंमे कुछ असर नही बदला जा सकता, कुछ अपने हो नही जाते। जैसे देखा होगा कि बहुतसे मनुष्य हैं जिनसे बोलनेका भी प्रसंग नही होता और आपको उनके प्रति मोह और प्रीति उत्पन्न हो जाती है। तो मोह और प्रीतिका कारण तो तुम्ही हो याने तुम्हारी कल्पना है। केवल अपने अन्दर मोह और

प्रीतिकी कल्पनायें भर ली हैं। अब तुम्हीं दुःखी रहो, वह तो जो है सो है। जैसे किसीको बुरा लग जाय तो कहते हैं कि तुम्हारे पेटमे उर्दा चुभने लगा। जो संकल्प करे बुरे विचार करे तो वह अपने अन्दर घुल जाता है, मिट जाता है, बरबाद हो जाता है। सो जो खोटे भाव करेगा वह वह स्वयं मिट जायगा। इस नश्वर मायामय वस्तुओंका संग्रह करनेके उद्देश्यसे अपने आपकी रुचि छोडकर छल, धोखा आदि करे तो यह अपने आपपर बहुत बडा अत्याचार है। और यदि अपने ईमान और सच्चाईपर दृढ़ हो और फिर अपने बलसे, धर्मसे स्खलित न होकर शान्त रहे तो आत्मामे एक चमत्कारसा बैठा हुआ आनन्द उत्पन्न होगा ही। ये कुछ नही, इन मायामय चीजोको मायामय दृष्टिसे निरखकर मायामय प्रयोगके द्वारा इनकी कल्पना बना लें तो उत्थान नही होगा। मंदिरमे भगवानकी मूर्तिके सामने ध्यान करते हैं तो किस बातसे करते है इस प्रभुकी मूर्तिकी मुद्रा ऐसी है कि मानो वह कह रही है कि "तू समस्त जंजालोको छोड। हे आत्मन्! कुटुम्ब परिवार इत्यादिको त्यागकर मुझ जैसा विश्राम पा। तेरा किसीसे प्रयोजन नही है। तू अपना प्रयोजन किसीसे न रख। तू अपने आपमे ध्यान करके शांत हो जा। और अपने आपके स्वरूपमे आनन्दमग्न हो जा। केवल तू शुद्ध अपने आप रहेगा और आनन्दमग्न हो जायगा।" हे भगवान आप तो शुद्ध हो गये, अपने आपमे आनन्दमग्न हो गये। धन्य है तुम्हे भगवन्! यही आपकी महत्ता है।

सो भैया, किसीसे तेरा प्रयोजन न रहे और स्वयंमें विचार करके आनन्दमग्न हो तो तेरी स्थिति उस भगवान सरीखी हो सकती है। तू मंदिरमे मूर्तिको देखकर इस प्रकारसे ध्यान कर कि उस मूर्तिके देखनेसे तुझे शांतिकी शिक्षा मिले, त्यागकी शिक्षा मिले। यही वास्तविक मूर्तिकी पूजा है और यदि मूर्तिको खूब सजायें, ऊँचा आसन बनायें, सिंहासन बनायें और उस मूर्तिको बैठायें और यदि उस मूर्तिसे शिक्षा न हो सके तो वास्तविक पूजा नही कही जायगी। जिस मूर्तिसे तुम्हे त्यागकी शिक्षा प्राप्त हो तथा शांति एवं धैर्यकी शिक्षा प्राप्त हो वही तो प्रभुकी मूर्ति है।

हे आत्मन्! त्याग ही सार है। तू त्यागको ही अपनाकर यदि ध्यानको बनाता है तो आत्माको क्लेश नही है, और यदि त्यागसे विमुख होकर इस प्रकारके दूषित वातावरणमे पड़े तो आजीवन क्लेश रहेंगे। मूर्ति जो कि मंदिरके अन्दर होती है उसकी मुद्रा त्यागमय है, उसके दर्शनमे त्यागकी शिक्षा मिलती है।

हे जगतके प्राणियो! यदि परिग्रहका त्याग नही, स्त्री पुरुषोंसे वैराग्य नही और ऊट पटांग बैठनेका ही काम रहा तो आजीवन क्लेश होंगे। अरे अपनेमें विराजमान साक्षात् परमात्मतत्त्वको देखो और अपने समस्त माया, मोहको त्यागो। यदि यह भाव उत्पन्न होता है

तो तुझे सुख है। तेरे सुखी बननेका अमोघ उपाय है। जैसी प्रभुकी शांति मूर्ति है वैसा शांत बननेकी कोशिश करो। उस मूर्तिके दर्शनसे जो शिक्षा मिलेगी वह तेरे लिए कल्याणकारी है। देखो जिनमे फँसे हुए हो वे सब मायामय पदार्थ है, उन समस्त मायावी पदार्थोंसे प्रीति मत कर, सावधान, डेन्जर (खतरा) है, ये सब डेन्जरस हैं। तू परसे प्रीति मत कर। यदि परकी प्रीतिमे फँस गया तो तुझे क्लेश है। प्रीति करते समय तो वह सब अच्छा लगता है। स्त्री बडी उत्तम है, बडी गुणवान है, बडी रूपवान है, पुत्र बडे अच्छे है, मित्र बडे अच्छे है, परन्तु भैया! ये तेरे नही हो सकते है, ये सब तेरे लिए जजाल है। उनसे तेरा हित कुछ नही, अहित हो रहेगा। यह गृहस्थी बनाई गई है। गृहस्थ धर्म बताया गया है, पर स्त्री पुरुषोमे आनन्द प्राप्त करना ही नही बताया गया है। इसलिए यह गृहस्थ धर्म है कि हे भाई! तेरा काम तो यह है अपने सारे आरम्भ परिग्रहका त्याग करके अपने अहिंसा सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, आकिञ्चन्यमे आ करके आत्मयोगी बन मोक्षमे पधारो। किन्तु जो कोई कायर है, कमजोर है, कुछ करते नही हैं तो उसे बताया है कि इस प्रकारकी गृहस्थचर्याको धारण करके तुम धर्मके कामोमे लगो। यदि धर्मके कामोमे लगोगे तो तुम्हारा कल्याण है। यह गृहस्थी इसलिए बसाई है कि तुमसे महाव्रत नही पल सकता तो एक स्त्री व छोटी गृहस्थीमे संतोष करके बाकी सब पापोसे दूर रहो।

हे आत्मन्! आकुलतायें बनाये रहना और झझटोमे पडा रहना यह गृहस्थीका धर्म नही है। इसलिए तू इन समस्त झझटो एव आकुलताओसे विलग होकर अपने आपमे रमो। जब अपने आपमे रमोगे तभी गुजारा होगा अन्यथा नही, जो बच्चा अच्छी तरहसे नही चल सकता है उसके लिए माता अगुलीका सहारा देती है। इसी प्रकार जो सकल सन्यास नही कर सकते है। उन्हे गृहस्थ धर्मका सहारा दिया गया है, भाव तो वहाँ भी शेष समस्त पापो से दूर होनेका है। ज्ञानीके प्रतीति है कि यह मैं नही हूँ, यह मेरा नही है इसलिए मैं इन सबको त्याग देता हू। त्यागना क्या है, यह मान लो कि यह भिन्न है, मेरा इनसे कुछ सबंध नही है। मैं तो एक ज्ञानानन्द भावात्मक वस्तु हू। स्वय आनन्दस्वरूप हू, परिपूर्ण हू, अधूरा नही हू। मुझमे कमी नही है हमे बनना नही है हम बने बनाये है। मेरेमे सब वैभव भरा है, सब तैयार है। केवल ऊपरकी ढकी हुई अज्ञानकी चादरको उठानेकी जरूरत है। जैसे भोजन भीतर सब तैयार है, किन्तु उस थालीपर छन्ना ढका है तो सिर्फ छन्ना उठानेकी जरूरत है। आत्मामे ज्ञान, आनद, दर्शन, चारित्र इत्यादि समस्त चेतन गुण भरे पडे हैं। केवल जानने भरकी जरूरत है। अज्ञानका छन्ना पडा हुआ है उसे हटा लो। पूरी सावधानी करके अपने जौहरको देखो और उसका आनन्द लूटो इन त्यागे जाने योग्य पदार्थोंमे पडनेसे अपना

कभी कुछ पूरा नही पडेगा, अतः यह साहस करो कि मैं इन संयोगजन्य पदार्थोंका त्याग करूं और अपनेमे अपने लिए अपने आप सुखी होऊँ।

अब यहाँ यह जिज्ञासा होती है कि जब मैं यह दृष्टि नही हूँ तो क्या हू या कुछ भी नही हू और हू तो कहाँ देखूं ? इसके समाधानमे कहा जाता है—

नाहमन्यत्र नान्यस्य न नष्टो न बहिर्गतः।
किन्तु ज्ञायकभावोऽहं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।२।।

यह मैं आत्मा अन्य किसी जगह नहीं हू, मुझमे ही हू। यह मैं आत्मा किसी अन्य का नही हू, मैं मेरा ही हू। यह मैं आत्मा कभी नष्ट नही हुआ और न नष्ट हूगा, मैं ध्रुव हू। यह मे आत्मा अपनेसे बाहर कभी नही गया जो मुझको अपनेको ढूंढनेकी हैरानी करनी पडे, क्योकि यह ज्ञान स्वरूप आत्मा यही का यही विराजमान है। यह तो ज्ञानके चमत्कार के कारण त्रैलोक्याधिपति है। तीन लोकके अधिपति बनानेका उपाय अकिंचन स्वरूप आत्माका दर्शन है। एक जगह गुणभद्र स्वामीने कहा है कि—'अकिञ्चिनोऽहमित्यास्व त्रैलोक्याधिपतिर्भवेः। योगिगम्य तव प्रोक्तं रहस्यं परमात्मनः ।।'

गुरुजी अपने शिष्योसे कहते है कि आज मैं तुम्हे परमात्मा बननेका रहस्य बतलाऊ तो शिष्योने कहा कि हाँ हाँ गुरु जी बतलाओ। गुरु जी ने कहा कि देखो मै अकिंचन हू, मेरा कही कुछ नही है, मेरा मै ही हू, मेरेसे बाहर मेरा न तो गुण है, न पर्याय है, न असर है, न लगाव है और कुछ भी नही है, ऐसा मानकर टन्नाकर बैठ जाओ, ऐसा अपने मनमे जिद्द बनाकर ठहर तो जाओ, तो तू तीन लोकका आधिपति हो जायगा। देखो भैया, यह परम औषधिमय उपदेश है। सर्व क्लेश मिटनेकी सबसे उत्कृष्ट परम औषधि है तो है अकिंचन की भावना। जैसे कोई रोग हो जाय तो कही उस डाक्टरसे इलाज करवाया, कही इस डाक्टरसे इलाज करवाया परन्तु किसीसे भी आराम न हुआ तो जिसको वह ज्यादा समझदार समझता है उससे आखिरीमे इलाज करवानेके लिए कहता है और उसीसे इलाज करवायेगा। अरे अब आखिरी एक इलाज तो करवालो। इसी तरह संसारके दुःख दूर करनेका इलाज बहुत तरहका करवाया। धन वैभव हो जाये, कुटुम्ब परिवार हो जाए, लडके बच्चे हो जाए इस भावसे बहुत यत्न किए, इलाज किए, किन्तु इन उपायोको करके भी कष्टसे दूर नही हुए। कितने ही विपरीत उपाय कर डालो पर दुःख दूर नही होगे। बस दुःख दूर करनेका तो इलाज यह है कि अपनेको अकिंचन मानो, बस संसारको सारी चिंताएँ सारे क्लेश समाप्त हो जावेंगे। अपनेको मानो कि मैं अकिंचन हू, मेरा तो मैं ही हू, अन्य कोई नही है। यही सबसे अच्छा इलाज है। सो भैया अपनेको अकिंचन मानकर अपने आपमे विश्राम तो कर लो। यदि अपनेको अकिंचन मान लिया और अपने आपमे ही विश्राम पाया

तो त्रिलोकके अधिपति हो जाओगे। मैं यहाँ अपने आपमे हू, अपने ही स्वरूपको लिए हू, मेरेमे अनन्त आनन्द भरा हुआ है, मैं कैसा विलक्षण, सबसे निराला, ज्ञानानन्दमय, परम-पवित्र पदार्थ हू, कही बाहर नही हूं, अन्यत्र नही गया हुआ हू। भैया, अपने आपको न निरखकर यह जीव शून्य बन जाता है, अपना पता ही नही रखता है, बाह्यमे दृष्टि रखता है, अपनेको सकिंचन भावमे लगाता है। इसीसे उसे क्लेश हुआ करते है। हम अपने आपको समझें कि मैं अकिंचन हू, मेरेसे बाहर मेरा कुछ नही है और जो कुछ मुझमे है वह बाहरसे नही आता है। मेरेमे तो मेरा स्वरूप चतुष्टय विद्यमान है। यह मैं ज्योतिस्वरूप पदार्थ हू। देखो लोक–व्यवहारमे भी उस मनुष्यकी इज्जत बढती है जो मनुष्य यह कहता है कि मैं कुछ नही हू, जीवन भर बडे बडे दानके काम भी कर लिए, देश और समाजकी सेवाओका भी काम कर लिया, उनकी प्रतिष्ठा भी बढ गयी, उनकी शोभा भी बढ गई, यश भी चारो ओर छा गया, उनका सम्मान भी होता है पर यह तब तक है जब तक वह अपनेको 'ना कुछ' कहता है। उसने परमार्थसे भी देख लिया कि मैं औरोके लिए कोई चीज नही हू, मेरा जगत्मे कुछ नही है। मैं केवल अपना स्वरूप मात्र हू यदि मैं अपनेको इस तरहसे समझू तो अन्तरमे पारमार्थिक इज्जत हो जायगी। आनन्द चाहते हो तो आनन्दका उपाय इसी अमूर्ततत्त्वको ही उपयोगमे लेना है। मैं अकिंचन हू। मेरा कुछ नही है, अन्यत्र।

एक साधु था। उसकी लगोटीको चूहे काट जाया करते थे, अब साधुको यह बहुत बडी हैरानी हुई। साधुने चूहेसे रक्षाके लिए एक बिल्ली पाली। बिल्ली दूध पीती थी अब उस बिल्लीको दूध पिलानेके लिए एक गाय पाली। उस गायको चराने वाला कोई नौकर या नौकरानी होना चाहिए सो गायको चरानेके लिए एक नौकरानी रख ली। कुछ समय बाद उस दासीके कुसंग होनेसे लडका पैदा हुआ। उस साधुने देखा कि पहले बिल्ली थी, फिर गाय हुई, फिर गायका बच्चा हुआ, फिर नौकरानी हुई, फिर लडका हुआ, इस तरह से मेरा घर तो भर गया। अब उन्हें किसी गाँव जानेकी जरूरत पडी क्योकि घर तो भर गया था उसका, गुजर सबका करना था। रास्तेमे एक नदी मिली, उस नदीसे सब निकलने लगे। अचानक ही नदीमे एक छोटी सी बाढ आयी जिससे सबके पैर उखड गये, सब बहने लगे। दासीने झट साधुको पकडा, क्योकि रक्षा करने वाले तो वही थे। इस तरहसे सब उस साधुकी शरण गए। बिल्ली भी गई, गाय, गायका बच्चा तथा लडका इत्यादि भी उस साधुकी शरणमे गये। अब तो साधु भी डूबने लगा। अब वह साधु सोचता है कि अरे ये सारी बला तो केवल लगोटके कारण आई है। लंगोटके ही कारण गाय, गायका बच्चा, बिल्ली दासी, दासीका लडका इत्यादिसे विडम्बना हो गई है। अब उस साधुने लगोटको झटकेसे निकालकर फेंक दिया और सत्य विचारने लगा कि ये जीव मेरे कुछ नही हैं। इनसे

मेरा कोई संबंध नही है, उसे ज्ञान हो गया। देखो भैया, उस साधुने परसे सम्बन्ध स्थापित कर लिया था तो उसे अब क्या क्या तकलीफें उठानी पडी ? जो अपनेको परसे मिला हुआ समझता है वह डूब जायगा और जो अपनेको कुछ नही समझता है वह तर जायगा।

किसी घरमे ऐसा भी होता है कि कोई बाप बड़ी उम्रका हो जाता है। पांच सात बच्चे भी हो जाते है। बच्चोका रोजगार भी अच्छा चलता है। बाप जब बच्चोके काममे दखल देता है तब दखल देनेसे नुक्सान हो जाता है। कही ४-६ महीनेको वह बूढा बाप न रहे व किसी जगह चला जावे तो बच्चे सुख शांतिसे काम करते है। बाप तो यह समझता है कि हम काम कर रहे हैं पर बच्चे मुसीबत उठाते व नुक्सान भी। यदि बाप बच्चोके काम न पूछे तो इस स्वतन्त्रतामें देखो बाप खुश है और बच्चे भी खुश है। देखो ना, इस जीवने भी शरीर वर्गणावोमे दखल दिया तो शरीर भी खराब हो गया और आत्मा भी खराब हो गया। यह आत्मा तो बड़ा भला है। इस आत्माका जाननेका ही काम है। मेरेमे कोई भी विपदायें इस आत्मामे नही आती है। इन वर्गणावोमे जब यह दखल देता है तो यह भी बुरा होता है व शरीर भी बुरा होता है।

यह जीव अकेला रहकर बड़े आरामसे बना रहता है। पुद्गल भी मांसादि रहित पवित्र बने रहते हैं। इस जीवकी बडबड़ाहटसे पुद्गलकी यह दशा हो गई। इसीसे जीवकी यह दशा हो गई। अच्छी नुक्तीका बढ़िया लड्डू खूब बढिया बना है, खूब मजेदार है, तबियत भी ठीक है, स्वास्थ्य भी अच्छा है, यह आदमी अच्छा है, बस अब लड्डू खाये तो लड्डू खानेसे लड्डूकी क्या हालत हुई सो मुंह बाकर आईनामे देख लो और बीमारीने आक्रमण कर लिया, यह हुई खाने वालेकी दशा। खाने वालेकी तो तबियत खराब हो जाती है और लड्डू बेकार हो जाता है, यह तो हुई लड्डूकी दशा। लड्डू अपनी जगह पर अच्छा था, आदमी अपनी जगह पर अच्छा था अपनी जगह पर रहते तो दोनो मजेमे थे।

ये दुनियाके सारे वैभव, मित्र जन, कुटुम्ब, परिवार इत्यादि भी हो तो इन किन्हीसे भी हमारा पूरा न पड़ेगा, खराबी ही रहेगी। जो पदार्थ जहां जिसमे जिस स्वरूपमे हैं, बना रहने दो। उनमे यदि पड़े तो उनमे भी खराबी है, खुदमे भी खराबी है। यह अकिंचन भाव संकट रोगकी अमोघ औषधि है। कितने ही कष्ट हो, जरा अपनेको ज्ञानमे अकिंचन बना लो तो सब क्लेश मिट जायेंगे। अरे भाई अपनेको सबसे निराला समझो कि मैं अकिंचन हू, मेरा कही कुछ नही है तो आनन्दमग्न ही हो। यह अकिंचन भाव अच्छा है। यदि अकिंचन भाव अपनेमे न आया तो बडी बडी झंझटें पड़ जावेंगी। जैसे कि लौकिक झझटें बहुत पड़ गई हो, बड़ी चिंतायें हो गई हो इसमे २० हजार लगे, इसमे ५ हजार लगे, टोटल किया तो

७५ हजारका नुक्सान आया। अरे यह नुक्सान मेरा कुछ नही है, हो जाने दो। उससे मुझे कुछ नुक्सान नही पहुच सकता है, इस प्रकारका यदि विचार बन जावे तो लो दुःख मिट गया और यदि इसके विपरीत विचार बने तो क्लेश बढते ही चले जावेंगे। जैसे सट्टा खेलते हैं तो मिलना कुछ नही है, केवल कहते है कि उतने पैसे लगे है, यह खरीदा वह खरीदा। खरीदना कुछ नही पडा, पैसे कुछ नही लगाने पडे, सट्टा खेलते है। इसका फल केवल यह हुआ कि पूरे रात-दिन जगे इसी तरह इन पदार्थोंसे हमे लेना देना कुछ नही इनसे अपना सम्बन्ध कर लेने से नुक्सान ही है, जैसे सट्टा खेलनेका फल केवल पूरी रातका जागरण है उसी प्रकारसे पर-पदार्थोंसे सम्बन्ध स्थापित करना, उनको अपना इष्ट अनिष्ट मानना इसका फल केवल क्लेश है, यह सब धोखा है, परन्तु यदि अपनेको अकिंचन मान लें तो तीन लोकके अधिपति हो जावें। देखो--घरमे बच्चोंमे कोई चीजका झगडा हो जाय, किसी चीजके वितरणमे कोई बच्चा यह कहे कि हम यह चीज नही लेंगे हमे कुछ नही चाहिए, माँ बाप कहते जाते है कि नही बेटा और ले लो, बेटा नही कर देता है। अब उस नही कर देनेके बदलेमे और और मिलता है, जो शान्तिरूप हैं, जिन्होने नही, नही कहा। जो यह कह देते हैं कि हमे चाहिए तो उनके लिए माँ बाप कहेगे कि अब नही मिलेगा। इसी प्रकार हे आत्मन्! ज्यो-ज्यो पर-पदार्थोंसे बाहर होते जाओगे, उनके लिए यह कहोगे कि मुझे कुछ नही चाहिए तो पावन होता जायगा और त्रिलोकके अधिपति हो जाओगे। यदि कुछ मांगो तो कुछ नही मिलेगा। आचार्य देवके वचनोसे हमे यह शिक्षा मिलती है कि हे जगतके प्राणियो! परपदार्थोंमे न पडो ये सब गोरखधधा है।

भैया! तुम कहाँ अपना विश्वास कर रहे हो? ये सब परपदार्थ तुम्हारे लिए हितकर नही हैं। कौन सी ऐसी चीज है जिससे पूरा पड जायगा। अरे पूरा पडने वाली कोई चीज नही है, यदि तू इनमे पडा तो तेरी दशा खराब हो जायगी। तू अपनेको अकिंचन मान। अपने आपमे विश्वास कर कि मैं अपने आपमे हू, अन्यत्र नही हूँ, परिपूर्ण हू, नष्ट नही हूँ, मैं बाहर नही गया हू। इस तरह सबकी ओर उपेक्षाभर रहे तो आत्मवैभव वृद्धिगत होता है, और जिसके केवल पर्यायबुद्धिके कारण भीतरमे लगाव होता है कि मैं यह इन्सान हूँ, मैं अमुक हूँ, उसके पर्यायबुद्धिके हो जानेसे खोटे अभिप्राय बढ जाते हैं।

देखो भैया! एक अपने आपसे परिचित न होकर जिन्दगी बेकार चली जा रही है। आपको भावो, चाहे अकिंचन भावना हो, चाहे ज्ञानमात्र भावना हो, प्रयोजन दोनोका एक है, मैं केवल ज्ञानमात्र हू। जानन एक विलक्षण भाव है जिसका उपाय दुनियामे अन्यत्र कही नही मिलता है, किसीको स्पष्ट नही दिखता है, उस जाननके पेट नही है, पैर नही हैं, शक्ल

नही है । रूप, रस, गंध इत्यादि उस जाननमे नही है । यदि हम अपनेको ज्ञानमात्र मानते है तो आनन्द है और यदि इसके विपरीत अपनेको समझते है तो हमे क्लेश है ।

हम अब तो अपने घरमे रहते ही नही । कितने कष्टकी बात है ? अरे बाहर भी रहते हो तो घरमे दो-चार घटेको तो घुसा ही करते हो । अनन्तकाल व्यतीत हो गए । बाहर ही बाहर दृष्टि रही, विपदाओके साधनोकी ओर ही दृष्टि रही । अरे ज्ञानघन आत्माको तो देखो । सोने चाँदीके ढेरोमे क्या रखा है ? दौलतसे, धन-वैभवसे तुम्हारा क्या विकास, क्या उत्थान हो जायगा ? व्यर्थ ही क्यो हे जगतके प्राणी ! तू अपनेमे ही सकल्प विकल्प करके दु खी होता है । तेरी आत्मामे तो दुःख रूप है ही नही । वह तो आनन्दघन है फिर तू क्यो दुःखी हो रहा है ? अरे इन संकल्प विकल्पोको टाल दो तो आनन्द उत्पन्न हो जायगा । मेरा सुधार करने वाला, मेरा बिगाड करने वाला मैं ही हू, मुझे अपनेको ज्ञानस्वरूप, ज्ञाना-नन्दमात्र निरखकर आनन्दमग्न होना चाहिए । यह प्रभु तो यही विराजमान है, अति निकट क्या, यही मैं हूं । परमात्मतत्त्व कुछ अन्य वस्तु नही है, चेतनतत्त्व ही परमात्मा होता है । केवल पदार्थ समझ लेने व न समझ पानेका ही सारा अन्तर हो जाता है । जिन्होने अपना यथार्थ स्वरूप समझा और इसी कारण द्रव्येन्द्रिय भावेन्द्रिय व विषयभूत वस्तुमे अपना प्रयो-जन नही समझा और इन तीनोसे उपेक्षा की और उपेक्षा करके अपने ज्ञानस्वभावमे रत हुए तो परमात्मतत्त्व प्रकट हो जाता है, ऐसा ही स्वरूप मेरा है । उसका ध्यान कर सर्व क्लेशो से मुक्त हो जानेका उपाय कर लेना ही परम विवेक है ।

विषवद्विषयांस्त्यक्त्वा पृथक्कृत्य वपुर्धिया ।
स्वात्मानमेव पश्यानि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥ ३ ॥

देखो भाई ! ये विषय जिनमे संसारके प्राणी अधे हो जाते हैं, विषसे भी भयकर हैं विष तो एक ही भवमे प्राणका हरण करता है, परन्तु विषयोकी आसक्ति भव-भवमे मूल प्राणका, चैतन्य प्राणका हरण करता है अर्थात् ज्ञान दर्शनका विकास नही होने देता । संसार के विभिन्न तिर्यंचोको तो देखो, ये तो देखनेमे आ ही रहे हैं । हाथी हथिनीके सम्पर्कको धुन मे जगलमे बनावटी हथिनीके समीप दौड़कर जाता है और उस स्थल पर जाते ही गड्ढेमे गिर जाता है, दुःखी होता है और पराधीन हो जाता है । मछलियोको देखो—जरासे मांस-खंडके खानेके लोलुपी होकर धीमरके जालमे फँस जाती हैं । धीमर लोग फिर इनको पकड़-कर अलग रख देते हैं वे मर जाती है या कही-कही पर मछलियोको जिन्दा ही आगमे भून डालते है । भ्रमर गधके वशीभूत होकर पुष्पके भीतर ही निःस्वास हो जाते है । पतंग रोशनी मे ज्वालापर पड़कर मर जाया करते हैं, वह तो प्रायः देखने ही रहते होंगे । सांप, हिरण

आदि तो शब्दरागके विषयमे मस्त करके पकड लिए जाते हैं सपेरे व शिकारियोंके द्वारा, जब इन जीवोकी एक-एक इन्द्रियके विषयके वशमे ही ऐसी दुर्गति हो जाती है तो हाय यह मनुष्य कीट जो पांचो इन्द्रियके विषयोका दास है इसका क्या हाल होगा।

अतः भैया! पुण्यके उदयसे पाया तो सब कुछ समागम है, परन्तु उसके भोगनेसे पहिले कुछ विवेकका भी आदर कर लो, अन्यथा पछतावा करना ही हाथ रहेगा। विषयोको विषकी तरह अहितकारी समझकर और कषायोके साधनभूत शरीरको आत्मासे पृथक् मानकर उन सबसे उपेक्षा करना, बस यही धर्म मार्ग है। ये विषय भोग संसारमे परि-भ्रमण कराते हैं, जन्म परम्परा बढाते है तब कर्तव्य क्या है कि इन विषयोको छोड़कर और इन विषयोके साधनभूत शरीरको भी आत्मासे पृथक् देखकर सबसे उपेक्षा कर दो। मैं अपने आपमे उपयोगी होऊं। इन्द्रिय विषयोको जीतनेके लिये मुख्य उपाय ज्ञान ही है। घर छोड दें अथवा किसीके नाम पर धर्मकी उपासना कर लें, बडे बडे कार्य कर लें सब ठीक है, परन्तु निर्विषय आत्मतत्त्वका जब तक दर्शन नही तब तक इन्द्रियोको जीता नही जा सकता है और जब तक इन्द्रियोपर विजय नही होगी तब तक मोक्षमार्ग नही प्राप्त हो सकता है। इन्द्रियविषयोको जीतनेके लिये कैसा उपयोग बनाना है, इस सम्बन्धमे समय-सारमे श्री पूज्यपाद अमृतचंद सूरि जी कहते हैं कि विषयभोगका सबध तीन बातोसे हुआ करता है—१. द्रव्य इन्द्रिय २ भाव इन्द्रिय और ३. विषयभूत पदार्थ। विषयभोगका सम्बन्ध इनसे रहा करता है। द्रव्य इन्द्रियके निमित्तसे उनके विषयभूत पदार्थोंमे इन्द्रियज्ञान करके रमण होता है। इस तरहसे भोग भोगनेके लिये तीनसे वास्ता पडता है—द्रव्य इन्द्रिय, भाव इन्द्रिय और विषयभूत पदार्थ। द्रव्येन्द्रिय तो शरीरमे दिखने वाले ये हैं। इन्द्रियके निमित्तसे जानकारी होती है, वह जानकारी भावेन्द्रिय है। और विषयभूत पदार्थ जगतके ये पुद्गल पदार्थ है। ये विषय पांच प्रकारके होते हैं—स्पर्श तो स्पर्शनका विषय है, रस रसना का विषय है, गन्ध घ्राणका विषय है, रूप चक्षुका विषय है, शब्द श्रोत्रका विषय है। चक्षु इन्द्रिय और रसना इन्द्रिय तो दुनियामे कमाल कर रहे हैं। हम इन इन्द्रियोके प्रति कैसा ज्ञान बनावें कि विषयोसे हटकर अपने स्वभावमे लग जायें। कहते है कि इन्द्रिय क्या हैं? इन्द्रिय पुद्गल हैं, जानने वाली नही हैं। यह मैं आत्मा ही चैतन्यस्वरूप हूं जो जानता हू, ज्ञानमय तत्त्व हू, सबसे निराला हू। मुझमे और इन पौद्गलिक इन्द्रियोमे कितना अन्तर है? ये इन्द्रियां तो मैं हूँ ही नही, ये तो मेरेसे भिन्न हैं।

विशिष्ट ज्ञान करके ही हम इन इन्द्रियोके वशीभूत हो जाते हैं, और इन्द्रियोके वशीभूत होकर दुःख उठाते हैं। हमे इनको विजय करनेके लिये इनकी उपेक्षा कर देनी चाहिए, लोग

कहते हैं—'भली मार करतारकी दिलसे दिया उतार।' जैसे किसी परिवारमे प्रधान पुरुष तथा स्त्री पुत्रमे कुछ अनबन हो जाय और प्रधान पुरुष उन आधीनस्थोसे उपेक्षा कर जाए, अलग रहे, उनसे बोलना ही छोड़ दे तो स्त्रीको दु:ख होगा, और कहेगी कि 'बडी मार करतारकी दिलसे दिया उतार।' वह सोचती है—पतिने हमसे बिलगाव क्यो कर लिया है, इससे अच्छा तो यह था कि दो-चार दिन खाना न देते, मार देते, परन्तु हमे दिलसे क्यो उतार दिया है ? हमसे वह स्नेह क्यो नही करते, हमसे बोलते नही हैं, हमारी ओर निगाह भी नही डालते हैं। सो देखो भैया ! इससे बढ़कर और दण्ड क्या होगा ? ऐसा ही इन इन्द्रियोको दण्ड दे दो। इन्द्रियोको विजय करनेके लिए जीभ काट डालो, कान काट डालो, नाक कतर डालो, आँखें फोड़ दो। क्या ? नही, इन्द्रिय-विजयका उपाय है उपेक्षा। क्या करो कि किसी दूसरेकी ओर मुड़कर भी न देखो, अरे यह तो जग है, उससे तू विलग है, तू तो एक चैतन्य पदार्थ है, तू इन्द्रियोमे क्यो फँसा है ? भैया ! इन इन्द्रियोमें वशीभूत होकर तेरा ज्ञान दब रहा है। इन इन्द्रियोके कारण ही तो स्पष्ट बात समझमे नही आती है। तू तो अपने आपको सोच कि मैं इन्द्रियोसे अपना सम्बन्ध नही रखता, तू अपनेको जान कि मैं आत्मा स्वतंत्र हूँ, यदि तू अपने को इस प्रकारका बना ले तो यही हुआ इन्द्रियो पर विजय प्राप्त करना। इन इन्द्रियोके द्वारा ही नाना कषाय बढ़ते है, इन्द्रियोके निमित्तसे जो ज्ञान होता है उसे कहते है भाव इन्द्रिय। इन्द्रियोंके निमित्तसे हमारा जो ज्ञान होता है वह अपूर्ण ज्ञान है, पराधीन ज्ञान है। किन्तु मैं आत्मा तो अपूर्ण नही हूँ। यह आत्मा तो पूर्ण ज्ञानमय है। इन्द्रियोके द्वारा जो ज्ञान होता है वह अपूर्ण ज्ञान होता है। अतः परस्पर इन दोनों ज्ञानोमे अन्तर है। मैं अपूर्ण ज्ञानवान नही हू, मैं तो अपनेको इन्द्रियज्ञानसे भिन्न सहज ज्ञानमय देखता हूँ। वह तो अपूर्ण ज्ञान है। मुझे तो चाहिए कि इन इन्द्रियोसे, खंड खंड ज्ञानसे पृथक् अखण्ड ज्ञानमय अपने आपको अनुभवू और इन्द्रिय ज्ञानसे विलग होऊँ। इन इन्द्रिय विषयोमें से स्पर्शन इन्द्रिय विषय तो उन्मत्ततापूर्ण है। इसका विषयकषायी रागी पुरुष ब्रह्मविद्याकी आराधनाका पात्र नही है।

रसना इन्द्रियको देखो इसका विषय भावेन्द्रिय द्वारा ही जान पाया है। खण्ड खण्ड ज्ञान है वह। जैसे कोई अंधेरेमे बैठा हुआ आम चूस रहा है। उसको पता नही कि आम कलमी है कि दशहरी है कि देशी है। केवल उस आमके रसको जब जिह्वापर रखता है तब उसे आमका पता चलता है, उसे यह पता नही चलता कि आम किस रगका है, किस रूपका है, देखो यह अपूर्ण ज्ञान हुआ ना। आमके विषयमे पूर्ण जानकारी नही हो पायी, ऐसे ही सब इन्द्रियज्ञान है। सो भैया ! अपनेको इन इन्द्रियोके उपयोगोसे हटाओ। अब विषयभूत पदार्थोंको देखो—ये बाह्यपदार्थ जड़ है, संग है, परिग्रह है, पर यह मैं आत्मा चैतन्यस्वरूप

हू, केवल हूँ, असग हू, किसी अन्य पदार्थोसे मेरा सम्बन्ध नही है। वे मव अपनी-अपनी स्वरूपसत्ता मात्रमे हैं, मै अपनी सत्तामात्र हू। ऐसा भेद करके उन वाह्य पदार्थोमे अपना सम्बन्ध न स्थापित करो, उनमे दृष्टि न डालो, केवल अपने आपको निरखो। अपने इन विषयोको जीतनेका क्या कोई और उपाय है। कुएमे डाल दो अथवा तोड फोड दो, इन इन्द्रियोको बरवाद कर दो, कान कतर दो, आंखें फोड दो, विषयोपर विजय प्राप्त करनेका क्या यही उपाय है। अरे! इन इन्द्रियोका वहिष्कार कर दो, दिलसे उतार दो। इसी प्रकार से विषयोको दिलसे उतार दो, मोहको भुला दो, जो भिन्न भिन्न रूपोमे जन्म मरणके चक्रमे डालने वाले है। इन विषय कषायोको त्याग दो। इन विषयोके वेसिक इस शरीरको अपने स्वरूपसे पृथक् देखो तथा अपनेको ज्ञानमात्र, सबसे निराला समझो और अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होओ।

इस जगतमे जितने भी लोग पराधीन बने रहते है वे विषयोके कारण ही पराधीन बने रहते हैं। इसलिए विषयसे छुटकारा प्राप्त करो। कोई किसीसे बधा है क्या? कोई किसीसे बधा हुआ नही है। केवल खुदमे ही वस्तुस्वरूपसे विपरीत कल्पनाएं बना लेनेसे बन्धन बना लिया है।

सुकोशल राजकुमार अपनी कुमार अवस्थामे विरक्त हो गया। वह घर छोडकर चल दिया। तब राजकुमार की अवस्था छोटी थी। वे अपनी माँ और अपने साम्राज्य सुखसे विलग हो गए। देखो मत्रीजनो ने उन्हे बहुत समझाया, पर वह न माने, कैसे मानते उन्हे ज्ञान हो गया था। वे अपनी आत्मामे ही लीन होना चाहते थे। तब फिर उनको रोकने वाला कौन था? उनमे यथार्थ ज्ञान हो गया था। तब फिर दूसरोका असर उन पर किस प्रकारसे हो सकता था। यदि खुदमे अज्ञानभाव होता तो दूसरोके समझाने पर यह अपनेमे अपनी उत्सुकताके कारण उस तरहका असर कर लेता। मन्त्रियोने राजकुमारको बहुत समझाया कि आपकी स्त्रीके गर्भ है, बच्चा तो हो जाने दो। फिर चाहे चले जाना। बेटा! उस बच्चेको तो राजतिलक दिए जाओ। दुनियाको तो यह बता जाओ कि मैं अपने बच्चेको राजतिलक दे रहा हू इसलिए हे महाराज! अभी इतनी जल्दी न जाओ। दो तीन माह बाद फिर चाहे चले जाना। राजकुमार सुकोशल कहते है कि अच्छा गर्भमे जो संतान है उसे मै तिलक किए देता हूँ। जो गर्भमे सतान है उसे मै राजा बनाए देता हू। ऐसा कहकर सुकोशल राजकुमार विरक्त हो गये।

ज्ञान ही सुख, आनन्द व शान्ति देता है। और यदि ज्ञान नही है तो आजीवन क्लेश है। अतः मैं इन विकारोको, विषय कषायोको त्यागकर अपनेमे ज्ञान उत्पन्न

करूं, अपने आपके ज्ञानसे आनन्द लू और सारे सकल्पोसे मुक्त होऊं।

शांतिके मार्गमे बढनेके लिए सबसे पहिला कदम है इन्द्रिय विजय अर्थात् इन्द्रियोके विषयोपर विजय प्राप्त करना। यह इस उपायसे संभव है कि इन विषयोसे पृथक्, विषयो के ग्रहणके साधनभूत द्रव्येन्द्रियोसे पृथक् और विषय ग्रहण विकल्प रूप भावेन्द्रियसे पृथक् ज्ञानमात्र अपने आत्मतत्त्वका सचेतन करू। इसके लिए हम प्रारम्भमे सीधा इतना ही काम कर लें कि विषयके निमित्तोको दूर करें तथा विषयोके कारणभूत इस शरीरको आत्मासे अलग समझें। फिर इन विकल्पोके दूर होनेपर आत्मामे परम विश्राम होगा जिससे शांतिके मार्गका साक्षात्कार होगा। सुख इस ही स्वरूपमे है अन्य विषयोमे सुख खोजना महामूढता है।

न मे वर्णो न मे जातिन मे देशो न विग्रहः।
नैषामह न्वहं त्वेकः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४॥

जो आत्मामें हो उसको तो हां करना और जो आत्मामे नही है उसे ना करना। आत्मामे ज्ञान है सो ज्ञानकी हां करना और आत्मामे वर्ण नही, देश नही, शरीर नही, कर्म नही तो उसकी ना करना, ना को ही हां कर दे और हां को न कर दे उसीका नाम मिथ्यात्व है। आत्मामे ज्ञान है, पर उसे न कहने वाले बहुत है, कुछ दार्शनिक भी ऐसे है जो आत्माका स्वरूप ज्ञान नही मानते बहुत-बहुत बातें है, यहां कौन अपनेको ज्ञानस्वरूप मानता है? अरे विशुद्ध व्यवस्था नही है तो मै हू क्या? जैसा भी जिसने कह दिया वैसा ही मान लिया और बहक गए। यह तो हाल है सस्कार परिणाममे, जैसा जिसने समझ लिया, जैसा संग जिसको मिल गया तैसा ही असर बना लिया ऐसोकी सख्या ज्यादा है। जिनको हां का पता नही है और जिनको ना ही का भूत लगा उनकी तो चर्चा हो यहां नही है, और भीतर दर्शनशास्त्रमे चलें तो ज्ञानकी न करने वाले बहुत है। कोई दार्शनिक तो आत्माका स्वरूप नही मानते। क्योकि ज्ञानस्वभाव आत्माको नही मानते। ज्ञानके सम्बन्धसे आत्मा ज्ञानी है। आत्मामे ज्ञानरूप नही है, ऐसा मानते है। और इसी तरह और और भी हैं, आत्मामे रूप है क्या कि हरा है, कि काला है, कि सफेद है, कुछ भी नही, किन्तु मोही मानता है कि यह गोरा है, यह काला है, यह सफेद है, मैं गोरा हूं, मै काला हूँ, मैं गेहुवे रंगका हूँ। अरे यह आत्मा अनेक रूप नही है। आत्मामे जातियां है क्या? भैया! आत्मामे कोई जातियां नही। आत्मामे वर्ण नही, वह तो चैतन्यस्वरूप, चेतनात्मक प्रभु सरीखा एक वस्तु है, वह आत्मा है। मेरी जाति नही, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इत्यादि कोई जाति आत्मामे नही है।

विकार और अविकार भावोकी तो बात ठीक है कि मेरी इस आत्मामे विकार तो

है, किन्तु स्वभावमे विकार नही है । वह निर्विकार है, निर्विकल्प है, ज्ञानानन्दमय है, ज्ञानघन स्वरूप है । विकारोका होना आत्माका काम नही है, वह तो चैतन्यमय पदार्थ है । यद्यपि पर्यायमे परिणामोके अनुकूल हो जातियोमे विभाग है अर्थात् जितने प्रकारके परिणाम होगे उतनी ही जातियाँ होगी, परन्तु परमार्थसे जैसा मैं हू तैसा ही हूँ । मेरे अस्तित्वमे कोई जाति नही । जैसे आज हिन्दुस्तानमे हू और हिन्दुस्तानी कहलाता हूँ । आगे अगर मरकर इंग्लैण्ड मे जाकर किसी अन्य योनिमे जन्म ले लूं तो अग्रेज बन जाऊँगा और कहूगा कि मेरा देश इग्लैण्ड है, मैं अंग्रेज हूँ । वास्तवमे भैया, मेरे स्वरूपमे कोई जातियाँ नही, मेरा कोई देश नही । जब तक जिन्दा हू तब तक तो हिन्दुस्तानी हू, अंग्रेज हूँ, फलाँ हू इत्यादि विकल्पकी बातें रहती हैं, पर ज्यो ही मृत्यु हो जाती है उसका विकल्प बदल जाता है । देशकी बात देखो, देशके प्रदेशकी बात देशमे है, मेरा देश नही, मेरे विग्रह नही, सुख दुःखका अनुभव तो चैतन्य प्रदेशमे होता है । शरीरमे सुख, दुःखोका अनुभव नही होता है, ज्ञान, शिक्षाकी बात चैतन्य प्रदेशमे होती है, शरीरादिमें नही होती है । मेरे विग्रह नही, शरीर नही । मैं इनका नही और ये मेरे नही, मैं तो केवल एक ज्ञानमात्र हू ऐसी भावना ज्ञानी जीवके होती है ।

भैया ! जाति और धर्म वेशभूषा या पहनावाका जिनके आग्रह हैं उनको मोक्ष प्राप्त नही होता । मै किसी जाति वाला किसी शरीर वाला नही हू, मै आत्मा चैतन्य जातिका हूं, ऐसा जानू । कोई भी आग्रह हो चाहे जानू कि मै ब्राह्मण हूँ, मैं क्षत्रिय हू, वैश्य हूँ, शूद्र हू अथवा किसी प्रकारका विकल्प भरे हुए हूँ तो उस आग्रहके कारण मोक्ष नही होता है । हालाँकि बात ठीक है कि तमाम जातियोमे यह कोई श्रेष्ठ जाति है । हम श्रेष्ठ जाति व आचरण वाले मोक्षपात्र हैं । यदि संस्कार निम्न जातियोमे हुए तो मोक्ष नही है तो भी अपने आपमे किसी भी पर्यायका आग्रह हो तो मोक्ष नही होता । मैं पुरुष हूँ अथवा स्त्री हूँ ऐसे कोई भी विकल्प मेरे मोक्षमार्गमे बाधक होगे । मोक्षमार्गकी प्रगतिकी बात दूर रही इस पर्यायबुद्धिसे तो मुझे सम्यक्त्व भी नही होगा । मेरा मेरे सहज स्वरूपके सिवाय अन्य कुछ नही है । अगर शुद्ध स्वभावका विश्वास नही है तो सम्यक्त्व नही है । मैं तो एक चैतन्यवस्तु हूँ, मै तो सबसे अछूता चैतन्यमात्र हू । वह ज्ञानी नही है जो अपनेको सबसे निराला तथा अछूता न निरखे । अपने आपकी सहज चैतन्यभावके रूपमे पहिचान होगी तब सम्यक्त्व है । यह बात कहो कि हसी हसीमे ही शांति मिल जाय तो शांति नही मिलने की । हसी हंसीसे ही यदि यह चाहो कि मोक्षका मार्ग मिले तो नही मिल सकता है । मेरे लिये तो आध्यात्मिक तपस्याकी जरूरत है । तपस्या तब होगी जब कि यह समझो कि मै पुरुष नही हू, मै स्त्री नही हूँ । अपनेको पुरुष स्त्री बनाने वाले भावका तिरस्कार कर दो और ऐसी भावना

बनाओ कि मैं मनुष्य नही हू, मैं सदा आनन्दघन चैतन्यस्वरूप वस्तु हूं, मेरी भावात्मक ज्योति बढ़े यही मेरा काम है। देखो इंग्लिशमे आइ शब्द है जिसका मैं अर्थ होता है वह आइ शब्द न पुरुष लिंग है और न स्त्रीलिंग है। अहं शब्द जो कि अस्मद्से बना है वह भी न पुरुषलिंग है और न स्त्रीलिंग है, इसी प्रकार मैं शब्द भी न पुरुषवाचक है न स्त्रीलिंग है। तब सोचो कि मैं शब्द भी जब स्त्री पुरुष दोनोंसे परे है तो वाच्य जो यह मैं चेतन वस्तु हू सो यह मैं भी न स्त्री हू और न पुरुष हू। मै तो चेतनात्मक, जगमगस्वरूप, प्रकाशमान चकचकायमान एक प्रतिभासस्वरूप वस्तु हू।

हे आत्मन्, तेरेमे तो विकार नही है पर तेरेमे जो विकार हो गये, विकल्प हो गये, विषयकषाय हो गये वह तूने ही भ्रमवश ही झलका लिया। तू धनके ही पीछे पड़ा रहा, अपने परिवारके ही पीछे पड़ा रहा, विकल्प तो तूने स्वयं ही इस जगतमे बना लिये हैं। अरे यदि तू नुक्सान मान लेता है तो नुक्सान है और यदि नुक्सान नही मानता है तो कोई नुक्सान नही है। चाहे हजारका नुक्सान हो, चाहे लाखका, चाहे करोड़का, उसे तू नुक्सान न समझ। वे तो सब परद्रव्य हैं उनसे तेरा क्या सम्बन्ध है। हे जगत्के प्राणी! तू विकल्पोको जिनका कुछ मूल ही नही, भ्रमकी काल्पनिक भीतपर ही जो भासते हैं, छोड़ दे तो तुझे शान्ति हो जायगी।

भैया! घरमे यदि कोई बीमार हो जाय, जिसके बचनेमे संदेह हो, तो उसके परिवारका इष्ट पुरुष कितना विह्वल रहता है। वैद्य आता है तो उससे पूछता कि सच तो बता दो कि यह बचेगा कि नही। कितनी विह्वलता है, इतनी विह्वलता तो उसकी मृत्युके बाद भी नही रहती। यदि बीमार मर जावे तो दुःख वियोगका तो जरूर है किन्तु अनिर्णयका अंधेरा नही है। उसे पूर्ववत् भीतरी अज्ञानकी आकुलता नहीं है। पहिले क्लेश डबल था। अब केवल वियोगका क्लेश है।

यदि कोई बीमार पुरुषके बारेमे उससे यह कह जावे कि बचनेकी कोई आशा नहीं है, हां हो सकता है कि भाग्य अच्छा हो तो बच जावे। ऐसा कहनेसे उस इष्टका दिमाग खराब हो जाता था और उसके हृदयमे अशांति फैल जाती थी। अब मर जानेपर भी अनिर्णयकी व्याकुलता तो नहीं है। अज्ञानमे होने वाली आकुलता बड़ी आकुलता है। मैं पुरुष हूँ, मैं स्त्री हूं, इस प्रकारके विकल्पसे सही ज्ञान नहीं मिल सकता है। ऐसी अवस्थामें वह कितने ही धर्मके नामपर काम कर डाले, तपस्या कर डाले, उपवास कर डाले, पर अहंकार भरे हुए है कि मै शुद्ध हू, मै तपस्याका काम करता हूँ, मुझे मोक्ष जाना है। तो विकल्पोसे तो काम नही हो जाता। जिसका कोई आग्रह नहीं होगा वह ही निर्वाणका पात्र है। मुझे

अपने आपमे विश्वास करना चाहिए कि मै सब जीवोकी भाँति चैतन्यस्वरूप लिए हुए हूँ। उसका कोई नाम नही, आकार नहीं, रूप नहीं, मै तो केवल भावात्मक चीज हूँ, ज्ञानानन्द घन हूँ। यदि ऐसी ही बात होवे तो मैं निर्वाणका पात्र हूँ, सम्यक्त्वका पात्र हू। सम्यक्त्व मेरेसे कहीं बाहर नहीं है।

जैसे नदी या सागरके तटपर पहुचने पर फिर नदी या सागर दूर नहीं। वैसे ही सम्यक्त्व भी मोक्षका एक तट है, उस तट पर पहुचने पर मोक्ष दूर नही। हाँ कोई विरला ही आत्मा आन्तरिक तपस्यासे खिसक जाय ऐसी अवस्थामे निर्वाण कुछ दूर-सा रह जाता है पर अधिक दूर नही रह जाता है और अगर अधिक दूर नहीं रह जाता है तो मोक्षका मार्ग भी ज्यादासे ज्यादा निकट समझिये। यदि सम्यक्त्व बना रहे तो मार्ग अत्यन्त निकट है। सम्यक्त्वमे सही ज्ञान है और सही ज्ञानमे ही उजेला है। वही बना रहे तो निर्वाणका सुख अभीसे है। निर्वाण सुखका ही एक रूप तो आत्मानुभव है।

जैसे आजकल लोग प्रायः मसालेकी लकडीसे रसीला पानी पीते हैं। भरा हुआ गिलास लोग पीते है। उस भरे हुए गिलासमे एक रस है। गिलासमे रस भरा हुआ होता है वही तो एक सतान हो लकडी द्वारा मुहमे जाता है। यद्यपि गिलासमे सर्वांगसमृद्ध रस है और मुहमे अश जाता है, फिर भी वह आंशिक अश व गिलासका रस एकरूप हो रहा है। तो देखो वह एक निर्वाणका सुख है। वह यद्यपि लबालब आनन्दसागर कुछ आगे है, मगर सम्यक्त्वके प्रभावमे उस आनन्दका स्वाद लिया जा रहा है, उसका ही आनन्द लिया जा रहा है। उसके लिये निर्वाण दूर नही है। सम्यक्त्वमे ही आकुलताएँ व्याकुलताएँ नही हो पाती हैं, और सम्यक्त्व भी निर्वाणका एक रूप है। मैं एक भावात्मक वस्तु हूँ। स्थानका नाम ही निर्वाण हो सो नही है। जहाँ भगवान स्वय विराजमान है वही अनन्त निगोद है किन्तु निगोदिया जीव यहाँ जैसे ही निगोदियोकी तरह हैं और भगवान अनन्त आनन्द लिये हुए हैं। यह जीव भी भगवानके स्वरूपके ही समान है। जो अपनेको इस सहज स्वरूपमे नही समझता है वह जन्म-मरणके चक्रमे पडा रहता है। आत्मा जैसे आकारमे है, जिस क्षेत्रमे है उस स्वरूपसर्वांगमे अनन्त आनन्द भरा हुआ है। परन्तु जो आत्मा अपने आपपर विश्वास करता है, अपने आपपर दृष्टि करता है, वह अनन्त आनन्द अपनेमे भरे हुए है इससे उसे शका नही होती। इस अपने अनन्त आनन्दस्वभावी आत्मा भगवानपर विश्वास करता हुआ, अपने आत्माको देखता हुआ चलूँ तो जीवनका प्रत्येक क्षण आनन्दसे पूर्ण होता चला जायगा।

मै एक ज्ञानानन्द पदार्थ हूँ, सत् हूँ, अपने स्वरूपमे हूँ, परके स्वरूपमे नही हूँ, मैं अपने ही द्रव्यसे हूँ और अपने ही क्षेत्रसे हूँ। भैया! प्रत्येक सत्‌मे ४ चीजें पायी जाती हैं—१–द्रव्य,

२–क्षेत्र, ३–काल, ४–भाव । जैसे यह चौकी है तो यह एक वस्तु हुई । जितनी लम्बी चौड़ी तथा मोटी है, यह उसका क्षेत्र हुआ । और काली है कि पीली है अथवा यह चौकी कब तक रहेगी यह हुआ काल, जो उसमे सर्व शक्तियाँ है, योग्यतायें हैं वे हुए सर्वभाव । द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव बने बिना कोई सत् नही हुआ करता है । कोई सत् है तो द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावको लिए हुए है । चाहे वह मूर्त पदार्थ हो चाहे अमूर्त; प्रत्येक पदार्थमे द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावका चतुष्टय अवश्य होना है । आत्माको देखो कि मैं आत्मा गुण पर्याययुक्त होनेसे द्रव्य रूप हूँ, तथा क्षेत्र, काल और भावको लिए हुए हूँ, जो गुण पर्याय है उसका मैं पिंड हूँ, मेरेमे विकार नहीं, विकल्प नही । देखो गुण पर्यायका पिंड आत्मा है । यह सब ज्ञान द्वारा यो बताया जा सकेगा जैसे पुद्गल पिंडको उठाकर बता देते हैं । ज्ञानसे उसका प्रतिसमय कोई न कोई परिणमन है वह ही समझमे आता है कि इसमे जो त्रैकालिक शक्ति है वह गुण है, पर्याय है उसको देखकर कहा जा सकता है कि यह आत्मा एक सत् है । इसमे अन्य द्रव्योंको भाँति द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव हैं । जैसे एक धोती है तो वह एक पदार्थ है, उसको फना दिया जाय तो व्यक्तरूपसे क्षेत्र है और उसका काला, पीला इत्यादि जो रग है वह काल है । उसमे जो शक्ति है वह भाव है । इसी तरहसे यह आत्मा एक द्रव्य है । इसमे गुणका प्रसार है, फैलाव है, यही इसका क्षेत्र हुआ । इस आत्माका क्षेत्र आकाशके किसी क्षेत्रके बराबर नही बल्कि अपने आपमे जितना फैला हुआ है उतना ही उसका क्षेत्र है । भावदृष्टिसे जितना मेरा ज्ञान है उतना ही मेरा क्षेत्र है । यदि मै २-४ कोसकी दूरी तक जानता हूँ तो २-४ कोसका क्षेत्र है और यदि हजारो कोसकी दूरी तक जानता हू तो हजारो कोसका क्षेत्र है । और यदि विश्वके विषयमे जानता हू तो विश्वके बराबर क्षेत्र है । प्रदेशतः जितनेमे यह मै द्रव्य विस्तृत हूँ उतना निजी असख्यात प्रदेश मेरा क्षेत्र है ।

हमारा स्वरूप दुःख रूप नही, क्लेश रूप नही, वे सब केवल हमारे विभाव परिणाम है । इन परिणामोसे ही दुःख होते हैं । यदि हम खोटे परिणाम न करें तो क्लेश नही हो सकते हैं । ऐसी खराब भावनाए हो जानेसे हम विकास नही कर पाते । यदि हम विभाव न करें तो भी हम परिणमते तो प्रतिसमय ही है, जैसे कि प्रत्येक वस्तु प्रतिसमय परिणमता रहता है, इस परिणामको व इसके आधारको जो नही मानता है उनका परिणमन भिन्न भिन्न रूपोमे रहता है । भैया ! इस ज्ञानानन्द भावमात्रको तो देखो । यह देखनेके योग्य है इसमे कोई विकार नही है ।

केवल यह आत्मा स्वरूपसत् मात्र है, इस जगतमे जितने भी पदार्थ है वे सब द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावको लिए हुए है । इस भावस्वरूप चैतन्यका जो ज्ञान करे वह सम्यक्त्व के निकट है, बात कठिन पड़ रही है मगर वस्तुकी यह खास तत्त्वकी चीज है ।

जितने भी दर्शन बने, जितने भी वेदान्त, साख्य, बौद्ध, इत्यादि सिद्धान्त बने, सबकी बुद्धि द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावमे से ही विद्यमान है। यह बात अन्य है कि किसी सिद्धान्त ने एकका ग्रहण किया किसी ने दो का। चारोंका ग्रहण करनेमे वस्तु पूर्ण आ जाती है। अहो, यह मैं आत्मा द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावसे परिपूर्ण अपने सत्‌मात्र हूं। अपने ही द्रव्य मे मै सत् हू। प्रत्येक द्रव्य अपनेमे ही सत्‌रूप होते है। अन्य द्रव्यकी अपेक्षा सत्त्व इस आत्मामे नही होता है।

यह कमडल, यह दरी कोई भी पदार्थ हो, सब अपना-अपना अलग-अलग सत्त्व रखते हैं। ये व्यवहारमे पदार्थ माने जाते हैं, परमार्थसे तो ये पदार्थ नहीं हैं, ये तो पदार्थोके समूह हैं। कभी-कभी इस प्रकारकी दृष्टि बन जाती है कि कोई सर्व पदार्थोंको मिलाकर अपनेको एक सत् मानते हैं। यदि वे स्वतन्त्र सत् नही मानते हैं तो एकान्त अद्वैतवाद आ गया। पर द्रव्योको सत् रूप न देना ही एकान्त अद्वैतवाद है। मैं तो अपने ही क्षेत्रमे सत् हूँ, परके क्षेत्रमे सत् नही हू, ऐसे ही सब अपने अपने ही क्षेत्रमे सत् है। ऐसा मान लूँ तो मेरेमे आकुलतायें व्याकुलतायें नही आवेंगी। और यदि इसके विरुद्ध अपनेको मान लिया तो अनेक प्रकारकी आकुलतायें व्याकुलतायें आ जावेंगी। इस तरहसे मैं अपनेको ज्ञानानन्द, चैतन्यस्वरूप निरखू। और यदि किसीने अपनेको निरखा कि मै पुरुष हूँ, मै स्त्री हू, मैं साधु हूँ, मै अन्य कोई हू तो उसका निर्वाण नही होता, वह दु खके बन्धनमे ही फस जाता है। मेरी दृष्टि बाहर नही होना चाहिए। मुझे यह समझना चाहिए कि मैं सबसे निराला, चैतन्यस्वभावमय पदार्थ हू, मेरेमे वर्ण नही, जातियां नही। मै तो सबसे जुदा हू, ऐसा ही मुझे अपनेको निरखना चाहिए। मै स्त्री स्वरूप नही हू मै पुरुष स्वरूप नही हू, मै किसी अन्य रूप नही हूँ, मै एक चैतन्यमात्र वस्तु हूँ, इस प्रकारसे जो अंतरमे अपने आपको निरखता है वह शांतिका मार्ग प्राप्त कर सकता है।

जैसे कुछ लोग कही बाहर चले जा रहे हैं। मक्खियां सिरपर मंडरा रही हैं। शरीर मे बराबर मक्खियां चोट मार रही है, यदि वे व्यक्ति किसी तालाबमे डुबकी लगा लेवें तो सारी मक्खियोका प्रयास बेकार हो जाता है। वे मक्खियां उन पुरुषोको कष्ट नही दे पाती हैं, वैसे ही इस जगत्‌के जीवपर अनेको विकल्प विपदायें मडरा रही है। यदि इस जगतका यह प्राणी अपने ज्ञानसागरमे डूब जावे तो अनेक प्रकारके जो विकार हैं, वे उन्हे परेशान नहीं कर पावेंगे। ये जगत्‌के प्राणी यदि अपने ज्ञानसागरमे डूब जावे तो उनके विकल्प समाप्त हो जावेंगे। और वे मोक्षके मार्गको प्राप्त करेंगे। मै केवल ज्ञानमात्र हूँ, मेरेमे अन्य अन्य रूप नहीं है, मैं चैतन्यरूप हू। ऐसा मुझे अपने आपको मानना है। इसमे ही मेरी

सर्वार्थसिद्धि

कल्पना यत्र भासंते सोऽहं नास्थिरकल्पनाः ।
श्रद्धामृतं पिबानीदं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥५॥

जहां कल्पनाए प्रतिभासित होती है वह तो मैं हू, किन्तु ये अस्थिर कल्पनाएं मैं नही हूं। इस श्रद्धामय अमृतको पीऊ और मे अपनेमे अपने लिए स्वयं सुखी होऊ। इस जगतके प्राणियोको कल्पनामात्रसे ही क्लेश होने है। जो कुछ वे कल्पनायें बना लेते हैं उन्हे सत्य दीखती है। पर ये सत्य नही होती है। उन कल्पनाओसे उन्हे क्लेश होते हैं। जैसे सोते हुए व्यक्तिको स्वप्नमे सब बातें सही दिखती हैं वह उस स्वप्नमे आनन्दमग्न हो जाता है, परतु ये सब बातें सही नही होती है। जैसे सिनेमाके पर्देमे चित्र उछलना है पर्दा नही उछलता है। पर्दाका स्वरूप चित्र नही हो जाता है। पर्दा तो वही है जिसपर चित्र उछल गए। अपनेमे यह भावना बनाओ कि मैं चैतन्यमात्र हू, मेरेमे सुख दुःख नहीं हैं, सुख दुःख आदि विकार मुझमे उछल जाते है, पर मै तो चैतन्य शक्तिमात्र आत्मतत्व हू। मैं सबसे निराला हूं मेरेमे मोह नही है। मैं तो अविनाशीतत्व हू, मिटने वाला नही हूँ, ऐसी श्रद्धा हे आत्मन् तू अपने आपमे बना।

हे आत्मन्, यदि तू अपने आपको सबसे निराला, शुद्ध, अविनाशी समझे तो तुझे अविनाशी सुख प्राप्त होगे, तेरेमे कभी आकुलतायें व्याकुलतायें नही आवेंगी और यदि तूने अपने आपको इसके विपरीत समझा, मैं तो ससारके समस्त प्राणियोमे मिला हुआ हू, यह मेरी मां है, यह मेरा भाई है, यह मेरी बुवा है यह मेरे फूफा हैं, ऐसी श्रद्धामे तो उस को तो कष्ट ही रहेगा, मैं तो जैसा हूँ वैसा ही सदा बना रहने वाला मैं हू। अन्य अन्य रूपो मैं नही हू यदि तू अपने को अन्य रूपोमे मानेगा तो तुझे क्लेश प्राप्त होग और यदि अपने को भगवान जैसा स्वभावरूपमें मानकर अपनेमे ही रम गया तो तुझमे आकुलतायें व्याकुलतायें नही आवेंगी।

मैं ज्ञानमात्र हू, सबसे निराला हू, ऐसा अपने आपको निरखो। तू अपनेको भगवत्स्वरूप मान, इस तेरेमे तो कोई विकार ही नही दीखने है। तू तो निर्विकार है तेरेमे दुःख कहा हैं। तू तो सदा सुखी है। दुःखोका रच भी तेरेमे नही है। तू अपनेको शुद्ध चैतन्यमात्र समझ, अपने आपको भगवान स्वरूप मानकर अपनी ही अन्तर आत्मामे रम और अपनमे अपने लिए अपने आप सुखी होओ।

देखो भैया! जो आत्मा है वह स्थिर व एक स्वरूप है उसमे जो अस्थिर व अनेक स्वरूप भाव झलकते है वे औपाधिक हैं, वे कल्पनायें मे नही हूँ। किन्तु जिस पदार्थमे कल्प-

भिन्नदर्शी सन्निन्द्रियः संकल्पो न संकरः।
तत्त्वतः सर्वतः प्रत्यक् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥६॥

हे आत्मन, तुझे जगत्से न्यारा बनना है या जगत्मे मिला हुआ रहना है। पहले तो इसका निर्णय कर जगतसे न्यारा रहनेकी स्थिति कैसी होगी तो देखो वहाँ न कुटुम्ब है, न शरीर है, न क्रोध है, न मान है, न माया है, न मोह है, न कषाय है, न इच्छा है, न व्याकुलता है, न आकुलता है, केवल ज्ञानमात्र निराकुल, शांत, तेरी स्थिति होगी। यदि जगत् मे मिला हुआ रहना है तो उसमे स्थिति कैसे होगी ? कुटुम्ब, परिवार, मित्रजन, समागम, प्रशसा, निन्दा, कभी बडा बन जाय, कभी छोटा बन जाय और फिर मरकर मनुष्य हो सकता है और यदि मनुष्य न हो पाया तो कही नरक हो जाय, कही तिर्यंच हो जाय, कही कुछ हो जाय, कही निगोद हो जाय, कीडा, मकोडा बन जाय, उसका कोई भरोसा नही कि वह क्या न बन जावे, निम्न शरीर मिला तो कुछ सोचने समझनेकी शक्ति नही मिलती है, जगतसे मिला हुआ रहनेपर देखो भाई ऐसा हो जाता है।

अब तो निर्णय कर लो कि इस ससारमे न्यारा रहना है या जगत्मे मिलकर रहना

है। यदि तुझे जगतसे भिन्न रहना है तो अपनेको जगतसे भिन्न देख और यदि अपनेको जगतमे मिला हुआ रखना है तो अपनेको जगतसे मिला हुआ देख। यदि जगतसे मिला हुआ रहता उसे संकर कहते हैं तो तू अपनेको जगतसे भिन्न रखनेका प्रयत्न कर। जगतसे भिन्न रखनेका एक सही उपाय यह है कि तू अपनेको जगतसे भिन्न देख। जो अपनेको जगतसे भिन्न देखता है वह भिन्न हो जाता है, और जो अपने को सकर याने जगतसे मिला हुआ मानता है वह संकर अर्थात् जगतसे मिला हुआ रहता है। भाई कल्याणका बडा सरल उपाय है। केवल अन्तरमे अपने आपको मानना है कि मैं ज्ञानमात्र हूँ, निर्मल हूँ, जगतसे न्यारा हूँ। भाई अपने आपमे ऐसी दृष्टि बनाना कुछ कठिन है क्या? अरे यह तो अत्यन्त सरल है मगर अतरग सयम चाहिए। अपनी अंतरग आत्माको सयत कर सको ऐसा ज्ञान चाहिए। देखो भैया! तू कमाने वाला है क्या? हजारो रुपयोका मुनाफा मिलता तो वह तेरी करतूत है क्या? कभी कभी बड़े बडे सेठ लोगोको देखा होगा कि उनके पास लाखो रुपयोकी सपत्ति होती है और वे आयकी प्रत्येक मदोमे जुतते भी नही है। बतलाओ कि उनके पास सपत्ति कैसे आ जाती है। पहिले वे शुद्ध मार्गके प्रेमी थे व अब वे धर्मका कार्य करते हैं, दान करते हैं तो उनके पास करोडोका धन आ जाता है। उन्हे परिश्रम नही करना पडता है। और दूसरे वे लोग जो गरीब है, जो दूसरोको गाली देते है, अधर्मका कार्य करते है, वे लोग बडा परिश्रम करते है फिर भी सपत्ति हाथमें नहीं आती है। धनका आना पुण्योदयपर निभर है। उन व्यक्तियोको देखा होगा कि अचानक ही अपने धार्मिक सत्सगके पास चले जाते हैं। अपने घरद्वार की फिक्र नहीं करते हैं। फिर भी उनको लाखो रुपयोकी आय हो जाती है। पुण्यहीन आसक्तजन दुकान पर बैठे ही रहे तो क्या इससे कमाई हो जायगी। नही हो जायगी। कमाई तो पुण्यसे होती है। अपना कर्तव्य समझकर अर्थ पुरुषार्थका उचित समय पर कार्य करें और धर्मका लक्ष्य करें तो ऐसी स्थितिमे पुण्यवृद्धि होती ही है, तो कमाई होती ही है, और वर्तमानमे भी पुण्य धर्मसे चलते हैं तो लम्बे समय तक सपत्ति साथ रहती है। लक्ष्मीकी चितामे अपनेको अधिक फंसानेकी जरूरत नहीं है। गृहस्थको तो यह देखनेकी आवश्यकता है कि उसके भाग्यसे जो आता है उसके ही भीतर वह गुजारा बनाए। लोग इज्जत करते हैं तो इज्जत करनेके लिए उनके पास पोजीशन चाहिए और यदि पोजीशन नही मिलती है तो मनकी बात नहीं बनती है।

लोग इज्जत रखनेके लिए प्रयत्न करते है परन्तु इस यत्नसे उनकी इज्जत नही रहेगी। परिवर्तनशील ससारमे मौजीपन रखनेका ध्यान करना अविवेक है जिस किसी प्रकार से यदि धन वैभव आता है उस पर विश्वास करना चाहिए कि वह भाग्यके उदयके निमित्त

से प्राप्त होता है। अतः जो कुछ भाग्यवश प्राप्त हो जावे उसपर ही गुजारा करना चाहिए। इस तरहसे जो रहे और अपने आत्मकल्याणकी ओर ध्यान रखे तो वह मजेमे रहेगा। हम कुछ दिनके लिए यहाँ हैं, सदा नही रहेगे। अचानक ही चले जाएगे। यहाँकि लोगोको क्या अपना मानें। अपना पूरा कैसे पडे तथा आनन्द कैसे अपनेमे भरे इसकी फिक्र तू कर तो तेरा भला होगा। यदि तू अपनेको जगतसे न्यारा निरखे, शरीरसे, कषायोंसे न्यारा रक्खे और केवलज्ञान और आनन्दको ही प्राप्त करने की दृष्टि रखे तो तेरा भला होगा। दूसरोंसे मुहब्बत जोड जोड कर तू कब तक गुजारा करेगा? यदि तूने इस प्रकारसे अपना गुजारा भी किया तो यह मोह है। किन लटोरो खचोड़ोको तू अपना मान रहा है वे अपने नहो हैं और देखो मोहका महात्म्य कि जिनसे मोह होता है वे निकृष्ट भी है तो भी अच्छे लगते हैं। उनमे कुछ ज्ञान नही है, उनमे दुर्गुण हैं, वे सब स्वार्थी हैं, गर्जी हैं, उनसे अपना कल्याण नही है, फिर भी उनमें मोह है, उनको आकुलता होना निश्चित है, जिनकी दृष्टि परमे ही होती है उनसे तेरा क्या पूरा पडेगा। अरे! उन भटकने वालोसे अपना सम्बन्ध न स्थापित करो। उनसे तुम्हे कुछ नही मिलेगा। तुझे ससारी ही रहना है तो तू ससारी ही अपनेको देख। यदि तू थककर बने रहनेको चाहता है तो बाह्य पदार्थोंमे ही तू अपनी रुचि बना, तू अपनेको बाह्य पदार्थोंसे मिला जुला रख। यही तेरा ससारी बने रहनेका मुख्य उपाय है।

भैया! अगर अपने को जगतसे न्यारा रखना है तो तू अपनेको जगतसे न्यारा निरख आनन्द तो तेरेमे ही है। तुझे आनन्द कही बाहर से नही लाना है, तू अपनेको यह समझ कि मैं ज्ञानमात्र हू, इसके आगे मैं और कुछ नही हू, इस भावनासे ही तेरेमे तेरा सब कुछ आयगा, तू जगत के अन्य प्राणियोसे भिन्न हो जायगा। मैं कोई ऐसी चीज मुट्ठीमे ले लू और मुट्ठी बन्द करके कहू कि इसमे क्या है? इस बातको मै फिर बताऊँगा कि इसमे क्या है? मैं पूछूँगा कि मेरी मुट्ठीमे क्या है? मैं यह उत्तर देता हू कि मेरी मुट्ठीमे सब कुछ है। चौकी है, ताला है, चाबी है, बाल्टी है इत्यादि। लोग यदि कहे कि दिखलावो तो मैं दिखलाऊँगा। हाथमे कौनसी चीज निकली? स्याहीकी टिकिया। अरे उस स्याहीकी टिकियामे ही सब कुछ है। क्या है? वह बिल्डिग है, बाल्टी है, समुद्र है, चौकी है, सब कुछ है। उस स्याही की टिकियाको पानीमे घोल लिया, फिर उस स्याहीसे बिल्डिग बना ली, बाल्टी बना ली, समुद्र बना लिया इत्यादि। यह देखो एक स्याहीकी टिकियासे ही तीन लोककी रचना कर दी। बताओ ये सब कहांसे आए? अरे ये सब स्याहीसे ही आए। अब मेरे हाथमें बन्द चीज है कि इसमे सब कुछ है। यह एक विनोदकी बात है, मेरे हाथमें सब कुछ है। यहाँ

प्रकृत बात पर आइए ।

मेरेमे क्या है ? मेरेमे सब कुछ है । मेरेमें ज्ञान है, वह ज्ञान ही सब कुछ है । ज्ञान की विचित्र कलासे ही देखो—यहाँ राग है, मोह है, शोक है, ज्ञानका अंधेरा है, ज्ञानका उजेला है, ये सब ज्ञानके ऊपर ही निर्भर है । बडी-बडी विपदाओंके सामने यदि ज्ञानसे काम लें तो विपदायें दूर हो सकती है । ज्ञानके बिना आकुलतायें व्याकुलतायें दूर नही होती हैं । कल्पनायें करके ही विपदा बना ली जाती है । देखो कोई एक नौजवान लडका है । अभी अभी चार-छः वर्ष शादीके हुए है, दोनोंमे परस्पर प्रीति है । एक दूसरेके जीवन आनन्दसे व्यतीत हो रहे हैं याने दोनो ही एक दूसरेके इष्ट बने है और यदि स्त्री किसी कारणसे गुजर जाती है तो स्त्रीके पीछे उस पुरुषको कितना क्लेश होगा ? वह पुरुष यह समझ लेगा कि हाय मेरे लिए सब कोई मर गया । इस प्रकारसे वह व्यक्ति २४ घटे दुःखी होता रहता है ।

यदि वह व्यक्ति अपना ज्ञान बनावे अथवा उस व्यक्तिका ज्ञान जग जाय कि अरे ये स्त्री पुत्र वगैरह मेरे कहीं कुछ नही हैं, यह सब माया है, ये सब अपना-अपना अलग अलग अस्तित्व रखते हैं, उनसे मेरा परमाणु मात्र भी सम्बन्ध नही है, ऐसा यदि यथार्थ ज्ञान जग जाय तो उसकी विपदाए समाप्त हो जावें । बाकी अन्य उपायोसे विपदाए समाप्त नही हो सकती हैं । चाहे दूसरी शादीकी बात चलने लगे, धन दौलत मिल जाय, जेवर गहना मिल जाय, सारी चीजें मिल जावें, मगर जो इष्ट उसके दिलमे बस गया है उसकी कल्पना उसे दुःख देती रहती है । उसका केवल ज्ञान जग जाय तो सारी विपदाए समाप्त हो जावेंगी व्यापारमे भी ऐसा ही होता है, कोई समय ऐसा आवे कि चारो तरफसे नुक्सान हो जावे, तो चारो तरफसे नुक्सान होने पर उस व्यापारीको दुःख हो जाता है कि हाय मैने कितनी कमाई की, सब चला गया, नुक्सान हो गया । अरे व्याकुल हो जानेसे क्या धन वापस लौट आयगा । क्या उस नुक्सान होने वाले धनको कोई वापस कर जायगा । अरे नही कोई धन वापस नही दे जायगा । उल्टे लोग तो उसे लूटनेको सोचते है और सोचेंगे ।

दुःख दूर करनेका उपाय तो यह ज्ञान ही है जिस ज्ञानसे यह जाना कि वह तो भिन्न चीज है । तू उस धनकी चिंता न कर, अरे तुझे तुझसे बाहर कोई शरण नही मिलेगी, तू व्यर्थमे शोक मत कर, तू व्यर्थमे मत घबडा, तेरे शोक करनेसे तुझे लाभ नही मिलेगा, तुझे तो केवल तेरे ज्ञानसे लाभ मिल सकता है । ज्ञानको छोडकर अन्य किसी चीजसे लाभ नही प्राप्त होता है । अरे मुझे पार कौन कर देगा ? जिस भगवानकी हम उपासना करते है क्या वह हमे पार कर देगा । भगवानकी उपासना करके अपने स्वरूपकी पहिचानो अपने आपके स्वरूपको निर्मल बनाओ तो यह निज भगवान तुम्हे पार कर देगा और तुम पार हो जावोगे ।

भैया! हमारे आचार्योंने हम लोगोको करुणा करके समझाया है कि तू तो पवित्र ज्ञानमय है, तेरेमे तो कोई क्लेश हैं ही नही, तू तो सर्वोत्कृष्ट है, दुःखी क्यो हो रहा है? अरे इन बाहरी पदार्थोंमे जिनमे तू दृष्टि डालता है वे सब असार हैं, अहित करने वाले हैं, भिन्न हैं। इसलिए जब कभी परमे दृष्टि होगी तब क्लेश होंगे। वे परपदार्थ तेरे लिए शांतिके कारण नही होगे। तू उनके लिये क्यो मरता है? अपने स्वरूपको तो देखो। तू तो परमार्थ स्वरूप है। अपने आपको देख तो प्रभु हो जायगा। भैया! बतलाओ तो जरा कि अपने आपको जगतमे सब पदार्थोंसे निराला मान लेनेमे क्या बिगाड हो जायगा? अपनेको सबसे निराला मान ले तो तेरे सभी दुःख समाप्त हो जायेंगे। ठीक-ठीक ज्ञान कर ले तो सारे दुःख दूर हो जावेंगे। यदि इसके विपरीत तूने अपनेमे आपका ज्ञान न किया, भीतरमे ज्ञानका अधेरा ही रहा तो आजीवन तुझे क्लेश ही रहेगे और तू जगजालमे फंसा रहेगा। तू अपनेको निर्मल देख, अपनेमें ज्ञान उत्पन्न कर ज्ञानमात्र आत्मस्वरूपके लक्ष्यमे हमे अविनश्वर आनद मिलेगा।

भगवानकी वाणी एक आध घन्टे पढ लिया, सुन लिया और बाकी समय मोहियोके सगमे रहते है तो फिर वे ही सोचें कि अपनेको कैसे सम्हाला जायगा। उनको तो वे मोही प्राणी ही रुचते हैं। उनके लिए वे ही सब कुछ हैं। भयानक विपत्तियाँ उन मोहियोंसे मिलती हैं फिर भी वे उन्ही मोही प्राणियोके पास दौडते हैं। और जिनसे अपना उद्धार होगा उनको पहिचानते भी नही हैं। जो अपनेको शुद्ध आत्मतत्त्वरूप देखेगा वह शुद्ध बन जायगा। मैं मनुष्य हू, मैं अमुकचन्द हू, मैं फलां हू, ऐसी दृष्टि अगर बन गयी तो क्रोध, मान, माया, मोह इत्यादि ही बढ़ जावेंगे और अहकार भीतर आ ही जायगा। इस प्रकारसे मैं अशुद्ध बन जाऊँगा। हे आत्मन्! तेरे ऊपर कूडा लदा है। तू इस कूडेकी फिक्र मत कर। तू अपनेमे विद्यमान ज्ञानके उजेलेको सम्हाल, अपनेको देख कि मैं सबसे निराला ज्ञानमात्र हू। तू अपनेको यदि ज्ञानमय देखेगा तो तेरे सारे क्लेश, सारी विपदायें, सारे कूडे खतम हो जायेंगे। तू अन्य की चिंता न कर। तू तो अपने भीतरको शुद्ध देखनेका पुरुषार्थ कर।

भैया! जो अपनेको शुद्ध देखता है वह शुद्ध हो जाता है और जो अपनेको अशुद्ध देखता है वह अशुद्ध हो जाता है। बहुत सी चीजें मिल जायें फिर भी किसी जीवमे किसी दूसरी चीजका प्रवेश नही। एक बोरेमे गेहू, चना, मटर इत्यादि मिल गये हैं फिर भी वे सब सबसे न्यारे हैं। समुदायोको देखकर कहते हैं कि मिल गए है, पर उनके स्वरूपको देखें तो सब न्यारे हैं। और भी चीजें देखें जैसे कि दूध और पानी मिल गया हो तो समुदायमे कहते हैं कि दूध और पानी मिल गया, पर दूध अलग है और पानी अलग है। दूधमे दूध है और पानीमे पानी है। अब भी दूधमे पानी नही मिला और न पानीमे दूध मिला। सब

न्यारा न्यारा है। यद्यपि यहाँ जीव शरीरसे न्यारा नही रहता है, क्योंकि यदि हम चाहें कि शरीर कि यही रहे और मेरा आत्मा किसीके पास पहुच जाय तो आत्मा शरीर छोड़कर आगे नही पहुच जायगा। तो भी शरीरमे शरीर है और आत्मामें आत्मा है। इस विज्ञानको जानना अधिक कठिन नही है। केवल भेदज्ञानका यंत्र चाहिये, पता चल जावेगा। जैसे दूध और पानीको अलग-अलग समझनेका यत्र होता है, यंत्रोके द्वारा दूध और पानीको अलग-अलग-अलग समझ लिया जाता है। इसी तरह मिले हुये शरीर और आत्माको, आत्मा और शरीरको पृथक् निज-निज स्वरूपमे समझनेका यंत्र चाहिये। वह है क्या ? प्रज्ञा स्वरूपकी दृष्टि और स्वलक्षणदृष्टि।

भैया ! इन्द्रिय संयत कर लो। इन्हीकी उद्दण्डतासे बरबादी होती है इन्द्रियको संयत करके अपनो अन्तर आत्मामे चला जा, अपने आपका ध्यान कर, ऐसा निर्विकल्प ध्यान कि इस शरीरका भी ध्यान न रहे, इन इन्द्रियोको भी ध्यान न रहे तो अनुपम सुख प्राप्त होगा। तू इन्द्रियोको निःसंकोच उपयोगसे त्याग दे। किसी भी इन्द्रियका रच भो कार्य न रहे त' तुझे तो तेरा स्वलक्षण साक्षात् ज्ञात हो जायगा कि जो केवल ज्ञानका वर्णन है वही तो तेरे स्वरूपका वर्णन है। तू अपने स्वरूपको पहिचान ले तो तू प्रभु हो सकता है। जिन्होने जगत भिन्न अपनेको देखा है वे जगतसे भिन्न होकर भिन्न ही चलते रहेगे। और जो अपनेको मिला हुआ देखता है कि मैं अमुक हू, मैं साधु हूँ, मैं ऐसा बलिष्ठ हू, यह गृहस्थ है, यह साधु है, यह मनुष्य है, घरमे रहता है, श्रावक है इत्यादि, तो वह इस जगतसे मिला हुआ ही चल' रहेगा। और आजीवन ही उसको क्लेश रहेगा। जो व्यक्ति अपनेको सबसे मिला हुआ सम झता है व सबसे बोलता चालता है, देखता सुनता है, सबसे सावधानीसे मिलता है, पर आत्मकल्याणको फिक्र नही करता है, वह इसी कारण जीवनभर दुःखी रहता है। अगर भीतर के सत्मे स्वयं निरखें कि मैं तो सबसे निराला केवल ज्ञानमात्र, शुद्ध हू तो हमासे यह दृष्टि वह चिनगारी है जो कि विपदाओके कर्मोके पहाड़ोके पहाडोको जला सकती है। यह एक छोटी दृष्टि, सूक्ष्म दृष्टि है, मगर वह इतनी चमत्कारिणी है कि वह सारे पहाडोको भस्म कर सकती है। यदि इतनी अपनी बातको सम्हाल लिया कि मैं जगतसे निराला ज्ञानमात्र, अपनी स्वरूप सत्तामात्र त्रैकालिक शक्तिको लिए हू तो हे प्रियतम तू प्रभु बन जायगा।

देखो एक शब्दकी बात, पतिके कितने नाम है—प्रियतम बोलते है, सनम बोलते हैं, बालम बोलते है, सैया बोलते हैं, पिया भी बोलते हैं। ये सब क्या है ? ये सब आत्माके नाम हैं। पिया वह कहलाता है जो प्रिय है। मगर यह बताओ कि तुम्हारा पिया कौन है ? फ [illegible] तुम्हारा पिया तुम्ही हो। अगर जान पर कोई आफत आ जाय तो यदि हाथमे लड़ [illegible]

हो तो अपनी जान बचानेके लिए लडकेसे भी मोह छोड देगा। इसलिए तेरा प्रिय दूसरा नही है तुम्हारा प्रिय (पिया) तुम ही आत्मा हो। पीतम शब्द बना है प्रियतम शब्दसे यानि जो ज्यादा प्रिय हो। जैसे—गुड, बैटर, बैस्ट (अच्छा, अधिक अच्छा, सबसे अच्छा) रूप बनते है तारतम्यमे, वैसे ही प्रिय, प्रियतर, प्रियतम हैं। 'प्रियतम' शब्दके मायने है जो सबसे अधिक प्रिय हो। तेरा प्रीतम कौन है? तेरा प्रीतम आत्मा है। आत्माको छोडकर अन्य कोई तेरा प्रिय अधिक नही है। कितने ही तो धर्मकी खातिर सब कुछ छोड देते हैं।

सीता जी अग्निपरीक्षामे उत्तीर्ण हो गयी। जब वे अग्निमे कूद रही थी तब क्या ऐसा विचार हो सकता था कि हम बच जावें तो फिर घरमे आनन्दसे जावें, उनकी तो धर्म मे प्रीति थी। सब कुछ छोडकर एक आत्मधर्ममे रुचि थी। हमारा घर छूटा जा रहा है इस विकल्पकी तो सम्भावना भी नही थी। उनके लिए धर्म ही प्रिय था। वह सोचती थी कि यदि बच जाऊँगी तो धर्मसे ही रहूगी। धर्मके मायने है स्वभावरमण, सही स्वरूपको जानने व उसमे रमनेका नाम ही धर्म है। प्रीतम तुम्हारा कोई नही है। तुम्हारी आत्मा ही तुम्हारा प्रीतम है। बालमको बल्लभ बोलते हैं। बल्लभका अर्थ प्रिय है। सैया बना है स्वामीसे। अब यह बतलाओ कि तेरी आत्माका स्वामी है कौन? तेरा स्वामी तो तू ही है, तेरा सैया तो तू ही है।

देखो भगवानकी भक्तिसे भगवानके मत्र विशेषण लगने है। हे भगवान, हे प्रियतम, हे प्रिय, हे सैंया, साँइयाँ तो भजनमे भी इन्ही शब्दोको कहकर भगवानके गुण गाया करते है। भगवान और आत्मामे भेद क्या है? स्वभावको देखो कुछ भी भेद नही। तो यह आत्मा ही तुम्हारा बालम है, तुम्हारा सैंया है, तुम्हारा प्रिय है तुम्हारा प्रियतम है, तुम्हारा सर्वस्व है। और हे आत्मन्! इस दुनियामे तेरा कुछ नही है। सबसे निराला अपने आपको देखो। यदि सबसे निराला इस जगतमे तू अपने आपको नही देखता है तो इस ससारमे तू रुलेगा।

अब देखो जिसकी कल्याणमे लगन लगी है उसको दूसरी चीज सुहाती नही। हे आत्मन् तुझे तो कल्याण चाहिए। तेरा काल्पनिक लौकिक वैभव चाहे लुटता हो, परवाह न करना चाहिए। ज्ञानकी बातको ज्ञानी ही समझ सकता है और अज्ञानी ज्ञानकी बातोको नही समझ सकता है। ज्ञानी व्यक्ति मोही व्यक्तिको भी परख सकता है, पर मोही तथा अज्ञानी व्यक्ति मोहीको भी नही परख सकते हैं और ज्ञानीको तो परखेंगे ही क्या? देखो ये दो भैया भिन्डसे आए हैं। जैसे कोई तो पर्वको घरसे निकलता है फिर पर्वके बाद घर जाता है किंतु हमको तो सभी दिन पर्वके दिन है। ये सिखा रहे हैं आपको कि परवाह न करो, घर का काम तो चल ही जायगा उसकी चिन्ता न करो। अगर तुम चिन्ता न करोगे तो क्या

तुम्हारे घर काम नही चलेगा ? चिन्ता न करो घरका काम तो चलेगा ही, जैसा चलना होगा। चिन्ताएँ नही करनी चाहियें। चिन्ताएँ करनेसे नुक्सान है। भीतरसे जब आत्म-कल्याणकी भावना रहे तो शांति प्राप्त हो सकती है।

सुकुमाल स्वामी मकानसे चले। जिसका शरीर ऐसा सुकुमार था कि कमलकी बास मे पहुचने वाले चावल ही जिसके गलेसे निगले जा सकते थे, जिसको रोशनी देखते ही आँसू आ जाते थे, ऐसे सुकुमार जब विरक्त हुए; घरसे चले, नगे पैर चले जा रहे थे, खून बह रहा था। अब उनके लिए वैभव, वैभव नही रहा। वे साधु हो गए। ध्यानमे वे बैठ गए ऐसी सुकुमार अवस्था थी जब कि इन्होने अपने शरीरको तपस्यामे लगा डाला था और देखो अन्त मे उनको एक स्यारनीने खाया था। क्या उन्हे कष्ट था ? कोई कष्ट नहीं था। यदि कष्ट मानते हो तो कष्ट है और यदि कष्ट न मानो तो कष्ट कही नही है। अरे देखो रात दिन कितने गृहस्थीमे संकट सहते हैं, किन्तु कष्ट नही मालूम होते हैं पर धर्मके कामोमे कष्ट मालूम होते है। जहाँ मन नही लगता है वहाँ कष्टोका नाम लगता। धर्मका काम जहाँ पर हो रहा हो वहाँ बैठनेमे ही मोही आत्मा परेशान हो जाता है। जहाँ थोडा सा भी समय हो गया, कहते हैं कि अरे १ घन्टा हो गया, दो घन्टे हो गये। पौन घन्टेमे हो जाना चाहिए था, स्वाध्याय जल्दी खत्म हो जाय तो अच्छा है। यद्यपि गृहस्थीके कार्योमे या गप्प सप्पके काममे वे आरामसे घुटने टेके बैठे रहे, कोई परेशानी नही है, कितनी ही अडचनें हो फिर भी उनको परेशानी नही होती है, आत्महितमे प्रमाद किया जाता है।

भैया ! अन्दाज कर लो कि जिसका जिसके ऊपर मन रमा है, वहाँ चाहे जितने कष्ट हो, कष्ट नहीं हैं और जिसका मन जिस किसीमे नही रमता है, वहाँ यदि कष्ट भी नही हैं तो कष्ट कल्पनासे आ पडते है। कल्याणका उपाय सरल है। जरा अपनेको ज्ञानमात्र, सबसे निराला तो देखो। अपने भीतरके स्वरूपकी ओर तो देखो तो भिन्न हो जाओगे, परमात्मा हो जाओगे। यह मैं तो ऐसा ही हू। इसलिए अब अपनेको सहज सत्य स्वरूपमे देखकर अपनेमे अपने आप विश्राम पाऊ। आखिर सब दुःखोसे छुटकारा पाना हो तो हित है। दुःख लगे हैं परके सगमे सो परसगसे मुक्त होनेके लिए परसे भिन्न अपनेको देखू और अपनेमे अपने आप निराकुल होऊ।

न मे लोको न चाज्ञातो नष्टो नष्टे विकल्पिते।
तदित्थं ज्ञानमात्रोऽह स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥ ७ ॥

पदार्थोंके जाननेके प्रसगमे तीन बातें हुआ करती हैं। एक तो शब्द पदार्थ, दूसरे अर्थ पदार्थ, और तीसरे ज्ञान पदार्थ। जैसे यह चोकी है तो यह तीन तरहकी होगी। शब्द,

चौकी, अर्थ चौकी और ज्ञान चौकी। घरमे भी शब्द घर, अर्थ घर और ज्ञान घर ऐसे ये तीन शब्द वस्तुओंके हुआ करते हैं। शब्द चौकीके मायने 'चौकी' ये दो अक्षर जो कि मुखसे बोला जा रहा है कि यह तो 'चौकी' है या किसी कागजपर लिख दिया जाय 'चौकी' और वे अक्षर दिखाकर अगर आपसे पूछें कि यह क्या है तो क्या कहोगे ? यह कहोगे कि यह चौकी है सो यह हुआ शब्द चौकी। यह काम करने वाली चौकी नही है। जैसे रोटी है उसमे भी शब्द रोटी, अर्थ रोटी और ज्ञान रोटी—ये तीन प्रकारकी समझनी चाहिए। किसी कागज पर लिख दें और आपसे पूछें कि यह क्या है तो आप बतलायेंगे कि यह रोटी है। यह रोटी किसी कामकी नही है। इससे क्या आपका पेट भर जायगा, उस रोटीसे क्या आपकी भूख मिट जायगी ? नही। वह अर्थ रोटी नही है। जो बनी हुई होती है, जिसको खाते हैं वह है अर्थ रोटी। ज्ञान रोटीके मायने यह है कि रोटीके बारेमे जो ज्ञान हो। इसी तरह अर्थ चौकी यह है जिसपर हम पुस्तक रखते हैं और ज्ञान चौकी वह होती है जो कि चौकीके बारेमे ज्ञान होता है। उस ज्ञानका नाम है ज्ञान चौकी। इस तरह पदार्थमे तीन चीजें हैं—शब्द पदार्थ, अर्थ पदार्थ और ज्ञान पदार्थ।

इसी तरह लोकको भी तीन तरहसे देखो, शब्द लोक, अर्थ लोक और ज्ञान लोक। यह जितना भी लोक है, यह दुनिया जितनी है वह है अर्थ लोक। क्या अर्थ लोक मेरा है ? नही, मेरा नही है, वह तो मुझसे भिन्न है, वह मेरा नही है। जो लोक शब्द लिखा है या लोक शब्द बोलें तो क्या वह लोक मेरा है, नही। यह तो कवल शब्द लिखा है। यह तो शब्द लोक है। यह शब्द लोक मेरा है क्या ? नही, यह मेरा नही है। शब्द भी मुझसे भिन्न है। दुनियाके बारेमे जो ज्ञान होता है वह ज्ञान लोक है। वह मेरा पर्याय है, फिर भी मेरा नही है क्योकि वह विकल्प है। यह विकल्प नष्ट तो हो जाता है पर इस विकल्पके नष्ट हो जानेसे क्या यह लोक भी खतम हो जाता है। लोक खतम होता है अपनी परिणतिसे। और भी समझ लीजिए—शब्द चौकी, अर्थ चौकी और ज्ञान चौकी होती हैं पर आपको दिखती केवल एक यह अर्थ चौकी है। चौकी शब्द बोला गया, वह क्या है, शब्द चौकी। जिस पर यह किताब रखते हैं यह क्या है ? यह है अर्थ चौकी और, चौकीके संबधमे जो ज्ञान बन रहा है वह है ज्ञान चौकी। उस शब्द चौकीमे हमारा कुछ लगता है क्या ? वह तो शब्द है, अक्षर है, वह तो हमसे भिन्न है। क्या अर्थ चौकी हमारी है ? नही वह हमारी नही है, वह हमसे भिन्न है। ज्ञान चौकीको अपनी कह सकते हो। वह विकल्पमात्र ही तो है। उस कल्पनाकेनष्ट हो जानेपर क्या यह चौकी नष्ट हो जाती है, नही। चौकी नष्ट होती है उसकी ही परिणतिसे। इसी तरह यह लोक मेरा नही है और लोक अज्ञात है, ऐसा भी

नही है । जाननेमें यह लोक आ रहा है । मगर वह जानना क्या है, विकल्प है । ज्ञानकी एक पर्याय है । उसके नष्ट हो जाने पर यह लोक नष्ट हो जाता है क्या ? यह सब कुछ लोक मैं नही हूँ मेरा नही है । अब मैं क्या रहा । केवल एक ज्ञानमात्र ही रहा ।

अब भैया ! देखो भगवानको, तो उस भगवानकी भी तीन किस्म हैं—शब्द भगवान अर्थ भगवान और ज्ञान भगवान ! मै मुखसे भगवान शब्द बोल दू, या किसी कागज पर भगवान शब्द लिख दूं तो वह क्या है ? क्या वह भगवान है, कौनसा भगवान है ? भैया ! वह ज्ञान, या अर्थ भगवान नही है । वह तो शब्द भगवान है । अर्थ भगवान कौन है ? सयोगकेवली व अयोगकेवली व गुणस्थानातीत, ये है अर्थ भगवान । जैसा भगवान है उस भगवानके बारेमे जितना ज्ञान होता है वह ज्ञान भगवान कहा जायगा । भगवानके बारेमें जो विकल्प होते है, ज्ञान होता है वह कौनसा भगवान है ? ज्ञान भगवान है । तो आपकी भेंट क्या उस शब्द भगवानमे हो सकती है ? अर्थ भगवानसे हो सकती है ? नही । इस ज्ञान भगवानसे ही हमारी भेंट हो सकती है । भगवानके बारमे हम ज्ञान जायें और उसी जाननेमे हम तन्मय हो जायें तो उस भगवानसे भेंट हो सकती है । शब्द भगवान तो अन्य पदार्थ है, उसे मैं नही जान सकता । मैं तो केवल ज्ञान भगवानको ही जान सकता हू, उस ज्ञान भगवानको ही पूज सकता हूँ । मैं ज्ञान भगवानकी ही भक्ति किया करता हू । मैं शब्द भगवान तथा अर्थ भगवानकी भक्ति न ही करता हू, और न कर सकता हू ।

कुटुम्बकी बात देखो । पुत्रमे भी शब्द पुत्र, अर्थ पुत्र और ज्ञान पुत्र होते हैं । जरा शब्द पुत्रसे कहो कि एक गिलास पानी दो तो क्या वह ला देगा ? अरे वह तो किसी कागज पर पुत्र शब्द लिखा है या बोला हुआ शब्द है, सो वह सब पुद्गल है । वह कैसे पानी ला देगा ? अब जरा अर्थ पुत्रको देखो जो कि घरमे बैठा है, दो हाथ, दो पैर वाला हैं, जो पुत्र आपके घरमे जन्मा होवे, वह है अर्थपुत्र । ज्ञानपुत्र वह है जो पुत्रके बारेसे ज्ञान बनावे । आप यह बतलाइए कि शब्दपुत्रमे आप मोह करते हैं कि अर्थपुत्रसे या ज्ञानपुत्रसे आप मोह करते हैं । अरे शब्दपुत्रसे तो तू मोह करेगा कैसे ? क्योकि वह तो भाषावर्गणारूप पुद्गल चीज है, उससे तू तन्मय नही हो सकता । आप तो अपने ज्ञान पर्यायमे तन्मय हैं । पुत्र शब्द से तू मोह करेगा नही । तो क्या तू अर्थपुत्रसे मोह करता है जो घरमे बैठा है । वह भी अन्य पदार्थ है उसमे भी तेरी पर्याय नही पहुचती । उससे भी तू मोह नही करता, और न कर सकता है, क्योकि वह तो भिन्न पदार्थ है । अर्थपुत्रसे भी तू मोह नही कर सकता । फिर किससे तू मोह करता है ! पुत्रके बारेमे जो विकल्प बनाया, जो ज्ञानकी परिणति बनायी उस ज्ञानपुत्रसे ही तू मोह करता है । इस तरहसे आप ज्ञान पुत्रसे मोह करते हैं अर्थात् पुत्रके

बारेमे जो आपको विकल्प होते हैं उन विकल्पोसे आप मोहसे करते हैं, उन विकल्पोसे आप मोहसे करते है। पुत्रसे मोह नही करते हैं। यह यथार्थ बात कही जा रही है। यह भी समझनेकी चीज है जिससे कि मोह घटता है।

मोह करनेसे ही आकुलताएँ है। बाह्य तो बाह्य ही है। मै तो अपने ही विकल्पमे तन्मय हूं। मैं अपने ही विकल्पसे मोह करता हूं और अपने ही विकल्पसे जला भुना करता हू। दूसरोसे मै न राग कर पाता और न द्वेष कर पाता। मै तो अपने आपमे ही राग और द्वेष किया करता हू। इसी कारण मेरे विकल्प नष्ट होते रहते है और बनते रहते हैं। अब जरा और भी बात सोचो कि विकल्प नष्ट होनेमे क्या वे बाह्य पदार्थ भी नष्ट हो जाते हैं या वे बन जाते है ? नही, वे तो अपने स्वरूपचतुष्टयसे ही आविर्भूत तिरोभूत होते है। वे वे ही है और हम हम ही है। ये सारी बाह्य चीजें कुछ भी मेरी नही हैं। मेरा तो मात्र मैं ही हू यह लोक मेरा नही है। मैं तो ज्ञानस्वरूप हूं इससे लोक अज्ञात भी नही है। और यह ज्ञान मुझसे छिपा हुआ नही है इस ज्ञानसे जाननेमे सब कुछ आयगा। जाननेमे आ गया तो मरेमे कुछ अन्य नही आ जाता और जानना अगर मिट गया तो चीज नही मिट जाती है।

भैया ! जितने भी शास्त्र ज्ञान देते है उनका सार तत्त्व यह है कि भाई, अन्य चीज अन्य ही है और मैं मैं ही हूँ, मुझमे मैं हूँ, परमे पर हैं, वे सब अपनेमे भिन्न है। फिर खोटी कल्पनाएँ करना कि यह मेरी है, यह उसकी है, यह सब क्या है ? जैसे बाह्य वस्तुओंको सुखकारी मानते हो, कल्याणकारी मानते हो तो असलमे देखो तो वे ही निमित्त रूपसे दु ख के कारण बन रहे हैं। कौनसे ऐसे पदार्थ हैं जो मेरी शांतिके कारण हैं।

एक गुरु शिष्य थे। शिष्य गुरुके पास पढने आता था। एक दिन वह देरसे आया। गुरु जी ने पूछा कि देरमे क्यो आए ? शर्मीले शब्दोमे कहा कि मेरी सगाई हो रही थी। गुरु जी कहने लगे कि अब तो तुम गाँवसे गए अर्थात् अब तुम्हारा गावसे मोह नही रहा। सगाई हुई कि घरसे गए। जहाँ सगाई की, वही दृष्टि गयी। अब तो तुम्हारा अपने घरसे भी मोह नहीं रहा। कई दिन बाद वह शिष्य फिर देरसे पहुचा। गुरुजी ने पूछा कि देर क्यो हो गई ? शिष्यने कहा कि शादी हो गई। गुरुजीने कहा कि अब तो तुम अपने माँ बापसे भी गए। उनको तू नही पूछेगा। और फिर गुरुजी ने कहा कि कुछ दिन बादमे बच्चे होंगे तो तू अपन से भी जायगा। तू उन बच्चोमे ही लगा रहेगा। कमायगा, खिलाएगा, उनका पालन पोषण करेगा। इस तरह तू बाहर-बाहर ही रहेगा और अपने आपको भूल जायगा। अरे ये तो बाहरी पदार्थ है। इनमे तू क्यो पडता हैं, इनसे तो तेरेमे आकुलताएं आवेंगी, और तुझे शाति नही प्राप्त होगी।

भैया ! ज्ञानमे यह ज्ञान है, मुझमे मैं हूँ, बाह्यमें बाह्य है, ये सब स्पष्ट भिन्न रूपोमे नजर आते हैं, सब अपना भिन्न-भिन्न अस्तित्व रखते हैं, यदि ऐसी दृष्टि आवे तो उसे ज्ञान कहते है । ज्ञान हो और मोह दूर न हो यह नही हो सकता है । ज्ञानका स्वभाव ही है कि वह मोहके आवरणको हटाता है । सूर्यका जब उदय होता है तो अन्धकार हट जाता है । इसी प्रकार जब भीतरमे ज्ञान उगे तो मोहका अन्धकार मिट जाता है । मोहका अन्धकार ज्ञानके उदय होनेपर मिटे नही, यह नही हो सकता है । यदि मोह अभी मिटा नही है तो समझो कि अभी ज्ञानका उदय नही हुआ है । ज्ञानके होने पर राग तो कदाचित् हो जाता है पर मोह नही हो सकता है । राग और मोहमे अन्तर है । राग उसे कहते हैं जो वस्तुओ को सुहा देवे और मोह उसे कहते है जो बाह्यको यह समझे कि यह मेरा है या यह मैं हूँ । बाह्य वस्तुमे ममत्वबुद्धि कर लेना हो मोह है और बाह्य वस्तुयें सुहा जानेका नाम ही राग है । मोहमे है अज्ञानताका अधेरा और रागमे है परका लगाव । ज्ञान होनेपर कदाचित् किसी रूपमे परमे लगाव तो हो सकता है पर अज्ञानताका अधेरा नही हो सकता है । यह मोह तो उत्पन्न होता है लगावसे लगाव रखनेसे । लगाव पर वस्तुओमे हो जाता है और उन पर वस्तुओमे लगाव हो जानेसे विकल्प हो जाता है और उस विकल्पमे लगाव रहने से मोह उत्पन्न हो जाता है । जिसे कहते है रागमे राग, पर वस्तुओमे राग हो गया है, यह राग का काम है और रागमे यह वासना होना कि यह राग मैं हू, रागसे ही मेरा कल्याण है, मेरी भलाई है, यह हुआ रागका राग । रागमे राग हो जानेका नाम ही मिथ्यात्व है । यह महान् अन्धकार है । सो मैं परपदार्थ रूप नही हूँ पर पदार्थोंके विषयमे होने वाला जो सकल्प विकल्प का जाल है उस रूप मै नही हूँ । मै तो अनन्त आनन्दरूप, त्रैकालिक ज्ञानस्वरूप हू । सो मै अपनेमे आपको निरखकर अपने लिए अपने आप स्वयं अपनेमे सुखी होऊं ।

अब मै कैसा हू, इस विषयमे कहते है कि—

> देहे स्थितोऽपि न स्पृष्टो नानाकारो निराकृति ।
> जानन् सर्व न सर्वोऽह स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।। ८ ।।

मैं देहमे ठहरा हुआ हू फिर भी देहसे नही छुवा हू । मैं उस देहसे मिला हुआ भी नही हूँ । देह तो जड है । मै चेतन हूँ, मै अमूर्त पदार्थ हू । यह तो मूर्त है । तो इस मूर्त पदार्थमे एक अमूर्त पदार्थ मिल जाय तो यह कैसे हो सकता है ? मिल तो मूर्तमे अन्य मूर्त पदार्थ भी नही सकता । अतः यह आत्मा इस शरीरमे रहते हुए भी शरीरसे जुदा है । अरे तूने परिवारको अपना माना है, पुत्रोको अपना माना है । यह बतलाओ कि क्या वे तेरे हैं ? नही, वे तेरे नही है । इनमे तुम किस लिए फसे हो, क्या वे तेरे है ? नही, वे तेरे नही हैं । इनमे

तुम किसलिए फसे हो ? ये बच्चे जो हैं इनमे तू फंसा है। अच्छा बता, कैसे फसा है ? ये तेरे नहीं हैं और न कभी तेरे हो सकेंगे। भाई आप तो यहां मोजूद है। कुटुम्ब परिवार इत्यादि कहीके कहीं बैठे हुए है। आप उनसे किस तरहसे बंधे हुए हैं, किस तरहसे फंसे हुए हैं। आप उनसे बंधे हुए नहीं है। आप अपने कुटुम्ब, परिवार इत्यादिसे फंसे हुए नहीं हैं। केवल आपने कल्पनाए बना ली है और उन कल्पनाओंसे ही मोह बना लिया है यही कारण है कि तू अपनेको यह समझता है कि मै परिवारमे फंसा हू।

भैया ! अब यह ख्याल न कर कि मैं फंसा हुआ हू। किससे फंसे हो जरा बताओ तो। अपनी कल्पनाओंको छोड दे तो तू किसी बन्धनमें नहीं है। मैं तो अमूर्त हूँ, चैतन्यस्वरूप हू तो फिर मैं कैसे फंस गया। मैने केवल अपने आप ही विकल्प बनाकर अपने आप ही सोच सोचकर देहमे स्वयं अपनेको फंसा लिया है और जैसे कभी ज्ञान भी हो जाय कि यह परिवार खुदगर्ज है, अपने कषायके साथ है, इतना ज्ञान भी हो जाय तो भी कुछ दिन और फसे रहते हैं पूर्व वासनाके कारण। पूर्व परिचयके कारण निराकुल नहीं हो पाते है। इसी तरह देह और आत्मामे भी भेद हो जाय, फिर भी यह आत्मा देहमे बची रही है, पूर्व वासनाके कारण। पर इससे छूटनेका उपाय भेदज्ञान ही है। किसी कुमित्रसे मित्रता हो जाए तो भिन्न भिन्न वस्तु और परस्पर विरुद्ध आशयका ज्ञान कर लेना ही, उस मित्रसे छूटनेका उपाय है। यह मुझे ठगना चाहता, धोखा देना चाहता है, यह हमारे साथ कपट करता है, यह हमसे झूठ बोलता है यदि इतना भी जान लेनेका ज्ञान नहीं है तो फिर इसके आगे और क्या हो सकता है।

देहमे मैं ठहरा हू तो भी देहसे छुवा हुआ मैं नहीं हू। देखो—इस देहके कारण, इस कर्म उपाधिके कारण मेरे नाना रूप बन रहे हैं। नाना शरीर बन रहे है। कही कीडे मकोडे बन गए। कही पक्षी बन गए। कही और किन्ही रूपोमे बन गए। इस प्रकारसे नाना रूप विस्तार अपने आत्मप्रदेशमे भी हो जाते है, किन्तु जो आकारो पर दृष्टि रखते है वे अपने को भूल गए हैं।

भैया ! मैं तो ज्ञानस्वरूप हू। अपने अपने स्वरूपको देखो कि मै ज्ञानस्वरूप हू। यह मै ज्ञानमय आत्मा द्रव्य हू। इसका आकार है, इसका क्षेत्र है। परन्तु इस क्षेत्रदृष्टिमे आत्माका परिचय नहीं हो सकता है। आत्माका परिचय तो आत्माके अन्तर्गत लक्षणकी दृष्टिसे हो सकता है। आत्मा कहते किसे हैं ? जो जाननहार है उसे आत्मा कहते हैं। मै सबको जान रहा हू मगर मैं सब रूपोमे नहीं हूँ। अभी मैं इतनी चीजें जान रहा हू तो क्या इतना जाननेसे मैं इन रूपोमे हो गया हू। नही सिनेमाके परदेपर कितने ही चित्र उठ जाते

हैं तो क्या परदा उतने रूप है ? नही, वह परदा तो स्वच्छ है। इसी तरह इस आत्मामें सब रूपोंकी झलक आ जानेसे यह आत्मा सब रूप हो गया है क्या ? नही मैं तो मैं ही हूं। ये सब ये ही हैं। अन्य सब मैं नही हूं। मैं सबको जानता हूं फिर भी मैं इन सब रूप नहीं हूं। मैं तो सबसे निराला, ज्ञानमात्र अपनेको निरखता हू। यही ज्ञान इतने केवलके ज्ञानके बिना ही बुद्धिरूप बनकर बाहर बाहर घूमती है, सो बाहरमें ही बुद्धि फंस जाती है। बाहर में बुद्धि फंस जानेसे आकुलताएं हो जाती है। मैं सबसे निवृत्त होकर केवल अपने आपके स्वरूपको देखूं तो वहां कोई क्लेश नही हैं। सब हैं तो सब रहें। मैं तो मैं ही हूं। यह दुनिया तो मोहका स्वप्न है। स्वप्नमे देखी हुई चीजें जैसे झूठ नही मालूम होती हैं उसी प्रकार मोहमे प्रतीत हुई चीजें झूठ नही मालूम होती हैं, पर जैसे स्वप्नके बाद जग जाता है तो सब चीजें झूठ मालूम होती हैं। उसी प्रकार मोहसे दूर होने पर सम्यक्त्व हो जाता है और इस सम्यक्त्वके हो जानेसे पर पदार्थोंके प्रति ठीक ठीक ज्ञान हो जाता है, सत्य और असत्यका निर्णय हो जाता है तब ये पर पदार्थ झूठ मालूम होते है।

देखो भैया ! विचित्रताकी बात कि यह सबको तो जानता है पर इसे अपनी जानकारी नही है। यह जो जानने वाला पदार्थ है यह स्वयं क्या है, इसको यह नही जान रहा है। तो मोक्षका मार्ग मिल जायगा क्या ? सब ग्रन्थोमे आत्माके ज्ञानकी महिमा गाई गई है। मैं अपनी आत्माको सर्वस्व मानकर इसमे ही रम जाऊ तो पूर्णतया ज्ञान व आनन्द होगा। जैसे लोग कहते हैं कि हे भगवान, हे अल्लाह, हे खुदा तो यहां पर अल्यः संस्कृतका शब्द है। अर्ह पूजायां धातुसे अरहत और अल् पूजायां धातुसे अल्यः बना है। अल्लाहके मायने भगवानसे है। अर्हन्तका अर्थ है पूज्य और अल्यका अर्थ भी पूज्य है। खुदाके मायने खुद अपने आपमे बसा हुआ।

खुद तो यह है ही खुद मायने स्वयं (सभामे किसी ने पूछा कि) बिसमिल्ला क्या है तो (महाराज जी ने जवाब दिया कि) मैं बिसमिल्लाके मायने तो नही जानता। आप बतावें कि बिसमिल्लाका क्या अर्थ होता है। क्या मैं ही सब बताऊं।

देखो, एक सेठानी बुढ़िया थी। उसका पति गुजर गया। लोगोने पूछा क्यो रोती हो। उसने कहा कि १०, २० दुकानें हैं उनका किराया अब कोन लेगा। पचायतके सरदार ने कहा कि सब्र करो, रोती क्यो हो, हम सब संभाल लेंगे। बुढियाने कहा कि ५००, ६०० भैस हैं, उनका प्रबन्ध कोन करेगा ? सरदारने कहा कि मैं सब कुछ संभाल लूगा। सेठानीने फिर कहा कि अभी ५ लाखका कर्जा भी देना है उसे कोन संभालेगा ? तो पंचायतके सर-सरदारने कहा कि अब क्या हमी सबकी हां करे और लोग भी बोलें। तो भाई ऐसा है कि

क्या हमी सब बतावें आप लोग भी बतावें । मै तो बिसमिल्लाका मतलब नही जानता हूँ । परन्तु जहाँ तक बिसमिल्लाका मतलब गुरुसे निकलता होगा । जो विषयोको कील देवे, नष्ट कर देवे ।

तो भाई यह आत्मा सबको जानता तो है मगर उन सब रूपोमे नही है । ऐसा मै शुद्ध चैतन्यमात्र अपने आपको निरखूं और अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होऊ ।

विभक्तैकत्ववोधस्य न स्पर्शो पुण्यपापयोः ।
सैव वस्तुस्थितिर्मेऽस्तु स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥६॥

इस आत्माको कहते है विभक्त एकत्व । एकत्वका अभिप्राय यह है कि यह आत्मा अपने आपके गुणपर्यायोंमे तन्मय है । अपने ही स्वरूपमे तन्मय है, स्वय सर्वस्व है और विभक्तका अर्थ है कि जगतके अन्य सब पदार्थोसे अत्यत जुदा है । जगतमे पदार्थ अन्य हैं कितने ? अनंत तो पुद्गल, एक धर्मद्रव्य, एक अधर्मद्रव्य, एक आकाशद्रव्य और असख्यात कालद्रव्य, इन सबसे यह आत्मा जुदा है और अपनी आत्माको छोडकर जगतमे जितनी भी आत्माएं है उन सबसे जुदा है । केवल अपने आपमे तन्मय है । इसे कहते हैं एकत्व विभक्त । इस मुझ आत्मामे पुण्य और पापका स्पर्श भी नही है । जब मैं अपने सहज स्वरूपको देखता हू तो पहले मेरी सहजसत्ता किस प्रकार है, यह अपने इस प्रकारके मर्मको देखता हू तो उस एकत्वविभक्त निज आत्म-पदार्थमे पुण्य पाप कोई नही हैं । कोई प्रकारका विकार नहीं है । स्वभावमे कोई विकार नही हुआ करता है ।

भैया ! जैसे गदा जल है ना । वह कचडा मिला हुआ है । अगर जलके स्वभावको देखो अर्थात् जलका स्वरूप अपनी सत्ताके कारण कैसा है इस बातको देखो तो क्या गंदा नजर आवेगा ? नही, गदा नही नजर आवेगा । वह तो निर्मल है, अर्थात् जलका स्वभाव तो बिल्कुल स्वच्छ है । इसी तरह इस गदी आत्मामे रहने वाली आत्माको १४ प्रकारके जीवसमासोमे रहने वाले इस जीवको स्वभावदृष्टिसे देखें तो क्या कोई विकार नजर आयेगा ? नही । वह तो शुद्ध ज्ञायकमात्र नजर आयेगा अथवा और भी जितनी विभाव पर्यायें हैं गति चार, इन्द्रिय पाँच, योग पन्द्रह और पच्चीस कषाय, काय ६ और सात ज्ञान इत्यादि सभी पर्यायोमे भी स्वभावसे ज्ञायक ही है । स्वभाव दृष्टिमे तो केवलज्ञान भी नजर नही आता है । वहाँ तो केवलज्ञानस्वभाव ही है । परन्तु केवलज्ञान स्वभाव पर्याय है । इस कारण स्वभावविकास गुणके सदृश देखा जाता है । इसी प्रकार अन्य अन्य स्थानोमे देखो तो यह कोई विकार नजर नही आता है । ऐसा एकत्वभाव मैं हू ।

मै लड़को वाला हू, घर वाला हू, जानने वाला हूँ, ये सब बातें व्यर्थकी हैं । मै सुखी

हू, मै दुःखी हूं, मैं धनी हूं, मै गरीब हूँ, मै राजा हू, मेरे पास बल है, मेरा बडा प्रभाव है, मेरे पुत्र है, मेरे स्त्री है, मैं बलवान हू, सुडौल बेडौल हू, अरे ये सब कुछ नही है। स्वभाव को तो देखो मेरेमे तो विकारोका स्पर्श भी नही है। यह परम शुद्धनिश्चयकी बात चल रही है। इसकी ही बात मान लेवे और कोई पर्यायका निषेध करे तो ब्रह्माद्वैत आदि अभिप्राय खडे हो जाते हैं। मै आत्मस्वरूप कैसा हू यह स्वभावदृष्टिमे ही दीखता है। जिस माँ का लडका बहुत अच्छा चल रहा है; साल छः माह बादमे वह जुआरी लडकेके संगमे आ जाता है। जुआरीके संगमें आनेसे उसके जुआरीपनका प्रसंग लग गया। तब एक बुढ़िया स्त्री कहने लगी कि देखो तुम्हारा लडका जुवा खेलता है। उस लडकेकी माँ ने कहा कि नही मेरा लडका जुवा नही खेलता है। यह जुवा खेलनेका व्यसन तो उस दूसरे लड़केको लगा है। मेरे लडकेका नही है। मतलब यह है कि अपने लडकेको वैसा ही गुणशील समझती है जैसा कि प्रारम्भमे था। वह स्त्री अपने लडकेके प्रति कहती है कि मेरे लडकेको सोहबतमे रखकर इस दूसरे लडके ने जुवा सिखला दिया है। यह जुवा खेलनेकी आदत तो उस दूसरे लड़के की ही है, मेरे लड़केकी नही है।

इसी तरहसे विवेकी जीव इस चैतन्य आत्माको सहज स्वरूप, ज्ञानमय, ज्ञानस्वरूप मानता है। इस आत्मामे कोई विकार नही है। इसमे पुण्य पाप नही, राग द्वेष नही। कोई कहे कि वाह। वर्तमानमे तो ये स। हैं, अरे यह कर्मोंकी प्रकृति है, मेरी प्रकृति नही। राग की आदत तो कर्मोंसे है, द्वेषकी प्रकृति कर्मोंसे है। चू कि कर्मविपाकके साथ विभावका अन्व-यव्यतिरेक है सो ऐसे निमित्तपर आरोप किया गया है अपनी खराबियोंका। जो अपने को शुद्ध, स्वच्छ देखता है उसमे कषायभाव और पुण्य पापका स्पर्श नही है। सो ऐसी वस्तु स्थिति मेरी होवे अर्थात् अविकारता होवे। कहीं परपदार्थमे, कही नैमित्तिक भावमे यह मै हू, यह मेरा है, इससे ही मेरा भला है, इस ही मे रमना चाहिए, इस प्रकारके भाव उत्पन्न न हो।

मैं ज्ञानमात्रका अनुभव करूं, ज्ञानदृष्टिमे रहू, इस प्रकारके भाव उत्पन्न होना चाहिए। परमे उपयोगका जाना ही फँसना है। कहते है ना कि जो बोले सो फँसे। समाजमे कोई काम करते हो तो यदि कोई पूछे कि अमुक काम करते हो तो बोले कि हाँ हाँ मै करता हूं, तो सोई फँसेगा। घरमे, समाजमे, देशमे जो बोलेगा वही फँसेगा। किसीसे पूछो—भैया! स्वरूपनगरका रास्ता कौन है, बता दो। वह बोलेगा कि इस रास्तेसे चले जावो। नही, नही, जरा आगे चलकर थोडासा बता दो। इस तरहसे वह फँस जायगा, और यदि रास्ता न बताता तो न फँसता। हसो न भैया, हमारा मतलब यह नही है कि रास्ता न बताओ। हम

तो "गैल बतावे सो आगे होवे" इस पहुनेका अर्थ कर रहे हैं। ऐसे ही जो परद्रव्योंमें राग करता है सोई फँसता है।

भैया! एक साधु थे। राजा वन्दना करके उसके पास बैठ गया। साधुने पूछा कि बोलो क्या चाहते हो? राजा बोला—महाराज! मेरे कोई बच्चा नहीं है। एक बच्चा हो जाय, यह मै चाहता हूं। साधुने कहा कि अच्छा जाओ, एक बच्चा हो जायगा। इस प्रकारसे आशीर्वाद मिल गया। राजा घर आया, घरमे आनन्दसे रहने लगा। साधुने १५-२० दिन बादमे देखा कि रानीके अभी गर्भका समय है, कोई मरता हो तो उसे गर्भमे भेज दें। उस समय कोई मर नहीं रहा कि अच्छा चलो, खुद ही मरकर रानीके पेटमे पहुंचें। खुद साधु मर गया और रानीके पेटमें पहुच गया। अब साधु गर्भमे पडा हुआ सोचता है कि मैं बोल गया सो फँस गया, अब गर्भसे बाहर कैसे निकलूं? साधु परेशान था। वह मनमे विचार करता है कि यदि मैं वचन न देता तो ठीक था। साधु गर्भमे बच्चेके रूपमे पडा हुआ है। वह सोचता है बार बार कि यदि मैंने वचन न दे दिया होता तो आजको यह परेशानी सामने नहीं आती। अच्छा, अब मैं जब बाहर निकलूंगा तो बोलूंगा नहीं। ऐसा साधुने मनमे विचार बना लिया।

बच्चेके रूपमे साधु बाहर निकल आया। सात-आठ वर्षका हो गया, बच्चा बोलता ही नही। राजा परेशान हो गया। बोला—लडका तो हुआ, पर गूंगा हुआ। इसे जो ठीक कर देगा उसे मैं बहुत सा धन दूंगा। एक दिन बच्चा बगीचेमे घूमता हुआ पहुच गया। वहाँ पर देखा कि एक चिडीमार जाल बिछाए हुए बैठा था। और अब जालकी तह करके जानेकी तैयारी कर रहा था। इतनेमे एक चिडिया जो पेडके ऊपर बैठी हुई थी बोल उठी। अब चिडिया पकडने वालेने जाल फैलाया और उस चिडियाको जालमे फँसा लिया। तब राजकुमार एकदमसे बोल उठा—"जो बोले सो फँसे।" अब क्या था, राजकुमारको चिडीमारने समझ लिया कि ये बोलने लगे हैं, सो वह राजाके पास गया। राजाको खबर दी कि राजकुमार बोलते हैं। इतना सुनते ही राजाने १० गाँव इनाममे उसे दे दिये। अब राजकुमार घर आया। राजाने देखा कि बच्चा तो बोलता ही नही है। राजा बोला कि अरे पक्षी मारने वाले लोग भी मुझसे दिल्लगी करते हैं। राजाने क्रोध करके चिड़ीमारको फांसी की सजा सुना दी।

अब चिडीमारसे राजा पूछता है कि तुझे जो चीज चाहिए सो बोल। चिडीमार बोला—महाराज हमे कुछ नही चाहिए, केवल ५ मिनटके लिए आप अपने बच्चेसे मिला दीजिए। राजाने बच्चेसे मिला दिया। चिड़ीमार बच्चेसे बोला कि हे राजकुमार! मैंने

जिन्दगीमे झूठ नही बोला, पर आज मैं झूठा बन रहा हूं। खैर, अब तो मेरा जीवन समाप्त ही हो रहा है परन्तु तुमसे विनय यह है कि जो शब्द बगीचेमे कहे थे वही कह दीजिये। बच्चेने वही शब्द बोल दिया और १० मिनट तक बच्चेने छोटासा भाषण भी दिया। बच्चेने बताया कि देखो पहले मैं साधु था। राजाने दर्शन करके मुझसे एक बच्चा पानेकी इच्छा प्रकट की। हमने राजाको वरदान दिया। राजासे मैंने बोल दिया था इसलिए मै फंस गया। इसी कारण मैंने बोलना बन्द कर दिया था। इस तरहसे सारी कहानी बच्चेने सुना दी। देखिए राजासे साधुने बोल दिया तो साधु फंस गया, पक्षीने बगीचेमें बोल दिया तो पक्षी फस गया और चिडीमारने राजासे कुछ बोल दिया तो चिड़ीमार फंस गया। इसलिये इस जगतमे जो बोलता है वही फंसता है। यदि ज्यादा बोलचाल जगतमे रखते हो तो राग बढेंगे, द्वेष बढ़ेंगे। कितने ही लोग ऐसे होते हैं जो कई वर्षो तक बच्चोसे नही बोलते हैं। बच्चे पढने–लिखने, खेलने–कूदने सभी जगह जाते आते हैं पर उनसे सहज ही नही बोलते है। उनसे वह अनासक्ति करता है तो पराधीन नही होता है और यदि आसक्ति करता है तो विशेष पराधीन हो जाता है।

भैया ! बताओ तो जरा कि गोष्ठीमे परिवारमें जितने लोग हैं उनसे इस आत्माका क्या सम्बन्ध है ? यदि कोई सम्बन्ध हो तो बतलाओ। बापकी आत्माका पुत्रको आत्मासे क्या सम्बध है ? यदि कोई संबध हो तो बतलाओ। देखो सपूत है, पिताका आज्ञाकारी है तो पिताको दु.ख है या सुख। दुःख ज्यादा है। पुत्र अगर कुपूत है, अन्यायी है तो पिताको दु ख है या नही। नही की बात विशेष है, क्योकि कुपूतसे दुःख मिट जायगा। वह धन बरबाद करने वाला होता है तो अदालतमें लिख दें कि बच्चेका हमसे कोई संबध नही है, मैं इसका जिम्मेदार नहीं हूं। बस, दुःख मिट गया। और यदि लड़का सपूत है, आज्ञाकारी है, विनयशील है तो उसके प्रति राग करके बाप श्रम ही श्रम उठायगा, आराम कहाँ पायगा ? अच्छा यह बताओ कि यदि पुत्र सपूत होगा, आज्ञाकारी होगा तो बाप दु:खी होगा या नही ? दुःखी होगा, कैसे ? अच्छा देखो—यदि पुत्र सपूत होगा, आज्ञाकारी व विनयशील होगा तो उसे सुखी करनेके लिए बाप अथक परिश्रम करेगा व क्लेशमे पडा रहेगा। यदि पुत्र कुपूत है तो उसके बाबतमे यह प्रसिद्ध करके कि यह मेरा नहीं है, इससे मेरा कोई संबंध नहीं है, ऐसा कहकर छुट्टी पा लेगा। देखो—दुःख सुपूतमे अधिक है कि कुपूतमे। यदि पुत्र सपूत होगा तो मोह होगा और मोहमे क्लेश अवश्य होगे। और यदि पुत्र कुपूत है तो न मोह ही बढ़ेगा और न क्लेश ही होगे।

और भी देखो सगीत बजाने वाले चार जने हैं। कोई तबला, कोई सारगी, कोई

मजीरा और कोई हारमोनियम बजाता है। और सब अलग-अलग गाँवके हैं। परिचय भी नही है तो भी संगीत विषयके कारण वे एक दूसरेकी तारीफ करेंगे। इस तरहसे ४-५ मिनट मे ही उनमें परस्पर संबध हो जायगा, उनमे परस्पर दोस्ती हो जायगी। सबमे आपसमे बोल चाल हो जायेगी। अब देखो——संगीतके विषयसे ही उनमे बोलचाल हुई ना। सो क्या हुआ वे आपसमें फंस गये। वे एक दूसरेको भोजनादिके लिये निमन्त्रित करेंगे, चिंता करेंगे। इस प्रकारसे उन सबमे घनिष्ट सम्बन्ध हो जायगा। अरे यह सम्बन्ध क्या है, यह सब कल्पना है, ऐसा करनेसे तू मोहमे फसा रहेगा, तुझे आजीवन क्लेश रहेगे। भैया, तू तो परमार्थसे शुद्ध, स्वच्छ, ज्ञानस्वरूप है। तेरेमे तो क्लेशका नाम नही, फिर क्यो जगजालमे फंसकर क्लेश प्राप्त कर रहा है। करने योग्य काम तो तत्त्वदृष्टि है। सो उसकी ही रुचि करके अपने मे स्वयं सुखी होओ।

नाना मतानि तत्त्वेषु विवादे न प्रयोजनम्।
मुक्त्वान्यस्त्वं तु पश्येयं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१०॥

तत्त्वमे अन्य-अन्य नाना मत है। कहते हैं कि मुस्लिम तत्त्व यह है, जैन तत्त्व यह है, बौद्ध तत्त्व यह है। अरे यह क्या है। व्यर्थमे नाना प्रकारके विवाद बढाते हैं। कोई किसी प्रकारके विचार मानता है कोई किसी प्रकारके। कोई कोई हनुमानजी को बन्दरके मुख वाला व पूँछ वाला कहते हैं। जैन लोग कहते हैं कि हनुमानजी इतने सुन्दर थे कि उनके समान सुन्दर उस समय कोई नही था। जैन सिद्धांतमे बताया गया है कि वह तो एक कामदेव पदधारी अतिसुन्दर राजा थे। खैर, विवादोसे क्या मतलब। आप अपनेको तो देखें कि अपना स्वरूप कैसा है? मैं अपने आपको देखूँ कि मैं कैसा हूं? जो मैं हूं वही समझूँ, बस इस ही मे कल्याण है। अरे अन्यको देखनेसे कोई प्रयोजन नही है। मेरा प्रयोजन तो अपने आपको देखनेका है सो मैं अपने आपको देखूं और अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होऊँ।

कही चले जावो सुख कही नही मिलेगा। जैसे यहां वहां रात दिन भटकते फिरते हैं, फिर ९, १० बजेके लगभग आराम करने घर आ जाते हैं, सोते हैं। इसी तरह बाह्य पदार्थोंमे कितना ही भटक लें, फिर अन्तमे अपने घरमे, अपने आपके स्वरूपमे ही आना होगा तब शान्ति मिलेगी। किन्तु खेद है अज्ञानमे जीव बाह्यकी तो व्यवस्था करते हैं पर अपनी व्यवस्था नही कर पाते हैं।

देहातोमे भैया! हफ्तेमे एक दिन हाट लगती है ना। सो कही देहातमे कोई अध-बूढे आदमी थे। एक दिन हाटमें साग भाजी खरीदने जाने लगे। पड़ोसकी बहुओंने भी साग

खरीदनेके लिए दो दो पैसे दे दिए। बुड्ढा सबके पैसोकी सब्जी खरीदता जाता था। पहले पडौसकी बहुओके लिए खरीदी, बुड्ढेने अन्तमे अपने लिए भी दो पैसेकी सब्जी मोल ली। आखिरमे खरीदके लिए सब्जी जो बची वह खराब थी, सडी हुई थी, वह सब्जी लेकर झोली में डालकर घर गया। जब घरकी बहूने देखा तो कहा कि अरे यह खराब सब्जी है, क्यो लाए? बुड्ढा बोला कि पडौसकी बहुओके लिए पहले अच्छी अच्छी खरीद ली फिर बाद मे जो बची वह मैंने खरीद ली। बहूसे कहा कि देखो मैं परोपकार करता हू। बहूने कहा कि अरे पहले अपने लिए खरीद लेते बादमे फिर दूसरोके लिए लेते। सो ऐसे ही भैया! अपनी रक्षा अपने आत्मस्वभावकी उपासना करना है, उसकी दृष्टि रहते हुए परोपकार किया जावे तो वह महत्त्वकी बात है।

हे भाई! अपने स्वरूपकी तो खबर नही है और दूसरेकी ओर आसक्तिसे देख रहे हो। आत्मन्, पहले अपने स्वरूपको देखो बादमे फिर अन्यको देखो। अपनेको भूलकर द्वन्द्व को देखो, इसे आचार्योंने विवेक नही बतलाया है। बाहरमे क्रियाकलापमे भी रहो, पर उनमे कोई अपना स्वरूप मत समझो। यदि कोई समस्त मतोके विकल्पोको छोड़कर अपने सत्यका आग्रह कर ले कि मुझे जो अपने आप बिना किसी अन्य जल्पके आश्रयके, अनुभूत होगा वह होवो। मैं स्वयं ज्ञानमय पदार्थ हूं अतः ज्ञानकी बात स्वयं ही प्रकट हो जावेगी। ऐसे सत्यका आग्रह निष्पक्ष होकर कर ले तो उसे स्वयका दर्शन होगा। जिस सत्यका दर्शन हो फिर उसीका लक्ष्य रखना सो ही शांतिका, सुखका मार्ग है। मूल तत्त्व तो आत्मा है, उस आत्माके बारेमे ठीक-ठीक निर्णय जब नहीं हो पाता तब उस आत्माके बाबत व अन्य बातोमे नाना मत बन गए। तत्त्वोमे जो मत मजहब बन गए उनका मूल कारण यह है कि उन जिज्ञासुओने अपने आपकी आत्माका यथार्थ ज्ञान नहीं कर पाया। आत्माका यथार्थ ज्ञान न हो पानेसे ही अनेक मत बन जाते हैं। यह दर्शनका एक गहरा विषय है। वस्तुको जानने का उपाय स्याद्वाद है। किसी वस्तुका सर्वांग निर्णय करना चाहो तो स्याद्वादसे ही कर सकते हो।

जैसे किसी मनुष्यके सम्बन्धमे जानकारी करते हो तो कितना कितना जानते हो। यह पिता है, यह पुत्र है, यह गरीब है, यह धनी है, यह पंडित है, अनेक प्रकारकी बातोकी जानकारी करते हो, जानते हो, अपेक्षा लगाकर कि यह अमुकका पिता है, यह अमुकका लड़का है इन सारी बातोको अपेक्षा लगाकर जानते हो। यदि अनेक बातें जानते हो तब सारी बातोकी जानकारी कर पाते हो। इसी तरह आत्माके विषयमे जब सर्व प्रकारसे दृष्टि दोगे तभी आत्माका पूरा रहस्य समझमें आयगा। जब जीवके पर्यायमें तथा आत्माके स्वभाव

मे दृष्टि दोगे तभी दोनोमे अन्तर समझमे आयगा। जब जीवके मात्र लक्षणमें दृष्टि दोगे तो तुम्हे पता चलेगा कि जीवका लक्षण है चैतन्य, और इस चैतन्यस्वभावमे दृष्टि दो तो इसमे नाना रूप नही नजर आयेंगे। प्रत्युत अनादि अनन्त अहेतुक चैतन्यमात्र अद्वैत समझमे आवेगा, व्यक्तित्व नजर नही आयगा। अरे यह चैतन्यस्वभावतः अद्वैत है। इसमे किसी दूसरेका प्रवेश नही है तब फिर इसका नाना रूपोमे अनुभव क्यो किया जाता है?

भैया! प्रत्येक जीवका अपना स्वरूप न्यारा न्यारा है। यह बात तो तुम्हे तब समझ मे आवेगी जब कि अपने आनन्दस्वरूपमे दृष्टि दो। इस तरहसे जीवके बारेमे नाना बातें स्याद्वादसे विदित होती हैं। पर उनमें से किसी एकको पकड लो या किसी अपेक्षामे किसी अन्य अपेक्षाका मिलान कर दो तो देखो कि नाना मत बन गए हैं उन नाना मतोके विवादमे पडने से केवल कलह ही मत्थे पडेगा। उनसे आत्माको शांति नही मिलेगी। आत्माको शाति तो अपने आत्मस्वरूपके दर्शनमे होती है। और यदि शाति नही मिलती है तो समझो कि कोई उसका निमित्त अन्य है। क्योकि आत्मा तो स्वयंके लिए अनाकुलस्वरूप है। यदि आनेमे कल्याणकी भावना है तो अपने अन्तरङ्गमे स्थित अपने आपको ज्ञानके द्वारा प्राप्त करके कल्याण कर सकते हो।

एक बात प्रसिद्ध है कि शिवभूति नामके एक मुनि थे। उनको पहिले गुरु महाराज ने यह सिखाया कि मा तुष मा रुष। इसका अर्थ यह है कि राग द्वेष मत करो। कुछ समय तक शिवभूति मुनि मा तुष मा रुष रटते रहे। उनके और सब शब्द तो भूल गए, पर माष तुष शब्द ही केवल याद रह गया। माष शब्दमे मूर्धन्य ष है। मा तुष, मा रुष, मा तुष, मा रुष बोलनेमे कुछ स्खलन हो गया सो माष तुष बोलने लगे। एक दिन चले जा रहे थे। मार्गमें एक महिला मिली। वह महिला उरदकी दाल धो रही थी। तो उरदकी दाल तो जानते होंगे जो महीन पीसी जाती है, जिस दालकी पिट्ठी करते हैं तो पिट्ठी बनानेके लिए जो उरद धो रही थी उस सफेद सफेद दालको अलग व उरदके छिलकोको अलग देखा तो ज्ञान हो गया। उन्होंने देखा कि ये छिलके तो सब प्रकटमे अलग-अलग हैं, दालमें भी लगे थे तब भी वे अलग ही थे। उसी तरह यह देह तो छिलके के मानिन्द है और आत्मा उडदके मानिन्द है। देहमे रहता हुआ यह आत्मा देहसे अलग है। शरीर, राग, द्वेषोके बीचमे फंसा हुआ यह आत्मा है फिर भी आत्मा तो दालके माफिक है, और यह सब उपाधि उरदका छिलका है। इन समस्त झञ्झटोके बीचमें यह आत्मा फँसा होनेपर भी उन सबसे न्यारा है। ऐसा जिन्होने न्यारा अपने आपको नहीं समझ पाया है उनकी बडी दुर्गति होती है।

यह मैं आत्मा कैसा हू और क्या हू, इसका पता जिन्हे रहता है उन जीवोके विषय

कषाय समाप्त हो जाते है। इस जगतमे जो अपने आत्मतत्त्वको भूल गया है उसकी दुःखकी लम्बी कहानी है। सो यदि कोई ज्ञानके साहित्यिक विकासमे भी नही पडा और यदि अपने आत्मतत्वको समझ गया है, तो उसे जीवनमे क्लेश नही होगे, उसकी जीवनमे दुःखकी कहानी नही बनेगी, वह सदैव प्रसन्न और सानन्द ही रहेगा। हे भाई! ऐसा आग्रह करनेके लिए निष्पक्ष भावकी जरूरत है। अंतरमे शुद्ध आत्मकल्याणको भावना हो तो उस आत्मा के दर्शन अपने आप हो जाते है। मुझे करना क्या है? मैं स्वतः सिद्ध परिपूर्ण पदार्थ हूं, ऋद्ध, समृद्ध कृतार्थ हूं। अतः अब यह मैं आत्मा अपने आपके आत्मस्वरूपकी दृष्टि करके अपने आपमे रमूं और सत्य स्वरूप बनकर आनन्दमग्न होऊँ।

हर्षादिवासनाजन्यभौपाधिकविनश्वरम्।
तद्भिन्न स्वं प्रपश्येयं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥११॥

कहते हैं कि यह अतर्जगत्, इस जगतकी बात नहीं कह रहे हैं जो मुझसे न्यारा अपनी पृथक् सत्ता लिए हुए है, किन्तु अपने आपमे उठने वाले जो कल्लोल है, रागद्वेष आदि जो परिणाम हैं उनको कह रहे हैं कि यह जो जगत् है, यह जो मेरी दुनिया है, यह हर्षादिक वासनासे उत्पन्न होता है। यह अंतर्जगत् राग द्वेष, विषय कषायरूप है। मोही लोग कहते हैं ना जब किसी का इष्ट गुजर जाय तो, कि मेरी दुनिया मिट गयी। देखो लोग किसी पुरुष के बारेमे, व्यक्तिके बारेमे कल्पनाए बनाकर दुःखी होते हैं। और कहते हैं कि मेरी दुनिया मिट गई। बाहरमे इसका कुछ है ही नही, मिटेगा क्या? हां, जैसी कल्पनाएं करता था पहिले, वे नही हो पाती, यही उसकी दुनियाका मिटना कहलाता है। जो पहिले कल्पनाए की वे तो अब नही रही। अब तो केवल उस इष्टको ही अपना सर्वस्व मानकर दुःखी होना रहा है, इससे वह अपने इष्टके मिट जानेसे ही यह समझना है कि मेरी दुनिया मिट गई। क्या मिट गया उसका, विचारो तो।

कोई किसीके शरीरसे प्रेम करता है क्या? अरे उस मर जाने वालेका घरमे कुछ रक्खा रहेगा क्या? चाहे वह खूब कमाता था, खूब अच्छी तरहसे परिवारका पालन-पोषण करता था। खूब धन दौलत एकत्रित कर ली थी पर हे भाई! वह इष्ट यदि मर गया है तो उसके शरीरसे भी कोई प्रेम नही करता। अरे देखो यदि कोई मर जाता है तो मुर्दाको उठानेके लिए कभी कोई पंच लोग जाते है तो घरके बच्चे स्त्री इत्यादि सब रोते हैं। रोते हुये कहते हैं कि अरे मेरेको कहाँ लिये जा रहे हो। यदि वे लोग कहे कि अच्छा, नही लिए जाते, तो फिर वे घरके ही सब हाथ जोडकर कहेगे कि कृपाकर अब ले जाइएगा। देखो भैया! न तो किसीका देहसे प्रेम है और न आत्मासे प्रेम है। इस मिट जाने वाले शरीरसे

कौन प्रेम करता है। तुझे इस शरीरसे प्रेम करनेसे कोई लाभ नही। तुझे तो आत्मासे प्रेम करना चाहिए। सो आत्मासे भी प्रेम कौन करता है ? यह आत्मा तो चैतन्यस्वरूप पदार्थ है, सबसे निराला है। जैसा यह है तैसे ही अन्य चेतन पदार्थ है। उस चेतनसे भी कौन प्रेम करता है। इस जीवकी दुनिया तो अपना अपना अन्तर्विकल्प है। हे आत्मन् ! तुम्हारी ज्ञात दुनिया कही बाहर नही है। अपनी कल्पनाओसे ही यह बात उठती है कि दुनिया अन्य है। कल्पनाओके उठनेसे ही, पहिले उठने वाली कल्पनाओके न होनेपर कहते है कि हाय दुनिया लुट गई।

एक मनुष्य लखपति है। उसको यदि एक हजारका नुक्सान उठाना पड गया तो उसकी शक्ल सूरत देखो तो वह उदास, दुःखी लुटा हुआ नजर आयगा। और जिस मनुष्य का गाँठमे केवल एक हजार ही रुपया है अधिक नही है, और अगर एक हजारका लाभ हो जावे तो वह प्रसन्न होता है, खुशियाँ मनाता हुआ रहता है।

भैया ! कल्पनाएँ जहाँ जैसी जगी वहाँ उसकी वही दुनिया है। अरे भाई, व्यर्थकी कल्पनाएँ न करो। देखो २४ घन्टे व्यर्थकी कल्पनाओमे ही पड़े रहते हो और दुःखी हुआ करते हो। भाई इन २४ घन्टोमे १० मिनटका समय तो परमार्थमे दो तो जीवन सफल हो जायगा। २४ घन्टे आर्तध्यानमे ही लगा रहे तो उसका क्या जीवन है। इस स्थितिमे रहो कि २४ घन्टेमे कुछ मिनट भी आत्मचिंतनमे लगा सको। सत्य और असत्यका निर्णय कर लो और अपनेको सत्यमे सुरक्षित कर लो। शुद्ध चैतन्यमात्र एकवस्तु अपनेको सबसे निराला समझो। और यह समझो कि मेरा किसीसे कोई सम्बन्ध नही है। सचमुच मैं अन्य कुछ नहीं हू, केवल चैतन्यस्वरूप, ज्ञानमात्र, ज्ञानानन्दघन एक वस्तु हू। ऐसा अपने आपको निरखो तो जीवन सफल हो जाय।

सुनो भाई, जिन पदार्थोंसे राग कर रहे हो, मोह बना रहे हो वे तेरे कुछ नही हैं। जैसे तुम स्वतन्त्र हो वैसे ही वे सब है। अपने आपमे कुछ मिनट तक ऐसा अपने आत्म-स्वरूपका चिंतन करो कि बाह्य वस्तुओका ध्यान न रहे। केवल अपने आत्मस्वरूपको ही अपने सामने रखो तो जितने भी विकल्प हैं, दुःख है, समाप्त हो जावेंगे। जैसे पहले बताया था कि जीवके बारेमे ज्ञातव्य तीन चीजें हुआ करती हैं—१. शब्द जीव, २. अर्थ जीव, ३. ज्ञान जीव। इसी तरह पुत्र तीन होते हैं—१. शब्द पुत्र, २. अर्थ पुत्र, ३. ज्ञान पुत्र। बताओ कौनसा पुत्र इन तीनोमे तुमने अपना माना है। तुम्हारा शब्द पुत्र है क्या ? नही। यह पुत्र तो केवल शब्दोमे ही लिखा हुआ है, वह पुत्र नहीं है। तो तुम्हारा अर्थ पुत्र है क्या, जो दो हाथ और दो पैर वाला है ? भैया, यह पुत्र तो अपने खुदके कषायमे रहने

वाला है, स्वार्थी है। इसलिए यह भी तुम्हारा नहीं हो सकता है। तो उस पुत्र के बारे मे, जो ज्ञान बनता है वह ज्ञान पुत्र ही तुम्हारा पुत्र है। यह ज्ञान पुत्र जिस वक्त है उस वक्त ही तुम्हारा है अन्यथा वह भी तुम्हारा नही है। क्योकि वह तो नश्वर है, मिट जाने वाल है और परमार्थसे देखो तो जब ज्ञान पुत्र है तब भी वह तुम्हारा नही है। तुम तो ध्रुव हो ज्ञान पुत्र अध्रुव है। ये आकुलताएं क्यो उत्पन्न हो जाती है, ये राग द्वेष भाव कैसे उत्पन्न हो जाते हैं। केवल कल्पनासे, उनके मिटनेका उपाय ज्ञानोपयोग है।

भैया देखो जब मंदिरमे पूजनके लिए जाते हो तो वहाँ पर इसीलिए तो जाते हो कि पूजन करें, स्वाध्याय करें, धर्म करें, सत्संग करें और राग द्वेषका उपयोग बदलें, ज्ञानका उपयोग हो। यदि राग द्वेषादिकी बातें वहाँ करते है तो उन बातोसे आकुलतायें उत्पन्न होती हैं और वह आगे किस जगह आकुलताए दूर करने करनेका उपाय बनायगा। मंदिरमे पूजन करने जाते हैं तो सत्संगसे, धर्मपालनसे, धर्म व्यवहारसे उनके राग द्वेषादिक विकारोंमे अंतर तो कुछ पड ही जाना है। इन राग द्वेषोसे छुटकारा प्राप्त करनेके लिए ही व्यवहार धर्मका पालन किया जाता है।

प्रभु भक्ति करनेसे ईर्ष्या, द्वेष, मोह तथा अहंकार इत्यादिकी भावनाएं समाप्त हो जाती हैं, लोग ऐसा समझते है कि धर्मका पालन करनेसे हम और हमारी संतान धर्ममे रह कर अपना कल्याण कर सकेंगे, यही सोचकर वे धर्मका पालन करते हैं, धर्ममे रहते हैं, यह तो व्यवहार परम्पराकी बात ठीक है किन्तु उसमे भी परमार्थ कार्य बने तो वह परमार्थत: धर्म है, वास्तवमे भक्तका यह प्रयोजन है कि वह रागद्वेषसे बच जावे और आत्माका अहित करने वाले जो विषय कषाय हैं उनको दूर कर देवे बस पूजा आदिका यही प्रयोजन है। भक्तिमे जो आनन्द समाया हुआ होता है उसका अनर्थ करने वाले ये विषय कषाय ही होते हैं, उन विषय कषायोसे दूर होनेके लिए हमे धर्म व्यवहार करना है। देखो जो मनुष्य धर्मका पालन करनेके लिए, भगवान्का दर्शन करनेके लिए मंदिर आते हैं वे मन्दिर आनेकी तैयारीमे घर पर हैं तो भी तबसे धर्मका पालन करते है, क्योकि स्नान करते हैं और स्नान करने के बाद यह भावना बनती है कि हम भगवान्के दर्शन करेंगे, यह प्रयोजन जो मनमें बसा होता है तो यही धर्मका पालन वहा है।

देखो दर्शन करने मंदिरमे हम पहुचते है तो दरवाजे पर पहुंचते ही नि:सही, नि:सही का उच्चारण करते हैं। नि:सही का क्या अर्थ है? निकलो, निकलो, निकलो, हटो, हटो हटो रास्ता खाली करो, रास्ता खाली करो—यही नि:सही शब्दका अर्थ है। इसका व्यवहार से यह मतलब है कि जो भगवान्के दर्शन करनेके लिए भगवान्के सामने खडे हो वे देवता

हो या मनुष्य, एक तरफ हो जानेकी कृपा करें। दर्शन करने वाले उन लोगोको चाहिए कि जो भगवान्के सामने खड़े है वे हट जावें। यह उनकी अपने देवके प्रति विनय होगी। वे अपने एक तरफ हो जावें और आगतको दर्शन कर लेने दें। निःसही का अर्थ है कि रास्ता दो, हम दर्शन करना चाहते हैं।

परमार्थसे नि:सही का क्या अर्थ है कि घरमे रहकर, दुकानमे रहकर, मेरे ही सगमे रहकर, जिन राग, द्वेष, काम, क्रोध, मोह, लोभ इत्यादिकी आगमे तप्त हुए थे उनकी ओरसे कहा जा रहा है कि अब मैं वीतराग प्रभुके दर्शन करनेके लिए मदिरके भीतर जा रहा हू सो राग द्वेष विषय कषायोको कहा जा रहा है कि अब तुम दूर हट जावो। निःसही अर्थात् निकलो, निकलो, निकलो, हटो हटो हमे शातिका सत्यका रास्ता दो। हम प्रभुके दर्शन करनेके लिए आ रहे हैं। हमारे आगे न रहो, सामनेसे हट जावो, हम मदिरके भीतर घुस रहे हैं। कृपा कर दर्शनका मौका दो, इतना पवित्र होकर हम वीतराग प्रभुके दर्शन करना चाहते हैं। कहाँ तो इतना करनेका सकल्प होना चाहिए और कहाँ मदिरके अन्दर गए तो क्या बातें हो रही हैं कि आज तुम्हारे घरमे क्या खाना बना था, आज क्या हो रहा हैं, शामको क्या खाना बनेगा, मुकदमे मे क्या हुआ इत्यादि अनेक प्रकारकी व्यर्थकी बातें एक दूसरेसे करते है।

देखो भाई हम लोग कितने अविशुद्ध बन गए। कहाँ तो वीतरागके दर्शन करने, अपने सकल्प विकल्प दूर करने और अपने को स्वच्छ करने के लिए मदिर गए थे, और कहाँ राग द्वेषकी बातें करने लगे। अरे प्रभु पर अपने न्योछावर हो जावोगे तो दर्शन मिलेगा और यदि राग द्वेषो पर ही पडे रहे तो प्रभुका दर्शन नही हो पायगा। राग द्वेषोमे पडे रहना ही विकल्प है। मेरी जो चीज है, मेरा जो परिणमन है वह मेरे स्वरूपके अनुकूल ही होता है। मेरी चीज मुझे ही दुखित कर दे, यह तो बडे गजबकी बात है। फिर मेरी चीज कहाँ रहेगी ? मेरी चीज मुझे ही दुखित करदे तो मेरी कैसे ? ये राग, द्वेष, मान, माया, मोह, विषय कषाय ही मुझे दुखित करते है तो ये सब मेरे नही है। मेरा तो केवल मैं हू। मेरा वह नही है जो मुझे दुखित करे। यदि वह मुझे दुखित करता है तो वह मेरा कैसे है ? तो मेरा है क्या ? मेरा है स्वभाव। मैं तो केवल ज्ञानस्वरूप हू और बाकी सब मैं नही हूं। जो मैं हू वह अनादि हू, अनन्त हू, अचल हू, अपने आपके द्वारा अनुभवमे आने योग्य हू। ऐसा मैं तत्त्व स्वभावमात्र हू। मैं यही स्वरूप सर्वस्व लिए रहता हू। इसके आगे मेरा कुछ नही है।

भैया ! आत्मस्वरूपके दर्शन करने से सब संकल्प विकल्प क्षीण हो जाते हैं, नष्ट हो जाते हैं। हम प्रभुके दर्शन करते हैं, वहांसे हमको दर्शन मात्रसे यह संदेश मिलता है कि हे प्रभो ! आप चक्रवर्ती थे, आपके पास बडा धन साम्राज्य था, आपके ज्ञान हुआ, सो आपने वैभव विभूतिको नही चाहा उस वैभव विभूतिमे आप नहीं फसे, अलग हो रहे और अपने आपको ही अपने उपयोगमे लगाया। आज आप जगतमे पूज्य बन गए। हे प्रभो ! मैं आत्मा भी आपके सदृश हू ? जैसे आप है वैसा ही मैं हू। इस जगत्के जीवका स्वरूप ही ऐसा है। हे आत्मन् ! तू भगवान समान अपने को निरख। तू अपने को यह समझ कि मैं भगवान् सदृश हू। इस औपाधिक नश्वर अन्तर्जगतको त्याग करके अपने निर्वाणस्वरूप आत्मस्वभाव को निरखूं तो मेरा कल्याण है और बाह्य बातोमे फसने से मेरा कल्याण नही है।

वासनान्ते न संसारः संसारत्याग एष हि।
स्वदृष्टया वसानातीतः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१२॥

आचार्योंका उपदेश है कि संसारका त्याग करो, संसारको छोड दो, संसारका छोडना कहलाता क्या है ? और संसार कहलाता क्या है ? क्या संसार इस दुनियाकी जगहका नाम है ? क्या इस लोकका नाम संसार है ? अगर इस दुनियाकी जगहका नाम संसार है और इस लोकका नाम संसार है तो इसको छोडकर कहां जावोगे ? क्या कोई अलोकमे पहुच जावोगे ? जगतके क्षेत्रका नाम संसार नही है, किन्तु राग द्वेषकी जो वासना बनी बस उसी का नाम संसार है। इस संसारका त्याग कर दो। इसका अर्थ यह है कि राग द्वेषकी वासनाओंका त्याग कर दो। प्रत्येक जीव भिन्न-भिन्न है, अपने स्वरूपमे ही है। वे अपने आपमें परिणमते रहते हैं। एकका दूसरेसे सम्बन्ध कुछ है ही नही, फिर किन्ही परवस्तुवोमे राग द्वेष विकल्प करना क्या यह अज्ञान नही है। ज्ञान और अज्ञानका तो यह प्रमाण है कि जहाँ पर मूढता है वहां पर अज्ञानता दीखती है और जहां पर मूढता नही है वहांपर ज्ञान प्रसन्न हुआ दीखता है। जहाँ पर मूढता हो वहां पर सम्यक्त्व नहीं हो पाता है। और जहां पर मूढ़ता है वहां पर मिथ्यात्व ही है। तो यह मिथ्यात्व ही संसार है। जब तक यही संसार है तब तक जीव को क्लेश है। यदि संसारका त्याग कर दो अर्थात् इन राग द्वेष विकारादि वासनाओंको त्याग दो तो सारे क्लेश समाप्त हो सकते हैं।

सो भैया ! राग द्वेषकी वासनाओंका नाम ही संसार है। कोई यहां कहे कि राग द्वेषकी वासनाओंको तो संसार कहा। राग द्वेषको ही संसार क्यो न कह दिया ? उत्तर इसका यह है कि द्रव्यमे प्रति समय एक एक परिणाममे पर्याय हो रही हैं। तो जीवमे भी प्रति समय एक एक पर्याय होता चला जाता है। एक समयमे दो समयके पर्याय नही होते,

दो समयमे एक पर्याय नही, तब रागके पर्याय भी प्रति समय एक एक चलते जा रहे हैं, यह सूक्ष्मदृष्टिका जिक्र किया जा रहा है। लेकिन एक समयका राग पर्याय अनुभवमे नही आता है और एक समयके राग पर्यायसे ही जीव क्या राग महसूस कर लेगा, ऐसा नही होता है किन्तु उपयोग बहुत समय की राग पर्यायोका ग्रहण करता है। इस कारण सूक्ष्म-दृष्टिसे विचार करो तो रागकी सतानका अनुभव होता है। दूसरी बात यह है कि राग द्वेषमे जो आसक्ति हो जाती है उसको ससार कहा गया है। इसी कारण सम्यग्ज्ञान होने पर कदा-चित् राग द्वेष रहता भी है तो भी उनकी गिनती नही की गयी। वे मिट जावेंगे इसलिए वासनाको ससार कहते है। इस वासनाके विनष्ट होनेको ही संसारका त्याग कहते हैं। ससारके ये प्रत्येक जीव ज्ञायकस्वरूप हैं, परमात्मतत्त्व स्वरूप है, उनका कोई भी अन्य जीव न तो मित्र है और न शत्रु ही है। वह जीव है, ज्ञानस्वरूप है, अपने ज्ञानमे परिणमते रहते हैं, उपाधिकी विशेषताके अनुसार उनमे विकार भी होते रहते है, उनमे विकार उनकी ही परि-णतिसे होते है, किसी अन्यकी परिणतिसे नही होते हैं। ऐसा स्वयं विज्ञानघन जगत्के सब जीव है। उनको कैसे माना जाय कि वे शत्रु हैं? कोई भी मेरा शत्रु नही है, कोई ज्यादा बिगडता है तो जो उसे विकार बनाना होगा, वह बनावेगा, वह अपने आपको ही बनावेगा, मेरा वह कुछ नही बनावेगा, तब फिर मेरा दुश्मन कौन? कोई नही।

भैया! ज्ञानदृष्टिसे देखो तो इस जगत्मे मेरा शत्रु कोई नही है। जिस आत्माका मन ऐसा रहता है कि यह मेरा दुश्मन है, तो वह विकल्प उसका दुश्मन बना रहता है, उसका शत्रु बना रहता है, पर परमार्थसे देखो तो इस जगत्मे कोई किसीका शत्रु नही। जो दूसरेको शत्रु समझता है, वह विकार कर रहा है। वह विकार अपनेको करता है, अपने लिए करता है और अपने द्वारा करता है। मेरा प्रभु तो मैं हू, मेरेसे बाहर मेरा कुछ नही है तो फिर मेरेसे बाहर मेरा दुश्मन कोई कैसे हैं? इसी प्रकार जिसको मित्र मान रहे हो, परिवारको इष्ट मान रहे हो वह भी तुम्हारा नही है। तुम्हारा स्वरूप ही तुम्हारा सब कुछ हो सकता है। अपना स्वयं 'मैं हू, अपने स्वरूपमे बर्तता हू, उपाधिकी विशेषताके अनुसार विकार भी करता हू, मोह भाव भी करता हू, राग भी करता हू, किन्तु अपने आपमे करता हूँ।

भैया! गुरु जी एक घटना बताते थे कि एक गांव खुरई सागरके पास है। श्रीमत सेठ वहां पर एक बहुत बडे आदमी थे, उनके लडके भी आज हैं, वे भी सेठ हैं। वह सेठ बडे गर्म दिमागके थे। उनकी स्त्री गुजर गयी थी, उनकी दूसरी शादी भी हो गयी थी। जब सेठानी शादीके बाद सेठके घर आयी तो सेठानीकी सखियोने मित्राणियोने समझाया कि

देखो सेठ बडे गर्म दिमागके है। अगर कही पेठ बिगड जाते है तो मुश्किल पड जाती है, सेठानी भो चतुर थी। उसने सेठके बारेमे तो सुन ही लिया। एक दिन सेठके सिरमे दर्द था। स्त्रीको खबर भिजवाई तुरत दवा लाओ। सेठानीके मनमे ऐसा विचार आया कि अगर कही मै अभीसे दब गयी तो जिन्दगी भर दबना पडेगा। इसलिए आज सेठको कोई कला दिखाऊ तब तो छूट पाऊगी। बस, सेठानीने अपने सिरमे दर्द बना लिया। बोली अरे मेरा तो भारी सिर दर्द कर रहा है। मैं क्या करूं? सेठ जी की नयी नयी शादी हुई थी, उन को अपनी स्त्रीकी खातिर तो करनी ही थी। इसलिए वह अपने सिरके दर्दको भूल गए और अत्यन्त व्याकुल हो गए। अब सेठ जी अपनी बात तो भूल गए और मोहमे सेठानी जी की सेवा करने लगे। मान लिया कि सेठानीके सिरमें दर्द भी हुआ हो तो क्या सेठकी वेदनाने उसकी वेदनाने उसकी वेदनाको बनाया? नही, उसने तो केवल सेठके प्रति राग बना लिया था। उस रागने ही सेठानीकी वेदनाको बनाया।

कोई जीव कहते हैं कि हम तुमसे राग करते है, हमारा तुमसे बडा राग है। ऐसा करनेसे वह राग करे तो क्या हमारे रागसे राग कर रहा है? नही, वह स्वयं ही कल्पनाएं बनाकर एक नया राग और खडा कर लेता है। किसी जीवकी परिणतिसे किसी जीवको कुछ हो जाय तो यह नही हो सकता है। कितने ही आदमी ऐसे रागी होते हैं कि वे दूसरेके प्रति रागी हैं, तो क्या एकका दूसरेमे राग पहुंच गया? नही, एक दूसरेसे सम्बन्ध ही क्या? तो जब प्रत्येक जीव जुदे जुदे है, किसीसे किसीका सम्बन्ध नही है तो ऐसी स्थितिमे अन्य पदार्थोंको अन्य जीवोको उपयोगमे लेकर ख्याल और राग बनाये रहे, इसको तो मूढता ही कहेगे। मूढता कहा जाय या मोह कहा जाय। दोनोका शाब्दिक अर्थ एक है। अगर मूढ कहे तो संसारके लोग कुछ बुरा मान जावेंगे, और यदि मोही कहेगे तो लोग शायद बुरा न मानें। बात तो एक ही है, और है भी क्या? समझका फेर, तो बस इतना ही तो जाल है, जाल क्या कही अपनी भूमिकासे बाहर है, नही। जितना भी जाल है, दन्द है, फन्द है वह सब इस इन्द्र आत्मामे है। यह तो इन्द्रजाल है। यदि इससे जुदाईगी हो जाय अर्थात् अन्य जीवको अपना उपयोगमे इष्ट अनिष्ट न करें, बाह्य वस्तुवोका ख्याल न करे, राग द्वेष न बनावें तो जाल नही है। वह मूढ़ और मोही नही कहा जावेगा।

अरे यह कितना जाल है? बहुत छोटा सा जाल है। केवल समझना भर है। मैं हूं और अपने स्वरूपमे हूं। ऐसा न देखकर यह इसका कुछ है, यह इसका कुछ कर देता है इस प्रकारकी जो समझ बन गयी है बस वह समझ ही जगजाल है, जब गृहस्थीका दंदफंद सिर पर आ जाता है, लडका बीमार है, अमुक बीमार है, अमुक बीमारी है, यह करना है,

अभी दुकान जाना है, मुकदमे कई हैं इस प्रकारसे कहते हैं कि बडे जगजालमे फंसे हुए हैं। अरे बाहर कोई जाल नही है, न जाल दुकानमें है, न लडके बच्चो वगैरामे है, न आत्मतत्त्व मे है। केवल अपने आपके आत्मस्वरूपको शुद्ध, सबसे निराला उपयोगमे नही देखता है और बाहरमे ही मुख कर लिया है तो यही तेरा जगजाल बन गया है। भैया! अपनी बाह्य दृष्टि को हटा दे अपनी राग द्वेषकी भावनाको मिटा दे तो यह तेरा जगजाल मिट जायगा। देखो कितने तो जगजाल है और कितने से उपायमे ही मिट जाते हैं, परन्तु कितना कठिन लग रही है ? कुछ विचार तो करो, उन सब कठिनाइयोका कारण राग द्वेषकी वासना है। यह वासना अगर मिट जाय तो क्लेश मिट जाएँ और अगर यह वासना नही मिटती है तो क्लेश नही मिटेंगे। यह कर्मबन्ध वासनासे ही होता है। जिन कषायोका उदय है उन कषायोसे होने वाली कर्मप्रकृतियोमें ज्यादा अनुभाग पड जायगा, पर बध सबको पड जायगा।

हे आत्मन्! क्रोध क्यो कर रहे हो ? मान, माया, लोभ इत्यादि विकारकी वासनायें क्यो कर रहे हो ? यदि तू इन वासनाओसे दूर है तो क्लेश दूर है और यदि इन वासनाओ को अपनेमे बनाए हो तो आजीवन क्लेश रहेंगे। इसलिए इन वासनाओको मिटानेका उपाय करना चाहिए। गृहस्थोके चरित्रको आचार्य गुणभद्र स्वामीने बताया है कि वह तो हाथीका स्नान है। हाथीने स्नान किया और बाहर गया कि धूलको सूंडमे भरकर अपने ऊपर डाल लिया। इस तरहसे वह फिर गंदा हो गया। गृहस्थी भी सीमा बना करके त्याग करते हैं, दस लक्षणके दिन आ गए तो कहते हैं कि अब हम काम नही करेंगे, दुकानमे नही बैठेंगे, धर्मके काम ज्यादा करेंगे, अब हम पाक बनेंगे पर यह वासना बनी हुई है कि दसलक्षणके दिन निकाल तो दो, फिर जल्दीसे जाकर दुकानमे बैठेंगे, यह खायेंगे, वह करेंगे। इस प्रकार की वासना मनमे भर लेते है। अरे यह तो वास्तविक त्याग नही हुआ। सीमा बना करके त्याग करना ठीक नही होता है। सप्तमीको नियम कर लिया कि नवमी तक उपवाससे रहेंगे पर यह वासना बनी हुई है कि नवमीके आठ बजने तो दो जल्दीसे खाना बनावेंगे, खाना खा लेंगे। यह कर लेंगे, ऐसी वासना बनी होती है। साधुवोके चरित्रमे देखो तो ऐसी वासना नही बनी होती है। उनको यह पता ही नही रहता है भोजन करने जायेंगे कि क्या करेंगे ? उनको यदि भूख लगेगी तो उठेंगे नही तो न उठेंगे। इसी तरह अनंतचौदसका व्रत है, तो गृहस्थी लोग यह वासना बनाए रहते हैं कि अनन्तचौदसके बाद पूर्णिमाके ७ बजने तो दो। पर यह ख्याल साधुवोंके नही होता है। वह साधु तो बच्चोकी तरह ही हैं। यदि भूख लगी तो खडे हो जावेंगे, नही तो नही खड़े होंगे, पर गृहस्थी ऐसा नही कर पाता है। यही तो गृहस्थ और साधुमे फर्क पड़ गया है। साधुके वासना नही होती है और गृहस्थी वासना

बनाए रहना है । क्या कारण है ? गृहस्थके ग्रारम्भ व परिग्रहका सम्बध है । तो इस वासना का विनाश कैसे होगा ? अपने सहजस्वरूपकी दृष्टिसे कि यह मैं आत्मा सहज ज्ञानस्वरूप हूँ, जाननहार हू. यह ही मेरा स्वरूप है, यह ही मेरा धर्म है, जानन यह अमूर्त है, अनन्तानन्त भावोको लिए हुए है, ऐसे ज्ञानानन्द भावोमय यह मै आत्मा हूँ, इसमे किसी दूसरेसे सम्बन्ध नही है, इसके स्वभावमे विकार नही हैं । रागद्वेषकी वासनाए बनाना इसका काम नही है । रागद्वेषकी तरंग यह गडबड बात तो उपाधिके सान्निध्यमे उठ जाती है ।

सिनेमाका परदा स्वय चित्रित नही होता है । तो कैसे चित्रित हो जाता है ? यह देखो सामने फिल्म आ गया, फिल्म उपस्थित हुआ और फिर वह चला गया । तो परदा अपने आपमे उठकर चित्रित नहीं हो गया । परदका चित्रित हो जानेका काम ही नहीं है, चित्रित तो फिल्मके निमित्तसे हो गया है । इसी प्रकार यह आत्मा स्वय राग द्वेष नहीं बनाता । आत्माका स्वभाव ही राग द्वेष बनाना नही है । कर्म उपाधिका निमित्त पाकर यह चित्रित होता है । इन राग द्वेषोके जो संस्कार बनते हैं वे इन वासनाओके कारण ही क्लेश होते हैं, ये सब क्लेश इस आत्मदृष्टिके द्वारा ही नष्ट हो जाते है । मैं एक ज्ञानस्वभाव-हूँ, एकरम हूँ । ज्ञानस्वभावमात्र, सबसे निराला, ज्ञानमय, शुद्ध, दर्शन, ज्ञान तथा सम्यक्त्व-मय हूँ, इससे अतिरिक्त मैं और कुछ नही हूँ । परमाणुमात्र भी मेरा कुछ और नहीं, ऐसा उपयोग बनाने से ही इन रागादिक वासनाओका विनाश होता है और जब वासनाओका विनाश होता है तो क्लेश मिट जाते हैं ।

जब कोई राग होता है तो देखनेमे आता है कि जल्दी-जल्दी प्रवृत्ति होती है और जब उसकी वासना होती है तो जल्दोकी प्रवृत्ति होती है । जब वासना नहीं होती है तो बाह्य दृष्टि भी समाप्त हो जाती है । जिसके फोडा नही है वह मलहम पट्टी क्यो लगावे ? जिसके बुखार नही है वह पसीना क्यो निकाले ? जिसके वासनाए नहीं है वह आकुलताए व्याकु-लताए क्यो करेगा ? जब वासनाका रोग होता है तो इलाज करना पडता है । जिसकी वासनाए समाप्त हो जाती है फिर इलाज नही करना पडता है । इन वासनाओका त्याग तो अपने आपकी दृष्टिसे ही होगा । मैं हू, अपने ही द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावमे हू । परके द्रव्य, क्षेत्र काल और भावमे मैं नही हू । मैं हूँ, और स्वयं परिणमनशील हू, इस कारण निरन्तर परिणमता रहता हूँ, परिणमता ही चला जाता हूँ, इसका दूसरोसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं है । यह ज्ञानरूपकी परिणति तो अपनी परिणति है । स्वभावके कारण अपने ज्ञानकी परिणति चलती जा रही है । इसका बाह्य पदार्थोंसे कोई सम्बन्ध नही है ।

जैसे चौकी, कमडल, आदि पदार्थोका ज्ञान हुआ तो इसका चौकी, कमडल किसी चीजसे सम्बन्ध नही है। मेरेमे जो ज्ञान उत्पन्न होता है उसमे इस चौकी और कमडलने कोई मेरी मदद कर दी है क्या ? अरे ये कोई भी मददगार नही है। खुद ज्ञानकी परिणति होती रहती है और ज्ञान उत्पन्न हो जाता है। हम लोग तो आवरण लिए हैं इस कारण ज्ञानकी कुछ कमी है और यह आवरण मिट जाय तो ज्ञान सर्वविश्वका उत्पन्न हो जाय। फिर तो सारा विश्व अपने आपमे जाननेमे आयगा। तो इस मारे विश्वकी मेरे जाननेमे कृपा , क्या ? सभी द्रव्योके प्रति ऐसी निगाह रहे तो सम्यग्ज्ञान प्राप्त होनेका यह अच्छा उपाय है। तब ससारके क्लेश दूर करनेके लिए हमे अपने आत्मस्वरूपकी आराधना करना चाहिए और आत्मस्वरूपकी आराधना, देवकी आराधना, गुरुकी आराधना, स्वाध्याय, सयम, तप आदि करना चाहिए। मुफ्तका कूडा कचडा अपने घरमे आ गया है उसका दान किया जाय, याग किया जाय। ये ६ कर्तव्य गृहस्थके बताए गए हैं।

देखो भाई ! कूडा कचडा क्या ? धन वैभव ही कूडा कचडा है। उसके प्रपन्च करनेमे आपकी कोई करतूत है क्या ? आपका स्पर्श है क्या ? अरे वे तो भिन्न-भिन्न सत्ता वाले है। अगर एक जगह आ गए तो मुफ्त ही तो हैं, आत्माका तो आकार अपने ज्ञानपर्यायमे है। इस वैभवमे तुम्हारा क्या गया ? कुछ गया तो नही। इसलिए यह वैभवविभूति मुफ्त ही तो है। इसलिए यह कूड़ा कचडा कहलाया, धन तो जड है। जीवका स्वरूप चैतन्य है, मेरा इसमे कुछ नही है। यदि यह कूडा कचडा नहो है तो तीर्थंकर चक्रवर्तीने इसे कैसे त्याग दिया ? विभूतिका त्याग देना क्या उनका बेवकूफी समझना चाहिए ? इस आत्मस्वरूपको देखनेमे और धर्म करनेके प्रसगमे निश्चयकी ही बात सामने रखी जाती है और उसमे उलझनेकी बात सामने नही रखी जाती है।

देखो भाई २४ घटे है। २३ घटेका समय तो विकल्पोमे लग गया, पर एक घन्टेका जो समय बचता है उसमे २-४, १०-१५ मिनटका समय तो आत्मस्वरूपके चिंतनमे लगावो। अपनेको सबसे निराला ज्ञानमात्र विकल्प भावोसे परे अनुभव करो। यदि इस प्रकारका अपने आपको अनुभव करो तो शान्ति प्राप्त हो सकती है और यदि अपने को लुटेरो ग्टेरोसे मिला हुआ अनुभव करोगे तो शाति नही प्राप्त हो सकती है। अपनेको ज्ञानस्वरूप, सबसे निराला विलक्षण चैतन्यमय अपने आपको अनुभव करो और २४ घटेमे २, ४ मिनट तो अपने आत्मस्वरूपमे दृष्टि दो तो आकुलतायें व्याकुलतायें नष्ट हो जावेंगी।

हम मूर्तिकी मुद्राका दर्शन करते है तो हमे शिक्षा मिलती है कि मूर्तिकी तरह ही

शांत अपने आपको निरखूं अपने आपको उस मूर्तिकी तरह शांत निरखे बिना शांति नही मिलेगी। इस प्रकारसे मानो कि वीतराग मुद्रासे अपनेको शिक्षा मिलती है।

जहाँ पर वासनाएं है वहाँ दुःख है, वहाँ व्यसन है। तो भाई ये व्यसन तो ज्ञानके द्वारा ही नष्ट हो सकते हैं। मैं तो ज्ञानमात्र हूं, कृतकृत्य हू, परिपूर्ण हूं, अधूरा नही हूं, ज्ञायकस्वरूप हू, ऐसा ही तुम्हे अपने आपको निरखना है। यही तो इस आत्माका काम है। इस आत्माका इसके आगे और कोई काम नही है। इसलिए अपने स्वभावमे दृष्टि हो तो वहाँ वासनाएं समाप्त हो जावेंगी, और वासनाओंके समाप्त हो जानेसे सारे क्लेश समाप्त हो जावेंगे।

काम बोधपरिपादर्थेऽनर्थे तन्मूलधर्मके।
त्यक्त्वादर स्वमर्चेय स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१३॥

पुरुषार्थ चार होते हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। धर्मके मायने पुण्य करना, परोपकार करना, दूसरोकी सेवा सत्कार करना। व्यवहारसे धर्मके मार्ग तो कितने ही है—दान करके, परोपकार करके, किसी भी प्रकारके गरीब पुरुषोको खिला-पिला करके इत्यादि अनेक प्रकारसे धर्म किया जा सकता है। अब दूसरी बात है—अर्थ। अर्थके मायने है धन कमाना। धन कमानेका पुरुषार्थ करना, इसीके मायने हैं अर्थ पुरुषार्थ। काम पुरुषार्थके मायने है घरका पालन-पोषण करना, समाज तथा देशके बारेमे कुछ सेवाभाव उत्पन्न करना विषय-भोग सेवना इत्यादिके मायने हैं काम पुरुषार्थके और मोक्ष पुरुषार्थ तो मोक्ष है ही। यह मोक्ष पुरुषार्थ अन्य तीनो पुरुषार्थोमे अच्छा है। धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थ भी गृहस्थावस्था मे किसीकी अपेक्षा कुछ अच्छे हैं, मगर सर्वथा अच्छे नही कहेगे।

अब जरा क्रमसे एक एककी खबर लो। पहले कामको लो। काम निन्दनीय होता है, कामका अर्थ पालन पोषण और काम वासना दोनो ही है। काम ज्ञानका बैरी है। जैसे विषयोमे आसक्ति है, प्रीति है तो वहाँ ज्ञानका काम तो नही चलता है। कामका पुरुषार्थ है ज्ञानका दुश्मन। अब अर्थ पुरुषार्थको लो। धन तो अनर्थका मूल है अर्थात् धनसे अनर्थ होता है। धनका काम तो केवल अनर्थ है। धनके होनेपर यदि विवेक है तब तो धन बनेगा और यदि विवेक नही है, मोह है तो मोहके होनेसे प्रकृति ऐसी हो जाती है कि पाप करते हैं, दूसरोको सताते हैं, क्रोध करते है, छल दम्भ धोखा इत्यादि करते हैं, धर्म पुरुषार्थ, अर्थ पुरुषार्थ व काम पुरुषार्थ दोनोका कारण है। पुण्यका और क्या काम है? खूब कमाई आ रही है, खूब सम्पत्ति भोगकी सामग्री मिल रही है सो पुण्य पुरुषार्थकी यह प्रकृति है कि काम

पुरुषार्थमे और धर्म पुरुषार्थमे सहयोग दे। पुण्य पुरुषार्थसे और क्या काम ? यहाँ आत्म-धर्मकी बात नही कह रहे। उसमे यदि रम गए तो इससे अच्छा और क्या काम है ? तब तो फिर सारे काम बन गए। यहाँ तो पुण्यकी बात लेनी है। इस पुरुषार्थसे क्या काम बना कि धन सम्पत्ति मिल गयी, माँगी हुई सामग्री मिल गयी। यही हुई धर्म पुरुषार्थकी बात और दूसरे पुरुषार्थकी पोलको तो सुन ही लिया। काम ज्ञानका दुश्मन है, अर्थ अनर्थका मूल है और दोनो ही दुश्मनको बढावा देने वाला है यह धर्म (पुण्य) पुरुषार्थ।

इन तीनो पुरुषार्थोंका सम्यग्ज्ञानी पुरुष आदर नही करता है। यदि पुरुषार्थ करना ही है तो ज्ञानका पुरुषार्थ करो। परम पुरुषार्थका रास्ता ज्ञान है। यदि ज्ञान है तब तो परम पुरुषार्थ हो सकता है। नही तो मोक्ष पुरुषार्थ नही हो सकता है। अभी देखो शान्ति, सतोष, सुख और आनन्द इत्यादि उसी अवस्थामे आते हैं जब कि अपने अतःकरणमे विषय-कषायोका अनुभव न हो। यदि विषयोको लगाव है, धन वैभवका लगाव है तो शान्ति, सुख, आनन्द इत्यादि कैसे प्राप्त हो सकते है ? जिनका लगाव इन सबमे होगा, उन्हे दुर्गतिका पात्र बनना पडेगा। मनुष्यको सकटोसे बचाने वाला केवल ज्ञान ही है और इनका कोई शरण नही है। घरमे स्त्रीके, पुत्रके हजार गुण हो, पर समझो कि कोई देवता हमे नही मिल गए है। अपने मार्गमे ही केवल विचार बना लेते है कि मेरा अच्छा समागम हुआ, हम लोग सुख से हैं। देखो भाई इस तरहमे अपने परिवारको देखकर और अपने धनको देखकर सुखी हो रहे हैं।

अज्ञानी जन अपने ज्ञानको इन बाहरी चीजोमे ही फसाए हुए है। बाह्यमे ज्ञानका फसाना ही आस्रवका कारण होता है। सो कहते हैं कि धर्म, अर्थ, काम ये तीनो पुरुषार्थ वास्तविक पुरुषार्थ नही हैं। मोक्षका पुरुषार्थ ऐसा है कि जिससे मुक्ति प्राप्त हो जाती है। और यदि अपना उपयोग मोक्ष की प्राप्तिका ही बने तो बात उत्तम है। भैया ! जो तुम्हे चार पांच आदमी मिल गए हैं, जिनको तू अपना सर्वस्व समझ रहा है उनसे ही क्या तेरी गुजर हो जायेगी। उस पारिवारिक बंधनमे पडा हुआ यदि तू मौज करता रहा तो क्या तेरा पूरा पड जायगा। तेरा पूरा तो नही पड सकता। शाति नही मिलेगी। यह जीव जहाँ जाता है, पहुचता है वही पर रम जाता है। तो और आगे नही पहुचता है।

एक स्थानकमे कहते हैं कि एक राजा थे। मुनिके दर्शन करनेके लिए गए। राजाने अपने बारेमे मुनिसे पूछा कि महाराज मेरा परभव कैसा गुजरेगा, अब मैं मरकर क्या बनूंगा मुनिने अवधिज्ञानसे सोचा और कहा कि अमुक दिन, अमुक समयमे, अमुक स्थानपर तुम मर कर विष्टाके कीडा बनोगे। अब राजा अपने घर आया। बडा उदास था। अपने लडके

ने कह दिया कि बेटा! मैं अमुक दिन, अमुक टाईम पर, अमुक स्थान पर मरकर विष्टामें कीड़ा बनूंगा। तुम हमें एक लकड़ीसे मार डालना। मैं तो राजा हूं और कीड़ा मकौड़ा बनूंगा, तो। मैं तो इस जगतमें कीड़ा मकौड़ा बनकर न रहूंगा। राजा मर गया और कीड़ा बन गया। लड़का एक लकड़ी लेकर पहुंचा। जिस विष्टामें राजा कीड़ेके रूपमें बैठा हुआ था उसीमें लकड़ीसे लड़केने मारना चाहा, पर वह कीड़ा उसी विष्टामें घुस गया। देखो भाई वह कीड़ा मरना नहीं चाहता था। इस जगतमें यह जीव जिस गतिमें जन्म लेता है वह वहांसे अन्य गतिमें नहीं जाना चाहता है।

यह देखो नाम प्रकृतिमें गतियां चार मानी गई हैं। नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव। इसमें दो गति नरक व तिर्यञ्च पाप हैं। और मनुष्य व देव ये दो गतियां पुण्य हैं तथा आयुकी चार प्रकृति हैं—नरकायु, मनुष्यायु, तिर्यञ्चायु व देवायु। जिसमें आयुकी तीन तिर्यञ्च, मनुष्य और देव तो पुण्य प्रकृतिमें हैं। केवल नरकायु पाप है। यह फर्क इनमें कैसे आया? कोई तिर्यञ्च या मनुष्य देव जीव यह नहीं चाहता कि मैं मर जाऊं। तिर्यञ्च नहीं चाहता कि मैं मर जाऊं। तिर्यञ्चको तो आयु प्रिय हो गयी, किन्तु तिर्यञ्चको जो अवस्था गुजर रही है उसे वह नहीं चाहता और मरना भी नहीं चाहता। यह जहां जाता है वहीं मस्त हो जाता है। केवल नारकी जीव ही चाहते हैं कि मैं मर जाऊं, अन्य कोई भी मरना नहीं चाहते हैं। इस कारण नरकायु पाप प्रकृति है बाकी ३ आयु पुण्य प्रकृति है।

हे आत्मन्! विवेककी पूजा है। जिनको तुम भगवान समझकर पूजा करते हैं सदा ध्यान लगाते हैं, भक्ति करते हैं उनके कुछ ज्ञान लेश मात्र भी नहीं आती है। कितनी ही हम माथा रगड़ते हैं, पर वह हमारी तरफ देखते भी नहीं। देखो भैया! बहुत दिन भक्ति करते हो गये, उनकी आराधना करते हो गए। फिर भी वे हमारी तरफ देखते भी नहीं यानी कुछ भी राग नहीं करते और फिर भी हम पूजन करते, पाठ भी करते बने जा रहे हैं। देखो भाई, इतने दिन भगवानका पूजन करते हो गए उन्होंने कभी यह भी नहीं कहा कि चलो यह ले लो। हम कितनी ही भक्ति करें वे तो केवल ज्ञायक निजानन्दरसलीन हैं। देखो प्रभु हमसे बोलते भी नहीं, बहुत दिन बीत गए, वर्ष बीत गए, बीसों वर्ष बीत गए, युग बीत गए, हमारे लिए प्रभुने कुछ नहीं किया। अरे थोड़ासा ही मीठा बोल देते तो हमारा दिल तो ठंडा हो जाय, मगर कुछ नहीं किया। फिर भी हम उनका पूजते भी रहते हैं उनके लिए हम न्योछावर होते चले जा रहे हैं। कुछ तो बात भगवानमें बड़ी है तभी तो हम उनको पूजते हैं। उन भगवानने जो कुछ अपने लिए किया है वह ठीक ही किया हमें। विषयोंमें मोह छोड़कर, ममत्व छोड़कर अपने आपमें स्वयं बस गए, अपनेको अपने आपमें ही जान लिया,

वैभव विभूतिको कुछ नही समझा। आज प्रभु निष्कम्प निष्काम सर्वज्ञ सर्वदर्शी अनन्तानन्दमय हैं, सर्वोत्कृष्ट हैं।

१. हे आत्मन्! ये बाहरके पदार्थ भोग साधन हैं क्या, बतलाओ। एक तराजूमे सेर भर मेढक तोलो तो क्या तोल सकोगे? अरे वे उछल जावेंगे। कही इधरसे उछल गया तो कही उधरसे उछल गया। इसी तरह बाहरी पदार्थोंकी व्यवस्था बनाकर कोई चाहे कि हम आराम करलें तो कर सकते हैं क्या? नही कर सकते हैं। बाह्य पदार्थोंकी हालत भी ऐसी ही है कि यह आया, वह गया और वह आया, यह गया। इस तरह बाह्य पदार्थोंको अपना उपयोग बनाकर हम आराममे नही रह सकते हैं। और अपनी व्यवस्था बना कर हम आराम कर लें यह सुगमतया हो जाता है। ज्ञानदृष्टि बना लें फिर आराममे रहे। ये धर्म, अर्थ और कामपुरुषार्थ हमारी विपत्तिका कारण बनते हैं, हमारी अशान्तिका कारण बनते है।

८ गृहस्थीको यह बतलाया गया है कि धर्मपुरुषार्थ, अर्थपुरुषार्थ और कामपुरुषार्थ तीनोके बिना काम नही चलता है। अर्थात् बिना धर्म किए, धन कमाए, काम किए और मौज उडाए काम नहीं चलता है, सो भाई वे तीनो पुरुषार्थ गृहस्थको करने पडेंगे पर उनको बताया है कि तीनोमें बराबर यत्न करना चाहिए। और अगर कोई नहीं करता है, बराबर केवल धर्म (व्यावहारिक पुण्य) करता है या केवल धन कमानेमे ही लगा रहता है या केवल काममे ही लगा रहता है तो उस गृहस्थीका गुजारा चलनेका नही है। अगर केवल धर्म ही धर्म करते हो तो मुनि बन जावोगे या परिग्रहत्यागी श्रावक बन जावोगे और मुनि बन गए तो तुम्हारा गुजारा चल जायेगा। पर एक गृहस्थीका गुजारा त्रिवर्ग बिना नही चलेगा। उसकी गृहस्थीका काम हो नहीं चल सकता है। केवल धर्मको ही खीचकर रह जावे तो गृहस्थका गुजारा नही चलेगा। जैसे साधुवोकी बात है कि खाना मिल गया तो खा लिया और न मिला तो कोई बात नही है सो इस तरहसे उनका तो गुजारा चल जायगा पर एक गृहस्थीका गुजारा नही चलेगा। यदि कोई गृहस्थीमे ही फसा रहे, धन ही धन कमानेमे पडा रहे, अपने परिवारका पालन पोषण ही करनेमे पडा रहे तो क्या उसका गुजारा चल जायगा? नही? उसका गुजारा नही चलेगा। और कोई ऐसा हो कि काम ही काममे रहे, विषयोंमे ही मस्त रहे, खाने पीनेमे ही आसक्त रहे, जिनमे मोह है उनकी सेवा खुशामद, पालन पोषणमे ही रहे और धर्म, पुरुषार्थ न करे तो भी उसका काम नही चलेगा। इसलिए गृहस्थको धर्मपुरुषार्थ, अर्थपुरुषार्थ और कामपुरुषार्थ तीनोमे ही समान समय देना पडता है। धर्मके समयमे धर्म करें और मौज उडानेके समयमे मौज उडावें व पालन पोषण करें और धन कमानेके समयमे धन कमावें।

देखो ये चार पुरुषार्थ बताए गए हैं:—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। मोक्ष पुरुषार्थ तो आजकल चलता ही नहीं। केवल तीन पुरुषार्थ रह गए हैं, और चौथे पुरुषार्थके एवजमें पुरुषार्थ जो अब चलता है उसको बतावें तो शायद आप सबको बहुत सुहा जायेगा। बताएँ? आजकल चौथा पुरुषार्थ चलता है नींद लेना, सोना; मोक्षकी एवजे पर अब सोना ही चलता है। अब देखो काम चार हैं:—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। और घंटे हैं चौबीस, प्रत्येक कामका २४ घंटेमें भाग दिया तो ६, ६ घंटा प्रत्येक कामका हुआ। ६ घंटे धर्म करना, ६ घंटे धन कमाना, ६ घंटे काम करना, पालन पोषण करना और मौज उड़ाना और ६ घंटेका काम है नींद लेना, आराम करना। इसमें भी भैया चार बजे बादसे क्रमशः चलावें। चाहे थोडासा अन्तर पड जावे पर इस तरह सब काम चलेगा। धर्म सुबह करना, उसके बाद अर्थका काम, उसके बाद पालन पोषण करना और मौजके काम, और उसके बाद नींद लेने और आराम करनेका काम। जैसे धर्मका काम सुबह ४ बजेसे १० बजे तक, याने ६ घंटा। और अर्थका काम अर्थात् धन कमानेका काम १० बजेसे शामके ४ बजे तक और ४ बजेसे १० बजे रात तक पालन पोषण तथा अन्य काम और १० बजे रातसे सुबह ४ बजे तक नींद लेना और आराम करनेका काम। भले ही थोडासा परिवर्तन कर लो, मगर वे काम बराबर बराबर चलें। ४ बजेसे १० बजे तक नहीं तो एक घंटा कम ही सही। ६ बजे तक हो सही। इसी टाइममें धर्म पुरुषार्थ कर लो और यह एक घंटा शामके बाद धर्ममें लगा लो। प्रातः उठते ही कायोत्सर्ग रूपमें णमोकार मंत्रका जाप कर लो। उसके बाद हाथ पैर धोकर स्वाध्याय कर लो फिर सामायिक कर लो। सामायिक करनेके बादमें नहा लो, धो लो।

देखो इस अवसरमें नहाना, धोना भी धर्ममें ही शामिल है, जब कि यह भाव है कि देवदर्शनादि करना है, फिर धर्म करो, सत्संग करो इत्यादि। अब भी देखो धर्म ही चल रहा है। घरमें जो रसोई तैयार करेगा उसमें भी धर्मका काम है क्योंकि वह कीडे मकोडोंको बचाकर खाना तैयार करेगा और फिर वह किसी मुनि अतिथि व्रतीको खिलाएगा, ऐसी भावनाए होनेपर धर्म होता है। मगर देखो रसोईका काम घंटा डेढ घंटामें हो जाना ठीक है। यदि रसोईमें चटोरी चीज बनाना हो तो ज्यादा टाइम लगेगा। अब रसोई तैयार करनेमें देखो धर्म ही चलता है। सोच लो मनसे तो सदा धर्म ही धर्म चल सकता है। धर्मका तो असलमें २४ घंटा ही टाइम है, किन्तु मुख्यताकी अपेक्षा बात चल रही है। अब देखो ४ बजे सुबहसे ६ बजे तक या १० बजे तक धर्म ही धर्म किया। अब १० बजेसे ४ बजे शाम तक धन कमानेका समय आ गया। धनको यदि ईमानदारीसे व परसेवाके भावसे कमाओ तो

वहाँ भी धर्म है। गृहस्थअवस्थामें तो २४ घंटा धर्म ही धर्म है। तो १० बजेसे ४ बजे तक धन कमाना चाहिये, फिर ४ बजेसे १० बजे रात तक लड़कों बच्चोंका पालन-पोषण करना, मिलना-जुलना, सत्संग करना, सभा मीटिंगमें जाना, मौज इत्यादि, और फिर १० बजे रातसे सुबह ४ बजे तक नींद लेना और आराम करना। इस तरहसे बटवारा करना ठीक है। अब क्या बाकी रह गया, कुछ नहीं। [illegible]

[illegible] ज्ञानीके, योगीके तो धर्म, अर्थ और काम— ये तीनों पुरुषार्थ आदरके योग्य नहीं होते हैं। विषयके काम करना तो सीधे खराब है; अर्थ पुरुषार्थ करना भी अनर्थ है; प्रायः अर्थ अनर्थको मिलाता है। अब रहा धर्म, सो यहाँ धर्मके मायने पुण्य है। पुण्यके विपाकमें भोगका साधन ही तो जुटता है। उस भोगसे बनने दुर्गति होती है। इस कारण पुण्य ज्ञानीके स्पृहाका (कामका) व अनर्थका (अर्थ प्राप्तिका) कारण है। अतः पुण्य भी आदरणीय नहीं है। यदि विवेकसे ही तीनों पुरुषार्थोंका उपयोग हो तो गृहस्थावस्थामें कुछ ठीक है, नहीं तो यह स्पष्ट बात है कि ये तीनों पुरुषार्थ संसारको बढ़ाते हैं। आदरके योग्य तो केवल आत्मधर्म है। कषायकी मन्दताको धर्म कहते हैं, किन्तु कदाचित् मन्दकषाय होनेपर धर्म हो या न हो, लेकिन आत्माके सहजस्वरूपकी दृष्टिमें धर्म ही है। इसी धर्मके द्वारा कषाय मंद हो जायगा और मोक्षमार्ग भी चलेगा। उस धर्मसे सत्य आदर प्राप्त होगा। अपने स्वरूपमें दृष्टि अधिकसे अधिक लगे तो वही धर्मका पालन है। धनकी चीज तो यों ही हो जायगी। अथवा धन तो [illegible] है। उसमें कुछ करना नहीं पड़ता है। अभी कोई समय ऐसा सुयोग बन जावे तो यों ही कमाई न हो जावे? अभी अभी २, ४ मिनटमें भी कमाई हो जावेगी। यदि पुण्योदय नहीं, तो कितना ही खेद करो, उससे कुछ भी न होगा। भैया! हमें तो सोचना होगा, श्रद्धा करनी होगी, आचरण करना होगा, अपनेमें अपनेको लगाना होगा, तभी अपना ठीक होगा। धर्म तो करनेसे ही होगा। धनको धन वैभव तो यों ही हो जायगा। सो अब मैं समागत पदार्थोंके व अपने पर्यायके आदरको त्याग करके, अपने सत्य स्वरूपको देख करके अपनेको ही अवलोकन करता हुआ अपनेमें अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होऊँ।

[illegible] सुखाद्दुर्गतिर्देव प्राप्य तद्धेतुक [illegible]
[illegible] दूर वमानि पापेभ्यः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१४॥

[illegible] जगत्के सभी जीव चाहते हैं और जितने भी ये यत्न करते हैं सुख पानेके लिए ही यत्न करते हैं। धन कमाना, देश सेवा करना, विषय सेवन करना, भोग करना, आत्महत्या कर डालना इत्यादि सारेके सारे यत्न सुखके लिए जीव करते हैं। उन यत्नोंसे सुख मिल ही जाय ऐसा तो नहीं है। यदि ये योग्य काम हैं तो सुख मिलेगा और यदि अयोग्य काम हैं

तो सुख नहीं मिलेगा। परंतु सभी प्रयत्न सुखके लिए करते हैं। सुख होता क्यों नहीं है ? देखो दुःखके जितने कारण हैं, जो कुछ है उनमें विचार करो तो सबमें एक ही बात मिलेगी। दीनता। सुखका दुश्मन है दीनताका भाव, दीनताका परिणाम। दीनता सुखका दुश्मन है ? पचेन्द्रियके विषयमें जब इच्छा होती है तब दीनता ही रहती है। मनमें विषयोंकी चाह है तो दीनता होगी। परका भाव आ गया, स्त्रीके आधीन हो गए या नए नए जो साधन हैं उनके आधीन हो गए। यहां भी दीनता है। परिणाममें गरीब हो गए। अपने बलका कोई वह मूल्य नहीं करता, यह सब दीनता ही तो है।

यह दीनता सुखका दुश्मन है। इसी तरहके भोजन करनेके परिणाम हो गए। अब यह चीज चाहिए, अब वह चीज चाहिए इत्यादिसे वे पराधीन होते हैं। कोई मना करे फिर भी दसों प्रकारके व्यञ्जन परोसे जा रहे हैं, यदि खाने वालेके मनमें आ जाय कि यह चीज अच्छी है, बस इतनेमें ही जीवके दीनता आ जायगी, उसका गौरव घुम जायगा। चाहे ऊपर से न मांगे, पर आशाके परिणाम आ गए तो दीनता है और इस दीनताकी बुद्धिमें फिर वह मुखसे मांगने लगता है। यह दीनताका परिणाम ही मूलमें ऐसा है जो सुखका दुश्मन है। इसी तरह मन, चक्षु, श्रोत्र आदिके वशीभूत हुए तो दीनता छा जायगी, और यदि किसी चीजके वशीभूत नहीं हुए तो दीनता नहीं आती है। जगत्के किसी पदार्थकी चाह नहीं है तो दीनता कैसे आवेगी ? एककी बात न देखो। कितनोंके सामने ये जगत्के जीव दीन बने रहते हैं। स्त्रीके दीन, धनके दीन इत्यादि जिन-जिन बातोंमें चाह है, जिन-जिन वस्तुवोंसे प्रीति है उन सब पदार्थोंके दीन बन रहे हैं। सुखका अभाव किसने किया, दीनताने। धनहीन होवेको दीन नहीं कहते, क्योंकि परवस्तुवोंकी चाह करे, भीतरमें लच जाय उसे दीनता कहते हैं। यह दीनताका परिणाम है सो सुखका दुश्मन है।

एक बार एक राजा जंगलसे निकला तो वहां एक सन्यासी बैठा था। वह राजा सन्यासीके आगेसे निकल गया, नमस्कार भी नहीं किया, बोला भी नहीं, अब वह वहांसे वापिस आया। कुछ थका मांदा था सो वह साधुके पास आराम करनेके लिए बैठ गया। राजाने विनय नहीं की और न कोई शुश्रूषा की बात की। राजा गर्वसे भरा हुआ बैठा था। साधुने एक श्लोकके द्वारा कहा कि 'वयमिह परितुष्टा वल्कलैस्त्वं दुकूलैः, सम इव परितोषो निर्विशेषो विशेषः। स तु भवतु दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला, मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान् को दरिद्रः ॥' अर्थात् यदि तुम रेशमके वस्त्र पहिनकर खुश हो तो हम वृक्षकी छाल और वल्कल पहिनकर खुश हैं। तुम यदि अर्थसे अर्थात् धनसे खुश रहा करते हो तो हम आचार्यों के ऊंचे ऊंचे श्लोकोंके अर्थ लगाकर खुश रहा करते हैं। यदि तुम बड़े अच्छे-अच्छे पलंग

वाहन, आसनोमें खुश रहा करते हो तो मैं पारमार्थिक तत्त्वोको विचारनेमे खुश रहा करता हूं। हममें और तुममे अन्तर क्या है ? कुछ नही। पर राजन् दरिद्र वह है जिसके हृदयमे तृष्णा लगी रहती है। उसका मतलब यह था कि हम संन्यासीको दरिद्र देखकर राजा गर्वमें आ गया है, तो उत्तर दिया कि दरिद्र वह है जिसके अन्दर तृष्णा लगी है उसे ही दीन कहते हैं। धनकी कमीसे कोई दीन नही कहलाता।

सुखका दुश्मन दीनता है। जब जीवोको क्रोध आता है, उसके मनमें दीनता आती है, घमड आता है, मायाचार होता है, दूसरोंसे सम्मान चाहा जाता है तब दीन होता है। सुखका दुश्मन दीनताका परिणाम है। सो भैया ! देखो मोहीकी निर्लज्जता कि इसके दीनता आती है कि दीनता भी आती जावे और सुख भी मिले। यह दीनता होती कैसे है, मिथ्यात्व के पापसे, भ्रमके पापसे। पाप पाँच होते हैं—मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया और लोभ. ये पाँच ही पाप हैं। हिंसा, झूठ, चोरी आदि ये तो लोक दृष्टिसे पाप हैं। जो दूसरोकी समझमे आते, जिनका त्याग लोकव्यवस्थाके हेतुभूत हैं, इनमे भी वास्तवमें अन्तर्वर्ती दुर्भाव ही पाप है। मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया और लोभ, इन पापोमे कौनसा पाप छूट गया ? हिंसा, झूठ, चोरी वगैरा किए जाते तो इन्हीं पाँचोकी वजहसे किए जाते हैं। सो पाप तो वास्तवमें मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया, लोभ हैं। उनमें प्रबल है मोह।

आप लाख दर्जे मेरा हित चाहते हैं, किन्तु मुझे भ्रम हो जाय तो आपकी शक्ल देखकर मेरे दुर्भावके कारण मुझे पाप लग रहे हैं। मुझे भ्रम हो गया तो मैं मरा जाता हूं, जला जाता हूं, भ्रम तो पाप है और धोखा कैसा है ? धोखा भी एक पाप हैं। किसी ने किसीको धोखा दिया तो धोखा देने वालेको टोटा है कि जिसे धोखा दिया गया उसे टोटा है ? टोटा तो उसे है जिसने धोखा दिया, जिसको धोखा दिया गया है वह यदि ज्ञानमें है तो टोटा नही है और यदि ज्ञानमे नही है तो संक्लेशभाव होनेसे टोटा है। जिसने धोखा दिया उसका ऐसा रुद्र परिणाम है कि वह कठोर बन गया। उसको तो विशिष्ट पाप है। उसका कैसे छुटकारा होगा, वह कैसे पार होगा ? जिसने धोखा दिया उसे महा पाप है। जिसको धोखा दिया गया उसकी आत्माको कितना क्लेश होता है, इसका तो वही अनुभव कर सकता है जिसे क्लेश होता है। जिसको धोखा दिया है उसके मनमे ऐसा तक आता है, कि अगर साधन हो तो धोखा देने वालेकी जान भी ले ले और यह मिथ्या मोह भी क्या है ? धोखा है।

प्रश्न.— जिसको धोखा दिया वह इतना संक्लेश करता और हिंसाका विचार करता है तो वह भी तो बड़ा पाप करता है। उत्तर—पाप वह भी करता है परतु वह अपने अन्य

दुर्भावसे करता है। यह मोह भी क्या है ? यह विश्वासघात है, मिथ्या है। जैसी बात है, जैसा पदार्थका स्वरूप है वैसा विश्वास नही बना और उसका उल्टा बना बैठा तो यह धोखा है और अपने आपको धोखा दे रहा है तो यह कितना कुयोनियोमे भ्रमण कराने वाला धोखा है ? धोखा अपने को देने वाला मैं खुद हूं, कोई दूसरा नही है। अपनी ही कल्पनाओं मे मस्त रहे और यह सोचें कि हम काम ठीक कर रहे हैं, हमारा यों काम चल रहा है, हम मजेमे हैं इत्यादि। पर वृद्धावस्थामे खबर कुछ और ही होगी कि हाय ! हाय ! ६०, ७०, ८० वर्ष धोखेमे ही चले गए। अब क्या होगा, करने योग्य समयमे तो कुछ नही किया प्राय: जिसके जवानी है, बचपन है उसके ज्ञान विकसित नही हो रहा है, पर औरमे उसको धोखा है। जब लोगोको कष्ट होने लगता व अधिक कष्ट सहे नही जाते तभी ज्ञान होता है। किसी किसीके जवानी या बचपनमे ही विवेक हो जाता है। ये जगत्के प्राणी अपनेको धोखा देते जा रहे हैं। अच्छा खाने पीनेका ही काम है, संतुष्ट होकर खाते हैं। अरे वे इस सुखमें ही मस्त होकर अपने आपको धोखा देते हैं। ये सब तो नष्ट होने वाले है, उनकी चीजें नही हैं। सुखमे मस्त होना अपने आपको धोखा देना है। भैया ! जो सुख आते है उनके भी तुम जाननहार रहो, फिर और यह जो दु:ख होते हैं उनके भी तुम जाननहार रहो। यो सुखमे मस्त हुए जाते हो और दु:खमे घबडाए जाते हो। यही तो इस ससारमे विकार है। अरे परपदार्थोंमे, परजीवोमे मस्त न होओ। उनमे मस्त होनेसे सुख नही होता। जिसके लालच है उसके ही दीनता है, और जहां पर दीनता है वहां पर क्लेश है। जैसे कोई किसी वस्तुमे लालच करे परवस्तुवोमे दृष्टि दे तो वही दीनता है। तो सुखका दुश्मन दीनता है, दीनताका परिणाम है और वह एक बडी दुर्गति है, उसका कारण पाप है। पाप करें तो दीनता उत्पन्न होती है। इसलिए पापसे दूर रहना चाहिए, यही मनुष्यकी सर्वोत्कृष्ट विभूति है। जो पुराणोमे लिखे गए महापुरुष है उनमे यह विशेषता थी कि वे पापसे दूर रहे, उनकी धर्ममे प्रीति रही। इसीसे उनके पुराण बन गए। भक्त लोग उनके चरित्रके पन्ना उलटते है और उनके चरित्र पढ़ते हैं। उनमे यही विशेपता थी कि वे पापसे दूर रहे तो हमे भी चाहिए कि पापको छोड दें।

एक जगह शास्त्र सभा हो रही थी। अनेक लोग शास्त्रमे बैठे हुए थे। एक लकड़हारा भी उस दिन शास्त्रमे बैठा था। शास्त्रमे चर्चा चली कि हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील व परिग्रह ये पांच पाप ही दु:ख देने वाले है, उनको त्यागना चाहिए। यह सुनकर उसने सोचा कि हिंसामें कुछ और पाप तो करता नही हूं केवल जगलमे हरी लकड़ी काटता हूं। अच्छा उसे अब मैं नही काटूंगा, मैं केवल सूखी लकड़ियां बीन लाया करूंगा, या किसी सूखे पेड़से

नी लाट लाया करूंगा। झूठका पाप तो और कुछ नहीं करता, मैं किसीसे झूठ नहीं बोलता केवल ग्राहकसे लकड़ीका ठहरानेमे झूठ बोलता हू सो यह भी न बोलूगा। आठ आना की लकडी लाऊंगा और आठ आना कहूंगा। चोरी मैं नही करता कि सिर्फ दो पैसेकी चुंगी बचा लेता हू। अब मैं चोरी भी नहीं करूंगा। मैंने किसी दूसरेकी स्त्री पर दृष्टि भी नही डाली। अच्छा अब मैं पूर्ण ब्रह्मचर्य कर लू। स्वस्त्रीसे भी ब्रह्मचर्य रहेगा। परिग्रहका सो क्या करना? आठ आनेकी लकड़ी बेचता हू। दो आने धर्ममे खर्च करू, चार आनेमे गुजर बसर करू और दो आने जो बचते हैं उन्हे विपत्तियोसे बचनेके लिए, संकटोसे हटनेके लिए, विवाह आदि कामोमे लगानेके लिए जोड़ता रहूँ। अपनी कमाईके चार भाग कर लिए। उसके रिग्रहका काम ठीक हो गया। इस तरहसे वह अपनी गुजर करता गया। एक दिन लकड़हारा जगलमे लकडी काटकर एक सेठकी हवेलीके नीचेसे निकला। उसी समय सेठके रसोइयाको लकडीकी जरूरत थी सो उस सेठका नौकर रसोइया भी निकला, बोला—लकड़ी बेचोगे? हां हां बेचूगा। कितनेमे बेचोगे? ८ आनेमे। ४ आने लोगे? ५ आने लोगे? नहीं। ७ आने लोगे? नहीं। लकड़हारा चल पडा। रसोइया थोड़ी देर बाद बोला अच्छा लौट आवो लकड़हारा लौट आया, लकड़हारेसे रसोइयाने फिर कहा—साढ़े सात आना देंगे। बोला— तू किस बेइमानका नौकर है? ऊपरसे सेठ सुन रहा था, सेठने बुलाया, बैठाया और बोला कि हमें बेइमान क्यो बना रहे हो? कहा—महाराज नौकर भी जैसे संगमें रहता है वैसा ही सीख लेता है। नौकर पहले तो बुलाकर कहता है कि मजूर है, फिर बादमें कहता है कि साढे सात आने लोगे। सेठ जी तुम तो रोज शास्त्रमें बैठते हो, हम तुम्हें देखते हैं। हम तो केवल एक ही दिन शास्त्रमें बैठे, तबसे ही मैंने पांचों पापोका त्याग कर लिया। अब मैं हरा लकड़ी नहीं काटता, चुङ्गीके पैसे नहीं चुराता, झूठ नहीं बोलता, हम ब्रह्मचर्य का पालन भी करते हैं। अपनी कमाईका चौथाई धर्मके कामोमे, दो चौथाई गुजारेमे लगाता और एक चौथाई विपत्तियोंके लिए, संकटोके लिए और वरके काम काजोंके लिए लगाता हू। सेठ बोला कि अरे लकड़हारे पुण्यवान तो तू ही है। सेठने उसका आदर सत्कार किया।

प्रयोजन यह है कि दुर्गति तो पापोंसे बना करती है। जो पापोको बनाता है वह आदर्श नही बन पाता है। और जो पापोसे दूर रहता है वह आदर सत्कार प्राप्त करता है, सुखी रहता है। सुखी होनेका उपाय है पापोंको दूर करना। सो पाप ५ हैं—मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया और लोभ। इन पापोके जो वशीभूत है वह शांति नही प्राप्त कर सकता है। सो यह दीनता कैसे नष्ट हो? जब अपना महत्त्व स्मृत हो कि मैं ऐसा प्रभु हूं तो दीनता

नष्ट है। दीनता तब आती है जब अपनेको तू तुच्छ समझता है। दूसरोसे ही मेरी जिन्दगी है, दूसरोसे ही मुझे सुख है, इस तरहके मिथ्या परिणाम रहते हैं तभी दीनता रहती है और यदि ऐसे परिणाम हो कि मैं आतमा शुद्ध, चैतन्यस्वरूप हूँ, ज्ञानानन्दभाव मात्र हूँ, विलक्षण हूं, सर्वोत्कृष्ट हूँ, ऐसा मैं अपनी आत्माको देखू तो मैं सुखी हू, परिपूर्ण हू, मेरेमे हीनता नही है।

हीनताका कुछ मेरेमे काम ही नही है। यह तो ज्ञानमात्र भाव है। इसके तुच्छता कहाँ बसी है ? ऐसे परिणाम वाला आनन्द पाता है और जो इस प्रकारसे अपनेको नही देखता है और बाहरमे ही मोह लगाए रहता है उसके दीनता आ जाती है। इस दीनताके मिटानेका उपाय है अपने आपमे दृष्टि करना। जितना भी मुझे सुख मिलता है वह मेरे ज्ञान के विकाससे मिलता है। एक मनुष्य भोजन करके अपने आपमे सुखका अनुभव करता है तो एक योगी उपवास करके, निराहार रहकर अपने प्रभुके दर्शन करके सुख प्राप्त करता है। तब कैसे कहा जाय कि सुखका कारण भोजन ही है। जो भोजन करके सुखी होता है वह अपने ही ज्ञानसे सुखी होता है। यदि कोई बहुत बढिया बढिया भोजन कराते है और दा-चार चोचले भी कहते जाते है याने बढिया भोजन खूब प्रेमसे कराते है और खुद भी भोजन करते जाते है और कहते है कि खा लो, ऐसा अच्छा भोजन कभी नही किया होगा। तुम्हारे बापने भी कभी ऐसा भोजन नही खाया होगा। तो इसके बाद वह भोजन विषसा लगता है। खाने वाला कितना दुःख महसूस करेगा ? अरे बाह्य वस्तुसे तुमने सुख माना है तो सुख ही उससे निकलना चाहिए। तो मतलब यह है कि जो भोजन किया जा रहा हो उस भोजनसे सुख नही मिलता है, केवल कल्पनाये बना लेनेसे ही तदनुकूल काल्पनिक सुख मिलता है। सर्वत्र ही जीवको ज्ञानसे सुख मिलता है। सुख और दुःख ज्ञानके ऊपर ही निर्भर है। यदि अपनेमे ज्ञान है तो वहाँ दुःखोका नाम नही है और यदि ज्ञान नही है तो आजीवन क्लेश हैं। कल्पनायें बना लेनेसे दुःख सुख हो जाते हैं। अभी कोई क्लेश हैं तो अगर सही ज्ञान बना लें कि मैं तो ज्ञानानन्दघन हूँ, मैं तो सुखी हू तो क्लेश दूर हो जावेंगे।

एक मनुष्यको कोई अच्छी काच मिल जाय, उसे यदि कल्पना हो जाय कि यह तो हीरा है, अरे यह तो २०-२५ हजारका कमसे कम होगा। बस समझो रूपको ठसक आ जाती है। कही अगूठीके भीतर कोई काँच लगा हो और यह भ्रम हो जाय कि यह तो हीरा है, कमसे कम १० हजारका होगा। इतनेसे ही वह प्रसन्न हो जायगा, सुखी हो जायगा। और यदि हीरा भी हो और जरा देरमे यह समझमे आ जावे कि यह तो काच है तो उसका चित्त बुझा रहता है। बाह्यपदार्थोसे कोई सुख नही है। पर भ्रम ऐसा बन गया है कि बाह्य

पदार्थोंसे ही सुख है, यही समझ कर वह परिश्रम करता है और उनका संग्रह करता है। जैसे कुत्तेको सूखी हड्डी मिल जाय तो उसको मुहमे रखकर अकेले मे चबाता है। उसके चबानेसे दांत मसूडे फट जाते हैं, खून भी आ जाता है, अपने खूनका आनन्द आता है पर भ्रम हो गया कि उसको हड्डी चबानेसे आनन्द आता है। यदि कोई दूसरा कुत्ता उसको छीनने के लिए दौडता है तो वह गुर्राता है। भ्रम हो गया ना उसे कि यह हड्डीका खून है। उसे इस विकृत ज्ञानने विकृत आनन्द मिला, यह दृष्टान्त है।

इसी तरह जगतके जीव अपने स्वय ज्ञानमे, अपने ही आनन्दके विकारसे सुखी होते है। किन्तु उस समय जिन बाह्य पदार्थोंको उपयोगमे लिए हुए हैं उनसे सुखका भ्रम हो गया। सो कोई परवस्तुवोको पकडता है और सग्रह करता है और उनके ही पीछे झझट चलता है। सही पता हो जाय कि मैं स्वयं ज्ञानानन्दपुञ्ज, अविनाशी तत्त्व हू। यदि यह पता पडे तो इसके दीनता न रहे। यह दीन हो जाता है पचेन्द्रियके विषयोको देख कर। ऐसा दीन हो जाना ही उसके दु.खका कारण है।

हे आत्मन्! अपने आपको निरखो कि मैं भगवान् सदृश ज्ञानमात्र हू, इसमे दुःखोका काम ही नही है, इसके सारे प्रदेशोमे आनन्द भरा हुआ है। आनन्दकी मेरेमे कमी नही है। मेरा ज्ञान मेरेसे बाहर नही है और न आनन्द ही मेरेसे बाहर है। मैं स्वय ज्ञानानन्दघन हू, यह लक्ष्य हो जाय, ऐसा भीतरसे परिचय मिल जाय, दृढ प्रतीति हो जाय, ऐसा यह उप-योग बनाने के लिए तैयार हो जाय तो उसको क्लेश नही मिल सकते हैं। पर भैया! सम्बन्धमे हानि ही हानि है। अकेला है तो बडा सुख है और यदि दुकेला हो गया, विवाह हो गया तो क्या मिला कि चौपाया हो गया। दो पैर खुदके, दो स्त्रीके हैं। चौपाया जान-वर कहलाते हैं। दो हाथ पैर वाला मनुष्य था, अब चोपाया हो गया। बच्चा हो गया तो छैपाया हो गया, भँवरा हो गया। अब भवरेकी तरह आवश्यकताकी पूर्तिके लिए डोलता फिरता है। बच्चेका विवाह भी हो गया तो अष्ट पाया हो गया अर्थात् मकडी बन गया। मकडीका जाल होता है। उसने अपनेमे जाल बनाया और फस गया। ५०, ६०, ७०, ८० वर्ष तक उनकी ही धुनमे लगा रहता है। कितने ही सकट आवें, घरमे बसने वाले लोगोको मान लिया कि ये मेरे हैं और ये दुनियाके लोग क्या हैं? ये गैर है। ये सब भाव अपने लिए मोहकी विपदाए हैं।

भय्या! ऐसा भाव अपने मनमे बने कि मैं भगवान् तुल्य, ज्ञानघन, पवित्र आत्मा, सबसे न्यारा हू, तो आत्मकुशलता है परन्तु ज्ञान तो यह आता है कि यह मेरा लडका है, यह मेरा घर है, और बाकी तो सब गैर हैं। वे चाहे मर जावें, चाहे जो कुछ हो जावें उन

से मेरा कुछ मतलब नही, पर अपने घरके जो २, ४ मनुष्य हैं उनको पकडे हुए हैं। इन दो चार मनुष्योका मोह छोडो, ये भी सब तेरे कुछ नही है। इनके मोहसे ही रुलना पडेगा। मगर उन्हीके बारेमे भक्ति है, भावना है व ज्ञान है। दस लक्षणमे दान करेंगे, व्रत करेंगे, पर मोह न करें ऐसे भाव तकका उत्साह भी नही होता। भैया! सबसे बडी विपदा यही है कि यह विकल्प हो कि घरमे बसे दो चार को मान लिया कि ये मेरे हैं बाकी सब गैर हैं। अरे कौन किस गतिसे आया, यहां कब तक रहेगा, कुछ भी तो सम्बन्ध नही, फिर भी विपरीत बात मनमे आना और जिस कल्पनासे आजीवन क्षोभ रहता है उस कल्पनामे ही रमना, यह कितनी बडी भारी विपत्ति है? भगवान्की बात और तो सब मान ली जायेगी किन्तु मोह त्यागने की बात नही मानी जाती तो माना ही क्या? भगवान्का तो मूल उपदेश मोह और मिथ्यात्वके त्याग करनेका है। जैसे कोई पतनाला निकालने की घटना थी। पटेल दूसरे घरके पासमे पतनाला निकालना चाहता था, तब पचोने फैसला उसकी इच्छाके कुछ विपरीत दिया तो पटेल कहता है कि पचोका कहना सिर माथे पर, पर पतनाला यही पर निकलेगा। सो भगवानकी पूजा मजूर है, दान उपवास आदि मजूर है पर मोह छोड़नेकी बात नही कर सकते। यही सबसे बडो विपदा है। मोह ही सब पापोका मूल है। जगतके समस्त क्लेश पापोसे आते है। तो मैं इन पापोको अपनेसे दूर करके अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होऊ।

कार्यहेतुर्न चान्यन्मे भाति विश्वं स्वसत्तया।
ज्ञान सुख परस्मान्न स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१५॥

प्रत्येक जीव सुख चाहते है। सुख प्राप्त होनेका केवल एक ही उपाय है दूसरा नही है। वह यह है कि मैं एक स्वतंत्र सत् हू, मै सबसे निराला एक जुदा पदार्थ हू, ऐसा अपने आपमे विश्वास आ जाना यह ही सुखका उपाय है। मैं कैसा स्वतत्र पदार्थ हू, किसीको धोखा देने के लिए नही हू, मैं स्वय एक स्वतत्र पदार्थ हू और जगतके सब जीव भी स्वतत्र स्वतन्त्र पदार्थ है। किसी पदार्थका दूसरा पदार्थ न कार्य है और न कारण है। इसी प्रकार स्वतन्त्र जानते रहनेका उपयोग ही सुखका कारण है, मेरा कोई कारण नही है अर्थात् मै किसी चीजसे पैदा हुआ नही हू। ऐसा निरखना ही ज्ञान है और ऐसा निरखनेसे ही सुख है। यह मैं किसी दूसरे पदार्थसे पैदा हूँ ऐसी बात नही है। प्रत्येक पदार्थ अपने आपमे है और अपने आपमे ही परिणमते रहते हैं। मैं ऐसा ही ज्ञानमय हूँ, सुखमय हूँ जो स्वतन्त्र हू और अपने आपमे अपने द्वारा अपनी शक्तिको व्यक्तिमे परिणमाता रहता हू। मेरा जो परिणाम होगा वह ज्ञान और सुखका होगा। जैसे आत्माका स्वरूप है वैसा ही परिणमन होगा।

जैसे आममे रूप गुण है तो आममे क्या काम होगा ? नीला, पीला हो जाय, लाल हो जाय, रूप बदलता रहेगा । यही तो आमका काम है । आममे रस है तो रस बदलता रहता है । खट्टा हो जाय, मीठा हो जाय, कैसा भी हो जाय, यही तो आमका काम है । इसी प्रकार मेरा गुण, ज्ञान व आनंद है तो मेरा क्या काम होगा, कभी अपूर्ण विकासी रहे, कभी पूर्ण विकासी रहे, कभी अल्पज्ञाता रहे, कभी पूर्ण ज्ञान हो, कभी विकृतानंदी हो, कभी आत्मानंदी हो, यही तो मेरा काम है । यहांपर कोई दूसरा काम नही है । मेरे गुणसे ही ज्ञान और आनन्द वर्तना है । यह मै आत्मा अपनेको सोचू कि मैं आनन्दस्वरूप हू, स्वतत्र अस्तित्वको लिए हुए हूँ, अपने आपमे हूँ, अपने आपमे ही ज्ञान व आनन्द मिलता है, किसी दूसरे पदार्थसे अपनेको ज्ञान व आनन्द नही मिलता है । यह आत्मा ज्ञान और आनन्दमे परिपूर्ण है । मेरेमे ज्ञान व आनन्द किसी दूसरे पदार्थसे नही आता है । मेरेमे जो ज्ञान आनन्द भरा हुआ है वह दूसरे पदार्थोंके कारण नही है । दूसरे पदार्थ तो मेरे ज्ञान और आनन्दके बाधक बन सकते है, हमारे ज्ञान और आनन्दके साधक नही बन सकते हैं । परमार्थमे बाह्य पदार्थ मेरे ज्ञान और आनन्दके बाधक भी नही बनते, क्योकि हम स्वय ही कल्पनाएँ बनाकर विह्वल हो जाते हैं । मेरेमे तो आनन्द और ज्ञान है, मैं आत्मा अपने स्वरूपमे हूँ । यदि किसी बाह्यमे दृष्टि न हो, मोह न हो, विकल्प न हो तो हमारा ज्ञान जितना भगवानका है उतना हो जायगा । मैं तो सबमे जुदा हूँ फिर भी स्वय ज्ञान और आनन्दसे परिपूर्ण हू ।

मेरी और भगवानकी जाति तो एक है पर अन्तर इतना है कि उनके ज्ञान और आनन्द परिपूर्ण अनन्त है और हमारे ज्ञान और आनन्द अल्प है । ऐसा क्यो हुआ ? हममे गल्ती यह है कि हम अपने स्वरूपको न जानकर दीन बने हुए हैं । यही गल्ती है और यही कारण है । इसी गल्तीके ही कारण दुःख हो रहे हैं । जानकारी किसी भी चीजकी कर लें तो जानकारी करनेमे दीनता नही आती है । दीनता तो अपनेमे आशामयी कल्पनायें बना लेनेसे आती हैं । दीनतासे क्लेश आ जाते हैं । यदि आशायें मिट जावें तो दीनता मिट जायगी । यदि हमे दीनता मिटाना है तो परकी दृष्टि छोड दें । परकी दृष्टिसे ही क्लेश होते हैं । अतः यदि परकी दृष्टि छोड दें और अपने आपके महत्त्वको समझ लें तो दीनता मिट जाती है । यदि अपनेमे दीनताका भाव न रहे तो आनन्द ही आनन्द है और अन्य इसका उपाय नही है । कितने उपाय कर डालें, पर अधूरे ही रहेगे । दुःख न हो, अशान्ति न हो ऐसी अवस्था न हो, ऐसा चाहते हो तो अपने आपको कृतार्थ समझकर अपने आपपर विश्वास करना चाहिए ।

विश्वास यह होना चाहिए कि मैं एक सत् पदार्थ हूँ, अपनेमे हूँ, मेरेमे ज्ञान अपूर्ण नही ज्ञान और सुखसे लबालब भरा हुआ हूँ । हालाकि इस समय एक समस्या सामने है

कि भूख तो लगती ही है, इसे भोजनमें तो दृष्टि देना ही होता है, यह नही कि दृष्टि भोजन ही भोजनमें रहे, उपाय ऐसा बने कि भोजनकी इच्छा ही न रहे और ज्ञान व आनंद ही रहे। भोजन तो करते ही जाते और पूरा कुछ पड़ता नही, तब इतना तो करो कि भोजनमे आसक्ति न रखो। अपने पेटकी केवल पूर्ति कर लो और अपने भाव निराहार ज्ञायकस्वरूप भावकी प्रतीतिरूप कर लो तो अमर रह सकते हो। यदि भोजनकी इच्छा दूर होगी और निराहार ज्ञायकस्वभावमय आत्मतत्त्वकी दृष्टि होगी तो उसका यह परिणाम होगा कि आहार सज्ञा खत्म हो जायगी और ऐसी स्थिति आवेगी कि यह शरीर छूट जायगा व इस संसारके सारे झगडे छूट जायेंगे और केवल आत्मा ही आत्मा रह जावेगा। यह स्थिति ही सर्वोत्कृष्ट है। यदि मनमे कुछ लालसा, लालच इत्यादि करनेकी भावनाए बनें तो फिर ऐसी स्थिति कैसे आ सकती है? लालसा करो तो करो यथार्थदृष्टि की, अपने आपमे लानेकी, अपने आपमें झुकनेकी, विकल्पोसे छूटनेकी और अपने आपकी आत्माकी सेवा करनेकी, किन्तु ऐसी लालसा करना कि २ लडके हो जावें, ४ लड़के हो जावें, मेरी ऐसी स्थिति बन जाय, धन हो जाय इत्यादि, ऐसी लालसा करने से तो ठीक नही होगा। अरे इससे पूरा नही पड़ेगा। ऐसा करने से कोई न कोई काम, विपदा, सकट खडे ही रहेंगे। अब यह है, अब वह है, अब यह चाहिए और अब यह मिले, इस तरह से अनेक विकल्प खडे ही रहेंगे। यो तो विकल्पोसे आकुलता ही आकुलता आयगी।

हे प्रभु, हे निजनाथ! मेरेमें ऐसा बल भरो कि केवल अपने आपकी शक्ति आवे, किसी भी बाह्य पदार्थके विकल्प न बनें। बाह्यपदार्थोंको मुझे सोचना ही न पड़े। बाह्यमें सोचनेसे कुछ लाभ भी नही है; सोचते होगे कि हम लड़केको पढ़ाते हैं तो पढता है। अरे लडकेका भाग्य है। अपने भाग्यसे ही वह पढ़ता है। लडकेकी सेवा करते हैं, खुशामद करते हैं तो यह बतलावो कि आपका भाग्य बड़ा है या उस लड़केका भाग्य बडा है, जिसकी सेवा करते हो, पढाते-लिखाते हो खिलाते-पिलाते हो, भारी सेवायें करते हो, बताओ उस लडके का भाग्य अच्छा है कि आपका अच्छा है? अरे जिसका भाग्य अच्छा है उसकी चिन्ता करते हो और अपने भवितव्यके प्रति चिंता नही करते हो। ये सब काम होते हैं और अपने आप होते रहेंगे। सबके भाग्य व काम जुदा-जुदा हैं। क्यो चिंता करते हो? चिंतासे पूरा भी नही पडेगा। ऐसी बाह्य चिन्ताओंसे फायदा नही है। अपने आपका चिंतन करो कि मैं शुद्ध, ज्ञानभाव, ज्ञानस्वरूप आत्मा हूँ। केवल आत्मदृष्टिका ज्ञान होनेका ही स्वाद लेकर यह अनुभव करो कि मैं आनन्दमय हूँ। यदि बाह्य वस्तुवोकी, विषयोकी स्थितिमे रहे तो आनन्द नही है। आनन्द है तो केवल अपने आपके ज्ञानस्वरूपकी दृष्टिमे है।

भैया ! जिनकी हम पूजा करते हैं, जिनका आदर करते है, जिनका चरित्र पढते हैं उन्होने अपने आप पर विश्वास किया, बाह्यदृष्टि खतम की और अपने ही ज्ञानरसका स्वाद लेकर रहे तथा इसके परिणामस्वरूप चरमविकास प्राप्त किया, इसलिए उनका हम आदर करते है, उन्हे पूजते हैं। जीवनमे एक महान उद्देश्य यह बनाना चाहिए कि मेरी वह स्थिति आवे जिसमे केवल अपने ज्ञानस्वभावका ही अनुभव करता रहूँ और ज्ञानस्वरूपका ही स्वाद लेता रहूं। अपने आपमे यह विश्वास हो कि मैं सबसे निराला स्वतन्त्र पदार्थ हू। मेरमे दूसरा कुछ फेर नही कर सकता है। मै दूसर लोगोका कुछ फेर नही कर सकता हूँ। सब सत् हैं और अपने ही सत्के कारण वे परिणमते रहते हैं। मैं किसीका कारण नही जो किसीका कुछ कर देता हू। मैं किसीका कार्य नही कि दूसरे लोग मुझे कुछ कर देते हैं। सब अपने अपने सत्के मालिक है। ऐसी दृष्टि यदि अपनेमे हो तो निश्चित मुक्तिका मार्ग है। समस्त जगत्के जितने पदार्थ हैं वे सब अपने-अपने सत्मे रहत है और कोई भी अपने अपने स्वरूपसे आगे नही जाते हैं।

हे आत्मन् ! ऐसा अपने आपमे विश्वास तो कर कि जो मैं कर सकता हूँ व अपने को ही कर सकता हू, दूसरेको कुछ नही कर सकता हू, व भोग सकता हू तो अपने ही स्वरूप को भोग सकता हू। हाय, विषयकषायोके परिणाममे पडकर जगत्के सब जीव बरबाद हो गए हैं। मेरा भगवान् तो अनन्त आनन्दमय है। इन सर्व परपदार्थोंसे कुछ सम्बन्ध नही, कुछ लेना देना नही, सब अपने अपने सत्मे हैं, सब कुछ न्यारे न्यारे हैं फिर भी बाह्य पदार्थोंके बारेमे यह कल्पनायें उठ जाती हैं कि यह मेरी है, यह उसकी है, यह बहुत बडी विपत्ति छायी है। इन बाह्यपदार्थोंमे मेरा कुछ नही है। यदि बाह्यपदार्थोंमे दृष्टि होगी, बाह्यकी आशा होगी तो अनन्त दुःख होगे। सुखका उपाय अपनी स्वतन्त्रताका विश्वास है। जगत्के सभी पदार्थोंको अपनी स्वतन्त्रताका विश्वास हो तो क्लेश नही हैं और यदि अपने स्वरूपसे हट गए तो क्लेश ही रहेगे, दूसरे पदार्थोंमे ही लगे रहे तो आकुलताए आयेंगी। सो यह सुख और दुःख किसका फल है ? यह दुःख सुख तो मोहका ही फल है। जगत्के जीवोको देखो मोह करके दुःखी और सुखी होते हैं। ये उनके मोह और मिथ्यात्वके ही परिणाम है। मैं अपने आपको यह अनुभव करू कि मेरा तो मात्र मैं ही हू, मेरेमे ममताका परिणाम नही है। यदि अपने आपमे ऐसी भावना बने तो वही कल्याणका मार्ग है।

भैया ! कोई एक शराबी था। वह एक शराबकी दुकान पर गया, बोला कि हमे अच्छी शराब दो। उसने बतलाया कि यह बहुत बढिया है इसे ले लो। कहा नही, नही

हमे बहुत बढिया चाहिए, तब दुकानदारने कहा देखो हमारी दुकानपर जो पाँच, सात ...डे हुए है उनसे तुम अन्दाज लगा सकते हो कि शराब बढिया है या नही। ऐसे ही भैया ! अपनी बात सोचो मोहमे क्या हुआ करता है ? मोहमे आकुलताए होती हैं, मगर देखते है कि ये जगत्के सब जीव बाह्यपदार्थोंमे ही चिंताए किया करते है, दु.खी होते जाते है, मोह किया करते हैं, यही तो सब मोह मदिराका परिणाम है। फिर भी मोहके नशाके दुष्परिणामका विश्वास यह मोही नही करता।

भैया ! अपने मोहकी बेवकूफी देखना कठिन है तो दूसरे लोगोकी मोहकी बेवकूफी देखकर बेवकूफीका स्वरूप जान लो। व्यर्थ ही लोग विकल्प करके परेशान होते हैं और व्यर्थ ही तुम विकल्प करके परेशान होते हो। जिसे तुम अपना लडका बताओ उससे तुम्हारा क्या सम्बन्ध है ? वे तो सब जुदा जुदा है। उनसे तुम्हारा कोई सम्बन्ध नही है। यदि तुम्ह घरमे दूसरा कोई पैदा होता तो उससे तुम मोह करने लगते। अरे जो पैदा हुआ उसका तुम कुछ कर लेते हो क्या ? यह मेरा है, यह आशय आना ही दु.खका कारण है, दूसरा कु... दु खका कारण नही है। अपने बारेमे यह विश्वास करो कि मैं अपने आपमे हू, स्वतन्त्र हू, मैं ही अपना कारण हूं, मैं ही अपना कार्य हू, मैं जो कुछ कर सकता हूं अपनेको ही क... सकता हू, मै अपनेको ही भोग सकता हूं, अपने स्वरूपसे बाहर दूसरेको कुछ न कर सकत हू और न भोग सकता हू और दूसरे लोग भी मेरा कुछ नही कर सकते है। सब वस्तु अपने अपने स्वरूपमे हैं। ऐसा यदि अपने आपका विश्वास हो तो वह अमृतभावका पान क... सकता है। जिसने इस अमृतभावका अमृत पान किया, उसको आनन्द है, उसका ज्ञान दूस... पदार्थोंमे नही आता। शिष्यको गुरु ज्ञान देता है तो गुरु केवल शिष्यका निमित्त होता है। ज्ञान तो उस शिष्यकी आत्मासे ही प्रकट होता है, गुरुसे ज्ञान नही प्रकट होता है अगर गु... दूसरोको ज्ञान देने लगे तो बीस, पच्चीस शिष्योको ज्ञान देनेके बादमे गुरु खुद कोरा रह जावेगा। यदि गुरु दूसरोको ज्ञान दे दे तो गुरु मूर्ख बन जावेगा। शिष्यमे खुद ही ज्ञान भरा हुआ है। सो गुरुका निमित्त पाकर वह ज्ञाता बन गया। देखो कोई बालक बुद्धिमान् होता, किसीको एक बारमे ही याद हो जाता तो किसीको मुश्किलसे याद होता है। क्या कारण है ? यह कारण है कि वह स्वयं ज्ञानमय ही तो है। पूर्वजन्मकी तपस्याके तारतम्यके अनुसार उसके ज्ञान प्रकट होता है। इसी तरह मेरा स्वरूप आनन्दमय है, मेरेमे ज्ञानका ही विकास हो रहा है और मेरेमें स्वयं आनन्द वर्त रहा है। दूसरे पदार्थोंमे मुझे आनन्द नही प्रकट हो रहा है। यदि बाह्यपदार्थोंमे आनन्द प्रकट होता हो तो बतलावो ! इन बाह्य अजीव पदार्थोंमे ज्ञान और आनन्द तो है ही नही तो फिर वहासे ज्ञान और आनन्द कैसे आयगा ?

किसी दूसरे चेतन पदार्थसे आनन्द कैसे आ सकता है ? उनका ज्ञान और आनन्द उनमे ही परिसमाप्त है, मै स्वयं आनन्दमय हू, मेरा आनन्द मेरेसे ही होता है । दूसरोसे मुझे आनन्द नही होता है ।

हे प्रियतम, बाह्यपदार्थोंके विकल्प छोड दो और अपने ज्ञानरसका स्वाद लो । यदि अपनी सहज इस स्वतन्त्रताका विश्वास हो जाय तो यही अनुपम काम है । बाहरी पदार्थोंके विकल्पसे दु ख होते है, बाहरी पदार्थोंसे नही । कोई लडका २० हाथकी दूरी पर खडा हो । यदि एक लडका दूसरे को अगुली दिखाकर चिढ़ाए, तो जिस लडकेको चिढाया जा रहा है वह यदि विकल्प बना ले कि अरे यह तो हमे चिढा रहा है, तो ऐसी कल्पना बनानेसे, ऐसा ख्याल करनेसे उसे दु ख होता है, दूसरे लड़केकी अगुलीसे दुःख नही होता है । बडे बडे लोगोंका किसी कारणसे क्लेश हो रहे हैं, तो विरोधीके कारणसे क्लेश हो रहे हैं ? अरे उन्होने स्वयं कल्पना बना ली है कि यह मेरा विरोधी है, यह मेरे खिलाफ है, यदि यह कल्पना बनाली है तो क्लेश होते हैं, दुःख होते हैं । देखा इन दुश्मनोसे दुःख नही होते है, केवल कल्पनाएं बना लेनेसे दु.ख हो जाते हैं ।

एक राजा था, वह किसी राजापर चढाई करनेके लिए जा रहा था । सो वह सेना सहित जा रहा था । रास्तेमे जगलसे निकला । उसी जगलमे एक साधु विराजमान थे, उस साधुके पास राजा बैठ गये । साधुने उसको कुछ उपदेश दिया, कुछ ही दर बाद राजाके कानमे शत्रुवोंके शब्द सुनाई पडे । राजाने समझ लिया कि शत्रु आ रहे है । कहाँ तो वह उपदेश सुननेके लिए विनयासनसे बैठा हुआ था और कहाँ वह वीरासनी होकर बैठ गया । अब राजाने शत्रुवोंको देख लिया तो उठ खडा हुआ और अपनी तलवार निकाल ली । साधु बोला—राजन्, यह क्या कर रहे हो ? राजा बोला—महाराज, ज्यों ज्यों दुश्मन निकट आ रहे हैं त्यो-त्यों मेरा दिल भडक रहा है । मैं शत्रुवोंको गद कर दूंगा । साधु बोला—राजन्; तुम ठीक कर रहे हो कि अपने दुश्मनोंको गर्द करने जा रहे हो, परन्तु एक शत्रु तो तुम्हारे अन्दर ही पडा हुआ है उसका भी तो दलन करो । राजा बोला—अरे, मेरे अन्दर भी कोई दुश्मन है ? बताओ तो वह कौनसा दुश्मन है ? साधु बोले—राजन् तुम्हारा दुश्मन मानने का जो विकल्प है वही तुम्हारा शत्रु है । तुम्हारा शत्रु तुम्हारा मोह है, यह विकल्प ही तुम्हे चैन नही लेने देता है । दूसरे शत्रु हैं, ऐसा ख्याल छोड़ दो । दूसरा कोई तुम्हारा शत्रु नहीं है । ऐसा ख्याल छोड़ दो कि फलां मेरा दुश्मन है । साधुकी बात समझमे आ गयी । अब राजा शान्त होकर, मुनि दीक्षा लेकर मूर्तिकी भाँति बैठ जाता है । शत्रु जन जब आये तो सब उसको प्रणाम करते हैं । दुश्मन राजाको शान्त मुद्रामे देखकर प्रणाम करके चले जाते

हैं ।

बतलाओ कि यदि वे राज्य हडप लेते तो विजयी थे या यों ही शान्त मुद्रामें रहकर विजयी बने । अरे राज्य हडप लेनेसे मोह हो जाता और उन्हें दुःख होता । आकुलनाएँ व्याकुलताएँ सदा बनी रहती ।

इस कारण अपने आपको विश्वास करो कि मैं आत्मा ज्ञानमात्र हूं, आनन्दमय हूं, सबसे निराला हूं, बाह्य पदार्थ मेरे हो, ऐसी कोई गुंजाइश नही है । मैं मैं हू, जो हैं वे अपने आपमे हैं । किसीका दूसरेसे सम्बन्ध नही है । ऐसे स्वातन्त्र्यकी दृष्टि हो जाय तो सुख और शान्तिका मार्ग मिल सकता है और कितना ही धनसचय हो जाय, कितनी ही इज्जत मिल जाय, पर अन्यकी दृष्टिसे शान्ति नही मिल सकती है ।

जीवो दृश्यो न यो दृश्यो जीवो वा कोऽपि मे न हि ।
कस्मै सीदानि नश्यानि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१६॥

हम रात दिन दूसरोका ख्याल रखकर, दूसरोका विकल्प बनाकर परेशान रहा करते हैं । हम सबमे से केवल एक यही बात नहीं जा रही है कि किसी भी परपदार्थका ख्याल करना, अटपट कल्पनाएँ करना और परेशान होना । इतना ही काम प्राणियोका अब तक चला आ रहा है । कोई किसीका ख्याल करता, कोई किसीका ख्याल करता, मगर दुःखी होनेकी एक यह ही पद्धति सबके अन्दर पायी जाती है कि वे दूसरोका ख्याल करते, इष्ट अनिष्टका ख्याल करते और परेशान होते हैं । योगियोमे और भोगी प्राणियोमे इन ही बातो का अन्तर है । योगी सम्यग्ज्ञानकी ही पद्धतिसे चीजोको जानते हैं इष्ट अनिष्टोंको नही जानते हैं और अपने ही स्वरूपमे मग्न रहते हैं । इस तरहसे वे योगी सदा प्रसन्न रहते हैं और हम जगत्के जीव परवस्तुवोके विकल्पोको लिए हुए रात दिन परेशान रहते है ।

वस्तुवोका स्वरूप देखो, प्रत्येक पदार्थ केवल अपने स्वरूपमे उत्पाद और व्यय करता है । अगुली चाहे अपने आप टेढी हो, चाहे दूसरे मनुष्य अगुलीको दाब दें, पर अगुलीमे टेढ़ापन बना है वह अगुलीकी ही परिणतिसे बना है । वह इन ही स्कन्धोकी परिणतिसे बना है । उस अवस्थाका करने वाला कोई दूसरा नहीं है । परपदार्थोंमे जो कुछ भी हो जाता है वह उनके स्वयं अपने आपमे होता है, कोई दूसरा उसको नही करता है । एक निमित्तकी बातको देखकर यह प्राणी गर्व करता है कि मैंने यह काम किया । जैसे अभी हारमोनियम बज रही थी तो वह कैसे बज रही थी ? इन भाईकी आत्माकी बात देखो तो यह आत्मा तो इच्छा, ज्ञान कर रहा था जिसके निमित्तसे योग भी हो रहा था । इससे आगे इस आत्माका काम नही । हारमोनियममे पीतलके तार हैं, उसमे हवा दी जाती है तब वह स्वर देती है । इतने

पर भी वह स्वर शब्द तारसे नही प्रकट हुआ, भाषावर्गणाके स्कन्धोसे प्रकट हुआ है ।

इन जगत्के प्राणियोको देखो, इच्छा और योग अपने आपमे कर रहे है । इसके अतिरिक्त और कुछ नही कर रहे हैं । इच्छा हो रही है, ज्ञान हो रहा है, अभिलाषा हो रही है । उनका निमित्त पाकर उनकी आत्माके प्रदेशमे कम्पन हो जाता है । इच्छा जिसके होती है उसकी आत्मामे कम्पन हो जाता है । जैसी अनुकूल इच्छा इस आत्मामे है उसीके अनुकूल हलन इस शरीरमे है । योगका निमित्त पाकर शरीरमे जो वायु है, सो वायु चली, वायुमे कम्पन हुआ, फिर वातका निमित्त पाकर इस शरीरके अग चले, अगुलियाँ चली । ऐसा स्वय हो गया । इस ही तरह शरीरमे वायु चली और फिर अग भी चल पडे । उसके निमित्तसे दबाव हुआ सो हवा निकलनेका अवकाश मिला । देखो ये काम सबके अपने आपमे हो रहे हैं । जहाँ हवाका पास होना हुआ और रहा आवाजका निकलना हुआ । इसपर भी पीतलसे शब्द प्रकट नही हुआ, किन्तु भाषावर्गणासे शब्द प्रकट हुआ । कोई किसी अन्यको कुछ नही करता । सब पदार्थोंके जुदा-जुदा काम हो रहे हैं, पर निमित्त उनका एक दूसरेमे है । जिससे यह भ्रम हो जाता है कि अमुकने यह काम किया ।

वस्तुवोके स्वरूपको देखो तो परवस्तुवोमे स्वतन्त्रतासे उनका अपने आपके परिणमनसे खुद काम हो रहा है । ऐसी स्वतन्त्रताकी दृष्टि आती है तव ज्ञानी जीव जगतके पदार्थोंके परिणमनको देखकर न हर्ष करते हैं और न विषाद करते हैं । अब यह देखिए कि हम परेशान हो रहे है तो किसलिए परेशान हो रहे हैं ? उनमे परेशान होनेसे क्या कुछ लाभ बना लोगे ? प्रथम तो ऐसा ही सोचें व यत्न करें कि मेरी दृष्टि बाह्यसे हट जानी चाहिए । इसमे असफलता हो तो फिर आगे सोचें कि मैं किसके पीछे बरबाद हो रहा हूँ, दुखी हो रहा हूँ ।

देखो पदार्थ दो तरहके हैं—(१) जीव और (२) अजीव । जीव वे कहलाते है जिनमे देखन हो, जानन हो, और अजीव वे कहलाते हैं जिनमे जानन तत्त्व न हो । दो ही प्रकारके तो पदार्थ हैं । इनमे से जीव तो दिखता ही नही, जो दिखा करते है वे दिखने वाले पुद्गल हैं अथवा ये जो दिखते है, भौतिक हैं । परपदार्थोंमे एक तो भौतिक है और दूसरे चेतन पदार्थ याने देखने जानने वाले पदार्थ हैं । इन दोनो प्रकारके पदार्थोंके पीछे परेशान हो रहे हो । विचार करो कि जिन जीवोके पीछे परेशान होते हो वे दिखते तो नही हैं और जीवोके स्वरूपमे दृष्टि दो तो उनमे देखन है, जानन है ज्ञानानन्दमय भाव है वे तो जैसे है तैसे ही है । और वैसे ही सब हैं, किसीसे कोई विलक्षण नही है तो उनमे मेरे तेरेका भेद ही नहीं हो सकता । यदि विलक्षण हो तो मेरे तरेका भेद है । परन्तु जीवोके स्वरूपको देखो परस्पर कोई विलक्षणता नही है । सब स्वय ज्ञानमात्र है, ज्ञायकस्वरूप है, कोई विलक्षणता नही है ।

भारतके, विदेशके, गांवके ये सभी जीव शुद्ध ज्ञानमात्र हैं। आत्माके मर्ममें दृष्टि डालकर देखो तो शुद्ध ज्ञानमात्र है, एक स्वरूपमे है। तो यह मेरा तेरापन कैसे मिल गया ? यह व्यामोह कैसे हो गया कि यह मेरा है, यह उसका है, यह दूसरेका है अथवा यह इष्ट है, यह अनिष्ट है। स्वरूपमे दृष्टि दो तो वहाँ कुछ नही मिलेगा।

भैया ! प्रथम तो इस जीवको पहिचानने वाले भी कोई नहीं हैं। और कोई पहिचाननहार मिल जाय तो इसका ज्ञाता दृष्टा हो जायगा। तो उसकी दृष्टि भली बुरी नही होती है। सब प्रभु नजर आते हैं, सब एक चेतन पदार्थ नजर आते हैं, फिर कैसे मेरा तेरा माना जाय ? अपनी बरबादी दूसरोके कारण नही होती है, अपनी बरबादी अपने ही कारण होती है। जो जीव हैं वे दिखनेमें नही आते है। जीवके पीछे तो हम बरबाद नही हो रहे हैं, परेशान नही हो रहे हैं, क्योकि जीव तो दिखते ही नही। और वह दिखेगा तो ज्ञानीको ही दिखेगा। सो ज्ञानीकी वृत्ति ही अलौकिक है वह परेशान होता नही। परमार्थकी बात यह है कि जो कुछ भी दिखेगा वह अपने स्वरूपमे दिखेगा। सब जीव हैं, एक रस हैं, इस दृष्टिमे व्यक्तिपन ही खत्म हो जाता है। जीवके देखने वाले ज्ञानी योगी पुरुष व्यक्तिको नही देखते हैं। वहाँ उन्हें केवल एक चित् प्रतिभास ही नजर आता है। तो वहाँ परेशानी कैसी ? जहाँ व्यक्ति नजर नही आते हैं वहाँ तेरी नजर कैसे बने ? वहाँ परेशानी कैसे हो ?

सो भैया ! जीवके विषयमें यह बात है कि प्रथम तो जीव दिखते ही नही है। जो समझमे आते ही नही हैं उनमे परेशानी कैसे हो सकती है ? यदि उनका स्वरूप नजर आ जाय तो यह जीव एकरस है, चैतन्यस्वरूप है, सो जीवके स्वरूपके समझनेपर व्यक्तियाँ नजर नही आती हैं, व्यक्तियाँ हैं, भिन्न-भिन्न है, परिपूर्ण हैं, आनन्दमय है। आनन्दके अनुभव सबके जुदा-जुदा है, स्वरूपचतुष्टय सबका भिन्न-भिन्न है। ये जगके जीव सुखी दुःखी होते हैं। सब सत् हैं परन्तु जीवके स्वरूपको देखने वाले लोग व्यक्तियोको अपने मनमें नही रख सकते हैं तो उन्हे एकचित्तस्वरूप ही नजर आता है। जीवोके पीछे लोग परेशान नही हो रहे है। अब इन पुद्गलोकी बात देखो, ये दृश्य तो हैं, मगर ये जड बुद्धिहीन, कुछ कार्य न कर सकने वाले, कुछ ज्ञानकी कलाको न समझने वाले ऐसे तो ये जड पुद्गल हैं। इनसे तुझे कुछ मिलता भी नही है। इनसे न तो कुछ सुख है और न ज्ञान ही आता है। उनके पीछे हम क्यो बरबाद होते हैं।

मानो वे ज्ञानी मनुष्य इस कमरेमें न बैठे होते, केवल दस बीस चौकी [illegible] र टेबुल इत्यादि अजीव पदार्थ रखे होते तो वहाँ कौन बोलेगा, कौन व्याख्यान देगा [illegible] सुनेगा ? अरे उन अजीवोसे लेना देना कुछ नही है। वे जड़ हैं, वे अपने आप है। [illegible]

भी बरबादी नहीं है। इनसे भी क्या होगा ? हाँ, इनके विषयमे विकल्पचक्रमे पडनेसे बरबादी होती रहती है। मैं बरबाद होता रहता हूं तो अपने आप बरबाद होता रहता हूं। दूसरोके द्वारा मैं बरबाद नहीं होता हूं। दूसरोके पीछे विकल्पमे पडनेसे परेशानी होती है और अपना ज्ञान बनानेमे सुख होता है। जैसे पताका अथवा झंडा वायुसे भर जाता है तो फडफडाने लगता है उलझ जाता है तथा सुयोगसे यदि हवा बन्द हो जाय या अनुकूल वायु हो तो सुधर जाता है अथवा फडफडाना बन्द हो जाता है। उसी प्रकार ज्ञान और अज्ञानका निमित्त पाकर याने अज्ञानका निमित्त पाकर स्वयंमे उलझ जाता है और ज्ञानके सुयोगको निमित्त बना लिया तो ज्ञान सुलझ जाता है। आपको परेशान करने वाला इस दुनियामे है कौन ? ये खुद बाह्य पदार्थोंका निमित्त पाकर परेशान होते हैं। यह परेशान शब्द उर्दूका शब्द है। इसे संस्कृतके शब्दमे ले लो तो इसमे २ शब्द हैं—(१) पर और (२) ईशान। पर जिसका ईशान बन जाय, ईशान कहते हैं स्वामीको, अथवा दूसरा मालिक बन जाय। उसे कहते हैं परेशान। यदि दूसरेको हम अपना मालिक समझ बैठें तो यही परेशान शब्दका अर्थ है और इसे परेशानी कुछ नही है। दूसरेको अपना मालिक समझ लेना, खुदको परका मालिक समझ लेना, बस यही परेशानीकी जड़ है। परेशानके भावको परेशानी कहते हैं।

धन्य है वह परिस्थिति, धन्य है वह अनुभूति जिसको केवल सहज ज्ञान रसका अनुभव आ रहा है। परमे विकल्प न हो तो परिस्थिति धन्य है। उसकी अनुभूतिका नाम दुर्गा है। दुःखेन गम्यते प्राप्यते या सा दुर्गा।' जो बड़ी कठिनाइयोसे पूर्ण होना है उसे दुर्गा कहते हैं। यह स्वानुभव बडी कठिनाइयोंसे प्राप्त होता है।

भैया ! अपने आपमे ऐसा उपयोग बन जाय कि कोई बाह्य पदार्थ उपयोगमे न हो, केवल शुद्ध ज्ञानरसका अनुभव होता रहे, ज्ञानदृष्टि होती रहे, तब तो जीवन सफल है अन्यथा क्या दुष्परिणाम है ? प्रमाण यह है कि जो अभी तक इस संसारमे डोला जा रहा है, उसे यदि शुद्ध स्वरूपका अनुभव हो जाय तो यह शुद्ध आत्मतत्त्व इस शरीरके बंधनसे छूट जाय। यह शरीर जड है, हड्डी और माससे बना है। इसमे कोई सार नही नजर आता है। इस शरीरमे फोडा फुंसी हो जावें, अनेक परेशानियां आवें, इसमे कोई सार नही नजर आता है। जो सुन्दर चुपडे बापडे बैठा है उसको छेद करके देख लो, इसमे कोई सार नही नजर आता है। इस शरीरको असार झोंपडी समझ लो और अपने आपको समझो कि मुझमे शुद्ध ज्ञान-स्वरूप चैतन्यमय सारतत्त्व मौजूद है। जैसे किसी गाडीमे गधा और ऊँट जोत दो या हाथी और गधा जोत दो तो जैसी स्थिति होगी ऐसी ही स्थिति मेरी भी बनाई जा रही है। कहाँ तो ऐसा शुद्ध परमात्मतत्त्व मैं हूँ और कहाँ इस असार शरीरका बन्धन बँधा है। फिर भी मैं

अलग रहता हूँ। एकका अनुभव करते हो तो कितने उत्कृष्ट भाव बनते हैं। मैं तो पवित्र, ज्ञानमात्र, शुद्ध चैतन्यपदार्थ केवलज्ञानमय, केवल ज्ञानानन्दमय हूँ और ये पुद्गल असार हैं, अहित हैं, उनसे सम्बन्ध हो रहा है, फिर भी सम्बन्ध ही नही यह भीतरके अपने आपके स्वरूपको ताकता नही और बाहरमे असारको देखकर सर्वस्व मान रहा है। ऐसी दृष्टि हो रही है।

हे नाथ! धन्य वह क्षण है जब सबको छोडकर अपने आप पर शुद्ध नजर करोगे। यदि बाह्य ही मे फँसे रहे तो बरबादी होगी। इन जीवो मे जिसके पीछे पड रहे हो वे अगु जीव पदार्थ हैं। वे अपने आपके स्वार्थके लिए अपनी चेष्टा कर रहे हैं। इस मायामय जग के पीछे मोहमे पडकर मोही व्यर्थ बरबाद हो रहे हैं अर्थात् अपना ख्याल बनाकर, अप कल्पनायें बनाकर ही दुःखी हो रहे है। जो जगतका स्वरूप जब जान लिया तो फिर कष्ट ही क्या है? जो जैसा है वैसा जानते जायें तो स्वरूपरमण होना सुगम ही है। सो अब मेरी ऐसी ही भावना हो कि अब मैं तो अपने ही स्वरूपकी रुचि करके अपने लिए अपने आपको पाकर विश्राम पाऊँ और सुखी होऊँ।

मेरा मात्र मैं ही हू। मेरा अन्य कोई कुछ नही है। किसीके पीछे दु:खी होना व है, हठ हो रहा है। जगतके कौनसे ऐसे विषय हैं जो मेरे

ससारके लुटेरे घमीटोमे चिंताएँ करना, हठ करना, यह मेरी है, यह उसकी है, यह सब व है, पुण्यके उदयका ऊधम है। बड़ा सोच करते हैं कि यदि हठ नही करें तो ससारके लोग क्या कहेंगे? भैया! मायाके हठसे इज्जत नही बढनी। हिंसा करे, मान कर, अन्याय क द्वेष करे, परिग्रह करे तो क्या जीव महान् हो गया? क्या जीवकी इज्जत हो गयी? अर पाप किया और मर गए, मरकर कीडे मकोड़े हो गए तो फिर क्या इज्जत रह गयी? अपने धर्मसे न चिगना यह सबसे बडी कमाई है। जिससे परिपूर्ण आनन्द मिले उससे बढकर और क्या हो सकता है? इससे इस लोकमे सुख है और परलो मे भी सुख रहेगा अन्यथा बाह्य दृष्टि हो तो तुच्छ तुच्छ बातोमें भी यह प्रभु फस जाता है।

एक सुना हुआ कथानक है कि एक मास्टर और एक मास्टरनी थे। दोनो ही भिन्न भिन्न स्कूलमे पढाने जाते थे। समझ लो इतवारका दिन है। मास्टरजी ने मगोडी बनवानेका प्रोग्राम बनाया। बहुत अच्छा सामान बाजारसे खरीदकर मास्टरजी ने घरमे रख दिया। अब मास्टरनी मंगोडी बनाने लगी। बनाते-बनाते २१ मंगोडियाँ बन गयी। २० और १ = २१। अब मास्टर भोजन करने बैठे। १० मंगोडिया मास्टरको परोस दी और ११ मगो-

डियां अपनेको रख ली। कभी मजाक भी हो जाती है, जरा-जरासी बातोमे जिद्द भी हो जाता है। मास्टरने कहा—हमे १० मगोडियां परोसी और अपनें लिए ११ रख ली॥ मास्टरनी बोली—मैंने तो परिश्रम किया है, इसलिए मैं ११ खाऊंगी और आप १० खायेंगे। मास्टर बोला कि हम ११ खायेंगे, तुम १० खाना। अन्तमे दोनोका निर्णय हो गया कि दोनो चुप हो जावें। जो पहले बोल देगा उसे १० मिलेंगी और जो बादमे बोलेगा उसे ११ मिलेंगी। दोनो चुप हो गए। १ दिन हो गया, २ दिन हो गये, भूखो मरे जा रहे हैं, तीन दिन हो गए, मरनको हो गए, मगर जिद्द नही छोडी। स्कूलके बालकोने देखा कि मास्टरजी ३ दिनसे स्कूल नही आते हैं, वे मास्टरजी के घर आए। देखा दोनो मरे पडे हैं। मरे नही, वे मरेसे हो गए थे। सब लोग जुड गए, सबने देखा कि दोनो एक साथ मर गए। चलो इनकी अर्थी बना लें और ले चलें। यद्यपि अभी मरे नही थे, पर वे मरेसे हो चुके थे। वे चुप रहनेकी जिद्दमे मरेसे हो गए थे। लोगोने अर्थी बना ली और दोनोको लिटा लिया, अर्थी ले गए। आग लगाने ही वाले थे कि स्त्रीने देखा कि अब हम दोनो नही बचेंगे। तो भाग्यकी बात देखो कि अर्थी ले जाने वाले २१ लोग थे। स्त्री झट बोली कि आप ११ खा लेना, हम १० खा लेंगी। लोगोने समझा कि ये मरकर भूत हो गए हैं। जब उन्होंने स्त्रीके शब्दोको सुना तो डर गए। बोने कि अरे ये हम सबको खा जावेंगे। हम इक्कीसो ही खतम हो जायेंगे, इसलिए सब छोडकर भाग गए। दोनो ही घर चले गए। बोले कि जो पहले बोला वह १० खाए और हम ११ खायेंगे।

ऐसी कोई घटना अपनी जिन्दगीमे ही घटित हो जाती है। बहुत सी बातें ऐसी ही जाती हैं जिनमे कुछ ज्ञान नही होता है और बवाल खडा हो जाता है। ज्ञानकी शरण लो भैया, यदि ऐसा होगा तो क्या, न होगा तो क्या, यो परिणमन हो गया तो क्या ?

आपने देखा होगा कि उनमे क्षमा कर देनका माद्दा, दूसरोको माफ कर देनेकी बात बहुत अधिक होती है, जो बडे घरानेके लोग होते हैं। वहां उपद्रव और ऊधम इत्यादि ज्यादा होते हैं तो भी वे धीर रहते हैं। यह ज्ञानकी ही बात तो है। खराब प्रकृतिके जो लोग होते है वे छोटी-छोटी बातोमे अड जाया करते हैं। जैसे कहते है ना—घरमे सूत न कपास कोली से लट्ठमलट्ठा।

दो आदमी चले जा रहे थे। एक किसान था और एक जुलाहा। एक मैदान मार्गमें मिला। किसान बोला—अगर यह मैदान मिल जावे तो कपास बोवेंगे, कपासके कपडे बनवायेंगे, व्यापार करेंगे, बेचेंगे। जुलाहा बोला—अगर यह मैदान मुझे मिल जाय तो मैं भैंसें चराऊगा। किसान बोला कि अरे तू भैंसें कैसे चरावेगा, मैं कपास बोऊगा। जुलाहा बोला—

अच्छा देखो मेरी भैंसें चरती है या नही। रास्तेमे चले जा रहे थे। हाथ चलाकर किसान बोला—लो, मैंने मैदान हलमे जोत लिया, बीज बो दिये, कपास पैदा हो गयी। जुलाहा २० ककड उठा लेता है और कहता है कि लो हमारी एक भैस आ गयी, दो भैसें आ गयी और बीस भैंसें आ गयी। दोनोमे तेज लडाई हो गयी।

तो ये जगतके प्राणी व्यर्थको बातोमे विवाद खडा कर देते हैं। घरकी बात देख लो। घरमे तो गुजारा करना ही पडता है। कई बातोके लिए लड़ाई लडनी ही पडती है। फिर भी एक लक्ष्य हो जानेसे शांति हो जाती है। धर्मसे ही काम हो तो धर्मके प्रसंगमे भी विवाद खत्म हो। धर्मके कामोमे लगें और विवाद हो यह तो आश्चर्यको बात है। अरे ये सब क्या है? अपने धर्मको छोडकर कहां दृष्टि डाल रहे हो? धर्म अपन आपकी आत्मामे है। अपने आपके स्वरूपमे दृष्टि हो तो धर्म है। धर्म बाह्यदृष्टिसे, बाह्यमे मोह करनेसे नहीं मिलेगा। शुद्ध परिणामसे ताल्लुक रखो तो धर्म होगा। अगर क्रोध आदि कषायका बन्धन होगा तो धर्म नही होगा। अरे मैं चेतन पदार्थ किन पदार्थोंके पीछे बरबाद हो गया, जिसमे कोई सार नही है। इस जगमे जो जीव है वे दिखते नहीं हैं और जो अजीव हैं वे दिखते हैं, किन्तु जड है और जो जानने वाले, समझने वाले हैं वे दिखते नही और जो समझते नही, वे दिखने है। भाई जो रफ्तार चल रही है उसमे फर्क करना चाहिए। अपनेको अपने आपमे झुका लेना, बस इसीसे शान्तिका मार्ग मिलेगा, अन्यथा संसारमे रुलना ही पड़ेगा। जब तक हम अपने आपसे मुडकर विमुख रहेंगे तब तक शान्ति नही आयेगी, अपनेको शान्त रखनेके लिये समर्थ ज्ञान है, स्वाध्याय है, आत्मचिंतन है। यदि अपने ज्ञानमे ही सही ध्यान बने तो अपने आप शान्ति प्राप्त होगी और अपने आपमे सही ज्ञान न बना तो अशाति ही रहेगी। अत. ज्ञानबलसे अपने आपको मेटकर, मैं अपने आपको देखकर अपनेमे अपने लिए अपने आप सुखी होऊं। सुखी होनेका उपाय अन्य नही है। आत्मदर्शन ही सुखका उपाय है।

ॐ शान्तिः, ॐ शान्तिः, ॐ शान्तिः

परः कोपि हितो मे नो यो हितोहं न मूर्तिकः।
चिन्तने कस्य नश्यानि स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्॥१७॥

अब तक भी जिन जीवोसे सम्बन्ध हुआ उस प्रयोगको याद कर लो। क्या उनमे कुछ भला हुआ, उनसे कोई हित है? अबसे १० वर्ष पहले २० वर्ष पहले जो सग था परिचय था उस प्रसगमे कितना लाभ पाया था? इस बातका भी ध्यान कर लो। जो भी स बंध हुआ उनमे यह जीव पछताता ही रहा है व पछतावा करता है लाभ कुछ नही मिलता है। परिस्थितियाँ सब अलग-अलग हैं, लेकिन तरीका एक ही सबका है सम्बन्ध हुआ, राग किया

द्वेष किया, घटनाएँ बनायी, कार्य किए। जिन जिनसे परिचय हुआ उनसे क्लेश ही मिला, पछतावा ही मिला, अशान्ति ही मिली और यहाँ भी देखो तो जो जीव मोही है, वह तो झूर झूरकर पछताता है, रागमे पडकर तडपकर व्याकुल होता और परेशान होता। मगर जो ज्ञानी जीव हैं वे रागमे नही पडते, समयके अनुकूल ही अपनी अवस्था गुजार देते हैं, उन्हे कोई परेशानी नही होती। अज्ञानी जीव अपने आत्मतत्त्वको नही समझ पाता है, वह अपना जीवन यो ही गुजार देता है। अज्ञानी दूसरोसे अपना सम्बन्ध स्थापित करता है। इस संबंध का फल पछतावा होता है, इसका कोई निर्णय नही करता। जिनका संबंध अन्य जीवोसे है वे भले ही माने कि हम सुखी हैं, मौजमें है। परन्तु अन्तमे इसका फल अत्यन्त पछतावा ही होता है। इस कारण कोई भी परपदार्थ मेरा हितरूप नही है।

मैं मैं ही हू अर्थात् मैं अपनेमे यथार्थ हू, मैं स्वतंत्र हू, सत् हू, चित् प्रतिभासमात्र चैतन्यस्वभाव मात्र, जिसका काम केवल देखन और जानन है, ऐसा मैं ही हू। अपने आपमें हू, यह मैं आत्मा हितरूप हू। यदि इसी तरह मैं अपनी आत्मामे देखूं तो मैं हितरूप हू, सो ऐसा हितरूप मूर्तिक पदार्थ मैं नही हू। जो आत्माको देखा जाय, पकडनेसे जो पकडा जाय, नाकसे सूंघा जाय, ऐसा मैं मूर्त पदार्थ नही हू। जो हितरूप हैं वे किसीको दिखते नही हैं और जो दिखते हैं वे हितरूप नही। फिर मैं किसके चिन्तनमे, किसके विचारमे अपनेको नष्ट कर रहा हू, ये सारे विकल्प अनर्थ हैं। ये मेरे प्रयोजनको सिद्ध न करेंगे, प्रथम तो जितने विकल्प उठते है वे सब अनर्थ हैं। मेरे बाहरके सोचनेसे बाहरसे कुछ आता नही नहीं है। जितने भी लोग काम करते हैं, दुकानका, दफ्तरका, घरका, समाजका वे सब अपने आप होते रहते हैं, इच्छा करलें और जानकारी कर लें, इसके अलावा और कोई काम नही करते, और जो कुछ होते हैं वे अपने आप होते है।

भैया। यदि मैं कुछ करता होता तो जो मैं करूं सो होवे। पर ५ प्रतिशत तो इच्छा माफिक होते नजर आते हैं और ९५ प्रतिशत न होते या प्रतिकूल नजर आते हैं। जरा सोचो तो ५ प्रतिशत भी मेरी इच्छासे नही होत है और न करनेसे होते हैं। वहाँ पर केवल विकल्प हो होता है जो अनर्थ हैं, कार्यकारी नही हैं, ऐसा संयोग सुयोग जिनका होगा वह होगा, मेरे करनेसे कुछ नहीं हुआ करता है। मेरा करनेसे मैं ही होता हू। दुःख होते, सुख होते, कषाय होते, अशांति होती, जो कुछ भी होते हैं वे मेरेमे मेरे लिए ही होते हैं। मेरेसे बाहर मेरे कुछ नहीं होते है। परपदार्थ भी मेरे नही हैं और न हो सकेंगे। कितनी ही बातें ऐसी हो जाती है जिनको आप बहुत दिनोसे सोचते आते हैं, पर पूरी नहीं होती है। कैसे हो परपदार्थ पर आपका अधिकार नही जाता होगा। किसी कामको १० वर्षसे

करते आये पर काम नही हुआ, ये सब पुण्य पापोके निमित्तकी बातें हैं। जैसा पुण्य पापका निमित्त है तैसा बाहरमे संयोग होता है।

ये जगत्के जीव अपने आप कर्मोदयवश सर्वत्र विचरते रहते है। इनके जन्म मरण होते रहते है। जन्म होगा, फिर मरण होगा, फिर जन्म होगा, फिर मरण होगा। एक पचेन्द्रियका शरीर भी प्राप्त हो गया। आंखें देखनेके लिए प्राप्त हो गयी, कान सुननेके लिए प्राप्त हो गए। यह कुछ देखने लगा; यह शहर है, यह मुहल्ला है, यह फर्ला है इत्यादि, यहाँ कुछ समागम हो गया, तो उस समागममे इतना लीन हो गए कि अपने स्वरूपको भी खो बैठे। यदि अपने स्वरूपकी चर्चा करें, अपने ही स्वरूपके निकट पहुचें तो वहाँ आकुलताओंका नाम नही रहता है। अपना स्वरूप है केवलज्ञान। आत्मा सर्व पदार्थोंमे विलक्षण एक सत् है, यह ज्ञानी ज्ञाता ही बना रहता है। इसका और कोई काम ही नही है। सब अपनी-अपनी धुनमे हैं। सब पदार्थ अपने-अपने स्वरूपमे परिणमते हैं। जैसे घडीमे चाबी भर देनेसे चला करती है तुम चाहे जो काम कर रहे हो, घडी अपना काम कर रही है, वह खुद अपना काम कर रही है। दूसरा कोई उसके लिए नही है। जब काम कर चुके तो देखा अरे २ बज गए, १ बज गया। अरे ३ घटे हो गये। घडी अपने काममे व्यस्त है, हम चाहे कुछ भी करें। इस छोटे दृष्टान्तके आधार पर देखो—जगत्के प्राणी अपने अपने कामोमे व्यस्त है, अपना-अपना काम करते है। ये प्राणी यदि दूसरे पदार्थोंके बारेमे चिन्ता करते है तो मानो विरपागलपनकी बातें सोचते हैं।

एक आदमी सडकके पास एक कुएंकी जगत पर बैठ गया। सामनेसे एक मोटर आयी, कुछ लोग मोटरसे उतरकर कुएमे पानी पीने गए। पानी पीकर मोटरमे बैठकर लोग चले गए। अब वह व्यक्ति जो कुएकी जगत पर बैठा था, मोटर चली जानेसे दु.खी हो गया, हाय मेरी मोटर चली गयी। इसी तरह इस जगत् के जीव इस सडकके बीच कैसे पडे हुए है? चारो तरफसे इस जगत्मे जीव आ रहे है, कोई कहीसे कोई कहीसे आ रहा हैं। यह पागल प्राणी मान लेता है कि यह मेरा है, यह उसका है इत्यादि। तो ऐसा सोचनेसे उसका क्या हो गया? अरे जो आए हैं, मिट जावेंगे। उनका अस्तित्व भिन्न-भिन्न हैं पर इस मोही जीवने मान लिया कि ये मेरे है। सो वे अपने परिणमनसे आए हैं और अपने परिणमनसे जावेंगे। जब जानेका टाइम होगा तब चले जावेंगे और अपने परिणमनमें जावेंगे। जब जानेका टाइम होगा तब चले जावेंगे और यह व्यर्थ जानकर दुःखी बनेगा। यह मोही प्राणी उनके ही पीछे पागल हो रहा है, दुःखी हो रहा है। यह मेरा था और चला गया। इस तरहके व्यर्थ विकल्पसे ही मोही दुःखी होते हैं। जरा अन्तर्दृष्टि तो दो हमारा इस जगत्मे है

षया ?

अरे प्रियतम ! यह मैं तो केवल ज्ञानमात्र हू, सबसे निराला हू, सबसे जुदा हू, ऐसी दृष्टि बने तो आत्मज्ञान मैं पा सकता हू, नही तो आत्माका ज्ञान पा सकना बहुत मुश्किल है। इस आत्माको स्वलक्षणकी दृष्टिसे देखो तो कि मैं आत्मा ज्ञानमात्र हू, ज्ञानमय हू, यह आत्मा ही मेरा धन है, यही मेरा निजी घर है, यह आत्मा ही मेरा निजी परिवार है। इस मेरी निजी आत्मामे जाननकी ही व्यवस्था है, जाननके अतिरिक्त मेरा कही कुछ नही है, ऐसा मात्र जाननस्वरूप अपनको निरखो तो वहाँ न तो भोगका पता रहता है और न जगत् का पता रहता है, किन्तु ज्ञानमात्रका अनुभव करना व भोगना रहता है। यही सिद्ध योगियो की स्थिति रहती है, जिसके विवेक है, ज्ञान है, समझदारी है तो वे ससारके दु खोसे दूर रहते है, और जिसके भ्रान्ति है, अज्ञानता है वे ही इस ससारमे पडे रहते हैं, दु ख उठाया करते हैं, उनकी उन्नति नही हो सकती है। हे आत्मन् ! इन बाह्योमे कौनसा सार है, उनमे पडने से तुम्हे क्या लाभ मिलता है ? अरे इन बाह्योसे कुछ नही मिलेगा। यदि अपनेमे ऐसा ज्ञान बनाओ, ऐसी हिम्मत बनाओ जिससे तुम स्वय स्थिर हो सको तो मुक्तिका मार्ग मिल जायगा नही तो नही मिलेगा।

प्रभो ! मुझे मुक्ति मिले या न मिले, किन्तु इतना बल तो होवे कि रागमे पडकर अधा न बनू, द्वेषकी ज्वालामे न जलूँ। राग द्वेष करना ठीक नही, किन्तु इतनी बात हो जावे तो मुक्तिका मार्ग तो मिलेगा ही। राग द्वेषमे पडनेसे कुछ लाभ नही हो सकेगा। राग जिनसे करते हो उनको सामने लेकर प्राइवेट बात कर लो। उनके पीछे पडकर क्यो रात-दिन चिंतन किया करते हो ? इतना ही ध्यान रखो कि वे मेरे किसी हितमे काम आ सकते हैं ? मेरे कल्याणमे कैसे साधक हो सकते हैं ? जब तक हम जानते है कि उनसे हमारा कल्याण होता है तब तक हम भूले हुए हैं। अरे उनसे हमारा भला नही होगा। उनके सम्पर्कमे तो हम जहाँके तहाँ ही है और वहाँसे भी कुछ नीचे हैं। कौनसे पदार्थ हितरूप हैं निर्णय करो। और-निर्णय आ जाय तो परपदार्थोंमे उपेक्षा भाव कर लो। कोई मेरा हित-रूप नही, इसलिए किसकी चिंता करके, किसका विचार करके अपने आपको बरबाद करें ? सबसे हटकर केवल ज्ञानमात्र, ज्ञानमात्र मैं हू, ऐसा दृढ सत्यका आग्रह करके मैं अपनेमे अपने लिए अपने आप सुखी होऊँ।

भैया ! सुखी होनेका दूसरा उपाय अन्य नही है। मैं ही मान जाऊ कि मैं सब कुछ हू, परिपूर्ण हूं, अधूरापन मेरेमे नही है, मेरा बाहरमे करनेको कोई काम नही है, मैं हू, ज्ञानमय हू, ज्ञानमे ही वर्तता रहता हू, इसके आगे मेरा काम नही है। अन्यको मान लू कि

यह मेरा काम है तो इसमे गल्ती है, दुःख होना प्राकृतिक बात है। हम तो भगवानस्वरूप है। जैसा जानन भगवानका है तैसा ही मेरा है। मगर हम तो बहुत सी बातें बनाकर जानते है, जैसा है वैसा नही जानते हैं। सो देखो उनसे भी बढकर बन गए है। कोई छोटा आदमी किसी बडे आदमीसे स्पर्धा करे, हिम्मत करें कि मैं इससे बढकर बन जाऊँ तो इसका फल पतन है। हम भगवानसे बढकर बनना चाहते है। भगवान नही जानता है कि यह मेरा घर है, यह फलाने लालका घर है, यह मेरी चीज है और यह फलानेकी चीज है। मगर हम कहते है कि यह मेरा घर है, यह फलाने लालका घर है, यह मेरी चीज है, यह फलानेकी चीज है। वह भगवान तो शुद्ध है, सीधा साधा सही जानना है, अक्लमंद नही बन रहा है। जैसे वह इस मकानको ऐसा जान रहा है जैसा कि यह परिणमता है, रूप रस गध, स्पर्श वाला है, पुद्गलोका स्कन्ध है। जैसा है तैसा इसे जानता है, प्रभु यही जानन है। और यह मैं जो नही है उसे भी जाननेका विकल्प करता हूं। मोही यह जानता है कि यह अमुक लालका घर है, अमुक लालकी चीज है, परन्तु प्रभु तो जो है उसे ही जानता है और जो नही है उसे नही जानता है। हे आत्मन्! २४ घटेके समयमे कुछ ही समयमे यथार्थ जानकारी कर लो, सम्यग्ज्ञान कर लो। अपनेसे अलग चीजमे लगनेसे कोई फायदा नही है। अगर स्वच्छ उपयोगको जान जावो तो रोज रोज लाभ ही मिलता रहेगा और जो मोहमे ही रहेगा तो उसे अन्तमे मिलेगा कुछ नही। जाना पडेगा अन्तमे अकेला ही। मुट्ठी बांधे आया है और हाथ पसारे जावेगा, जब बच्चा पैदा होता है तो मुट्ठो बाधे ही रहता। कवियोकी ऐसी कल्पना है कि जो पूर्वजन्ममे पुण्य किया है उस पुण्यको ही वह मुट्ठीमे लिए हुए है। जन्मते समय उस बच्चेके पास सब पुण्य होता है परन्तु ज्यो ज्यो आयु बढती है विषय कषायोके भाव बढते है, पुण्य खुलता है, त्यो त्यो हाथ खुलते जाते हैं। वह मरते समय तक सब पुण्य खत्म कर चुकेगा विषय कषायोमे रत होकर।

भैया! जिन्होने बचपनमे ज्ञान नही किया, जवानीमे विषयोमे उपेक्षा नही की और चाहे जो कुछ जीवनमे धर्म किया हो, व्यवहार किया हो वह कुछ नही रहना है। केवल विषय कषायोंकी आकुलताएं ही रहती हैं। जन्मते समय बच्चा केहां केहां बोलता है? कवियोंकी कल्पना है कि बच्चा सोचता है कि मैं कहां था और कहा आ गया। कैसा सुख से था और अब कहां दुःखमें आ गया। बचपनमे मां बापने खूब लाड प्यार किया खूब मौज किया, विवाह हो गया, स्त्री प्रसंग किया और अनेक कल्पनावोंमे लगा रहा एक क्षण को भी अपने आत्मस्वरूपपर ध्यान न दिया, तब जब वृद्धावस्था आयी, दुःखोमे घिरे तब पछतावा करते हैं। विषय कषायोकी भावनाएं रखनेका ही कुफल इस वृद्धावस्थामे मिलता

रहता है। अगर बचपनसे ही अपने आपके स्वरूपके अध्ययन पर ध्यान लगाता, धर्मके काम करता तो ऐसी परेशानी वृद्धावस्थामे नही आती।

ये जगत्‌के प्राणी जन्मते समयसे ही विषयकषायोंमें ही रहे, मोहमे रहे, आरंभ परिग्रहमे रहे और धर्मके कार्योंमे न लगे। निजके स्वरूपको न देख सके तो अन्तिम अवस्थामे बरबाद होते रहते हैं, दुःखी होते रहते हैं। मरनेके समय उनकी वैसी गति हो जाती है जैसी कि मति रहती है। वे जन्म मरणके चक्रमे हो पडे रहते हैं। अनेक प्रकारके शरीरोंमें जन्म ले करके इसके इस मनुष्य शरीरके जन्ममे आते हैं और अपनी जिम्मेदारी नही रखते हैं, अपनी जिम्मेदारी न रखनेसे वे खराब होते रहते हैं और अपने भविष्यको खराब किया करते हैं। जिन्होने अपनेको उत्तम सत्य यथार्थरूपमे जानकर अपने भविष्यको बनाया, अपनेको अपने आपके उपयोगमे लगाया उनकी सद्‌गति होती है और भविष्य उज्ज्वल होता है। अगर अपने भविष्यको खराब किया, अपने आत्मतत्त्वको न समझ पाया तो उनका पतन होता है। हमे अपनी जिम्मेदारी अनुभवमे लानी चाहिए और वह जिम्मेदारी यह है कि भाई हजार पांच सौ कम आते हैं तो कम आने दो, नष्ट होते हैं तो नष्ट होने दो। उनसे तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं है, मेरा सम्बन्ध तो मेरे परिणामसे है। यदि मेरा परिणाम मेरे स्वभावमे है तो उत्तम है और यदि प्रतिकूल है तो दुःख होंगे।

भाई! अपने पर्यायके गर्वमें आकर अपनेको महान् समझना और दूसरोको तुच्छ समझना, इससे तो कोई लाभ नही है। यदि ऐसे ही विचार बने रहेंगे तो अपने सही स्वरूपका पता नही हो पायगा। और यदि यथार्थ विचार बनेंगे तो उपद्रव नही होगा और न दुःख ही होगे। सब ज्ञानी हैं ऐसी दृष्टि रहे और जिस दृष्टिके प्रतापसे बडा न्यायपूर्ण व्यवहार बनता है वह व्यवहार भी रहे तो लाभ रहे और न रहे तो मोहका स्वप्न है। जो चाहो विकल्प कर लो, मगर फल खराब ही रहेगा। यह उपयोग सिंहासन ऐसे स्वच्छ आवका है कि जिसपर ज्ञानमय प्रभु विराजमान रहते ही हैं। चाहे प्रभुका ज्ञान हो, चाहे अलौकिक ज्ञान हो, ऐसे आसनपर मोही जीव मोही जीवोको बैठाकर जगतमे रुलने वाले अज्ञानी जीवोको बैठाकर गदा कर रहा है ना। मैं अपने आपको गदा न करूं तो स्वच्छ बना रहूं। अपने आपको शुद्ध एव स्वच्छ बनाओ। यही तेरा सर्वस्व है, और यही तेरा सिंहासन है। अपने आपको यश समझो कि मैं सबसे निराला ज्ञानानन्दघन, भावात्मक चैतन्यस्वरूप पदार्थ हू, इस प्रकारकी दृष्टि अपने निज प्रभुपर रहे तो यही यथार्थ ज्ञान है। राग, द्वेष, विकार इत्यादिकी तरगें तेरेमें न हो, ऐसा यह तेरा प्रभु ही याने तेरा स्वरूप ही उत्कृष्ट है। ऐसा यदि उपयोग अपने प्रभुके

प्रति लगाए रहे तो हमारा उपयोग स्वच्छ रहता है। और अशुभ उपयोग पाप, अज्ञान और मोह इत्यादिसे ससारमे रुलना ही बना रहता है। अगर इस संसारमे ही भटकते रहे तो सदैव अपवित्र ही बने रहेगे। इस जगतके प्राणीको अपवित्र रहना ही सुहावना लग रहा है। इसमे ही विपत्तियाँ है, दुःख है। यदि यह प्राणी अपने उपयोगसे परलगावको टाल दे तो प्रकाश मिलेगा, ज्योति मिलेगी और मुक्तिका मार्ग मिल जायगा।

भैया ! अपनेको बरबाद क्यो किए जा रहे हो ? अपने आपके अंतरगमे दृष्टि नही लगाते है, यह एक बडा भारी सकट है। अरे इनको क्या संकट मानें कि १० हजारका नुक्सान हो गया, अमुक गुजर गया, इनमे तू संकट मानता है। मेरी आत्मा जाननस्वरूप है, जाननको ही लिए हुए हैं, स्वच्छ है। जिनका संयोग होगा, उनका रोकने वाला कोई नही है। अपने स्वरूपको देख, तू सर्वदा पूर्ण है। ज्ञानी होगा तो वह सदैव ही आनन्दमय होगा और प्रसन्नचित्त रहेगा, परन्तु यदि अज्ञानी है तो निरतर दुःख ही रहेगे। इस तरह अगर बाह्यपदार्थोंमे ज्ञान आता है कि यह मेरा है। यह उसका है तो यह एक बड़ा भारी संकट है। इन संकटोका करने वाला मैं ही हूँ। मेरेमे सकट इन बाह्यपदार्थोंके उपयोगसे ही आते हैं। जो साधुजन है, योगीजन हैं, प्रभुके भक्त है वे बाह्यमे अपनेको नही फसाते है। यही कारण है कि उनके पास सकट नही आते हैं। जिन बाह्यको अपने उपयोगमे लाकर संकट रहते हो, मौज माने जाते हो वे संकटोको बढाने वाले है, संकटोको हटाने वाले नही हैं। अरे संकटोको बढाने वालोसे इतना मोह और हटाने वालोसे इतनी विमुखता। जो संकट देते हैं उनसे इतनी प्रीति है। ये चेतन अचेतन वैभव जो मिलते हैं उनसे मोह अंधकार मिलता है, राग मिलता है, जिसका फल क्लेश ही है सो क्लेश सहते जाते और उसीमे मौज मानते जाते।

जैसे मिर्च खानेकी आदत हो जाती है, खाते हैं, सी सी करते है, आँखोसे आँसू गिरते जाते हैं, दुःखी होते रहते है, फिर भी खाना नही छोडते हैं। ये सब बाहरी पदार्थ है, इनमे तू निज बुद्धि करेगा तो उपद्रव प्राप्त होगा, दुःख होगे, संकट होगे। संकट सहते जाते है और प्रीति करते जाते हैं। बच्चोसे, स्त्रीसे, घरके लोगोसे रागके झगड़े चलते रहते है, रिसा जाते हैं, रूठ जाते हैं, और लो फिर शामको अपना लिया। इस तरहसे इन मोहियोका काम चलता रहता है, गृहस्थीमे रहे और परिवारके लोगोको छोड़कर रहे यह तो नही हो सकता है, रहो, पर भीतरसे ज्ञान साफ होना चाहिए।

मेरा मात्र मैं ही हू, मेरा सर्वस्व हितकर मैं ही हूं, इसलिए अपने आपमे साफ बना रहता हू, अगर मैं अपने आपमे मौजूद हूं तो किसीकी ताकत नही कि दु.खी कर दे। ऐसी

ताकत अपने आपमे बना लेनेसे दुःख नही बन सकते हैं। ये जगत्के पदार्थ परमाणुमात्र भी मेरे नही है। ऐसे भिन्न अगर बन जावें तो दुःखी नही हो सकते हैं। महिमा तो ज्ञानकी है और तो फिजूल है। महिमा तो एक ज्ञानमे ही है। शुद्ध ज्ञान है तो विजय है और नही तो मलीन है और मलीन होनेसे सर्वत्र संकट ही संकट हैं। ये संकट कोई दूसरा नही लाता है। खुद अज्ञानी है तो सकटमे फसे। अपनेको संकटोसे बचाना है तो उपाय सही बने और आत्म-स्वरूप ही ज्ञानमात्र है, आनन्दघन है, अपने आपमे परिणमता रहता है, इसके बाहर मैं कुछ नही हूँ ऐसा उपयोग बने।

अरे सेवा करता कौन है ? भीतरसे कषायकी प्रवृत्ति हो जाती है, उससे प्रेरित होकर सेवा करते हैं। अपने भीतरसे ऐसा ज्ञान जगे कि मैं ज्ञानमात्र हू, ज्ञानानन्दघन हू, मैं अपने परिणमनके अतिरिक्त कुछ भी नही करता हू, यदि ऐसा ज्ञान जगे तो वह सुखी रहेगा।

एक आदमी था। वह अच्छे घरानेका था। किसी कारणसे उसको कैद हो गयी। कैदमे चक्की पिसवाई जाती थी। चक्की पीसता रहता था। कभी कभी यह ख्याल आ जाता कि अरे मैं तो अच्छे घरानेका हू और चक्की पीसना पड़ता है। वह यह नही सोचता कि यह जेलखाना है, चक्की पीसनी ही पड़ेगी। वह यह सोचकर कि मैं अच्छे घरानेका हू, चक्की पीसनी पड रही है, दुःखी हो जाता है और कषाय भी आ जाती है। यह सोच-सोचकर दु.ख बढते ही जाते हैं। उसे यदि यह मालूम हो जाय कि यह जेलखाना है, चक्की पीसनी ही पडती है तो उसका दु ख चौथाई रह जायगा और यदि रईसीके ख्यालके परिणाममे रहे तो दु ख चौगुने आ जाते हैं।

अगर यह परिणाम बने कि मैं ज्ञानमात्र हू तो ऐसा ज्ञान करने पर प्रसन्नता ही रहेगी। आकुलताओंका नाम नही रहेगा। मैं अपने ज्ञानसे ही यथार्थज्ञानको समझूं और अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होऊं। जैसा मैं हू वैसा न सोचकर औपाधिक नाना मायारूप सोचता हूं तो दुःख व सकटोके पहाड टूट पडते हैं। ये दु ख सकटके पहाड भी मायारूप हैं, केवल काल्पनिक हैं।

यावत्प्रवर्तनं लोके तत्तेषामज्ञताफलम्।
निवृत्तिर्ज्ञानसाम्राज्यं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१८॥

लोकमे जितनी भी प्रवृत्ति है वह सब अज्ञानका फल है अर्थात् जितने भी काम किए जाते हैं, जितनी चेष्टाए की जाती हैं, जितने व्यवहार किए जाते हैं, सब अज्ञानसे होते हैं। ज्ञानका फल नही है। बोल, सम्बन्ध, रिश्ता मानना, देशका काम, जातिका काम, धर्मका काम, व्यवहारका काम, चलना, उठना, बोलना, चर्चा करना, गृहस्थधर्म पालन, साधुधर्म

पालन, यावन्मात्र जितनी भी प्रवृत्ति हैं सब अज्ञानका फल है। ज्ञानका फल तो निवृत्ति है। प्रवृत्ति अज्ञानका फल है। यहाँ शंका हो सकती है तो धार्मिक प्रवृत्तिमे भी क्या मूल अज्ञान हो सकता है ? हम मित्रोको जानते है तो यह ज्ञानका फल है या अज्ञानका फल है। तत्त्वदृष्टि करके देखो तो अज्ञानका फल है। कैसे ? सोचो कि हम ज्ञानका फल उत्पन्न करते हैं कि अज्ञानका ? यदि मात्र जानना हो तो ज्ञानका फल है, किन्तु इष्टपनेका भाव होता तो अज्ञान है।

भैया ! बहुत भीतरकी सूक्ष्मकी बातें कही जा रही हैं। हमारेमे भावमे हिंसा न हटे तो ज्ञानका फल है कि अज्ञानका फल है। अच्छे धर्मके कितने काम बताए जाते है, कितने व्यवहार धर्मके करते हैं, आसन लगाते हैं, पंच परमेष्ठीकी उपासना करते हैं, मालाएं जपते है, यह सब लोकदृष्टिमे भले ही ज्ञान है पर है अज्ञानका फल। ज्ञान कहते किसे हैं ? ज्ञानका उगना क्या है ? ज्ञान एक प्रतिभास सही जाननहार है। उसके होनेसे आत्मामे कुछ भी तरग कहाँ रहेगी ? यह तो है ज्ञानका फल और किसी भी कामको करना चाहिए, स्वाध्याय होना चाहिए, जानन होना चाहिए, साधुसेवा होना चाहिए, देशसेवा, समाजसेवाके अन्य कार्य होने चाहियें आदि कुछ भी जिनका लगाव है वह है अज्ञानका फल और सर्व परभावसे जो निवृत्ति है वह ज्ञानका फल है।

एक उदाहरण लो। एक रस्सी सामने पड़ी हुई है, कुछ उजेला अधेरा है। यह भ्रम रस्सीको देखकर हो जाय कि यह तो साँप है। इस भ्रमके होनेका फल क्लेश प्रवर्तन है। वह भ्रममे पड़कर घबड़ा जाता है, डर जाता है और अगर सोचे कि आखिर चलकर देखे तो कि कौनसा साँप है ? वहाँ गया तो गौरसे देखा, गौरसे देखनेपर पता चला कि यह तो कोरी रस्सी है इतना ही जाननेसे उसकी घबडाहट छूटी, कुछ चैन मिली। यह चैन माना, वह भी उसके अज्ञानका फल है। तो ज्ञानका फल क्या है ? अन्य रूप जानना मिट गया, भ्रम व घबड़ाहट मिट गयी, यह तो ज्ञानका फल है और जितना फल है उसका लगाव अज्ञान है। अज्ञानको छोड़ो तो वस्तुका स्वरूप समझमे आयगा। हम सत्संगमे बैठे है तो रागमे बैठे हैं, अज्ञानमे बैठे हैं। ज्ञानसे नही बैठे हैं, क्योकि ज्ञानका फल तो ज्ञान है। ज्ञानका फल कहीं बाहरसे नही आता है।

हे आत्मन् ! ज्ञान अपने आत्मस्वरूपसे ही आता है। भगवानकी पूजा करूँ, साधुवो की सेवा करूँ तो ये सब राग हैं। राग ज्ञानस्वरूप नहीं होता सो वह अज्ञानका फल है, अज्ञानसे पैदा होता है। ज्ञान कितने मर्मकी चीज है ? हम इस ज्ञानकी जानते हैं, इस

ऊपरी संतोषसे काम नही चलेगा, इसकी परख कर लो। केवल बाहरी दैहिक प्रवृत्तिमे सतुष्ट हो जाना, कुछ ज्ञान हो चुकनेके बाद सतोप कर लेना लाभकर नही है। ज्ञान तो और इससे बढकर अन्तरमे रहता है। ज्ञानदृष्टिका फल निवृत्त होना चाहिए। यह शुद्ध केवल ज्ञानकी चर्चा है। यदि ऐसा ज्ञान आ गया तो इसके कारण हम पर क्या गुजरेगा? केवलज्ञान। जाननमात्र ही ज्ञानका फल है। ज्ञानके उपासक प्रभुके इस स्वरूपमे झुकेंगे, तो ज्ञानका फल है कि रागका? ज्ञानकी मूलमे प्रेरणा है, फल रागका है। इसका यह ज्ञानस्वरूप हम और आपके भीतर जो है उसको यह मोही जीव नही देखता है। परपदार्थोंमे ही पडकर मुसीबतें सह रहा है। यह भी अज्ञानका फल है। इसी तरह उन सबकी प्रवृत्तिमे व्यवहारमे भी अज्ञानता ही है।

भैया! गति, इन्द्रिय, कषाय, योग, विपय इत्यादिको उपेक्षित करके मात्र ज्ञान किया जाय तो वह प्रकाश है। यह प्रकाश यदि नही है तो कर्म संचित हो जाते हैं, उस ज्ञानके होनेसे ही ये कर्म भस्मीभूत हो जाते हैं। तब तो बतलाओ, कोई पुरुष साधु होकर भी, मुनि होकर भी यह ख्याल करता रहे कि मैं मुनि हूँ, मैं साधु हू, मैं ऐसा हू, मैं कैसा हू, यह तो मिथ्यात्व होगा ना। कोई गृहस्थ यह विश्वास करे कि मै गृहस्थ हूँ, मै बाल-बच्चो वाला हू, मै दुकानदार हू इत्यादि, ये सब मिथ्यात्व हैं, अज्ञानता है। लो उस साधुने भी अपने आप यह सोच लिया कि मैं साधु हू, जैसे कि गृहस्थने अपने आपमे यह सोच लिया कि मै गृहस्थ हू, पर्यायकी पकड दोनोमे है सो दोनो आशय परसमयके है। पर यह आत्मा न तो साधु है और न गृहस्थ है। वह तो ज्ञानानन्दघन, चैतन्यस्वरूप, एक पदार्थ है। वे सब अपने आपमे हैं। अपने आप ही परिणमते रहते हैं, यह कैसे मान लिया जाय कि मैं अफसर हू, मैं दुकान-दार हूं। मै फलां हू, अरे ये सब कुछ तू नही है, तू तो ज्ञानानन्दघन चैतन्यस्वरूप एक स्वरूप एक पदार्थ है।

देखो भाई! प्रतीतिकी बात चल रही। विश्वासकी बात बोल रहा हू कि तुमको यह विश्वास है कि मैं गृहस्थ हू, इसमे तो मोह होगा। गृहस्थका यह विश्वास है कि मैं गृहस्थ हू, साधुका यह विश्वास कि मैं साधु हू तो मोहमे दोनों दब गए। अरे मैं तो एक चेतन पदार्थ हू, अगर गृहस्थ बन गया, साधु बन गया तो यह आफत है। अरे अज्ञान और मोहसे कुछ फायदा नही हो सकेगा। जो कुछ कह रहे हैं वे सब उल्टी उल्टी बातें मालूम होती होगी। मगर ये सब विश्वासकी बातें हैं। इस लोकमे बहुत सी कलाए लोगोने सीख ली हैं—कोई सगीतकी कला, कोई नृत्यकी कला, कोई बोलनेकी कला, कोई भाषण देनेकी कला इत्यादि सीख लेते है। ऐसी कलाको जानने वाले लोग अपने मनमे सतोष रखते हैं कि

मैं बहुत बुद्धिमानी का काम कर रहा हूं। मैं देशकी सेवा, समाजकी सेवा करता हूं। भाषण देने वाले जानते है कि मैं ढगसे बोल रहा हूं, समाजको, देशको रास्तेमे लगा रहा हूं। सो इतनेसे क्या किसी ने शान्ति पाई? ऐसी दृष्टि द्रव्यलिंगी साधु पुरुषकी भी हो रही है। देखो उन साधुवोमें मोह कितना अन्तरमे होता है? जैसे कहते है कि वे मुनि शत्रुवोसे भी विरोध नहीं करते हैं, आराधना करते हैं और मोक्षमार्गमे लगू ऐसी चाह लिए हुए होते हैं याने कुछ द्रव्यलिंगी साधु ऐसे भी होते हैं जो यह समझते है कि मैं तो साधु हू, मेरा यही काम है। सो भैया! पर्यायमे आपा बुद्धि होनेसे यह मिथ्यात्व है, मेरेमें यह ज्ञान आना चाहिए कि मैं ज्ञानमय एक तत्त्व हूं, मेरा तो ज्ञानदृष्टिमे रहनेका काम है। जैसे गृहस्थका गृहस्थी धर्मका कार्य आफत है वैसे ही मेरेको सर्वप्रवर्तन आफत है। ज्ञानीको यह विश्वास होना चाहिए कि मैं गृहस्थ नही हूं, मैं तो ज्ञानानन्दमय एक तत्त्व हूं, चैतन्यस्वरूप हूं, इसके अतिरिक्त मैं और कुछ नही हू। यदि ऐसा विश्वास हो जाय तो वही ज्ञानका मार्ग है, जितनी लोकमे प्रवृत्ति है, झुकाव है वह सब अज्ञानका फल है। अगर हममें यह बुद्धि आ जाय कि हमने यह कर लिया तो यह अज्ञान है। हमारा यह विश्वास होना चाहिए कि मैं चैतन्यमात्र हूँ, केवल जानन ही जानन हूँ।

जैसे कोई आदमी अपराधमे पकड़ा गया या व्यापारके किसी अनियममे पकड़ा गया। उसपर १००० रु० का जुर्माना कर दिया गया। अब उसने गिडगिडाना शुरू किया। कोशिश करनेपर ५० रु० जुर्मानाके रह गए और ९५० रु० छोड़ दिए गए, ५० रु० वह इसी खुशी से दे रहा है, १००० रु० देने थे और ५० रु० ही रह गए। हाथोसे दे रहा है, मगर संकल्प मे यह लग रहा है कि ये भी न देने पडते तो ठीक था, ५० रु० खुश हो करके दे रहा है। मगर भीतरमे यह बात बनी है कि ये भी न देने पड़ते तो अच्छा था। इसी तरह ये सब जुर्माना है, यह प्रवृत्तियाँ मानो १००० रु० का जुर्माना है, गृहस्थधर्ममे केवल ५०० रु० का जुर्माना है। साधुधर्ममे केवल ५० रु० का जुर्माना है, तो वह गृहस्थ यह सोचेगा कि यह जुर्माना रागप्रवृत्तिसे हुआ। अगर ज्ञाता द्रष्टा मै रहता तो ठीक था। यह तो अज्ञानका फल है, ज्ञानका फल है निवृत्ति। यावन्मात्र जो प्रवृत्ति है वह रागका फल है। साधु पुरुष भी आहार, चर्चा इत्यादि करने जाते तो उसमे राग है या नही। जो रागके काम हैं वे रागसे होते है। ज्ञानसे आनन्द और रागसे प्रवृत्ति आती है। गृहस्थ अपनेको गृहस्थ अनुभव करता है और साधु अपनेको साधु पर्यायरूप अनुभव करता है तो मोह दोनोमे हुआ। इस ज्ञानमात्र मुझ आत्मतत्त्वका जो जाननका काम है वह मोक्षमार्ग है। मोक्षमार्ग इस आत्मस्वरूपके भीतर भरा हुआ है। पुरुषके हाथ और पैरोमे मोक्षमार्ग नही भरा हुआ है।

और देखो एक दृष्टान्त है कि एक सेठ था। वह चावल बेचनेका काम करता था। वह ठेलो धान खरीदता था और उन धानोसे चावल निकालकर दो चार ठेला चावल बेचता था। एक आदमी उसके पीछे लग गया। सोचा कि जैसा सेठ करता है, जिससे कि यह धनी हो गया है, वैसा मैं भी करूंगा। वैसा करनेसे मैं भी सेठ जैसा धनी बन जाऊगा। देखा कि सेठने कुछ सामान खरीदा। चावलके ऊपरके छिलके तो मटमैले ही थे सो पिछलगे व्यक्तिने देखा और उसने भी मटमैली चीज २, ४ मोटर भर ली। वह लेकर बेचने गया। ठीक जैसे सेठ करता था वैसे ही वह व्यक्ति भी करता था। मगर सेठको तो नफा हुआ, और उस व्यक्तिको टोटा आ गया। अरे धानोके अन्दर जो चावल होता है उसकी महिमा होती है धानके छिलकेकी महिमा नही होती है। इस बातका उस पिछलगे व्यक्तिको पता ही न था।

इस ही प्रकार शुद्ध धर्मकी जाननपरिणतिरूप इस धर्मके सगसे धर्म क्रियावोकी महत्ता है, उसकी महिमा ज्ञानदृष्टिके कारण है, और इस ज्ञान दृष्टिकी ऐसी प्रवृत्ति न हो तो बाह्यक्रियाओकी महिमा कुछ नही रहा करती। ज्ञान दृष्टिके कारण ही धर्मप्रवृत्तिकी महिमा हो जाती है। वह ज्ञानमात्र है, उसका फल निवृत्ति है। ज्ञानका साम्राज्य निवृत्ति है। यह सब ज्ञानका फल है। अब हम इतने बड़े महिमानिधान ज्ञानके बीचमे रहते हैं। बाहरसे देखो तो नाना प्रकारकी विषयोकी बातें चारो तरफ घूम रही हैं। जब ज्ञान जगता है और बाहरी फैली हुई दृष्टिका सकोच होता है तो स्थूल पापोका त्याग होता है। जिस प्रवृत्तिके बीच इतना गृहस्थ धर्म बन गया है सो उसमे जो रागका अश रहा करता है तो वह पाप ही कहलाएगा। इसका जितना निवृत्तिका अश है वह धर्म है, जितना वहाँ प्रवृत्तिका अंश है वह अधर्म है, वही अज्ञान कहलाया। जैसे विवाह कर लिया। एक स्त्रीसे संतोष हुआ तो हजार स्त्रीसे छूटे। क्या आपका धर्म है लौकिक कि एक स्त्रीमे लगे रहे? नही, अनेक स्त्रियोके विकल्पसे छूटनेके लिए वह उपक्रम है। जितना हटाव है वह ज्ञान है। उस एककी ओर झुकाव और लगाव तो अधर्मका काम है। व्यवहार धर्मका काम, अधर्मका काम, राग का काम, कहीं जुटानेका काम जितने भी हैं, जितनी भी प्रवृत्तियाँ हैं, वे सब अज्ञानसे हैं।

अच्छा अब गृहस्थ धर्म भी छोडा, आरम्भ छोड़े, परिग्रह छोडे, शुद्ध मार्गकी दीक्षा ले ली, शुद्ध चर्यामे रहने लगे। इस साधु प्रवृत्तिमे भी गृहस्थका परिग्रह हट गया, तो धर्म का काम है। शुद्ध चलने लगे, शुद्ध उठने लगे, शुद्ध खाने लगे तो ये सब रागके काम हैं। जितना निवृत्तिका अश है वह ज्ञान है और भी देखिए भैया! जैसे गृहस्थके योग्य शुद्ध व्यवहार, शुद्ध चर्यामे रहते हुए भी वह गृहस्थ उस व्यवहारसे विरक्त रहा करता है, इसी

तरह साधु भी शुद्ध सम्यग्ज्ञानके अनुकूल व्यवहार करते हुए भी व्यवहारसे विरक्त रहा करता है। एक ज्ञानी गृहस्थ अपने कुटुम्ब परिवारमें रहते हुए भी अपनेको भिन्न समझता है, न्यारा समझता है, अहितरूप है ऐसा जानकर परिवारसे विरक्त है। तब साधु भी अपने शुद्ध काम करते हुए साधु रहते हुए भी उस प्रसंगसे विरक्त है।

शुद्ध ज्ञानके काम की यह बात चल गयी और लंबी खिच गयी। प्रयोजन यह है कि जितना हटे उतना धर्म है और जितना लगे उतना अधर्म है। ज्ञानका काम मात्र निवृत्ति है— इतना ही ध्यानमें लाना है। यह निवृत्ति ज्ञानका साम्राज्य है। यदि मैं अपने साम्राज्य की ओर अर्थात् निवृत्तिका उपयोग कर मैं प्रवृत्तिसे हट जाऊं तो मैं सुखी होऊं। देखो जितने भी सुख मिलते हैं, वे हटने से मिलते हैं, लगनेसे नही मिलते है। गृहस्थीमें रहते हुए भी उससे हटकर रहनेमे जो आनन्द मिलता है वह आनन्द उसमे से नही मिलता है। गृहस्थीमे लगनेसे रंचमात्र भी आनन्द नही मिलता है। आनन्द इच्छाके अभावसे मिलता है। इच्छाकी पूर्ति व इच्छाका अभाव कहो एक ही है बात। हटना ज्ञानका काम है और लगना अज्ञानका काम है। आनन्द भी जितना होता है वह हटनेसे होता है, लगनेसे नही होता है।

जैसे एक मित्रका पत्र आए कि १० बजेकी गाडीसे हम आ रहे है। बस पत्रके पाते ही सब तैयारीमे लग गए, वह इसलिए कि मेरा मित्र आ रहा है, मैं अपने मित्रसे मिलूँगा। वह मिलनेके प्रयोजनसे ही जल्दी जल्दी काम करता है और भी जितने काम है जल्दी-जल्दी कर लिये। देखो यह सब व्याकुलताएँ क्यो की जा रही हैं ? इसलिए कि मित्रसे मिलनके काममें अपना लगाव रखा, १० बजे स्टेशन पहुचे, पूछते हैं कि गाड़ी लेट तो नही है। यदि कोई कह दे कि अभी १० मिनट लेट है तो बस दुःखी हो गया। गाड़ी आते ही झट इस डिब्बेमे देखा, उस डिब्बेमे देखा, मित्र मिल जाता है तो आनन्दमय हो जाता है। अच्छा, अब यह बताओ कि उसे आनन्द मिलनेसे आया है कि मित्रके मिलनेका आनन्द है तो मित्रसे डिब्बेके अन्दर मिलता ही रहे। इधर-उधर डिब्बेके बाहर न झांके। गाड़ी चलने वाली है तो वह बाहरको झांकता है और बाहर क्यो झांके ? यदि मिलना है तो मिलता ही रहे। मित्रसे मिलनेका काम समाप्त हो गया, इससे तो आनन्द आया, किन्तु अब उसे घर जानेका लगाव हो गया तो दुःखी हो गया। उसे लगावसे दुःख है, उसका जितना भी दुःख है, लगाव का है। मित्र मिलनेकी इच्छा हो गयी। इस दुःखसे दूर होनेके लिए ही वह मित्रसे मिलने गया, क्योकि उसको विकल्प सता रहा था। क्यों जी ! यदि वह विकल्प स्वय ही पहलेसे न रहे तो क्या आनन्द न आवे ? आनन्द अवश्य आयगा। यदि ऐसी भावना हो कि विकल्प

सता रहा था इसी कारणसे ही अपने दुःखोंको दूर करनेके लिए अपने मित्रसे मिलने गया, तो प्रकाशमें भीतर उसे शान्ति रहती ।

भाई विकल्प न करो वहाँ क्या रखा है ? उनसे इच्छा न करो । इस तरह मिलन की इच्छा ही न हो तो वह वहाँ भी अनाकुलता है । जो इच्छाए हो उन्हे समाप्त कर लो । इन्द्रियोके विषयोमे बरबादी है । यह एक अन्तरके मर्मको देखकर कह रहा हूँ । अरे विषयोमे अगर लग गए तो समझो विषयोमे ही जल गए और मिट गए, तो इच्छाओका अभाव कैसे हो सकेगा ? विषय बुद्धिके होनेसे इच्छाओका अभाव नही हो सकता है । विषयप्रवृत्ति अधर्म है । अगर विषयप्रवृत्ति न हटेगी तो लगाव भी नही हटेगा और आनन्द भी नही आयेगा । अपने ज्ञानको अन्यके लगावमे लगाना ही अज्ञानका फल है । निवृत्ति तो फल ज्ञानका है और प्रवृत्ति फल अज्ञानका है ।

मेरा काम क्या है ? देखना ? नही, बोलना चालना ? नही, हाथ जोडना ? नही, और और करके अपनी बातोमे लपेट लेना ? नही । जितने काम लगावके हैं, व्यवहारके हैं वे सब जानन, जानन, जानन, केवल जानन, ज्ञानका काम है, ऐसा साम्राज्य हो और स्वयं की पहिचान हो तो उसे मोक्षका मार्ग प्राप्त होगा, नही तो उसे शिवपथ नही प्राप्त हो सकेगा ।

कत्रकर्त्रादिकल्पाः स्युर्देहादिष्वनुबन्धिनः ।
पूर्यते तै र्न कश्चिन्मे स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१६॥

मैं आत्मा जो हू वह हूं जैसा स्वरूप है, उस ही स्वरूपमे हू । मैं अन्य सब पदार्थोंसे विलक्षण, जानने, देखनेकी स्वभावकलामे तन्मय हू । यह एक भावात्मक पदार्थ है । जिसमे रूप नहीं, रस नही, गध नही, स्पर्श नही केवल चिदानन्दघन, चैतन्य स्वरूप मात्र एक बिलक्षण सत् है । इस ही को ब्रह्म कहते हैं क्योकि ब्रह्म नाम उसका है जो ज्ञानसे बढता हुआ रहे । अपने ज्ञानको बढानेकी कला इस आत्मामे है । पुद्गल तो बाह्य हैं । पुद्गलके गुणका ऊचेसे ऊचा विकास हो तो क्या होगा ? रूपका क्या होगा ? परन्तु आत्माके ज्ञान गुणका विकास ऊंचा क्या होता, वह कहा जा सकता है । आत्माके ज्ञानका विकास हो तो सभी कुछ ज्ञानमे आयगा । उसका स्वभाव बढनेका है । जैसे कोई स्प्रिग होती है उसे दबायें तो दब जायगी और छोड़ दें तो स्वतः उठी रहेगी । इसी प्रकार यदि ज्ञानको विषयकषाय परिणामोके द्वारा दबावें तो दब जायगा और यदि दबायें नही तो ज्ञान फैलता ही जायगा । ज्ञानके फैलनेका तो स्वभाव ही है । ये विषय कषायोके परिणाम रागद्वेषादिक भाव इस ज्ञानको दबानेके कारण हैं । जब तक ये विकार रहेंगे तब तक ज्ञान दबता ही रहता है ।

विरोधीपन हटे, आत्मतत्वका विकार मिटे तो यह विकसित हो जाता है। क्योंकि आत्माका स्वभाव ही ऐसा है कि अपने ज्ञानसे वह वर्धनशील रहे, बढता हुआ ही रहे। इसलिए आत्मा का नाम ब्रह्म है।

इस ज्ञानस्वरूप आत्माको कहा जा रहा है। यह आत्मा विष्णु कहलाता है क्योंकि विष्णु उसे कहते है जो व्यापक हो। जिसका स्वभाव ही ऐसा हो कि सर्वत्र व्यापक ही होता रहे वही विष्णु है। ज्ञानघन कहलाता है वह जिसमे बीचका कोई हिस्सा न छूटे। जैसे किसी टकीमे पानी भर दिया जाय तो पानी लबालब भरा हुआ है। उस पानीमे ऐसा नही है कि कही एक इच पानी न रहे। जो पानी भरा हुआ है वह पूर्ण रूपसे भरा हुआ है। इसका कोई भी स्थान खाली नही रह सकता है। इसी तरह इस ज्ञानका फैलाव है कि यह ज्ञान सर्वत्र फैल जाता है। किसी जगह खाली नही रह जाता है कि लो मैं अमुकको नही जानता। जैसे टकीके बीच कोई चीज आ जाय या कोई चीज पानीमे ऐसी पड जाय जिसमे कुछ टीला सा हो तो वहाँ पानी नही पहुंच सकेगा। पर पानी अपने स्वभावके कारण न पहुच सका ऐसी बात नही है, किन्तु वहाँ कोई चीज ऐसी आ गई है जिससे रुकावट आ गयी है। इसी प्रकारसे ज्ञानमे विषयकषायोकी आड आ जाती है जिससे ज्ञानके विकसित होनेमे रुकावट पैदा हो जाती है। यदि कही ज्ञान न पहुचा तो वहांपर ज्ञानके स्वभावके कारण नही पहुच सका ऐसी बात नही है। ज्ञानके विकसित होनेमे रागादि भाव रुकावट पैदा करते हैं, उसीसे ज्ञान वहाँ नही पहुंच पाता है। ज्ञानका स्वभाव सर्वत्र फैल जानेका है, सब जगह व्याप जाने का है। ऐसे ज्ञानका स्वभाव व्याप्त होता रहना ही है, इसलिए ज्ञान ही विष्णु है।

यह ज्ञान जिन है अथवा जितेन्द्रिय है। जिन कहते उसे है जो समस्त बाह्यपदार्थोंको जीत ले, खत्म कर दे और स्वयं शुद्ध, स्वच्छ बना रहे। जिन ज्ञान ही है सो यह भावात्मक तत्त्व है, ज्ञान ज्ञान ही है, जानन जानन ही है, जानन ही काम है, यह मेरा ज्ञान स्वच्छ है, इसमे दूसरेका प्रवेश नही है, यह अपने ऐसे ही स्वच्छ ज्ञानकी बात कर रहा हूं। जिस ज्ञान का काम सुन्दर, शुद्ध, प्रतिभासको बार-बार पैदा करते जाना है। कब तक ? अनन्त काल तक। जो इस ज्ञानको स्वच्छ, शुद्ध, सुन्दर एक दृष्टि करता रहे वह ज्ञानी है। जो ज्ञान अपनी सृष्टि करता हो, चाहे वह बिगड़ जाय, रूठ जाय, गुस्सा हो जाय, मलीन हो जाय, आपेसे बाहर हो जाय तो भी यह पूर्ण ही रहता है, पूर्ण ही परिणमता है। यह जगत जितना दिखता है उस रूपमे रचना हो जाय, यह भी ज्ञानमय आत्मदेवकी सृष्टि है। ऐसा यह ज्ञान-तत्त्व भीतरका है। यह ज्ञानतत्त्व मलीन हो जाय, काबूमे न रहे तो बिगड़ा हुआ प्रभु ऐसी सृष्टियोको कर डाले, ऐसी ज्ञानकी महिमा है। यही ज्ञान पदार्थ, वृक्ष आदि रूपमे आ जाता

है । मनुष्य, पशु, पक्षी, जीव-जन्तु भी हैं उन सबके रूपमे यह ज्ञान आता है ।

यह ज्ञान ही ब्रह्म है । इसका ऐश्वर्य विलक्षण है । शुद्ध सृष्टि करे, अशुद्ध सृष्टि करे सब ज्ञानकी महिमा है । उसके ऐश्वर्यका पता लगा लेना विरले ही सूक्ष्मदृष्टि, ज्ञानी, योगीका काम है । कैसा है ? वह कुछ नही है और सब कुछ है । ज्ञानतत्त्व है, जिसके अन्तरंगमे कुछ नही है और सब है । कुछ बचा नही है और है । कुछ पिंड ऐसा नही है । ऐसा जाननहार यह आत्मतत्त्व विलक्षण ऐश्वर्य वाला है । इसका काम जानन है सो अपनी ही कलासे, अपनी ही लीलासे अपना काम कर रहा है । इसका काम केवल जानन है—जान लेना । इस ज्ञान मे सुख दु.ख नही । जाननका काम केवल जानन ही है । जान लो फिर उसके बाद महान् आनन्द आता रहता है । जैसे प्रयोजन अशुद्ध हैं तो वहाँ सकट हैं और जहाँ प्रयोजन अशुद्ध नही हैं वहाँ संकटोका नाम नही है । जाननका प्रयोजन शुद्ध होना चाहिए, क्या ? कि जान लिया । किसलिए जान लिया ? जाननके लिए जान लिया ।

मिला हुआ दूध और पानी एक पात्रमे है, पर दूध अलग है और पानी अलग है । दूधके कण दूधमे हैं और पानीके कण पानीमे हैं । दूधमे पानी मिला होनेपर भी दूधमे दूध है और पानीमे पानी है । यह सारा विश्व ज्ञानमे जावे । फिर भी विश्व और ज्ञान अलग-अलग हैं । हम और आप लोगोको तो इतनी चीज जाननेमे आ ही रही है, फिर भी जो यह है वह मैं नही हू । जाननमे जानन है, पदार्थोंमे जानन नहीं । जाननकी ओर ही जानन है और जाननमे ही जानन बना रहता है । बाह्य पदार्थोंमे जानन नही बना रहता है । जाननमे ही जानन बना रहता है । ऐसी विचित्रताओ और ऐसे ऐश्वर्यका पता योगी और ज्ञानी पुरुषोको ही हुआ करता है । विलक्षण ऐश्वर्यको जानकर ही उन योगियो और ज्ञानियोका मन प्रसन्न-चित्त रहता है ।

भैया ! जगलमे योगी जन एकान्तचित्त रहते हैं । गृहस्थीको ऐसा लगता है कि जगल मे रहने वाले लोग कैसे रहते हैं ? उनसे कोई पूछने वाला नही है, नौकर नही हैं, साधन नही हैं, खाने पीनेका काम चलता होगा ? परन्तु उनका काम अद्भुत रूपसे चलता रहता है । वे अपने ज्ञानरसका स्वाद लेकर ही आनन्दमग्न हो जाया करते हैं । यही उनका ऐश्वर्य है । वे अपने अमृतमे ही छके हुए रहते हैं, इसलिए वे सदा प्रसन्न रहते हैं । अत. इस ज्ञान का नाम ही ईश्वर है । आनन्दमय, कल्याणमय, सर्वोत्कृष्ट सारकी चीज दुनियाके अन्दर क्या है ? मोही जीव अपने सारसे अलग होकर बाहरको निरखा करते हैं । सारभूत चीज क्या है ? मकान हो गया, बाल बच्चे हो गए, मित्र लोग हो गए, ऐसी कल्पनाओमे ही वे मोही बाहर बाहर ही घूमा करते हैं । सारको ढूंढनेके लिए वे जगह जगह मारे मारे फिरा करते हैं ।

योगियोंको अपने ज्ञानका पता है कि दुनियामें सारकी चीज कोई मिलती नही है। सार वह खुद ही है। इसका जो सहजस्वरूप है, अपना अस्तित्व है, वह ज्ञानमय है, प्रकाशमय है, कल्याणमय है। सारको, कल्याणको, उत्कृष्टको शिव कहा करते है। यह ज्ञानमय ही शिव है।

राम किसे कहते हैं ? राम उसे कहते हैं जिनमे योगी पुरुष रमण किया करते हैं। जिसमे योगीजन, ज्ञानीजन रमण किया करते हैं। उसे राम कहते हैं। वह राम मेरा कौन है ? मैं अनादिसे अनन्त तक सदा अपने आपमे रमण किया करता हूं। यह तो लोगोको भ्रम है कि मैं घरमे रमता हू, दुनियावी कार्योंमे रमता हू, खुद ज्ञानमय हू, चारित्रमय हूं, स्वय ही स्वयके स्वरूपमे रमा करता हू, खुदमे ही रमा करता हू। कोई अपनी दुकानमे ही रमा करता है, कोई विकल्पोमे रमा करता है, कोई जानकार विद्वान् विकल्प करता है वह उनमे रमता है और ज्ञानी योगी पुरुष अपने ज्ञानस्वरूपमे रमते है और प्रसन्न होते है। मैं अपने ज्ञानमें रमा करता हू, तात्पर्य यह है कि कोई कैसे रमता है, कोई कैसे ? मगर सभी अपने आपमें रमते हैं। बाह्यपदार्थोंमे कोई रम नही सकता है, कोई बाह्यमे लग नही सकता है, परन्तु कोई मान ले कि मैं बाह्यमे रमता हूँ तो वह परेशान हो जायगा। पर न कोई बाह्यमे रम सकता है और न बाह्यमे लग सकता है। तो मैं रमता हूं और अपने आपमे ही रमता हू। तो ज्ञानस्वरूप यह आत्मा ही राम है।

यह प्राणी अपनी शरण बाह्यमे ढूंढता है, बाह्यमे ही हित और अहित ढूढनेका प्रयास कर रहा है। परन्तु कही बाहर शरण नही है। यह प्राणी इधर उधर भटकता है, परन्तु यह शरीर देवता इसकी रक्षा नही करता है। यह ज्ञानस्वरूप ही हमारा सच्चा देव है, रक्षक है, अपने आपके लिए स्वय सर्वस्व है। जिस प्रकार हम सर्वस्व हैं उस ही प्रकारकी बातें करें तब तो ठीक है। परन्तु हे आत्मन् ! यह प्राणी शुद्ध प्रगति नही करता है। यह तो उल्टी सटपटी बातें करता है। यह जैसा शुद्ध है, स्वच्छ है, चैतन्यस्वरूप है वैसी बातें नही करता है।

हे आत्मन्, अपने आपपर दृष्टि दो तो अपना प्रभु अपनेको ही मिल जायगा। यह प्रभु ही तेरे पापोको हर सकता है। पाप क्या हैं ? विकल्प और कल्पनाएँ ही पाप हैं। ये बाहरके जो पाप हैं, झूठ बोल दिया, जान ले ली, परिग्रह किया, यही बाहरी बातें पाप हैं। ये पाप होते भी कैसे हैं ? यो ही कल्पनाएं उठती हैं तब इन पापोको करता है। इन पापोके कारण ही उसे दु.ख मिला करते है। तो इन पापोको हरेगा कौन ? इन पापोको मेरा प्रभु ही हरेगा। इन पापोसे उत्पन्न दु:खोको मेरा प्रभु ही मिटायेगा। जो पापोको हरे वही हरि

कहलाता है । हम अपना प्रभु कैसे ढूढें ? हमारी शरण, हमारा रक्षक, हमारा हितू यह प्रभु ही है । इस एक अपने स्वरूपपर ही ध्यान हो तो सर्व सफलता है । मैं तो यथार्थ हू, कृतकृत्य हू, स्वभावमात्र हूँ । यह लोकका धन कुछ महत्त्व नही रखता है । यह धन पिंड रूप है । धन पुद्गल है, इन पुद्गलोमे कोई सार नही दिखता है । ऊँचे-ऊँचे महल, बडे-बडे धन वैभव आदि इनमे कोई महत्त्वकी चीज नही दिखती हैं । यह ज्ञानी जब ज्ञानदृष्टिसे देखता है कि मैं सबसे निराला हूँ, ज्ञानमय वस्तु हूँ तो अनुभवरसका स्वाद मिलता अन्यथा जिसके बारेमे जैसा विचार किया वैसा ही उसको समझ लिया और वैसा ही उसका वर्णन कर दिया । सो इसी के प्रदर्शनके फलमे मैं बौद्ध हूँ, भट्ट हूँ, नैयायिक हूँ । मीमांसक सांख्य इत्यादि नाना प्रकारके दर्शन बन गए पर जिसपर समस्यायें खडी हुई हैं वह दर्शनका मूल आधार यह स्वयं ज्ञानतत्त्व है, ऐसा यह मैं ज्ञानतत्त्व हूँ ।

मेरा काम केवल जानन ही जानन है । बाह्य पदार्थोंको करनेका इस ज्ञानमात्र भावात्मक आत्मपदार्थका काम नही है, किन्तु अज्ञानी मानता है कि हम करने वाले है, मैं अमुक का करने वाला हू, मैं दुकान करने वाला हूँ इत्यादि ये मिथ्यात्व हैं । ये विचार धर्ममे ले जाने वाले नही हैं । ये सब मिथ्यात्व हैं । तू है और परिणमता रहता है । इतना ही तेरा काम है । तू पूराका पूरा है । पाप बनें चाहे न बनें, तू पूराका पूरा है । जैसे जैसे लोग कहते हैं । कि तू तो अधूरा है, तेरी आत्मा अधूरी है । अरे तेरी आत्मा अधूरी नही है । तू तो एक सत् है, सत् अधूरा नही होता है । अधूरापन तो दुनियामे होता ही नही है । यह ऐसी मानी हुई चीज है कि जैसे अनेक चीजें मिली होती हैं, कुछ यहाँ हटा दिया, कुछ वहाँ हटा दिया तो लोग कहते हैं कि आधा कर दिया । अरे आधा आधा नही कर दिया । जो चीज है वह पूरीकी पूरी है ।

ये स्कन्ध हैं, ये दिखते हैं । ये सब चौकी, पुस्तक, कमडल इत्यादि । एक एक चीजें नही हैं । ये अनेक पुद्गल परमाणुवोसे मिलकर बने हैं इसमे आधी आधी चीजें कुछ नहीं हैं । उनमे जो एक-एक चीज है । वे सब पूरेके पूरे हैं । इसी तरह जगतके जितने जीव हैं वे सब पूरेके पूरे हैं । अगर बिगड गए तो पूरेके पूरे बिगड गए और अगर बन गए तो पूरेके पूरे बन गए । आधा न तो बिगडेगा और न बनेगा । प्रत्येक जीव परिणमता है । अगर कोई परिणमता है तो अपने ही परिणमनसे परिणमता है दूसरेके परिणमनसे नही । अगर मैं विकल्प कर रहा हूँ तो अपना ही विकल्प कर रहा हूँ, दूसरोका विकल्प मैं नही कर रहा हूँ । मैं परिणमता हूँ अपने आपमे ही परिणमता हू, ऐसा अगर ज्ञान हो तो अमृतका पान है । जिसने अपने स्वरूपको लक्ष्यमे लिया, अपनेको ही कर्ता धर्ता माना तो समझो कि वह दूसरी

दुनियामें चला गया, अपने स्वरूपसे हट गया। यदि वह अपनेसे हट गया तो समझो कि उसके ऊपर दुःखोकी परम्परा आ गयी, क्योकि अपनेको भूलकर कहीं भी लगें, सर्वत्र क्लेश ही क्लेश हैं।

हे आत्मन् ! अपने स्वरूपसे विमुख होना विकल्पोकी परम्परा बढाना है। मैं इसको करता हूं—ऐसा सोचना रागोंको बढाना है और यह अज्ञानका काम है। मैं इसको नहीं करता हूं, मेरा यह करनेका काम नही है ऐसा विचारना ज्ञानका काम है। इसका न तो करनेका स्वभाव है और न मना करनेका स्वभाव है। मना करनेमे क्लेश है और करनेमें क्लेश है। क्लेश दोनोमे है। अहंकारको देख लो उससे भी दुःख पाते हैं। अहंकार करना या न करना बल्कि उसके प्रति विकल्प करना ही दुःख है। इससे अपना पूरा नही पड़ेगा। मैं तो केवल अपने ज्ञानस्वरूपको देखू जिसका काम केवल जानन है, ज्ञानमात्र है, जान लो तो भाई फायदा उठाओ। अरे इतना ही फायदा है, इसके आगे किया तो नुक्सान है। भगवान् सारे विश्वको जान गया। पर अब फायदा तो उठाओ। सट्टेका सार तो जान गए पर अब फायदा तो देखो। अरे जानन ही बना रहे तब तो भगवान् फायदेमे है। अगर जाननसे आगे आ जाय तो साधारण जीवोकी तरह दुःख होंगे। भगवान् अपने स्वरूपको भूलकर अन्य कुछ नही करते। यदि कोई इस जाननके आगे, कुछ फायदा सोचता है तो उसी से संसारमे रुलना पडता है। केवल जाननमात्रका फायदा रह जाय और कर्म चेतना व कर्म-फल चेतनासे जुदा रहे, ऐसी दृष्टिसे आनन्द होता है। वह सब सहज परमार्थिक आनन्द है।

सो हे आत्मन्, तुम बाह्यमे कुछ न करो। तुम हो और परिणमते रहते हो। इतना ही तेरा काम है। इसके आगे तेरा कोई काम नही है। अपने आपको देखो तो तेरेमे दुःख दूर ही हटेंगे और फिर समाधिका अनुभव करेंगे। यह आत्मा आनन्द व ज्ञान विकासमे जब बढता जायगा, बढ चुकेगा तो प्रभु हो जायगा। अपने स्वभावसे हटकर बाह्यको कुछ निरख कर बाह्यसे लाभ देखकर बाह्यमे जा पडते हैं तो उनको टोटा पड़ना है, नुक्सान होता है। ये भोग पुण्योदयसे प्राप्त हैं, निकट है, जरा मुडे और भोग लिए ऐसे सुगम हैं सो ये भोग बड़े सस्ते लग रहे हैं, किन्तु ये बडे महंगे पड़ेंगे। जैसे खेतोमे कोई चला जा रहा है, खेतमें एक बेरका पेड मिले। किसी तरहसे बेरोको तोड़ लिया। इतना काम तो बड़ा सस्ता लगा पर यदि उस खेतका मालिक आ जावे और उसे मारे तब कितना महगा पड़ेगा ? इसी तरह से ये मोह रागादिभाव सस्ते लगते है पर यह नही जानते हैं कि कितने महंगे पड़ते हैं ? जरा सी देरमें जो कुछ करलो, सस्ते हैं, मगर स्वभावदृष्टिसे हटा हुआ रहता है ना। कर्मोके तीक्ष्ण बन्धन होते रहते हैं जिनके उदयमें महान् क्लेश हो जाते हैं। यह ज्ञानकी बात,

साधना की बात, स्वरूप निरखनेकी बात इत्यादि महंगी पड रही है।

अरे जरा सा दिमाग लगाना पडेगा फिर वह सस्ता है अर्थात् सस्ता ही पडेगा। जब चाहे अपने स्वरूपको देखो। ऐसा ज्ञानस्वरूप देखो तो सुखी रहोगे, मेरी शरण यह मैं स्वय ही हू। जैसा मैं हू उसी रूपमे अपनेको देखू तो मेरा कल्याण हो जायगा। यह आत्मा तो जिन शिव, ईश्वर, ब्रह्मा, राम, विष्णु आदि रूप हैं। सब ज्ञान इसीके अन्दर है। ऐसा महानिधान, आनन्द निधान यह मैं स्वयं हू। अपने आपको समझता हू और जानन स्वभाव लिए हुए हू। मेरेमे विपदाएं नही हैं। विपदाएं तो मात्र भ्रममे, विकल्पमे हैं।

इच्छा बन्धो न मे हानिर्ज्ञानमात्रस्य दर्शिनः।
पूर्यते ज्ञानमात्रेण स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥२०॥

हम और आप सभी आत्मा परिपूर्ण हैं, सब प्रकार ज्ञान और आनन्दमय हैं। सब बातें इस आत्मामे ठीक हैं। केवल एक गडबडी इस आत्माके अन्दर है जिससे सारा बिगाड हो गया। वह गडबडी क्या है? वह गडबड़ी यह है कि इस आत्मामे इच्छाएं भरी हुई हैं। चाहे सारी बातें रहो, हम किसीको मना नही करते। मगर एक इच्छाओंको ही निकाल दो तो सारे संकट समाप्त हो जावेंगे इच्छाको समाप्त होने पर कषाय भी किस पर नखरे करेंगे? इच्छाएं ही एक बन्धन है जो जीवोको बांधे हुए है। इन पुरुषोको कौन बांधे हुए है? इनमे कैसे गांठ लगी हुई है। अरे ये सब न्यारे न्यारे हैं, मगर अपनी अपनी इच्छाएं बनाकर बन्धनमें पडे हुए है। कोई किसीसे बंधा हुआ नही पडा है। इच्छाओने ही बांध रक्खा है।

सुकौशल कुमार विरक्त हुए। लोगोने बहुत समझाया, अरे राजकुमार अभी तुम्हारी कुमार अवस्था है। अभी कुछ वर्ष हुए शादी हुई हैं, स्त्रीके गर्भ है, उत्पन्न होने वाले पुत्रके लिए राजतिलक कर जावो, फिर बादमे चाहे चले जाना। कौशल कहते हैं पिंड बचानेके लिए कि अच्छा जो गर्भमे है उसे मैं राज्यतिलक दिए देता हू। कौशलको बधनमे बंधनेकी इच्छा न थी तो उनके कोई बन्धन न था। इच्छाएं हैं तो बन्धन हैं। गृहस्थीमे क्या बन्धन हैं। अरे नही गृहस्थीमे बन्धन कहां हैं? केवल इच्छाओंके कारण ही वे फंसे हुए हैं। हमें तो बाल बच्चोकी फिक्र है, घर द्वार कुटुम्ब परिवारकी फिक्र है, इसीसे हम फसे हुए हैं।

भैया! अपन तो स्वतत्र हैं परन्तु बालबच्चोमे मोह होनेसे ही अपने मोहसे फस गए हैं। यदि हम उनमे ही फसे रहे तो क्या उम्मीद है कि हम इन बधनोसे निकल पायेंगे? जो जो व्यवस्था हम सोचे हुए हैं क्या इनको पूरा करके विश्राम पा लेंगे? देखो मेढक इधर उधर उछलेगा, कोई उधर उछलेगा। वे तोले नही जा सकते हैं। इसी तरह क्या अपने

परिग्रहमे रह कर अपनी व्यवस्था बना सकते हो ? कितनी ही व्यवस्था बन जायगी तो फिर सामने कोई नई बात खडी हो जायगी। क्योंकि बात बाहर खडी नही होती, अन्दरमे ही खड़ी होती है। सो वर्तमान अन्तर उपादान अयोग्य है ही। जब तक इच्छाएं समाप्त नहीं होती तब तक बधन रहेगे।

भैया ! एक घटना सोचो कि बगीचेमे एक चिड़ीमार जाल फंसाए हुए है। जालके नीचे थोडेसे चावल या गेहूके दाने डाल दिए है। अब चिडिया आती हैं, उस जालमे फस जाती हैं। देखने वाले दो चार लोग आपसमे चर्चा करते है कि देखो चिडीमार ने चिडियोको फांस लिया। दूसरा बोला—नही, नही चिड़ियोको स्वयं जालने फांस लिया है। तीसरा बोला नही, नही, जालने चिडियोको नही फाँसा है, चावल और गेहूके दानोने चिडियोको फांस लिया है। चौथा बोला नही, नही, चिडियोने स्वयं दाने चुगनेकी इच्छा की, इसलिए स्वयं ही वह बंधनमे फंस गयी है।

प्रभुमें और आत्मामे भेद कहाँ ? सब लोग चिल्लाते हैं कि प्रभु और आत्मामे भेद नही है। कहते ना कि आत्मा सो परमात्मा। भेद कुछ नही है आत्मा हैं हम और परमात्मा है कोई निर्दोष, सर्वज्ञ, शुद्ध, ज्ञानी आत्मा। उसके स्वरूपमे और इसके स्वरूपमे कोई भेद नही है। इतना समझकर आगे इतना और समझ लो कि मेरे आत्मामे अनादि अनंत अहेतुक नित्य प्रकाशमान सहज चैतन्यस्वरूप हैं, वह परमात्मतत्त्व है ऐसा मैं सहजपरमात्मतत्त्वरूप हूं। सारा मामला तैयार है, केवल इच्छाओको निकाल दो, जिनसे कि बाह्यपदार्थोसे कोई मतलब नही है। जो जैसा है तैसा ही है, किसीके करनेसे कुछ होता नही है। मेरे सोचनेसे बाहर कुछ नही होता है। सब अपने अपने स्वरूपके धनी है, अपने अपने सत्के स्वामी हैं। केवल ये व्यर्थकी इच्छाएं उत्पन्न करते है और दुःखी होते हैं। रात दिनके कार्योके अन्दर अपनेको देखते जावो कि मेरे लिए लोग बन्धन हैं या काम बन्धन है या इच्छाएं बन्धन हैं। इच्छाएं न करो तो सुख है। अच्छा देखो शुद्ध किसे कहते हैं। शुद्ध उसे कहते हैं जो इच्छाओका संयम लिए है अथवा इच्छाएं रंचमात्र भी नही है। इच्छाओ के होने न होने पर ही सुख दुःख निर्भर हैं। अन्य पदार्थोके सयोगमे सुख नही है, दुःख ही है। संसारमे दृष्टि पसार कर देखो तो सब दुःखी ही नजर आ रहे है, सबको कष्ट हैं और किसीको यहाँ कितना भी आराम मिले फिर भी यहाँ कष्ट ही है। जितने दीनको कष्ट है उतने ही धनीको भी कष्ट है। यद्यपि जितनी असुविधाएं दीनको है धनीको नही है, फिर भी धनीको भी उतने ही कष्ट होते हैं, कही कही उससे भी अधिक।

अरे सुविधाओसे सुख नही होते हैं और न सम्पदाओसे ही सुख होते हैं। इज्जतसे

भी सुख नही होता। इच्छाएं यदि न रहे तो सुख होता है। तो कैसी भी परिस्थिति आ जाय, इच्छाएं कर लिया तो दुःख हो गया। इच्छाएं ही एक बन्धन है। इन शिशु बालको को देखो कैसे आजादीसे फिरते हैं, कोई फिक्र नही है। कैसे सुखी रहते हैं ? पर भाई जैसे जैसे अवस्था बढती जाती है वैसे वैसे इच्छाएं भी बढती जाती है और इच्छाओके बढनेसे दुःख भी बढते जाते हैं। तो भाई दु.खोका कारण इच्छाए हैं। पर बडा कठिन प्रश्न है कि इच्छाओको कैसे दूर किया जाय ?

भैया ! गृहस्थोके द्वारा भी इस बारेमे दो काम तो किए जा सकते हैं। एक तो यह कि मैं आत्मा इच्छारहित हू, ज्ञानस्वभाव वाला हू, मेरा स्वभाव इच्छारहित रहनेका है, मैं आत्मा ज्ञानमय हू, आनन्दको लिए हुए हू, मैं इच्छाए नही करता, इच्छाएं न रखनेसे मेरा कुछ मिट नही जायगा, मेरा तो ज्ञान स्वभाव है, जानन ही मेरा काम है, मेरा जाननहार मैं ही हूं, एक तो यह काम गृहस्थीमे भी किया जा सकता है। पर इसे ज्ञानी गृहस्थ ही कर सकते हैं। यह केवल कहनेकी बात नही है। सत्य बात कही जा रही है, पर ऐसा किया जानेमे कुछ अभ्यास होना चाहिए, ज्ञान दृष्टि होना, चाहिए, संसारसे मुक्तिकी भावना होनी चाहिए। यदि ये बातें हो सकती हैं तो गृहस्थ एक तो यह काम कर सकता है। भैया ! बात भी यही सही है—मेरा इच्छारहित स्वभाव है, जानन ही मेरा स्वभाव है। जानन अगर मिट गया तो मैं मिट जाऊगा, इच्छाएं अगर हो गयी तो मैं बरवाद जाऊगा। इच्छाओके मिट जानेसे मैं मिट जाऊगा, ऐसी बात नही है। इच्छाओके मिटनेसे मैं नही मिटता बल्कि इच्छाओंके मिट जानेसे मुझे आनन्द है। ये इच्छाए मेरा स्वभाव नही, मैं तो स्वभाव मात्र हूँ, भीतरमे एक ऐसा विश्वास बना लेवो। एक तो गृहस्थ यह कर सकता है, दूसरे यह कर सकता है कि इच्छा माफिक यदि काम नही है तो इससे नष्ट हो जाऊंगा यह शका रच भी न करे। अरे मैं तो वही सत्का सत् हू। यदि ऐसा होगा तो क्या, न होगा तो क्या यह दूसरी बात भी गृहस्थ कर सकता है। बाह्यकी यदि इच्छा बन गयी तो क्लेश ही क्लेश है ? ये इच्छाए ही बन्धन हैं। यदि मैं इच्छाए न रक्खू, ज्ञाता द्रष्टा रहू, ज्ञानमात्र रहू तो मेरी हानि नही है। इच्छाओसे ही हानि है। मेरा पूरा इच्छाओसे नही पडेगा, इच्छाओसे तो मुझे दुःख ही मिलेगे। मेरा पूरा तो ज्ञानमात्र भावोसे ही होगा। मैं जितना हू स्वयं हू। इससे ही मेरी ठीक व्यवस्था बनेगी। इसलिये इच्छावोको दूर करके ज्ञानमात्र रहकर मैं अपनेमे अपने लिए अपने आप सुखी होऊ।

देखो हाथी, मछली, भवरा प्रत्येक जीव बन्धनमे पड जाते है, जालमे बध जाते हैं, शिकारियोके चगुलमे फस जाते है। उनकी इच्छा नही होती तो वे बन्धनमे नही पडते।

मनुष्य भी रंग ढगसे चलते हैं, दूसरोमे मनमानी अन्यायकी प्रवृत्ति नही कर पाते तो इस ससारी व्यवस्थाका निदान भी इच्छा है। इससे एक मनुष्य दूसरे मनुष्यके बन्धनमें पड जाता है। पुत्रकी इच्छा है कि मैं ठीक रहू, मेरा बढिया गुजारा बने, मेरी उन्नति बने, ऐसी इच्छाओके कारण ही वह पिताके साथमे रहना स्वीकार कर लेता है। यह मेरा बच्चा बुढापेमे काम आयगा, मेरी सहायता करेगा, इच्छाओके कारण ही वह पुत्रसे मिला हुआ हुआ चलता है। इसी प्रकार स्त्रीकी इच्छाए अपने पतिके प्रति, पतिकी इच्छाएं अपनी स्त्री प्रति होती हैं, इस तरहसे वे सब एक दूसरेके बन्धन बन जाते हैं। नौकर अपने मालिक के प्रति तथा मालिक नौकरके प्रति बधनमे है। इसी प्रकार बडा छोटेके बन्धनमे है तथा छोटा वडेके बन्धनमे है। इसलिये इच्छाए ही बन्धन हैं।

सीता जी अग्नि परीक्षामे सफल हो गयी तो रामचंद्र जी विनयसहित खडे हुए बोले देवी माफ करो, आपको बहुत कष्ट पहुचा, चलो अब महल चलो। लक्ष्मणने भी हाथ जोडे, और सब लोगोने भी हाथ जोडे भला सोचो कि सीता जी ने मृत्युसे भेंट कराने वाली अग्नि-परीक्षाक बाद क्या अपने मनमे इच्छाके भाव बनाए होगे ? क्या सीता जी के मोहकी प्रवृत्ति हो सकेगी ? नही। इसीसे तो सीताजीके वैराग्य उमड़ा, ज्ञानका विकास हुआ तो सीताजी के लिये कुछ भी अन्य वन्धन नही हुआ। विरक्त हो गयी, तपस्यामे लग गयी। जब तक इच्छाए थी तब तक बन्धन था। इच्छाएं खत्म हो गयी तब उनका बन्धन भी खत्म हो गया।

अब घरमे ही देखो लोगोकी इच्छा नही रहती हैं इसलिये वे व्यावहारिक सम्बन्धी भी होकर जुदा हो जाते हैं, अलग हो जाते है, तलाक दे देते है। परमार्थसे तो जब इच्छाए नही हैं तब मोहके बन्धन भी हट जाते है हमको बांधने वाले कोई पदार्थ नही हैं। हम बाह्यपदार्थोको अच्छा या खराब करनेकी इच्छा करते हैं तो अपने आपको ही बेड़ियोमे जक-डते हैं, दुःखी होते हैं।

बडे बडे रईस लोग आजकल भी अपने बच्चे स्त्री धन वैभव इत्यादिको छोडकर अलग हो जाते हैं, विरक्त हो जाते हैं। यह क्यो ? यों कि इच्छाका बन्धन उनके नही रहा इच्छा तक साम्राज्यो से लगाव था। इच्छाओ के समाप्त होते ही वे बडे बड़े साम्राज्य छोड देते हैं। कहते हैं कि फलाना आदमी मोहप्रवृत्तिसे अलग हो गया। अरे अलग हो गया तो अपने को बंधनमे बाधनेकी इच्छा नही थी इसलिए अलग हो गया। बन्धन तो इच्छासे हो जाते हैं। किसीको अपना मानना कि यह मेरा है, यह अमुकका है, यह फलानेका है इत्यादि ही तो विपदाए हैं। दूसरोसे लातें घूसे मिला करते हैं पर कहते हैं कि मेरा है। परको

अंगीकार करनेसे ही सुख दुःख हो जाते हैं।

यह जीव किसी किसी बातसे मौज मानता है और किसी बातसे दुःखी होता है। जिन चीजोंसे मौज मानता है उन चीजोंके साथ साथ दुःख ज्यादा आते हैं। रात दिनके २४ घंटेके अन्दर यह बताओ कि बहुत बढ़िया मौज कितने मिनट तक रहती है? रात दिन मे २, ३ मिनटके लिए मौज आ जाती होगी बाकी समयमे कष्ट ही रहते है। कभी कोई बच्चा हो गया उसकी प्रवृत्तिको देखकर दो एक मिनटके लिए मौज हो गयी, बाकी समयमे दुःख ही रहते हैं। दुकान पर बैठे हैं कोई ग्राहक आ गया तो सौदा पटने पर दो एक मिनट के लिए मौज आ गयी। सौदा न पटा, ग्राहक चला गया तो फिर दुःखी हो गए और ग्राहक की अपेक्षामे तो पहलेसे भी दुःखी बैठे थे। मौज और दुःखमे अन्तर देखो कि मौज तो राई के समान और दुःख पहाड़के बराबर है। और दुःखोको फिर देख लो दुःख तो सारे साँचे हैं मगर मौज जो २ मिनटका है झूठा है। मौज झूठा हो गया और दुःख साँचे हो गए। इन सबका क्या कारण है? देखो भाई क्षणिक मौज माननेसे ही दुःखोसे दब जाते हैं। इस मौज माननेका कारण इच्छाएं ही है। इन इच्छाओसे ही दुःख हो जाते हैं। जैसे कोई कहे कि साहब अपनी दुःखोकी कहानी सुनाओ। अच्छा सुनो, ५ मिनट तक सुनाया तो उसमे यही पावोगे कि इसकी इन विषयोमे इच्छा है। इसका निर्णय करो कि इसमे अमुककी इच्छा है। इन सब इच्छावोसे दुःख होते हैं, क्लेश होते हैं।

सारी बातें ठीक है ना, सारी बातें समझमे आयी हैं ना। सारी बात समझमे क्या सिर पर ही तो आ रही हैं। भैया! अब समझते है यह कि ऐसा कोई उपाय बन जाय कि सारी समस्याएं समाप्त हो जावें। हम कहते है कि जिनमे मोह हैं, जिनमे इच्छाएं हैं उन को सभी सुख नही हैं, न सफलता है इतना निश्चय तो कर ही लो। एक इच्छा न हो तो आनन्द ही आनन्द है। इच्छा मिटी फिर क्या पड़ा है। तो ये इच्छाएं मिटें कैसे? अरे इन इच्छाओके मिटनेकी तरकीब हैं—जो शास्त्र पूजे जा रहे हैं, उनमे इच्छाएं मिटानेकी तर-कीबें लिखी होती हैं, इसीसे हम शास्त्रके पन्ने आदरसे पलटते है, पूजते है, उनका मनन करते हैं और यह भगवान्‌की मूर्ति मंदिरमे विराजमान है, परमात्मा अरहंत जिनेन्द्रकी मूर्ति विराजमान है, उसकी उपासना उन्हे आदर्श मानकर ही तो करते हैं। इच्छा प्रभुके समाप्त है। सो निरीहको पूज करके हम अपनी इच्छाओको नष्ट करें। हम गुरुवोंके सत्संग करते हैं, गुरुवोंकी उपासना करते है, उपासना करें क्योंकि इच्छावोंके मिटानेकी तरकीब उनके सत्संगसे मिलती है। जैसी इनकी वृत्ति है ऐसा बनाकर मैं प्रसन्न होऊंगा।

जिसके इच्छाएं होती हैं और बाह्यसे ही मौज किया करते हैं उन्हें क्लेश ही रहते

हैं । देखो भाई जिसके पास आनन्द है उसके पास हम नही जाते है और जिसके पास आनंद नही है उसके पास हम जाते है । जिनके पास जानेसे अपनेको क्लेश हैं उनके पास हम जाते है । जिसके पास जो है उसके पास जाकर उसे पाना चाहिए । दरिद्रतामे दुःख है यह सोच कर जिनके दरिद्रता नही, ऐसे धनीके पास जाते है लोग, जिनसे उन्हे कुछ मौज मिलता है उनके पास जाते हैं । इसी तरह इच्छाओसे दुःख हैं । जिनके ये दुःख न हो उनके पास जाते है । इसी तरह इच्छाओसे दुःख है । परन्तु मोही दुनियामे चिपटते है और जिनके पास दुःख नहो हैं उनके पास ये मोही नही जाते है । देखो जैसे मिल चल रहे हैं खटपट खटपट । न पेंच पुरजोको चैन, न चलाने वालोको चैन । वैसी ही चीज यहां बन रही है । देखो इस हृदय मिलके अन्दर कैसी खटपट खटपट हो रही है । एक इच्छा यह हुई उसके बाद दूसरी इच्छा । कभी किसीकी वासना, कभी किसीका ख्याल, कभी किसीका उपयोग तो कभी कोई व्याकुलता । इस तरहसे ही इच्छावोंके खटपटीसे भरी यह वासनामशीन कैसी चला करती हैं ? जितने दुःख होते हैं वे सब इन इच्छावोके द्वारा ही होते हैं और इन अटपट इच्छाओंमे पडनेसे क्लेश ही क्लेश रहेंगे ।

भैया ! इन इच्छाओको हटा दो । इनसे कोई मतलब नही निकलता । कुछ भी इच्छा करो उससे लाभ नही मिलनेका है । इच्छाओका पता भी नही अब क्या इच्छा उत्पन्न हो जाय । जैसे ऊटका पता ही नही रहता कि वह किस करवट बैठे ? बैठते भी यह पता नही रहता कि वह किस तरफको बैठ रहा है । पहले तो वह जरासा झुकेगा फिर पैर लगाकर बैठ जाता है । जब वह बैठ जाता है किसी तरहसे तो फिर पता लगता है कि ऊँट किस करवटसे बैठा ? पुद्गलोका ऐसा अन्जान मामला नही है । पुद्गलोंके चाहे लट्ठ चलो चाहे तलवार, अटपट वहां कुछ नही होगा और इस मनुष्यकी तरफ जरा देखो । इस मनुष्यका पता ही नही कि इसका एक मिनटमे ही क्या दिमाग बदल जाय या कुछ समय बाद क्या बदले ? उसका कुछ पता नही रहता है । वह अपनी भूलके कारण ही गल्तियाँ कर डालता है । इन गल्तियोके कारण ही इच्छायें हो जाती हैं । इन इच्छाओकी गल्तियोंको अगर अपनेसे निकाल दें तो दुःखके बन्धन छूट जायेंगे । दुःख तो इच्छावोसे ही होते हैं । इच्छायें न हो केवल ज्ञाताद्रष्टा मात्र मैं होऊँ तो उस ज्ञानसे ही मेरा पूरा पड़ेगा । इच्छाओसे मेरा पूरा नहीं पड़ेगा । देख लो सब ठीक है, परन्तु कोई इच्छा हो गयी तो बैठे ही बैठे विपदाओसे दब गए ।

जब बच्चे थे तब भी इच्छा इज्जत की थी । नीचे नही बैठते थे, गोदमे ही बैठते थे । जब थोड़ा बडे हुए तो यह लें, वह खा लें, यह खेलें आदि इच्छाएं भी हुईं और तनिक

बडे हुए तो अन्य अनेक इच्छाए आ गयी। पढ़ेंगे, परीक्षा देंगे, यह करेंगे, वह करेंगे आदि। तनिक और बडे हुए तो शादी की, विवाह किया, पुत्र हुए। देखो अन्य अन्य ढगकी बातें हो रही है। तो इच्छावोने आराम नही लिया। इच्छायें मेरे मनमे बहुत सवार हुई इन इच्छाओ ने ही हमे बहुत सताया, फिर भी हम इनका आदर करते जा रहे है। अरे ये इच्छायें बेकार की हैं, व्यर्थकी हैं, इनसे कोई मतलब नही, कुछ प्रयोजन नही। भला सोचो तो सही इस शरीरका तो मरण होगा ही, इस शरीरकी क्या दशा होगी ? खाक कर दिया जायगा, भस्म कर दिया जायगा। ३४३ घन राजू प्रमाण लोकमे पता नही कि वह किस जगह जायगा ? फिर उसके लिए कानपुर नही होगा। उसका हिन्दुस्तान नही होगा, उसका घर द्वार इत्यादि भी नही होगा। वह तो ज्ञानमात्र अपने आपके स्वरूपमे अगर विश्वास कर ले तो सुखी हो जावे। तो ऐसा ही अब जान लो कि मेरा कही कुछ नही है। जो कुछ भी हो धर्म कर लो तो उसका फल है। शरण कोई नही होगा। इसलिए मैं इस अपने ज्ञानमय आत्माको देखू और अपनेमें अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होऊ।

ॐ शान्ति, ॐ शान्ति, ॐ शान्ति

नाना चेष्टे न मे लाभश्चेन्न चेष्टे न मे क्षति ।
ज्ञानमात्रैव चेष्टा मे स्यां स्वस्मैं स्वे सुखी स्वयम् ॥२१॥

कुछ भी चेष्टायें करनेपर भी जैसेके तैसे ही खाली हाथ रहते हो। किसी भी प्रकारकी चेष्टायें करो—दुकानकी, घरकी, सत्संगकी, रहनेकी, पढनेकी, सोसायटीकी, समाजकी सेवाकी, रहोगे वैसेके वैसे खाली हाथ। इस आत्मामे कुछ भर जाता है, बन जाता है, बडा हो जाता है, क्या ? कुछ नही होता बल्कि उन चेष्टाओसे कुछ खाली हो जाता है। नाना प्रकारकी चेष्टायें करो, मगर कुछ लाभ नहीं मिलेगा।

अगर मैं कुछ चेष्टायें न करू तो स्वच्छ बना रहू। चेष्टायें न करनेसे कोई हानि नही है। मेरी तो वास्तविक चेष्टा ज्ञानमात्र ही है। भीतरके स्वरूपको देखो तो यह केवल जाननहार एक आत्मा है। अपने आपके स्वरूपमे घुला मिला है। मुझ आत्माका काम केवल ज्ञानस्वरूप है, केवल जाननका काम है। इसके आगे और कोई काम नही है। इसके आगे अगर और कुछ करनेका स्वरूप माना है तो धोखा है। यह तो जाननहार है, जानन ही इसका काम है। ऐसा मात्र ज्ञान मैं अपनेको देखू। भीतरमे यह प्रवृत्ति बन जाय कि मैं तो सबसे निराला, भिन्न तत्त्व हूँ। इसका किसीसे सम्बन्ध नही है। किसीके कुछ करनेसे हो जाय या किसीको मैं कुछ कर दू ऐसी बात नही है। सब पूरेके पूरे हैं, परिणमनशील हैं। अपने आपमे परिणमते रहते हैं। परिणमना ही तो इसका काम है। इसको कहते हैं कि

'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् ।' जो बन जाय, बिगड़ जाय और बना रहे वही तो सत् है । यह प्रत्येक पदार्थका स्वभाव है । मैं किसीको बना दूं सो बात नही है । मैं किसीसे बन जाऊं यह भी बात नही है । मेरा स्वभाव ही नही है परका बिगडना और बनना । यह उत्पाद व्यय ध्रौव्यकी कला स्वय प्रत्येक पदार्थमे है । दुनियाके लोग नही समझते है, सो उनकी यह बुद्धि बन जाती है कि ये चीजें बन जाती हैं तो कोई बनाने वाला अवश्य है उस बनाने वालेका नाम ब्रह्मा है । देखो कोई चीज बिगडी, खत्म हो गयी तो ऐसा करने वाले महेश हैं । ऐसा उत्पाद व्यय हो जानेपर भी कुछ रहा करता है उसका नाम विष्णु है ।

भैया ! प्रत्येक पदार्थ त्रिगुणात्मक है । मोही जीव पदार्थोंके स्वभावको तो देखना नही, अपने स्वरूपको तो समझता नही, केवल बाहरमे ही देखकर कल्पनायें बनाकर कहता है कि मैं अमुकको बना दू, अमुकको बिगाड दू, अमुकको कुछ कर दू अथवा मुझे कोई दूसरा ही बिगाड दे । इन शकाओसे सदैव दुखी रहता है । अरे मैं तो स्वच्छ हूँ मेरा कोई कुछ नही कर सकता । उत्पादव्ययध्रौव्यमे पडा हुआ मै स्वयं अपने स्वरूपको जानता, देखता हूँ । मेरी जानन मात्र ही चेष्टा है, बाकी काम नही है । सो मैं अपने ज्ञानस्वरूप आत्मामे रहकर अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होऊ ।

तत्वज्ञो जायते मूको लुब्धैस्त्यक्तमिद छलात् ।
शांतिस्तु तत्वतस्तत्वे स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम ॥२२॥

यह अन्तरकी बात, तत्त्वकी बात इसको जो जानता है वह मूक हो जाता है । बोल नही सकता मौन हो जाता है । जैसे कोई किसीको कोई चीज समझावे और वह समझता है, पर ऐसा नही समझता है तो समझाने वाला बराबर समझना है, पर समझने वालेकी समझमे नही आता है । जब समझने वाला यद्यपि जानता है सब पर एक्सप्लेन नही कर पाता है या सुनने वाला समझ नही पाता है तो बोलने वाला टेबुलमे हाथ मारकर यो ही रह जाता है, क्या समझाया जाय, बताया नही जा सकता है । अच्छा मिश्री तो सबने खायी होगी । कोई भाई खडे होकर मिश्रीके स्वादका एक्सप्लेन कर दें । अरे भाई आप जान रहे हैं मिश्रीके स्वभावको, पर बताते कोई नही है । जानते सब हैं, पर बता कोई नही सकता । अगर कोई कहे कि उसका स्वाद मीठा होता है तो उत्तरमे यह आता है कि क्या रसगुल्ले, पेडे, बर्फी इत्यादिका स्वाद जैसा होता है । जानते सब है पर वर्णन कोई नही कर सकता है । ज्ञानस्वरूप कैसा है कोई बतावेगा ?

जो तत्त्वका जानने वाला है वह मूक हो जाता है ठीक है । जो तत्त्वज्ञ है वह वचन-व्यवहारमे क्यो पडेगा ? परन्तु मोही जीवोने मानो एक छल पकड लिया कि जिस तत्त्वके

जाननेमे गूंगा हो जाता है उस तत्वसे हमे क्या प्रयोजन ? २०-२५ वर्ष पहले धर्म पढनेका रिवाज था। लडके विद्यालयमे सस्कृत पढनेके लिए जाते थे। घरमे मां बाप कहते कि अरे देखो सस्कृत पढनेसे कोई पडित हो गया, कोई घर छोडकर चल दिया, तो ऐसा पढानेमे क्या लाभ ? लडकेको न पढावें, नही तो हाथसे ही चला जायगा। संस्कृत पढानेसे कोई फायदा नही है, ऐसा मां बाप लडकोके प्रति सोचते थे। अरे मर्मके तत्वको जिसने समझ लिया वह अगर घरसे चला जाय तो उसे उत्सव मनाकर भेजो। जो ज्ञानी ध्यानी निर्णय कर रहा है कि यह तो अपने आपका कल्याण करता है और दूसरोका भी कल्याण करता है, तो उसका गौरव होना चाहिए। मान लिया कि आपने दुकान कर ली, बहुतसा साम्राज्य कर लिया तो उससे क्या होगा, बतलाओ। अरे ये तो विकल्प सर्व साधारणके हैं ही। अगर जीवका उद्धार हो जाय तो खुशी होना चाहिए।

भैया ! देखो—यह मूर्ख पुरुष छल करता है कि मेरेको उस तत्वसे क्या लाभ होगा ? अरे भाई ऐसे तत्वमे, उपयोगमे ही शान्ति है, बाहरमे शान्ति नही है। बाहरी कामोमे तो अशान्ति ही अशान्ति है। अपने उपयोगमे लगनेसे शान्ति ही रहेगी। अशान्तिका कोई काम नही है। क्या आप बतला सकते है कि किसमे शान्ति है ? शान्ति क्या सर्विसमे है ? क्या दुकानमे है, क्या दुनियाके और कामोमें है ? अरे शान्ति कही नही है। केवल अपने आपके स्वरूपको देखो तो वहाँ पर शांति ही शांति मिलेगी। वहाँ अशान्तिका नाम नही है। अशान्ति कितने प्रकारकी होती है ? एक एक आदमीमे कमसे कम एक एक हजार अशान्ति होगी। एक आदमीमे इतने प्रकारकी अशान्तियां हैं तो दूसरोमे भी ऐसी नाना अशांति हैं। ये अशान्तियां भी एक दूसरेसे मिलती नही। इनको और तरहकी अशान्ति, इनको और तरहकी अशान्ति। कितनी तरहकी अशांतियाँ हैं, कोई हद नही है। मगर शान्तिका जो रूप होता है वह केवल एक है और अशान्तिके रूप करोडो हैं। शान्ति अगर मिले तो उसका केवल एक ढग है। अगर मान लिया इन लौकिक मौजोमे कि हमे शान्ति मिली तो वह शान्ति नही हुई। शान्ति तो केवल एक प्रकारकी है। तो यह तत्व जो अपने आपमे विराजमान है उस ओर दृष्टि हो तो शान्ति है। तो ऐसे तत्वको जानकर मैं अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होऊं।

तत्वज्ञ आलसो भूतो लुब्धैस्त्यक्तमिदं छलात्।
नैष्कर्म्यं एव शांतिस्तु स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥२३॥

ओह, एक मनुष्य बोल रहा है कि उस तत्वके जानने से क्या फायदा ? जिस तत्वके जाननेसे ज्ञानी आलसी हो जाता है, तत्वको जानने वाला आलसी होता है, ऐसा आलसो

होता है कि पलक गिरानेमे भी आलस्य आता है । आँखोंके पलक अगर गिरे तो उठानेको आलस्य आता है । और की बात तो दूर रही, जिनको योगी कहते है उनकी भी अगर पलक गिर जाती है तो उठानेमे आलस्य होता है । और अगर नजर उठी तो पलके बन्द करनेमे आलस्य है याने बाह्यमे दृष्टि नही करता । ऐसे तत्वको जाननेका हमे क्या प्रयोजन है ? और ज्यादा बढें तो ऐसे प्रश्न हो जाते हैं कि हम भी मुक्त हो गए तो दुनिया कैसे चलेगी ? दुनियाके क्या हाल होगे ? अरे ऐसे सब कहाँ बन जायेगे ? सब तो नही बनेंगे मगर अनन्ते बन जावेंगे । अनन्ते बननेपर भी अनन्तानन्त ही रहेंगे । अगर बाह्यमे ही दृष्टि गयी तो वहाँ शान्ति नही मिलेगी ।

भैया ! शान्ति तो वहाँ है जहाँ बाहरमे दृष्टि न हो । कुछ मत सोचो, कुछ मत बोलो, कुछ मत करो । देखिए कल्पना, जल्पना, चलपना क्या है ? कल्पनाओके सम्बन्ध मनसे होते है, जल्पनाका सम्बन्ध वचनोंसे होता है जिससे जल्प व गल्प बने और चलपना उठकर चल दे यह चलपना हुई । न कोई चलपना हो, न कोई जल्पना हो, न कोई कल्पना हो, केवल स्वरूपका ही परिग्रह हो, तत्वज्ञानकी प्रवृत्ति बढे, शान्ति तो वहाँ है । लोग कहते है कि उस तत्वके जाननेसे क्या फायदा जिसको जानकर आलसी हो जाते हैं । भैया ! शान्ति तो उस निर्विकल्पतत्त्वमे हीं है । मैं अपने ही तत्त्वको निरखकर उसमे ही उपयोग देकर अपने मे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होऊं ।

मनो मे न स्वभावोह मन: कार्य न तत्फलम् ।
औपाधिकमसत्स्वेऽतः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।२४।।

मन मेरा स्वभाव नही, मन मेरी वस्तु नहीं, मैं तो मै ही हू । मेरे स्वरूपका मुझे पता न हो, यह कैसी अनहोनी बात है ?

एक राजा था । घोडेपर चढा जा रहा था । दीवानके घर परसे निकला । दीवान बुद्धिमान था । राजा बोला—दीवान ! मुझे यह समझा दो कि आत्मा क्या चीज है और परमात्मा क्या चीज है ? जो प्रसन्न होता है वह बडी बातें करता है । राजा भी प्रसन्न थे, घोडे पर बैठे हुए दीवानसे बातें कर रहे थे । बडे आदमी प्राय. जब प्रसन्न होते है तो बहुत बोलते है । राजा बोला—जल्दी समझा दो कि आत्मा क्या चीज है और परमात्मा क्या है ? दीवान बोला—अच्छा, समझा दूंगा । राजा बोला–नही, ५ मिनटमे ही समझा दो । दीवान बोला—राजन्, माफ करो तो मैं ५ मिनटमे नही आधा मिनटमे ही समझा दूगा कि आत्मा क्या है और परमात्मा क्या है ? सो राजाका कोडा उठाया और ४-६ कोड़े राजाके जमा

दिए। राजा बोले—अरे भगवान, अरे भगवान्, दीवान बोला—जिसको तुम अरे अरे कहते हो वह है आत्मा और जिसको भगवान् कहते हो वह है परमात्मा।

हे आत्मन्, अपनेसे बाहर न जाओ, अपनेसे बाहर दुःख है। खुदके जाननेसे ही सुख है। सबको मानो कि भगवान सबमें है। अत्यन्त यथार्थ रूपमे आत्मा है। यदि उस अपने यथार्थ रूपको देखो तो तुम्हारा परमात्मा तुम्हारे सामने है।

यत्रैव भाति रागादि सोह् रागादि नैव हि।
रागादौ निर्ममस्तस्मात्स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥२५॥

जहाँ यह रागादिक प्रतिभासित हो वह तो मैं हू, किन्तु रागादिक मैं नही हू। मैं तो एक ज्ञानमात्र आत्मतत्त्व हू। इस ज्ञानमात्र आत्मतत्त्वका जब नयोसे हल न हो सका तो एक एक एकान्त दर्शन बन गया। सब प्रकारसे देखने पर आत्मतत्त्वका सही ज्ञान हो सकता है कि मैं आत्मतत्त्व यह हू मै आत्ममुखी हू, निज उपादान वाला हू, किन्तु माने यह कि मैं अमुकके कारण सुखी हू तो इसीको कहते हैं निमित्तदृष्टि और जो दृष्टि अपने आपके लिए अपनी जुम्मेदारी लिए हुए होती है इसीको कहते है उपादानकी दृष्टि।

एक पुस्तक है, उसमे एक गधेकी कहानी लिखी है। मैंने बचपनमे ही उसे पढा था। अब चाहे दूसरा एडीसन तैयार हुआ हो या नही, उस कहानी की पुस्तकमें बहुत सी शिक्षाए थी। एक उपकहानी यह है कि एक धोबीके पास एक गधा था और एक कुतिया थी। कुतियाके बच्चे २०, २५ दिनके हो गए। धोबी कुतियाके बच्चोको उठा भी लेता था, प्यार भी करता था। वे पिल्ले अपने पजे मारकर धोबीको प्रसन्न करते थे। कभी मुँहमे धोबीके हाथ पैरोको भर लेते थे। वह धोबी उस कुतियाके बच्चोसे बहुत प्यार करता था। गधेने यह देखा कि धोबी कुतियाके बच्चोसे तो प्यार करता है जो बिल्कुल काम नही करते हैं और हम तो बहुत काम करते हैं फिर भी हमसे प्यार नहीं करता है। उसने इस बातको सोचा कि आखिर हमसे प्यार क्यो नही करता है ? सोचा तो गधे ने समझ लिया कि पिल्ले धोबी को लातें मारते हैं और दाँतोंसे काटते हैं इस वजहसे वह उनसे प्यार करता है। चलो ऐसा हम भी करें तो हमसे भी मालिक प्यार करेगा। गधा अपने स्थानसे चला और धोबीके पास पहुच गया। सोचा कि लातें मारें तो शायद मालिक खुश होगा सो यह सोचकर खूब लातें मारने लगा, खूब दाँतोसे चबाने लगा। अब धोबीने डडा उठाया और पीटना शुरू किया। उस गधे ने सोचा कि अरे पिल्ले तो जब लातें मारते हैं तब प्यार करता है और हम जब लातें मारते हैं तब हमे पीटता है।

तो भाई सबकी बातें न्यारी न्यारी हैं, उपादान न्यारे न्यारे हैं। कोई जीव किसी

तरहकी पीडाओमे रहकर शांत हो सकता है तो कोई अशान्त हो सकता है। इसकी परख बाहरी बातोमे नही होती, भीतर तत्त्वमे होती है। ऐसा उपादान तत्त्व अगर समझमे आ गया तो सब कुछ ठीक है और जिसकी समझमे न आया तो मोह होगा। जैसे कोई नावसे नदीमे जावे, कभी इस दिशामे कभी उस दिशामें तो लक्ष्य बिना भटकता ही रहता है। उसी तरह इस जगतके जीव, जिनका कोई शुद्ध लक्ष्य नही है वे भटकते ही रहेगे। इतना धन चाहिए, इतनी इज्जत चाहिए, बाल-बच्चे चाहियें। अरे ये सब क्या हैं ? वे भी बूढे होगे और मरेंगे। क्या ज्ञानस्वरूप यह आत्मा यहासे निकलकर नही जायगा ? यहां कौनसी चीज सारभूत है, जिसमे हम गडे हुए है। सारी चीजें छोडकर जाना पडेगा, यहाँ कुछ रहता नही है।

एक सेठ था, उसके चार लडके थे। अपनी चाबी किसीको वह सेठ देता नही था। अपने पेटमे चाबीको बांधकर वह सेठ रखता था। किसी बच्चे पर वह विश्वास नही करता था। सेठ जब खतम होने लगा, गुजरने लगा तो बच्चोसे बोला, बच्चो ! लो चाबी ले लो ? बच्चे कहते है कि नही पिता जी, चाबी हमे नही चाहिए, आप अपने साथमे लेते जाइए।

शातिका मार्ग प्राप्त कर लें, ऐसी कोई चीज दुनियामे है क्या ? बाहरी बात कुछ भी हो उसमे तो असतोष न करो। अरे भोजन करते हैं तो पूछते हैं कि क्या बना दें ? तब पुरुष उत्तर देता है कि कुछ भी बना दो। उड़दकी दाल बनाओ, चाहे मूँगकी बनाओ, चाहे मसूरकी बनाओ, चाहे चनेकी बनाओ, चाहे अरहरकी बनाओ, जो होगा सो खा लेंगे।

भाई ! जैसे खानेमे सतोष है उसी तरह यदि बाहरी व्यवस्थाओसे संतोष हो तो ठीक है। सतोष तो अतमे करते ही है। कोई गुजर जाता है तो कहते हैं कि इतनी ही अवस्था थी। यदि भेदज्ञानसे सतोष करें तो लाभ है। ४-६ हजारका टोटा पड जाय तो वहां यो सतोष करते है कि उसने तो किसीसे कर्जा लिया था सो चुक गया। अरे धन आए तो क्या न आए तो क्या ? वह सब तो सर्वथा भिन्न है। इस भेदज्ञानसे ही सतोष करें तो ठीक है। उसमे भेद तो रहता है, जबरदस्तीमे क्या है ? भैया ! बात तो भेदविज्ञानकी ही एक पक्की है और वही रोज-रोज चल रही है। अब कुछ भाइयोकी मर्जी है कि भक्तामर स्तोत्र का अर्थ एक हफ्ता चले। ठीक है, चलेगा, किन्तु भैया, बात पक्की भेदज्ञानकी ही है। एक कथा याद आ गयी।

एक रंगरेज था। बहुत बढिया पगडी रंगता था। आसमानी, लाल रंगकी पगड़ी रंगना बहुत बढिया जानता था। कोई उससे आकर बोलता कि हमारी पगडी हरी रग दो, कोई बोलता कि लाल रग दो, कोई बोलता कि सुनहरी रग दो इत्यादि। रगरेज सब पगडी रखा लेता है और कहता है कि अच्छा रग तो दंगा, किन्तु रग आसमानी ही ठीक खिलेगा।

सो भाई कुछ पढा लो आनन्द तो भेदविज्ञानसे ही मिलेगा । चमत्कार तो तभी बनेगा जब ज्ञानस्वभावके विकास की पूजी हो । सो मैं अपने आपमे स्वय निधिरूप हू, ज्ञानानन्दघन हू अथवा शरण हू । अगर यह समझमे आ जाए तो मेरा भविष्य सफल है ।

अन्यथानुपपत्तेः स्याद्रागादेः कर्म कर्तृ हि ।
तत्कर्मव्याहतिर्ज्ञप्तो स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥२६॥

ऐसी दृष्टि बनाकर कि कोई समय आयगा जब कि यह मैं आत्मा इस शरीरसे न्यारा होकर चला जाऊंगा । उस शरीरकी क्या स्थिति होगी ? मिल जुलकर यह मित्रमडल इसे खाक कर देगा । इस शरीरसे जीव निकला उस समय क्या स्थिति होगी ? ज्ञानज्योतिमात्र यह आत्मा इस स्थूल शरीरसे रहित होगी । उस समय तो यह शरीर छूट गया, दूसरा शरीर मिला नही तो जो बीचके क्षण हैं वे क्षण किस प्रकारके होवेंगे ? एक ज्ञानानन्दघनका पिंड जैसा उस समयमे परिणमता हू वैसा ही परिणमता हुआ होऊंगा । एक भावस्वरूप पदार्थ होऊंगा । ऐसा भाव पदार्थ रूप मैं शरीरमे हू, अब भी हू । दूसरे शरीरमे जब जाऊंगा तब भी मै भावस्वरूप पदार्थ ही रहूगा । शरीरमे रहकर भी मै शरीरसे न्यारा हू । मुझमे जो परिणमन तत्त्व है वह भी चित्स्वभाव मात्र मुझसे न्यारा ही स्वरूपरूप रहेगा । उन परिणम तत्त्वोकी याने राग द्वेषकी छाया न हो, शुद्ध ज्ञानमात्र सबमे न्यारा मै होऊँ ।

ये रागादिक ऐसे कैसे हो गए है ? मुझमे स्वभावसे ही ये रागादिक नही है । मेरा स्वभाव तो रागादिक करनेका नही, केवल जाननका है । जैसे पानीका स्वभाव बहनेका है याने द्रवताका है, पर ठडा होने व गर्म होनेका नही है । ठडा करनेसे पानी ठडा हो जाता है और गर्म करनेसे पानी गर्म हो जाता है । पर पानी सर्वत्र द्रव ही है, बहने वाला है । पानी अपने स्वभावसे न तो गर्म ही होगा और न ठडा ही होगा । पानी तो कूलर या ठडा करने वाली मशीनसे ठडा होगा और अग्निके द्वारा गर्म होगा । ऐसी स्थितिमे भी पानी द्रव है, बहने वाला है । इसी तरह यह आत्मा चाहे क्रोधपरिणमन रहे, चाहे लोभपरिणमन रहे, चाहे विषयकषाय परिणमन रहे, पर अपने ज्ञानस्वभावको नही छोडता । केवल जाननेके स्वभावमे रहता है । इसी कारण विषयकषाय यद्यपि आ जाते हैं तो भी जानन रहता है । जो जानने वाला नही है उसमे विषयकषायके परिणमन नही आते । ये विषयकषाय मेरे स्वभावसे नही आ रहे है बल्कि उपाधि पाकर आ रहे है । क्रोध, मान, माया, लोभ इत्यादि हो जाते हैं तो उनका भी करने वाला मै नही हू ।

जैसे एक दर्पण सामने है । दर्पणका स्वभाव तो केवल स्वच्छता है, केवल झलक है, झिलमिलाते रहनेका स्वभाव है । अपनी चमक बनी रहे यही उसका काम है । जो चीज

सामने लाकर रखो तो उसकी छाया दर्पणमे सही सही पडती है । दर्पणमे ही प्रतिविम्ब पड जाता है । अगर मुक्का बनाओ तो मुक्का ही दर्पणमे दिखाई देगा । इसी तरह होठ बनाओ तो होठोका प्रतिविम्ब भी सामने आ जायगा । आंखें तिरछी बनाओ तो आंखोका प्रतिबिम्ब सामने आयगा । दर्पण क्या करे ?

इसी तरह क्या तेरी आधीनताकी बात है कि क्रोध करले, मद करले । मैं अपनी आधीनतासे यह कुछ नही कर पाता हू किन्तु जैसी उपाधि सामने आती है वैसा कर डालते हैं । इसी तरह दर्पणका परिणमन केवल शुद्ध स्वच्छ है । आत्माके परिणमनमे राग द्वेष नही, विषयकषाय नही केवल शुद्ध, स्वच्छ एव ज्ञानस्वरूप है । हे आत्मन् ! मलीन बननेका तेरा काम है क्या ? आत्माका उत्तर है कि मेरा काम नही । मेरा काम तो प्रभुकी तरह शुद्ध ज्ञानमे परिणमते रहनेका है, पर क्या करू ? जब यह उपाधिका उदय होता है तब खुदकी अशुद्ध योग्यतामे यह परिणमन जाता है । अशुद्ध विकारमय, रागादिक, क्रोधादिक तो मैं इनको करता नही हू, इनके करने वाले तो कोई दूसरे ही हैं । इस बुद्धिसे अपनेको ज्ञान-स्वरूपकी ओर ले जाया जाता है, इसका कर्ता तो कर्म है, मैं तो शुद्ध ज्ञानस्वरूप ही हूं मैं तो जाननस्वरूप हू । मेरेमे रागादिक भाव नही । विपरीत परिणमनमे बडी विचित्रताए हैं । उनका कर्ता कर्म है । प्रकृति कहो या कर्म कहो । जैन सिद्धान्तमे प्रकृति भी कहते हैं और कर्म भी कहते हैं । अपनेको शुद्ध स्वभावकी ओर ले जाने वाली इस दृष्टिमे कितना आराम मिलता है ? विषय कषाय होते हैं वे कर्मके उदयसे होते हैं । यह मेरा काम नही है । मेरा काम तो ज्ञानस्वरूप । मात्र होनेका है, जाननका है । जिनमे मेरा अधिकार नही उन्हे मैं अगीकार नही करता । ये रागादिक होते हैं होने दो, इन्हे होकर मिटने दो । इनसे मेरा कोई संबध नही । उन बाहरी विषयोंका, वस्तुवोका, ज्ञान तो हो जाना मेरा काम है पर विकल्प मेरा काम नही । जब अपनेको ज्ञानमात्रका अनुभव होगा तो ये रागादिक कर्म नष्ट हो जावेंगे । सो मैं ज्ञानमात्र अपने स्वरूपको देखूं और अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होऊ ।

जागृतिः शयन पानमत्तिर्वाग्दर्शन श्रुति. ।
ज्ञप्तिक्रियस्य किं कृत्य स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।२७।।

कहते हैं कि मेरा काम तो जानन है, मैं कितना क्या हू, अपनेको देखनेसे ही पता पड़ेगा, मैं तो जानन मात्र हू । ये विकल्पकी तरंगे उपाधिके कारण आती हैं । मेरा काम विकल्प करना नही है । जगतके जीव तो विकल्पोंके कारण उनसे मेरा क्या ताल्लुक है । मैं तो ज्ञानमात्र हू जाननमात्र रहना ही मेरा काम है । बिगड़ रहे हैं । ये रागादिक उठते हैं तो उठें । उनसे मेरा काम है, जानन ही मेरा काम है । मुझ आत्मामे न जागरण है । न सोना

है, न वचन बोलना है, न खाना है, न पीना है। मेरा काम तो यह है कि मैं जाननमात्र हू, ज्ञाताद्रष्टा हूं। कर्ता भोक्तापनकी ख्याति तो दडके लिए है। उसका चाव करना तो विपत्ति है।

जैसे कभी स्कूलमे बच्चेसे कोई काम बिगड जाय तो उस बिगाडने वाले बच्चेका पता लगानेके लिए मास्टर उस कामकी प्रशसा करता है। मास्टर यह कहता है कि वाह यह तो बडा अच्छा काम किया है, बडी बुद्धिमानीका काम किया है। इतना सुनते ही जिस बच्चेने काम बिगाड दिया है वह झट कह देगा कि मास्टर साहब मैंने यह काम किया है। मास्टर तो केवल यह जानना चाहता था कि किस लडके ने काम बिगाडा, इसलिए प्रशसा करता था पर बच्चेने समझ लिया कि मेरी तारीफ मास्टर कर रहा है, सो भ्रममे आकर बच्चा अपराधी हो जाता है।

इसी तरह ये जगत्के जीव मास्टर बने रहते हैं, प्रशंसा दूसरोकी किया करते है। जैसे वाह, यह तो बडी बुद्धिमानीका काम है, यह तो बडा ही सुन्दर काम है, यह भी बडा ही सुन्दर काम है आदि। यह पता नही है कि प्रशंसाके फलमे मेरेको विपदा ही आवेगी। बाल बच्चोको पढ़ा लिखा दिया। अरे उन बच्चोके जीवन भर दास बने रहे, उनकी सेवा की, उनको खिलाया पिलाया, उनका क्या किया ? अरे वे तो स्वय ज्ञानमात्र आत्मतत्व हैं। केवल जानन ही उनका काम है। जगतके दस बीस हजार आदमियोके बीचमे जरा अच्छा सुन लिया तो क्या इज्जत बढ़ गयी ? यदि यहां न रहते, अन्यत्र कही रहते तो यह समागम मेरे को क्या था ? अगर कही कीडे मकोडे होते, पेड वनस्पति होते या अन्य किसी पर्यायमे होते तो इस ढंगका क्या ख्याल भी आता ? अरे मनुष्य हो गये हो तो अपनेको समझो कि अपने कार्यके लिए पैदा हुये है। हम दूसरोकी दिखावटके लिए बनावटके लिए तथा सजावटके लिए नही पैदा हैं। हम कही अन्यत्र पैदा हो गए हो तो ऐसा तो नही है। यह मैं किसी भी क्षण अपने विकल्पों को छोडकर अगर काम करू तो अपने आपमे आनन्दमग्न हो सकता हू। यदि मैं विकल्परहित होकर कार्य करता हू तो ठीक है, नही तो सब दुर्दशा हो जायगी। इस जगत्मे कोई किसीका मोह करता, कोई किसीका मोह करता पर मोही प्राय सभी हैं। इसी कारण दु:खी भी सभी हैं। देखो थोडा ही ज्ञान हो; पर सही ज्ञान हो तो ठीक है। पर हो तो बहुत ज्ञान किन्तु आत्मामे विवेक न हो तो ठीक नही है। उल्टा ज्ञान हो तो विकार है। थोडा ज्ञान हो, पर सही ज्ञान हो तो सबसे न्यारा, ज्ञानमात्र अपने आपमे समझ रहती है। बहुतसे शास्त्रोका ज्ञान हो, तीन लोकको रचनाओका ज्ञान हो, बहुत ज्ञान हो पर विचार उल्टा हो, विवेक साथ न हो तो सही ज्ञान नही है।

एक बुढियाके दो लडके थे। दुर्भाग्यसे उन दोनो लडकोकी आंखोमे रोग था। एक को कुछ कम दीखता था और एकको ज्यादह दीखता था पर पीला दीखता था। दोनो बच्चो को बुढिया वैद्यके पास ले गयी। वैद्यने दोनोकी एक ही दवा की। कोई सफेद सफेद भस्मसी थी। कहा कि चांदीके गिलासमे गायके दूधमे इस पुडियाको इतनी इतनी खुराक दवा मिला कर देना। दोनो ही ठीक हो जावेंगे। बुढिया दवा लेकर गयी। दोनोको चांदीके गिलासमे गायके दूधमे भस्मको डालकर देने लगी। पहले उस लडकेको दिया जिसको पीला दिखता था। लडके ने कहा—मां, 'क्या हमी तुम्हारे दुश्मन है ? इस पीतलके गिलासमे मून लाकर जाहरडाल डालकर हमे दे रही हो। हम तो नही पीवेंगे। अब उस लडकेको दिया जिसे कम दीखता था। उसने देखा कि चादीका गिलास है, दूध है, भस्म पडी हुई है। उसने उस दवाको पी लिया। उस दवाके पी लेनेसे ही आंखोका रोग दूर हो गया। जो ज्यादह देखता था, ५० हाथ, १०० हाथ दूर तक देखता था, उसकी उल्टी दृष्टि थी इसलिए दवा नही पी और उसे भला नही हुआ।

जिसका ज्ञान ज्यादह है मगर प्रयोग व उपयोग उल्टा है तो भला नही होगा। मेरा भला तो निजी आत्माके अनुभवसे होता है। जो सही ज्ञान है, जो ज्ञान ज्यादह है पर सही नही है तो उससे भला नही हो सकेगा। जिसकी अपनी दृष्टि होती है, अपने चरित्ररूप परिणमन की दृष्टि होती है वह ही दृष्टि सही मानी जाती है। ज्ञानी पुरुष यह सोचता है कि जानन ही मेरा काम है। सोने, उठने, बोलने इत्यादिका मेरा काम नही है। ये मेरा काम सर्वत्र जानन ही जानन है। केवल जानन ही इस मुझ आत्माका काम है। मैं करूंगा क्या ? अरे इस आत्मस्वरूपको उपयोगसे खोल लो। इसको देख लो। देखोगे कि यह आत्मा तो केवल जाननका ही काम कर रहा है। जानन सबमे रहता है। केवल जानन ही मेरा काम करना रहता है। मैं सब ओरसे जानता हू। सर्वत्र ऐसी ही पद्धति जानन-स्वरूप की है।

ससुराल जाने वाली बहुत सी लडकियां हंसी खुशीसे जाती है। मगर रोना पडता है। भीतरसे तो यह होता है कि घर ठीक करना है श्रृङ्गार करना है, यह करना है, वह करना है, कुछ खुशी होती है। मगर यह जानती है कि रोना चाहिए, यही ठीक है। इसी तरह दुकानदार मुनीम ग्राहकोसे ये बात करते हैं कि तुम पर मेरा इतना दाम गया है। इस तरह मेरा भी कह रहा है परतु श्रद्धा यह है कि मेरा कुछ नही है, यह सब सेठका है। अरे मेरा यह काम नही। मेरी यह ड्यूटी नही। यह तो सेठका काम है। और भी देखो विवाह इत्यादिमें पडोसकी स्त्रियां बाजा बजानेके लिए आ जाती है। गाने गाती है, मेरे बना

सरदार, राम जैसी जोडी आदि सो तो ठीक है। अगर कही दूल्हाकी घोड़ेसे गिरकर टाग टूट जाय तो उनको कोई दर्द नही होगा और अगर माँ को पता लग जाय तो वह कितना दुःख करती है ? उसके दु.खका ठिकाना नही रहता है।

सो भैया अगर परपदार्थोंको मान लें कि मेरे है तो दु ख होगा और अगर यह समझमे आ जाय कि मेरे नही है तो दु ख न होगा। मेरा काम केवल जाननमात्र है। ऐसे जाननमात्र स्वरूप वाले आत्माका काम ही केवल जानन है। हे प्रभो, मैं जाननके काममे ही सतोष पाऊ और अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होऊ।

सकल्पेऽजनि ससारी ज्ञाने नश्यति कल्पित.।
निर्विकल्पे रतो भूत्वा स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥२८॥

अहा हा, यह सारी दुनिया, यह मेरा सारा ससार सकल्पमे ही उत्पन्न हो गया व कल्पना मिटते ही नष्ट हो गया। यह मेरा है क्या ? ससार केवल कल्पनाओ रूप ही बना हुआ है। कल्पनाओसे ही यह उत्पन्न हुआ और यहांसे मरकर अकेले ही चला जायगा। मैं इस शरीरमे हू, यह मेरा है, यह उसका है, इस सकल्पमे ही मैं ससारी बन गया हू। केवल संकल्प ही हो गए हैं। यह मेरा मकान है, यह मेरा परिवार है आदि। जब ये जुदा हो जावें तो फिर दुनिया भरको पता चल जाय। ज्ञानस्वरूप आत्मा इस देहसे निकल जाता है। यह तो सबसे न्यारा है, पर महसूस करता है कि मेरा है, यही तो संकल्प है। यह सारा ससार संकल्पोमे हो बैठा हुआ है। अरे सारे संस्कार ज्ञान होनेसे ही नष्ट हो जावेंगे।

एक बुढियाका छोटा बेटा मर गया। उसो छोटे बेटेको वह सबसे अधिक प्यार करती थी। जब छोटा पुत्र मर गया तो वह बुढिया उसे जलाने नही देती। उसको अपनी छातोसे लगाए रही। उस बुढियाको एक जगह साधु मिला। साधुसे बुढियाने बताया कि महाराज मेरा पुत्र मर गया है, जिन्दा कर दीजिए। साधु बोला कि अच्छा जिन्दा हो जायगा। मगर एक काम यह करो कि जिस घरमे कोई मरा न हो उस घरसे पाव भर सरसोके दाने ले आवो। बुढिया जल्दीसे जल्दी दूसरे घर गयी। बोली कि हमे एक पाव सरसोके दाने दे दो। घर वाले बोले, हाँ हाँ एक पाव नही ५ सेर ले लो। बुढिया ने पूछा, मगर यह तो बताओ कि इस घरमे कोई मरा तो नही है। घर वाले बोले कि माँ इस घर मे तो बहुत लोग मर गए। दादा मर गए, भाई मर गया, बहिन मर गयी आदि। बुढिया बोली, तो हमे यह सरसो नही चाहिए। अब बुढिया तीसरे घर गयी बोली, एक पाव सरसो चाहिए। घर वाले बोले हां हाँ १० सेर ले जाओ। बुढिया बोली, मगर यह तो बताओ कि

कोई इस घरमे मरा तो नही है। वे बोले, अरे यहाँ तो बहुत मर गए हैं। इसी तरहसे बुढियाने १०-१२ घर ढूँढ लिए। सभी जगह वही एक उत्तर मिला।

इतना पूछनेके बाद उसके ज्ञान जगा कि अरे सारी दुनियामे यही हाल है। इतना ज्ञान जब बुढियाके जग गया तो वह प्रसन्न हो गयी। वह बोली, कि अरे ये तो सब न्यारे न्यारे पदार्थ है, न्यारेके वियोग होनेका क्या विवाद करना ? बुढिया प्रसन्नचित्त होकर साधुके पास गयी और साधुको नमस्कार किया। साधुने पूछा, माँ ! तुम प्रसन्न दीखती हो, क्या तुम्हारा बच्चा जिन्दा हो गया ? बुढिया ने उत्तर दिया कि हाँ हमारा बच्चा जिन्दा हो गया बात क्या हुई, आपको सुनाया था पहले कि सारी बातोमे तीन प्रकार हुआ करते है— (१) शब्द, (२) अर्थ, (३) ज्ञान। जैसे पुत्र तीन है- शब्दपुत्र, अर्थपुत्र और ज्ञानपुत्र। अगर शब्दपुत्र कहो तो वह यह है जो केवल पुत्र शब्द लिखा हुआ है। अर्थपुत्र वह है जो दो हाथ पैर वाला है। घरमे बैठा हो या कही हो और जो पुत्रके बारेमे ज्ञान होता है वह ज्ञानपुत्र है तो हुआ क्या कि बुढियाका पहले ज्ञानपुत्र मरा था और अब वह जिन्दा हो गया साधुसे बुढिया बोली कि मेरा तो ज्ञानपुत्र था, ज्ञानपुत्रकी ही मृत्यु हो गयी। वह अब जिन्दा हो गया है। वह तो मेरे अपने आपमे है, वह जीवित हो गया है। सो भाई इस सारे विश्वमे मेरा कुछ नहीं है। यह बात सत्य मानो, नही तो धोखा ही धोखा है। जगतकी व्यवस्था यह है कि कोई किसीकी चीज बनकर नही रहती और न छुडाई जा सकती है। तब सोच लो कि बाहरमे मेरा कही कुछ नही है। इतना सोच लेनेसे ही क्या बिगाड हो जायगा ? जैसे बुढियाको ज्ञान आ गया कि यह मेरा ज्ञानपुत्र है वह सावधान हो गयी। सो बोली महाराज मेरा ज्ञान पुत्र जिन्दा हो गया है। मैं भी ठीक हू, मेरा ठीक करने वाला जगतमे अन्य नही है। यह ध्यान अपने आपमे रमना चाहिए कि मेरा मात्र मै ही हू। ये जगतके सारे पदार्थ हमसे छूट जावेंगे मेरा कोई इस जगतमे नही है। यह मैं सदा ज्ञानमात्र स्वतः परिपूर्ण हू। मैं जैसा हू तैसा ही हू। इस प्रकार सच्ची दृष्टिके बलसे मैं अपने आपमे अपने आपको ज्ञानमात्र अनुभवूँ और सहज सत्य आनन्दसे ओतप्रोत होऊ।

परायत्ता परार्थाः स्वायत्त ज्ञानस्य वेदनम्।
पराप्तये न धावानि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥२६॥

अपने आपको छोडकर बाकी जगतके जितने भी पदार्थ हैं वे पदार्थ क्या आपके आधीन है ? वे आपके आधीन नही हैं। वे स्वय सत् है, उनके चतुष्टयमे उनका परिणमन होता रहता है। वे तो आपके आधीन हो ही नही सकते है। यदि कुछ आपकी इच्छाके अनुकूल हो गया तो वह काकतालीय न्याय है।

जैसे कोई नारियलका पेड है, नारियल लगे हुए हैं। एक कौवा नारियलके पेड पर उडता है। उसके उडते समय ही अगर नारियल नीचे गिर पडे तो ऐसा लोग सोचते हैं कि कौवेने नारियलको गिराया। अरे वह तो अपने आपसे गिर गया है। कौवेके गिरानेसे नही गिरा है। एक दफा अगर ऐसा समय आ गया तो बार बार नही आता है। कोई कभी आपके माफिक काम बन गया, आपके मित्रजन आपके अनुकूल हो गए, आपके परिवारके लोग आपके अनुकूल हो गए, ऐसी बात तो शायद ही कभी हो जाय, नही तो सर्वथा आपके अनुकूल कुछ नही होगा। देखो भाई उस नारियलके गिर जानेमे क्या कौवेकी करतूत थी? नही, वह तो स्वयं ही गिरा था। मगर लोग कहते हैं कि कौवेके चले जानेसे गिरा। सो भाई परपदार्थ स्वयं परिणमते हैं। जितने भी परपदार्थ हैं, वे किसी दूसरेके आधीन नही हैं, बल्कि स्वय ही अपने आधीन हैं। बडो बडोके भी ऐसा नही हो पाता कि जैसे वे चाहे वैसा अन्यत्र परिणमन हो जावे।

राम और सीताका कितना बडा स्नेह था कोई प्रमाण दे सकता है? राम जानते थे कि सीता निर्दोष है। धोबीके द्वारा कही बात फैल गयी थी। जब रामने यह बात सुनी तो सीताजी को जगलमे छुडवा दिया। राम यद्यपि जानते थे कि सीता निर्दोष है फिर भी कहते हैं कि लोक धर्मकी मर्यादा रखनी चाहिए। लोग कुछ अनीति न ग्रहण करें, यह सोचकर ही उन्हे जगल भेज दिया था। तो भाई देखो सीताके आधीन राम भी नही हुए। सीताका इतना स्नेह था फिर भी सीताके मन माफिक कुछ न हुआ।

जिन लडको बच्चोसे तुम प्रेम करते हो, वे आज्ञाकारी भी हैं, फिर भी वे अपने विषयकषायोके लिए रहते हैं। वे अपने स्वार्थके लिए ही आज्ञाकारी बने हुए है। वे मेरे आधीन नही हैं। भाई कोई किसीके आधीन नही है। वे स्वय ही परिणमते रहते हैं। मेरे आधीन मेरा ज्ञानस्वरूप है। मैं अपने ज्ञानस्वरूपको जानू तो मेरी रुकावट करने वाला कोई नही है। हम ही स्वय विषयकषायोमे पडकर अपने ज्ञानमे रुकावट पैदा करते हैं। बाहरी पदार्थोंमे पडनेसे ज्ञानकी रुकावट होती है। कभी किसी चीजकी इच्छा हो जावे कि अमुक चीज खा लें, अमुक चीज खा लें। न जाने कौन विघ्न आ जाएँ कि वह चीज कही न मिले। भाई परपदार्थोंके सयोगमे नाना विघ्न होते हैं। अपने आपके ज्ञानस्वरूपमे विघ्न नही होते हैं। अपने आपके शरीरका अनुभव करें तो करें और अगर न करें तो न करें। बाह्य पदार्थों के ख्यालको भुला देवें। विश्रामसे बैठें तो अपने ज्ञानका अनुभव सुगम हो जायगा।

भैया! मेरे काममे दूसरे पदार्थ कोई बाधा नही डाल सकते हैं। हम स्वय अपने कामोमे बाधा डाल लेते हैं। जैसे बाय वाला पुरुष खुद ही खटियासे उठकर बाहरको भागता

है। इसी तरह विषयकषायोकी वेदनासे हटकर बाह्यमे भागते हैं। बाह्य के उपयोगसे ही विषयकषाय बन गए और दूसरी बात नही है। अरे तू तो अत्यन्त स्वाधीन है। तू अपने ज्ञानस्वरूपका अनुभव तो कर। लोकके व्यवहारकी सारी बातें पराधीन हैं। स्वाधीन तो केवल अपने ज्ञानस्वरूपका अनुभव है। लेकिन देखो जो स्वाधीन बात है, सरल बात है, सुगम बात है, निर्विकल्प बात है उसकी ओर तो दृष्टि ही नहीं जाती। जो पराधीन है, दुर्गम है, जिनमे विघ्न ही भरे होते हैं ऐसे बाह्य पदार्थोंके संयोगके लिए कमर कसे है ? भैया ! अपनेको ज्ञानानन्दमय स्वयं सर्ववैभव सम्पन्न समझकर बाह्यपदार्थोंको अपने उपयोगमें न लाकर अपने आपमे ही विश्राम पाकर अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होऊँ।

राज्ये क्लेशः क्षणं यत्नं भिक्षावृत्तौ तु तत्वतः।
तत्त्व हि नोभयत्रास्ति स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥३०॥

देखो राज्यमे महान् क्लेश हैं। राज्यका मतलब केवल राज्यसे न लो। राज्यका मतलब दुकानसे, व्यापारसे, आजीविका इत्यादिसे है। ये सब बाहरी बातें हैं। इनमे पड़ने से क्लेश ही क्लेश है। भाई करोडो रुपयोका धन एकत्रित कर लें तो उससे भी क्लेश ही क्लेश हैं। धन कमानेमे, रोजगार करनेमे, राज्य करनेमें, हुकूमत करनेमे देखो कितने क्लेश हैं। अनन्त क्लेश उन्हे हो जाया करते हैं। अब योगी संन्यासियोकी भिक्षावृत्तिको देखो, कोई पुरुष ज्ञान उत्पन्न करके अन्तरसे विरक्त हो जाय, अपने ध्यानमे लीन हो जाय, वह योगी सन्यासी है। उसे कभी क्षुधा लगे तो उसे क्लेश नही होते। क्योंकि जब भूख लगे तब वह बच्चोकी भाँति एषणाको निकालता है। वह किसी गाँवमे निकल जाय, यदि कोई आदरसे बुलाए, कुछ खानेको मिल जाय तो खाले, नही तो संतोष करे, यही भिक्षावृत्ति कहलाती है। भिक्षावृत्तिमे केवल क्षणमात्रका यत्न है। फिर भी तत्त्व इन दोनोमे भी नही हैं।

बड़े बड़े राजा महाराजा २४ घण्टे क्लेश ही उठाया करते हैं पर एक संन्यासी मुश्किलसे पौन घटेमें ही अपना काम कर लेता है। उसे कोई क्लेश नही होते हैं। ऐसा काम तो वे ही कर सकते हैं जिनके पास हिम्मत है। आहार मिले तो ठीक है और न मिले तो ठीक है। दोनोमे राजी होवे तो काम चलेगा नही तो नही चलेगा। भाई भिक्षावृत्तिसे तो क्लेश नही होगे पर बड़े बड़े धन वैभवके होनेपर क्लेश ही रहेगे। परन्तु परमार्थसे शाँति न तो भिक्षावृत्तिमे है और न धन वैभवसे है वरन् अपने अपने ज्ञानस्वरूपके दर्शनमे है। भाई जब ज्ञानका अनुभव हो तभी स्वाधीनता है। जब इच्छा हो तब ज्ञानका अनुभव कर लो। ये प्रत्येक पदार्थ अगर तुम्हारे संयोगमे है तो यह पराधीनता है। मैं किसी भी धन-वैभव, परिवार इत्यादिके साथ न रहूगा, क्योंकि ये सब मिट जावेंगे। आज न तो राम ही दिखते हैं, न तीर्थंकर ही दिखते हैं, और न कृष्ण ही दिखते है। जो महान् पुरुष

अभी १००-२०० वर्ष पहिले पैदा हुए थे वे भी नही दिखते हैं, ऐसी ही जगतकी स्थिति है।

भैया ! देखो जो इस समागममे रहते हैं, समागममें ही मस्त है, उन्हे यह खबर नही रहती कि इससे क्लेश होगे। इन समागमोसे अचानक वियोग ही होता है। इन समागमोसे ही बडे बडे क्लेश उत्पन्न कर लेते हैं। ये सब पदार्थ जुदा-जुदा है, उनसे मेरा कोई सम्बन्ध नही है, कुछ भी तो गुजाइश नहीं कि कोई परपदार्थ मेरा हो जावे, मैं तो ज्ञानस्वरूप हू। जितनी भी चीज है वे सब अपने धर्ममे हैं। मेरा किसी भी पदार्थसे सम्बन्ध नही है। यदि मेरा उपयोग बाह्यमे होगा तो मुझे सुख नहीं होगा। देखो भैया ! यदि इन समागमोके बारे मे यह विश्वास हो जाय कि इनका वियोग होगा तो उनके वियोगसे दु ख न होगा। जैसे कोई मित्र ऐसा हो कि जिसके प्रति यह ख्याल आ जाय कि यह तो धोखा देने वाला है। ऐसा ख्याल उसका पहिलेसे ही बन गया है। यदि वह मित्र उसे धोखा दे देवे तो उसे ज्यादा दु.ख नही होगा क्योकि पहलेसे ही मालूम था। और जिसके प्रति कोई शका नही वह अचानक ही धोखा दे देंवे तो उसे बहुत क्लेश होगा। बाहरी पदार्थोंका जो समागम है वह भिन्न है, अहित है, विनाशीक है ऐसा जानूँ तो क्लेश न होगा। वस्तुतः मैं तो केवल अपने आत्मा के अन्दर स्थित तत्त्वको जानता हूँ। सो मैं ज्ञानमात्र आत्माका अनुभव करके स्वय सुखी होऊँ।

देखो यह आत्मा ज्ञानस्वरूप है, ज्ञानसे ही इसकी रक्षा होती है। सहजस्वरूप आनद ही इसमे भरा हुआ है। इसमें कोई अधूरापन नही है। ज्ञानका नाम ही आत्मा है। आनन्दमय ही यह आत्मा है। कोई पिंडरूप चीज तो मैं नही हूँ, जो पकडकर दिखाया जा सके। भैया ! जो मेरा स्वरूप है वह जानन है। इसीके मायने आत्मा है। ज्ञानमात्र भावको छोडकर अगर हम बाह्यमे झुकें तो दुःख ही मिलेंगे। हम तो बिल्कुल ठीक है, हमारेमे कोई कमी नही है। मामला बिल्कुल तैयार है। खाना बिल्कुल तैयार है, खाओ चाहे न खाओ, यह तुम्हारे विवेककी बात है। सारा मामला तैयार है, मगर तुम इस अपने आत्मस्वरूपको नही देखते हो। अरे ये बाह्यपदार्थ जो मेरे कुछ नही है, जिनसे मेरा कोई ताल्लुक नही है, अपने स्वरूपको न देखकर उन बाह्यमे दृष्टि लगनेसे बरबादी ही बरबादी है। उन्हींकी ओर झुकना यह अपने प्रभुपर न्याय है। अगर अपने स्वरूपको देखना चाहो तो देखो और अगर न देखना चाहते हो तो न देखो, यह तुम्हारे विवेककी बात है। अधूरापन तो कुछ है नही। मामला तो पूर्ण अनादिसे है।

परस्थितेः पर स्थानं पराभावो हि स्वस्थितेः।
तत्त्व तु नोभयत्रास्ति स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥३१॥

जिस पदार्थमें यह जीव अपना उपयोग देता है वही पदार्थ इसको मिल जाता है। कभी बैठे बैठे अनुभव किया होगा कि कोई नीबू बड़ा हो एक आनेका एक वाला, उसकी छोटी-छोटी फांकें करो। ऐसा उपयोगमें सोचो और उसके स्वभावकी कल्पना करो तो नीबू की खटास गलेमे उतरती है। जिसे कहते है कि मुहमे पानी आ जाता है। तो क्या आपने नीबूके रसका स्वाद लिया, इसलिए गलेमे खटास आयी। नही, नीबूके प्रति ज्ञान किया, ध्यान किया तो उससे गलेमे खटास आयी। बाहरमे से इस आत्माको कुछ नही मिलता। स्वयमें ही कुछ मिलेगा। क्या मिलेगा ? जो सोचोगे वह मिलेगा। वह अपने ज्ञानकी चीज है। पदार्थोंमे लोग मान लेते है, परपदार्थोंके उपयोगसे कुछ नही मिलता है। केवल अपना ज्ञान परपदार्थोंके जाननेमे लगता है सो उसके लगानेसे स्वयमे ही कुछ मिलता है। मेरा आत्मामे किसी चीजका प्रवेश नही है। परपदार्थोंके उपयोगसे तो परस्थान ही प्राप्त होता है और निजके उपयोगसे परका अभाव होता है। इसने तो बाहरी पदार्थोंको सोच लिया तो खुदका उपयोग नही रहेगा। अपने आपको यदि सोचो तो परिणाम अच्छा रहेगा। अब यह विवेक कर लो कि कहां उपयोग लगाना चाहिए ? अगर इज्जत चाहोगे तो मोहमे फंसे रह गे। मोहमे फंसनेसे पराधीन रहना पडेगा। परमे लगनेसे देख लो लाभ है क्या ?

भय्या ! परपदार्थोंसे कोई लाभ नही है। अरे समागममे फसा रहा तो पराधीन होना पडेगा। सब अपनी-अपनी भावनाओंसे परको आधीनता का विकल्प करके रहते। ये सब एक ही जगह पर न जानें किस किस गतिसे आकर एक ही जगह पर इकट्ठा हो गए हैं। किसी दिन ये सब यहांसे चले जावेंगे। इस भवमे जिससे जन्म लिया है, क्या यहां कोई रह जावेगा ? नही, इस जगत्के प्राणी अपने अपने सत्से हैं, अपने आपमे ही परिणमते रहते हैं। इनसे किसी भी पदार्थका रंचमात्र भी सम्बन्ध नही है। वे सब इस जगत्मे स्वयं ही आये हैं और स्वयं ही विमुक्त हो जावेंगे। देखो यह पर्याय ही मिटेगी। सत् तो शाश्वत् ही रहता, मगर उसे जानता बिरला ही कोई है। इस जगतमे कोई किस गतिसे आया है, कोई किस गतिसे आया है। कितना समय इन प्राणियोका यहां गुजर गया। इस संसारमे प्राणियोंने अपने विवेकको भुला दिया है। इस ससारके समागमोको अपना लिया है। अपने को समागममे ले जानेमे कोई विवेक नही है। इन सब समागमोंसे हटकर मैं अपने उपयोग को अपने ज्ञानमात्र, ज्ञायक स्वरूपमे लगाऊँ, यही विवेक है। मैं निज जाननमे ही रमूं, यही प्रभुका दर्शन है। अपने सत्यका आग्रह हो तो सत्यका दर्शन होगा ही।

एक कथानक है कि एक पडित जो थे। उनके पास कुछ गायें भैंसे थी। पंडित जी ने उन गायो भैंसोको चरानेके लिए एक ग्वाला रख लिया। ग्वाला भगवान्का भक्त था।

एक दिन उसने एकादशीका व्रत किया। भगवान्‌का भोग लगानेके लिए अपने मालिकसे कुछ आटा माँगा। पंडित जी ने उसे आधा सेर आटा दे दिया। ग्वाला सोचता है कि इतनेमे हम खावेंगे और भगवान् खावेंगे तो दोनो ही भूखे रह जावेंगे। उसने सोचा कि क्या करें पंडित जी ने इतना ही दिया। आधा मैं खा लूंगा और आधा भगवानको खिला दूंगा। अब उसने उस आधा सेर आटेकी चार बाटियाँ बना ली। अब भगवानको वह देखता है कि आते ही नही। देखो भाई उसने सोच लिया था कि पहले भगवान्‌को खिलाऊँगा, बादमे मैं खाऊँगा। बोला—भगवान जल्दी आवो हमे तो भूख लगी है। सो भैया! कोई व्यन्तर देव कौतूहल करते फिरा ही करते हैं सो कोई व्यन्तर भेषमे आ गया। ग्वाला बोला—भगवन्, यह लो खाना इतना ही है। आधा ही तुम्हे मैं खाना दूंगा! अपना आधा हिस्सा मैं ले लूंगा। भगवानवेषी बोले कि अब हम तो दो जने आवेंगे। अब दूसरी एकादशीको भी पंडितजी ने वही आधा सेर आटा दिया। उसने तीन बाटियाँ बनायी। वे दोनो एकादशीके दिन आ गए। ग्वालेने कहा कि आज तो इतना ही है सो जो हिस्सा बैठे सो खा लो। मैं अपना तिहाई हिस्सा ले लूंगा और दो तिहाई तुम दोनोके लिए रहेगा। दोनोंने भोजन किया। जाते समय भगवानवेषी कह गए कि अबकी बार बीस जने आवेंगे। ग्वाला बोला—कितने ही आवो, जो हिस्सा बैठे सो ही मिलेगा। तीसरी एकादशीको ग्वाला पंडितजी से बोला कि अब २० जने आवेंगे सो काफी भोजन रख दो। पंडित जी ने कहा कि हम तो रोज भोग लगाते कोई नहीं आता, देखें इसके पास कैसे आते हैं। पंडित जी ने २५ सेर मिठाई दे दी। ग्वाला जंगलमे आग्रह करके बैठ गया। लगभग २० सेरका सामान ग्वालेने तैयार कराया था सो बोला—भगवान जल्दी आवो, खावो खूब चकाचक काम है। वहाँ तो २० आदमी आ गये। ग्वालेने कह दिया कि आज तो भर पेट खावो। पंडितजी छुपकर देखते रहे।

देखो भाई ग्वाला सत्यका आग्रह लेकर बैठा था कि पहले मैं भगवानको खिला दूंगा, फिर बादमे मैं खाऊँगा। इसलिए भगवान न सही तो किसीने भी प्रत्यक्ष तो दर्शन दिए।

मैं अगर सत्य का आग्रह करके रहू कि मेरा ज्ञानस्वरूप एक सत् पदार्थ है, मैं ज्ञानमय हूँ, मेरा प्रभु मैं ही हूं, मेरा अन्यसे कोई वास्ता नही है। मैं यथार्थ रूप हू, नाना रूपोमे नही हू। मेरा काम तो केवल जाननका है, मैं अपने ज्ञानतत्त्वमे रहता हू। ऐसा यदि सत्यका आग्रह होगा तो यहाँ बैठे ही अपने प्रभुका दर्शन होगा। अन्यथा अपने प्रभुके दर्शन होना असम्भव है। मैं अपनेको यह विश्वास न करूँ कि मैं बाल बच्चो वाला हू, परिवार वाला हूँ, नष्ट हो जाने वाला हूं, पराधीन हू। ऐसे विचार यदि होगे तो ये तो खोटे विचार हैं, खोटे परिणाम हैं, मोह है, मिथ्यात्व है। इस प्रकारका असत्यका आग्रह करनेसे अपने निज प्रभुका

दर्शन नही हो पायगा। आजीवन क्लेश ही नजर आवेंगे। इस प्रकारके यदि विचार रहे तो संसारमे रुलना ही पडेगा।

भाई! अपना शुद्ध आग्रह करो तो भला होगा नही तो भला नही होगा। परपदार्थों का आग्रह करनेपर अशांति प्राप्त होगी, अपने आत्मस्वरूपका अनुभव नही हो पायगा। अपने उपयोगमे लगनेसे ही भलाई है। मैं अपने आपके स्वरूपमे ही अपना उपयोग ठहरानेकी कोशिश करूँ तो मेरा कल्याण होगा अन्यथा नही होगा। जैसे कहते है ना कि वहाँ न जाओ, वहाँपर क्लेश ही क्लेश है। ऐसे ही परपदार्थोंमे न जाओ वहाँ विपदा ही विपदा है। तो मैं आत्मा अपने आपके सत्यके आग्रहको ठहरानेकी कोशिश करूँ और अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होऊँ।

मैं सकल्प विकल्पोको दूर करूँ तो मेरा कल्याण होगा अन्यथा नही। जैसे कहते हैं ना कि कौवेके कोसनेसे ढोर नही मरते। जैसे कौवा मांस खाना चाहता है तो कौवेके कोसने से क्या गाय मर जायगी? इसी प्रकार मेरे सोचनेसे क्या परका वैसा परिणमन होगा? नही। सो मैं अपनेको अपने उपयोगमे लगानेकी कोशिश करूँ तो शांति प्राप्त हो सकती है। इस आत्मामे किसी बाह्य चीजका प्रवेश नही। मेरा आत्मस्वरूप ही मेरी दृष्टिमे रहे जिससे मैं अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होऊँ।

जनौघे वाङ्मनः कर्म एकाग्र्यावसरो बने।
तत्त्वं तु नोभयत्रास्ति स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥३२॥

मैं कहाँ रहूं तो सुख हो सकता है। इस प्रश्नके कितने ही उत्तर हो सकते हैं। बहुतसे मनुष्योके बीचमे रहे, मित्रमंडलीके मध्यमे रहे, सब लोगोके अनुकूल अपने आपको बनाए रहे, उन सबसे मिल जुल कर रहे, सबकी वाणी सुनें तो सुख मिलेगा, यह भी एक उत्तर हो सकता है। परन्तु यह उत्तर गलत है, सो स्पष्ट ही है। मनुष्योके मध्यमे रहने पर मन, वचन कायकी चेष्टा तो करेगा ही। जब बहुतसे मनुष्योके बीचमे है तो मनुष्योसे वचनोसे बोलेगा ही, मनसे सोचेगा ही, शरीरसे चेष्टाएं करेगा ही, अन्यथा मनुष्योंके बीचमे रहनेकी वृत्ति बने ही क्यो? फिर कहाँ रहा जाय तो सुख हो सकता है। तब तो जंगलमे ही रहा जाय, जहाँ पर कोई नही है, तब मन, वचन, कायकी चेष्टाएं न आवेंगी। ध्यान को एकाग्रचित्तमे रखनेका अपनेको अवसर मिलेगा। उस बनमे भी रहकर क्या लाभ उठा सकेगा कोई? जिसका उपयोग अपने स्वरूपमे नही लग सकता। वह बाहरमे बहुतसे विकल्प किया करेगा। यहाँ अमुक अमुक सुविधाएं नही है। इसी तरहके कितने ही विकल्प बनाए जा सकते हैं। ये बनके बीचमे बैठे ही मित्रोका ख्याल कर, घरका ख्याल कर दुःखी

रह सकते हैं।

जैसे एक कथानक आता है कि पुष्पडाल मुनि पूर्वमित्र श्री वज्रषेण मुनिको आहार कराकर पहुचाने गए, बन तक पहुंच गए। वहां मित्र जैसी वृत्ति बनाकर आत्मकल्याणका भाव हो गया। वे मुनि हो गए। साधु होते हुए भी पुष्पडालके यह चिन्ता रही कि मेरी स्त्री (जो कानी थी) अब वह क्या कर रही होगी ? बनके अन्दर रहकर भी विकल्प बनाया तो बनमे रहना किस कामका है ? तब फिर कहां रहा जाय ? मनुष्योके समुदायमे रहते हैं तो वहाँ भी दुःख हैं और अगर जगलमे रहते हैं तो वहा भी दुःख हैं। तब फिर कहाँ रहा जाय तो मुख हो सकेगा। निज तत्त्वमे। अपने आनन्दकी बात दोनो जगह नही मिलती। तब फिर आनन्द कहाँ मिले। आनन्द तो अपने आपमें मिलता है, अन्यत्र नहीं मिलता है। निर्जन स्थानमे रहना एक सहायक वातावरण है। निर्जन स्थानमे आत्मतत्व मिलता ही हो ऐसी बात नही है।

आत्मतत्व तो अपने ज्ञानस्वरूपमे मिलता है। तब मैं कहाँ रहू तो सुख हो सकता है। भाई ! अपने ज्ञानस्वरूपको ही उपयोगमे लाऊं तो सुख हो सकता है। वह मेरा स्वरूप क्या है ? वह स्वरूप क्या वह है जो कि मैं मिट जाऊं ? कोई यह नही चाहता है कि मैं मिट जाऊं जो मिट जाने वाला है वह मै नही हू। मैं कही ले जाया जाऊ ऐसा किसीसे बंधा हुआ नही हू। मेरा मिटनेका स्वभाव नहीं है। मैं वह हू कि कभी नष्ट नही हो सकता मैं कभी नष्ट नही हो सकता वह मैं क्या हूं ? विचार कीजिए—क्या ये पर्याय जो अनेक द्रव्य कहलाते हैं वह मै हू। पशु, पक्षी, जीव जन्तु, कीड़े मकोडे, पेड पौधे इत्यादि क्या मैं हूं ? अरे ये भी मिट जाने वाले हैं। मैं मिट जाने वाला नही हू। तो अन्तरमे जो सूक्ष्म स्कन्ध भरे हुए हैं, कार्माणशरीर, विस्रसोपचय, मन, वचन, काय इत्यादि क्या मैं वह हू ? वह पर है, भिन्न है, मै भिन्न हू, स्वय हू। तब क्या मान, माया, मोह, लोभ इत्यादि मैं हू ? अरे ये सब मै नही हू। ये सब तो नष्ट हो जाने वाली चीजें हैं। चीजोका जो स्वरूप है वह चीजोके संकटके लिए नही होता। विषयकषाय इत्यादि जो विकार है उन रूप क्या मैं हू ? नही, उन रूप भी मै नही हू, ये विषयकषाय इत्यादि तो मेरे दुःखके लिए ही हो रहे हैं। यह परिणाम मेरा नही है क्योकि ये सब मिट जाने वाले हैं। दूसरे मेरे संकटके लिए हो ऐसी बात नही है। मेरे लिए मै ही सब कुछ हू। फिर जो भिन्न चीजोसे ज्ञान हुआ ? फुटकर ज्ञान हुआ तो यह जाननस्वरूप है क्या ? ये भिन्न भिन्न चीजें तो मिट जाने वाली होती हैं। यह चौकी है, यह अमुक चीज हैं।

भैया ! जो मिट जाने वाला है वह मै नही हू। जो बाह्यकी जानकारियाँ है वह

भी मैं नही हू। तब फिर मै क्या हू ? जो निजस्वरूप भगवान्का ज्ञानस्वरूप है वह मैं हू। पूर्ण विकासरूप केवलज्ञान पर्याय भी मै नही हू। अन्यकी तो बात ही क्या कहे ? यद्यपि यह पूर्णविकासमय तत्त्व मेरे स्वरूपमे विकासमय है तथापि सूक्ष्मदृष्टिसे देखो वह विनाशीक है। प्रतिक्षण सदृश परिणमन होता रहता है।

जैसे एक दीपक ८ बजे जलता है, ९ बजे तक दीपक जला। देखने वाले लोग कहते हैं कि दीपकने वही काम किया जो ८ बजे किया। सवा आठ बज गए, साढे आठ बज गए, पौने नौ बज गए, नौ बज गए, वही काम दीपक कर रहा है। अरे वह एक समान परिणमन है पर प्रकाशमय परिणमन तो न्यारा न्यारा है। प्रत्येक तेलकी बूंदोसे अलग अलग परिणमन होता है। मगर लगातार बूंदोका परिणमन चल रहा है। परिणमन प्रत्येक बूंदका न्यारा न्यारा है। और काम सब बूंदोका प्रकाश देना होता है। प्रकाश समान हो रहा है और नया नया हो रहा है। प्रत्येक बूंदका खर्चा हो रहा है और काम हो रहा है।

इसी तरह ज्ञानका काम जानन है। नया नया परिणमन है। अब तो मै चेतनस्वरूप वाला हू। मै वह तत्त्व द्रव्य हू जिसका परिणमन लगातार चलता रहता है। जानन चित् स्वभावमात्र मैं आत्मतत्त्व हूं—ऐसा विचार यदि मैं बना लूं तो सुखी हो सकता हूँ। और अगर अपने स्वरूपसे बाहर दृष्टि रहे तो जगह जगह विपत्तियां हैं। जगह जगह क्लेश है सो अपने आपके स्वरूपमे ही मेरा सर्वस्व नजर आए, अपने आपके प्रभु पर ही विश्वास हो तो मुझे आनन्द है। बाह्यपदार्थोंमे विकल्प कर लेना यह ओछी बात है। जिन पदार्थोंसे लेना देना नहीं, जो अपना अस्तित्व जुदा रखते हैं उनसे दृष्टि लगाकर यह प्राणी एक जगह बैठे बैठे ही व्यर्थकी कल्पनाएं कर लिया करता है। अरे बाहरके पदार्थ तो असार होते है। उनमें कोई सार नही होते हैं। उनमे पड़नेसे कोई लाभ नही है। मैं इन बाह्यपदार्थोंसे परमाणुमात्र भी सम्बन्ध नही रखता हूँ। भाई ! यह है सम्यक्त्वकी बात। यदि सम्यक्त्व हो गया, सम्यग्दर्शन हो गया तो अपना भला होगा। भला करने वाले पुत्र मित्र परिवार आदि कोई नही होगे। इनसे सम्बन्ध बना लेने से तो कलेश ही रहेगे। वे हमारे तडफानेका कारण ही बने रहेगे। ये मेरी शान्तिके कारण नही हो सकते है। आत्मशांतिका कारण तो अपने आपके स्वरूपका परमात्मतत्व है। ऐसी दृष्टि अगर बन जाय तो सम्यग्दर्शन है। ऐसा सम्यग्दर्शन है तो मनुष्यका जीवन सफल रहेगा, अन्यथा जीवन सफल न हो सकेगा।

इस प्राणीका धर्मके कारण ही महत्व है। यदि धर्मशील न हो तो मनुष्योसे पशु पक्षी ही श्रेष्ठ हैं। धर्मशील होनेके कारण ही मानवकी प्रशंसा है। मनुष्यकी श्रेष्ठता तो केवल धर्मके ही कारण है। मनुष्यकी चाम किसी काममे आती है ? बतलाओ। मनुष्यका कोई

भी अग क्या किसी काममे आयगा ? मनुष्यका शरीर भी किसी काममे नही आयगा। इन मनुष्योको मन, वचन, काय आदि मिल गये है, कुछ साहित्यिक ढग आ गये हैं, कुछ बोलने-चालनेका ज्ञान आ गया है, इसमे छल करनेकी निपुणता हो गयी है। जो कोई ज्ञानकी बात नही जानते हैं वे विकास नही कर पाते हैं। इस मनुष्यका तो पता ही नही कि वह कैसा है ? मरखना बैल तो मालूम हो जाता है, इसलिए १०-२० हाथ दूरसे निकल जाते हैं, पर इस मनुष्यका पता ही नही कि यह कब क्या कर दे ? मनुष्यकी श्रेष्ठता केवल धर्मके कारण है। धर्म कही बाहर नही होता है। धर्मसे बाहर रहनेपर दु ख हो दुःख हैं, बाहरकी जितनी कल्पनाएँ होती हैं वे सब धर्मके पोषणके लिए हैं। भगवान्‌की पूजा अथवा शास्त्रोका पढना, उपदेश सुनना, सत्सगको जाना, धर्मके काम करना तथा जीवोके प्रति दयाका भाव होना ये सब आत्मविकासके बाधकोको दूर करनेके लिए हैं। धर्म है वीतराग परिणाम। सारी विपदायें इस धर्मसे ही दूर हो जाती है। ऐसी योग्यता रहे, ऐसे धर्ममे रहे तो यही धर्म है, हाथ जोडना धर्म नही। पर हाथ जोडनेके लायक रहेगा तो धर्म हो सकता है। अपने धर्मकी ओर झुकाव हो तो सुख हो सकता है।

ज्ञानदृष्टो क्व मोक्षाध्वा, क्वार्थः कामः क्व धर्मकः।
सहजानन्ददृष्टिः सन् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥३३॥

ऐसी ज्ञानदृष्टि यदि होगी कि मैं मात्र ज्ञानस्वरूप हू, इसमे न पिंड हैं, न कोई पकडनेकी चीज है, यह न चखनेकी चीज है, न सूघनेकी चीज है, यह तो एक जाननमात्र है, जानन ही इसका स्वरूप है, ऐसा मैं एक सत पदार्थ हू, ऐसे जाननकी जिसमें शक्ति आ गयी उसको मोक्षका मार्ग प्राप्त हो सकता है। मोक्षके मार्गको खोजनेमे कष्ट कहाँ है ? वह तो मोक्षमार्गमे स्थित है और आनन्दमय बर्तता है। ऐसा न सोचो कि मोक्षमार्ग कहाँ है ? कहाँ चलू ? ज्ञानदृष्टि कीजिए, इससे ही आनंदका अनुभव है। ज्ञानके उदयके साथ आनन्दका अनुभव अविनाभावी है।

एक वेदान्त कथा टीकामे आती है कि सास बहू थी। बहूके गर्भ था बच्चा होनेको था। अब बहू घबडा गयी कि बच्चा होनेमे तो बडी तकलीफका काम है। किसी किसीकी तो जान भी चली जाती है, सो बहू बोली—माँ जब बच्चा हो तब जगा देना। सास बोली कि बेटी घबडाओ नही, जब बच्चा होगा तो वह जगाता हुआ ही होगा। किसी दूसरेको जगानेकी जरूरत नही है। सो जब सत्य ज्ञान उत्पन्न होता है तो शुद्ध आनन्दको जगाते हुए ही पैदा होता है। ज्ञान मुझे सही हो जाय और फिर आनन्दकी खोजमे रहे ऐसा होता ही नही है। यदि ज्ञान कर लें और सुख न मिले तो ऐसा होनेकी शंका ही नही है। सही ज्ञान

है तो आनंद अवश्य है। ज्ञान वो वही है जिसमे मोह न हो। जिस ज्ञानमे मोह हो वह ज्ञान नही है। चाहे सत्य ज्ञान ले लो, चाहे मोहके थपेडे सह लो।

मैं अमुकचंद हूं, मेरा काम ठीक चलता रहे, मोहका काम भी मेरा चलता रहे, घरका काम भी चलता रहे और मोक्षका मार्ग भी मिल जाय सो दोनो काम नही हो सकते। इन मोहके थपेडोमे सार नही। मोहदृष्टि हटते ही सर्वप्रकाश हो जाता है। मोह दूर होनेपर ही राग दूर हो सकते हैं। मोहका काम अलग है और रागका काम अलग है। मोहका काम यह है कि इससे अपनेमे और दूसरेमें भेद नही नजर आता है। यह तो हुआ मोहका काम। रागका काम यह है कि पदार्थ सुहावना लगता है। ये जीव जितने हैं सब भिन्न है। फिर भी परिस्थिति ऐसी होती है कि राग करना पडता है। इस रागका काम बेवकूफीसे होता है। मोहको दूर करनेपर राग कब तक रहेगे? जैसे वृक्षकी जड काट देने पर वृक्ष कब तक हरा रहेगा? वृक्ष हरा नही रह सकता है। रागसे मोहसे पूरा नही पड़ेगा इनसे सुख नही हो सकता है। अंतमे इन्हे छोड़ना ही पड़ेगा। अगर शुद्ध आनन्द मिलेगा तो राग मोह आदिको छोडकर ही मिलेगा।

भैया! जब घरमे तुम्हारा भाव रहता है तो धन वैभव, ईंटें पत्थर, दो चार लोगो मे ही तुम फसे रहते हो, उन्हे तुम अपना समझते हो। अरे कोई ऐसी व्यवस्था है जिससे कहा जाय कि यह आपका घर है, यह आपकी वस्तु है। आप कहते हैं कि मेरा घर है, कोई कानूनी गुञ्जाइश ऐसी निकले कि यह मेरा ही घर है तो बताओ। हम आत्माके कानून की बात कर रहे है, नगरमहापालिका की बात नही कर रहे है। अब कौन सी ऐसी उक्ति है कि आप कह सकें कि यह मेरी पूजी है, यह मेरा घर है। अरे इस ज्ञानस्वरूप अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावके चतुष्टयमे रहने वालेका इस ज्ञानस्वरूपसे बाहर कुछ वास्ता नही है, कुछ ताल्लुक नही है। मोहकी नीदमे ही लोग कहते है कि मेरा घर है। अरे मोह हट गया तो जीवन सफल है अन्यथा दुर्गति ही दुर्गति है। फुटबाल की तरह एक लात सह-कर दूसरी जगह भग गया, दूसरी जगहपर लात सहने पर फिर दूसरी जगह चला गया। फुटबाल है किस लिये? वह लातें सहनेके लिए है। इसी तरह हम और आप संसारी प्राणी फुटबाल बने रहते हैं। जिसके पास शरणके लिए पहुंच गए वहाँ भी शरण नही है। वहाँ पर विपदाएं ही विपदाए हैं। फिर दूसरेके पास शरणके लिए पहुच गए, वहाँ भी शरण न मिली। लातें ही फुटबालकी तरह सहता हुआ यह प्राणी नजर आता है। कही किसीके द्वारा कष्ट हुआ, कही किसीके द्वारा कष्ट हुआ, शान्ति नही मिलती है। शान्ति तो अपनी ही निजदृष्टिमे मिलेगी अन्यत्र कही शान्ति नही मिलेगी। परमार्थदृष्टि होने पर मोक्षमार्ग

प्राप्त होगा । ज्ञानदृष्टि तो सहज आनन्दको लिए हुए है । वहाँ पर न तो विकल्प है और न क्लेश है । ऐसे सहजआनन्दको प्राप्त कर मैं अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होऊं ।

किं कृत्यं क्व रमै चित्तमस्थिरं चाहितं जगत् ।
ज्ञानमात्रे रतो भूत्वा स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥३४॥

मेरा यहाँ करने योग्य क्या काम है ? मैं अपना चित्त कहाँ लगाऊं ? इन दो बातो की खोजमे निकलो । मेरा यहाँ काम क्या है ? जिसके करनेसे सदाके लिए संतुष्ट हो जाऊं । फिर कोई बाधा ही न रहे । ऐसा करने योग्य काम क्या है, बतलाइए ।

यह मकान चार पाँच माहमे बन जायगा तो क्या मकान बन जानेसे आपकी समस्त बाधाएं हट जावेंगी ? मकान बन जानेसे क्या आपकी इच्छाओकी पूर्ति हो गयी ? क्या मकान बन जानेके बाद बाधाएं न रहेगी ? कौनसा ऐसा काम है जो करलें और सदाके लिए झंझटोसे मुक्त हो जाए । इन पचेन्द्रियोके विषयोमे ऐसी कोई चीज है जिसके भोगसे सदाके लिए दुःख मिट जाएं ? नही । तो फिर क्यो आशा की जाती है कि अमुक बात मिल जाय, कुछ मिल जाय तो क्या कुछ ऐसा है कि जिसके मिलनेसे, करनेसे झंझट न रहे । ऐसा जगत्के परपदार्थोंमे कुछ भी नही है कि जिसके कुछ हो जानेसे सारे झंझट खतम हो जाएं ।

भैया ! सारभूत बात एक निज है । उस एकको दृष्टि हो जाय तो मौज हो जाय । बचपनमे बच्चेको कितनी चाह है, परीक्षा हो जाये, पास हो जाएं डिग्री मिल जाय अफसर हो जाएं, सब काम हो जावें, फिर यह करना है, वह करना है आदि । कौनसा काम ऐसा दुनियामे है जिसको एक बार कर लेनेसे सारे झंझट न रहे, कौनसे ऐसे पदार्थ हैं जिनको अपना चित्त दे दें, अपने स्वभावको सौंप दें और फिर सारे झंझट समाप्त हो जावें, कोई भी पदार्थ ऐसे नही हैं । यह सारा जगत् अस्थिर है, अहितरूप है, कल्याणरूप नही है । इन बाह्यपदार्थोंमे उपयोग होनेसे शुद्ध जाननका काम नही होता है । अशुद्ध ज्ञान हटे और शुद्धज्ञान हो जाये तो जाननका काम कभी खतम नही होगा । शुद्ध जाननका तो काम ऐसा है फिर और कुछ नही करना पडता । ज्ञानदृष्टि रहनेपर झंझट नही रहेंगे । राग द्वेष मे झंझट ही झंझट हैं ।

श्री कुन्दकुन्द भगवानने कहा है कि 'जो जीव राग करेगा वह बन्धेगा और जो राग न करेगा वह कर्मसे छूट जायगा ।' अतः किसी कर्ममे राग न करो । जिसमें राग नही उसमे क्लेश नही व जिसमे राग हैं उसमे क्लेश हैं । रागके फंदमे कष्ट जरूर हैं । क्योकि जिस कामको वह रागसे करेगा उस काममे वह घुल जायगा । राग यदि नही है तो कुछ भी करते रहे क्लेश नही हैं । वे तो उस ही प्रत्येक वस्तुकी परिणति है । मेरे अनुकूल बाह्यमे काम

नही होता है, तो काममें मैं बाधा मान लेता हू । उसमें बाधा मानकर मैं दुःखी होता हूं । दुःख न तो मेरे स्वरूपमे हैं और न मेरे ज्ञानका काम है । केवल सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र करने लायक है, बाकी सब दुःख हैं । सो सब पदार्थोंसे हटकर मैं अपने में अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होता हू ।

कर्तृत्वं न स्वभावो मे क्रिया एता उपाधितः ।
वातवच्छुष्कपर्णस्य स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥३५॥

पदार्थ तो सब अपनी-अपनी सत्ता लिए हुए अलग-अलग है । इसी कारण कोई पदार्थ किसी दूसरे पदार्थमे परिणति नही करता । जैसे मान लिया कि दोनों हाथोकी अगुलियोने किसी सीकको तोड़ दिया तो लोग कहते हैं कि अंगुलियोने सीकको तोड दिया । पर ऐसा नही है । सीक स्वय इस प्रकारकी चेष्टा करती हुई अगुलियोका निमित्त पाकर टूट गयी है । अंगुलियोने तो मात्र चेष्टाकी अपनी । बीचमे सीक थी सो उस संयोगका निमित्त पाकर सीकने अपनी परिणति कर लिया । इसी तरह प्रत्येक जीवमात्र अपने जाननकी चेष्टाएं करेगा, दूसरोकी चेष्टाए जानन कभी नही करता है । ऐसा सत्य ज्ञान हो तो सम्यक्त्व है । यहांके परपदार्थोंसे क्या कोई वास्ता दीखता है । सम्यक्त्वमे ही आनन्द है । कर्तापनसे मेरा स्वभाव नही है । पर यह जीव मानता है कि मैंने किया । जो ऐसा मिथ्या मानता है वह भी परको नही करता है । मिथ्यादृष्टिका कर्तृत्व परपदार्थोंके करनेकी मान्यता की दृष्टिसे है । जिसकी जो परिणति होती है उसकी परिणति उसमे ही रहती है । इस जीव मे जो कुछ भी कार्य होते है वे सब अपने आप होते है । कोई किसीको कुछ करता नही है ।

जैसे कोई १० हाथकी दूरी पर है । कोई किसीको अंगुली दिखाकर चिढ़ाए तो वह अंगुली देखकर अपने आप ही यह कल्पनाएं बना लेता है कि यह तो मुझे चिढ़ा रहा है । यह देखकर वह दुःखो हो जाता है । चिढाने वाला तो अपने आप ही अपनी अंगुलियां चलाता है पर चिढने वाला अपने आप हो कल्पनाएं बनाकर चिढता है ।

तीन चोर थे । चोरी करने गए । एक नया चोर रास्तेमे मिला । वह चोरी करना नही जानता था । पर वे सब चोरी करने चले । अब चार चोर हो गए । चारो चोर एक गांवमे जाकर एक बूढे आदमीके घरमे घुसे । कुछ देर बाद घरके अन्दर उस बूढ़े आदमी ने खांस दिया । तीन चोर तो भाग गये । एक जो नया चोर था वह भाग न सका । घरमे ऊपर एक टांडीमे जाकर बैठ गया । अब गांवके बहुतसे आदमी इकट्ठे हो गए । कोई पूछता था क्या चला गया, कोई पूछता कैसे क्या हुआ ? दसो प्रकारके प्रश्न पूछे गए । उस घरके बूढे आदमी ने झुंझला कर कहा कि हम क्या जानें ऊपर वाला जानें । ऊपर वालेका मत-

लब यहाँ पर भगवानमे था। पर चोर ने समझा कि मेरे लिए कह रहा है। बोला कि अरे मैं ही क्या जानू, वे तीन क्यो न जानें ? अब तो वह चोर पकडा गया। मारा पीटा गया, सजा दी गयी।

भाई ! कोई हम आपको दुःखी नहीं करता। केवल कल्पनाएं बनाकर ही हम दुःखी हो जाते है। दूसरे जीव जो कुछ करते है वे अपने आपका करते है। उनका किसी दूसरेसे कुछ सम्बन्ध नही है। वे स्वय ही कल्पनाएं बनाकर फस जाते हैं। कोई भी पर-पदार्थ किसीको दुःखी नही कर सकता है। कही आग नीचे जल रही है। ऊपर बटलोईमे पानी रक्खा हुआ है। ऐसी स्थितिमे पानी गर्म हो जाता है तो पानीको आग गर्म नही करती पानी स्वय आगके निमित्तसे गर्म हो जाता है। पर ऐसे सयोगको देखकर लोग कहते है कि आगने पानीको गरम किया। पानी स्वयं आगके निमित्तको पाकर अपने ठडे पर्यायको छोड कर गर्म पर्यायमे आ गया। इसीको कहते है कि पानी गर्म हो गया तो आगने गर्म किया। पानीमे गरम होने की योग्यता थी। आगका निमित्त पाकर पानी गर्म हो गया।

यदि हाथकी अगुलियोकी छाया कही पर पडे तो क्या वह अगुलियोकी छाया है ? नही। वह तो अगुलियोकी छाया नही है। वह तो छाया पृथ्वीकी है। अगुलियोका निमित्त पाकर वह छाया हो गयी है। यह छाया अगुलियोकी छाया नही है। उस छायापर अगर झाड़ू मारी जाय तो क्या कुछ असर अंगुलीपर पडेगा ? उस अगुली पर असर कुछ न पड़ेगा जिसकी छाया है उस पर ही असर होगा। पृथ्वीकी छाया है तो पृथ्वीपर असर होगा। अगर किसीसे पूछें कि यह छाया किसकी है तो कहेगे कि हाथकी है। पर है क्या हाथकी छाया ? नही, वह तो पृथ्वीकी छाया है। इसी तरह यदि किसी पेडकी छायाको देखते है तो लोग कहते हैं कि यह पेडकी छाया है। अरे यह छायारूप परिणति वृक्षकी नही है, वह छाया तो पृथ्वी की है। केवल पेडको निमित्त पाकर यह छाया हो गयी है।

और और भी देख लो। दीपकके प्रकाशका निमित्त पाकर कमरेमे पडी हुई वस्तुएं प्रकाशित हो जाती है। तो क्या वह पडा हुआ प्रकाश दीपकका है ? यह बात बहुत मर्मकी कह रहा हू। यहां प्रश्न हो सकता है कि दीपक निमित्त है, तभी तो ये पदार्थ चमकते हैं। ठीक है पर यह प्रकाश उन वस्तुवोका है जो प्रकाशित हो रही है अन्यथा यह बताओ कि दर्पण अधिक क्यो चमकता है ? अन्य घटपटादिक क्यो कम चमकते हैं ? इनमे योग्यता के अनुकूल प्रकाशमय बननेकी सामर्थ्य है। दीपकका प्रकाश निमित्त है और ये सब वस्तुवें निमित्त पाकर प्रकाशित हो गयी। देखो दीपक अपने आपमे प्रकाशसे जगमग है, जलता है, पर ये पदार्थ उसके प्रकाशकी सम्मुखता पाकर याने दीपका निमित्त पाकर प्रकाशित हो

जाते है ।

अब और इसके आगे चलो जिसमे बिल्कुल हैरानी हो जायगी । यह सूर्य है, प्रकाशमान चीज है । देखो दिनमे ये सारी वस्तुयें प्रकाशित हो जाती हैं । लोग कहते है कि इन वस्तुवोको सूर्यने प्रकाशित किया । अरे सूर्य तो अपने प्रकाशमे है । उस सूर्यका निमित्त पाकर प्रत्येक पदार्थ अपनी-अपनी योग्यताके अनुसार प्रकाशित हो गए । इसकी बढिया एक उक्ति यह है कि अगर सूर्य इन पदार्थोंको प्रकाशित करे तो सारी वस्तुवें एकसी प्रकाशित होवें, पर ऐसा नही है । कोई वस्तु किसी प्रकार प्रकाशित है तो कोई किसी प्रकार प्रकाशित है । अगर सूर्यके प्रकाशसे प्रकाशित होते सो एक ढंगसे प्रकाशित होते ? अब देखिये दर्पणको । वह भी तो प्रकाशित है, पर उसका प्रकाश अधकारमे भी आदस पहुंचा सकता है तो भाई यह फर्क किस बातका है ? सूर्यका निमित्त पाकर ये स्वय प्रकाशित होते हैं । दर्पण तो तेज योग्यता वाला है, इसलिए यह अधिक प्रकाशित होता है । घटादिक कम योग्यता वाले है सो ये कम प्रकाशित होते है । अपनी-अपनी योग्यताके अनुसार ये पदार्थ प्रकाशित होगे ।

यह वस्तुस्वतन्त्रताकी बात कही जा रही है, जो ज्ञानकी मौलिक बात है । दर्पणको आगे करके मुह देखा गया तो दर्पणमे जो प्रतिबिम्ब छाया रूप है, क्या वह मुहकी छाया रूप है, दर्पणकी छायारूप है ? अगर मुँहकी छाया होती तो हम बिना मुखके हो जाते । क्योकि हम तो शीशेके अन्दर चले गए । अब अलग जगह हम क्या रहे ? सो भैया ! वह प्रतिबिम्ब तो दर्पणका है, मुहका प्रतिबिम्ब नही है । हमारा मुह निमित्तमात्र है । परिणमन दर्पणका है, मेरा नही है । पर किसीसे पूछो तो कोई नही कहेगा । यह है स्वातत्र्यवादका सिद्धान्त । इसको बडी सूक्ष्मदृष्टिसे देखकर सोचो तो ये परपदार्थ अपने परमाणुवोके मालिक है । परपदार्थ अपना काम करते है । मगर यह वस्तुस्वरूप आवे तो मोह नही रह सकता है । मोहसे अगर भगवान् को हाथ जोडें तो क्या कुछ मिलेगा ? कुछ नही । परवस्तुवोसे मोह हटाना हो तो हटाओ और अगर न हटाना हो तो न हटाओ । मोहको हटानेके लिए समर्थ तो निजस्वरूपका ज्ञान है ? उस निजस्वरूपके ज्ञानसे ही मोह छूटेगा । सब सिद्धान्तकी यह खूबी है कि वस्तुकी स्वतन्त्रताका स्वरूप विशद बता देता है । रस्सीको सांप जान लेनेसे बडी घबड़ाहट होती है । पर देखो रस्सीको रस्सी जान लेनेसे ही सारे फद खतम हो जाते हैं । जब ठीक-समझ लिया तब यथार्थज्ञान हो गया ।

अच्छा और देखो इस दीवारका रंग बता दो । अगर लोगोसे पूछा जाय तो यही कहेंगे कि दीवार हरी है । अरे दीवार हरी नही है, रंग ही हरा है । केवल दीवारोका आश्रय पाकर यह रंग फैल गया है । इसी तरह सब समझ लो कि भैया ! पानीके भीतर आगकी

गर्मी नही, इन वस्तुवोंका प्रकाश सूर्यका प्रकाश नही है, पृथ्वीपर होने वाली छाया पेडोकी छाया नही है, फिर निमित्तनैमित्तिक भावसे भी परे रहने वाले जिसको आप अपना लडका कहते हो वह आपका कैसे होगा ? दीवारका रग हरा नही है, दीपकका यह प्रकाश नही है, पेडोकी छाया नही है. तो फिर तुम्हारे बच्चे कैसे हो गए, तुम्हारा परिवार कैसे हो गया ? ये तो बिल्कुल भिन्न चीजें हैं, ये सब एक आफत है। बिल्कुल अपनेको यह समझो कि यदि राग द्वेषका धन्धा चल रहा है तो वैरी वैरी आपसमे मिल-जुल गए हैं। देखो एक तो मोहके मारे मरे और दूसरे यहाँ भ्रम व विकल्पके मारे मर गए।

कहते है कि कर्तापनका मेरा स्वभाव नही है। ये जो कुछ हो जाते है, परका निमित्त पाकर हो जाते है। जो सूखे पत्ते उडते है तो क्या अपने स्वभावसे उडते हैं ? नहीं। वे तो हवाका निमित्त पाकर उडने लगते है। सूखे पत्तोकी बात कह रहा हूँ जो प्रायः उडते रहते हैं। उनका उडनेका स्वभाव नही है। हवा चली और पत्ते अपने आप बाहरमे उडने लगे। इसी तरह जब कर्मके उदयका निमित्त होता है तब माया, मोह, लोभ आदि उठ जाते है। उस अवस्थामे मोही प्राणीके कर्तृत्वबुद्धि होती है। ऐसी मिथ्या कर्तृत्वबुद्धिको त्यागकर अपने आपके स्वरूपको देखकर मैं अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होऊँ।

वृत्तिदृष्टौ तपो व्यर्थं निवृत्तौ न क्षतिः कुत.।
ज्ञप्तिरेव निवृत्तिश्च स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥३६॥

प्रवृत्तिकी दृष्टि रहे तो सब व्यर्थ है। तपस्या भी करे, प्रवृत्तिकी दृष्टि रहे तो उसे मुक्ति नही प्राप्त होगी। निवृत्ति होवे तो वहाँ लाभ ही लाभ है। हम मदिरमे दर्शन करनेके लिए जाते हैं। वहाँ यह दृष्टि करना मात्र कि हमारा नित्यका काम है इसलिए जाते है तो वह तो प्रवृत्ति हुई और अगर यह दृष्टि रहे कि घरके राग द्वेषको दूर करनेके लिए हम दर्शन करने जा रहे हैं तो वहाँ लाभ होगा। निवृत्तिसे कोई क्षति नही होगी, पर प्रवृत्तिकी दृष्टिसे सब चीजें व्यर्थकी है।

अपनेसे बाह्यपदार्थोंको भिन्न न समझना, वरन् उनमे ही दृष्टि लगानेकी चेष्टाएँ हों तो व्यर्थ है। उनसे लाभ कुछ नही मिलेगा।

एक कथानक है कि एक राजाके यहाँ दो चित्रकार आए। मान लो एक चीनका चित्रकार आया और दूसरा जापानका। दोनो ही चित्रकार राजाके पास पहुचे। बोले कि महाराज हम बहुत बढिया चित्रकारी जानते है। राजा बोला कि अच्छा अगर चित्रकारी जानते हो तो हमारे कमरेमे चित्रकारी करो। दोनो बोले कि अच्छा कमरेमे पार्टीशियन कर दीजिए अथवा बँटवारा कर दीजिए, फिर बादमे हम दोनोको देखना कि कौन अच्छी चित्र-

कारी करता है ? राजाने चित्रकारीके लिए कमरेमे पार्टीशियन करवा दिया। चीन वाले चित्रकारने २०-२५ प्रकारके रंग लाकर चित्रकारी शुरू की। जापान वालेने कुछ घोटे जाने वाले अच्छे मसाले ले लिए। चीन वाला चित्रकार ६ महीने तक रंगोसे रंगाई करता रहा और जापान वाला मसालोसे घुटाई करता रहा। अब जब ६ महीने हो गये, दोनो बोले— महाराज बन गया। राजा बोला—अच्छा कल देखेंगे। दोनोने कहा कि देखना किसकी चित्र-कारी बढिया है। पार्टीशियन निकाल दिया गया। राजाने देखा कि जो रंगोसे रगा था वह चमकता नही था और जो दूसरेको देखा तो उसमे बडी ही चमक थी। अब राजा बोला— जिसमे चमक है वह बढिया चित्रकारी है।

सो भैया ! अपनी दृष्टिको सोचो, दृष्टिको ठीक करो तो ठीक है। हम भगवानके दर्शन के लिए दर्शन करते है तो यह प्रवृत्ति हुई। इससे कुछ लाभ नही होगा। और अगर रागद्वेष त्यागनेकी दृष्टि हुई तो यह निवृत्ति हुई। अत: यदि मैं निवृत्तिसे देखूं तो लाभ मिलेगा वरना कुछ नही मिलेगा। अब आप लोग भोजन बनाते है। यदि वहाँ अतिथि साधु जनोके आहार दानकी दृष्टि है तो इस शुद्धदृष्टि होनेके कारण आप धर्म ही कर रहे है। बाह्य वस्तुवोमे यह दृष्टि न रहे कि यह मेरी वस्तु है, यह उसकी वस्तु है ऐसा परिणाम होनेसे भला नही होगा। यदि प्रवृत्तिनी दृष्टि हो तो तप आदिक भी व्यर्थ है और अगर निवृत्तिकी दृष्टि है तो लाभ है।

रस्सीमे जब तक साँपका भ्रम था तब तक घबडाहट थी, पर जब रस्सीको रस्सी जान लिया तब घबडाहट दूर हो गयी। यथार्थ जानन हो गया तो इसीके मायने निवृत्ति है। यथार्थ बातको जानना ही हटाव कहलाता है। यथार्थ बातको जानकर मैं अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होऊँ।

परे दृष्टे न दृष्टः स्वः स्वे दृष्टे न विकल्पना।
अविकल्पे न सतापः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥३७॥

परपदार्थोंको ही देखो तो निजपदार्थ समझमे नही आ सकता है। और निज पदार्थ को देखो तो विषयकषायोकी कल्पनाएँ नही बन सकती हैं, विकल्प नही रह सकते हैं। सो जो देखना चाहो वह निर्णय कर लो। अगर निजपदार्थ देखना चाहते हो तो निजपदार्थ देखो और परपदार्थ देखना चाहते हो तो परपदार्थ देखो। अगर अपने आपके पदार्थको देखो तो संकल्प-विकल्प न रहेगे और परपदार्थ देखो तो क्लेश हो रहेगे, संकल्प, विकल्प, मान, माया, लोभ इत्यादि ही रहेगे। अब जहाँ उपयोग लगाना हो सो निर्णय कर लो।

मैं अपने आपसे हू। मेरेमे किसी अन्य चीजका प्रवेश नही है। मैं तो अपनी आत्मा की इज्जत चाहता हू। आत्माकी इज्जत यह है कि अपने आपका जैसा स्वरूप है वैसी ही

दृष्टि रहे । यही स्वयंकी इज्जत है । परपदार्थोंको देखनेसे बेइज्जती एव दु ख है । परपदार्थोंको जहां देखो, कल्पनाएँ उन वस्तुवोंके प्रति बनी वहां दुःख आ जाते हैं । जहांपर निर्विकल्प भाव हो वहांपर सुख हो सकता है ।

अरे इतनी अवस्था ४०, ५० वर्षकी विकल्पोंमे ही गुजर गयी । क्या परपदार्थ तुम्हारे साथमे जावेंगे ? नही । ज्यो ज्यो विकल्पोंमे आसक्ति है । त्यो त्यो आनन्द दूर है । परपदार्थोंके अनुरागसे विकल्प ही होते हैं । इसलिए भीतरसे यह इच्छा होनी चाहिए कि मेरा ज्ञानका उपयोग बने किसी परपदार्थको अपने उपयोगमे न लाऊ । अपने आपमे भाव ऐसा होना चाहिए कि मैं ज्ञानमे ही रहू, ऐसी भीतरमे उत्सुकता रहनी चाहिए । यदि यह भी ध्यान हो कि मैं इस समय ज्ञानस्वरूपमे नही हू तो भी यही समझिए कि ज्ञानस्वरूप सामने है । जैसे मान लो कि कल जो रसगुल्ले खाये थे वैसा स्वाद आज रसगुल्ले खानेसे नही आया । तो ऐसा ख्याल आपका हो जायगा कि जो स्वाद कलके रसगुल्लोंमे था वह आजके रसगुल्लोंमें नही है । इस ख्यालसे बढिया रसगुल्ला उसके दिमागमे सामने है ।

जैसे किसीसे कहें कि भाई चोकोपर समयसार पुस्तक रक्खी है सो ले आवो । वह गया वहां पुस्तक नही थी सो वह कहता है कि वहां समयसार नही है । देखो पुस्तक वहांपर है भी नही, तब भी फोटो उस पुस्तकका उसके सामने आ गया ।

जैसे कहे कि भाई तिजोरीमे गहना रखा है, ले आवो । यद्यपि वहांपर गहना है भी नही, तब भी गहनेका फोटो तो आपके सामने आ गया । भाई परपदार्थोंमे आनन्द नही है । परपदार्थोंसे अगर मैं आनन्द प्राप्त करता हूँ तो वह वास्तविक आनन्द नही है । आनन्द तो तभी है जब कि अपने आपके स्वरूपकी प्रतीति रहेगी तो चाहे बाहरमे भी रहना पडे, पर प्रसन्नता बनी रहेगी ।

एक कथानक है कि बादशाह और वजीर बैठे थे । बादशाहने कहा कि वजीर आज मैंने एक स्वप्न देखा कि अपन दोनो घूमने जा रहे थे । मार्गमें दो गड्ढे मिले, एक शक्करका और एक गोबरका । मैं शक्करके गड्ढेमे गिर पडा और आप गोबरके गड्ढेमे गिर पडे । वजीर बोले—हजूर, मैंने भी स्वप्न ऐसा ही देखा, पर इसके आगे थोडासा और देखा कि मैं आपको चाट रहा था और आप मुझे चाट रहे थे । यानं मैं तो शक्कर चाट रहा था और आप गोबर चाट रहे थे ।

इसी तरह गृहस्थ लोग गृहस्थीमे पडे रहते हैं । वे अपने ज्ञानका स्वाद लें । इसमें उनका क्या बिगाड ? इसके लिए ज्ञान ऊँचा होना चाहिए । घर-द्वार, मित्रजन, परिवार ये सब मोहके निमित्त अर्थात् आश्रयभूत कारण है । स्वयके स्वरूपको देखनेमे ही कल्याण है ।

सो अब मैं स्वयंके स्वरूपको देखकर अपनेमें अपने लिये अपने आप स्वयं सुखी होऊं।

मयि सौख्यं मया मे यत् ज्ञप्तिभिन्नं न साधनम्।
आगृह्णामि कथं वृत्तौ स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥३८॥

मेरा सुख मेरेमे है और मेरे द्वारा होता है। क्योंकि जितने भी जगत्में पदार्थ हैं वे सब अनन्तशक्तिसे सम्पन्न हैं एवं अपनी-अपनी शक्तियोंके परिणमन ही करते हैं। इसी प्रकार मैं भी एक वस्तु हू, कैसी वस्तु है अद्भुत वस्तु हूँ। ज्ञानानन्दरस निर्भर एक अमूर्ततत्त्व हूँ, जिसके अन्दर अन्य कोई पदार्थ नही, ऐसा मैं ज्ञानभावात्मक तत्त्व हूँ। मैं कोई पिंड नही कि जो पकडा जा सकूँ, कोई रूप, रस इत्यादि नही कि जो इन्द्रियके द्वारा जाना जा सकूं, केवल ज्ञानज्योतिरूप केवल आनन्दस्वरूप हूँ ? दो ही तो इसके मुख्य धर्म है—ज्ञान और आनन्द। ज्ञान किसे कहते हैं ? जो जाननकार्य करे, जिसका अविनाभावी आनन्द हो ऐसा ज्ञानानन्दघन आत्मतत्त्व हूँ, ज्ञानस्वरूप हूँ, आनन्दस्वरूप हूं। लोगोने जाननको ब्रह्मका स्वरूप बताया है, किन्हीने ब्रह्मको आनन्दस्वरूप बताया है।

ऐसा ही मैं आत्मतत्त्व हूँ। मैं ज्ञानमात्र हूं, मेरा आनन्द मेरेसे ही प्रकट होता है। उस आनन्दको प्रकट करनेके साधन क्या हैं ? क्या रसोई बन जाय तो आनन्द है ? क्या रसोईसे आनन्द मिलता है ? क्या घर, परिवार, मित्रजन इत्यादिसे आनन्द आता है ? नही, ऐसा नही है। ज्ञानको छोडकर अन्य कोई साधन नही है आनन्दके लिए। मात्र जानन ही आनन्दका साधन है। जिसका उपयोग बाह्यमें है, जिसमे राग द्वेष आदि हैं उसको आनन्द नही मिलता है। जहांपर केवल जानन हो, मोह न हो तो वहांपर आनन्द मिलता है। जब मात्र जानन ही आनन्दका साधन है तो फिर प्रवृत्तिमें आग्रह क्यो करू ? प्रवृत्ति चलती है तो चले, पर उसमे आग्रह क्यो हो ? मोही लोग ऐसा आग्रह करते ही हैं, उन्हें ऐसा किए बिना चैन नही आती है। कौन ऐसे पदार्थ हैं जो मेरे लाभकारी हैं, जिनसे मेरा कल्याण हो जाता है। ऐसी जगत्में कोई चीज नही है। सो भैया ! किसी चीजमे आग्रह नही होना चाहिए। प्रवृत्तिका आग्रह न करो। बल्कि उस अपने आनंदस्वरूपको देखो और यह विश्वास रखो कि मैं आनन्दस्वरूप हूँ। मेरा आनन्द तो मेरे द्वारा ही प्रकट होता है। मेरे आनन्दका अन्य कोई साधन नही है। मात्र जानन ही आनन्दका साधन है।

जीवमें ज्ञान गुण है जो कि खूब अनुभवमें आ रहा होगा कि आत्मामे एक ऐसी शक्ति है जिसके कारण जाननवृत्ति होती है, वह ही तो आत्मतत्व है और दूसरे पदार्थ नही जानते हैं, क्योंकि आत्मामे ज्ञानशक्ति मौजूद है और किसी दूसरेमे ज्ञानशक्ति नहीं है। आत्मामें ज्ञान होता रहता है, जानकारियां होती रहती हैं। इसी तरह आत्मामे एक आनन्द

शक्ति है और पदार्थ तो आनन्द नही मना सकते। क्या चौकी, टेबुल, घडी इत्यादि आनन्द मनावेंगे ? आनन्द तो मनाने वाला एक जीव ही है। क्योकि उसमे आनन्दकी शक्ति है। जैसे ज्ञानशक्ति जीवोमे है तैसी है आनन्दशक्ति भी जीवोमे है।

भैया ! जैसे ज्ञानशक्तिकी पाँच परिणतियाँ है—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान व केवलज्ञान। इसी तरह आनन्दगुणकी तीन परिणतियाँ होती है—१. सुख, २. दुःख और ३. आनन्द। इनमे सुख और दुःख विकृत परिणमन हैं और आत्मीय आनन्द शुद्ध परिणमन है। विकृत परिणमन सुख और दुःख क्यो है ? यो कि सुख तो वह है जो इन्द्रियोको सुहावना लगता है, और दुःख वह है जो इन्द्रियोको असुहावना लगता है। यह विकार स्वयं नही होता किन्तु कर्मोदयका निमित्त पाकर होता है। केवल आत्मा तो शुद्ध है, शुद्धपरिणमनका आनन्द भगवान्के है। सुख सदा नही रहता है और न दुःख ही सदा रहता है। सदाकी बात छोड दो। २४ घटेमे शायद आध घटा मिलजुल कर समय सुखसे व्यतीत होता हो, शान्ति प्राप्त हो जाती हो, बाकी साढे तेईस घटा दुःख ही दुःख रहते हैं। तो आनन्दशक्तिका जो शुद्ध विकास है वह आनन्द है। उस आनन्दके लिए लोगोको आग्रह करना चाहिए। प्रवृत्तिके लिए आग्रह नही करना चाहिए।

किन्ही किन्ही जगहोमे तो देखो लोग धर्मप्रवृत्तिमे कलह करते लोक व्यवहारमे मिले जुले रहते, कहाँ लोकव्यवहारमे तो एक और धर्ममे कलह, विवाहके समय तो लोग मिल जुल कर हसी खुशीसे रहते, पर धर्मके कामोमे उनमे आपसमे लडाई होती है। उनके नाते रिश्तेदार विवाह आदिके समय तो एक हो जाते हैं पर धर्मके कामोमे लडाई झगडा करते हैं। देखो भैया, पार्टीमे तो शामिल होते हैं पर धर्मके कामोमे आपसमे लडाई करते है। देखो भैया ये कितना उल्टा करते हैं, अरे धर्मके काममे तो सबको आपसमे मिलकर काम करना चाहिए और विवाह आदिमे चाहे लड़ें, पर देखो कितना उल्टा काम करते है ? क्यो ऐसा उल्टा होता है ? क्योकि वास्तविक धर्मसे रुचि नही है। अरे भाई देख भी लो, धर्ममे कोई भी नही है। धर्म एक है, शास्त्र एक है, गुरुका स्वरूप एक है, पूजा की पद्धति एक है। जितने धर्म व्यवहार है उनकी पद्धतियाँ सब एक है। तो फिर झगडा किस बातका हो जाता है ? प्रवृत्ति चाहे धर्मविषयकी भी हो वहाँ भी मतभेद हैं परन्तु निवृत्तिमे क्या मतभेद ? निवृत्ति ही एक ऐसा धर्म है जिसकी कोई बराबरी नही। निवृत्तिका मतलब हट गया, अलग हो गया। निवृत्तिमे क्या दुःख है ?

कोई साधु एक पुस्तक बाँच रहा है। किसी ने पूछा कि कौनसा ग्रन्थ यह पढ रहे है क्या उत्तम है ? दूसरेका मनोभाव व उपकार जानकर साधु वह पुस्तक उसे पढनेको दे

देगा । यही उसकी निवृत्ति होगी । वह अपने आपको अपने आपमे विश्राम पाता हुआ देख कर आनन्द पा लेगा, अपने आपके ही आनन्दमे मस्त हो जायगा क्योंकि उस साधुको प्रवृत्ति का आग्रह रंचमात्र भी नही है । प्रवृत्तिमे आग्रह न रहे तो वही साधु है । गृहस्थीके तो प्रवृत्तिकी बात होती है पर साधुवोके नही होती है । साधु जानते हैं— मेरा आनन्द मेरेसे ही प्रकट होता है, आनन्दका साधन तो केवल ज्ञान है, और कोई दूसरा अन्य साधन आनन्द का नही है । सो मैं स्वयमे रम कर ही अपने आप सुखी होऊं ।

नाह देहो न जातिर्मे न स्थानं न च रक्षकः ।
गुप्त ज्ञान प्रपश्यामि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥३९॥

मैं शरीर नही हूं, यहाँ भीतरमे देखो, क्या है ? यह कौन सुखी दुःखी हो रहा है ? शरीर या जीव । कल्पनाएं और द्वन्द्व कौन कर रहा है ? जीव कर रहा है या शरीर कर रहा है ? शरीर नही कर रहा, जीव कर रहा है । शरीर भी मैं नही हू, फिर जाति मेरी कहाँ हो जायगी ? मैं खडेलवाल जातिका हू, मैं अग्रवाल हूं इत्यादि, ये जातियाँ कैसे बन गयी ? कोई कहता है कि हम ब्राह्मण हैं, कोई कहता कि हम बनिया हैं । ये जुदी जुदी वर्णव्यवस्थाएं शरीरके आधारपर है । मैं तो शरीर नही हू और न शरीरमे हूं । तो मेरा स्थान कहाँ है ? मेरे रहनेकी जगह क्या है ? मेरा स्वरूप ही मेरे रहनेकी जगह है । मेरा रक्षक कौन है ? किसीमे मेरी रक्षा करनेकी ताकत है ही नही । कोई भी जीव मेरी रक्षा करनेकी ताकत रखता है, ऐसी आशा करना व्यर्थ है । क्या मेरी रक्षा माता-पिता, दादा-दादी इत्यादि करेंगे ? देखो वे गुजर गए पर उनका मेरी तरफ ध्यान भी नही है । अगर वे जिन्दा ही होते तो क्या मेरी रक्षा कर सकते थे ? मेरी रक्षा तो मैं ही कर सकता हूं । इस जगतमे मेरी रक्षा कोई दूसरा नही कर सकता है । मैं अपने गुप्तज्ञानको देखकर अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी हो सकूंगा ।

मेरा ज्ञान गुप्त है । कोई दूसरा जाननहार, पहिचाननहार नही है । अगर कोई पहिचाननहार बन जाय तो वह ज्ञाता द्रष्टा बन जायगा । उसमे रागद्वेष इत्यादि करने का लगाव नही रहेगा । मैं ऐसे ज्ञानस्वरूपको देखूं और अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होऊं ।

केवलज्ञानमात्रके अनुभवके तरीके को पाकर अन्य सबको छोड़कर मैं यह विचार बनाऊं कि मैं ज्ञानस्वरूप हू, मेरा स्वरूप ज्योतिमात्र है प्रतिभासमात्र है, आकाशकी तरह अमूर्त हैं, किसीसे पकडा जा सकने वाला नहीं है, किसीसे छेदा नही जा सकता है, भेदा नही जा सकता है, इस पर तलवार नही चलाई जा सकती । मैं तो निर्लेप आकाशकी तरह

शुद्ध, स्वच्छ चैतन्यस्वरूप हू । केवल जानन जानन ही मेरा स्वभाव है । इस पद्धतिको जब मैं देखता हू तो आत्मानुभवकी पहिचान होती है । मैं अपने इस गुप्त ज्ञानको देखकर अपने मे अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होऊं ।

क्वान्योऽहं क्व च चिन्ता क्व क्वैकाग्र्यं क्व शुभाशुभम् ।
इमे स्वस्माच्च्युतेस्तर्काः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४०॥

कहाँ तो अन्य है, कहाँ मैं हू ? देखो प्रत्येक पदार्थमे कितना फर्क है । प्रत्येक पदार्थ अपने आपमे झुके हैं । प्रत्येक पदार्थ अपनी-अपनी ओर हो मुडे हैं । प्रत्येक पदार्थका उसमे ही सत्त्व निहित है । परपदार्थ एक दूसरेसे चिपटे हुए नही हैं । इसलिए उनमे अन्तर रहेगा ही । परपदार्थ तो हमसे अत्यन्त जुदा हैं । उनसे हमारा कोई सम्बन्ध नही है । कोई परपदार्थ यदि हमसे १०० कोसकी दूरीपर रहे तो १०० कोसका अन्तर है । ऐसा क्या जो मेरे क्षेत्रावगाहमे पर है उसमे अन्तर नही । वे भी हमसे जुदा हैं । जितना जुदा दूरका पदार्थ है उतना ही जुदा समीपका पदार्थ है ।

दूध और पानी अलग-अलग गिलासमे दूर दूर पर रखे हैं । दूध और पानीमे अन्तर समझमे आ रहा है । पर दूध और पानी दोनोको मिला दिया जाय तो क्या दोनो एक हो गए ? नही, दूधमे दूध है और पानीमे पानी है । अगर किसीसे पूछा जाय तो यही कहेगे कि दूध और पानी एकमे मिले हुए हैं । पर ऐसा नही है । दूधमे दूध है और पानीमे पानी है । इसके जाननहार परीक्षक है । परीक्षक यत्रोके द्वारा जान लेते हैं कि दूधमे दूध है और पानी मे पानी है । बहुत भीतर सूक्ष्म अंशोमे परीक्षा करने वाले ही यह अन्तर जान पाते हैं । दूध मे पानी नही है और पानीमे दूध नही है । अगर उसे अग्निपर रखकर गर्म कर लें तो पानी हटकर अलग हो जायगा और दूध अलग हो जायगा । इस प्रकारसे भी लोग परीक्षा कर लेते है कि दूधमे इतना पानी पडा हुआ है । देखो और भी भेदविज्ञानकी बात । दूधमे दूध है और पानीमे पानी है, वे एक नही होगे । अन्तर पूराका पूरा है । इसी प्रकार इस शरीरमे और इस जीवमे कितना अन्तर है ? अगर कोई यहांका लडका हो और कोई दूसरा इंग्लैण्डका हो तो क्या भिन्न होनेमे उनमें कोई अन्तर है ? अन्तर कोई नहीं है । पर लोग लडकोमे अन्तर मानते हैं । वस्तु तो जैसी है वैसी ही है । सब कुछ तो ज्ञानकी कलापर ही निर्भर है ।

गिलासमे पानी और दूध है । वे दोनो ही पृथक्-पृथक् हैं । यहांके लडके यहां ही हैं और वे वे ही हैं उनमें कोई अन्तर नही है । पर लोग अन्तर मान लेते हैं । अरे ऐसी बात नहीं है । यह सोचना कि ये पराये हैं यह मोहकी बात है । चीजें बिल्कुल जुदा-जुदा हैं, उनमें रंचमात्र भी सम्बंध नही है । किन्ही दूसरे पदार्थोंसे अपना समन्वय नही है । और भी देखो कहाँ

तो ध्यान और कहाँ चिंता ? कहाँ अच्छे धार्मिक भावोंको चित्तमें लाना और कहाँ परपदार्थों की चिंताएं करना ? इन दोनोंमे कितना फर्क है ? कहाँ तो चित्त लगाना चाहिए धर्मके कामो मे और लगाते कहाँ हैं बाह्यपदार्थोंकी चिंताओमे ? अरे बोह्यकी तुम क्यों फिक्र करते हो ? परमार्थसे देखो तो चाहे शुभ उपयोग हो और चाहे अशुभ उपयोग हो, है तो अशुद्ध ही उपयोग । अंतर भी केवल बाह्यदृष्टि वालोको लगता है । बाह्यदृष्टि करके वे अपनेसे बाहर उठे हुए हैं, वे अपने स्वरूपको भूल रहे हैं ।

भैया ! स्वरूपस्मरण ही वास्तविक सगुन है । अच्छे कर्मोंका होना सगुन कहलाता है और बुरे कामोका होना असगुन कहलाता है । बाह्यमें कैसा सगुन और कैसा असगुन ? शुभ मंगलमय होना सगुन कहलाता है और इसके विपरीत होना असगुन कहलाता है । शुभ मंगलमय तो निर्मल विचार ही है । लोग तो भ्रमवश लौकिक असगुन व सगुनके पीछे पडे हुए है । दाहिने हाथ अगर हिरण मिल गया तो सगुन मान लिया, कोई स्त्री जलसे भरा हुआ घड़ा लिए मिल गयी तो सगुन मान लिया, यदि रीता घडा लिए हुए कोई स्त्री मिल गयी तो असगुन मान लिया । इस तरहसे लोग प्रायः सगुन और असगुनके पीछे पडे हुए है । अरे ये सभी असगुन हैं, इनसे कुछ नही । यदि दृष्टि शुद्ध है तब सब सगुन हैं वरना सब असगुन ही है । ये सब मोहकी बातें हैं । सगुन तो कहते हैं पवित्र वीतरागको मोहीजन पति सहित स्त्रीको तो सगुन मानते है और पतिरहित स्त्रीको असगुन मानते है । अरे देखो भैया लोग कितना उल्टा कर रहे हैं ? जो स्त्री पतिरहित है, तपस्या करती है, आराधना करती है उसको लोग असगुन कहते या मानते है और जिसमे राग है उसे सगुन मानते हैं । अरे राग करनेका कड़ा फायदा पावोगे, कोई कठिन अवस्था होगी, मरण सम्मुख रहेगा । इन रागोंसे आत्माको कोई चीज मिलती हो तो बतलाओ । कुछ भी तो नहीं मिलता है ।

महाराज सुनाते थे कि कटनीमे दो भाई थे । एक छोटा था और एक बड़ा । छोटा भाई स्वाध्याय, पूजन इत्यादि करता था, और बडा भाई दुकानका काम करता था । छोटा भाई बड़े भाईसे बोला कि न तो तुम पूजन करते, न धर्म करते और न स्वाध्याय करते । तो बड़ा बोला कि तू रहने दे; मैं दुकान करता हूं तो क्या हुआ तुझको मैंने छुट्टी दे रखी है, मेरा यही धर्म हो रहा है, और धर्म तो अन्तरकी चीज है, तू ज्यादा गर्व न कर । तू मुझे सिखाने को रहने दे, मुझे यह मत समझा कि मैं स्वाध्याय नही करता तो धर्मकी बुद्धि भी नहीं है । अन्तमे जब छोटा भाई मरने लगा तो बड़े भाईसे बोला कि मेरे लड़के बच्चे तुम्हारे जिम्मे हैं । अब तुम्ही इन लड़कोका पालन-पोषण करना । बड़ा भाई बोला कि भाई तू जो स्वाध्याय, पूजन, धर्म इत्यादि करता था । अब तू मरते समय इन बच्चोसे मोह कर रहा है ।

अरे अब तो मर जायगा इनकी रक्षा क्या तू ही करेगा ? मैं भी कह दू कि रक्षा करूँगा और न की रक्षा तो ? भैया ! उनका भाग्य उनके साथ है । कहो तो मैं सब जायदाद तुम्हारे बच्चे के नाम रजिस्टर्ड कर दूं । अब उस छोटे भाईको ज्ञान हो गया । छोटा भाई बोला कि हमे कुछ नही चाहिए । बडा भाई बोला कि जो तुम्हें दान करना हो १०, २० हजार उसका दान कर दो । बड़े भाईसे बोला कि भाई तुम्ही जो चाहो सो करो । जब मेरा कुछ है ही नही, तब मुझे क्या विकल्प ? सो भैया ! अंतरगमे जिसके धर्मकी भावना है वही सच्चा स्वाध्याय, पूजन आदि करता है । छोटा भाई बोला कि धर्म तो आपका सत्य है । आपसे मुझे शिक्षा मिली । मैं परद्रव्यका अधिकारी नहीं । अब तो मुझे केवल चटाई दे दीजिए । जमीनपर ही चटाई बिछाकर रहूगा । वह छोटा भाई वही चटाईपर ही रहकर धर्मकी आराधना पूर्वक उसी चटाई पर ही मर जाता है । बादमे बडे भाईने छोटे भाईका स्मारक बनवाया । बहुत दान निकाला ।

अरे बाह्यक्रिया तो धर्म करनेके लिए आलम्बन मात्र है । भगवान् अरहत की मूर्ति को देखकर जिसको उनके स्वरूपकी मुद्राकी खबर न हो, तो वह मूर्तिदर्शन नही है । अरे इस मूर्तिको देखकर अगर स्वरूपका ज्ञान आ जाय तो चारो ओर तुम्हे वैसा ही सब दिखाई देगा । शारीरिक वैभव आत्मप्रसाद पर निर्भर है । पूर्ण निर्मल अरहत प्रभु हैं उनका परमौदारिक शरीर है जिनसे उनके चारो ओर मुख दीखते हैं, हैं नही हैं । पूर्ण निर्मल भगवान्के चार मुख हो जावें ऐसा नही है । मुंह आगे पीछे ही अगल बगल हो, ऐसा नही है । कोई कोई मानते हैं कि ब्रह्माके चार मुख हैं । भैया ! अगर शुद्ध दृष्टि होगी तो शरीर भी शुद्ध हो जायगा । जैसे स्फटिकमे दर्शन करनेसे स्फटिक मूर्तिके दोनो ओर एकसा मुख दीखेगा । एक मुख आगे नजर आयगा, एक पीछे । प्रभुके पवित्र शरीरमे इससे भी अनुपम स्वच्छता है । उनका मुख चारो ओरसे दिखता । आगेसे पीछेसे और दो मुख अगल-बगल नजर आवेंगे । जिनका शरीर पवित्र होगा उनको जहांसे देखो तहांसे ही उनके मुख दिखाई देंगे । देखो भैया ! यदि प्रभुका यह अतिशय न होवे तो दर्शकोमे झगडा हो जावे । और यह भावना हो जाय कि हम आगे बैठेंगे तो कलह ही तो होगा । किसी ओर बैठो तो क्या विवाद है क्योंकि दर्शन तो चारों ओर होंगे । तभी तो कही भी बैठ जाते हैं किसीको भी दर्शनमे कोई रुकावट नही होती है । इन्द्रकी रचना, कुबेरकी रचना अद्भुत है तभी तो झगडे का नाम नही है । यदि भगवान्के स्वरूपकी ठीक-ठीक दृष्टि हो जाय तो यह शुभ काम कहलाता है । अगर ज्ञानी पुरुषको शुद्ध ज्ञानका अनुभव है और कदाचित् अपने स्वरूपसे हटे तो यह अशुभकी बात है । स्वयके स्वरूपमे न शुभ है न अशुभ, न सगुन न असगुन । स्वरूपमे

तो शुद्ध ज्ञान है जो कि परम आनन्दमय है।

अरे यह प्रभु तो ज्ञानस्वरूप है। अपना ही अनुभव कर रहा है। भगवानके दर्शन करनेका प्रयोजन राग न रहे, ऐसा ध्यान न करो। अगर मिथ्यादृष्टि हटे, सम्बन्धबुद्धि हटे तो शुद्ध विकासके कारण परमात्मस्वरूपका ध्यान हो जायगा। आत्माका स्वरूप तो शुद्ध ज्ञान है। यह स्वरूप स्वयं आनन्दमय है। मैं इस ही आत्मस्वरूपमे रमकर स्वयं आनन्दमय होऊँ।

को दूरे कश्च सामीप्ये को बाह्य को मयि स्थितः।
ज्ञानमात्रमहं यस्यात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४१॥

कौन मुझसे दूर है और कौन मेरे नजदीक है ? ज्ञानस्वरूप आत्माको लक्ष्यमे लेकर सोचो कि कौन दूर है और कौन नजदीक है ? जब इतना ध्यान है कि ये जीव और शरीर जो मिले जुले हैं वे भी अत्यन्त भिन्न है तब कौन दूर है और कौन समीप ? मुझमे तो मैं ही हू, देह भिन्न है। मेरे अन्दर केवल जाननहार आत्मा है जो कि विलक्षण पदार्थ है। इस आत्मतत्त्वकी जिसे पकड होगी उसका जीवन सफल रहेगा। खूब धन वैभव बढ़ा लेनेसे कुछ नही मिलेगा। बाह्य समागमके लिए अनेक प्रयत्न करते जावो। फिर क्या होगा फिर क्या होगा, यही प्रश्न चलाते जावोगे। अच्छा बच्चे हैं, ये क्या कर रहे है ? पढ़ रहे हैं। पढ लो, फिर क्या होगा ? इन्टर पास होंगे। इन्टर पास हो गये। फिर क्या होगा ? इन्जीनियर होगे। फिर क्या होगा ? नौकर होंगे। फिर क्या होगा ? १०, २० आदमियोसे हजूरी करवायेंगे। फिर क्या होगा ? बूढ़े हो गए। फिर क्या होगा ? रिटायर हो गए। फिर क्या होगा ? मृत्यु हो गयी। फिर क्या होगा ? फिर कही जन्म लेंगे। कही कीडा मकौडा हो गए। फिर क्या होगा ? फिर कही कुछ होगे। इसी तरह प्रवृत्तिका आग्रह होता रहता है। जो काम हम सोच रहे हैं उसके बादमे फिर क्या होगा ? फिर क्या होगा ? यही चलता रहता है। प्रवृत्तिका आग्रह नही छूटता।

भैया ! कहाँ क्या प्रवृत्ति करते हो ? अपने स्वरूपसे सब अलग हैं। फिर हमसे क्या दूर है ? और क्या नजदीक है ? क्या हमसे दूर इलाहाबाद है और कानपुर नजदीक है ? अरे जिस शरीरके अन्दर हम रहते हैं वह भी अत्यन्त भिन्न है। अच्छा हम पूछते हैं ? बतलाओ कि क्या हम कानपुरमें रहते है ? क्या हम हिन्दुस्तानमें रहते हैं। नही, हम अपने आपके प्रदेशमें रहते हैं। प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपमे है। कोई पदार्थ किसी जगह नही है। हम आकाशमे भी नही हैं। आकाशमे हमारा होना तब कहलाता जब हम पहिले तो आकाश से बाहर होते फिर आकाशमें आते। तो भाई हम आकाशमे भी नही है।

मैं तो ज्ञानस्वरूप हूं, ऐसी अपने आपमे खबर रहे। अपने ही स्वरूपमे खबर रहे, अपने ही स्वरूपकी पकड़ रहे, अपने ही स्वरूपका अनुभव रहे तो मैं अंतमे अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी हो सकता हू। अपने स्वरूपको देखो भैया! खुदमे खुद ही है। जब सब ही मुझसे बाहर हैं तो सब बिल्कुल बाहर ही हैं, फिर कौन समीपका रहा और कौन दूरका रहा और कौन मुझमे रहने वाला रहा और कौन बाहरमे स्थित रहा? दूर समीप आदिके विकल्प बाह्यदृष्टिमे हैं। परमार्थदृष्टिसे आत्माका स्वरूप देखो और परमानन्दमय परमार्थ परमात्मतत्त्वमे उपयोगी रहकर आनन्दमग्न होओ।

संचित कर्म चेदस्तु तेन स्पृष्टोऽपि नो ह्यहम्।
अद्वैतोऽहमयं तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्॥४२॥

इस आत्माके साथ बहुतसे कर्मोंका बन्धन हो गया है। कहते हैं कि कर्मोंका बन्धन है तो बना रहे पर हम उन कर्मोंसे छुवे हुए ही नही हैं, उनसे जुदा ही हैं। अच्छा बताओ, आकाश भीतसे छुवा है क्या? कैसे छुवा जा सकता है। यह भीत तो मूर्त है और आकाश अमूर्त है। एक मूर्तवस्तु अमूर्तवस्तुसे छुपी हुई नही हो सकती। मूर्त अमूर्तकी बात तो दूर रही मूर्त मूर्तसे भी छुवा हुआ नही होता। यह पुस्तक क्या चौकीसे छुई हुई है? अरे यह पुस्तक अपने स्वरूपमें है और चौकी अपने स्वरूपमे है। इसी तरह परमार्थदृष्टिसे देखो विशिष्टाद्वैत कर्मोंका सचय आत्मामे है तो रहे, मैं कर्मोंसे छुवा हुआ नही हू। मैं तो अद्वैतस्वरूप हूं। किसी भी पदार्थके बारेमे विकल्प किया कि अच्छा है, लो हम फंस गए। अपने उपयोगसे आप ही हम फंस गए। मैं तो कर्मोंसे छुवा हुआ नही हू। सो मैं इस अद्वैतस्वरूपको देखकर अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होऊँ।

ये कर्म क्या चीज हैं? कार्माणवर्गणाएँ सूक्ष्म भरी हुई हैं। जब कर्मबन्धन होता है तो वे कार्माणवर्गणाएँ कर्मरूप हो जाती हैं। मै उन कर्मोंसे छुवा हुआ नहीं हूं। मैं अद्वैतरूप हू, सो मैं इस अद्वैतरूपको देखकर अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होऊँ।

ग्रामे बने निवासो मे विकल्पोऽनात्मदर्शिनः।
स्वे ज्ञाने ज्ञस्य वासोऽतः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्॥४३॥

मेरा ग्राममे निवास है अथवा मेरा वनमे निवास है, ऐसा विकल्प कौन करेगा? जिसकी अनात्मदृष्टि है। जिसकी आत्मस्वरूपमे दृष्टि नही है वह सोचेगा कि मेरा जंगलमे निवास हो कि ग्राममे निवास हो? पर ज्ञानी देखता है कि मेरा तो ग्राममे निवास नही, जंगलमे निवास नही वरन् ज्ञानमे निवास है। मेरा निवास कानपुरमे नही, शरीरमे नही, हिन्दुस्तानमे नही तथा लोकमे नही। मेरा तो ज्ञानमात्रमे ही निवास है। लोक भी अनादि

से है और हम भी अनादिसे हैं। मैं कैसे लोकमे हूं। अरे मै तो अपने ज्ञानस्वरूपमें हू। ये दुनिया भरके जितने समागम मिलते हैं, अंतमे कुछ रहनेका नही है।

भैया! जब इन समागमोको त्यागोगे तभी मुनाफा मिल पायगा अन्यथा इस संसार मे ही भटकना बना रहेगा। तुम अपने स्वरूपको देखकर बतलाओ कि तुम कहाँ रहते हो? कानपुरमे रहते हो क्या घरमे रहते हो या शरीरमे रहते हो क्या? अरे यह कही नही रहता। यह अपने ज्ञानस्वरूपमें ही रहता है। इस ज्ञानके स्वरूपमे जिसकी नजर रहती है उसके परपदार्थोंसे मोह नही रहता है। तब ग्राममे निवास हो कि बनमे निवास हो? ऐसा विकल्प अनात्मीय जीवके होता है। ज्ञानी तो अपने ज्ञानस्वरूपको देखकर अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होता है। तब मैं अन्यत्र हूं ही नही, केवल ज्ञानमे ही रहता हूं। ऐसा मानकर सारे विचार खत्म करो और अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होओ।

यातायाताणुपुन्जोऽयं देहोऽहं तु स्थिरः परः।
मे प्रवेशो न कस्मिश्चित्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४४॥

यह शरीर जो है, वह आने, जाने वाले परमाणुवोका समूह है बहुतसे परमाणु आए और बहुतसे गए—ऐसे यातायात, अणुवोका समूह शरीर है। मैं तो एक स्थिर चीज हू। आज मिलाप हो गया, कल बिछुड गया, ऐसी यह तो चीज है। मैं तो शाश्वत अद्वैत सारभूत चीज हू और देहादिकसे जुदा हूं। मेरा किसी अन्यमे प्रवेश नही है। किसी अन्य द्रव्यका मुझमे प्रवेश नही है। अतः मैं अपने ही स्वरूपको देखकर अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होऊं।

प्रत्येक पदार्थ स्वतंत्र है। यही कारण है कि कोई किसीके विरुद्ध या अविरुद्ध कुछ भी परिणति नही कर सकता है। क्योकि सब अपनी अपनी परिणतिसे ही परिणमते हैं। हैरानी व्यर्थको कर लेते हैं कि यह मेरा बच्चा है। है नही यद्यपि उनका बच्चा पर मोही-जन व्यर्थमें ही सोच लेते हैं कि मेरा बच्चा है। अरे तुम अपना काम करते हो, वह अपना काम करता है। बच्चा अपने अस्तित्वमे परिणमता, तुम अपने कषायमें मस्त हो रहे हो।

यहाँ बच्चे लोग गेंद खेलते हैं, नालीके पास गेंद जा रही है। १०, २० हाथ पर गेंद है पर बच्चे उसे अपना हाथ हिला हिलाकर रोकना चाहते है। गेंद अपने आप आगे बढ़ता जा रहा है पर बच्चे हाथ हिलाहिला कर उसे रोकना चाहते है। गेंद इस तरह से तो नही रुकेगा। कोई खाता हो और खातेमे गलेमे ठसका लगने से क्या उसके गलेका ठसका ठीक हो जायगा। नही, फिर भी कर्तृत्वबुद्धिके ये नाच होते हैं। अरे ये तो भिन्न

भिन्न पदार्थ हैं। किसीके कहनेसे कुछ होता है क्या ? केवल विकल्प किए जावो। भैया ! अपना किसी भी परपदार्थसे सम्बन्ध नही है। अतः मैं अपनेमे ही रहकर अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होऊं।

व्यवहारे परावस्था निश्चये ज्ञानमात्रता।
ज्ञानमात्रे परा शान्तिः स्यां स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४५॥

परकी अवस्था विभावकी अवस्था जो है वह व्यवहारसे मानी गयी है। निश्चयमे तो ज्ञानमात्र आत्मा है। पदार्थोंका किससे निर्माण होता है ? स्ट्रेक्चर क्या है आत्माका और किससे इसका निर्माण हैं, इस बातको तो देखो। भैया ! ऐसा विचित्रगुण आत्माका है जो अन्यत्र कही नही मिलता है। ज्ञानरूप परिणमन रहता है। मेरी ज्ञानमात्र अवस्था है। यह जीव ज्ञानस्वरूप है सो ज्ञानसे ही निर्मित है, अनादिसे निर्मित है, स्वभावसे निर्मित है। गति, इन्द्रिय, काय, योग, विषय कषाय इत्यादि ये सब व्यवहारसे माने गए हैं। ये सब आत्माका स्वरूप नही हैं। आत्माका स्वरूप तो ज्ञानमात्र अवस्था है। ये जो व्यवहारमे रूप रंग, इज्जत, क्रोध, मान, कषाय, राग, द्वेष आदि हैं ये सब मेरेमे नही हैं। मेरा स्वरूप तो केवल ज्ञानमात्र है। अपने स्वरूपका पता लग जाय तो कहना चाहिए कि समीचीन दृष्टि हो गयी। अपना स्वरूप अन्य सर्व चेतनोसे अचेतनोसे न्यारा है, यदि यह समझमे आ जावे तो आकुलताएं मिट जावेंगी। निश्चयसे मेरा स्वरूप ज्ञानस्वरूप है। तो उत्कृष्ट शांति तो स्वरूपके देखनेमे है। किन्तु मोहमे कैसी कैसी विचित्र परदृष्टियां होती हैं ?

जिसके बच्चे नही होते हैं वह दूसरेके बच्चेको गोद लेता है। वह गोद लेकर मानने लगता है कि यह मेरा बच्चा है। स्वतः ही बच्चेको गोदमे लेकर वह बच्चेसे मोह करने लगता है कि अरे यह तो मेरा बच्चा है। जिसको दुनिया जानती है कि बच्चा उसका नही है, गोद ले लिया है पर वह समझता है कि इससे हमारी इज्जत होती है। अरे उससे इज्जत नही है, निन्दा है। गोद लेकर इज्जत चाहते हैं कि मेरी इज्जत हो जाय। लोग समझ लें कि यह इन्हीका बच्चा है। किन्तु लोग समझते हैं कि इसका तो यह है नहीं, दूसरेको अपना बनाया है। इससे तो डबल निन्दा हो गयी। मोहकी प्रशंसामे निन्दा तो होती ही है।

कोई कहता है कि ये सेठ जी हैं, इनके चार लडके हैं। जिनमें एक लडका इञ्जीनियर है, एक मिनिस्टर है, एक डाक्टर है, एक प्रोफेसर है। सेठ जी समझते हैं कि इसमे प्रशंसा होती है मेरी। अरे उसमे सेठकी प्रशंसा नही बल्कि निन्दा होती है। इससे तो यह जाहिर होता है कि सेठ जी कोरे मूर्ख हैं, उनकी तो चर्चा ही नही होती। चर्चा तो लडकों की जा रही है। सेठ समझते हैं कि हमारी प्रशंसा होती है।

अभी देखो सेठने ५, ६, ७ खंडकी कोई हवेली बनवा दी। द्वार पर तरह तरहके चित्र नक्काशी करवा दी। यदि कोई इस बातकी प्रशंसा करता है कि इनका ऐसा मकान है, ऐसा द्वार है तो सेठ खुश होता है कि वाह इससे तो हमारी प्रशंसा होती है। अरे उससे सेठकी निन्दा होती है। निन्दा इसलिए कि दरवाजे पर चित्रकारी हो सकती है, पर सेठमे कुछ नक्काशी नही, कुछ भी कला नही है।

अगर ज्ञानके विकासकी बात कही जा रही है तब तो प्रशंसा होगी, बाकी सबमे निन्दा ही है। किसीकी लौकिक बातकी यदि प्रशंसा होती है तो ज्ञानी यह सोच लेता है कि यह प्रशसा नहीं है बल्कि निन्दा है।

यथार्थ जीवका क्या स्वभाव है ? इसको पहिचानो और बाह्यपदार्थोंसे हटकर अपनी यथार्थ बुद्धिमे आवो। मेरा यहाँ है क्या ? मेरा यहाँ क्या हो सकता है ? मैं यहाँ क्या कर सकता हू ? केवल ज्ञानका बर्तना ही ज्ञानका आत्माका स्वभाव है। यहाँ जितने कषायोका परिणमन है वह कुछ भी इस ज्ञानस्वरूपमे नहीं होता है। शान्ति तो ज्ञानमात्रके दर्शनमे ही है। क्यो शान्ति है ? ज्ञानमात्रमे ज्ञानमात्र स्वरूपको सोचो कि मैं केवल जाननमात्र हूं, जानन ही मेरा कार्य है तो वहाँ विकल्प नहीं हो सकते। सो शान्तिका मार्ग शीघ्र मिल जायगा। अपने आपको जैसा मानता है तैसा ही बन जाता है।

कोई किसीके लडका पैदा होता है, पहला ही लडका है, तो उस पुरुषके विचार ढंग रहन सहनमे बुजुर्गी मानने जैसा अन्तर आ जाता है। मैं तो अब लड़को बच्चो वाला हो गया हू—इस प्रकारकी भावनाएं आ जानेसे उसमे कुछ फर्क आ जाता है। कोई लडकी है, जब तक उसकी शादी नहीं होती है तो वह किसी चीज की परवाह नहीं करती है। कहीं इधर बैठ गयी, कहीं उधर बैठ गयी, न शरीरका ध्यान रहता है न कपडे लत्तेका ध्यान रहता है पर जब भाँवर हो जाती है तब उसमे अन्तर हो जाता है। धीरे धीरे चलना फैल करके न चलना, संकोच करके चलना आदि आदि। यह कला उसे कौन सिखा देता है ? अगर शादी हो गयी तो कायदा करती हैं। क्या उन्हे पहिले से ही सिखा दिया जाता है ? नही। ऐसा परिणाम अपने आपमे आ जाता है। जब मनुष्य है तो रोटी, दाल, भात खाते रहते हैं और अगर मनुष्यसे मिटकर पशु हो गए, गाय हो गए तो घास खाते हैं। गतिके अनुकूल परिणमन हो जाता है। अगर कोई गाय बन गया तो क्या हलुवा पूडी खायगा ? वह तो घास ही खाना चाहेगा और खावेगा। और अगर कोई गाय मरकर मनुष्य हो गया तो क्या घास खावेगा ? वह तो हलुवा पूडी खावेगा, भूसा नही खावेगा।

यही पर जीव भटकते रहते है। घरके जो दो चार मोही प्राणी बच्चे, स्त्री आदि

हैं उन्हीसे मोह किया करते है। अगर मरकर किसी दूसरी जगह चले गए तो वहां भी मोह करके अटक जाते हैं। यह अमुक है आदिसे मोह करना कुछ नही, केवल विकल्प है। शान्ति तो ज्ञानमात्र अवस्थामे मिलेगी। मैं जाननमात्र हूं, ऐसा उपयोग बन गया तो वहाँ शान्ति मिलती है। नही तो कितने ही यत्न करे पर शान्ति नही मिलती है। तो मैं अपने ही ज्ञानस्वरूपको देखकर अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होऊं। शान्ति एवं आनन्द स्वयंमे है और स्वयसे ही प्रकट होता है।

एक सेठ थे। उनकी स्त्री थी। सेठ जब भोजन करने बैठते तभी उसे शिकायतोका टाइम मिलता था। देखो अमुक चीज आपके लिए है, हमारे लिए नही है, अमुक चीजोंके लिए कबसे कहा जा रहा है किन्तु अब तक भी पता नही है आदि बातें कर सताया करती थी। मगर वह पुरुष शान्त था। वह अपना भोजन तो करता ही था। सोचता था कि कितना ही शिकायतें करे पर भोजन क्यो छोड़ ? एक दिन सेठ सीढीसे नीचे उतरे। उतरते ही गुस्सेमे आकर सेठानीने दालका धोवन सेठके ऊपर डाल दिया। सेठकी पगडी वगैरह भीग गयी। अब सेठ सेठानीसे कहते हैं कि देवी तुम गरजी बहुत थी पर बरसी आज हो। अब सेठानीको देखो तो काटो तो पसीना नही। सेठानी बोली कि आप बहुत ही साधु पुरुष हैं। मैंने बहुत गुस्साकी पर आपको गुस्सा नही आता है। तो भाई! अगर कोई शांत रहे तो दूसरेके भी शान्तिका असर पहुंचता है।

भय्या! दो ही तो चीजें हैं—(१) ज्ञान और (२) शांति। व्यवहारमे दो ही चीजें हैं—(१) ज्ञान और (२) शांति। गृहस्थीको भी ज्ञान और शान्तिको न त्यागना चाहिए। किसीके ज्ञान और शान्ति थोड़ी है और किसीके बहुत है। कोई भी त्यागी हो, जरासा भी कुछ न जानता हो, फिर भी लोग उसको मानते हैं जो आदर्श शान्तिपूर्वक रहता है। अगर ज्ञान भी न हो, शान्ति भी न हो और चाहे कि लोग हमारा सम्मान करें तो यह कैसे हो सकता है ? शान्ति और ज्ञान नही है तो दुःख रहते हैं।

इन्द्रिय विषय शांतिके लिए हो तो बतलाओ। लोग यद्यपि साधारणतया जानते है कि सब मिट जावेंगे फिर भी मोह करते हैं। अगर मोह बाह्यसे है तो ज्ञान कैसे प्राप्त होगा ? अब भीतरसे बोध हो तब तो भीतर वह असर करता है। मैं कुछ नहीं करता। मेरा कोई काम नही है। मेरा काम तो शुद्ध होनेका है, निर्विकल्प होनेका है। यदि यह विचार न बना तो संसारमे भटकना ही पडेगा। और ऐसा ज्ञान बने कि मेरा काम शुद्ध होनेका है, निर्विकल्प होनेका है तो शान्ति मिल सकती है। सो मैं अपने ज्ञानमात्र स्वरूपको देखकर अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होऊं।

रागादिवर्णतः प्रत्यग्ज्ञाते प्राप्स्यामि शं शिवम् ।
विकल्पो विह्नकृद्यातु स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४६॥

पदार्थ स्वय अपने आप जैसे हैं वैसे ही रूपमें उनका ज्ञान हो जाना, यही ज्ञानयोग है, समाधि है, कल्याण है । मैं आत्मा अपने आप स्वयं अपनी सत्तासे क्या हूं, इस बातकी समझ ही सर्व शिव है । जगतमे क्या क्लेश होगे ? परपदार्थोंके परिणमन चलते है उनको लक्ष्यमे लेकर, ध्यानमें लेकर, बहिर्मुख बनकर यह आत्मा अटपट ख्याल बनाया करता है—इतना ही तो दुःख है । इसके आगे हम और आपको क्या दुःख है ? ख्याल बनाना इतना ही हमारा ऊधम है । परपदार्थोंका ख्याल कर लिया और दुःखी हो गये । कुछ करनेको काम पडा है, इतनी पर्याय बुद्धि की कि विवश हो गए । इसीलिए भाई ! पर्यायबुद्धिता हो तो दुःखी होना ही पडेगा । अभी देखो प्रायः प्रत्येक बन्धु अपने भीतर बडी बडी अटक बनाए हुए है । घरकी अटक है, धनकी अटक है, रोजगारकी अटक है, इज्जतकी अटक है और नही तो दुःख कहां है ? दुःख नामकी चीज क्या बताओगे ?

कुछ सोच लो, देख लो, बता दो कि वास्तवमे दुःख क्या है ? जिन युक्तियोसे अच्छी तरह बताया जा सके कि भाई यह दुःख है । भाई इन समस्त दुःखोका एक ही आधार है । वह आधार है अज्ञान । यदि अज्ञानको मिटा दो, अज्ञानको दूर कर दो तो क्लेश मिट जावेंगे भाई ! कुछ भी हो, इन बाह्यपदार्थोंसे तुम्हारा क्या पूरा पड़ेगा ? देहातोमे एक कहावत है कि 'लेवा मरे या देवा, बलदेवा करे कलेवा ।' कोई बलदेव नामका दलाल था । इनका माल वहां करवा दिया और उनका माल यहां करवा दिया, यही काम था । बेच खरीदमे कोई विवाद हो गया सो बलदेवा कलेवा करता हुआ मनमे कहता है कि लेवा मरे या देवा, बलदेवा करे कलेवा । कलेवा कहते हैं मौज करने को, खाने पीनेको ।

जब एक अपने आपके सही स्वरूपका पता पा लिया तो बाह्यपदार्थ चाहे यो परिणमे चाहे यो परिणमे क्लेश नही प्राप्त होते है । बाह्यमे कुछ हो, ज्ञानी तो अन्तरमे प्रसन्न रहता है । जब यह समझमे आ जाय कि मैं क्या हू तब धर्मका मार्ग भी प्रकट होता है । यथार्थज्ञान किये बिना अपने आपके दिलको जबरदस्ती कही लगाओ, व्रत, तप आदिमे लगा लो, केवल जबरदस्तीकी बात है । आपने अगर अपना उपयोग धर्ममें लगाया तो यह सम्यक्त्व है । सम्यक्त्वके सीधे रास्तेकी बात यह है कि अपने आपकी सहज स्वरूपसत्ताको पहिचान लो । इसीसे सब ठीक हो जायगा । मोक्षका मार्ग प्राप्त हो जायगा ।

केवल एक अपने आपके स्वरूपका पता सही नही है, बाह्यपदार्थोंमे अपना उपयोग लगा रहे हैं, और धर्मके कार्य भी कर रहे है । कार्य क्यो कर रहे हैं ? वह धर्मके वास्ते

दिनचर्या या रोटीन बन गयी है।

सत्यकी झलक आ जाय, आनन्दका अनुभव हो जाय तो सारी परेशानियोकी झलक विलीन हो जायगी। जब तक अपने सत्यस्वरूपका अनुभव नही है, अपने सही स्वरूपका परिचय नही है, यह नही पता है कि मैं क्या हू तो उसे क्लेश ही रहेगा।

भैया! परपदार्थोंका अवलम्बन छोड दो तब आत्मस्वरूपका अनुभव कर सकोगे। मैं अपने आप क्या हू, यह जानना चाहू और बाह्यपदार्थोंका अवलम्बन राग द्वेष बनाए रहूँ तो अपने आपके स्वरूपका पता नही चलेगा। सबसे बडा और मोटा काम जल्दी कर लेनेका यह है कि परको पर जानो, अहित जानो और परसे उपेक्षा करो। परपदार्थोंको अपने उपयोग मे लानेकी जरूरत नही। इतना करनेपर अपने भीतरमे दृष्टि डालो तो अपने स्वरूपका पता लग जायगा। बाह्यपदार्थोंको अपने उपयोगसे छोडोगे, उन्हे पर जानोगे तो अपने आपके स्वरूपका पता नही चलेगा। सबसे बडा और मोटा काम जल्दी कर लेनेका यह है कि परको पर जानो, अहित जानो और परसे उपेक्षा करो। परपदार्थोको अपने उपयोगमे लानेकी जरूरत नही। इतना करनेपर अपने भीतरमे दृष्टि डालो तो अपने स्वरूपका पता लग जायगा। बाह्यपदार्थोंको अपने उपयोगमे लानेकी जरूरत नही। इतना करनेपर अपने भीतरमे दृष्टि डालो तो अपने स्वरूपका पता लग जायगा। बाह्यपदार्थोंको अपने उपयोगसे छोडोगे, उन्हे पर जानोगे तो अपने आपके स्वरूपका पता सुगमतया लग जावेगा, कल्याण होगा। परको अपनाना और शान्ति पाना दोनो एक साथ नही हो सकते।

एक कथानक आता है कि दो चीटी थी। एक रहती थी शक्करके बोरोंमे, खूब शक्कर खाया करे और दूसरी चीटी एक नमककी दुकानमे रहती थी, वह भी जब भूख लगती तो जो कुछ नमक मिलता वह खा लेती थी। किसी तरहसे नमक आदिसे अपना पेट भर लेती थी। एक बार शक्करके बोरोमे रहने वाली चीटी नमककी दुकानमे रहने वाली चीटीके पास गयी। बोली कि बहिन! यहाँ तो तुम्हे बडा दु ख है। यहाँपर खारा खाना है, मैं तो यहाँ पर एक घटा भी नही ठहर सकती। नमककी दुकानमे रहने वाली चीटी बोली—क्या कहती हो, यहाँ तो बडा आनन्द है, मौज है। अरे यहाँसे ज्यादा आनन्द वहाँ है जहाँ पर मैं रहती हू। यह बताकर शक्करके बोरोमे रहने वाली चीटी नमककी दुकानमे रहने वाली चीटोको लेकर अपने यहाँ गयी। नमककी दुकानमे रहने वाली चीटीको यह विश्वास न हुआ कि वहाँ पर कोई बढिया चीज मिलेगी सो अपने मुहमे नमकीन डली दबाकर चली। इस तरह अपना एक दिनका नाश्ता साथमे ले लिया। शक्करमे रहने वाली चींटीने कहा कि बहिन! विलक्षण आनन्द आया यहाँ या नहीं? फिर पूछा कि क्या आनन्द आया तो नमक

की चीटी बोली कि कोई आनन्द नही आया । शक्करकी चीटी बोली कि तुम चोंचमें क्या लिए हो ? बोली कि नमककी डली । अरे तुम तो नमककी डली दबाए हो इसलिए आनन्द नही आया । नमककी दुकानमे रहने वाली चीटी बोली कि मैंने सोचा था कि शायद वहाँ कुछ न मिले इसलिए उसे साथमे ले लिया था । शक्करमे रहने वाली चीटी बोली कि अरे इसे हटा दो । अपनी चोचको साफ करलो, तब शक्करके कणोको खावो तो आनन्द आयेगा।

तो हम करते हैं धर्ममे क्या कि मदिर रोज जाते है और अपनी चोचमे, अर्थात् अपने दिमागमे बाह्य चीजोको बसाए हुए रहते है । अगर हम बाह्य चीजोको मंदिरमें दर्शन करनेमे भी बसाए रहते हैं तो उससे कोई लाभ नही होता है । न तो शान्ति ही प्राप्त होती है और न आनन्द ही मिल पाता है । प्रभुके दरबारमे आए हैं, प्रभुकी भक्तिको तैयार है तो एक बार तो हृदय साफ होना चाहिए ।

दिमाग दिलकी सफाई यही है कि अपनी सहज सत्तास्वरूपमे अपने को देख लो । जिसमे अपना चतुष्टय हो, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव हो, अन्य सबसे जो विविक्त हो उस अपने आपको जानो कि मैं क्या हूं ? परको जाननेसे कोई प्रयोजन नही । परपदार्थोंसे तुम्हारा नाता ही क्या है ? जिनका जैसा स्वरूप है वैसा ही मानना, ये ही ज्ञान है । ऐसी हिम्मत करो, ऐसा साहस करो, ऐसा उपयोग बनाओ, ऐसी स्वच्छ, साफ निर्लेप भूमिका बनाओ कि बहिर्मुखी दृष्टि हट जाय तो अपने आपके स्वरूपका पता लगाना सुगम है । अपने आपको यह पता लग जायगा कि मैं क्या हू ? मैं एक ज्ञानमात्र विलक्षण वस्तु हू, दुनियामे सब पदार्थोंसे विलक्षण, समस्त जीवोमे एक रस, चैतन्यमात्र हू, ऐसी जब जीवके स्वरूपकी दृष्टि पडती है तो बाह्य चीजोसे कुछ लगाव नही रह जाता है । तो जब मैं अलग हूं तो मेरा जगत्मे कुछ नही रहा ।

जब मैं भीतरमे उठने वाले रागादिक भावोसे न्यारा होऊं, परपदार्थोंसे प्रकट न्यारा होऊ और अपने आपमे यह भाव बने कि मैं केवल जाननमात्र हू, जानन ही मेरा स्वभाव है । जाननके अतिरिक्त मेरा कोई काम नही है । मैं एक हू, अछूता हूं, ऐसा विलक्षण पदार्थ मैं एकचेतन हूं, ऐसा ज्ञान यदि अपने आपमे आवे तो शान्ति प्राप्त होगी, अनुपम आनन्द प्राप्त होगा । यदि मैंने इतना अपने आपको जान लिया तो शुद्धस्वरूपकी पहिचान पूर्णरूपेण हो सकती है । इस अनोखे काममे बाधा डालने वाली कोई चीज है तो वह केवल विकल्प है । विघ्न डालने वाली चीज केवल विकल्प है ।

भैया ! ये विकल्प सतानेके लिए आते हैं, विघ्न डालनेके लिए आते है । ये विकल्प ही दुःखोकी परम्पराको बनाया करते हैं । सो अपने सहज स्वरूपका विचार कर विकल्पोसे

रहित तथा रागादिक भावोसे रहित अपने आपको देखूं व यह अनुभव करूं कि मैं केवल ज्ञानमात्र हू। अपनेको केवल ज्ञानस्वरूप नजर आए तो अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी हो सकते हो। अगर अपने इस स्वरूपका पता नहीं है तो जगत्मे रुलना ही बना रहेगा, शान्ति नहीं मिल सकेगी। यदि अपने स्वरूपकी दृष्टि रहे, इस दुनियाँमे अपने आपके स्वरूपको जान लिया तो असीम आनन्द प्राप्त होगा। यदि व्यर्थकी बातें सोचते रहे तो सदा दुःख ही प्राप्त होते रहेगे। बाह्य वस्तुवें मायामयी चीजें हैं। उन बाह्यवस्तुवोसे पूरा नहीं पडनेका है। यदि अपने स्वरूपको जान लिया तो मैं सुलझ गया, फिर कष्ट मुझे सता नहीं सकते। इतना साहस हो जायगा कि यदि कभी कष्ट आ जायें तो उनको झेलनेके लिए तैयार हो जाऊंगा।

यह सब अपने ज्ञानस्वरूपके कल्याणका प्रताप है। अगर ज्ञान है तो सब कुछ है और अगर ज्ञान नही है तो कुछ नहीं है। जन्म हुआ, फिर मरण हुआ। फिर वही शरीर आ गया। फिर वही हाल हो गया। इस जन्म मरणके चक्रसे मुक्तिके लिए स्वाधीन उपाय करनेका काम है, भीतरमे ज्ञान उत्पन्न करनेका काम है। बनावट, दिखावट, सजावट इत्यादि का काम नहीं है। जिसमे अपने कल्याणकी भावना हो गयी है वह छिपे छिपे ही अपने आप सुखी हो जाता है, अपना शुद्ध धर्म कर लेता है।

एक बुढिया थी। उस बुढियाका एक छोटा लडका रुलिया था। रुलियासे बुढियाने कहा कि बेटा जा बाजारसे साग खरीद ला। रुलिया बोला कि बाजार मुझे न भेज, क्योंकि बाजरमे मैं रुल जाऊँगा।

बुढ़िया बोली कि अच्छा बेटा! लो यह धागा कलाईमे बाँध लो तब फिर तुम नही रुलोगे। माँ बोली—बेटा, अब तुम निःशंक होकर जावो। जब तक यह धागा कलाईमे है तब तक नही रुलोगे। अब वह रुलिया धागा बांधकर बाजार चला। भीड भडक्करमे वह धागा कच्चा होनेके कारण टूट गया। अब तो रुलिया रोने लगा। बोला—देखो माँ मैंने तुमसे कहा था कि मुझे मत भेजो, मैं रुल जाऊँगा। लो अब मैं तो रुल गया। बुढ़िया बहुत परेशान हुई। बुढ़िया बोली—अच्छा बेटा तू सो जा, थक गया होगा। रुलियाके सोतेमे ही बुढियाने धागा कलाईमे बांध दिया। जब सोकर रुलिया जगा तो बुढिया बोली कि देख बेटा तेरा धागा कलाईमे है तो। रुलिया बोला कि हाँ माँ! मेरा मैं मिल गया।

देखो जैसे रुलिया धागेको न देखकर अपनी माँ से कहता है कि हाय मैं तो रुल गया, उसी प्रकारसे ये जगत्के मोही प्राणी अपने चैतन्यस्वरूपको न देखकर कहते हैं कि हाय मैं तो रुल गया। भैया! परवस्तुमे ज्ञान आनन्द ढूढना ही तो रुलना है। हम चेतन पदार्थ हैं,

हमारा यह कर्तव्य है कि जो यह उपयोग तूफान मचा रहा है उसको अपने चित् स्वरूपसे बांधे रहो।

हम अपने ज्ञानस्वरूपको खोल ले और अपने आपको यह अनुभव करें कि मैं आनन्द-मय हू, विलक्षण पदार्थ हू, किन्तु सर्व जीवोमे एकस्वरूप ज्ञानमात्र पदार्थ हूं। दृष्टान्तके अनु-सार यहां समझो कि जिनवाणी माताने मुझ बच्चेके उपयोगरूपी कलाईमे चैतन्यस्वरूपका धागा बांध दिया है। देखो वह बुढिया थी तो अब यह मां भी बूढ़ी अर्थात् वृद्ध याने बढ़ी हुई सर्वोत्कृष्ट हो गयी है। अब तो बूढ़ी मां तुमको समझा रही है। धागा बांधती है, बार-बार प्यार करके कह रही है कि जिसमे चैतन्यस्वरूप है वही तू है। जब चैतन्यस्वरूपकी दृष्टि टूट जाती हैं तब तू रुलता फिरता है। सो अब अपनेको देख और सुखी हो।

मैं अपने आनन्दकी तलाशमे इधर-उधर घूमता हूँ, फिर भी आनन्द नही मिलता है। अरे मैं तो स्वयं आनन्दमय हूं। मेरेमे आनन्द कही बाहरसे नही लाना है। मैं तो ज्ञान और आनन्दको लिए हू। ऐसा ज्ञानमात्र, सबसे निराला जाननस्वरूप हू, जानन ही मेरा काम है। जाननके अतिरिक्त मेरा अन्य कोई काम नही है। मैं सबसे अछूता एक विलक्षण पदार्थ हू। इतना पता होनेसे मेरा कल्याण हो सकता है।

देशो देहश्च भिन्नात्मा विकारस्तस्य योगतः।
सर्वे भिन्नाः स्वतस्तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४७॥

देश और देह ये भिन्नस्वरूपी हैं। इनसे मेरा सुधार बिगाड़ नही है, किन्तु उनके योगसे अर्थात् उनको विषयभूत बनाकर इस आत्मामे विकार ही उत्पन्न किये जाते हैं। ये सबके सब मुझ इस सबसे भिन्न हैं। मैं यह स्व केवल चैतन्यस्वरूप हू। इसमे तो विकारको भी अवकाश नही है, इसी कारण स्वरसतः आत्मामे आत्माके स्वरूपास्तित्वके कारण विकार नही होते। विकार होते हैं, किन्तु ये दर्पणमे प्रतिबिम्ब छायाकी तरह होते हैं ये अपने आधारमे जमाव नही रखते। इन परभावोको अपनानेके ही अपराधमे यह विकार बढ़ता रहता है। यह विकार कैसे मिटे, तो इसका प्रारम्भ ज्ञानसे ही होता है और ज्ञान भी ऐसा ज्ञान जो ज्ञानके स्वरूपके ही जाननेमें समर्थ हो जाय। यह बात भी तब हो पाती है जब हम ज्ञानातिरिक्त भावोके स्वरूपका परिचय पा लें। पृथक् प्रदेशवान् देह देशादिकी तो कथा ही क्या की जावें, जब तक आत्मभूमिमे प्रतिभास विकारभावोका भी अङ्गीकार है तब तक वह अज्ञानी है।

देखो भैया! प्रत्येक मनुष्यके मनमे यह इच्छा होती है कि मै पदार्थोंका सही-सही ज्ञान करूं। किसी भी मामलेमे जब यह शक होता है कि जो मे जान रहा हूं वह सच है या

नही। इससे ही उसे आकुलताएँ हो जाती हैं। और जब तक ये आकुलताएँ रहती हैं तब तक उसे चैन नही मिलती है। उसे चैन तब तक नही मिलती है जब तक कि पदार्थोंको सही जान न जाय। इस कारण पदार्थोंको सही सही जानना ही आनन्द प्राप्त करनेका उपाय है। पदार्थोंको सही सही जाननेकी तरकीब क्या है? इस तरकीबको जैनसिद्धान्तने स्याद्-द्वाद याने अपेक्षावाद माना है। अन्य वैज्ञानिक विद्वानोने भी अपेक्षावाद नामसे कहा है। जैसे हम किसी मनुष्यके बारेमे सही जानकारी करना चाहते है तो उस मनुष्यके बारेमे नाना अपेक्षाओसे ज्ञान करेंगे। यह जानेंगे कि यह अमुकका पिता है, अमुकका लडका है, अमुक व्यापार करने वाला है, अमुक सभा सोसायटीका मेम्बर है आदि अनेक बातोकी जानकारी करनी पडती है। बीसो बातें उसकी जानकारीके लिए ज्ञात करनी पडेगी। ये ज्ञान अपेक्षा लेकर है। जैसे यह पिता है तो सबका पिता नही है, यह पुत्र है तो सबका पुत्र नही। यह पुत्र तो अमुक बुड्ढेका है। पीछे अपेक्षाकी बात लगा लगाकर इसकी बात कही जा रही है। जैसे चौकीको जानना है तो कहेगे कि यह चौकी कैसी है? तो यह ५ फिट लम्बी है, ३ फिट चौडी है और २ फुट ऊंची है तो ५ फिट लम्बाईकी अपेक्षा है, ३ फिट चौडाईकी अपेक्षा है और २ फिट ऊंचाईकी अपेक्षा है। किसी अन्य पदार्थकी जानकारी करना होती है तो नाना बातें जाननी होती है। कैसे सही जानूं और कैसे बात मैं स्वय समझूं? इसका किसी एक हठसे ज्ञान नही होता है।

जैसे एक दृष्टान्त है कि ४ मनुष्य जो अधे थे एक हाथीकी परीक्षा करनेको चले। एक अंधे ने पैर पकडा तो बोला कि अरे यह तो खम्भा जैसा है। एक अधे ने कान पकड़ा तो बोला कि यह तो सूप जैसा है। एकने पेट पकडा तो बोला कि यह तो मोटे ढोलका जैसा है। एक अधेने पूंछ पकडी तो बोला कि हाथी तो कटीला होता है। चारोके भिन्न-भिन्न उत्तर आए। चारोमे विवाद हो गया, लडाई हो गयी, मार पीट हो गयी। पेट पकडने वाला अधा बोला कि हाथी तो ढोलका जैसा है, पैर पकडने वाला अंधा बोला—नही यह तो खम्भा जैसा मोटा है, पूँछ पकडने वाले अंधेने कहा——नही, नही यह तो कटीला है, कान पकडने वाले अधेने कहा कि अरे नही यह तो सूपका जैसा है। इस तरहसे चारो अधोमे लडाई हो गयी। बादमे कोई सूझने वाला आया, बोला—हाँ, भाई सबकी बात ठीक है। उन्हे अपेक्षा समझा दी अन्य अङ्गोका स्पर्श करा दिया। इसी तरह भैया! किसी पदार्थके बारेमे सच्चा निर्णय जब अनेक अपेक्षाओसे किया जाता है तब सच्चा निर्णय कहलाता है।

अब भैया! आत्माके सम्बन्धमे जानकारी करना हो तो स्याद्वादका प्रयोग करना

कि यह आत्मा क्या पदार्थ है ? जिस आत्मामे ज्ञान और आनन्दभाव ही नजर आता है। ज्ञान और आनन्दस्वरूपको जाननेसे ही आत्माकी जानकारी होती है सो यह ज्ञानानन्दघन आत्मतत्त्वके बारेमे प्रश्न किया जाता है कि बतलाओ यह आत्मा नित्य है या अनित्य, अर्थात् आत्मा सदा रहने वाली चीज है या मिट जाने वाली चीज है ? क्या उत्तर आयेगा ? आत्मा एक सत् है जो सदा रहने वाला है, कभी नाश नही होता है इस दृष्टिसे तो आत्मा नित्य है। कोई भी वस्तु हो वह सदा रहती है सिर्फ शक्ल बदल जाती है। हवाका पानी बन जायगा, पानीकी हवा बन जायगी, हवा गैस बन जायगी। कुछ भी परिवर्तन हो मगर जो चीज है उसका कभी नाश नही होता है। जो सत् है उसका विनाश नही होता है। यह आत्मा सदा रहने वाला है, अविनाशी है। मगर एक ओरसे देखो जो चीज होती है उसका प्रतिक्षण दशा मे परिवर्तन हुआ करता है। जैसे कि वर्तमान समयमे आदमियोकी कई शकलें है। हम और आपमे देखो कितनी शक्लें बनी रहती हैं। विषयकषायोमे रत रहते हैं। पशु पक्षियो इत्यादि नाना योनियोमे भ्रमण किया करते हैं। यही उनकी परिणतियाँ हैं। जो बात उनकी अब हम देखते हैं वह सदा नही पायी जाती है। जब परिणतिके आधारको देखो तो अनेक परिणतियोमे रहकर भी अपनी स्वरूप सत्तामे चलते हैं।

जैसे एक अंगुलीको कोई पूछे कि कैसी है तो कहेगे कि अंगुली सीधी है, टेढ़ी है, नाना रूपोमे बन जाती है, तो नाना रूपोमे अगुली बदलती है, सो ठीक है। मगर नाना रूपो मे बदलने वाली अगुली एक है कि नाना हैं वह तो एक है। जो पर्याय है वह माया है, अनित्य है और जो एक कुछ है वह परमार्थ है। परमार्थसे ब्रह्म और व्यवहारसे मायामे कैसा सम्बन्ध है कि ब्रह्मके बिना माया नही ठहरती और माया बिना ब्रह्म नही ठहरता। परमार्थसे यह सत्य है। असत्यके बिना सत्य नहीं ठहरता और सत्यके बिना असत्य नही ठहरता। सत्यके समयमे असत्य भी है और असत्यके समयमे सत्य भी है। असत्य तो यह विकल्प ससार है। तो आत्मा क्या है ? सत्यदृष्टिसे देखो, स्वभावदृष्टिसे देखो तो आत्मा नित्य है। और परिणतिकी दृष्टिसे देखो तो आत्मा एकरूपमे टिकने वाली नही मिली, अतः आत्मा अनित्य है।

अब बतावो आत्मा एक है कि नाना है। आत्मस्वभावको देखो तो आत्मा एक है, किन्तु जब पर्यायदृष्टिसे देखो तो नाना छायारूप बनाने वाले नाना रूपोके कारण नाना बन गए और चतुष्टयकी अपेक्षासे भी आत्मा नाना हैं। इस कारण आत्माके बारेमे पूछो कि यह आत्मा एक है कि अनेक है तो उत्तर दोनो होगे। आत्माका स्वरूप चैतन्य है, चित्स्वभाव

है । उस चिदानन्दशक्तिमें दृष्टि दो तो आत्मा एकस्वरूप मालूम होता है, कोई अन्य रूपोंमें नही मालूम होता है । देखिये भैया, इन सबलोका कितना भारी अन्तर पाया जा रहा है ? आपका दिमाग और प्रकारका है, इनका दिमाग और प्रकारका है । भिन्न-भिन्न परिणतियाँ लिए हुए हैं । परमार्थदृष्टिसे देखो तो ये सब एकस्वरूप हैं । आत्मा केवल नजर नही आता है । जो उसका स्वरूप है वही स्वरूप मेरा है । जो आपका स्वरूप है वही सब जीवोका स्वरूप हैं । स्वरूपकी दृष्टिमें एकका दूसरेसे कोई अन्तर नही नजर आता है । जिस दृष्टिसे स्वरूपमे अन्तर नही नजर आता है उस दृष्टिसे अहंकार मिट जाता है । इज्जत और पोजीशन अहंकारको बढ़ाते हैं । इसीसे योगी जन पोजीशनका विकल्प छोडकर अपने आत्मस्वरूपमे रमते हैं ।

'रमन्ते योगिनो यस्मिन्निति रामः'—जहाँपर योगीजन रमते हैं वही राम है । उसे ही आत्माराम कहते हैं । आत्माके साथ राम शब्द लगा हुआ है । वह आत्मा स्वरूपसे एक है, परन्तु जब अनुभवसे देखते हैं, परिणतिसे देखते हैं तो सुख, दुःख, भ्रम, शांति सबके न्यारे-न्यारे अलग-अलग होते रहते हैं, जुदा-जुदा अनुभव होता रहता है । जब परिणतिकी दृष्टिसे देखते हैं तो आत्मा अनेक नजर आते हैं । आपकी आत्माके बारेमे यह प्रश्न है कि आत्मा एक है कि अनेक हैं ? उत्तरमे आता है कि स्वरूपदृष्टिमे तो आत्मा एक है और अनुभवकी दृष्टिसे आतमा अनेक हैं ।

भैया ! आत्माके बारेमे जितने अधिकसे अधिक धर्म जान सकें उतने अधिक धर्म जानने चाहिएँ । फिर जाननेके बाद उन सबको छोड देना चाहिए और अपने आपमे अनुभव आवे कि मैं आत्मा ज्ञायकभावमात्र हूं । आत्माकी पहिचानके नाना उपाय हैं । नाना उपायो से जानो और फिर जब जान चुको तो विकल्प छोड़ दो, फिर आनन्द प्राप्त करो । जैसे भोजन बनाते समय कितना ख्याल रखना पडता है ? घी इतना हो, शक्कर इतनी हो, हलुवा इतना बने आदि विकल्प हर तरहसे कर लेते हो, पर खाते समय यह ख्याल न रहे कि यह ऐसा बना है, यह ऐसा बनना चाहिए था । वहाँ तो केवल स्वादका ही अनुभव रहे । जैसे उस स्वादके अनुभवमे नाना जानकारियाँ करनी होती हैं उसी तरह आत्माके जाननेके लिए नाना जानकारियाँ करनी पडती हैं । यदि बाह्यकी उपेक्षा रहे, सबको भूलकर अपनेमे रमता रहे, ज्ञानज्योतिका अनुभव करता रहे, तो आत्माको यथार्थ जान जायगा व कभी मुक्ति प्राप्त कर लेगा ।

यह तो अन्तर वृत्ति रहे और बाह्यमे हमारी वृत्ति क्या होनी चाहिए तो इसके लिए आवश्यक ६ कर्तव्य हैं—गृहस्थीका पहला काम क्या है कि हृदयमे 'प्रभुकी भक्ति रहे । प्रभु

की भक्ति बिना हृदय साफ नहीं होगा। राग द्वेष आदि ऐबोंसे परे केवल ज्ञानमात्र उत्कृष्ट, परमपावन प्रभु उपयोगमे रहे। प्रभुका ही ध्यान करे तो हृदय स्वच्छ होता है, पवित्र होता है। इससे गंदगी दूर होती है और फिर धर्मके आचरणमें मन होता है। यही है तुम्हारी प्रभु भक्ति। गृहस्थीका दूसरा काम है गुरुकी उपासना करना। प्रत्येक गृहस्थको अपने गुरुकी उपासना करनी चाहिए। ऐसा निर्णय करे कि किसी भी प्रकारकी बाह्य भाववृत्ति न रहे सो शान्तिका मार्ग है। ऐसी वृत्तिसे रहने वालोंके संगमें ऐसी ही शिक्षा मिलती है। तीसरा काम है स्वाध्याय। प्रत्येक गृहस्थमें ज्ञान और वैराग्य उत्पन्न होना चाहिए। राग द्वेष हटानेका उपदेश करना, ध्यान करना, पुण्य करना, पाठ करना, यही तो स्वाध्याय है।

चौथा काम है गृहस्थ सयमसे रहे। जो मनके विचारभावोमे न बह जाय। मन अगर सोचे कि इतनी सम्पदा चाहिए, इतना वैभव चाहिए। इन विचारोंमे अगर ढल गए तो यह तो असंयम है, यह तत्त्वकी बात नही है। संयम मनका निरोधमे है सो मनपर कन्ट्रोल रखना चाहिए। भैया! किसको खुश करनेके लिए इतने यत्न करते हो, अपने आपको खुश करो।

एक कथा आती है कि बाप बेटा कहीं जा रहे थे। साथमे एक घोडा था। बाप घोड़े पर बैठा हुआ चल रहा था और बेटा पैदल चल रहा था। दोनो जिस गांवसे निकले, उस गांवके लोग बोले कि देखो बाप कितना बेवकूफ है कि आप तो घोड़ेपर बैठा जा रहा है और बेटेको पैदल चला रहा है। बाप बेटेसे बोला कि अच्छा अब तू बैठ, मैं पैदल चलूंगा। अब बेटा घोड़ेपर बैठ गया और बाप पैदल चलने लगा। दूसरे गांवसे निकले तो गांवके लोग यह देखकर बोले कि देखो बेटा कितना असभ्य है। आप तो हट्टा-कट्टा घोड़ेपर चल रहा है और बापको पैदल चलाता है। अब तो दोनो घोड़ेपर बैठ गये। तीसरे गांवसे निकले। गांवके लोग बोले कि मालूम होता है कि घोड़ा घरका नही है। दोनो ही बडे निर्दयी हो गये। इस तरहसे दोनोको नाम धर दिया। अब तो दोनो ही पैदल चलने लगे। चौथे गांवसे निकले तो गांवके लोग देखकर बोले कि देखो दोनो ही बेवकूफ हैं। अरे जब पैदल ही चलना था तो घोड़ा साथमे क्यों लिया? सो भैया! अच्छा कहने वाले बहुत कम हैं और बुरा कहने वाले बहुत हैं। उनका विकल्प करना मूढता है। अब यह सोचो कि मेरा कर्तव्य क्या है? लोग कैसे खुश होगे? इससे क्या? भलाई तो अपनी प्रसन्नतामे है। तो भैया! गृहस्थीका चौथा कर्तव्य है सयम। शुद्ध खाना खाओ, न्यायवृत्तिसे रहो। जो कुछ भाग्यवश प्राप्त हो जाय उसी को प्राप्त कर संतोष करो। जितना कमाओ उसका कुछ हिस्सा दानमे खर्च करो, और अपना कुछ हिस्सा अपनी गुजरके लिऐ रखो। अत्याचार और विषयकषाय न हो यही संयम है।

गृहस्थका ५वां कर्तव्य है तप करना, तपस्या करना। गृहस्थको जो भाग्यसे मिले

उसके यह ४-६ हिस्से कर ले। एक हिस्सा अपने गुजर-बसरके लिए रखो, एक हिस्सा अपनी विपत्तियोके लिए रखो। अपने कमाए हुए धनके थोडेसे हिस्सेसे गुजर बसर करो। तृष्णा न करो, यही तप है। यहां खूब सोच लो। परिवारके लोग, मित्र जन आदि ये कोई साथ नही देंगे। यदि अपने आपमे रमो, तप करो तो कल्याण हो सकता है।

गृहस्थका छटवां कार्य है दान करना। गृहस्थको दान करनेकी रुचि रखना चाहिए तभी उपयोग योग्य रह सकता है और कल्याण हो सकता है। ये सब आवश्यक कर्तव्य करे। किन्तु अन्तरमे भेदविज्ञानकी भावना बनाये रहे। देश और देह ये सब मुझसे अत्यन्त भिन्न हैं। देशके कहनेसे वे सब पदार्थ आ गये। जो पदार्थ भिन्न क्षेत्रमे हैं और देहके कहनेसे वे सब पदार्थ आ गये जो मेरे एक क्षेत्रावगाहमे हैं। सो इन समस्त परपदार्थोंसे मैं भिन्न हू। इस एकत्व विविक्त निजआत्मतत्त्वमे ही सतुष्ट होऊ, तृप्त होऊं। यही मात्र एक मेरा कर्तव्य कृत्य रह गया। इसके बाद तो मैं व्यक्त कृतार्थ हू। उक्त ६ कर्तव्योंमे से देवपूजाका सम्बन्ध तो देवसे है और शेष ५ कर्तव्योका सम्बन्ध अथवा सहयोग गुरुविहित है। देवपूजाका रहस्य भी गुरुप्रसादसे प्राप्त होता है। शिष्य और गुरुका सम्बन्ध पिता और पुत्रके सम्बन्धसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। जब कि पिता पुत्रको उत्पन्न करे और उसकी देहकी रक्षा करे, फिर भी उतना सम्बन्ध नही जितना कि साक्षात् शिष्य और गुरुका विलक्षण सम्बन्ध है। गुरु शिष्यका ज्ञान बनावे, पवित्र बनावे, जीवन किस तरहसे व्यतीत हो यह शिक्षा देवे। यही गुरुके कर्तव्य हैं। तभी तो शिष्य और गुरुका पवित्र सम्बन्ध है। इतिहासमे देखो बहुत सी शिष्य और गुरुके प्रति घटनाएं हैं। गुरु द्रोणाचार्य और अर्जुनके सम्बन्धमे बडी बडी घटनाए मिलती है। और और प्रकारके भी अनेक उदाहरण हैं। गुरु और शिष्यका सम्बन्ध बहुत ही पवित्र है। शिष्यका कर्तव्य होता है कि योग्य बने। शिष्य योग्य तभी बन सकता है जब कि तीन बातोका पालन करे। वे तीन बातें हैं विद्या, विनय और ब्रह्मचर्य। इन तीनो बातोंका पालन करे। जीवन नियमसे उच्च बनेगा। (इस बीचमे भोपा बिगड गया सो उसे दूर यहां वहां हटाया जा रहा था तब महाराज भी बोले कि देखो गडबड़ हुआ यह भोपा यह शिक्षा देता है कि जो गड़बड करता है उसकी यही दुर्गति होती है।)

परमार्थसे तो भैया! मुख्य बात विनयकी है। और काम जबरदस्ती किये जा सकते हैं। शिष्यकी जितनी विनय गुरुके प्रति हो उतना ही गुरु शिष्यसे प्रभावित होता है और काम तो जबरदस्ती भी करा लिए जा सकते हैं। मकान जबरदस्ती बनवा लियो, किसीका खेत जबरदस्ती जुतवा लिया, ये काम तो किए जा सकते हैं पर विद्याका काम जबरदस्ती नही हो सकता है। यह विद्या जबरदस्तीसे नही आती है। जितना ही शिष्यमें

गुरुके प्रति विनय होगा उतना ही गुरु शिष्यको अच्छी तरह बता सकेगा। और उतना ही अच्छा परिणाम हृदयमे शिष्य उतार सकेगा। जितनी ही शिष्यमे विनय होगी उतनी ही विद्या शिष्य गुरुसे प्राप्त कर सकेगा। जितना ही ऊधम (उद्दण्डता) शिष्यमें होगा, विद्या न प्राप्त हो सकेगी। मुख्य गुण विद्यार्थीका है विनय। गुरु जब कभी दिख पड़े तब प्रणाम करें, खड़े हो जावें यही विनयव्यवहार है। शिष्य अपने गुरुके प्रति यदि इतना कर सका तो वह वह अपने गुरुसे अच्छी शिक्षा प्राप्त कर सकता है। जब यह प्रवृत्ति होगी तभी विद्या गुरुसे खींची जा सकती है।

बच्चोंकी जिन्दगी तो बहुत अच्छी जिन्दगी होती है, बच्चे इसे नही जानते हैं। जो बच्चेसे बडे हो जाते हैं वे सोचते हैं कि विद्यार्थी जीवन कितने महत्त्वका जीवन होता है? इस विद्यार्थी जीवनमे ही चाहे मैं अपनेको बना लूं चाहे बिगाड लूं चाहे मैं अपने जीवनका सुधार कर लूं चाहे बिगाड कर लू। अपने जीवनको बनाने और बिगाडनेका आधार यह विद्यार्थी जीवन ही है। कोई जरासी बातोमें मजाक करें, किसी दूसरेकी खिल्ली करें अथवा किसीका महत्त्व न समझें तो वे अपने जीवनको सुधार नही पाते हैं। विद्यार्थी जीवनमे जैसी वृत्ति होगी वैसा ही आगे जीवन चलेगा। तो सारे जीवनकी जिम्मेदारी विद्यार्थी जीवनमे है। इस कारणसे स्वाधीनतासे विनयपूर्वक विद्याध्ययन करें तो इसीसे विद्यार्थीका हित है।

हमको तुम्हारे व्यवहारको देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। अभी यह बतलाया कि यहाँ हाल नही है तो घबडानेकी कोई बात नही है, हाल हो ही जायगा। पर अपने आपके कर्तव्य को सब लोग देखें तो जल्दी ही स्कूलका उत्थान होगा। इस स्कूलमे एक पीरियड धर्मका होना चाहिए। अंतमे मैं यही कहूगा कि वे गुरुजन अपने शिष्योको अपना पुत्र समझें। जब वे अपना पुत्र समझकर शिक्षा देंगे तो विद्यार्थी भी अपने जीवनको सफल बना सकेंगे। आज प्रसगवश श्लोकके विषयसे कुछ विषयान्तर हो गया है, किन्तु विषयान्तर भी नही, विषय तो सर्व धर्मवाक्योका आत्महित ही तो है।

नाकारो न विकल्पो न द्वैविध्यं न विपत्तयः।
स्वः स्व एव शिवस्तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४८॥

इस मुझ आत्मतत्त्वमें न तो आकार है, न विकल्प है, न द्विविधा है और न कोई विपत्तियां हैं। यह मैं स्व तो में स्व ही हूँ, स्वयं शिवस्वरूप हू, आनन्दस्वरूप हू, मै अमूर्त हूँ, रूपरसगंधस्पर्शरहित हू। अतः मुझमे आकार कैसे हो सकता है? प्रदेशविस्तारकी अपेक्षा भी स्वयं स्वतः मेरा आकार नहीं है। संसार-अवस्थामें तो देहका आश्रय आकार है और मुक्त अवस्थामे कम बढ़ होनेका कारण न होनेसे त्यक्त देहके प्रमाण आकार रह जाता है। मेरेमें

स्वयं कुछ आकार नहीं है।

विकल्प एक औपाधिक विकार है, यह मेरा स्वरूप नहीं है, कर्मविपाकका निमित्त पाकर आत्मभूमिकामे विकल्प तरङ्ग उठती है। उसका अन्वयव्यतिरेक कर्मविपाकके साथ है, सो यह विकल्प भी मुझमे नहीं है। जब विकल्प भी मेरेमे नहीं है तो द्विविधा और विपत्तियां मुझमे हो ही कहांसे सकतीं। आत्मा तो अपना एकत्व लिये हुए है उसमें द्वैतकी तो संभावना भी नहीं, और दूसरी वस्तुकी संभावनाके बिना विपत्तिकी भी सभावना नहीं।

यह आत्मा तो स्वयं साक्षात् धर्मस्वरूप है। धर्मके विषयमे समन्तभद्राचार्यने यह बताया है कि "संसारदुःखतः सत्त्वान्यो धरत्युत्तमे सुखे" जो प्राणियोको संसारके दुःखोसे छुड़ाकर उत्तमसुखमें धारण करता है उसको धर्म कहते हैं। लौकिक जनोकी दृष्टि केवल इस भव तक रहती है। इस भवमे मजा मौज कैसे रहे ? इस ओर दृष्टि रहती है तो विवेकी, ज्ञानी, साधु पुरुषोकी दृष्टि अपने आत्मसत्त्वपर रहती है। मोही जन केवल इस नरपर्यायको ही अपना पूरा काल समझते हैं तो ज्ञानी जीव अपनेको अनादि अनन्त समझते हैं। इस कारण ज्ञानी धर्मकी रुचि करते हैं, धर्म धारण करते हैं जिससे संसारके दुःखोसे छूटकर उत्कृष्ट आनन्द प्राप्त करते हैं।

धर्म क्या है ? 'अहिंसा परमो धर्मः' ही उत्कृष्ट धर्म है और हिंसा अधर्म है। अहिंसा क्या चीज कहलाती है ? इस अहिंसाका परमार्थस्वरूप क्या है ? जो परिणाम अपने आपके ज्ञान और अनुकूलतामे पहुचावें उस परिणामका नाम अहिंसा है। हिंसा न करनेका नाम ही अहिंसा है।

अहिंसा क्या है ? अपने प्राणोको दुःखोमे न डालना विषयकषायोको अपनेमें न समाना अहिंसा है। परमार्थमे हिंसा और अहिंसाका अभिप्राय यह है कि रागादि विकार होना हिंसा है और रागादि विकार न होना अहिंसा है और व्यवहारमे किसी जीवको न सताना अहिसा हुई और जीवोको सताना ही हिंसा हुई। व्यावहारिक हिंसा और अहिंसाका स्वरूप लोकमे अत्यधिक प्रचलित है। वास्तवमे अपने ज्ञानको निर्मल रखना अहिंसा कहलाती है और क्रोध, मान, माया, लोभ आदि परिणामोका करना हिंसा कहलाती है। हम अहिंसा कर सकते हैं तो अपनेमे ही कर सकते है। अगर हिंसा कर सकते हैं तो अपनेमे ही कर सकते हैं। दूसरोपर हिंसा और अहिंसा नही की जा सकती है। यह आपके वास्तविक स्वरूप की बात कह रहा हू। कोई मनुष्य दूसरे जीवको सताए दुःखाए और यह कहे कि मेरे परिणाम तो निर्मल हैं, मेरा सतानेका भाव नही है, तो यह नही माना जा सकता है। जो अपने स्वरूपसे हटकर बाह्यमे प्रवृत्ति करता है, दूसरोका दिल दुखाता है वह स्वयं अपने परिणाम

मलिन करता है। दूसरोंको कोई दुःख दे नही सकता है। जिसने अपने परिणामोको मलिन किया, दूसरोका दिल दुखाया, उनको कहते हैं हिंसक।

जो अपने ज्ञानको मलिन बनाए, दूसरोको सताए उसे हिंसक कहते हैं। जो हिंसा करता है वह अपने आपपर करता है, जो अहिंसा करता है वह अपने आप पर करता है। हिंसा करने वाला अपने ही ऊपर अपना घात करता है, अपने को ही बरबाद करता है। जगत्के जंजालोमे अपने आपको फंसाता है।

हिंसा ४ प्रकारकी होती है—(१) सकल्पी, (२) आरम्भी, (३) उद्यमी और (४) विरोधी। संकल्पी हिंसा वह है जिसमे इच्छापूर्वक अभिप्रायसे किसी जीवको दुःखी किया जाय, सताया अथवा मारा जाय। जैसे लोग शिकार खेलते हैं, किसी जीवको मारते हैं। दूसरी हिंसा है आरम्भी। रसोई करनेमे पीसनेमे, कूटनेमे, घरके आरम्भोमे जो हिंसा होती है उसे आरम्भी हिंसा कहते हैं। तीसरी हिंसा है उद्यमी। सावधानी रखकर नीतिका विचार करके रोजगार किया जाय फिर भी उसमे हिंसा हो जाय उसे कहते हैं उद्यमी हिंसा। कोई मनुष्य जान लेने आ जाये अथवा अपने परिवारमे किसीका शील भंग करने आ जाये ऐसे प्रसगमे दुष्टका मुकाबला किया जाता है। उससे मुकाबला करनेमे जो घात हो जाये उसे कहते हैं विरोधी हिंसा।

इन चार प्रकारकी हिंसाओमे गृहस्थ संकल्पी हिंसाका त्यागी बन सकता है। तीन हिंसाओका त्यागी नही बन सकता है। घरमे रहते तो चक्की चूल्हे आदि घरके कामोको करने पडते है। कुछ उद्यम करते है। कोई दुष्ट प्राणी आक्रमण करने आवे तो उसका मुकाबिला करना पडता है सो गृहस्थ तीन प्रकारकी हिंसाओका त्याग नही कर पाता है। इस कारण तीन प्रकारकी हिंसाओका दोष नही लगाता। यह नही कहा जा सकता है कि गृहस्थ को तीन हिंसाओका दोष नही लगता। वे दोष करते हैं मगर हिंसाका त्याग नही है। चार प्रकारकी हिंसाओका त्याग साधुजन कर सकते हैं। साधुजन केवल अपने ज्ञानकी रक्षामे लगे रहते हैं। उनको अपने प्राणोकी परवाह नही रहती है। किन्ही अटपट और ऊधमकी चिंता मे नही रहते।

गृहस्थ संकल्पी हिंसाका ही त्याग कर पाता है। संकल्पी हिंसाका त्याग हो तब गृहस्थीकी शोभा है। कितने ही लोग ततैयोको छेद डालते हैं, साँप बिच्छू आदिको डडेसे मार डालते है। चीटा, चीटी आदिको मार डालते हैं यही तो संकल्पी हिंसा है। हिंसक जीव जैसे सर्प, बिच्छू आदि हैं उनको जो मार डालते हैं वह भी संकल्पी हिंसा है। सर्प, सिंह आदि अपनेपर आक्रमण करें तो उनके मुकाबलेमे उनका वध हो जाय तो यह भी विरोधी हिंसा

ही है। मनुष्यकी शोभा दयाकी मूर्ति बननेमे है। दयावृत्तिसे ही मनुष्यकी शोभा है। और दया तब प्राप्त हो सकती है जब व्यसनोका त्याग हो।

जुवा खेलना पहिला और सब व्यसनोमे लगा देने वाला व्यसन है। मनुष्यको इस व्यसनका त्याग अवश्य करना चाहिए। चाहे जुवा खेलनेमे हारे चाहे जीते कदर कुछ नही रहती है। सदा हैरानी ही रहती है। देखा होगा कि बहुतसे लोग सट्टा खेलते हैं। सट्टा ऐसा रोजगार है जिससे खेलने वाले रात-दिन चिंतित रहते हैं। जो व्यक्ति जुवा खेलते हैं वे धर्म नही कर पाते। तो भैया! इस जुवाका त्याग करनेसे ही भलाई है। दूसरा व्यसन है मांस-भक्षण। जीवोपर दया किये बिना उद्धार नही होगा। मनुष्यका अन्नादिक सात्त्विक आहार है। उनको छोडकर जो अन्नादिक है जैसे मांस मदिरा इत्यादि उनका भक्षण करते तो ये धर्मके योग्य नही रहते। इसलिए मांसभक्षणका अवश्य त्याग होना चाहिये। शराब, मदिरा आदिका पान करना यह तीसरा व्यसन है, इसका भी त्याग होना चाहिए। मदिराके छोटे-छोटे भाई भतीजे हैं—चरस, गांजा, तम्बाकू इत्यादि। इनमे नशाका कुछ न कुछ अंश जरूर ही है। भैया! उनमे कितना अव्यक्त नशा रहता है। वे बुद्धिको भ्रष्ट कर देते हैं। कही गिर पडे फिर उठे, फिर कही गिर पडे, अपनी माँ बहिन सबके सामने अपनी सुध भूल जाय उल्टा सीधा बके। तो भैया! इनका त्यागना तो बहुत जरूरी है। शिकार खेलना चौथा व्यसन है। पशुवोको मारकर खुश रहनेमे लोग अपनी वीरता समझते हैं। अरे अपनी वीरता तो अपने आपमे है। अपनी नीति और न्यायमे रह जाय उसमे ही वीरता है। शिकारकी झूठी वीरता से इतना बडा शौक हो गया कि लोग इसमे अपना बडप्पन समझते हैं। विदेशसे कोई यहाँ आया तो लोगोने शिकार खेलकर स्वागत किया। बतलाओ भैया! कितना रिवाज बिगड गया है, मगर जो करे भागी वही है। अपने आप अपना ही लोटा छानना है, कुआ और जगत नही छानना है। शिकार खेलना एक व्यसन है। व्यसन विपत्तियोको लाने वाली एक चीज है।

५वाँ व्यसन है चोरी करना। यह आदत भी बुरी है। इससे तो निरंतर सकल्प-विकल्प शल्य ही बने रहते हैं। चोरी करनेमे तो भाव बिगड जाते हैं। मारे जायें, पीटे जायें, चित्त फसा रहे, धर्मके योग्य कभी न हो सकें तो इसे छोड़ना जरूरी है। छठा व्यसन है पर-स्त्री सेवन। परकी स्त्री परकी है, खुदकी नही है। परस्त्रीसे स्नेह हो जाय तो वे कुशील पुरुष परस्त्रीसे मिलनेके लिए निरतर आकुलित ही रहते, निरंतर दुःखी ही बने रहते। पर-स्त्री सेवनकी वजहसे ही झूठ बोलना पडता है, चोरी करना पड़ता है। परस्त्री सेवनसे सदा विपत्तियाँ हैं। इसलिए इसका त्याग अत्यन्त आवश्यक है। ७वाँ व्यसन है वेश्या सेवन।

जब तक यह व्यसन मनुष्यमे रहता है तब तक धर्मधारण करनेका यह पात्र नहीं। इस व्यसन का तो सर्वथा त्याग होना चाहिए। जब इन व्यसनोका त्याग होगा तभी धर्मकी बात अपने आपमे समा सकती है।

हाँ तो मैं कह रहा था कि अहिंसा परमो धर्मः। अहिंसा वह है कि अपने ज्ञानको निर्मल रखना, दूसरोकी दृष्टि न रखना, विकल्प विचार न करना। भैया! इन पचेन्द्रियमे लीन न बनो। अपने आपको केवल चैतन्य स्वरूप, जाननमात्र निरखो, देखो तो यही है अपने ज्ञानका निर्मल बनाना तथा यही अहिंसा है। अर्थात् रागादिक उत्पन्न है तो उसका नाम हिंसा है। और न उत्पन्न हो तो उसका नाम अहिंसा है। अहिंसा करके अपने आत्मा का पोषण करना चाहिए जिससे मन शांत रह सके। शान्तिका उपाय ज्ञान और वैराग्य ही है। ज्ञान और वैराग्यके अतिरिक्त शान्तिका और उपाय हो ही नही सकता है। क्योकि बाह्यपदार्थोंका सेवन तृष्णाके बढाने का कारण होता है। दुःख दूर करनेका कारण नही होता है।

भैया! दो पडौसी थे। एक था सेठ और दूसरा था बढ़ई। सेठके यहाँ पर सूखी रोटियां बने और बढईके यहाँ ३, ४ प्रकारका साग, दाल हलुवा पूडी इत्यादि बनें। सेठानी सेठसे बोली कि देखो तुम इतना पैसा पैदा करते हो फिर भी सूखी रोटियाँ बनती हैं और बढ़ई थोड़ा सा पैदा करता है फिर भी हलुवा पूड़ी खाता है। सेठ बोले कि तुम बड़ी भोली हो तुम नही जानती हो, बढ़ई अभी ६६ के चक्करमे नही पडा। सेठानी बोली—अरे तो ६६ का चक्कर क्या कहलाता है ? सेठने ६६ रु० की एक थैली रख ली। बोला सेठानीसे कि अभी तुम्हे पता पड जायगा। थैलीको बढ़ईके घरमे डाल दिया। अब तो थैली पाकर वह खुश हो गया। गिनने बैठा तो १०-२०-५०-६७-६८ और ६६। सोचा भगवान् ने भेजा तो पर एक रुपया कम भेजा, नही तो मैं शतपति कहलाता। सोचा कि अब ३ रु० की जगह पर २ रु० ही खर्च करेंगे। फिर तीसरे दिन ख्याल आया कि अरे १०० तो उसके पास है फिर भी वह सुखी नही है। हजार हो तो सुखी हो सकता हूं। पर अभी ६०० चाहियें। सोचा कि तीन रुपया रोज कमाता हू, सो उसमे ८ आने खर्च करूँगा बाकी २।। रु० जोडूँगा। अब तो वह कोदो, ज्वार आदि खाकर ८ आनेमे ही बसर कर लेता था। सेठ ने सेठानीसे कहा कि अब निरीक्षण करो। देखा तो आश्चर्यचकित हो गयी। भैया! बाहरी पदार्थ आवें तो संतोष हो, यह सोचना बिल्कुल बेकार है। शान्ति तो अपने ज्ञान और वैराग्य से मिलती है। दुनियामे यह देखना चाहिए कि हमारा साथी कौन है ? साथी तो भैया इस जगतमे कोई नही है। सब धोखा है इनके स्नेहसे तो दुःख ही मिलेंगे। जो अपने आपको

संमयसे रखता है वह विवेकी है, धीर है इस भोगका तजना शूरोंका काम है, वीरोंका काम है। ये भोग भोगते समय बडे सुहावने लगते है पर उनके भोगनेके परिणाम कठिन निकलते हैं। सो भैया ! इन भोगोकी ओरसे उपेक्षा होनी चाहिए तब हम अहिंसाके पालने वाले कहला सकते हैं।

कोई अगर सोचे कि हम दूसरोको नही सताते हैं, हमारे मकानका चार पांच सौ रुपया किराया आता है, अच्छा खाता हू किसीको सताता नही हूं, किराया देने वाले किराया समयसे ही दे जाते हैं। तो क्या इतनेमे हिंसा रुक गई ? देखो कितना इन्द्रियविषयोंमे बहे जा रहे हैं, विषयकषायोमे ही बहे जा रहे हैं। अगर विषयोसे ही प्रीति है, भोगोमे ही बहे जा रहे हैं तो अहिंसा नही कही जा सकती है। जिसे अपने चैतन्यस्वरूपका पता नहीं उसने तो बहुत बडी हिंसा की। चैतन्यस्वरूपका पता पाए बिना गुजर नही चलेगी। जिसे अपने चैतन्यस्वरूपका पता नही उसका जगतसे निस्तार नही होगा। अहिंसाका अर्थ यही है कि हिंसाका त्याग करो और ज्ञानस्वरूप आत्मतत्त्वका अनुभव करो, प्रतीति करो, ऐसी वृत्तिसे जो रहता है उसे कहते हैं अहिंसा। ऐसी वृत्तिसे रहने वाले गृहस्थ जब कभी प्रवृत्तिमे आते हैं तब यद्यपि ३ हिंसाओका त्याग नही कर सकते तो भी सकल्पी हिंसाका त्याग होनेसे यह गृहस्थ अणु अहिंसक कहलाता है। तो भैया ! अपनी शान्तिके लिए अपने भावोमे दृष्टि देना है। अपने भाव निर्मल रहे। भावोकी निर्मलताका उद्योग यही है। जैसे प्रातःकाल कहा था कि ६ कर्तव्योमे लगे रहें, उनमे प्रमाद न करें। लोगोको चाहिए कि वे घरके कामोमें अधिक न लगें। प्रभुकी भक्तिमे, गुरुवोके सत्संगमे अपना समय लगावें, अपने मनको सयममे लगावें। व्यर्थका खर्च न करें जो कि कायदेके खिलाफ हो। परोपकारमे व्यय अधिक करें। सात्त्विक वृत्तिसे कार्य न करें और आसक्तिसे परमे लगें तो यह मिथ्यात्व है। अपनी इच्छाका निरोध करें और दान करें तो उत्थान होगा। अपनेको विषयकषायोसे बचावें, यही निवृत्ति शान्ति का कारण होगा। ऐसा पुरुषार्थ यदि कर सकें तो उत्थान होगा। अपनेको विषयकषायोसे बचावें, यही निवृत्ति शान्तिका कारण होगा। ऐसा पुरुषार्थ यदि कर सकें तो उत्थान होगा।

कष्टे प्राणानुपेक्षन्ते ज्ञानं रक्षन्ति योगिनः।
ज्ञानं ज्ञाय प्रिय तत्त्वे स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४६॥

योगीजन कष्ट आनेपर प्राणोकी भी उपेक्षा कर देते हैं, लेकिन ज्ञानकी रक्षा करते हैं सो यह स्पष्ट जाहिर है कि ज्ञानीको ज्ञान ही प्रिय है। ज्ञानप्रिय होना भी चाहिये, क्यो कि एक तो ज्ञान शाश्वत सम्पदा है और दूसरी बात ज्ञान आनन्दका अविनाभावी है। पौराणिक दृष्टान्त भी अनेको मिलते हैं, जिनसे उक्त बात पूर्णतया स्पष्ट हो जाती है।

राजकुमार सुकौशल, गजकुमार आदि अनेको युवक चढ़ती जवानीमें राज्यपाट वैभव घर त्यागकर ज्ञानदेवकी उपासनामे लग गये थे। उपासना कालमें उनपर अन्य जीवोंके द्वारा बड़े कष्ट पहुंचे। यदि वे चाहते तो जरासे ही बलप्रयोगमे आक्रान्ताओं भगा सकते थे किन्तु उन्हे विकल्प पसन्द न था। विकल्प न हो, ज्ञान ज्ञानस्वरूपमे स्थित रहे ऐसी स्थिति के एवजमे यदि प्राण जाते हो तो जायें ऐसा उनका दृढ संकल्प था। प्राण तो औपाधिक विकारी तत्व है इससे तो आत्माकी बरबादी ही है। ज्ञान ज्ञानस्वरूपमे रहे यह आत्माकी आबादी है। आत्माकी इस आबादीमे इतनी समृद्धि है कि सर्वज्ञता आनन्दमयता, विकल्पशता आदि सब ही कल्याण पूर्ण प्रगट हो जाते है।

भैया ! जगत्मे जितने भी दुःख होते हैं वे मात्र कल्पनासे है। मनुष्योमे देखो हर एक जगह दुःख ही दुःख नजर आते हैं। अपनी बातें खुद सब देखते हैं। दूसरेको तो लगता है कि ये सुखी होगे। यह बहुत सलोना है, यह बहुत बढिया है, यह बड़े मजेमे होगा ऐसे दूसरोमे लगता है मगर अपने आपको देखो तो दुःख नजर आते हैं। अपने स्वरूपसे चिगे तो वहाँ दुःख ही दुःख नजर आता है। जो बात सही नही है और उसे सही मान लें तो दुःख मिलेंगे। प्रत्येक मनुष्यका जी किसी न किसीमें फसा हुआ है, किसी न किसी की मोह ममतामे है तो इसीसे दुःख आते हैं। कोई किसी गतिसे आया, कोई किसी गतिसे आया तिस पर भी ये जीव तो यहाँसे जायेंगे ही, उन सबसे एक दूसरेका कोई संबन्ध नही। सब अपने अपने चतुष्टयमें हैं, न्यारे-न्यारे हैं आप आप हैं, वे वे हैं; कोई गुंजाइश नही, पर मानते हैं कि यह मेरा है। इसी कल्पनासे दुःख पैदा हो रहे है। अभी यहाँ बैठे बैठे बाहरमे दृष्टि कर लो तो बाहरमे ही फंस जाओगे। बाहरकी ही मोह ममतामे फंस जाओगे। बाहरमें ही मोहममता करके दुःखी हो जाओगे।

भैया ! एक तरफ तो मोह ममता किया और दूसरी ओर सुख चाहते हो तो बतलाओ दोनो बातें कैसे हो सकती हैं ? जो चीज अपनी नही है उसे मानें कि मेरी है तो यह मूर्खता है। यदि मैं निज ज्ञानानन्द घनके उपयोगमें बना रहूँ, अपने ही स्वरूपके दर्शन करूँ तो परमात्माके दर्शन कर सकता हू। परमात्माके दर्शनसे ही शान्तिमें रह सकता हूं, आनन्द से रह सकता हूं। भीतर ही सारा वैभव है उसको छोडकर बाहरमे ही ढूँढने लगे तो दुःख प्राप्त होगा।

जितने भी संत हुए हैं, वे अपने ही स्वरूपमें रत रहते थे। अपनेसे बाहरकी चिंता नही रखते थे। ज्ञानरूप अपनेको ही मानते थे। ऐसे वे संत थे। वे किसी भी मोह ममतामें नही रहे। इसी कारण आनन्दमग्न थे।

दुःख तो स्त्री-पुत्रादिके मोहमे ही हैं। यदि स्त्री-पुत्रादिके मोहमें रहकर दुःख कम हो जायें तो बतला दो। दुःख कम नही होगे, दुःख तो बढ ही जावेंगे। अरे स्त्रीसे मोह किया तो दुःख है, स्त्रीने अपना मुह फेर लिया तो दुःख। यदि स्त्री रूपवान है तो उससे दुःख मिलेंगे कि नही। बहुत दुःख मिलेंगे। यदि स्त्री रूपवान है तो मोह होगा, उसके पीछे अनेक परेशानियाँ होगी, दुःख होंगे। यदि पुत्र कुपूत होगा तो उससे मुख मोड़ लोगे, पर यदि पुत्र सुपूत हुआ तो उसके पीछे मर मिटोगे, जिन्दगीभर श्रम न छोडोगे। बाहरी चीजें जितनी मिलेंगी वे सब दुःखोंके कारण ही होगी, बाहरी चीजें सुखका कारण नही हो सकती हैं। आज आपने धन पाया, हजारका धन पाया, लाखका धन पाया, करोडका धन पाया, राज-पाट पाया, बहुतसी पूंजी पायी। इन सबको चिपकाये रहनेसे इन सबको ही अपना सर्वस्व माननेसे क्या क्लेश मिटेंगे ? नही, इनसे तो क्लेश ही बने रहेगे। दुःखोंको करने वाला भैया कोई दूसरा नही है। खुद ही सत्य बन जावो तो दुःख सब समाप्त होंगे।

मान लिया कि १०-२० लाख रुपयाका धन हो गया, कुटुम्ब परिवार हो गया, नाते रिश्तेदार हो गए तो क्या शान्त हो जावोगे ? नही। तब इन सबको पराया जानो और सुखी होओ। ये तुम्हारे सुखके साधन नही होगे। इससे तो क्लेश ही प्राप्त होगे। दुःख तो सब जीवोने अपने स्वरूपसे चिगकर व्यर्थ ही मोल ले रखा है। देखो सबकी अलग-अलग दुनिया है, कैसा किसका लगाव है, कैसा किसका चित्त है ? कुछ नही।

तो भाई दुःख कहाँसे मिले ? दुःख तो बाहर की दृष्टिसे ही मिले। दुःख अपनी कल्पनाओंसे मिले, अपने ख्यालसे मिले, अपने भ्रमसे मिले। अगर यह भ्रम छूट जाय तो अभी दुःख मिट जावेंगे। पर यह भ्रम सब अपने अपनेमे लिए हुए हैं। ऋषियोंने बताया है कि प्राणियोकी आत्माका आदर तो विवेकसे है। जैसा मैं हू तैसे सब हैं। सबमे साधारण स्वलक्षण अवगम हो यही ज्ञानका प्रकाश है। मैं शुद्ध चैतन्यस्वरूप हू। यदि कीडे-मकौडे पशु पक्षी इत्यादि कोई भी जीव नजर आवें तो वे सब चैतन्यस्वरूप हैं, ऐसा तुम्हारा दृढ विश्वास हो तो यही ज्ञान है। योगी वह है कि किसीका घट-बढ विकृत परिणमन भी यदि हो रहा हो मगर वह अपनी ही तरह सबको शुद्ध चैतन्यस्वरूपमे देखे यही प्रभुपना है। सब जीवोमे वही प्रभुका रूप देखे कि यह भी प्रभुका रूप है, यह भी शुद्ध चेतन है, ऐसा जो सब जीवोमे देखे वही योगी है।

भैया ! हम क्या हैं ? इसको हम माप न सके, जान न सके, अपना महत्त्व न जान सके। अपनेमे जो प्रभुता विराजमान है, उसको जाने बिना क्लेश कैसे मिट सकेंगे ?

अपनेसे हटकर बाहरमे ही दृष्टि रहे तो ये तो बहुत बडी गल्ती है। इस गल्तीका

ही फल है कि जगह-जगह ठोकर खाते हैं। यह बडी गल्ती है कि मैं अपने आपको न जान सका, न समझ सका। मेरी इस भूलसे ही दुःख होते है। चौरासी लाख योनियोमें भ्रमण कर आज हम आप मनुष्य हुए हैं, जिन जीवोको ऊंचा स्थान मिला है, जिनका दिमाग अच्छा है, ज्ञान अच्छा है। जो दूसरोको कुछ समझा सकते हैं, जिनसे हम कुछ समझ सकते हैं वे मनुष्य ही तो ये है। देखो यह कितना सुन्दर वातावरण है। इतने पर भी न चेते तो फिर विवेक कहाँ रहा?

भय्या! अपनी रक्षा ज्ञानानन्दस्वरूप आत्माकी भक्तिसे होगी। एतदर्थ यदि अपने प्रभुकी भक्तिमे कुछ क्षण न व्यतीत हो मनुष्यका जीवन बेकार है। दुनिया कैसे चलती है? कैसे क्लेश पाती है? यह कहाँ तक देखा जाय। जो जैसे जैसे दृष्टि पसारे तैसे ही तैसे दिल धडकता है। गाँवोमे देखो, जिलोमे देखो। भारतमे देखो, विश्वमे देखो, सर्वत्र ही दुःख ही दुःख नजर आते हैं। दुःख कहाँ है? दुःख बाहर नही है। देखिए सभी राष्ट्रोको दुःख है कि कहीं और विशेष गड़बड न हो जाय। यह दुनिया रहेगी कि न रहेगी—ऐसे ख्याल आनेसे ऐसी कल्पनाएं करने से सभी दुःखी हैं। किसीको अभी बैठे बैठे ही ख्याल आ जाय कि अरे इस दुनियामे कुछ कर सकू तो करूं। ऐसे ख्याल बना लेनेसे ही दुःख आ गये, और देखो यहाँ जो कुछ है वह सब भ्रम है, अपने लिए हितकर नही है, ऐसा सोच लेनेसे ही सुख हो गया। यदि किसीसे मोहपद्धतिका प्रेम करते हो, परिवार कुटुम्ब आदिसे प्रेम करते हो तो वह गंदा प्रेम है उस प्रेमसे आनन्द नही आ सकता है। सच्चा प्रेम तो वह है कि जिसे देखें चाहे मनुष्य हो चाहे पशु पक्षी हो, चाहे जो प्राणी हो उसे भगवानके जैसा, प्रभुके जैसा स्वरूप वाला समझ लें। यह समझ लें कि इनका स्वरूप भी प्रभुके जैसा ही है। जो यह है वह मैं हूं, ऐसा जानकर भीतरमे दृष्टि लगाकर प्रेम जगे तो उस प्रेमसे आनन्द है। उससे जो आनन्द प्राप्त होगा वह सच्चा और सही आनन्द होगा।

भैया! जिन्दगी भर मोह किया, लडे भिड़े, मोह करके रहे, राग द्वेष करके रहे तो बतलावो कौनसी शान्ति पैदा करने की चीज हुई? ये सब कोई सुखके कारण नही है। कहते हैं कि धन हमे बहुत बढ़ाना है। अरे बतलाइए लखपति हो गए तो क्या आपका मरण नही होगा। क्या उससे ही शान्ति प्राप्त हो जावेगी। और गुजारा तो किसी तरह हो सकता है, पर वस्तुतः धनकी चाह जीवनके गुजारने के लिए नही है। जो यह कहे कि मुझे सेठ बनना चाहिए, मुझे धनी बनना चाहिए, मुझे इज्जत वाला बनना चाहिए बस इन्हीं विचारोसे तो वह प्रभुसे दूर होता चला जा रहा है। इस दुनियामे जो मोह करके उनसे

लिपटे हुए चल रहे हैं वे भी अपनेको अपने प्रभुसे दूर कर रहे हैं। अरे ये संसारी मोही, कलंकित, मलीन लोगोसे लिपटे हुए चले जा रहे हैं तो बतलाओ दुःख कैसे न हो ? प्रिय आत्मन् ! अपने प्रभुकी ओर आवो। इन परिवारके लोगोकी आसक्ति छोड़ दो। उन्हें यह समझो कि अब ये गले पड गये हैं। सो गले पड़े बजाये सरे, करना पड़ता है, किन्तु मेरा यह काम नही है कि मैं उनका पालन पोषण करूं। मेरा तो काम यह है कि अपने प्रभुके भजन करूं। अपने आपके स्वरूपमे ही बसना है, ऐसा जानकर संतोष प्राप्त करें, यही ज्ञान है।

वास्तवमे यह जानो कि सब जगत्के जीव एक समान हैं। यही आत्मस्पर्शी ज्ञान है। यह मैं हू, ऐसे ही ये हैं, ये सब प्रभुके रूप है—ऐसा जानकर जगतके सब जीवोसे प्रेम करो। यही प्रभुसे प्रेम उत्पन्न करनेका उपाय है। मैं यहाँ पर जो कुछ देखता हू सब जीव उस प्रभुके ही रूप हैं।

ज्ञानमस्तीति कर्तृत्वं भोक्तृत्वं च ततोऽन्यके।
त्रिकालेऽपि न तत्तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥५०॥

यहाँ जीवोमे कर्तापन क्या है और जीवमे भोक्तापन क्या है ? यह कहा जा रहा है यानी जीव करता क्या है ? अन्य पदार्थ तो अन्य ही हैं, उनकी सत्ता तो जुदी है। परपदार्थों मे यह जीव कुछ कर नहीं सकता है। जैसे कोई आदमी दूसरे आदमीको कितना ही डाँटे, गुस्सा करे फिर भी उस आत्माका कुछ कर लेगा क्या ? उस आत्माका कुछ नही कर लेगा। जो कुछ करेगा वह अपना ही करेगा। कोई दूसरेका कुछ नही कर सकता है। घरके बाल-बच्चोपर कितना ही नाराज हो जावें, कितना ही गुस्सा हो जावें पर उनका कुछ कर लेंगे क्या ? उनका कुछ न कर सकेंगे। घरके बाल-बच्चे कहना कुछ मान गए तो क्या तुमने कुछ किया। अरे उनके मनमे आ गया तो कर दिया और यदि मनमे न आवे तो न करेगा। कोई द्रव्य किसी द्रव्यका कर्ता नही है। तुम तो केवल अपना ज्ञान बनाते रहते हो। कभी तो तुम सही ज्ञान बनाते रहते हो और कभी विकृत बनाते रहते हो। ज्ञान बनाया, जानकारी की, इतना ही मात्र कर्तापन है और बतलाओ ज्ञानसे भोग किसका किया ? जानकारी कर ली उस रूप परिणम गये यही भोगा। ये जो विकल्प उत्पन्न होते हैं वे ज्ञानके ही बिगडे रूप हैं। यह अनुभव ज्ञानसे ही किया करता है ना ? ज्ञान होता है तो इतना ही तुम्हारा कर्ता पन है। जितना ज्ञान होता है उतना ही भोगते हैं।

भैया ! परके कर्तृत्वकी दृष्टि हटाओ। मकान बनवाना है, दुकान बनवानी है, लडको

का पालन-पोषण करना है आदि ये सब मिथ्यात्व बुद्धियाँ हैं । तुम तो केवल अपना परिणमन करने वाले और भोगने वाले हो । अपनेको भूलकर तुम कुछ भी हित नही कर सकते हो । अपने आपको समझो तो ज्ञानका दीपक जल जायगा याने अपनी ओर उपयोग लगाओ तो दुनियासे निराले ज्ञानमय निजको पहिचान लोगे । इससे ही ज्ञान होता है । बस इतना ही तो कर्तापन है । ज्ञान होता है उतना ही भोक्तापन हुआ । तीनो कालोमे भी अन्य पदार्थको न कर सकोगे और न भोग सकोगे । जब तुम भोजन खाते हो तो स्वादमे आनन्दमग्न हो जाते हो । जब उस भोजनमे आपने ज्ञान बनाया कि भोजन बढ़िया है, मीठा है तो उस ज्ञान मे आनन्द मिला कि भोजनमे आनन्द मिला ? आनन्द तो उस स्वादके अनुभवसे ही मिला । तीन कालोंमे भी तुम अन्य पदार्थोंके न कर्ता हो और न भोक्ता हो । अरे बाह्यपदार्थोंके करने की बुद्धि मिटाओ । यह विश्वास हो जाय कि मैं दूसरेका कुछ कर नही सकता हू । तो स्व-तन्त्र आत्मतत्त्वके दर्शन कर सकता हूँ ।

अरे जब दूसरे पर मेरा अधिकार नही तो मैं उनका कुछ कर ही क्या सकता हूं ? फिर क्रोध करना नादानी ही तो है । दूसरे तो दूसरे ही हैं, वे अपने विचारमे मग्न हैं, हम अपने विचारमें चल रहे हैं । फिर घमड करनेका क्या काम ? यही मैं सब ज्ञानकी जड हू । समझो कि मैं अपना ही कर्ता हूँ और अपना ही भोक्ता हूं । जब यह समझ लिया तो छल कपट करनेका कोई काम ही नही है । दूसरे तो दूसरे ही हैं वे हमसे जुदा हैं, उनका तो मैं कुछ कर ही नही सकता हू । तब फिर छल-कपट करनेकी बात ही क्यो है ? जब सारी दुनिया न्यारी-न्यारी है, सब जुदा जुदा हैं तब फिर छल-कपट क्यो हो ? चाहे जितना ही धन जोड़ लेवें, मगर सुखी न हो सकेंगे । कितना ही धनका सग्रह कर लें, पर शांति न प्राप्त हो सकेगी । हम अपने ही कर्ता हैं और अपने ही भोक्ता हैं । अन्यके न तो हम कर्ता हैं और न अन्यके भोगनेका अधिकार ही हैं । सो तृष्णा करना भी व्यर्थ है । इस कारण भैया ! सार इसीमे है, कल्याण इसीमे है । सारे पदार्थोंसे हटकर अपने ही स्वरूपको देखकर, अपनेमे ही रत होकर सुखी हो ।

दृश्यं न दर्शकस्तत्त्वमुभे सयोगजे दशे ।
किन्तु ज्ञायकभावोऽहं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥५१॥

देखो देखने वाली और दिखने वाली ये दो चीजें हैं । तो ये दोनों ही तत्त्व नही हैं । दुनियामे ये दृश्य और ये दर्शक दोनो ही सारकी चीज नही हैं । देखने वाले हैं ये, ये भी संयोगजन्य दशा है और दिखनेमे जो आ रहा है वह भी संयोगजन्य दशा है । ये जो देखने वाले हैं और जो दिखनेमे आ रहे हैं वह सब अनेक पदार्थोके संयोगसे उत्पन्न दशा है । तत्त्व नहीं है, परमार्थ नही है, वास्तविक नहीं है । सब सयोगसे उत्पन्न हुए हैं । जीव और कर्मों

के संयोगसे यह शरीर बन गया। परमाणु और परमाणुका संयोग हो तो दिखने वाले ये भौतिक बन गए। तो दिखनेमे जो भौतिक आ रहे हैं वे और देखने वाले असमानजातीय पर्यायें ये सब सार चीजें नही हैं। मिट जाने वाली हैं। देखने वाले जो मनुष्य है, पशु-पक्षी हैं वे सब जीव संयोगजन्य हैं। ये सब शुद्ध तत्त्वकी चीजें नही हैं। जीव और कर्मके सम्बन्ध से ही यह शरीर बन गया।

भैया! तीन चीजें द्रव्यकर्म, भावकर्म और नौकर्म इनका समुदायभूत यह सब जीव-समूह नजर आ रहा है। इन्हीको कारण शरीर, सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीर कह लो। भावकर्म हुए, रागद्वेष हुआ, इसके कारण बना द्रव्यकर्म और इन दोनोका फल मिला शरीर। यह सब निमित्तनैमित्तिक भाववश हो रहा है। इसमे शुद्धतत्त्व क्या करें? तब फिर किसी पर क्या आपका वश चल सकता है? क्या शरीरको मिटानेका वश चल सकता है? नहीं चल सकता है। इसी प्रकार कर्मोंके मिटानेका वश नही चल सकता है। रागद्वेषोके मिटाने का वश चल सकता है। तो भैया! कर्मोंके कारणभूत ये ही कारण शरीर हैं, शरीरके कारण द्रव्यकर्म हैं, द्रव्यकर्मके कारणभूत भावकर्म है। अपना परपदार्थोंपर कोई वश नही है। सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीर तथा अन्य ये दिखने वाले जो कुछ हैं उनमे कोई तत्त्वकी चीज नही है। और देखने वाले जो लोग हैं उनमे कोई तत्त्वकी चीज नही है। वह सब तो संयोगजन्य दशा है। परन्तु मैं तो स्वतः सत् हू, स्वतः सिद्ध हू, ज्ञायकभावरूप हूँ, ज्ञानज्योतिमात्र हू। ऐसा ज्ञानमात्र अपने आपको निरखकर, अपने उपयोगमे लेकर अपने आप सुखी होओ। बाहर मे सुखकी आशा करना व्यर्थ है। तृष्णा करना व्यर्थ है। उन गदे नाक बहाने वाले स्त्री पुत्रोमें ही अपनेको फसाये रहनेसे कुछ मिलनेका हो तो बतलावो। ज्ञानस्वरूपमे परमात्मतत्त्व है, उसका ध्यान न हो तो मनुष्य जन्म बेकार है। अपनी जिम्मेदारी अपनेमें समझो। अपना शरण अपनेको ही समझो। इस जीवका सार तो निश्चयमे आत्मा है और व्यवहारमे प्रभुभक्ति है। प्रभुभक्ति और आत्मानुभव हो तो अपना आत्मा ही शरण है। आत्मामे प्रभुभक्ति है। प्रभु भक्ति कारण है और आत्मभक्ति कार्य व ध्येय है। आत्मभक्ति करना यही सुखका मार्ग है।

यदा देहोऽपि नैवाहं नृस्त्र्यादेस्तर्हिका कथा।
ज्ञानमेवास्ति देहो मे स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥५२॥

जब मैं देहमे ही नही हू तब फिर मैं यह सोचूं कि मैं मनुष्य हूँ, स्त्री हूँ तो बड़ा गल्ती है, क्योंकि पुरुष और स्त्रीके अवयव, अग व चिन्ह शरीरमे ही हैं और शरीर मैं नहीं हूं तब फिर मैं स्त्री हूँ, पुत्र हूँ यह कैसे हो सकता है? आत्माकी बात कही जा रही है, जो इस

देहके अन्दरकी आत्मा है, जीव है वह न स्त्री है और न पुरुष है। इसका सारस्वरूप तो ज्ञान ही है। ज्ञानके सिवाय आत्मामे और क्या पाया जाता है ? ज्ञानमात्र मैं हूँ ऐसा विश्वास न होनेके कारण इस जीवकी बाहरमें दृष्टि फैल गयी है और अपनेको नानारूप मानते है। सो जरा-जरासी बातोंमे विकार होता है, छल-कपट आदिकी बातें सूझती है। पुरुष स्त्रीके वेषमे आनेका कारण अपने स्वरूपका अज्ञान है। भैया ! अमृतमय तो यह खुद है, आनन्दस्वरूप तो यह खुद है, पर इसकी अपने स्वरूपमे दृष्टि नही रह जाती सो दुःखोकी बहार छा जाती है। देखो दुःख है केवल ख्याल भर। ख्यालके सिवाय और कोई दुःख नही है। दुःख आते हैं क्या अन्य कहीसे ? ख्याल बनाया, दुःख हो गए और अच्छा विचार बना लिया, दुःख मिट गए। दुःखी होना, सुखी होना अपने ज्ञान पर निर्भर है। मगर ऐसा ज्ञान सर्वसाधारणमे पाये कहाँ ? जिस ज्ञानसे आनन्द आता है वह ज्ञान बना रहे यह बात हो कैसे ? किसकी शरण जायें, किसको अपनी शरण मानें, किसकी बात करें कि हमे ज्ञानकी ही प्रेरणा मिले। जगत मे ऐसे मिलने वाले कठिन हैं, नही मिलते हैं। जिससे बात करें वे रागद्वेष बढानेकी ही बात करेंगे। समता और ज्ञानकी सहज भी बात नही करेंगे। तब फिर क्या शरण रही ? किसके पास जाकर कहे, रोवें कि मेरे ज्ञानकी कुँजी ठीक कर दो ताकि मैं सुखी हो जाऊँ।

भैया ! ज्ञान सही बनाए बिना सुख नही हो सकता है। अपनेसे बाहर न देखो, सुख तो अपने शुद्ध ज्ञानसे ही मिलता है। यहाँ बैठना है, वहाँ उठना है, मैं धनी हूँ, मैं गरीब हूँ, मैं सुखी हूं, मैं दुःखी हू, ये सारे विकल्प अज्ञान हैं, और इन दशावोरूप अपनेको माना तो मिथ्यात्व है। इससे आनन्दकी आशा कहाँ है सो सुखके वास्ते लोग घर बसाते हैं, परिवार बढ़ाते हैं, दुकान, मकान आदि ठीक करते हैं। सब कुछ श्रम शान्तिके ही लिये करते है, मगर शान्ति नही मिलती है। आप लोगोको यह अनुभव भी है कि शान्ति प्राप्त करनेका यह उपाय ही नही। शान्तिका उपाय केवल आत्मस्वरूपका सही ज्ञान करना है। ब्रह्मका ज्ञान कहो, परमात्माका ज्ञान कहो, आत्माका ज्ञान कहो, ज्ञानका ज्ञान कहो यही शान्तिका उपाय है। शान्तिका स्वसवेदनातिरिक्त कोई दूसरा उपाय नही है। अगर यथार्थज्ञान बन जाय तो यह इस जीवकी सबसे अधिक विभूति है। ज्ञान जाग जाय इससे बढ़कर अन्य कोई वैभव नही है। इसके भीतर लालसाकी व्याधि नही होती। लालसा बाहर ही बाहर है। यह परिवार मेरा है, यह धन मेरा है, ऐसे मोहमे जो आसक्ति हो गयी है वह ठीक नही है। इस मोहमे ऐसा साम्राज्य छायी है कि जगत्के जीवोको सुख नही नजर आता है।

जो भाव परपदार्थोंको अपना माने उसे मोह कहते हैं। जो इस देहसे मोह करता है वह भी मोह ही है। यह शरीर तो जला दिया जायगा, नष्ट हो जायगा। यह आत्मा यहाँसे

चला जायगा । कहाँ चला जायगा, यह इस जीवकी करतूत पर निर्भर है । जिसने जिन्दगीमे कुकर्म किए उसकी दुर्गति है और जिसने सत्कर्म किए वह सद्गतिमे जायगा । मैं तो ज्ञानमात्र हूं । यह ज्ञानस्वरूप ही मेरा शरण है । इस कारण इस ज्ञानमात्र अपने स्वरूपको देखो और अपनेमें अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होओ ।

यत्र वासो रतिस्तत्र तत्रैकत्व ततो निजे ।
उषित्वा ज्ञानदृष्ट्याह स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।५३।।

जहाँ पर उपयोगका निवास होता है वहाँ रुचि होती है । और जिसमे रुचि होती है उसे ही मे तन्मयता होती है, ऐसी बात है ना । जिसमे ज्ञानीका चित्त बसा रहता है वही स्वरूप ब्रह्म होता है और जिसमे रुचि है उसमे ही तल्लीनता होती है । जगत्के बाह्य पदार्थों मे बहुत बसे और फल कुछ प्राप्त नही हुआ, उल्टा घाटेमे ही रहे । अच्छा बतलाओ ५०-६० वर्ष घरकी सेवामे ही रहे, बूढे हो गए और बूढे होनेके बाद देख लिया ना, कितना लाभ पाया ५०-६० वर्ष घिसटे । परिवार, दुकान आदिमे मोह किया । अंतमे रहा क्या इसके पास देख लिया ? ऐसे ही समझ लो कि अंत तक जो-जो करते हैं मोहके, रागके, द्वेषके काम कर डाले, पर अतमे रहेगा क्या इसके पास ? तो यह बाह्य जगत् बसाने लायक नही । उससे हट-कर अपने निजस्वरूपमे ही निर्वाह करो ।

निजस्वरूपमे निर्वाह क्या है ? अपने ज्ञानस्वरूपको जानते रहो कि मैं ज्ञानमात्र हू । ऐसा ही निरतर ध्यान करो ।

भैया ! घरमे, परिवारमे तथा शरीरादिमे न मोह करो । परिवार, घर आदिमे क्षण भर भी अपने चित्तको न उतारो, कुछ समय बादमे ही वे सब मिट जावेंगे । दो मिनट तो अपने ज्ञानके प्लेटफार्मको साफ कर लो, अज्ञानका विकट आवरण इन मोही प्राणियोके पडा हुआ है । अगर तू अपने यथार्थस्वरूपके परिचयका यत्न करते करते मोह और अज्ञानको दूर कर ले तो कल्याण निश्चित है । बाहरकी चीजें आयी, गयी, फिर आयी, फिर गयी, इस तरहसे मिट जाने वाली है । मैं तो सबसे निराला हू, मैं सब जीवोंसे न्यारा हू, ऐसा अपने आपका ख्याल करो उनकी चाह क्यों करता है जो दुःख देने वाले हैं ? धन-वैभव सम्पदाएँ अपने आप मिलती हैं और एक दिन उनका वियोग जरूर होगा । चाहे इसी जन्ममे वियोग हो जाय, चाहे वह सपदा यहाँ धरी ही रही और स्वयं मर जाय इस तरह वियोग हो जाय । इस सम्पदाका वियोग जरूर होगा और जब वियोग होगा तब क्लेश जरूर होंगे । ऐसी बाह्य सम्पदाओंकी आशा करनेमे क्या सार है ?

अच्छा भैया ! सम्पदा प्राप्त कर लो, सुख देख लिया तो खूब सोच लो कि सम्पदा

पानेसे क्या सुख मिला या मिलेगा ? सुख नही मिलेगा बल्कि केवल दुःख मिलेगा। अपने आगे सम्पदाएँ लग जाएँ तो दुःख, सम्पदाएँ यही धरी हैं और स्वयं मर जाये तो दुःख। इस दुनियामे जो दुःख होते हैं वे सम्पदाके पापके कारण ही होते हैं। तो फिर उन सम्पदाओंको चित्तमे लानेसे कौनसा लाभ हुआ ? बाह्यको चित्तमे बसानेसे कोई लाभ नही हो सकता है। अपने ज्ञानस्वरूपको ही अपने चित्तमें लावो। अपना ज्ञानस्वरूप अपने चित्तमे आवे तो उसका बियोग होता ही नही, सो आनन्द ही रहेगा। यदि मेरा ज्ञान लौकिक वैभव सम्पत्तियोमें लगा तो सदा क्लेश ही रहेगे। यदि अपना शुद्ध ज्ञानस्वरूप ही नजर आवे तो आनन्द ही आनन्द है। बाह्य सम्पदाओसे मोह छोड़कर अपने अंतरंगमें जो सम्पदा है उसमे चित्त दो। यह चीज आपकी खुद आत्माकी बात कही जा रही है। यहाँ वहाँकी चर्चा, गप-शपमे तो शान्ति नही मिलेगी। शान्ति तो मिलेगी अपने ज्ञानको सही बनानेमे ही। अपने ज्ञानको सही बनाना एक तपस्या है। अगर अपना ज्ञान सही नही है तो बाह्य वासनायें सताती हैं।

ये मोही प्राणी अपने आपसे निकल-निकलकर बाहर दौड़ते हैं। उस दौडसे हटकर अपने आपको सही मार्गमें केन्द्रित करो यही बड़ी तपस्या है। स्वाधीनतामें रत रहनेसे ही आनन्द है। सो भैया ! उन सब पदार्थोंसे हटकर अपने आपके स्वरूपमे ज्ञानदृष्टि दो और अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होवो। अपने सुखके लिए दूसरोकी आशा न करो। दूसरोसे सुख नहीं मिलेगा। दूसरोकी आशा करने पर, दूसरोकी प्रतीक्षा करने पर तो दुःख ही आ पड़ेंगे। इन प्राणियोंके ऊपर जो दुःख आ जाते हैं वे दुःख कहीं बाहरसे नही आ जाते हैं। वे स्वयं ही खोटी कल्पनाएं करके दुःखी हो जाते हैं। तो अन्य सब ख्याल छोड दो और अपने प्रभुके शुद्ध ज्ञानस्वरूपको देखो तो आनन्द है।

भैया ! बाह्यरुचि छोड़कर साधुकी तरह केवल अपने आत्मारामसे रिश्ता जोड़ो तो तुम्हारी शोभा है। ज्ञानी जीव तो लोक वैभवमे खेद करते हैं, दुःख मानते हैं कि हाय मेरा ऐसा परिणाम हो रहा कि अनहोनी बातकी कल्पना की जा रही है। बाह्यपदार्थोंके संचयसे मुझे लाभ नही हो रहा है, वे सब आनन्दकी बातें नही हैं, उनसे हटकर ज्ञानमात्र अपना स्व-रूप अनुभवमें आवे तो यह ही आनंदका उपाय है। दुनियामे मेरे लिए मैं ही हू। आखिर अपने ही दिलसे समझ लो और दुःख मिटा लो। दु.ख मिटानेका और कोई उपाय नही है। वह उपाय खुदका स्वरूप ही है। रागादिक चलते है चलने दो, उनमें लगे न रहो। प्रवृत्ति तेरे उपयोगसे न होनी चाहिए। इन सब बातोसे खेद ही मानना पड़ेगा। बाह्यमें लगनेसे खेद ही मानोंगे। विषयोमें खुशी मानते हो और शान्ति चाहते हो तो वह बच्चोका तो खेल नही। खेदकी बात है कि मोहमे ही लगे रहते हो। बाहरमें ही खिचाव रहता है, तो ये तो

मिटनेकी बातें हैं। अपनेको मोहसे हटाओ। मोहसे ही अपना विनाश है। तो भैया! बाह्य पदार्थोंमें अपने चित्तको न बसाओ। यदि बाह्यमे ही अपना चित्त लगाओगे तो अपने ज्ञान-स्वरूपको खो बैठोगे। भैया! अपने ज्ञानस्वरूपमे ही बसो। दुःख बुरे नहीं होते हैं। उन दुःखोसे न घबडाओ। यदि दुःख आ रहे हैं तो प्रभुके स्मरणका अवसर चल रहा है। आनन्दघन अपने आपके बाह्यस्वरूपकी ओर झुको तो आनन्द ही आनन्द प्राप्त होगा। सुखोमें मत फूलो। ये सुख प्राणीको पतनकी ओर ले जाते हैं। इस अपने चित्तको विषयोमे न बसाओ, अपने ज्ञानस्वरूपमे रुचि करो कि मैं ज्ञानमात्र हू। ऐसा अपने आपमे ज्ञान बनाओ। और ऐसा ज्ञान बनानेके लिए व्यवहारमे न्याय प्रवृत्ति करना होती है। अपने चित्तको अपने स्वरूपमे लगाओ। कदाचित् कुछ करना पडे तो न्यायकी प्रवृत्ति हो। बस यहां शान्ति प्राप्त करनेका एक यही उपाय है।

यज्ज्ञानेन जगन्मन्ये तत्र मे किं तदादृतिः।
स्वादृतिः सा स्ववृत्तिर्हि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥५४॥

जिस ज्ञानके द्वारा मैं इस सारी दुनियाको देखता हू, इष्ट अनिष्ट मानता हूं, उसमे आदर नही होना चाहिए। जिस ज्ञानके द्वारा हम कुटुम्ब, परिवार, धन, दौलतको देखते हैं उस ज्ञानका आदर नही होना चाहिए। घर मिला, परिवार है, कुटुम्ब है, सम्पदा है ये सब तुम्हारे दुःखोके कारण हैं। वह ज्ञान तुम्हारे दुःखके लिए बना। विकृत ज्ञानके द्वारा जिस जगतको देखते हैं उस जगतमे आदर नही है। ये घर, परिवार, मित्र जन आदि सुखके कारण नही हैं। सुखके मायने वह असली सुख जो इस आत्मामे स्वतः भरा है।

भैया! आनन्द बाहरी चीजोमे नही मिलता है, किन्तु मोहकी महिमा विचित्र है, सभी जीव अपनेसे बाहर जा रहे हैं। इसे देख, उसे देख, इससे भला माना, उससे भला माना, बस इसीमे सब ज्ञान खर्च होता है। अपने आपकी यह नही जानते कि मैं क्या हू? स्त्री मेरी है, पुत्र मेरा है आदि ऐसे ही उल्टा परिणाम कर रहे हैं मगर अपने आपकी सुध नही कर रहे हैं। अपने आपका ही आदर करो, अपनेमे ही झुको, अपनेको ही अपनेमे मानो यही तुम्हारा आदर है। जब इस बातका पता होगा तभी कल्याण है बाकी सब झंझटके कारण हैं। दूसरोको मानो तो निमित्तापेक्षया ऐसा मान लो कि ये मेरे दुःखके लिए हैं।

सबसे निराला जो यह जीव है उस जीवके लिए कौन क्या कर सकता है? सब जुदी-जुदी बातें हैं। जिनका बाह्यपदार्थोंमे ही लगाव है, वे अपना काम नही करते हैं। सब पराये ही काम करते हैं, जो किए ही नही जा सकते हैं। अपना तो काम है शान्ति प्राप्त करनेका, पर लगाव बाह्यमे लगा हुआ है इसमे शान्ति नही मिलती। भैया! दुःख आते हैं

तो उनमे घबड़ानेकी क्या जरूरत ? दुःख कही नही हैं, किन्तु ख्याल कर लेनेके ही दुःख हैं। केवल ख्याल बदल दिया तो दुःख मिट जायेंगे। सो इस जगतकी उपेक्षा करके और अपने आपकी ओर दृष्टि करके अपने आप सुखी होओ।

क: कस्य कीदृशः क्वेति देहमप्यविशेषयन्।
सहजानन्दसम्पन्नः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥५५॥

यह देह क्या है, यह शरीर क्या हैं, यह शरीर कैसा है, मैं कैसा हूं ? किसी प्रकारकी विशेषता न कर। मैं तो सबसे न्यारा ज्योतिस्वरूप हूं। मेरा स्वरूप आनन्दमय है। आत्मा का स्वरूप ही आनन्द है। सो उस आनन्दस्वरूपको ही निरखो और सुखी होवो। भैया! एक कहावत है कि लेवा मरे कि देवा, बलदेवा करे कलेवा। अरे ये जो मिले हैं—घर, दौलत स्त्री, पुत्र इत्यादि इनके पीछे अपने ऊपर कितने दुःख आते हैं। यह सब अपने आपको न देखनेसे अशान्ति है, आकुलताएँ हैं। यदि जीव विषयोकी वासना रखे तो वह भगवानका भक्त नही है। भगवानकी भक्ति और गुरुवोकी सेवा, ये दोनो करते रहो, मोह और ममताकी बातें कम करते जावो। मोहसे, ममतासे पार न लगेगा। जितना स्त्रीसे, पुत्रादिसे मोह करोगे उतना ही क्लेश बढ़ते जावेंगे। जितना ही बाल-बच्चोसे, स्त्री-पुरुष आदिसे मोह करोगे उतने ही क्लेश लगेंगे। अपने ही आनन्द स्वरूपको देखो आपका स्वरूप ही आनन्दमय है। कहीं भी बैठे हो, कही भी रहते हो, कैसी भी स्थिति हो पर अपने आत्मस्वरूपको देखो। मैं सबसे निराला हूँ, ज्ञानानन्दघन हूँ ऐसा मनन कर अपने आपमे रमकर सुखी हो जावो।

भैया! दूसरोकी आशा न करो। तुम्हारी बात ये मान लेंगे तो तुम्हे आनन्द होगा ऐसी आशा न करो। उनसे आनन्द नही होगा। आनन्द होगा तो तुम्हारे विचारोसे तुम्हारे ज्ञानसे ही होगा। अन्य बातोसे आनन्दकी आशा न करो। देखो ये सब धर्मकी बातें हैं। धर्मकी बात तो हृदयमे तभी लग सकती है जब अपना हृदय साफ हो, किसी प्राणीपर विरोध न करो तब हृदयमे धर्मकी बात लगती है। पाप न करो, किसीका दिल न दुखाओ। ऐसा आचरण करो कि तुम्हारा जीव धर्मात्मा बने। हिंसा करना, झूठ बोलना, चोरी करना, दूसरे की स्त्रीको ताकना, अन्याय करके धन कमाना आदि ये पाप हैं इन्हें न करो। कोई दयाहीन जन किसी जीवको मार डाले तो उसे क्या कष्ट नही होते होंगे ? अगर जरासी सुई चुभ जाती है तो कितना कष्ट होता है ? फिर जब दूसरे जीवोको मारा जाय तो उन्हे कितना कष्ट होता होगा ? ये बातें तो तब दूर हो सकती हैं जब वे लोग मांस खाना छोड दें। जब तक मांसका बिल्कुल त्याग नही होगा तब तक ये बातें दूर नही हो सकती हैं। चाहे पगतमे मांस खाते हो, चाहे देवी देवतावोमे बलि चढ़ाते हो, जब तक इनका त्याग नहीं होगा तब तक धर्मके

स्वरूपका दर्शन भी नहीं होगा। तो भैया! इन चीजोंका त्याग होना जरूरी है। जो लोग सुखी होना चाहते हैं उनका सर्वप्रथम कर्तव्य है कि "आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।" यदि ऐसा सद्व्यवहार कर लिया जाय तो आत्मोन्मुखताका अवसर होगा। यदि ज्ञानमार्ग प्राप्त हो गया तो सबसे विविक्त निज आत्मतत्त्वमे रमकर स्वयं ही स्वयमे स्वयंके लिये सुखी हो सकते हैं। सो भैया! सुखके लिये सम्यग्ज्ञान पानेका यत्न करो।

—०—

अध्याय ३

नश्वरे चेन्द्रियाधीने सुखे सारो न विद्यते।
का रतिस्तत्र विज्ञस्य स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१॥

ये संसारके सुख जिनके लिए जगत्के प्राणी दुःखी हैं, पराधीन हैं, परिणाम करते हैं उस संसारके सुखोमे प्रथम ऐब तो यह है कि ये विनाशीक हैं। कौनसा सुख जान रहे हो, अपने-अपने समयकी याद कर लो। कौनसे सुख सदा रहे हैं ये तो विनाशीक ही हैं। आज जिनसे सुख मिलता है वे भी नष्ट होगे। सो इन इन्द्रिय सुखोमे बड़े दुःख हैं। यही तो ऐब हैं। ये सुख ६ प्रकारके हैं। एक तो सुख है स्पर्शनका, कर्मोंमे विषयसेवनमे मैथुनमे ये प्रथम इन्द्रियोंके सुख हैं। दूसरा लोग सुख मानते हैं स्वादका, खाने-पीनेका भला लग गया, मीठा लग गया आदि। तीसरा सुख माना जाता है सूघनेका, बाह्य चीजें सूघनेमें आयें तो उनमे मोह है। चौथा सुख माना जाता है देखनेका। देखनेमे कोई सुन्दर रूप आ जावे, कलात्मक चीज देखनेमे आ जावे उसको देखकर खुश हो रहे हैं। पांचवां सुख है राग रागानुभावोंकी आसक्तिका। छठवां सुख है मनका। कीर्ति चाहिए, प्रशंसा चाहिए, इज्जत चाहिए, सम्मान चाहिए। ये ६ प्रकारके सुख दुनियामे हैं। ये ही सब ६ प्रकारके सुख विनाशीक हैं। वास्तविक जीवकी बात कही जा रही है। इन सुखोमें भैया! दूसरा अवगुण है कि ये सुख इन्द्रियोके आधीन हैं, पराधीन हैं। इन सुखोमे लगनेसे ये सभी जीव बरबाद हो जाते हैं। जिह्वाके द्वारा मीठा लग गया, चटु लग गया आदि जो सुख हैं वे वास्तविक सुख नहीं हैं। ये सुख पराधीन हैं। आनन्द तो तब है जब स्वाधीन हो, जब अधिकारकी बात हो ये सारे सुख

इन्द्रियोके आधीन हैं। इनमें सार नही है। कोई कहे पराधीन हो तो रहने दो सुख तो कुछ क्षण मिल जाता है। सो भैया! ये सुख जितने क्षण हो उन क्षणोमे भी उन सुखोमे सार कुछ नही है, हितकी बात कुछ नही है। उन सुखोमे पड़नेसे परिणाम केवल पछताना ही मिलेगा। इन संसारके सुखोमे पड़नेसे केवल जीवन भर पछताना ही बना रहेगा। जिनको उन सुखोसे सम्बन्ध है वे पछताते ही तो होगे। सुखोके सम्बन्धको निकाल दो, यदि कुछ कल्याण न किया, इन सुखोमे ही पडे रहे तो इस संसारमे पछताना ही बना रहेगा।

इन संसारके सुखोमे सार रंच भी नही है। हे आत्मन्! देख तो तू ज्ञानस्वरूप है, ज्ञानमय है, ज्ञान ही तो तेरा काम है। ज्ञानके अतिरिक्त और तेरा कोई काम ही नही है। यदि ससारके सुखोसे ही प्रीति रही तो संसारमे रुलना ही बना रहेगा। हे आत्मा! तू ज्ञानमय होकर भी यदि संसारके सुखोसे प्रीति करे तो बेकार है यह जीवन। भैया! इन संसार के सुखोकी प्रीति छोड़ दो, तू तो स्वयं ही आनन्दस्वरूप है। परकी ओर दृष्टि जाये तो विघ्न ही हैं। ससारके सब सुखोसे अपने उपयोगको बाहर हटाओ। केवल अपने स्वरूपको ही देखो तो वहाँ क्लेशोका नाम ही नही है। दुःख तो संसारके सुखोके ही भोगनेके कारण ज्यादा भोगने पडते हैं। तू इन्द्रियज सुखोकी प्रीतिको तज। यदि तजते नही हो तो तुम भक्तिके काबिल नही हो।

यदि स्त्रीप्रसग ज्यादा करते हो तो कही बीमार हो गए, कही डाक्टर वैद्योकी शरण में पड़े रहे दुःख भोगोगे। रसना इन्द्रियके वश होकर मात्रासे अधिक खा लिया तो फिर डाक्टर वैद्य तो मूँगकी ही दालको पांच सात दिन तक खिलायेंगे। यदि सुखोमे ही आसक्त रहे तो धर्मके पात्र नही रहोगे। गंधीकी दुकानमें नाकमे दम हो जाता है। यदि सुख ज्यादा भोगोगे तो सुख भोगनेके काबिल न रह जावोगे। एकोकी नाटक, थियेटर, सिनेमा आदिको टकटकी लगाकर देखोगे तो आँखें कमजोर हो जावेंगी। कुछ समय बाद वह गंदा मालूम होगा। इसी तरह गदा भजन उसी रागसे बार-बार सुना सो कह देंगे कि बस रहने दो, बद कर दो। कहाँ तक सुनेंगे? इन सुखोसे प्रीति करनेमे हित नही है। इसलिए यही निर्णय करो कि ससारके सुखोसे मनुष्यदेह बडी दुर्लभतासे मिलती है, इसे पाकर विषयोमे मत भाग लेना।

एक दृष्टान्त आता है कि एक खिरका खिजैला अंधा आदमी था। उसने सुन लिया कि इस नगरीमें जो अंधा व्यक्ति आयगा वह जो माँगेगा वही मिलेगा। यह सुनकर वह अधा उस नगरीमे जाना चाहता है। नगरीमे एक कोट फैला हुआ था। वह अंधा कोट पर हाथ धरे चलता जाता है जहाँ दरवाजा मिलता है वही वह खाज खुजाने लग जाता है। वह उस

कोटको छुवे हुए चला जा रहा है। जिस वक्त दरवाजा आया उस वक्त वह अपने हाथोसे अपना सिर खुजलाने लगा। अब तो वह दरवाजा निकल गया। इसी प्रकार फिर आगे जब दरवाजा आया तब फिर अपने हाथोसे सिर खुजलाने लगा। इसी प्रकार यह जगत्का प्राणी ८४ लाख योनियोमे अनेक बार चक्कर काटता आया, भ्रमण करता आया, मगर जब मनुष्य जन्म पाया तब अपने हाथोसे अपना सिर खुजलाने लगा। अब वह मनुष्य योनि भी बीत गयी और दूसरी योनियोमे यह जीव चला गया। अरे भैया, जरा इस मनको तो वशमे करो। यदि अनर्गलमे पड गए तो यह उचित काम नही। इस संसारके सुखोमे न पडकर प्रथम कर्तव्य यह है कि अपने ज्ञानस्वरूपको देखो, प्रभुके स्वरूपको देखो, अपने शुद्ध चैतन्यस्वरूपकी ही शरण गहो, इसमे ही सुख प्राप्त होगा।

यतोऽन्ते क्लेशदाः सर्वे सम्बन्धा विपदास्पदाः।
ततः सग परित्यज्य स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥ २ ॥

दुःखोकी जड क्या है ? सब दुःखोकी जड है दूसरोसे सम्बन्ध। जहाँ सम्बन्ध जुडा तहाँ क्लेश उत्पन्न हुए। ये सम्बन्ध ही क्लेशोके देने वाले हैं। पति पत्नीके सम्बन्धसे सुख दोनोको ही न मिलेगा। ऐसा तो कोई प्रोग्राम होगा नहीं कि दोनो एक साथ ही मर जावें, तो सम्बन्धकी बात देखो समस्त क्लेशोके देने वाले है। यदि पत्नी गुजर गयी तो उसके वियोगमें पति दुःखी होगा और यदि पति गुजर गया तो उसके वियोगमे पत्नी दुःखी होगी। तो ये स्त्री, पुत्र, वैभव इत्यादि जीवनमे दुःख देने वाले ही हुए। इनके सम्बन्ध तो क्लेश ही देनेके मुख्य कारण हैं। कौनसा सम्बन्ध और समागम है जो क्लेश न दे।

भैया! भले ही थोडासा मौज मान लें, मगर अन्तमे ये सग क्लेश ही देते हैं। कोई सम्बन्ध ऐसा नही जो अन्तमें दुःख न देगा। सब अन्तमे नियममे क्लेश ही देने वाले हैं। इस कारण इस समागमको पाकर ऐसा विचार रखो कि ये विनाशीक है और अतमे क्लेश ही देने वाले हैं। ऐसे विचार बने रहें तो जीवनमे सतोष होगा। यदि ममताकी कुबुद्धि ही बनी रहे तो जीवनमे सदा दुःख ही बने रहेंगे। यदि किसी चीजको यह मान लें कि मेरा है तो मन मलीन हो जायगा और उससे क्लेश ही बने रहेगे। इसलिए यदि जिनके वियोगका दुःख न उठाना हो उनके सयोग समयमे हर्ष न मानो, फूले फले न फिरो। अगर संयोगमे हर्ष मानोगे तो क्लेश ही रहेंगे। तो ये समस्त सम्बन्ध अन्तमे क्लेश ही देने वाले हैं, विपत्तियोके ही साधन हैं। केवल एकाकी शुद्धस्वरूपकी श्रद्धा कर सको तो मुक्तिका मार्ग मिलेगा और यदि किसीसे सम्बन्ध बनाए रहे तो उससे क्लेश ही मिलेंगे।

दो भाई थे। उन दोनोमे बडी ही मित्रता थी। एक साथ ही वे दोनो स्वाध्याय

करते थे। एक भाई ने दूसरेसे कहा कि जो पहले मर जावे वह दूसरेको मदिरमे शिक्षा देने अथवा ज्ञान देनेके लिए आवे। एक भाई गुजर गया वह देव हो गया। अब देव भाई ने आकर दूसरेसे कहा कि भैया! ये ससारके जो सुख है, परिवारके जो लगाव है, स्त्री पुत्र इत्यादिके जो मोह है वे बड़े ही दु:खदायी है। उन्हे तो त्यागना ही चाहिए। दूसरे ने कहा वाह, मेरी स्त्री बडी ही आज्ञाकारी है, मेरा पुत्र बडा ही विनयशील है, वे मुझे जीवन भर सुख देने वाले है। बोला—अच्छा कल १२ बजे तुम बीमार बन जाना, मैं तुमको ज्ञान देनेके लिए वैद्य बनकर आऊगा, तभी तुमको बता दूगा। वह भाई बीमार बन गया और दूसरा देव भाई वैद्य बन गया और गाँवकी गलियोमे दवा वेचने लगा। घर वाले लोग बोले इसे ठीक करदो। वह वैद्य पुकार रहा था कि लो भाई दवा खरीदो। मेरे पास अत्यन्त पेटेन्ट दवा है। अब उस बीमार व्यक्तिके घर वालोने उसे बुला लिया। वैद्य बोला कि एक गिलास जल मगा दीजिए। एक गिलास जल आ गया। वैद्यने अपनी झोलीसे झूठ मूठकी दवा निकाली, मानो राख हो उसे उस एक गिलासके पानीमे मिला दिया। घर वालोसे कहा कि लो दवा पियो। घरके लोग बोले—अरे बीमार कौन है, और दवा किसको पीनेके लिए कह रहे हो? वैद्यने बताया कि यह दवा ही ऐसी है कि जो पियेगा वह मर जायेगा और इसके बदलेमे वह ठीक हो जायगा जो कि बीमार है। पहले उसकी माँसे कहा कि लो दवा पियो। माँ ने सोचा कि मेरे अभी तीन लडके हैं। यदि मैं मर गयी तो इन तीनो लडकोका सुख न देख सकूंगी। बापसे भी कहा गया तो उसने भी इसी प्रकार सोचा। स्त्री से कहा तो उसने भी सोचा कि अभी हमारे तीन लडके हैं यदि मैं मर गयी तो उनका सुख न देख सकूंगी। इस तरह सोचकर घरके किसी भी सदस्य ने वह पानी नही पिया। वैद्यने कहा कि क्या मैं पी लेऊं तो घरके लोग बोले कि हाँ हाँ पी लेदो। उस वैद्यने दवाको पी लिया। अब तो वह बीमार व्यक्ति उठ कर खडा हो गया और समझ लिया कि वास्तवमे मेरी शरण अन्य कोई नही है। जगतके जितने भी सम्बन्ध हैं वे सब विपत्तियोके ही साधन हैं।

तो भैया! इन सम्बन्धोको छोडो। छोडनेका मतलब यह नही कि अपना घर त्याग दो। मैं यह नही कह रहा हू, पर सम्बन्ध छोडनेका मतलब यह है कि किसी अन्यसे सम्बन्धकी बुद्धि न हो। ऐसा विश्वास हो और अपने अन्तरसे मोहको हटाओ तो शान्ति प्राप्त हो सकती है। ऐसे शुद्ध ज्ञानमात्रकी प्रतीति रखो, अज्ञानताको हटाओ, अपने ज्ञानके उपाय जुटाओ और शास्त्र पढो। अपने समस्त बाह्य उपयोगोसे चित्तको हटाकर विश्राममे ठहर जाइए।

यौवनं जरया व्याप्तं, शरीरं व्याधिमन्दिरम् ।
समृत्यु जन्म कः सारः ? स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥३॥

बतलाओ इस लोकमे सार चीजें क्या है ? यौवन है तो वह बुढापेके साथ लगा हुआ है। शरीर है तो व्याधिका घर है। जन्म है, मृत्यु भी साथमे ही है। कौनसे ऐसे पदार्थ हैं जो सारभूत हैं। सो बाहरके कोई भी पदार्थ हो, पैसा हो, धन हो, मित्र हो, परिवार हो कोई भी इस लोकमे हितरूप नही है। उनमे कुछ है तो केवल क्लेश ही है। उनमे अगर आसक्ति है तो दुनिया भरके झगडे, विवाद आदि खडे हो जाते हैं। यदि सच्चा ज्ञान नही है तो हमे ही वे दु ख उठाने पडेंगे। दुःख भीतर स्वभावमे नही होते हैं, केवल ख्याल बनाकर ही दु ख होते है।

सोचो यहाँ सार चीज क्या है ? सारकी चीज यहाँ कोई नही है। सभी मोहकी चीजें हैं। इन झूठे मोहोमे तो क्लेश ही क्लेश बने रहेगे। मान लिया कि ये हमारे बच्चे हैं, यह मेरा घर है, यह मेरा परिवार है, हम धन सम्पन्न हैं तो ये सब मोहकी बातें हैं। कौनसा सुख होता है मोह करके सो बतलाओ। तुम सुखकी तलाशमे फिर रहे हो बाहर ही बाहर, तो यह तो क्लेशका ही उपाय है।

धनका मोह किया, हर प्रकारकी चोटें सही, पराधीनताकी चोटें सही तो कितना पछताना पडेगा ? मोहमे फस गए इसीसे दुःख हो गए, नही तो दु.ख कहाँ हैं ? मोहके मायने है अज्ञान। इस मोहसे तो सही ज्ञान नहीं रह सकता। सही ज्ञानका न रहना ही मोह कहलाता है। सो मोहसे अशान्तिके अलावा और कुछ नही मिलता है। यह मेरा है, यह पराया है, यह इष्ट है, यह अनिष्ट है इत्यादि ही मोह है। अरे जीव जीव सब एक स्वरूप हैं, उनमें छटनी करनेसे क्या लाभ है ?

यह मेरा है, यह पराया है ऐसी छटनी करनेका नाम ही मोह है। जैसे स्वप्नमे देखी हुई चीज झूठी नही मालूम होती है उसी तरह मोहकी नीदमे जो कल्पनाएँ पैदा होती हैं वे भी झूठी नही मालूम होती हैं। यह मेरा ही तो लडका है, यह मेरी ही तो स्त्री है, यह मेरा ही तो परिवार है इत्यादि ही मोहकी झूठी कल्पनाएँ हैं। अरे वे तेरे कुछ नही हैं, वे सब न्यारे-न्यारे हैं। ये मोही अशातिके तो काम करते हैं और शान्ति चाहते हैं तो यह कैसे हो सकता है ? तो इन विकल्पोसे तो दु ख ही सदा रहेगे। सो कहते हैं कि सारभूत चीज क्या है ? सारभूत चीज कुछ भी तो नही है।

सारभूत चीज तो आत्मा ही है और आत्माकी खबर दिलाने वाली प्रभुकी मूर्ति है। उस भगवानकी शान्तिपूर्ण मुद्राके दर्शन करें तो शान्तिका मार्ग प्राप्त हो सकता है। अपने

आत्मस्वरूपमे ही रमो तो शान्तिका मार्ग प्राप्त कर सकते हो। शांतिका मार्ग प्राप्त करनेका उपाय तो अपने आत्मस्वरूपका दर्शन ही है। भगवानकी शान्तमूर्तिके दर्शन करके अपने आत्माकी खबर होती है। सो यह प्रभुकी भक्ति तुम्हारी शरण है। हम सब जीवोका धर्म ही शरण है और धर्म ही सार है। धर्मके सिवाय हितरूप और कुछ नही है सो अपनी-अपनी बातें तोल लो। ये जो परिवारके लोग हैं उनसे मोह न करो। अपने प्रभुका ही स्मरण करो तो शांति प्राप्त हो सकती है। यदि अपने प्रभुको भूल गए तो संसारमे रुलना ही पडेगा। सत्यकी झलक न मिलेगी, जीवनकी बरबादी ही होगी। यदि कुटुम्ब, परिवार आदिका भाव आवरण होगा तो ज्ञान ढक जायगा, सोए हुए ही रहोगे। इन मोहकी चीजोमे सार कुछ नही है, लाभ कुछ नही मिलेगा। इसलिए हित चाहने वालेका कर्तव्य यह है कि वह पर-पदार्थोंके मोहका त्याग करे अपने सहज स्वरूपका दर्शन करे तो अपने आपमे आ जायगा और अपने आपमे ही नियमसे सुख होगा।

येषां योगो वियोगो हि नियमेन भविष्यति।
तेभ्यो नु किं मुधारविन्दम् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४॥

जिन पदार्थोंका सयोग होता है उनका नियमसे वियोग होता है। बतलाओ ऐसी कौनसी चीज है जो मिल जाती हो, पर कभी अपनेसे जुदा न होती हो। क्या कोई ऐसा पदार्थ है? अरे औरोकी तो बात ही क्या जो शरीर मिला है वह भी इससे जुदा हो जाता है। फिर मिली हुई चीजका क्या हर्ष करना, क्या फूले समाना। उसका तो वियोग जरूर होगा। और वियोग जब होगा तो वियोग होने पर कठिन खेद करना भी तो होगा। ससार की रीति ही है ऐसी कि सयोग होता है तो उसका वियोग जरूर होगा।

जिन महापुरुषोके हम नाम सुनते हैं वे महापुरुष भी जब नही रहे, जो निर्वाणको भी प्राप्त हो गए, स्वर्ग गए उनका तो यहाँ अस्तित्व है ही नही। वे तीर्थंकर हो, वे नारायण हो, वे चक्रवर्ती हो। कोई महापुरुष भी जब एक जगह कायम नही रह सके तो फिर हम और आपकी तो बात ही क्या है? जिसका सयोग होता है उसका नियमसे वियोग भी होगा।

एक बार एक बुढियाका इकलौता बेटा मर गया तो वह एक साधुके पास पहुची। साधुसे बोली—महाराज, मेरा एक ही तो बच्चा था और वह गुजर गया है, उसको जिन्दा कर दीजिए। साधु बोला—बुढ़िया माँ यह तो बड़ी आसान बात है। तेरा लडका जिन्दा हो जायगा। मुझे कुछ सरसोंके दाने चाहियें। कहा—अच्छा, मैं अभी सरसोंके दाने लाती हू। साधुने कहा— घरके सरसोंके दाने नही चाहिएँ, दूसरे घरके सरसोंके दाने माँगकर लावो।

बुढियाने कहा– मैं अभी माँगकर लाती हूँ। साधु बोला– मगर उस घरके सरसोके दाने होने चाहियें जिस घरमे कभी कोई मरा न हो। बुढ़िया एक घर गई, बोली मेरा लड़का मर गया है उसे जिन्दा करनेके लिए एक पाव सरसो चाहिए। घर वाले बोले—अरे एक पाव क्या एक सेर ले लो। बोली मगर यह तो बतलाओ कि तुम्हारे घरमे कोई मरा तो नही है ? घर वाले बोले– बाप मर गया, दादी मर गयी, दादा मर गया, भाई मर गया। बुढ़िया बोली तो हमे इस घरके सरसोके दाने नही चाहियें, हमे तो उस घरके सरसोके दाने चाहियें जिस घरमे कभी कोई मरा न हो।

बुढिया दूसरे घर गयी, बोली– हमे एक पाव सरसोके दाने चाहिएँ, हमारा लडका मर गया है उसे जिन्दा करवाना है। घर वाले बोले– हाँ हाँ एक पाव नही, १२ सेर सरसो के दाने ले लो। बोली– मगर यह तो बताओ कि तुम्हारे घरमें कभी कोई मरा तो नही है ? घर वाले बोले– हमारे दादा मर गए, दादी मर गई, भाई मर गया आदि। इस प्रकारसे बुढिया दसो घर गयी। सभी जगह उसको एकसा ही उत्तर मिला।

अब तो बुढियाकी आँखें खुल गयी। उसने समझ लिया कि जिसका जन्म है उसका मरण अवश्य है। ऐसा कोई पुरुष नही, जो मरता न हो। कोई अभी मर गया तो कोई फिर मरेगा। बुढियाने समझ लिया कि अगर मेरा बेटा मर गया तो कोई अनहोनी बात नही हुई। अब तो बुढिया हर्ष मनाती हुई साधुके पास गई। साधुके पास जब मुस्कराती हुई गयी तो साधु बोला कि बूढी माँ, तू तो प्रसन्न दिखाई देती है, क्या तेरा लडका जिन्दा हो गया ? बुढियाने कहा कि अब तो मेरी आँखें ज्ञानकी खुल गयी। मेरा बेटा ज्ञान ही था। पहले मेरा ज्ञान मरा हुआ था। अब तो मेरा ज्ञान विकसित हो गया। यही ज्ञान मेरा पुत्र है। यही ज्ञान मेरा सब कुछ है। हाँ, मेरा बेटा जिन्दा हो गया।

सो भैया! ज्ञान बिना पूरा नही पडेगा। कुछ भी ख्याल बना लो, कुछ भी धन जोड लो, पर दुःख नही मिटेंगे, जब तक हृदयमे ज्ञान नही पैदा होगा। यहाँ कोई सहाय नही रखा है। जब तक पुण्यका उदय है और सम्पदा है, तव तक स्वार्थ सिद्ध होता है तब तक पूछने वाले मिलते हैं, मन बहलाने वाले मिलते हैं, पर कोई शरण नही है। शरण तो मेरा ज्ञान ही होगा। ज्ञान विना मेरा कोई भी शरण नही होगा, जो जैसा है उसे वैसा ही जानना ज्ञान है। बाकी तो सब बखेडा है, मिट जाने वाला है, पर लोग मानते हैं कि वैभव सदा मेरे पास रहेगा। सो अपने भीतरके ज्ञानसे नेत्रोको खोलो और यह तो अन्तरमे मान जावो कि जिन पदार्थोंका सयोग होता है उनका नियमसे वियोग होगा।

चाहे इन पदार्थोंसे मेरा सबध मिट जाय, चाहे इनके रहते हुए मैं मिट जाऊँ, पर होगा

बाहरी पदार्थोमे आसक्ति न होने दो, अपने घरके जो दो चार प्राणी हैं उनकी ही व्यवस्था करो, उन पर ही सारा खर्च करो, उन पर ही दिमाग लगाओ तो वह मोह है ।

इन जीवोमे से हर एक जीव पूर्वभवमे तुम्हारा कुछ न कुछ होगा नाते रिश्तेदार, कुटुम्ब परिवार आदि । फिर किसे पराया जानकर आजके मिले हुओमे मोह करते हो अथवा यह व्यवहारदृष्टि छोडकर भीतर अपने स्वरूपको देखो । मेरा स्वरूप तो केवल ज्ञानस्वरूप है । ज्ञायकस्वभाव, ज्ञानमात्र जाननस्वभाव है । यही स्वरूप तो सब जीवोका है । सब जीवोका स्वरूप भी मेरे स्वरूपके समान है । फिर उनमे मेरे और परायेका ख्याल मत करो । यह जानो कि ऐसा करना पडता है । यह हमारी व्यवस्था है । ठीक है पर भीतरमे ऐसी श्रद्धा मत रखो कि यह मेरा है । अरे तुम्हारा तो यह शरीर भी नही है, फिर और चीजें तुम्हारी कैसे हो सकती हैं ? ऐसा अगर इन पदार्थोमे सच्चा ज्ञान रखो तो उनका मोह दूर होगा । कामवासनाको दूर कर ही भोगोकी बात दूर होगी । गुस्सा, छल, कपट तृष्णा आदि सब दूर होंगे । तीसरे यह देह भी मेरा नही । यह देह तो मुझसे जुदा ? । भैया ! ममता छूटते ही सब गुण अपनेमे अपने आप आ जाते हैं तो इस शरीरमे, इस देहसे राग न करके अपने भीतर मे बसो और अपने परमात्मस्वरूपको देखो । ऐसा करनेके लिए व्यवहार न्यायपूर्ण होना चाहिए । जो अपनेको प्रतिकूल लग जाय, अपनेको बुरा लग जाय तो वह दूसरोको कुछ नही करना चाहिए । यदि कोई प्राण दु:खाता है तो बुरा लगता है ना । तो दूसरोके भी प्राण न दुखाओ । अपनेसे कोई झूठ बोल दे तो बुरा लगता है तो दूसरोके लिए भी झूठ न बोलो । जो बात अपनेको बुरी लगे वह बात दूसरोके लिए भी न करना चाहिए । अपनेको काँटा चुभ जाने पर कितने क्लेश होते हैं, फिर दूसरोकी जान लेने पर उन्हे कितना दुःख होता होगा ? जैसा अपनी जान समझते हो वैसा ही दूसरोकी जान भी समझो । चाहे गाय हो, चाहे भैंस हो, चाहे बैल हो, चाहे बकरी हो सबको अपना ही जैसा समझो । वे सब जीव तुम्हारे ही समान हैं । किसी भी जीवकी हिंसा न करो ।

भैया ! अपने दूसरे भाइयोको समझाओ कि वे मांस मदिरा इत्यादिका प्रयोग न ...गर वे समझ जावेंगे तो उन्हे बडा पुण्य होगा । अभी आज सुबह तीन चार हरिजन ...ंस न खानेका नियम लिया । उन्होने भैया बडा ही अच्छा काम किया । दो कहा कि मेरा मांस न खानेका दृढ नियम हैं । जो खुद कहे कि मैं मांस न ...नयम करता हू तो वे बडी ही तारीफका काम करते है ।

...ा हृदय साफ हो तो तभी वह ऐसा कह सकता है । यह तो उनकी बड़ी ही ... । वैसे तो सालमे दो ही चार बार मांस खाते है । वह त्याग दे तो आजी-

सुबह उठकर झट दातून किया, गठरियाँ बाँधी, बनिज किया, बीज बोया, खाया, पिया, गप्प हाँकी आदि आदि और स्त्रियोंको देखो तो वे भी कुछ न कुछ किया ही करती हैं। सुबह उठकर झट चक्की पीसना, बर्तन माँजना, खाना पकाना, साथ हुई फिर रसोई बनाई आदि इस प्रकारसे ये मनुष्य रहटा सा चनर मनर भन्नाया करता है और दूसरेने कहा कि 'कोल्हू का बैल खरी भुस खाय।' तो ये पुरुष अपना तो रूखा सूखा खाकर बसर करते हैं और बच्चोको शोभासे खिलाते पिलाते रहते हैं। तीसरेने कहा कि 'वहाँसे आ गये तरकस बन्द' अर्थात् वहाँसे यमराज आ गए, मृत्यु आ गयी। तो चौथेने कहा कि फिर भी राजा भोज मूसरचंद (मूरखचंद) हैं वे अपने कल्याणकी बातें नही करते। तो राजा भोजने कहा कि कैसी बढिया कविता है।

तो हम अपने लिए क्या करते हैं। जो अत्याचार करता है उसका फल वही भोगेगा जो अत्याचार करता है। सो भाई जिनका सयोग होता है उनका वियोग जरूर होगा। उनके विकल्प छोडकर अपनी आत्माका ज्ञान करो, अपनी आत्मामे ही लीन होवो, इससे ही आनद मिलेगा, बाह्यदृष्टिसे तो आनन्द नही मिलता है।

फेनपुञ्जेऽपि सारः स्यान्न तथापि शरीरके।
विरज्य देहतस्तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥५॥

भैया! समुद्रोसे तालाबोंमे फेन जुड जाता है, पानीके किनारेपर जो फसूगर होता है, फेना होता है उसमे कुछ सार मिलता है क्या? यहाँसे वहाँ बिखरा, वहाँसे यहाँ बिखरा, इस प्रकारसे खत्म हो गया। सो उस फेनमे चाहे कुछ सार मिल जाय, पर इस शरीरमे कुछ भी सार नही मिलता है। वह फेन तो काममे आता है। आजकल दवाइयाँ बनानेके काममे आता है तो उसमे कुछ सार मिल जायगा, पर इस शरीरसे कुछ भी तो सार नही मिलेगा। देखो इस शरीरमे ऊपरसे नीचे तक कोई सारकी बात नजर आती है क्या? कुछ भी तो चीज सारकी नजर नही आती है। इस शरीरके भीतर हड्डियाँ और माँस है और ऊपरसे चमडीकी पतली झिल्ली है, यह नष्ट हो जाता है, बरबाद हो जाता है।

आप लोग कहेंगे कि शरीरमे साबुन और तेल लगानेसे शरीर अच्छा तो लगता है, अरे अगर नहानेके बाद भी नाककी बत्ती बह गयी तो फिर शरीर वैसाका वैसा ही हो जायगा। तो इस शरीरमे सारकी चीज कुछ भी तो नही है। इसलिए इन देहसे विरक्त होओ, इससे प्रीति न करो, दूसरे जीवोसे सम्बध न करो। कोई ऐसा काम करो जिससे आगे भी तरक्की हो। इसलिए भैया! इस शरीरसे विरक्त होकर अपने घरमे आवो, अपने स्वरूपको देखो। यह जीव यह आत्मा तुम्हारा घर ही है। सो अब अपने घरकी पहिचान रखो।

बाहरी पदार्थोंमें आसक्ति न होने दो, अपने घरके जो दो चार प्राणी हैं उनकी ही व्यवस्था करो, उन पर ही सारा खर्च करो, उन पर ही दिमाग लगाओ तो वह मोह है।

इन जीवोमे से हर एक जीव पूर्वभवसे तुम्हारा कुछ न कुछ होगा नाते रिश्तेदार, कुटुम्ब परिवार आदि। फिर किसे पराया जानकर आजके मिले हुओमे मोह करते हो अथवा यह व्यवहारदृष्टि छोडकर भीतर अपने स्वरूपको देखो। मेरा स्वरूप तो केवल ज्ञानस्वरूप है। ज्ञायकस्वभाव, ज्ञानमात्र जाननस्वभाव है। यही स्वरूप तो सब जीवोका है। सब जीवोका स्वरूप भी मेरे स्वरूपके समान है। फिर उनमे मेरे और परायेका ख्याल मत करो। यह जानो कि ऐसा करना पडता है। यह हमारी व्यवस्था है। ठीक है पर भीतरमे ऐसी श्रद्धा मत रखो कि यह मेरा है। अरे तुम्हारा तो यह शरीर भी नही है, फिर और चीजें तुम्हारी कैसे हो सकती हैं? ऐसा अगर इन पदार्थोंमे सच्चा ज्ञान रखो तो उसका मोह दूर होगा। कामवासनाको दूर कर ही भोगोकी बात दूर होगी। गुस्सा, छल, कपट तृष्णा आदि सब दूर होंगे। तीसरे यह देह भी मेरा नही। यह देह तो मुझसे जुदा ?। भैया! ममता छूटते ही सब गुण अपनेमे अपने आप आ जाते हैं तो इस शरीरमे, इस देहसे राग न करके अपने भीतर मे बसो और अपने परमात्मस्वरूपको देखो। ऐसा करनेके लिए व्यवहार न्यायपूर्ण होना चाहिए। जो अपनेको प्रतिकूल लग जाय, अपनेको बुरा लग जाय तो वह दूसरोको कुछ नही करना चाहिए। यदि कोई प्राण दुःखाता है तो बुरा लगता है ना। तो दूसरोके भी प्राण न दुखाओ। अपनेसे कोई झूठ बोल दे तो बुरा लगता है तो दूसरोके लिए भी झूठ न बोलो। जो बात अपनेको बुरी लगे वह बात दूसरोके लिए भी न करना चाहिए। अपनेको कांटा चुभ जाने पर कितने क्लेश होते हैं, फिर दूसरोकी जान लेने पर उन्हे कितना दुःख होता होगा? जैसा अपनी जान समझते हो वैसा ही दूसरोकी जान भी समझो। चाहे गाय हो, चाहे भैंस हो, चाहे बैल हो, चाहे बकरी हो सबको अपना ही जैसा समझो। वे सब जीव तुम्हारे ही समान हैं। किसी भी जीवकी हिंसा न करो।

भैया! अपने दूसरे भाइयोको समझाओ कि वे मांस मदिरा इत्यादिका प्रयोग न करें। अगर वे समझ जावेंगे तो उन्हे बडा पुण्य होगा। अभी आज सुबह तीन चार हरिजन भाइयोने मांस न खानेका नियम लिया। उन्होने भैया बड़ा ही अच्छा काम किया। दो भाइयोने खुद कहा कि मेरा मांस न खानेका दृढ नियम है। जो खुद कहे कि मैं मांस न खानेका दृढ नियम करता हू तो वे बडी ही तारीफका काम करते है।

जिसका हृदय साफ हो तो तभी वह ऐसा कह सकता है। यह तो उनकी बडी ही प्रशंसाकी बात है। वैसे तो सालमे दो ही चार बार मांस खाते है। वह त्याग दे तो आशी-

वनका पुण्य होगा। अगर मांस न खावें तो क्या बसर नहीं हो सकता है ? जो मांस खाते हो भैया! वे मांसका त्याग करदें। उसमे कुछ नहीं रक्खा है। उस मांस मदिरा आदिमे कुछ स्वाद भी तो नहीं रहता है। स्वाद तो अन्नमे होता है। अन्न मीठा होता है। लोग व्यर्थमे ही इन गंदी चीजोंका प्रयोग करते हैं और अपने दिमागको गंदा बनाते हैं। मांस मदिराका त्याग करनेके लिए भी बुद्धि चाहिए। जो मांस मदिरा इत्यादिका त्याग कर दे वह भगवानका प्यारा बन जाय। अगर मांस खाने वाले मांसका त्याग कर दें तो उनका हित है।

विष पीत्वापि जीवेच्चेन्न भुक्त्वा विषयं सुखी।
विरज्य भोगतस्तस्मात् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥६॥

जगतके हम और आप सब जीव जिस धुनमे रमे रहते हैं, जिनकी कोशिशोंमे चल रहे हैं वे परिणमन उल्टे ही रास्तेपर लिए जा रहे हैं। उनके लिए विषयोंके साधन जुटाते हैं। इन विषयोंके भोगसे क्या शान्ति मिल सकती है ? जो उमर अधिक हो गयी है, बीत चुकी है उस उमरमे बहुत विषयोंके साधन किए हैं और भोग किए हैं उनका फल केवल रज है, शोक है, दुबलता है। इन विषय भोगोंमे कोई सुख नहीं हो सकता है। चाहे विषयोंको पाकर जिन्दा कोई रह जाय यह तो सम्भव है, पर विषयोंका भोग करनेसे कोई जीव सुखी नहीं हो सकता है। वे विषय क्या हैं ? वे विषय स्पर्शन इन्द्रियके विषय ही हैं। स्त्रीको पुरुष इष्ट हो और पुरुषको स्त्री इष्ट हो, उनका आपसमे प्रेम हो, विषयोंमे ही फसे हों तो ये ही स्पर्शन इन्द्रियके विषय हैं। उन विषयोंके भोग करनेसे किसी भी पुरुष और नारीको शान्ति नहीं मिल सकती है।

भोजनके करने पर, भोजनके चखनेपर कुछ इच्छाकी तृप्ति हो सकती है। यद्यपि यह बात भी सदाके लिए नहीं होती, कुछ घंटोंके लिए ही होती है, मगर विषयोंके लोभी मनुष्योंको इन्द्रिय विषयों के करनेसे तृप्ति नहीं होती है। वे उन इन्द्रियविषयों मे ही फसे रहते हैं। उन इन्द्रियविषयोंसे तो केवल आकुलताएं ही रहती हैं। विषको पीकर कोई जिन्दा रह जा सकता है, मगर भोगों मे ही रहकर कोई सुखी नहीं रह सकता है।

रसना इन्द्रियको देखो, गलेसे कोई लड्डू उतार दे तो उसका स्वाद थोडेसे समयके लिए रहता है। थोडे समयके स्वादके लिए वे गलेसे लड्डू उतार कर अपनेको कष्ट देते हैं। यह रसना इन्द्रियके विषयों का प्रताप है।

नाक तो एक बेकार सी चीज है। उससे तो कोई फायदा ही नहीं जंचता है। और इन्द्रियोंसे तो कुछ फायदा उठा सकते हो, हाथ पैर इत्यादिसे तो दीन दुखियों की सेवा कर लो। तो देखो स्पर्शन इन्द्रियसे लाभ उठा लिया। जिह्वासे प्रभुकी भक्तिके गुणगान कया

तो लाभ उठाया। अब रह गयी नाक, इससे तो कोई लाभ ही नही है। आंखसे अब देखो, अगर प्रभुकी मूर्तिका दर्शन कर लिया, गुणियोंका दर्शन कर लिया और अपने हृदयको स्वच्छ बना लिया तो इन नेत्रोंसे भी लाभ है। कर्ण इन्द्रियसे अगर प्रभुकी भक्तिके उपदेश सुने तो कर्ण इन्द्रियसे भी फायदा पहुच गया। इस नासिकासे तो कोई लाभ ही नही नजर आता है। फिर भी मोही जीव भिन्न-भिन्न प्रकारकी सुगधोको सूंघ सूंघकर अपने मनको भरा करता है। इससे तो आकुलताएं जरूर हो जाती हैं।

आंखोसे क्या कर लिया कि सुन्दर रूप देख लिया, कुछ चित्र सिनेमा आदि देख लिए और अपने मनको खुश कर लिया। इस बाह्यदृष्टिसे अपनेको कितना खुश किया, इसका मोही जनोको कुछ अन्दाज नही रहता है। अटपट बातें करके अपने दिलको भरते हैं। ये अटपट बातें भी जीवको अहित ही करने वाली हैं। विषयोका भोग करके कोई जीव सुखी नही रह सकता है। जो विषयोके साधन तुम्हे प्राप्त हो उन्हे प्राप्त ही न करो, उन्हें तो विनाशीक समझो, अहितकारी समझो, उनसे कोई लाभ भी तो नही है। कर्णइन्द्रियके विषयमें भी क्षोभ ही है।

जिन्दगीमे करने योग्य काम यही है कि इन विषयोसे छूटकर अपने जाननस्वरूप प्रभु की भक्तिमे लग जावो। जितना ही अधिक समय प्रभुकी भक्तिमे लगे, प्रभुके स्मरणमे लगे उतना ही अपने जीवनको सफल मानो। और बाकी समागमोको पाकर उनमे ही लिप्त होकर अपना समय गुजार दो तो यह व्यर्थकी ही चीज है।

जगतमे अपनी शरण कोई नही है। अपना शरण खुद ही है। कुछ दर्द हो जाय, पीडा हो जाय तो खुदको ही भोगना पडता है, दूसरा कोई सहाय नही होता है। और अपने सहजस्वरूपका संवेदन हो जाय तो खुद सहाय हो जाता है।

एक कथानक है कि एक जंगलमे एक राजा चला जा रहा था। उसको एक साधु मिला। वह राजा उस साधुके पास बैठ गया। थोडी देरमे उस साधुकी आंखें खुली। राजा बोलता है महाराज, आप इस निर्जन जंगलमे अकेले ऐसे दुःख क्यो भोग रहे हैं? आपके पास नौकर-चाकर नही, खानेके लिए कोई साधन नही, इतने कष्ट आप यहाँ पर क्यो भोग रहे हैं? आप कौन हैं? साधु कहता है कि मैं हूं अनाथ मुनि। राजा बोला—महाराज आप अपनेको अनाथ क्यो समझते हैं? मेरे घर चलो, खुब आराममे रहो, किसी भी प्रकार का कष्ट न होगा। मनमाना खाना, मनमाना पहिनना, मनमाना घूमना। हे महाराज, आप अपनेको अनाथ न समझें, साधु कहता है कि तुम कौन हो? राजा बोला कि मैं इस देशका

राजा हूं। मेरे पास नौकर-चाकर हैं। अपना वैभव बताने लगा तो मुनि कहते हैं कि राजन्, ऐसा तो पहले मैं भी था। इतनी बात सुनकर राजाकी आंखें खुलती हैं। राजा कहता है कि महाराज आप राजा थे तो अपनेको आप अनाथ क्यो कहते है? साधु बोला—सुनो, एक बार हमारे सिरमे दर्द हुआ। बहुतसे डाक्टर वैद्य हकीम वगैरा आये, पर सिरका दर्द ठीक न हुआ। हमारे परिवारसे कोई हमारे उस दुःखको बांट न सका, तो हमारे चित्तमे आया कि हमारे दुःखोका बाटने वाला कोई नही है, मैं अनाथ हू।

देखो भैया! इस जगत्में तुम्हारा कोई शरण नही है। हमे लोग चाहते हैं, सब आज्ञाकारी हैं, उनसे मुझे सुख मिलता है यह सोचना अज्ञान है। प्रत्येक जीव न्यारे-न्यारे हैं, सबके कर्म जुदे-जुदे है, सब अपने-अपने कषायसे आकुलताए प्राप्त किया करते हैं। अपनेको अकेला जानकर, अपनेको अपना ही जिम्मेदार समझकर अपना कल्याण किया जा सकता है। सो अब इन भोगोमे विरक्त होकर अपने प्रभुकी भक्तिमे ही रत होकर अपने आपमे आवो और अपने आपमे ही सुखी होवो। हम और आप क्या चीज हैं। अगर अपने इस आत्मस्वरूपको देखें तो न तो गध मिलती है, न रस मिलता है और न बू मिलती है। आत्मा तो केवल ज्ञानानन्दस्वरूप है। इस आत्मामे केवल आनन्द ही भरा हुआ है। ज्ञान और आनन्द वाली जो वस्तु है वह यही आत्मा ही है। आंखोसे देखी जाने वाली चीजोमे क्या कोई जानकारी समझमे आती है? इसमे न तो ज्ञान ही है और न आनन्द ही है। ज्ञान और आनन्दको छोडकर इसमे कुछ नही भरा हुआ है। परन्तु जब अपनेको भूल जाते हैं, इन परपदार्थोंसे ही आनन्द मानते है तो इसे ही अज्ञान कहते हैं। दूसरोसे आनन्द की आशा करना ही अज्ञान है। जब कभी अपनेको दुःख होते हैं तो अपनी ही गल्तीसे होते हैं। राग द्वेष होते हैं। राग द्वेष करनेसे ही दुःख होते है, पर नाम लगाते हैं दूसरोका। अपने कुटुम्ब परिवारकी आशा न करो। ये लोग अपने लिए हितरूप नही हैं, कुटुम्ब परिवार इत्यादिको अपना माननेसे ही दुःख हैं।

अब देखो एक दृष्टान्त द्वारा समझो कि एक जानवर होता है कुत्ता और एक जानवर होता है सिंह। इन दोनोमे फर्क देखो कितना है? कुत्तेको एक दो रोटीके टुकडे खानेके लिए दे दो तो वह आपका कितना बडा भक्त हो जाता है। रातमे आपके घरकी रखवाली करता है। कोई विपत्ति अगर मालिकके ऊपर चढ गयी तो वह उसे बचाता है। तो कुत्ता उपकार करने वाला है कि नही? शेरको बात देखो वह कुछ उपकार नही करता। शेर तो अगर दिख जाय तो दिल कांप जाय। यदि कच्चा दिल हो तो हार्ट फेल हो जाय। शेर अनुपकारी जानवर होता है और कुत्ता उपकारी जानवर होता है। कुत्ता तो आज्ञाकारी होता है, पर

शेर विनाशकारी होता है। किन्तु उनका फर्क एक मिसाल द्वारा देखो। कोई अगर किसीकी प्रशंसा करे कि अमुक तो बड़े उपकारी हैं, क्या कहना है? कुत्तेके समान हैं। कुत्तेसे तो भले और अच्छेकी उपमा दी गई, पर सुनने वाले लोगोंको बुरा लगता है। अच्छा बताओ बुरा लगता है कि नही? बुरा लगता है, मगर कोई कह दे कि तुम तो शेरके समान हो। हालांकि शेरके समान (खतरनाक) होना बुरी बात है, फिर भी सुनने वाले लोग खुश हो रहे है। शेर दूसरोके प्राण हरता है इसलिए उस व्यक्तिकी भी निन्दा की जा रही है। मगर वह व्यक्ति सुन-सुनकर खुश हो रहा है। यह फर्क क्यो आ गया है? यह फर्क आ गया है मोह और अज्ञानसे। शेर विनाशकारी है तो भी उसमें विवेक है, ज्ञान है। इसलिए शेरकी तरह होनेकी बात सब सुनना चाहते है। कुत्ता बडा आज्ञाकारी है फिर भी उसमे अविवेक है। इसलिए कोई कुत्तेकी उपमा नही सुनना चाहता है। कुत्तेके अगर लाठी मारी जाय तो लाठी को वह मुंहमे भरता है। वह समझता है कि हमें लाठीने ही मारा है, वह यह नही जानता कि किसी मनुष्यने मारा है। यही समझकर वह लाठीपर हमला करता है, मनुष्य पर हमला नही करता है। परन्तु कोई शेरको लाठी मारे तो वह लाठी पर नही आक्रमण करता है, बल्कि मनुष्यपर ही आक्रमण कर देता है। वह समझता है कि इस मनुष्यने ही हमे मारा है, लाठीने नही मारा है। तो शेर अनुपकारी और कुत्ता उपकारी जानवर होता है। तो भी विवेकका फर्क है।

इसी तरह ज्ञानी और अज्ञानीकी बात है। अज्ञानी तो कुत्तेकी तरह निमित्तदृष्टि वाला है और ज्ञानी शेरकी तरह उपादानदृष्टि वाला है। अज्ञानी समझता है कि मुझे कुटुम्ब ने फसाया, इसने हमे गाली दी, इसने हमारा अपमान किया आदि। परवस्तुओंको अज्ञानी यह समझता है कि मेरी है। ऐसे ही ख्याल बन गये है इसीसे यह अज्ञानी दुःखी बना रहता है। मैं स्वयं ख्याल करके दुःखी होता हूँ इसका भान नही, किन्तु ज्ञानीको यथार्थ ही भान है।

एक कहावत है कि तीन चोर चोरी करने चले। रास्तेमें एक नया आदमी मिला। यह नया आदमी चोरी करना नही जानता था। वह नया आदमी बोला—भाई कहाँ जा रहे हो? वे बोले, चोरी करने जा रहे हैं, बोला—अच्छा हम भी चलेंगे। अब चार चोर हो गए। एक गांवमे जाकर एक घरमे घुसे। एक बूडे आदमीने खांस दिया तो तीनों चोर तो भग गए, पर यह नया आदमी न भग सका, वही रह गया। उसे कुछ न सूझा, वह जिसे ज्वारी बोलते हैं उस पर जाकर बैठ गया। अब तो बड़ी भीड़ इकट्ठा हो गयी। कोई बोलता है कहो क्या गया, कोई बोलता कहो कैसे क्या हुआ? दसो व्यक्तियोंने दसो प्रश्न किये। उस घरके

मालिकने झुंझलाकर कहा कि हम कुछ नही जानते हैं, ऊपर वाला जाने। उसका ऊपर वाला कहनेका मतलब भगवानसे था, पर वह चोर जो ऊपर बैठा था उसने सोचा कि हमे कह रहा है तो ऐसा सुनकर बोला कि हमी क्यो जानें वे तीनो क्यो न जानें ? अब तो वह पकड़ लिया गया और मारा पीटा गया। हालांकि बुड्ढा आदमी उसको कुछ नही कह रहा था, पर उसने स्वयं अर्थ लगाकर अपनेको फांस दिया। ये जगत्‌की चीजें हमे हैरान नही करती। हम स्वयं ही ख्याल बनाकर दुःखी हो जाते है। इन बाहरी चीजोंसे अगर कोई सुखी हो सकता हो तो बताओ एक भी मनुष्य जो सुखी हुआ हो। मुझे दूसरी चीजोसे दुःख नही होता है। दुःख तो अज्ञानसे हो जाते हैं। यदि अपनेको सुखी करना है तो अपने ज्ञानको सम्हालो, भोग विषयोसे सुखकी आशा न करो। उनसे तो बर्बादी ही है। भैया! इन भोगो से प्रीति हटाओ। इन समागमोमे तृष्णा न करो। यदि इनका संयोग होता है तो उनसे वियोग जरूर होगा। कोई बाह्य अर्थ प्रीति करनेके लायक नही है। भोगोसे हटकर अपने आपके स्वरूपसे प्रीति करो और अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होओ।

देही कश्चिन्न यो मृत्युं न प्राप्तस्तर्हि को मम।
त्राता स्ववृत्तिरेवातः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥७॥

इस दुनियामे कोई प्राणी ऐसा नजर नही आता है जो मृत्युको न प्राप्त हो। कोई समय ऐसा आयेगा कि हमे भी मरना पडेगा। मेरा यहाँ कोई रक्षक नही है। केवल अपने आपके स्वरूपको देखो, वह स्वरूप ऐश्वर्यसे भरा हुआ है, परमात्मतत्व रूप है, ज्ञानानन्दमय है। ऐसा ही अपने आपके स्वरूपको देखो, कल्पनाओको त्यागो तो तुम्हारा रक्षक तुम्हीं हो सकते हो।

एक कथा है कि ब्रह्मने चार जीव बनाये। उल्लू, कुत्ता, गधा और मनुष्य। चारो को ४०-४० वर्ष की उम्र दी। ब्रह्मा बोला जावो हमने तुम्हे पैदा किया। उल्लूने कहा महाराज मेरा काम क्या है ? ब्रह्माने कहा कि अधा बने बैठे रहना, जो कुछ मिल जाय उसीको खा लेना, यही तुम्हारा काम है। उल्लू बोला हमको कितने वर्ष जिन्दा रहना होगा तो ब्रह्मा बोले कि ४० वर्ष तक। उल्लू बोला महाराज हमारी उम्र आधी कर दीजिए तो ब्रह्माने उसकी २० वर्षकी उमर कर दिया। २० वर्ष तिजोडीमे रख दिये। कुत्ते ने कहा महाराज हमारा क्या काम है तो ब्रह्मा बोले कि तुम्हे जो कोई रोटीका टुकडा दे दे उसीकी भक्ति करना, उसकी ही सेवा करना। बस यही तेरा काम है तो उमर मेरी कितनी दिया ? बोले ४० वर्ष। तो कुत्ते ने कहा, महाराज हमारी उमर कम कर दीजिए तो उसकी भी २०

वर्ष कम कर दिया। २० वर्ष तिजोरीमे रख लिये। गधेने कहा महाराज मेरा क्या काम है ? तो ब्रह्मा बोले कि तू बोझा ढोना और जो कुछ रूखा सूखा भूसा मिल जाय उसीको खा लेना। गधा बोला, महाराज हमारी कितनी उमर दिया तो ब्रह्मा बोले ४० वर्ष। कहा, महाराज हमारी उम्र आधी कर दीजिए तो आधी उम्र कर दिया। अबकी बार मनुष्यने कहा—मेरा काम क्या है तो ब्रह्मा बोले कि तेरा काम है भोगविलास करना, मौज मनाना खुशियाँ मनाना। मनुष्यने कहा—महाराज, हमारी क्या उमर दी ? ब्रह्मा बोले—४० ४० वर्ष। मनुष्यने कहा, उमर और बढा दीजिए। ब्रह्माने कहा देखो खजानेमे देखता हू, अगर गुंजाइस होगी तो बढा दूंगा। देखा तो बीस-बीस-बीसका जुम्ला लगाया तो ६० वर्षकी उम्र बच रही थी। तो वह सभी उम्र मनुष्यको दे दी। अब तो मनुष्य १०० वर्षका हो गया।

सो देखो मनुष्यने हँसी खुशीसे ४० वर्ष बिता दिये। खूब चैनसे, आरामसे ४० वर्ष बीत गये। इतनी उम्र तक तो माता-पिताकी सारी जिम्मेदारी रही। इतनी उम्र तक खूब आराम किया, बच्चोको देखा, देखकर रहे, भोग विलास किए। पर ४० से १०० वर्ष तककी उम्र तो कुत्ता, गधा और उल्लूकी जैसी रही। असली उम्र तो ४० वर्ष ही थी। अधिक कमाना पडता, लडकी हुई तो उसकी शादी करनी है सो धन जोडनेकी फिक्र हुई, इधर भागा, उधर भागा। इस तरहसे और गधेकी जैसी उम्र ६० तक गयी, अब ६० के बाद शक्तिहीन हो गये। सो पुत्रोके आधीन हो गये। शहरो और नगरोमे तो जिसके नाम जायदाद है उसीके नाम रहती है जब तक कि वह मर नही जाता, पर देहातोमे तो जहाँ बूढ़े हुए बच्चोके वश हो जाना पड़ता है। बच्चे जो खिलाते पिलाते हैं उनका पक्ष करते हैं, उसमें ही अपना समय व्यतीत करते हैं। ८० वर्षके बाद १०० वर्षकी उम्र तक उल्लूकी उम्र रहती है। न तो आंखोसे दिखाई पडता, न कानोसे सुनाई पडता। बहू बेटियोने खानेको बुला लिया तो खा लिया, नही तो न खाया। छोटी अवस्थामे ही अगर स्वाधीन अपनेको कर लिया तो भला है। ज्ञान अगर सही है तो सब ठीक है। अपना शुद्ध ज्ञान बना रहे, तो समझो अपना कल्याण हो गया और यदि ऐसा न कर सके तो भला नही होगा। अपनी भलाईका काम तो एक यही है कि सच्चा ज्ञान बना रहे। मोह ममतामे न पडो। केवल शुद्ध, स्वच्छ, ज्ञान ज्योतिमात्र अपने आपको निरखो और अपने ज्ञानस्वरूपमे रमकर स्वयं सुखी होवो। यदि ऐसा कर सके तो जीवन सफल है।

बाहरसे दृष्टि हटाओ, अपने स्वरूपमे ही लगे रहो। अपना स्वरूप ही निजका घर है। आहार तो पशु पक्षी भी कर लेते है, इसमे कौनसी विशेष बात है ? पशुओ और मनुष्योमे कौनसी विशेषता है ? यदि विशेषता है तो केवल जप तप और संयमकी है। यदि

ऐसा नही है तो पशु मनुष्यसे अच्छे हैं। अगर मनुष्योमे धर्म न हो तो पशु इस मनुष्यसे अच्छे है। अभी किसी स्वरकी तारीफ की जाती है तो कहते हैं कि उनका स्वर कोयलके कंठकी तरह है। यदि किसी की नाककी उपमा देना है तो कहेगे कि इनकी नाक सुवाकी नाककी तरह है। यदि किसी मनुष्यकी चाल अच्छी है तो कहेगे कि अमुक व्यक्तिकी चाल हंसकी चालकी तरह है। यदि कोई वहादुर व्यक्ति है तो कहेगे कि अमुक व्यक्ति शेरकी तरह वहादुर है। यदि किसीके नेत्र अच्छे है तो कहेगे कि अमुकके नेत्र हिरणके नेत्रोके समान है। यदि कोई मनुष्य जगती हुई नीदसे सोता है तो कहेगे कि अमुक व्यक्ति कुत्तेकी जैसी नींद सोता हैं तो जिससे उपमा दी जाती है वही बडा हुआ ना ? सो मनुष्यसे तो पशु-पक्षी अच्छे हैं। यदि मनुष्योमे धर्म है, परकी सेवाका भाव है, दया है, उपकार है तो वह आनन्दसे रहेगा। अन्यथा उसे जीवनमे कभी शान्ति नहीं प्राप्त हो सकती।

जो घरके लोग हैं, स्त्री, पुत्र, भाई, बहिन आदि ये ही मेरे सर्वस्व हैं—यह सोचने वाले तो वे अधेरेमे ही है। जगतके अन्य जीवोका स्वरूप भी वही है जो मेरा है। उनके और मेरे स्वरूपमे कोई अन्तर नही है। ऐसा यथार्थस्वरूप जानकर आत्मधर्मकी दृष्टि करो, धर्मकी ओर मुख मोडो। प्रभुकी भक्तिमे, गुरुवो सज्जनोके सत्संगमे, दीन दुखियोके उपकार मे तन, मन, धनको लगाओ। शरीर भी नष्ट हो जायगा, मन भी नष्ट हो जायगा और धन भी नष्ट हो जायगा, वचन भी नष्ट हो जायगा; पर धर्म शाश्वत हैं—धर्मकी इस ओरसे अपना मुख न मोडो। अरे जो नष्ट हो जाने वाली चीजें हैं वे हमे मिली हैं, अरे इन नष्ट हो जाने वाली चीजोके नष्ट हो जाने पर, वियोग होने पर क्यो दु.ख किया जाय ? नष्ट हो जाने वाली चीजोके वियोगपर विषाद करना आसान है। पवित्रता, स्वच्छता प्राप्त कर लो यही तुम्हारा कर्तव्य है। इस दुनियामे कोई दूसरा रक्षक नही है, ऐसा यदि विश्वास कर लो तो दुःख नही होगा।

बालवृद्धयुवग्रासे यमस्य समता भवेत्।
साम्यपुञ्जस्य मे किं न स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥८॥

अव्वल तो हम और आप यह निश्चय नही कर सकते हैं कि कितना जीना है ? कब तक हम आप जिन्दा रहेंगे, इसका निर्णय हम आप नही कर सकते हैं। हम देखते हैं कि छोटे-छोटे बच्चे, जवान और बूढे सभी गुजर जाते हैं। उस यमराजमे बहुत बडी समता है जो सबको उठा ले जाता है। चाहे बूढा हो, चाहे जवान हो, चाहे बच्चा हो, सबको एक समान समझकर ही वह उठा ले जाता है। उस यमराजमे बहुत बडी समता है, रागद्वेष उसमे नही है अर्थात् वह सबको एक दृष्टिसे निरखकर मार डालता है। किन्तु हम और आपके बडे

खेदकी बात है कि समता नही उत्पन्न होती है। हम अपने इस नर जीवनको अमूल्य समझें। ८४ लाख योनियोमे भ्रमण करके कभी यह भव प्राप्त होता है। इस नरभवमे अच्छे काम करनेसे अच्छी गति प्राप्त हो जाती है और बुरे काम करनेसे बुरी गति प्राप्त हो जाती है। लोकोत्तर सद्गतियोमे जानेका मौका तो इस नरभवमे ही प्राप्त होता है। इस भवसे ही धर्म की प्रीति बढती है। धर्मके बढनेसे भव हटते हैं, पाप समाप्त होते हैं। यदि हम मोह ममता मे पडें तो हमे दु.ख ही उठाने पड़ेंगे। यह सत्य बात कही जा रही है कि जो भाव मोह लिए है, वह कषायोसे निवृत्त नही हैं। यहाँ कोई शरण नही है, किन्तु उनका ख्याल करके पाप कमाते चले जा रहे हैं। सो अब अपनी दृष्टि अपने आपमे करो तो तुम्हारा हित है, तुम्हारा कल्याण है। मोक्षमार्गके लिए यही एक कल्याणकी बात है, यही एक आनन्दका उपाय है। हम पढते है, सुनते है। पढनेसे सुननेसे हम भीतरका हृदय ऐसा बनायें कि मोह ममता इत्यादि न रह जावे। मोह ममता इत्यादिसे तो पूरा नही पडेगा। अपने आपका ज्ञान कर बाहरी पदार्थोंसे दृष्टि हटावो तो पढ़ने लिखनेसे लाभ है।

एक पंजाबी था, उसके घरमे एक तोता था। उस तोतेको उसने यह कहना सिखा रखा था कि "इसमे क्या शक"। एक ब्राह्मण उसके घर आया, बोला—तोता तो बड़ा सुन्दर है हमे इसे खरीदना है। बोलो—इसकी क्या कीमत है? पंजाबीने कहा—क्या बतलाऊँ कि इसकी क्या कीमत है? कहा—नही, नही सच बतलावो इसकी क्या कीमत है? पजाबी बोला कि १००) कीमत है और कहा—तोतेसे ही पूछ लो कि क्या तुम्हारी १००) कीमत है? ब्राह्मणने पूछा कि ऐ तोते! क्या तुम्हारी १००) कीमत है? तोता क्या कहता है कि इसमे क्या शक? तो उत्तर तो फिट बैठता है। ब्राह्मणने १०० रु० दे दिये और खरीद लिया। ब्राह्मण घरमे तोतेके सामने रामायण खोलकर बैठता है, बोलता है कि तोते बोलो राम राम। तोता बोला—इसमे क्या शक? कोई रामायणका छद ब्राह्मण बोलता है तो तोता कहता है कि इसमे क्या शक? ब्राह्मण बोला—ब्रह्म एक है, आनन्दघन है। तोता बोला— इसमे क्या शक? ब्राह्मण बोला—अच्छा, यह बात छोडो जो ब्रह्मस्वरूपमे रमेगा उसको सतोष होगा और सुख होगा। तोता बोला—इसमे क्या शक। अब तो उसने भी शक कर लिया कि क्या मैंने अपने रुपये पानीमे मिला दिए। तोतेको केवल क्या इतना सिखाया गया है कि इसमे क्या शक, सो ब्राह्मणने पूछा कि क्या मेरे १००) पानीमे गये। तोता बोला— इसमे क्या शक? सो जैसे भोग विषयमे, बाहरी बातोमे या ममतामे क्लेशमे समय गुजर जाता है तो समझो कि इतना जीवन यो ही चला गया। केवल बात रटनेसे कल्याण नही होगा।

भला बतलाओ, एक मनुष्य दूसरे मनुष्यका आदर नही कर सकता तो वह तो प्रभु के स्वरूपका अपमान है। सबका रूप प्रभुके रूपके ही समान है। फिर बतलावो जगतमे कौन सी ऐसी सारभूत चीज है जिसमे राग किया जाय। यदि अपने स्वरूपसे बाहर दृष्टि है तो उस वृत्तिकी कीमत न समझो। इस सहज आत्माका मूल्य समझो। दूसरोका निरादर न करो, संगठन बनाये रखो, ऐसा यत्न करो जिससे दूसरे जीव सुखी रह सकें। यही हमारा करनेका कर्तव्य है। यदि इससे चूके तो काम नही चलेगा। अपने आपमे ज्ञान बनाओ, सब जीवोके सुखी होनेकी भावना बनाओ। यदि भावना तुम्हारी इस प्रकारकी है तो पुण्य उत्तरोत्तर होता चला जाता है। यदि तुम्हारी भावना पापोकी है तो पाप ही करते चले जावोगे, कोई दूसरा जीव तुम्हारा शरण नही होगा। दूसरे दुराचार ही तुम्हे दु खी करते हैं। इन दुराचारोसे बचनेके लिए उसमे होने वाले व्यसनोका त्याग बताया गया है। जुवा खेलनेका त्याग, मांस मदिरा खानेका त्याग और किसी जीवके घात करनेका त्याग, चोरीका त्याग, शिकार खेलनेका त्याग, परस्त्री व वेश्या गमनका त्याग— इनका त्याग बहुत ही जरूरी है। जीवोको बन्दूकसे मार दिया, लाठीसे मार दिया और उससे मौज माना यह तो ठीक नहीं है। परस्त्री गमन करनेका त्याग होना, और अनेक व्यसन हैं उनका त्याग होना बहुत ही जरूरी है। मांस मदिरा वगैरह मनुष्यके भोजन नही हैं। भोजन तो मनुष्यका अन्न ही है। जो मांस मदिरा खाते पीते हैं उन्हे मांस मदिरा वगैरह तो महीनेमे एक आध बार मिलता होगा। सो भैया! यदि इसे त्याग दो तो जिन्दगी भरके लिए आत्मा पवित्र हो जायगी। जीव दया पालनेके लिए मांस मदिराका त्याग होना ही चाहिए। मांस मदिरा वगैरहका त्याग करनेसे ही भला होगा। जो भी यहां बैठे हैं उन्हे चाहिए कि वे मनसे ही मांस मदिरका त्याग कर दें। यदि वे अपने मनसे ही कह देवें उन्हे पुण्य है। भैया! केवल अपने चैतन्यस्वरूपकी बात जग जाय तो जीवन सफल है। और तो बाकी सब असार है। राग द्वेप मोह आदिमे फसकर गुजर गये तो क्या है? घरमे रहते हुए भी कमलकी तरह निर्विकल्प, निर्मोही रह सकते हैं और अपने आपमे ही वे सुखी हो सकते हैं।

रागद्वेषौ हि संसारः संसारो दुःखपूर्णाम'।
संसारतो विरज्यात. स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥६॥

राग द्वेषोका नाम ही ससार है। इस दुनियामे जो राग द्वेप है उन्हीका नाम संसार है। कहते हैं कि संसार दु.खोसे भरा है, इसका अर्थ है कि रागादिक भावोंसे जो ऐसा भरा है उसमे दुःख भरे हैं। अगर लोकके क्षेत्रका नाम दुनिया कहेगे तो बतलावो भगवान् कहाँ रहता है? वह भगवान् भी इसी लोकमे रहता है। इस संसारमे रहते हुए जीवको पाप नहीं

है। जीवके रागद्वेष बने तो पाप है। राग द्वेषोका नाम ही प्राणिमात्रका संसार है। जीवमे संसार बसे तो पाप है तो उस संसारको पृथक् करना है याने धन, वैभव, घर, परिवार आदि ही क्लेशके साधन हैं, उनसे विरक्त होना है। केवल बात ही नही करना है। वे पदार्थ हैं उनमे ज्ञानदृष्टि रहे कि जो चीजें हैं वे संसार नही। उनमे जो रागद्वेष है वह ससार है। मन मे ऐसा जो रागद्वेष उत्पन्न होता है उनसे विरक्त होओ, रागद्वेषोमे रत न होओ। ये मेरे स्वरूपमे नही आते, ये मेरे करनेसे नही होते हैं। अवश उपाधिवश हो जाते हैं। कर्मोंका उदय आता है। उनका उपादान ही ऐसा है कि रागद्वेष हो जाते हैं। वह तो मेरा स्वरूप नही है, उनसे मेरा हित नही, ऐसा जानकर उन रागादिकोसे विरक्त होना चाहिये।

जो रागद्वेषोसे विरक्त हुआ वह अपने ज्ञानस्वभावसे आया। मैं ज्ञानमात्र हूं। केवल जाननस्वरूप ही हू। इस स्वरूपका जब उपयोग लगेगा तब जानो कि अब रागद्वेष आदि नही आते हैं। यह जीव अगर रागादिकमे लगेगा तो यह अज्ञान है और यदि अपने ज्ञायकस्वरूपमे लगे तो यह ज्ञान है। यदि अपना ज्ञानस्वरूप अनुभवमे आवे तो ज्ञान पल्ले पड़ेगा और अगर बाह्यमे ही पडे रहे तो कुछ पल्ले नही पड़ेगा। देखो ४०–५० वर्षकी उमर हम और आपकी हो गयी, इतनी उमरमे क्या क्या नही किया होगा बाहरकी आशा किया होगा न जाने किन-किनसे ममता किया होगा, रागद्वेष किया होगा पर क्या कुछ पल्ले पड़ा। कुछ भी तो हाथ नही लगा।

हे आत्मन्! तू तो अकेले ही बैठा हुआ है। मानलिया घरमे सब लोग है पर उन सबकी सत्ता न्यारी न्यारी है। यहाँ तो हम और आप अकेले अकेले ही विकल्प कर डालते हैं कि ये जीव ये वैभव हमसे मिले जुले है। अरे इन रागादिकोमे पड़ने से तो पूरा नही पडेगा। पूरा तो तब पडेगा जब अपने स्वरूपसे न फिरो। यहाँ ये व्यवहारकी चीज बोलता हूं। चाहे मोही उनकी प्रशंसा कर दें। मोह करते है, वचन बोलते हैं, हिलमिल कर रहते हैं वे सब माया हैं, मोहके स्वप्न हैं। जैसे स्वप्नमे देखी बात सच मालूम होती है उसी तरह मोहकी बातें सच लगती है। क्या आपका भाई, क्या आपका रिश्तेदार, क्या आपके मित्रजन जो हिलमिलकर रहते हैं? खुश हो रहे हैं वे सब मोहवश ऐसा कर रहे हैं। अरे ये तो स्वय ही ससारतापमे जल रहे हैं, इनमे कुछ तत्व नही, कुछ धर्म नही। तत्वकी बात बात तो ज्ञानस्वरूप की दृष्टिमे ही है। ये जो आपके मित्रजन हैं, कुटुम्ब परिवार इत्यादिके जो लोग हैं उनमे से तुम्हारी मदद करने वाला कौन है? कितने ही काम मोह द्वारा किए जा रहे है। अच्छा बतलावो, किसीका नाम भी लो कि जिससे मिल-जुलकर तुम्हारी आत्मा को कुछ मिलेगा। दान भी देते चलो जिससे कुछ सुविधा हो जायगी। देखो भैया स्थितिका

क्या विश्वास ? कोई भिखारी इसी जीवनमे बन जाता, कोई राजा बन जाता। समागम का कुछ विश्वास नही तो यह सोचना चाहिए कि हमे अपने लिए क्या करना चाहिए ऐसी बात यदि समझ लीजिए तो ज्ञाता द्रष्टा बन जावोगे। ऐसी शुद्ध ज्ञान दृष्टि रहे कि जो वर्तमान चीज है उसमे तो रहना ही पडता है, किन्तु उस दशासे पृथक् ज्ञानानन्दमय आत्मतत्त्व की ओर झुकाव हो तो सुविधा है। अपनेको राग द्वेषोसे निकाल सकते हो। रागद्वेषोमे पडनेसे प्रगतिका कोई रास्ता नही है। काम करना ही पडता है, किन्तु काम मेरा स्वरूप नही ऐसा मानो, अगर सच्चा ज्ञान जग गया तो उसकी विजय है।

भैया ! घर छोडनेको तो नही कहा जा रहा है। बाल-बच्चोमे रहते हुए कुटुम्ब परिवारमे रहते हुए भी अगर ज्ञान जग गया तो सम्यक् निर्जरा होती है। ये प्रशसा करने वाले, बहुत बडा व्यवहार करने वाले आपकी कोई सहायता करने वाले नही हैं। वे सब अपनी-अपनी सत्तामे है। देखिए श्रेयांस कुमार जी एक योग्य सज्जन मित्र ही तो था। उनका अब पता ही नही है कि किस गतिको गए हैं ? अब उनके नामको कौन याद करता है ? क्या ऐसा नही हो सकता है कि वह न गुजर गए होते, उनकी जगहपर हम आप ही गुजर गये होते तो क्या पता रहता कि कहाँ चले गए हैं ? कोई नाम भी न लेता। कितने हो ऐसे मौके हो गए जिनमे मरनेका पूरा खतरा था। रागोकी बीमारीमे फसे रहनेसे सारी उम्र गुजर गयी। ५०-६० वर्षकी अवस्था गुजर गयी। इन रागद्वेषोमे ही रहकर जीवनमे कभी शांति न मिल सकी। सदा दु ख ही बने रहे। कोई हमे मत जानें, हम किसीको मत जानें। हम आत्मपोषण करते है यदि ज्ञानस्वरूपको निहारकर शांतिकी पुष्टि करते हैं। हमारा यहाँ क्या काम है ? ऐसा भीतरमे विश्वास हो, प्रोग्राम हो।

दुनियामे शांति तो पैसा बढानेसे नही होती, रिश्तेदार बढानेमे नही होती, मित्रताके कोई काम करनेमे नही होती। मान लिया पैसा खूब बढ गया तो उससे शांतिकी किरणें तो निकलती ही नहीं। इन मित्र जनोसे भी शांति नही मिलती है। इन मित्रोसे भी निरपेक्ष बनाओ अपनेको। प्रभु ही एक निरपेक्ष मित्र है जिसके स्मरणसे ही हम और आपको शांति मिल सकती है। बाहरमे दृष्टि पडती है, अनेक काम बाहरके विकल्पके ही करते हो। अरे किसलिए बाहरके विकल्पके काम करते हो और प्रसन्न होते हो, खुश होते हो ? कोई हमारी मदद करने वाला नही है, ऐसा जानकर अपने हितकर प्रोग्राम बनाओ। विभूति तो पुण्यके उदयकी बात है स्वतः आ जायगी। जो कुछ अल्प परिश्रमसे मिलता है उसमे ही गुजर करना है, अन्याय धोखा आदि करनेसे क्या लाभ है ? जो कुछ मिल जाय भाग्यवश उसीमे बसर करो। हमारी चार आदमियोमे बडाई हो जाय तो इससे क्या होगा ? ऐसा उपयोग यदि

भीतरमे बने तो शान्ति प्राप्त हो सकती है। जितने क्षण व्यतीत हो गए वे फिर नही आयेंगे। फिर समयके हिसाबसे ही अपने हितकी बात सोचो। विपरीत मार्गकी ओर जा रहे हो, नाजुककी ओर ही जा रहे हो। रही सही जो आयु है उसमें ही ज्ञान करके अपना कल्याण कर लो। ज्ञानकी ही बात करो, भीतरमे ममता न रखो। जो मोह कर रहे है उनका ऐसा ही विश्वास हृदयमें बने तो वे अपने आप सुखी हो सकते हैं।

यहां मेरी क्या खूब परीक्षा कर लो। यदि तुम्हारा कुछ नहीं है तो राग द्वेष न बनाओ। दुःख देने वाले ये रागद्वेष ही हैं। ऐसी कल्पनाएँ न उठें कि अमुक भैया यो नहीं करते इसलिए दुःख होते है। ये मेरे इष्ट है, ये मेरे अनिष्ट हैं ऐसा ख्याल बनानेसे तो दुःख ही प्राप्त होगे। मेरे दुःख तो अज्ञानताके ही कारण है। स्वाधीनता न रखनेसे ही दुःख हो जाते हैं। उन दुःखोसे यदि दूर रहना है तो अपने ज्ञानमें सबकी स्वाधीनता रखना चाहिए। सब जुदा-जुदा हैं, अलग-अलग है ऐसा ही देखना चाहिए। ऐसा ही अनुभव करनेसे शांति मिलती है। बाहरमें दृष्टि न फंसायो तो शांतिका प्राप्त करना सरल है। मुख्य बात तो यह है कि जो रागद्वेष उत्पन्न होते हैं उनसे विरक्त होवो। रागद्वेष उत्पन्न करना मेरा काम नही, मेरा स्वरूप नही, मेरा स्वभाव नही। मेरा क्या स्वरूप है? मैं तो ज्ञानमात्र हू, केवल प्रतिभासमात्र हूं मैं जाननेके ही काममे लगूं। रागद्वेषोके कामोसे अलग रहू। भैया! तुम तो व्यर्थकी कल्पनाएँ कर रहे हो। मैं तो शुद्ध ज्ञानस्वरूप हूं ऐसा जानकर संसारके रागद्वेषोसे विरक्त होओ। घर छोड दो इसके मायने विरक्त नही। अपने अन्दर जो रागद्वेषके भाव हों उनकी विरक्ति कर दो। रागद्वेष करना तो मेरा स्वभाव ही नही है, मैं तो ज्ञानस्वरूप हूं ऐसा भीतरमे स्वरूपकी रुचि करके मैं अपने स्वरूपमे ही रत होऊँ और अपनेमें अपने लिए अपने आप सुखी होऊं।

करनेका काम इतना ही है कि मैं अपनेको सबसे न्यारा मानता रहू। यदि अपना स्वरूप न्यारा समझमें आयगा तो शांति प्राप्त हो सकती है। ऐसा ही अपने स्वरूपको देखनेके लिए ही भगवान्के लोग दर्शन करते हैं।

संसारजो हि पर्यायः संसार उपचारतः।
त्यक्त्वा तन्मूलससारं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१०॥

ससार कोई संसारियोसे अलग चीज नही है। ये भ्रमने वाले जो जीव है इन जीवों का समूह ही संसार कहलाता है। सो ये जो पर्याय है, मनुष्य हैं, पशु-पक्षी हैं, कीडे मकौड़े हैं, यही संसार है, यही है संसारकी मूर्ति और जो भगवान्की मुद्रा है वह है मुक्तिकी मूर्ति। संसारी हम और आप ही कहलाते हैं। हम और आप ही तो संसारी बर हुए हैं। इतने

वाली चीजें जो जीवनमे होती हैं वह ही संसार है । इस जगत्मे ही घूमते रहना, रुलते रहना ही मोह है । इस जीवका किसी दूसरे जीवसे कोई नाता नही है, कोई सम्बन्ध नही है । जो घरमे पैदा हुआ पुत्र है वह भी अपना नही है, न्यारा है । उसका भी मुझसे कोई सम्बन्ध नही है ।

भैया ! सभी जीव न्यारे-न्यारे हैं, फिर भी जो उनसे रागद्वेष मोहवश सम्बन्ध माने हैं उसीसे क्लेश होते हैं । दूसरे कोई दु:खके देने वाले नही हैं । एक यह ही बात मनमे आ जाय तो ज्ञान जग गया । यह ही बात बैठ जाय कि मेरा दुःख देने वाला दुनियामे दूसरा नही है । इतना ही जो राग परिणाम है, परवस्तुओमे जो आकर्षण है, बस ये ही भाव दु.ख देने वाले हैं । और धर्मकी बात, तपस्याकी बात, व्रतकी बात तो भी सबर है । किन्तु आत्मा की बात जो न बनी तो अन्य सब करना न करना सब बराबर है । परन्तु इतनी ही बात पकडमे आ जाय कि मुझको दु.ख देने वाला मेरा राग द्वेष मोह ही है, दूसरा और कोई मुझे दु:ख देने वाला नही है । अगर हृदयमे यह बात बैठ जाय तो बस यह ज्ञान तिरनेके लिए पर्याप्त है । मेरा दुःखी करने वाला मोह परिणाम ही है दूसरा कोई जीव मुझे दुःखी नही कर सकता । दूसरे लोग भी अपना-अपना स्वार्थ लिए हुए हैं, अपना अपना सुख चाहने वाले हैं, अपनी-अपनी धुनमे है । सो अपनी धुनमे रहते हुए भी इन्हे यह समझ लें कि मेरा किसी से सम्बन्ध नही है, पर हम ही स्वय मूर्ख बनकर बाहरमे दृष्टि डालते हैं, परिवारके लोगोको अपना मानते हैं, इसीसे दु खी होते हैं ।

भैया ! दूसरे जो हैं सो है वे खुद दु:खी हैं, वे स्वयं अपने ही अनुसार चलते हैं । हम कोई विरोधी हो सो बात नही, हमारा कोई बिगाड करने वाला हो सो बात नही । जीव सब हैं, अपनी-अपनी धुनमे रहते हैं । जैसा उनका परिणाम है वैसी ही परिणति है । हम ही ख्याल बना लेते है कि यह मेरा अनिष्ट है, इष्ट है और दु खी होते हैं । मुझको दुःख देने वाले ये राग भावके परिणाम ही हैं, यह ज्ञानकी बात है । अज्ञानमे उल्टा सूझता है । इन्होने मेरा बिगाड किया, इन्होने विरोध किया आदि । वास्तविकता यह है कि जीव अपना स्वार्थ चाहते हैं सो अपना स्वार्थ चाहनेमे जो उनसे बन पडता है सो करते हैं । कोई किसी दूसरेका कुछ नही करता है । एक यह ही ज्ञान समा जाय कि मुझको दु:खी कनेर वाला कोई दूसरा नही है, मेरे राग परिणाम ही मुझको दु.खी करते है । सो ज्ञानके होने पर सब कषायोमे फर्क आ जायगा, क्रोध भी न रहेगा, मान आदि भी न रहेगा ।

ज्ञानी जीवकी निर्मलता देखो कि युद्धमे भी जाना पड़ता है तो वहाँ भी वह सैंकडो

को मार गिराता है। इतने पर भी ज्ञानी जीवका परिणाम निर्मल है। वह ४१ प्रकृतियोका बंध नही कर रहा है। उसके ऊपर तो किसीने हमला किया, आक्रमण किया तो उससे वह अपनी रक्षाके लिए अविरत भावमे मुकाबला कर रहा है। उसका पाप करनेका जरा भी विचार नही रहता है। उस ज्ञानी जीवकी निर्मलता देखो। धन्य है वह ज्ञान। चाहे राजा हो, चाहे गृहस्थ हो, चाहे कुछ भी हो, निर्मलता अन्तरङ्गमे आवे यही ज्ञान है। ज्ञान जग जाय तो उसको दुःखी करने वाला कोई दूसरा नहीं है। मेरे राग ही मुझे दुःख देते हैं ऐसा यदि ज्ञान हो गया तो क्रोधमे अन्तर आ जाता है। अनन्तानुबंधी क्रोधी नही होते हैं। युद्धमे भी वे रहे तो घमंड नहीं आयेगा, छल कपट न करेगा। तो मुझे दुःखी करने वाला कोई दूसरा नहीं है। केवल मेरे रागभाव ही मुझे दुःख देते है। दुःख तो रागके, मोहके कारण ही है। सो अपने इस अज्ञानको मिटाओ और अपने आप सुखी होवो।

यत्र रागवशः प्राप्त योनिदेशकुल न तत्।
मुक्त्वा रागमतः स्वस्थ. स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥११॥

देखिए इस जीवने इस दुनियामे कितने चक्कर लगाये हैं? कोई जमीन ऐसी नहीं बची, कोई इचभर भी जगह ऐसी नहीं बची जहाँ यह जीव अनन्त बार पैदा न हुआ हो और मरण न किया हो। आज जैसे खिसनीमे पैदा हुए, तो जानते हैं कि हम खिसनीके हैं। अरे हम तो सारी दुनियाके है और कहीके भी नही। दुनियामें ऐसी कोई जगह नही बची जहाँ पर हम पैदा न हुए हो। आज यहाँ पैदा हुए तो कल दूसरी जगह। ८४ लाख योनियो मे भ्रमण करके आज खिसनी ग्राममे पैदा हुए हैं, फिर कही दूसरी जगह पैदा होंगे। इस दुनियामे सभी जगह पैदा हुए, अनन्तो बार रागके वश होकर सर्वत्र भटककर इस मनुष्यभव मे जन्म लिया और मरण किया। इस मनुष्यका पूर्वभवमे जिसका राग था वह अब कहाँ है? पता नहीं कौन पिता था, कहाँ घर था या किस योनिमे थे? यह मेरी सम्पदा है, यह मेरा घर है, यह मेरा परिवार है, इसी विकल्पमे मनुष्य पड़ा रहता है और अन्तमे मरकर किसी दूसरी योनियोमे चला जाता है। इस प्रकारका जो मनुष्य शरीर मिला है उसमे अगर धर्म नही किया तो कुछ भी नही किया। यदि धर्म नही किया तो कहते है कि गैरकी तरह आया और चला गया। आज यहाँ तो कल और जगह गया। यह ठाठ तो इसी तरह चलता ही रहता है। इसका कही कुछ वैभव नही है। अगर कुछ इसका वैभव होता तो साथ ले जाता। सो जैसा आया वैसा ही चला गया। यह मनुष्य नए नए राग बनाता रहता है और ये राग ही उसे मिटाते रहते हैं।

भैया! ऐसा जगत्मे कोई प्रदेश नही बचा जहाँ पर यह जीव रागके वश होकर पैदा

न हुआ हो । कोई कुल नही बचा जिसमे यह जीव अनन्तो बार पैदा न हुआ हो । भैया ! इस भटकनेका कारण है राग । राग छोड़ दो अभी सुखी हो जावो । देखा होगा कभी-कभी बच्चोमे खाने पीने वाली चीजमे जब लडाई हो जाती है । जिस बच्चेके हाथमे खाने वाली चीज है उसे दूसरे बच्चे छिननेके लिए झपटते हैं, उसे मारते हैं, पीटते हैं । अगर वह बच्चा उस चीजको फेंक दे तो वह मजेमे हो जाय । यह जानो कि जीव केवल राग द्वेपोसे दुःखी है । दुःख दूरसे आया हुआ नही है । दु.ख तो हम और आपमे ही बैठा हुआ है । किसीको कोई कुछ कह रहा हो, कोई टोटा हो रहा हो, धन न हो तो यहाँ क्या हुआ ? उसे कोई सता तो नही रहा है, बल्कि वह अपने रागसे ही दुःखी हो रहा है । दु.खी करने वाला कोई दूसरा नही है । हम स्वय ही राग करते हैं और दुःखी होते हैं । वे राग व्यर्थके राग हैं । राग गृहस्थको करने पडते हैं । गृहस्थ राग कर ले फिर भी भीतरमे सच्ची बात तो जगाना चाहिए । सच्चे ज्ञानका प्रकाश तो रहना ही चाहिए । उसका राग करना व्यर्थ, उसका मोह करना व्यर्थ । करना पड़े तो बात अलग है, पर ध्यानमें मोहकी बात न आवे तो यही मुक्ति प्राप्त करनेका उपाय है । ये मोह राग आदि अकल्याणके करने वाले हैं । न भीतर ज्ञान जगे तो देख लो, वहींका वहीं है । यदि कोई बैठा रहे, बैठे-बैठे ही क्रोध करता रहे, गुस्सा करता रहे तो वह अपनेको ही बरबाद कर रहा है । यदि यही जिन्दगी रही तो ज्ञान भीतर मे न जगेगा । दु.खोके मिटानेका कोई दूसरा उपाय नही है । मोह छोड़ना ही एक दुःखोके छोडनेका उपाय है ।

जैसे मानो कोई सेठ कमरेमे सो रहा हो और स्वप्न ऐसा आ जाय कि उसको गर्मी बडे जोरोंकी लगे । सो यह इच्छा चल जाय कि चलो समुद्रमे नावमे बैठकर घूमे । समुद्रकी ठडी हवाओसे गर्मी शांत करें । वह समुद्रमे नाव द्वारा सैर करने चला । यह स्वप्नकी बात कह रहा हू । जब वह चलने लगा तो घर वाले पुत्र तथा स्त्री आदि बोले कि हमे भी गर्मी लग रही है, हम भी सैर करने चलेंगे । अब सब समुद्रमे नावमे बैठे हुए चले जा रहे हैं । समुद्रमे ही एक तूफान ऐसा आया कि नाव सम्हालना कठिन हो गया । तो मल्लाह बोला कि अब नाव डूबे विना रह नही सकती । मैं तो किसी तरहसे तैर करके निकल जाऊँगा । तो सोचो वह सेठ ख्याल बनाकर कितना दुःखी होता होगा ? कहाँ तो सेठ जी पलग पर सो रहे है, नौकर-चाकर आराम देनेका काम कर रहे है, मित्र जन इन्तजार कर रहे हैं कि सेठ जी सोकर जगें तो कुछ बात करें, किन्तु सेठ जी स्वप्नमे ही ख्याल बना-बनाकर दु खी हो रहे है । सेठके दु खको मिटाने वाला साधन कठिन है बताओ । सेठके दु.खोको दूर करने वाला कोई नही है । केवल एक ही उपाय है । वह उपाय यह है कि सेठ जी की नीद खुल

जाये। अगर सेठ जग जाये तो दु.ख कहाँ है। वह तो पलंग पर सो रहे है, ठाठसे कमरेमे सो रहे है। यदि सेठ जग जावे तो उसके दु:ख दूर हो जायें।

इसी तरह यहाँ जीव मोहकी नीदमे सो रहे हैं। यह मेरा है, यह उसका है, यह भला है, भला है, यह बड़ा अच्छा है। परवस्तुको चिपकाये हैं, राग कर रहे हैं इससे सुख तो मिल ही नही सकते हैं। अच्छा बतलावो यदि कोई अपनी स्त्रीके सम्बन्धसे, अपने पुत्रके सम्बन्धसे सुखी रह सका हो तो बतलावो। अगर स्त्री खोटी निकली तो लडोगे, गुस्सा करोगे, दु:ख होगे। और अगर स्त्री गुणकारी हुई, गुण वाली हुई तो यही बना रहेगा कि मैं इसके लिए क्या ला दू, कैसे इसको सुखी रक्खूं, कैसे यह बढ़िया रहे? इस प्रकारसे परिश्रम करके दुःखी रहते हैं।

ऐसी ही पुत्रकी बात है। अगर पुत्र कुपूत हुआ तो वैसे ही परेशानी हुईं, बहुत सी झगडे की बातें हुईं, बहुतसे दुःख हुए और अगर पुत्र सपूत हुआ, आज्ञाकारी है, विनयशील है तो यह होता है कि मैं इसे कैसे पढ़ा लिखा दूं, कैसे इसे आनन्दसे रक्खूं कैसे इसे ऊंचा बना दू? इस प्रकारसे परिश्रम करके दु.खी होते है। तो परके सम्बन्धसे तो सुख है ही नही, सुख है तो केवल ज्ञानमे है और वैराग्यमे है। अपनी ओर रमनेमे ही सुख है। बाहरी पदार्थोंमे मोह करके सुख नही है। सो कहते हैं कि ऐसा कोई देश नही बचा जिसमे हम और आप अनन्तो बार पैदा न हुए हो। क्यो भटक रहे हैं आज तक? केवल रागके कारण और मोहके कारण। मोह ममता और अज्ञान ही दु:खोका कारण है। 'निजको निज परको पर जान।' यही सुख शांति पानेका उपाय है। मैं सबसे न्यारा हूं। यह जीव सबसे न्यारा है। कोई किसीसे मिला नही है और न मिल सकता है। जो जैसा है उसे वैसा न मानना यही अज्ञान है, यही जीवको दु:ख देता है। यदि मोह छोड दो तो सुखी हो सकते हो।

कीटो भूपो नृपः कीटो जायते विषमे भवे।
स्वास्थ्यमेव स्थिरं स्थानं स्यां स्वस्मै स्वे सुखीं स्वयम् ॥१२॥

यह दुनिया बडी विषम है। कहो कीडा मरकर राजा बन जाय और कहो राजा मरकर कीड़ा बन जाय। ये जो अज्ञान विचार वाले हैं, जीवोका वध करते हैं अथवा माँस खाते हैं, प्राणिघात करते हैं, शिकार खेलते हैं और मौज मानते हैं, हर्ष मानते हैं। तो क्या यदि कोई यह समझे कि मैं मनुष्य हू तो मनुष्य ही रहूगा, ऐसा तो नही है। यह भव बड़ा विषम है। जिन जीवोकी हम हत्या करते हैं तो हम प्रायः वे ही जीव बन जाते हैं। यदि बन गये तो उनके ही द्वारा सताये जा रहे होते। कोई मुर्गा है वह मर जाता है, मार डाला जाता है तो कितना बड़ा पाप है? अरे इन समस्त जीवो पर दया करना प्रधान काम है।

किसी जीवका दिल न दु'खाना चाहिए यह सब आचारोका आचार है । इसमे ही मनुष्यकी शोभा है ।

भैया ! अपनेमे अगर दुःख पहुँचते हों तो सहन कर लो, पर दूसरोका चित्त न दुखाना चाहिए । ५ मिनटमे बातको समझाया जा सकता है । दूसरे पर क्रोध न आवे । क्रोध आ जानेसे दुःख नही मिट सकते हैं । सो यह चाहिए कि किसी जीवका घात न करो । सकल्पी, आरम्भी, उद्यमी और विरोधी इन चार हिंसावोमें से तो संकल्पी हिंसाका तो पूर्णतया त्याग होना चाहिए । भीतरसे यह ज्ञान हो कि देवी देवताओमे बकरा चढाते हैं तो बकरे चढ़ानेसे, अशुद्ध काम होनेसे कोई लाभ नही मिलेगा । अरे देवी देवता तो वैक्रियक शरीर वाले हैं, सुन्दर हैं । उन्हें मांस तो चाहिए ही नही, मुखसे चबाकर कुछ खानेकी जरूरत ही नही पडती । उन पशुओके काटे जानेसे उन देवी देवताओंकी तृप्ति नही होती है । वे देवी देवता तो स्वय समर्थ हैं । उनके कंठसे तो अमृत झरता है । उस अमृतसे ही वे तृप्त हो जाते हैं । अगर अपना काम बनाना है तो सब लोग अच्छे कार्य करें । सब जीवो पर दया करो, सकल्पी हिंसा यही कहलाती है कि किसी जीवको मार डालना । उद्यम करनेसे जो हिंसा हो जाती है वह उद्यमी हिंसा कहलाती है । अगर कोई शत्रु हमला करे उससे बचाव करनेमे जो हिसा होती है यह विरोधी हिंसा कहलाती है । घरके काम-काज करनेमें जो हिसा हो जाती है वह आरम्भी हिंसा कहलाती है ।

इन चार हिसाओमें से गृहस्थ एक हिंसाका त्याग कर सकता है । बाकी ३ हिसाओ का त्याग गृहस्थ नही कर सकता है । गृहस्थका तीन हिसाओका त्याग नही है । पर साधु जनोको सब प्रकारकी हिंसाओका त्याग होता है । सो भैया ! कहते हैं कि किसी भी जीवकी हिसा न करो । किसीके बारेमे झूठी गवाही मत दो । अगर अपना चरित्र अच्छा है तो सब धन पास है । झूठ बोलनेकी आदत न डालो तो भैया किसीकी झूठी गवाही न दो, अहितकी बात न करो, यही सदाचार है । कोई चीज बिना पूछे न लावो, किसी दूसरेकी स्त्रीपर कुदृष्टि न डालो । मनमें यह भाव कभी न लावो कि धन-वैभव जोडूं । अरे भाग्यसे जो कुछ आता है वही ठीक है । अपनेमे तृष्णाका भाव न रहे, यही सदाचार है । अगर ऐसा रहा तो समझो कि काम बन गया । यदि आचरण ठीक नही है तो देवी देवता काम कर दें, भगवान काम कर दें यह नही हो सकता है । तो सुख और दुःख दोनो ही हमारे हाथ है । जैसे हमने अपना परिणाम सुधारा तो काम सुधर गया और अगर परिणाम बिगाडा तो काम बिगड़ गया । अगर किसीकी तारीफ कर रहे हैं कि वह तो बडा ही सज्जन है, दूसरोंके काममें आता है तो इतनेसे उसे क्या मिल गया ? सभी द्रव्य स्वतंत्र हैं, ऐसा ज्ञान बनाना यही विवेक है ।

विवेकसे रहना इसमे ही भलाई है ।। सो भैया ! यदि कोई जीव खुद विवेक करता है, माँस मदिरा इत्यादिका सेवन नही करता है तो उसका जीवन सफल है । सब जीव एक समान हैं । उन जीवोंपर आघात न करो ऐसा सोचनेमे व ऐसा ही दया परिणाम करनेमे ही आनंद है ।

देखो भैया ! यदि कोई मांस मदिरा इत्यादिका भक्षण करता है तो बड़ा पाप है । जो खाते है वे त्याग दें तो बड़ा ही पुण्य होगा । इससे त्यागने वालेकी आत्माका बडा सुधार होगा । यदि अच्छा आचरण रखे तो बड़ा सुख मिलेगा । सुख दु.ख देने वाला कोई दूसरा नही है । मेरा सुख दुःख मेरे परिणामोपर ही निर्भर है । ऐसा जानकर अपने परिणाम शुद्ध करो । अपने आपमे रमकर अपने आप सुखी होओ ।

प्राप्ता ये दुर्गतेः क्लेशाः भ्रान्त्या भ्रान्त्वा ममैव ते ।
मुक्त्वा भ्रान्तिमतः कलात् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।१३।।

जितने भी दुर्गतिके क्लेश हैं वे भ्रमसे लोकमे भ्रम भ्रम कर मैंने ही तो प्राप्त किये हैं । अब इसी समयसे भ्रांतिको छोड़कर मैं अपनेमे अपने लिए अपने आप सुखी होऊं ।

भैया ! जहाँ स्वतन्त्रताका परिचय है वहाँ ही सच्चा ज्ञान है । हम आप एक एक पृथक् पृथक् आत्मा हैं । यह आत्मा एक द्रव्य है इसमे अनन्त गुण हैं और उन सब गुणोकी परिणतियाँ होती रहती हैं । जैसे जानन तो पर्याय होगा और जाननेकी जो शक्ति है वह गुण होगा । जैसे इसको चौकी जाना । अन्य अन्य पदार्थोंको जाना, अनेक बातें जाननी, यह तो आत्माका गुण नही है । ये नष्ट हो जाने वाली वृत्तियाँ हैं । चौकीको जाना तो यह जानना नष्ट हो जायगा और कोई नया जानन हो जायगा । तो यह जानना आत्माका गुण नही है, यह तो पर्याय है ।

जाननेकी जो शक्ति है वह गुण है । जो भी परिणमन होता है उनका जो आधारभूत है वह शक्ति है, वह गुण है । यह देखना पर्याय है और जाननेकी जो शक्ति है वह है गुण । ये क्रोध, मान, माया, लोभ और अशांति ये सब पर्याय हैं । और इसकी जो शक्ति है वह आत्माका गुण है वह है चारित्र गुण । सुख होना, दु.ख होना यह तो पर्याय है । ये मिट जाने वाली चीजें हैं । सुखी दुःखी होनेकी जो शक्तियाँ हैं वह हैं आनन्द नामक गुण । ऐसी परिणति व ऐसी शक्तिकी जो समुपात्मक चीज है उसे द्रव्य कहते हैं । द्रव्यात्मक वस्तु परमार्थभूत चीज है, ध्रुव है, उसे न जानकर वर्तमान दशाको ही सर्वस्व माने बस यही भ्रम है । यह भ्रम क्या है ? जिसकी मूलमे यह आत्मा चक्कर लगाती है । भ्रम यह है कि पर्याय को द्रव्य मान लिया । पर्यायको द्रव्य मान लेना ही भ्रम है । यहाँ जो देखते हैं वे क्या चीजें

हैं ? यह कौनसा द्रव्य है बतलावो ? तो किसीने कहा– यह पुद्गल द्रव्य है। अरे ये पुद्गल नही है, ये पुद्गल द्रव्यकी व शक्तिकी दशा हैं। पुद्गलकी दशाको मान लिया पदार्थ कि यही द्रव्य है यह मिथ्यात्व है। यह सैद्धान्तिक भाषामे मैं कह रहा हूं।

जैसे किसीने कहा कि घबडाग्रो मत हम श्रा रहे हैं। श्रगर कोई पानीमे डूब रहा है तो कहते हैं कि घबडाग्रो मत हम श्रा रहे है। इस शरीरके ढांचे को कह रहे हैं कि हम श्रा रहे हैं। श्रथवा श्रोर भीतर दृष्टि जाय तो भी भीतर विकल्प करता रहता है, उसको कहते हैं कि यह मैं श्रा रहा हूं। देखना, जानना सुनना, विचार करना—ये सब पर्यायें हैं। इनको 'मैं' यह मोही जगत कह रहा है। पर्यायको द्रव्य मानना ही भ्रम है, मैं श्रात्मा क्या हूं ? क्या यह जो पर्याय है, शरीरका ढांचा है क्या वह मैं हू ? नही, यह मैं नही हू। यह पर्याय है। तो क्या भीतर जो रागद्वेष दुःख सुख होते हैं वह मैं हूं ? नही, वह भी मैं नही हू। वह भी पर्याय है। वे भी मिट जाने वाली चीज हैं। मिट जाने वाली जो चीज है वह पर्याय है श्रोर जो न मिट जाने वाली चीज है वह द्रव्य है या गुण है। श्रर्थात् गुणका व द्रव्यका नाश नही होता है। इन जीवोने पर्यायको द्रव्य मान लिया यह भ्रम है। भीतरमें जो रागद्वेष उत्पन्न होते है क्या वे मैं हूं ? नही, वे भी मै नही हूं।

जब मैं किसी पर्यायमे पहुंचा तो जिस पर्यायमे हूं, उसीमे मैं श्रपने को मानता हू। यदि मैं पक्षी हो गया तो माना कि मैं पक्षी हूं। यदि मैं मनुष्य बन गया तो कहता हू, कि मैं मनुष्य हूं। यह सब भ्रम है श्रोर इस भ्रमके ही कारण संसारमे भटकना पडता है। यदि धनी बन गये तो मैं धनी हूं ऐसा मानना यह भ्रम है। श्रथवा यदि धन नही हैं तो गरीब मानना यह भी भ्रम ही तो है। परिवार, कुटुम्ब, बच्चे इत्यादि जुड गये तो मैं परिवार वाला हू, ऐसा मानना भ्रम है। परिवार न रहे तो वह मानते हैं कि हाय मै श्रकेला हू यह भी भ्रम है।

क्यो जी कोई पूजा कर ले, कोई विधान कर ले, कोई बाल-बच्चो वाला हो जाय तो यह भी तो भ्रम है। कोई जीव किसी जीव पर दया करने वाला यदि यह समझ ले कि मैं दया करता हू तो यह भी भ्रम है। पर्यायको द्रव्य मानना सो ही भ्रम है। क्यो जी कोई साधु बन जाय, मुनि बन जाय, वह ऐसा सोच ले कि मुझे देखकर चलना चाहिए श्रादि तो यह सोचना भी भ्रम है। किसी भी दशामे पर्यायको द्रव्य मानना भ्रम है। मुनि है वह पर्याय है कि द्रव्य है ? पर्याय है। पर्यायको मान लिया कि यह मैं हू। मुनिको मुनि मानना पर्याय है श्रोर पर्यायको यह मान ले कि यह मैं हू तो भ्रम है।

मैं एक ज्ञायकस्वरूप हू, केवल चैतन्यस्वरूप हूं, यह माना तो भ्रम नही है। जैसे

किसीने माना कि मैं मनुष्य हू तो मनुष्य तो आत्मा नही है। अगर अपनेको मनुष्य माना तो भ्रम है। किसीने मान लिया कि मैं गृहस्थ हूं तो गृहस्थ तो आत्मा नहीं है। अगर गृहस्थ अपनेको माना तो भ्रम है। आत्मा तो एक ज्ञानस्वरूप वस्तु है। गृहस्थ नही है और मान लिया कि मैं गृहस्थ हूं। तो यह भ्रम हो गया कि नहीं हो गया? इन सब भ्रमोके कारण इस जगत्के जीव संसारमे रुलते ही रहते हैं। मोही जीव इस जगत्में भ्रमण करते-करते बड़े-बड़े क्लेश पाया करते हैं। मैं इन समस्त भ्रमोसे मिटकर अपने स्वरूपको देखकर अपनेमें अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होऊँ।

आपत्पूर्णे भवे ह्येको भ्राम्यामि तत्त्वतो निजे।
उपयोगे ततः स्वस्थः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१४॥

आपत्तियोसे भरा हुआ यह संसार है। मैं इस असार संसारमें अकेला ही भ्रमण करता हूं। अपने स्वरूपसे हटकर बाहरमें उपयोग फंसाये हैं, ये तो सब आपदायें हैं ऐसा ज्ञानी जीव समझता है। अज्ञानी जीव तो इन बाह्य सम्पदाओंको ही वास्तविक सम्पदा समझते हैं, पर ज्ञानी जीव निर्वाणकी अवस्थाको ही सारी सम्पदा समझता है। आखिर यह भव छूटा तो फिर पशु बन गये, पक्षी बन गये, दुर्गति हो गयी तो कौनसा आनन्द बाह्य पदार्थोंके उपयोगसे हुआ? आनन्दकी वस्तु तो वह है कि मिले और फिर मिटे नही। जिसके पानेके बाद वह मिटे नही वह वास्तविक वस्तु है। इस आत्माकी विभूतिका चमत्कार आत्मा मे है। अगर यहां लाखो जोड लिया, ऊँची ऊँची उपाधियां प्राप्त कर लिया, पदवियां प्राप्त कर ली तो ये उपाधियां क्या हैं? आखिर ये सब छोडना ही पड़ेगा।

कोई धनमे बडा है, कोई पूजामे बड़ा है, कोई ज्ञानमे बडा है, कोई तपमे बड़ा है पर सभी उस अरहंत भगवान्की मूर्तिके आगे सिर झुकाते हैं। सो यह अरहंत भगवान् बड़ों से भी बड़ा है। तभी तो समस्त लोक इस अरहंत भगवान्के सामने झुकते हैं। यह अरहंत भगवान् क्यो बडा है? इसका स्मरण रहनेसे अपनी आत्माकी विभूति नष्ट नही हो सकती है। स्मरण हो आता है मैं यह आत्मा कौन हूं, ज्ञान और आनन्दस्वरूपका भंडार हूं तो मैं केवल अपने ज्ञानस्वरूपका अनुभव करूं तो अद्भुत आनन्द प्रकट होता है। सारी कल्पनाओं को त्यागकर अपनी जिन्दगीमे अपने आपका ही अनुभव हो जाय तो अपने आपके ज्ञानमें जिन्दगी सफल है। अनेक उपायोको करके किसी भी प्रकार अपने ज्ञानस्वरूपका अनुभव हो जाय तो उन उपायोको करना चाहिए। हम यह नही कहते कि आप अपना घर छोड़ दें वरन् अपने कल्याणकी बात मिल जाय, प्रभुके दर्शन हो जायें, आत्मस्वरूपका अनुभव हो जाय तो यही मुक्तिका मार्ग है।

देहान्तरं व्रजाम्येको देहमेकस्त्यजाम्यहम् ।
परदृष्टि हि तत्स्वस्थः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१५॥

यह मैं अकेला ही दूसरे शरीरमे जाता हूं और यह मैं अकेला ही इस शरीर को त्यागता हूँ। कोई कैसा ही प्रेमी हो, मित्र हो, किसीसे कहो कि हम तुम्हारे जीवन भर साथी रहे, सगी रहे, अब हम दूसरी नयी देहमे जावेंगे तो तुम भी हमारे साथमे चलो तो वह नही जा सकता है और मान लो जब भी कषाय आ जाय और मरते समय साथमे ही मर जाय, याने जिस समय वह मरता है उसी समय वह भी मरता है पर मरते मे भी शरीर के साथ चला जाय तो यह असम्भव है। वह एक शरीरमें भी मान लो पहुंच जाय निगोदिया बनकर तो भी अनुभव अलग ही अलग है, अनुभवमे एक नही हो सकेंगे, तथा सूक्ष्म शरीर तो फिर भी अलग है। यह तो मैं अकेला ही नये शरीरको धारण करता हू और यह मैं अकेला ही इस शरीरको छोड़ूगा।

भैया! शरीर जीवके साथ दो तरहके लगे हैं—एक सूक्ष्मशरीर और एक स्थूल-शरीर। जो हम सब लोगोको दिखता है वह तो है स्थूलशरीर और सूक्ष्मशरीर वह है जो स्थूलशरीरके त्यागने पर भी जीवके साथ जाता है। वह सूक्ष्मशरीर स्थूलशरीरके होते हुए भी साथमे लगा हुआ है। स्थूल शरीरका तो कुछ क्षणके लिए बिलगाव भी हो सकता है। मर गये सो शरीर तो छूट गया, पर बीचकी स्थितिको जिसे विग्रह गति कहते हैं उस स्थिति मे स्थूलशरीर नही रहता मगर सूक्ष्मशरीर उस बीच की स्थितिमे भी रहता है और स्थूल शरीर धारण किए हुए है इस समय भी रहता है। सूक्ष्मशरीरका सम्बन्ध आज तक एक क्षण भी नहीं टूटा और स्थूलशरीरका सम्बन्ध तो दो तीन समय तकको छूट भी गया पर सूक्ष्मशरीरका सम्बन्ध अब तक कभी नही हटा।

वह सूक्ष्मशरीर क्या है? तैजस और कार्माण। उस सूक्ष्मशरीरमें दो तरहकी निमित्तदृष्टिसे कलाका निर्णय कीजिये एक शरीरकी तो यह कला है कि जिस स्थूलशरीरके पास यह सूक्ष्मशरीर है उस स्थूल शरीरमें तेजो आ जाय याने मर जाने पर कहते हैं ना कि इस पर मुर्दायी छा गयी तो वह मुर्दायी क्या चीज है? तेज निकल गया। जीवमे रहता हुआ उसमे तेज था सूक्ष्मशरीरके कारण। सो जीवके निकलने पर वह सूक्ष्मशरीर भी निकल गया और तेज भी निकल गया। जब स्थूल शरीरके साथ है तब तेज रहता है। और दूसरे शरीरमे एक कला यह है कि उसका विपाक काल आया तब जीवमे रागद्वेषकी वृत्ति स्वय हो जाती है। उस सूक्ष्मशरीरमें यह दो प्रकारका निमित्तपना है। उसका निमित्त है तैजस शरीर और कार्माणशरीर। तैजस शरीरके निमित्तसे तो स्थूलशरीरमे तेज आता है और

कार्माणशरीरके निमित्तसे जीवकी भूमिकामें राग द्वेष आदि विकार उत्पन्न होते हैं। सो वह दोनों ही प्रकारके सूक्ष्मशरीर पर जाने पर भी साथ जाते हैं और स्थूलशरीर यही पडा रह जाता है।

भैया ! मैं अकेला हूं, देहांतरको प्राप्त करता हूँ और अकेले ही देह का त्याग करता हूँ। और जितने भी सुख दुःख होता है, यह जीव उन सबको भी यह जीव अकेला ढोता है। सो परकी औरकी दृष्टिको त्यागकर अपने आपके शरीरमें उन्मुख होकर यहँ मैं अपनेमें अपने लिए अपने आप सुखी होऊँ। देखो यह विग्रहगतिमे जीव जब होता है तब यह जीव स्थूलशरीरसे तो रहित है पर सूक्ष्मशरीरसे समवेत है। और ऐसी स्थिति इस जीवकी अधिक से अधिक तीन समय तक होती है। चौथे समयमे नई देह अवश्य प्राप्त कर लेता है। ऐसा नही है कि यह जीव कई दिन तक घूमता फिरता हो अपने जन्मको ढूंढनेके लिए, ऐसा नही है। अधिकसे अधिक तीन समयकी स्थिति है और जहाँ पैदा होता है उस ओर ही जीव मरनेके बाद जाता है। यह नही है कि मरनेके बाद कुछ थोड़ा डोल-डाल ले, फिर जन्म-स्थान पर पहुंचे।

जैसे कभी-कभी कोई साधु चौमासे भर भी रहे और चौमासेके बाद भी अगर महीने दो महीने रहता है तो एक रात उस जगहसे कही चला गया और आहार लेने, फिर वही का वही आ गया। कहे कि चौमास खतम हो गया और रीति अदा कर लिया और फिर वहीका वही आ गया तो भाई तुमने रीति तो अदा कर ली मगर उस आत्मामे तो नही परिवर्तन कर दिया उसका वही राग है, वही परिचय है, और उसी राग और परिचयके कारण अपनेमे क्षोभ कर रहे हैं। सो ऐसा नहीं है कि वह जीव डोलता फिरे कोई बहाना करे कि चलो पगत कर दें, तेरही कर दें तो यह जीव जन्म के स्थान पर पहुंच जाय—ऐसा कुछ नही है। वह तो मरनेके बाद ही तुरत पैदा हो गया। दो तीन समय की क्या गिनती है ?

जैसे आंख खोलते हैं और पलक गिरा कर आंख बन्द कर लेते हैं। तो इसमे कोई देर नहीं लगती है। पलकको कोई देरसे 'भी नही गिरा सकता है कि चलो धीरे धीरे पलकों को गिराये। जब पलक गिराते हैं तो तुरन्त गिर जाते हैं। उस एक पलकके पतन मे अनगिनते समय लग जाते हैं, कोई गिनती नही, जितना कोई गिन सके, नही, उससे भी अधिक बढकर जो असंख्यातका प्रमाण कहा जाता है उसके बराबर। सो तीन समय तक ही यह जीव बीचमे विग्रहगतिमे रहता है और चौथे समयमे तो अवश्य ही जन्म होनेकी जगहमे पहुच जाता है। तो सर्वत्र यह जीव अकेला है। जब यह देह है तब यह जीव अकेला है। जब इस देहको छोड़कर चले तब भी अकेला है जब सुख साधन हैं तब भी अकेला हैं और जब उप-

सर्ग है सुख साधन नहीं है तब भी यह जीव अकेला ही जन्म मरण करता है। इसका कोई दूसरा सहाय नहीं। यह विडम्बना क्यों हो रही है कि इस जीव को अपने एकाकी स्वरूपका पता नहीं है। यदि उस अपने एकत्वस्वरूपका पता लगाये, मिथ्यात्व को हटाये तो यह जीव अपने आप अपनेमे ही सुखी हो सकता है।

वियोगयोगदु:खादौ किंचिन्मित्रं न तत्त्वतः।
स्वाविष्टः स्वस्य मित्र स्वः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१६॥

जब वियोग होता हो, जब सयोग होता हो, जब कोई सकट आते हो तब भी वास्तवमे इस जीवका कोई दूसरा मित्र नहीं है। किन्तु अपना मित्र कौन है? अपने आपकी आत्मामे बसा हुआ यह जीव ही अपना मित्र है, सो कुमित्रकी प्रीति छोडो और निज मित्र का आदर करो। निज मित्र है अपना ज्ञान जो सदा सीधी शिक्षा देगा वह ज्ञान है अपना मित्र। सो अपने अविनाशी स्वतःसिद्ध ज्ञानमात्रपर दृष्टि दो। ज्ञान ही असली मित्र है। बुरी परिस्थितिमे जब विपत्ति सिरपर आ जाती है तो ऐसी परिस्थितिमे ज्ञान ही इस जीवको संकटोसे बचाता है। संकट दुनियामे क्या होते हैं? केवल मान लेनेके तो संकट हैं। जैसे परिवारका वियोग हो गया, धनकी हानि हो गयी, कोई दूसरे पुरुषने मेरा ही लक्ष्य करके गाली दे दिया, इन्हीको ही लोग विपत्ति मानते हैं। सो मानो, परन्तु विपत्तियोसे बचनेका उपाय मात्र सम्यग्ज्ञान है।

भय्या! प्रत्येक अवस्थामे चाहे वह सुख सपदाका साधन हो और चाहे विपत्ति विडम्बनाका साधन हो पर हर एक स्थितिमे यह जीव यदि अपने आपके सत्यस्वरूपका ध्यान करेगा तो उसके सुखी होनेमे कोई बाधा नहीं डाल सकता। हम अपने आप ही अपने ही ऐबोके कारण दु:खी हो रहे है, नहीं तो दु:खका काम क्या है? यह मैं हू, ठीक हू, इसमे क्या दु:खोका काम है? सो ऐसा एकाकीपना विचार कर आत्माके अद्वैतपनेकी बात जानकर भय छोड देवें। उससे क्या होगा कि उसका जीवन निष्पाप होगा। फिर उसका कोई साथी सगाती होगा कि नहीं होगा? अरे तू भला तो जग भला और तू भला नहीं तो तेरे लिए जग भला नहीं है। सो सर्व चिंता छोड़ मात्र अपने आपको ही जानो और अपने आपमे ही रमकर अपने आप स्वय सुखी होओ।

देखो भैया! परकी आशायें करो तो भी क्या कोई सहायक बन जावेगा। तुम तो सर्वत्र अकेले ही हो। जिस समय किसी पदार्थका वियोग होता है उस समय कोई सहायक नहीं होता और जब कोई संयोग होता है तो सयोगके समयमे भी वास्तवमे कोई मित्र नहीं होता। अब भी अपनी कल्पनाओसे अपना-अपना अनुभव होता है। कोई दु:ख आ पड़े तो

उस दुःखमे भी कोई सहाय नही होता। सर्वत्र केवल अपना-अपना सुख दुःख परिणमन भोगा जाता है। तो वास्तवमे मेरा मित्र कोई नही है। मुझे ही बाहरकी भेदबुद्धि हटाकर अपने आपके अभेद चैतन्यरसमे लीनता हो तो मैं खुद ही मित्र हू। इस स्थितिमे ही कर्म झड़ते है। जैसे कोई धोती गीली है सूखनेके लिए डाल दिया तो वह गिर पडी तो उसमें धूल चिपट जाती है। जब कोई आदमी उसे उठाकर उस धूलको छुटाने लगता है तो विवेकी पुरुष मना कर देता है कि मत छुटावो। ऐसे ही सूखनेके लिए डाल दो। जब सूख जायगी तब जरासा झिटकनेसे छूट जायगी। और गीली धोतीमे अगर छुटाया जाय तो छूटनेके बजाय चिपट जायगी और सूख जाने पर झिटकनेसे नही छूटेगी।

इसी तरह आत्मा कषायोसे गीली है सो इसके साथ कर्मोंका जमाव है, अगर कर्मों से हटना है तो क्या उपाय करो कि आत्माको रूखा कर दो याने कषाय आत्मामे न रहने दो, मिथ्यात्व न रहने दो। जो अपनेको रूखा कर देंगे उनके कर्म यो ही खत्म हो जावेंगे। तो रूखा तब होगा, जब यह आत्मा कषायरहित निज चैतन्यस्वभावमे उपयोग देगा। इससे कषायोका गीलापन मिट जाता है और इस ही दृष्टिके प्रसादसे भव-भवके बँधे हुए सब कर्म भी खिर जाते हैं। इस कारणसे अपना मित्र केवल आत्मा ही है। जो आत्मा अपने आपके उन्मुख हो रहा है वह आत्मा ही अपना मित्र है। सो उस ज्ञायकस्वभाव आत्मतत्त्वमे स्थिर होकर अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होओ।

यदन्येषां कृते चेष्टे एको भुञ्जे हि तत्फलम्।
स्वस्मै तत्रापि चेष्टासीत् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१७॥

मैं जो दूसरे प्राणियोके लिए चेष्टा कर रहा हूँ सो उस चेष्टाका फल केवल मैं ही अकेले भोगता हू, मैं दूसरोके लिए क्या करता हूं? दूसरोका मै कोई काम नही करता। न उनके हाथ छूता, न पैर लगाता, न अन्य कोई काम करता, केवल दूसरोका लक्ष्य बनाकर अपने विकल्प करता हूं। मैं विकल्पोके सिवाय अन्य कुछ काम नही करता। सो जो विकल्प मैंने दूसरोके बनाए हैं। उन विकल्पोका फल केवल मैं ही अकेले भोगूंगा। यह तो मै एक चेतन सत् हू और परिणमता रहता हू। सो मेरा परिणमना इस प्रकारसे है कि उपाधिकी सन्निद्धि नही होती तो शुद्ध चेतनात्मक परिणमूगा और उपादान सामने हो तो मै विकल्पात्मक परिणमूंगा, चाहे विकल्परूप परिणमू चाहे निर्विकल्परूप परिणमू, पर चैतन्यात्मक ही मेरा परिणमन होगा। सो दूसरोके लिए जो मेरी चेष्टा है वह विकल्परूप चेष्टा है। उस विकल्परूप चेष्टाका फल केवल यह मैं ही अकेला भोगता हू। नरक जाने जैसा तो खुदने परिणाम किया तो क्या नरक कोई और दूसरा जायगा। मायाचारके जिन्दगीभर परिणाम रखा अब

उसके फलमे क्या कोई दूसरा प्रवेश करेगा ? उसीको ही तिर्यंच होना होगा और कोई व्रत तप संयम आदि करे और शुद्ध प्रवृत्तिसे चले तो उसका फल वही अकेले भोगेगा, कोई दूसरा उसका फल नही भोग सकता। सो यह तो केवल भ्रमकी बात है। जो कोई यह सोचे कि मैंने तुम्हारे लिए क्या-क्या किया ? तुम्हारी, लोगोकी व्यवस्थाके साधन जुटाये, अमुक अमुक दुकान इत्यादिके साधन जुटाये, मैंने तुम्हारे लिए क्या-क्या किया ? सोचते रहे, पर उन्होंने कुछ नही किया। वहाँ पर जो कुछ किया वह अपने लिए किया। हर जगह जो कुछ कोई करता है वह अपने ही लिए करता है दूसरोके लिए कुछ नही करता है।

आप घरमे रहते हैं, सोचते तो यह हैं कि मैं लडकोके लिए यह ठीक व्यवस्था बनाता हूं, पर आप लडकेके लिए कुछ नही करते, वहाँ भी आप जो कुछ कर रहे हैं वह अपने लिए कर रहे हैं। यह तो सोचना भ्रम है कि मैं लड़कोंके लिए कुछ कर रहा हूँ। लडकेका आश्रय किया। उसको विषय बनाया और अपनेमे विकल्प बनाया। यह जीव हर हालतमे अकेला है। जैसे लोग समझते हैं कि यह बडा घराना है, यह घर भरा है। अरे वे तो बिल्कुल अकेले ही हैं और वे बडे झंझटोमे पडे हुए हैं, विपत्तिमे पडे हुए हैं। वे तो क्षमाके पात्र हैं। है तो कुछ नही मगर उपयोगमे कुछ बसाकर हैरान हो रहे हैं, परेशान हो रहे हैं, शल्य बढ़ा रहें हैं। वे तो दयाके पात्र हैं। तो जितनी भी मेरी चेष्टाएं आज तक हुयी उनमे ख्याल तो यह रक्खा कि स्त्रीके लिए यह कर रहा हू, पुत्रोके लिए यह कर रहा हू, देशके लिए यह करता हू, समाजके लिए यह करता हू, मगर कही भी यह दूसरेके लिए कुछ नही करता। जो कुछ किया सो अपने लिए किया।

भैया ! कोई सा काम देख लो प्रत्येक परिणामोका फल केवल अपने आपको मिलता है। इस आत्माके स्वरूपपर नजर करके देखो केवल यह आत्मतत्त्व शुद्ध ज्ञानस्वरूप है। परिवारके लिए विकल्प किया, परिवारके लिए ही अपना शरीर लग गया पर उसका फल अपने आपको ही मिलता है। बाल्मीकि ऋषि की कथा है कि एक जंगलमें रहते थे और डाकू का काम करते थे। एक बार एक साधु वहाँ से निकला तो उस साधु को भी बाल्मीकि ने पकड लिया और कहा कि कहाँ जाता है जो कुछ हो रखो, तुझे पता नही कि यहाँ बाल्मीकि रहता है। कमंडल डंडा धरा लिया। साधु कहता है कि भैया कमंडल डंडा तू ले जा पर घरसे एक बात पूछकर तो आ। बाल्मीकि बोले क्या ? साधु बोला यह पूछ कर आवो कि हम जितना अन्याय करते हैं, मुसाफिरो को लूटते हैं तो उसमें जो हमे पाप लगते हैं कोई हमसे उन पापोको बांट लेगा क्या ? केवल इतनी बात पूछ करके आवो और जो कुछ उत्तर वे दें हमे सुनाना। बाल्मीकि घर गये, बात पूछनेके लिए सो स्त्री से पूछा,

मां से पूछा और जो जो भी था सबसे पूछा लेकिन पापकी बात इतनी खराब लगती है कि किसी को यह कहनेमे भी डर लगता है कि तुम्हारा पाप मैंने लिया।

एक घटना है गुरु जी के बारेमे। पहिले वे बडे पंडित जी कहलाते थे। उस समय ७ वी प्रतिमा रही होगी तो जिस धर्मशालामे ये रहते थे उसीमें एक भाय जी रहते थे। तो वे भाय जी एक दिन उपवास करें और एक दिन भोजन करें, मगर जिस दिन भोजन लेते पूरा वह एक दिन बनाने खाने मे लगता था। वह धीरे धीरे खाते थे। कही सामायिक करके खा रहे हैं कभी पहिले खा रहे हैं। मगर उनका नियम था कि हरा साग न छौंकना सो साग बना कर रख लिया और अब बाट हेरे कि कोई अच्छा आदमी मिल जाय तो उसके हाथसे साग छौंकालें। तो बड़े पडित जी इतनेमे मंदिरसे धर्मशाला आये तो भाय जी को दिख गये। भाय जी बोले पडित जी साग छौंक दो। गुरुजी बोले तुम क्यो नही छौंकते, कहा हमारा त्याग है। पंडित जी ने कहा कि छौंक तो दें मगर हम यह कहते हुए छौंकेंगे कि इस छौंकनेमे जो पाप लगे वह भायजी को लगेगा। तो भाय जी कहने लगे वाह तुम्हारे छौंकवाने से फायदा ही क्या जो पाप लगे। भाय जी बोले हमे नही छौंकवाना है, हम किसी और को ढूढ लेंगे। पंडित जी बोले अच्छा लावो छौंक देंगे। साग छौंका तो यह भी बोल दिया कि जो पाप लेंगे सो भाय जी पर लगे, सो भाय जी उछलकर दौड पड़े, बोले लो मेरी प्रतिज्ञा तोड दी है।

भैया! सोचो तो जरा कहनेसे पाप नहीं लगता करनेसे लगता है। मगर पापका नाम इतना बुरा है कि कोई आदमी अपनेसे यह नही कह सकता कि तुम्हारा पाप मैंने लिया। किसीके यह हिम्मत नही कि कहे कि तुम्हारा पाप हमने लिया। सब घबडाते हैं कि यह पाप हमीपर लग जायगा। सो बाल्मीकिने अपने घरमे सबसे पूछा कि हम जो अन्याय करते हैं पाप करते हैं तो यह पाप तुम बांट लोगे? तो उस फैमिलीके सब लोगोने मना कर दिया कि पाप कैसे बटेगा? पाप तो जो करता है उसके ही सिर रहता है। इतनी बात सुनकर बाल्मीकि जी के तो ज्ञान जग गया। अहो किसीका साथी कोई दूसरा नही है। सब अपने-अपने ही कर्मोंको बांधते हैं और अपने ही कर्मोंके फलको भोगते हैं। हमने अपनी जिन्दगीमे अब तक कितनोको ही कष्ट दिया, कितनोको ही लूटा, कितनो को ही दुःखी किया। वाल्मीकि जी को बडा पछतावा रहा, बड़े बड़े प्रायश्चित्तके मनसूबे बांधते हुए साधु के पास गये। साधुसे बोले, हमे आपका कमडल डडा कुछ नही लेना है और न कोई चीज लूटना है। बस इतना यह निर्णय है कि हमने अपने आप ही सारे पाप बना लिए सो बोले कि अब मेरा ठगाईका त्याग है, लूटनेका त्याग है और बाह्य वृत्ति भी कोई नही करेंगे सि-

वाय भगवत् भक्तिके सो उन्होंने संन्यासका व्रत लिया और सब तरहके विकल्पोको तोडकर वे अपने भावोके अनुसार समाधिमे लीन हो गये, यत्न किए और इतने बडे ऋषि माने गये कि आज भी बहुतसे लौकिकजन उनको वाल्मीकि ऋषिके नामसे कहते हैं।

वाल्मीकि जी ने सबसे पहिले रामायण बनायी थी, जिसके बाद फिर तुलसीदास जी ने बनायी। मगर रामायणकी बात ऐसी है कि प्रारम्भमे तो जैनसिद्धान्तसे रामायण बनी जिसका नाम है स्वम्भू कविकृत रामायण और यह प्राकृत भाषामे है। उसमें ५ छंद हैं और १ दोहा है, फिर ५ प्राकृत छन्द एक दोहा है और तुलसीदास जी ने अंतमे यह लिखा कि मैंने स्वयभूके प्रसादसे यह रामायण बनायी। स्वयभू कविकी कृतिको इन्होने देखा और ढाँचा समझमें आ गया ५ छंद और एक दोहा। खैर तो वाल्मीकि अंतमे यही निर्णय करके कि मेरा सहाय कोई नही है, साधु हो गये। अपनी ही बात देख लो, अपना भी सहायक कोई दूसरा नही है। हर जगह हम मात्र अपनी चेष्टा करते हैं। दूसरेका कुछ नही करते हैं। दूसरोका तो केवल ख्याल ही बना है मगर करते अपना ही काम हैं। सो ऐसा जानकर कि हम दूसरोका कुछ नही करते हैं तो दूसरोका ख्याल ही करके उनका विकल्प क्यो करें? उस ओरसे मुख मोड लो तो निर्विकल्प स्थितिको पावोगे और उसमे जो आनन्द आयगा वह कही नही आयेगा। सो अपने आपके स्वरूपमे रत होकर अपने आप ही सुखी हो सकता हू।

कारणं सर्वदु.खानां स्वज्ञानाभाव एव हि।
येनैको वञ्चितस्तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१८॥

जगतमे जितने भी दु.ख हैं उन सब दुःखोका कारण आत्माके ज्ञानका अभाव है। आत्मा किस चीजसे बना है? इसमे क्या भरा है? यह अनुभव करनेसे ज्ञात होता है कि आत्मा और कुछ नही बल्कि जो जानन है, जो आनन्द है इस भावका नाम ही आत्मा है। यह ज्ञान और आनन्द ये दोनो भाव निराधार नही हैं। इन दोनो भावोका जो आधार है वह ही आत्मा है। आत्मा तो आनन्दमय है। इसके स्वरूपमे ही दु ख नहीं है। इस कारण 'आनंद ब्रह्मणो रूपम्' ऐसा ब्रह्मवादमे कहा है कि ब्रह्मका स्वरूप आनन्द है और आत्माका स्वरूप आनन्द है। इस आत्मामे तो दुःख है ही नहीं।

यह प्राणी अपने ही स्वरूपसे चिगता है और स्वयं ही कल्पनाएँ बनाकर दुःखी हो जाता है। दु ख बनानेसे होते हैं, पर आनन्द बनानेसे नही होता है। फर्क इतना ही है कि आनन्द तो आत्मामे स्वयमेव है और दु ख बनानेसे होते हैं। अभी देखो घरके जिन दो-चार मोही जीवोमे फसे हुए हो। वे जीव आपके कुछ हैं क्या? अरे ये किसी गतिसे आए हैं और किसी गतिको चले जायेंगे। फिर और भी सोचो कि ये चार जीव न हो, इनके बदलेमे और

कोई चार जीव होते तो क्या उनसे मोह न करने लगते ? ये मेरे हैं, इनसे हमारा यह संबंध है ऐसा मोह करनेकी इस जीवमे आदत हो गयी है। सो जो आता है उससे ही मोह करते हैं। जैसे ये जीव है तैसे ही सब जीव हैं, कोई वस्तुतः विशेष नही। यदि यह माना जाता है कि ये मेरे हैं तो यह बडा अपराध है। सब दुःखोका कारण आत्माके ज्ञानका अभाव है।

मैं कैसा हू ? मेरा सही स्वरूप क्या है ? इसका जब पता नहीं रहता है तो बाहर मे ही दृष्टि जाती है, बाहरमें ही सम्बन्ध मानते हैं सो इस मान्यतासे भी जीव दुःखी होता है। इसी ज्ञानके अभावके कारण यह मैं आत्मा विचित्र होता हूं। सो हम जो पग पग पर ठोकर खा रहे हैं वह ठोकर अज्ञानसे ही आ रही है। किसीसे सम्बन्ध कुछ नहीं, रचमात्र भी नहीं, यह बात भीतरमे ज्ञानमे आये और भीतरके स्वरूपमे ही दृष्टि होकर ऐसा ज्ञान आवे कि सारे जीव स्वतंत्र हैं, किसीका 'किसीसे कुछ सम्बन्ध नहीं' है, मैं भी अपने स्वरूपमें स्वतंत्र हू। मैं हूं और परिणमता हू, बस इतना ही मेरा काम है। किसीसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं। परपदार्थ हैं और परिणमते हैं इतना ही मात्र वस्तुका रूप है। हूं और बदलता रहता हूं। मेरा बदलने वाला और कोई दूसरा नही है। ये स्वयं ही बदल रहे हैं। भले ही कोई दूसरा निमित्त हो, मगर सब हैं और स्वयं बदलते रहते हैं। इसी प्रकार मैं हूं और बदलता रहता हूं।

कभी कभी गुस्सेमें किसी प्रकारका विकार आ गया, विकल्प आ गया तो यह परको निमित्तमात्र पाकर खुद आ जाते हैं और इस परिणमनमे मैं खुद पराधीन हूं। मैं देखता हूं दूसरेको पराधीन, पर हम स्वयं पराधीन हो जाते हैं। ऐसा निर्णय सर्वप्रथम रक्खो कि अगर कोई दुःख आते है तो समझो कि मेरी ही कोई गल्ती है जिससे दुःख हुआ है, दूसरेकी गल्ती से मुझे दुःख नही होता है। अगर कोई मनुष्य किसी बातके बिना भी पीटने लगता है तो उस पर भी समझो कि हमारी ही कोई गल्ती है। अपने दिलमे एक यह बात भी उतार लो कि जब कभी भी दुःख आते हैं तो समझो कि हमारी ही कोई गल्ती है। जिसके कारण दुःख आये हैं यह बात बिल्कुल पक्की है, निर्णीत है। इसलिए कहा जा रहा है कि यह बात लेकर निर्णयमे चलो। फिर देखो कि कितना प्रकाश मिलता है और कितनी शांति मिलती है ? किसी भी समयमे दुःखी हू तो अपनी ही गल्तीसे दुःखी हूं, कितनी ही बात तो स्पष्ट हो जाती है, निर्णयके लिए एक दो बातें और लो, हम बडे ही अच्छे आचरणसे चलते हैं, बड़े शुद्ध न्याय और व्यवहारसे रहते हैं फिर भी कुटुम्ब या पड़ौसके लोग मुझे सताते हैं, बद-नामी करते हैं, निन्दा करते हैं, उससे मुझे दुःख होता है। यहाँ कोई यह कहे कि अरे बत-लावो इसमे हमारी क्या गल्ती है ? इस तरह न्यायसे चलते हैं, सबका भला सोचते हैं फिर

भी सताने वाले बहुत हैं, निन्दा करने वाले बहुत हैं। अरे इसमें भी तुम्हारी ही कोई गल्ती है बिन तुम्हारी गल्तीके दुःख नही हो सकते हैं। अपनी दृष्टि बिगाड़ रखी है यही सबसे बड़ी गल्ती है।

कोई गाली दे रहा है, कोई निन्दा कर रहा है तो वह अपनी ही तो चेष्टा कर रहा है। अपने ही कषायोसे अपने परिणाम हो रहे हैं। भाषावर्गणायें अपने ही रूप तो चल रही है। उनसे तेरा क्या नाता है? उनके कारण तेरेमे कोई परिणति होती है क्या? उनसे कोई सम्बन्ध तो नहीं है। स्वयं स्वतन्त्र पदार्थ हैं। फिर भी इतनी गल्ती कर डाली। एक नहीं दो गल्तियां कर डाली। पहली गल्ती तो यह कर डाली कि मुझको कहा, उसने मुझ को जो माना इस पर्यायमे सो यह तो मैं नही हू। मैं तो चिदानन्द मात्र हू। वह तो मेरी निगाहमे है ही नही, उस दूसरेकी निगाहमे है। मेरी निगाहमे तो यह असमानजातीय पर्याय है, मुझको कहा, इसने कहा। अरे अपनेमे वह है ही नही। बाहरी तत्त्वमें आत्मा मान लिया पहला अज्ञान तो यह है और दूसरा अज्ञान यह है कि इसने मुझको दुःख दिया यह भाव बनाया। अरे इस जगतके जीव अपना ही काम कर पाते हैं मेरा कुछ नही कर पाते हैं। मैं स्वय कल्पनाएं करके दुःखी होता हूं।

भय्या! जरा सोचो दो बच्चे लगभग २० हाथकी दूरी पर खडे हैं। एक बच्चा दूसरेको देखकर अंगुली मटकाता है तो दूसरा बच्चा उसको देख कर दुःखी होता है। अब हमे यह बतलावो कि २० हाथकी दूरी पर खड़े हुए बच्चेके अंगुली मटकाने से क्या दूसरे बच्चेमे कुछ घुस गया। कुछ भी तो नहीं घुस गया। अगुली मटकाने वाला अपना काम कर रहा है और चिढने वाला अपना काम कर रहा है। एक दूसरेका कोई कुछ नही कर रहा है, पर वह अपना ख्याल बनाकर दुःखी होता है। उसी रास्तेमे दो सज्जन गुजरे। एक तो चिढाने वालेको डांटता है, अरे तू व्यर्थमे क्यो चिढा रहा है? यदि वह यो जवाब दे कि यह तो मेरी चीज है, यह तो मेरी अगुली है, मैं कैसी भी मटकाऊं तो क्या जवाब देगा? दूसरा सज्जन चिढ़ने वालेको समझाये कि अरे क्यो चिढता है? वह अपनी ही तो जीभ मटकाता है, अपनी ही तो अंगुली मटकाता है। अगर उसकी समझमें आ जाय तो समझने वालेको भी कुशल और समझाने वालेको भी कुशल।

सो भैया! यही बात जीवनमे उतार लो कि मुझे दुःख होते हैं तो दूसरोके द्वारा नही होते हैं मेरी ही गल्तीसे होते हैं। दूसरोसे मुझे दुःख हो जाय यह कभी नही हो सकता है। दूसरे जो करेंगे वे अपने लिए करेंगे मेरे लिए कोई चेष्टा न करेंगे। मैं क्या हूं? मेरा स्वरूप क्या है इसका यथार्थ ज्ञान होनेसे ही सब दुःख समाप्त हो जाते हैं। मुझे दुःखी करने

वाला अन्य कोई नही है, अज्ञानसे ही मै स्वयं दुःखी हो रहा हूँ, यहाँ कोई शरण नही है। अगर कोई दया भी करता है। दूसरोके लिए दया नही करता है। आपका परिणमन हुआ आपने किया और मेरा परिणमन हुआ मैंने किया। कोई किसीका कुछ नहीं करता।

एक जज था। कचहरी जा रहा था। रास्तेमे एक सूकर कीचड़मे फंसा था। उस जजसे न देखा गया। झट मोटरसे उतरकर उस सूकरको अपने हाथोसे पकड़कर निकाल दिया। सिपाहियोंने बहुत कहा—हुजूर हम निकाले देते हैं आप रहने दें, पर जज साहब नही माने। जजके कपड़ोंमे कीचड़के छीटे लग गये। समय ज्यादा न था। उसी सूरतमे जज साहब अदालत पहुंचे, अदालत किया। कुछ लोग कहते हैं कि आज जज साहबकी क्या हालत हो गयी है ? तो सिपाही कहते हैं कि आपको पता नहीं है, यह जज साहब बडे दयालु हैं। एक सूकर कीचड़मे फंसा हुआ था उसको निकाल दिया। इतनेमें जज साहब कहते हैं कि भैया ! मैंने सूकरपर कोई दया नहीं की, मैंने तो उस समय भी अपने ऊपर ही दया किया। क्योंकि देखो यदि मैं सूकरको न निकालता और अदालतमे बैठा होता तो जब इसकी याद आती तो दुःख होता कि नही ? दुःख बहुत होता, पर मैंने उसे निकाल दिया है अब सारा दुःख दूर हो गया है। तो मैंने अपना दुःख मिटानेके लिए यह काम किया। मैंने सूकरपर कोई दया नही की। हर जगह यहीं बात समझ लो। वस्तुस्वरूपकी बात समझ लो। व्यवहारकी बात व्यवहारमे होती है। पर यथार्थमे मैं क्या हूँ इसको तो समझ लो।

अज्ञान ही यथार्थ हिंसा है। अपने परिणाममे राग द्वेष करना, मोह करना हिंसा करना ही है। मोह करनेसे जीव अपनी ही हिंसा करते हैं। दूसरेकी तो वे हिंसा ही नही कर सकते हैं। परमार्थस्वरूपसे देखो तो वे अपनी ही हिंसा करते हैं दूसरोकी हिंसा नही कर सकते हैं। मेरा स्वरूप क्या है ? ज्ञान और आनन्द ही मेरा स्वरूप है। ज्ञान न होनेसे मैं ठगाया गया हूँ। अब ज्ञानी होकर मैं अपनेमें अपने लिए अपने आप सुखी होऊँ ऐसी भावना अपनेमें हो।

असंकृतेहि वस्तूनां स्वस्य स्वेनैव बद्धता।
स्वेक्षणे बद्धता नातः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम ॥११॥

वस्तुका साकर्म कभी नहीं होता अर्थात् कोई पदार्थमे तन्मय हो जाय ऐसा नही होता है। जैसे एक गिलासमे पानी और दूध बराबर बराबर डाल दिये जायें और गिलासमे फेंट दिया जाय, फिर भी पानीके स्वरूपमे पानी है और दूधके स्वरूपमे दूध। उस मिले हुए दूध और पानीमे दूध अलग है और पानी अलग है यत्नोसे अथवा गर्म करके देखें तो दूध अलग है और पानी अलग है। उस मिली हुई हालत पर भी दूधमे पानी नही गया और पानीमें

दूध नहीं गया। भौतिक पुद्गल शरीर और यह जीव एक ऐसा क्षेत्रावगाह हो रहा है कि दोनों अवस्थामे पराधीन हो गए। अभी आपसे कहे कि अकेले आइए तो नही आयेंगे। आप इन पुद्गल परमाणुवोको साथ लेकर आयेंगे। हम इस शरीरको तो नही बुला रहे हैं। हम तो आपकी आत्माको बुला रहे है। इस हालतमे भी आत्मामे आत्मा है और पुद्गलमे पुद्गल है। समझनेमे भले ही कठिन लगे। कुछ लोगोको तो दूध और पानी की ही बात कठिन लग रही होगी। खैर, यह आत्मा अपने स्वरूपमे है और शरीर अपने स्वरूपमे है। भला वास्तवमे जब इस शरीरसे भी मेरा बन्धन नही है तो अन्य पदार्थोंसे मेरा बन्धन कैसे होगा?

मेरा शरीरसे भी कुछ सम्बन्ध नही है। यह तो निमित्तनैमित्तिक बात है। जैसे गैया के गिरावाका बन्धन है तो क्या आपने गैयाके गलेको गिरमासे बाँधा, आपने तो गिरमाको ही गिरमासे बाँधा, अगर गैयाके गलेको बांध दो तो वह मर न जाये। गिरमाको मरोड़ते हैं फिर उस गिरमासे ही गिरमाको बाँधते हैं और कहते हैं कि गैयाको बाँधते हैं। अरे गिरमाके एक छोरको दूसरे छोरमे बाँधते हैं। गैया तो ज्योकी त्यो है, गिरमाने गैया पर आक्रमण नही किया। मगर गिरमाका निमित्त पाकर गैया बँधी है। वे तो पुद्गल पुद्गलकी चीजें हैं। गैया भी पुद्गल है और गिरमा भी पुद्गल है। मगर आत्माकी बात तो और गहरी है। आत्मामे कर्म क्या बँधते है। आत्मा तो अमूर्त है रूप, रस, गंध, स्पर्श आदिसे रहित है।

फिर कर्मोंसे जीव कैसे बँध गया भैया! बात यह है कि वस्तुतः भावकर्मोंसे ही जीव बँधता है। और यहाँ पुद्गल कर्मोंसे पुद्गलकर्म बँध जाता है। इसमे परस्पर निमित्तनैमित्तिक भाव है। यह जीव तो बुरा ही रहा है, इसका उपादान खोटा है, मोह, राग, द्वेषमे बँधा है इसलिए भावकर्मका निमित्त कर द्रव्य कर्मोंसे बँध पाकर यह भी बँध गया। घरकी स्त्री हो, पुत्र हो जो भी स्नेहसे उन्हे मानता है वह बध जाता है। स्नेह दिखाने वाले अपनी ही जगह पर है, पर ये अपना ही ख्याल बनाकर स्वय दूसरोके पराधीन बन जाते हैं।

पुराणोमे कहते है कि राजा जनकके पास एक गृहस्थ पहुचा। बोला—महाराज मुझे गृहस्थीने बांध रखा है, कुटुम्बने मुझे जकड़ रखा है। कोई ऐसा उपाय तो बताओ कि मैं इस फसावसे अलग हो जाऊँ। राजा जनकने और कुछ न किया। एक नीमके पेडको अकवार मे भर लिया और कहते हैं कि अरे ठहरो ठहरो, मुझे इस पेडने पकड लिया। पेड मुझे छोड़े तब मैं आपको उत्तर दूं। वह बोला—आपको बुद्धिमान समझकर मै तो आपसे उपाय पूछने आया, पर आपकी तो साफ बेवकूफी जाहिर होती है। अरे तुमको पेडने पकड लिया कि तुमने पेडको पकड लिया। राजा जनक कहते हैं कि बस यही तो तुम्हारा उत्तर है। अरे तुमने कुटुम्बको फांस रखा है कि कुटुम्बने तुम्हे फांस रखा है।

देखो इतने भैया बैठे हैं। कौन अपनी स्त्रीसे बँधा है ? कौन अपने पुत्रोंसे फँसा है ? केवल ख्याल बनाकर ये स्वय फंस रहे हैं। अरे वह परके द्वारा तुम्हारेमे टससे मस नही हो सकता। तुम्हे कोई दूसरे बांधने वाले नही हैं। वस्तुवोका सांकर्य दोष नही है कि वस्तु स्वयं मिल जाय, तन्मय हो जाय। तुम्हारा जो बंधन है वह तुम्हारे द्वारा ही बन्धन है। विचित्र कर्मोंका उदय है दूसरोकी करतूतसे बंधन नही। यदि सत्य स्वरूप देखनेमे आ जाय तो बन्धन नही रहता है। अपना सत्य स्वरूप देखनेमे न आये, बाहर बाहर ही दृष्टि लगी रहे तो अपने ही अपराधका बन्धन है। दूसरोसे बन्धन कहाँ, क्लेश कहाँ ? सब मेरे ही बन्धनसे क्लेश हैं।

भैया ! शांति तो अपने ज्ञानस्वरूपमे है। शान्तिके लिए लाख यत्न बाहरमे किए जायें, कितने ही पुत्र, परिवार, मित्र जन देख डालें, पर शान्ति कही नही मिलेगी। अपना बच्चा देख लिया, धन वैभव जोड़ लिया, पुत्र मित्र जोड़ लिये, पर शांति उनसे कभी न मिलेगी। चाहे जितना धन वैभव जोड़ लें, चौगुना, अठगुना, दसगुना पर शान्ति कभी न मिलेगी। शान्तिका सम्बन्ध तो परपदार्थसे है ही नहीं। अगर परपदार्थोंसे शांति होती तो तीर्थंकर और चक्रवर्ती इत्यादि बडे बड़े पुरुष धन वैभव इत्यादिकों क्यो त्याग देते ? धन वैभवसे तो बंधन ही हैं, शान्ति तो रंचमात्र भी नही है। बधन तो मेरी बाह्यदृष्टिसे हो रहे हैं। मैं अपने आपको सभालू तभी अपनेमे अपने लिए अपने आप में सुखी हो सकता हूं। यदि मैं अपनेको न सभाल सका तो दुःखी हो जाते हैं। दुःखी करने वाला कोई दूसरा नही है।

बन्धैकत्वेऽपि देहादेर्भिन्न एव स्वभावतः।
परभिन्नात्मवृत्तिः श स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥२०॥

यह शरीर और यह जीव बन्धा है और इस बंधके कारण इन दोनोमे एकता भी है परन्तु परमार्थसे इनमे एकता नही रहती है। यह जीव अलग नही हो पाता, यह देह अलग नही हो पाती, फिर भी यह जीव स्वभावसे ही इस देहसे भिन्न है। सो इस देहको त्यागकर अपने ज्ञानस्वरूपको देखें तो यह वृत्ति यानी यह काम मेरी शांतिको उत्पन कर सकता है। बाहर दृष्टि रहनेसे तो कुछ शांति नही मिल सकती है। निमित्तदृष्टि करके इष्ट अनिष्ट माना, सो इसहीसे विपदा आती है। भैया ! कही किसान और किसानी थे। विवाह हुए १०-१२ वर्ष हो गये थे। किसानी शांतिप्रिया थी, इसलिए वह किसानीको पीट नही सकता था। उस किसानकी बडी लगन रहती कि मैं पीट लू तभी पक्का मर्द हू। वह यह सोचता कि मैं कैसे पीटूं ? कोई बहाना नही मिलता। उसे एक तरकीब याद आयी। वह खेतमे हल जोत रहा था। उसने एक बैलका मुंह कर दिया पूरबको और एकका कर दिया पछांहको, दोनो बैलो

के कन्धे पर जुवाँ रख दिया और उसमे हलको भी रख दिया। स्त्री खाना पीना दोपहरको ही लाती थी। उसने ऐसा विचार किया कि ऐसा देखकर स्त्री कुछ तो कहेगी ही। इस तरहसे वह मारनेको पा लेगा। स्त्री जब आयी तो आते ही देखकर समझ गयी कि आज तो पिटनेका डौलडाल है। स्त्री बेवकूफ नही थी। उसने आते ही कहा कि चाहे औंधा जोतो चाहे सीधा जोतो मेरा तो काम केवल रोटी देना है। इतना कह कर रोटी देकर वह वापिस चली गयी।

भैया ! सारी दुनियाँ निराली है, ये घरके लोग भी भिन्न हैं। जैसे इङ्गलैंडमे रहने वाले लोग है वैसे ही घरके रहने वाले लोग है। उनसे मेरेमे कुछ नही हो जायगा। आप यदि मानें कि ये मेरे हैं तो क्या आपके हो जावेंगे ? सो यह दृष्टि बने कि चाहे यो चले कोई चाहे यो चले, मेरा तो काम केवल ज्ञाता द्रष्टा रहनेका है या अधिकसे अधिक राग हो तो प्रेमयुक्त वचनोसे समझा देना चाहिए। ऐसी दृष्टि बनती है तब वस्तुका स्वरूप स्वतन्त्र नजर आता है। सब वस्तुयें भिन्न-भिन्न हैं। कभी उनसे सयोग भी हो तो सयोगके समयमे भी ये पदार्थ भिन्न-भिन्न हैं।

यह एक चौकी है। देखनेमे लगती है कि यह एक चीज है मगर एक नही है। यह चौकी अनन्त पुद्गल परमाणुवोसे बनी है। उनका इस प्रकारका ढेर लगा कि बीचमे अन्तर नही मिलता। मगर यह चीज एक नही है। एक चीज तो वह होती है जिसका दूसरा टुकडा नही होता है। जिसका कुछ हाफ न हो, अर्द्ध न हो वह एक चीज कहलाती है। क्या एक नये पैसे का आधा हो सकता है ? नही हो सकता है। जैसे १ रुपया है वह एक चीज नहीं, वह तो १०० चीजोका समूह है। मगर हिसाब लगाओ और आधा नया पैसा बैठे तो एक नए पैसेका आधा नही दिया जा सकता है। यदि उसकी कौडी मान लो तो एक कौडी यूनिट हो गया उसका आधा नही किया जा सकता है। जो अविभागी हो उसे एक कहते है।

इस चौकीके अनेक टुकडे कर लो, १० टुकडे कर लो, ५० कर लो। चौकी अनन्त-परमाणुवोकी चीज है। इस चौकीके एक एक परमाणुमे भी एक परिणाममें दूसरा परिणाम घुस नही गया है तो फिर बतलाओ जीवकी तो बात बहुत जुदी है, यह तो भिन्न-भिन्न स्थानोमे है। यह एक कैसे हो सकता है ? यह आत्मा इस बध अवस्थामे एक होकर भी देह इत्यादि सबसे पृथक् है। सो सब पदार्थोंसे भिन्न जो आत्मतत्त्व है उसमे वृत्ति हो तब वह शान्तिका मार्ग पा सकता है। सबसे बड़ा सकट जीवको है तो मोहका सकट है, दूसरा सकट नही है बेप्रयोजन, कोई लेना नही, देना नही, भिन्न भिन्न जीव हैं, भिन्न भिन्न पदार्थ

हैं, सब अपने-अपने स्वरूपमें उत्पाद व्यय कर रहे हैं, किन्तु स्वरूप ध्रुव है इस कारण किसी भी पदार्थका किसी अन्य पदार्थसे जरा भी सम्बन्ध नही, फिर भी यह जीव वस्तुस्वरूपके खिलाफ मानता है कि यह मेरा है, इसलिए ही विकल बना रहता है। यही इस जीव पर बड़ा सकट है। इससे बढकर और कुछ संकट इस जीव पर नही।

भैया ! इस निजप्रभु पर ऐसा गजब उपद्रव छाया हुआ है कि मरकर पशु-पक्षी बन जाते हैं, जीव जन्तु, पेड पौधे आदि बन जाते हैं, फिर भी ये जीव मौज मानते हैं, खुशियाँ मनाते हैं, मोह करते हैं। मरकर अगर पशु बन गये, वृक्ष बन गये तो फिर कि ये पुकारा करेगा कौन तुम्हे पुकारेगा ? इस जीवका शरण है तो केवल भेदविज्ञान है। तुम जो कुछ करते हो वह अपने लिए करते हो। उसका फल तुम्हे ही भोगना पढेगा। मैं जो कुछ करता हूं वह अपने आप भोगता हूं। इसके आगे मेरा कुछ कर्तव्य नही है। कर्तव्य तो यह है कि मेरा जो सबसे निराला रूप है उसका अनुभव करूँ उसमे ही रमू। इसीको कहते हैं सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र। यह स्वकी वृत्ति ही मेरी शरण है अन्य कोई मेरे लिए शरण नही है ऐसा जानकर अपने ज्ञानमे लगना चाहिए।

देखो सबसे बडा सौभाग्य तो जैनदर्शनको पाना है जिसमे वस्तुके स्वरूपको युक्तियों से सुसिद्ध किया है। और उसका प्रतिवाद न करके भी ऋषिगण यह कहते है कि आपके अनुभवमे आये तो मानना। हम अपने अनुभवमे उतारें कि प्रत्येक वस्तु स्वतत्र है ना, प्रत्येक वस्तु उत्पाद व्यय ध्रौव्य वाला है ना। परका चतुष्टय न्यारा न्यारा है ना। देखो कहीं कहीं यह कहा गया है कि सारा जगत् ब्रह्म है, एक सत् है। अच्छा यह बताओ कि मनुष्य एक ही तो है। मनुष्यत्वकी दृष्टिसे देखो तो एक है और भिन्न भिन्न अनुभव से देखो तो अनेक हैं। इसी तरह चेतन और अचेतन पदार्थ भी एक होगे। ये सब सत् है इस दृष्टिसे चेतन अचेतन सब एक हैं। ये बाहरके पुद्गल भी सब एक हैं। भिन्न भिन्न दृष्टिसे वे भिन्न-भिन्न प्रदर्शन हैं। सो अनेक नयोंसे वस्तुस्वरूपको पहिचानो।

इसके आगे ऊपर चलनेका यह भी उपदेश है कि यथार्थज्ञान करके फिर सबको भूल जायें केवल अपने ज्ञानस्वरूपमे रमे यही अन्तिम शिक्षा है। बीमारको समयपर योग्य दवा मिलना जरूरी है। इसी तरह इन जीवोमे अनेक प्रकारकी योग्यता वाले जीव हैं सो सब वर्णन इस जैनधर्ममे मिलते हैं। देखो सौभाग्यकी बात है कि हमे उत्तम कुल मिला है जिस मे सप्त व्यसनकी परम्परा नहीं और ऐसे व्रत विधान परम्परा हैं जो एक पवित्र भावको लिए हुए हैं। अनेक योग्य वृत्तियाँ घरके परिवारमे स्वतः हैं। अब मोहमे दिल लगाकर सब सुविधावोको बिगाड़ देना तो ठीक नही। अपने आनन्दके लिए अपने आप पर हो अपनी

जिम्मेदारी समझना चाहिए।

देहादेव यदा भिन्नः कथं बन्धुभिरेकता।
विभक्तस्य सदा सौख्यं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥२१॥

यह मैं आत्मा देहसे ही भिन्न हूं, यह बात अनुभवसे मालूम पडती है कि मैं शरीरसे न्यारा हूँ फिर और बन्धुवोके साथ एकता कहांसे हो ? जब शरीर ही मेरा साथी नही है तब और बन्धुवोके, कुटुम्ब, परिवारके साथ एकत्व कैसे हो सकता है ? ऐसा मानो कि मैं सबसे न्यारा हूं। अपने आपको न्यारा देखनेमे ही आनन्द है। जिसने दूसरोंसे मिला हुआ अपनेको देखा उसे आकुलताएँ ही होती हैं। अभी ये बच्चे लोग सुखी नजर आते हैं, दौडते हैं, फिरते हैं, खेलते कूदते हैं। इसलिए ये सुखी नजर आते हैं कि इनके किसी प्रकारका मोह नही लग पाता है। उनके स्त्री नहीं होती सो स्वतन्त्र हैं इसलिए वे सुखी नजर आते हैं। जिस दिन विवाह हो गया उसके दूसरे दिनसे ही वे दुःखी दिख पड़ेंगे। और संग बढा, पुत्र बढ़े, उनसे मोह किया, अब दु.खोका क्या ठिकाना ? देखो बच्चोंसे भी मिलता क्या है ? बच्चे बड़े हो गये, विवाहित हो गये, स्त्रीमे लीन हो गये तो पिता, माँ की अवहेलना करते हैं। वे बैठे-बैठे ही मनमे कुढ रहे है, अपनी स्त्रीसे स्नेह करते हैं, अपने पुत्रोंसे स्नेह करते हैं और माँ-बापका अपमान करते है, माँ बाप दुःखी होते हैं। और दुःख क्या होता है बतलावो ? पुरुष अपनी स्त्रीका पक्ष लेता है और माँ का दोष बतलाता है। किसी कामसे सास बहूमे झगडा हो गया। पतिने स्त्रीका पक्ष लिया और माँ का दोष बतलाया। तो बताओ माँ को कितना दु.ख होगा ? माँ सोचेगी कि यह मेरा बच्चा है, मैंने इसे पाला पोषा है, खिलाया पिलाया है, पर आज मुझे ही दोषी बता रहा है। स्त्रीका पक्ष ले रहा है और मेरा निरादर कर रहा है। इससे तो माँ का दुःख और बढता है। ये मोही जन अपने बच्चोसे ही मोह करते हैं, २४ घटे उन्हीके पीछे पडे रहते हैं और दु ख प्राप्त किया करते हैं।

अरे नीतिकी बात है कि पुत्रोमे ही रत रहनेसे, स्त्रीमे ही लीन रहनेसे, राग, द्वेष, मोह बढानेसे तो बरबादी ही है। उनसे मोह हटानेसे सब दुःख खत्म हो जायेंगे, सारा भय खत्म हो जायगा। आपके ये बच्चे आपकी इज्जत न रख सकेंगे। वे आपके बच्चे हो आपका अपमान करेंगे, आपकी इज्जत न रख सकेंगे। यदि आपने उन बच्चोंसे अधिक मोह किया तो वे समझ जावेंगे कि ये माँ-बाप मुझे चाहने वाले है, मुझ पर फिदा हैं, मुझ पर आसक्त हैं तो फिर वे बच्चे आपकी इज्जत न करेंगे। घरमे रहते हुए भी बच्चोसे अपनेको जितना बाहर बनाओ, बाहर रखो उतनी ही इज्जत रहेगी, उतनी ही विनय रहेगी, उतना ही सत्कार रहेगा। यही तो आनन्दकी बात है। मगर भीतरमे इस मोहका रखना पाप है।

क्योंकि इस मोहका फल केवल अशान्ति है। जब अपना शरीर ही अपना साथी नही है तो फिर अन्य कोई अपना साथी कैसे हो सकेगा ? कौन चाहता है कि मैं बूढ़ा बन जाऊँ, मगर बूढ़ा बनना ही पड़ता है। यदि जिन्दगी रही तो बूढा होना ही पडता है। कौन चाहता है कि आत्मा इस शरीर से निकलकर भाग जाय। कोई बहुत ही अधिक वृद्ध बुढ़िया है वह देखती है कि बच्चोसे मुझे दुःख है तो वह भगवान्से प्रार्थना करती है कि हमें बह उठा ले। उठालेके माने मैं मर जाऊं। अगर कोई सांप निकल आवे तो वह पुकारती है कि अरे बेटा दौडो, बचावो। बच्चा दौड़ा आवे और कहे कि तुम तो रात-दिन यह कहती थी कि भगवान् मुझे उठा ले और अब हमे पुकारती है। तो इस शरीरको चाहे जितने दुःख हो जायें पर मरनेकी कोई इच्छा नही करता है। कितना भी बूढ़ा हो, शरीरसे रोगी हो पर वह मरनेकी चाह नही करता है। हाँ यदि कोई हृष्ट पुष्ट भी हो, और कषायभाव जग जाये तो वह आत्महत्या कर डालता है।

अब यहाँ देखो जितने भय्या बैठे हैं सब मनसे दुःखी नजर आते हैं। खाने पीनेकी बात सोचो तो महंगे जमानेमे भी चार आनेमे पेट भरा जा सकता है। और क्या चाहिए, रोटी नमकसे चार आनेमें पेट भरा जा सकता है। आर्थिक परिस्थितिसे कोई दुःखी नहीं है। इसके तो मानसिक दुःख हैं। इसके ये दुःख हैं कुछ नही, पर ये विकल्पोसे सताये जा रहे हैं। सब मनके राग बनाकर बैठे है। अगर ये अपने मनके राग मिटायें तभी ये निरोग हो सकते हैं। है तो बीमारी दूसरी और दवा दी जाय दूसरी तो यह तो ठीक नही होगा। ठडेका रोग और ठंडी ही दवा दी जाय तो सर्दी तो और बढ़ेगी, सन्निपात और बढ़ेगा। मनमे तो राग है और रागोको बढ़ानेकी दवा दी जा रही है तो बताओ कैसे निरोग हो सकते हैं ? देहसे भी मेरी एकता नहीं है तब बन्धुवोसे एकता कैसे हो ? अरे थोडी एकता तो अपनेमे ले आवो। यदि कोई आदमी मर गया तो उसका नक्शा तो देखा होगा किसीका, वह देह छोड़कर ही तो चला गया ना ? अब जो देह बचा उसे लोग मरघटमे ले गये, वहाँ पर वह जला दिया गया। जला देनेसे सारी देह खाक हो गयी। अपनेमें भी यह अनुमान करो कि वह मर गया ऐसे ही यह मैं आत्मा भी इस शरीरसे चला जाऊँगा। यह शरीर यहाँ रह आयगा। यह शरीर यहाँसे मरघट चला जायगा, वहाँ खाक कर दिया जायगा, खत्म हो जायगा।

भैया ! जो गुस्सा आता है तो इस शरीरको ही आत्मा मान लिया गया है तब गुस्सा आता है और अगर यह जाने कि मैं ज्ञानमात्र हूँ, शरीरसे न्यारा हूँ तो यही विवेक है फिर गुस्सेका भी काम नही। अगर अपनेसे बाहर हो जावो तो घमंड भी आ जाय। जैसे ऐसा

क्यों हो गया ? ऐसा हो जाना चाहिए था, यह सब क्यों नही रखा, ये जो घमंड ग्राते हैं वे इसी कारण कि शरीरको ग्रात्मा मान रखा है कि यह मैं हूँ, ऐसा सोचना ही महापाप है। सारे पाप इसी कारण होते हैं। खोटी वासनायें, काम वासनायें इत्यादिसे दूर रहकर यह सोचें कि मैं इस शरीरसे न्यारा, निर्लेप, ज्ञानमात्र हूं, ऐसा सोचनेसे ये वासनायें नहीं रह पाती हैं। वासनायें न रहनेसे ग्रपने एकत्वकी प्रवृत्ति ग्राती है। ऐसा सोचे कि मैं न्यारा हूँ, मैं सबसे जुदा हूँ। तुम्हारा परिवार क्या है ? पुत्र, मित्र, स्त्री इत्यादि ये सब ग्रपनी-ग्रपनी दुनिया चला रहे हैं। इनका कोई कुछ नही है, किसीके साथ एकता नही है। ऐसी सच बात किसी क्षण ज्ञानमे ग्रावे तो ग्रापको ग्रानन्द मिलेगा। वह ग्रानन्द कोई दूसरा नही पायेगा। ग्रानन्द तो भिन्न रहनेमे ही है, मिलकर रहनेमे ग्रानन्द नही है। ग्रलग रहनेमे ग्रानंद है, ज्ञानके द्वारा ग्रलग रह जाय, सबसे मिलकर रहता हुग्रा भी ग्रपनेको ग्रलग ही निरखे तो ग्रानन्द है। यह समझमे ग्रावे कि मैं ग्रपनी देहसे भी भिन्न हूँ, सबसे न्यारा, पवित्र, ज्ञानमात्र हूँ, ऐसा ग्रनुभवमे ग्रावे तो ग्रानन्द है।

देहोऽणुव्रजजः स्वात्मातीन्द्रियो ज्ञानविग्रहः।
स्वात्मन्येव स्थिरस्तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥२२॥

यह शरीर क्या है ग्रौर ग्रात्मा क्या है ? इन दोनोके लक्षणोको इसमे बतलाया जा रहा है। शरीर क्या है ? पुद्गल परमाणुवोके समूहसे उत्पन्न हुग्रा यह ढांचा है। शरीर कोई एक चीज नही है। एक चीज तो ग्रखंड रहती है। ग्रगर यह शरीर एक चीज होता तो ग्रगुली न टूटती, पैर न टूटते। एकके टुकड़े नही होते। इस शरीरके तो टुकडे-टुकडे हो जाते हैं। शरीर एक चीज नही है। शरीर है नाना परमाणुवो का समूह। ग्रौर वे नाना परमाणु सब जड हैं। वे परमाणु सब मिल जुल गए हैं। तो यह शरीर परमाणुवोंके समूहसे उत्पन्न होता है। मगर ग्रात्मा ग्रतीन्द्रिय है, इन्द्रियोंके द्वारा जाननेमें नही ग्राता है। न स्पर्शनके द्वारा छूनेमे ग्राता, न ग्रांखोसे देखनेमे ग्राता, न नाकसे सूंघनेमे ग्राता, न कर्णोंसे सुननेमे ग्राता, ग्रौर बात तो जाने दो। ग्रसली चीज जो ग्रात्मा है वह ग्रात्मा मन के द्वारा भी समझमे नही ग्राता, इन्द्रियोके द्वारा जाननेमे नही ग्राता। मनका ऐसा काम नही है कि मनके द्वारा कोई ग्रात्माका ग्रनुभव कर ले। मन इस ग्रात्माके बारेमे कुछ सोच सकता है। ग्रात्मामे न तो रूप है न रस है, न गध है ग्रौर न स्पर्श है। वह तो ज्ञानमात्र है, ज्ञानमय है, ज्ञानदर्शनमय है। उस ग्रात्माका साक्षात् ग्रनुभव भी मन नहीं करता। ग्रात्मा तो मन इन्द्रिय ग्रौर कषायोसे परे हैं।

जैसे कोई राजाके पास जानेको तत्पर है तो द्वारपालोका ग्रर्थात् पहरेदारोका काम

यह है कि दरवाजेके भीतर जाने दें और चलकर थोडी दूर पहुंचा दें। वह राजाके पास बैठकर बात करे यह खुदको करना पड़ेगा। द्वारपालोका काम केवल यह है कि आंगन तक पहुंचा दें पर राजासे मिलनेका, बात करनेका काम तो तुम्हारा ही है। इसी तरह यह मन चौकीदार की तरह है, द्वारपालकी तरह है। वही आत्माका परमार्थस्वरूप है, जो प्रभुका स्वरूप है ऐसा विचार बना दिया मनने। तो मनका कितना काम है? मनका उतना ही काम है कि आत्माके आंगन तक पहुंचा देवे अर्थात् आत्माकी जहां चर्चा चलती है, आत्मा का जहां वर्णन चलता है उस आत्मामे दर्शनार्थ ले जाय। यह जड मन आत्मासे न मिलेगा इस आत्मासे भिन्न होकर आत्माके विचारका कारण भर बनेगा, यह उपयोग खुद मिलेगा, मन नही मिल सकता। इतना परे है यह आत्मा। आत्मामे सार है क्या? ज्ञान ही इसका सार है। आत्माको सरल शांति चाहिए। ऐसी दृष्टि बनाओ कि यह मैं आत्मा ज्ञानमात्र हू, जानन ही प्रतिभास है, जानन ही इस आत्माका प्रकाश है। यही मात्र मैं हूं। इस ज्ञान-प्रकाशके साथ इस ज्ञानको जोडो, यह ज्ञानके ही स्वरूपको देखे। ज्ञानका प्रकाश ही अपने स्वरूपको मानो और सारी बातें भूल जावो। किसीका परिवार कहां है, किसीका स्थान कहां है इत्यादि बातोको भूल जाओ केवल अपने ज्ञानस्वरूपको देखो तो अपने आत्माके सुखका अनुभव हो जाय। ऐसी आत्माको ज्ञानविग्रह कहा है। ज्ञान ही इस आत्माका सार है। ऐसी आत्मामे अगर कोई स्थिर हो जाय तो उससे ही अपने आपका अनुभव हो सकता है। आत्मा का श्रद्धान, आत्माका ज्ञान और आत्मामे रमना इसीसे आत्मा शुद्ध हो सकती है।

यैरर्थैर्मम सम्बन्धस्ते स्वरूपात्पृथक् सदा।
तत्स्वदृष्ट्याऽसुखं तेन स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥२३॥

जिन-जिन पदार्थोंसे मेरा सम्बन्ध है अर्थात् अपनी कल्पनाओंसे जिन-जिन पदार्थोंको हम अपना मानते हैं वे समस्त पदार्थ मेरे स्वरूपसे बिल्कुल पृथक् है। अपने सत्त्वको निरख-कर निर्णय करो कि जितने भी निकट और बाहरके सम्बन्ध हैं, जितने भी पुद्गल पिंड हैं वे सबके सब मेरे स्वरूपसे बिल्कुल अलग हैं। और जितने भी जीव हैं वे सब जीव मेरे स्वरूपसे बिल्कुल पृथक् है। तो यह निर्णय कर लो कि उनसे मिलता क्या है? आपके माने हुए घर, वैभव, पुत्र, परिवार इत्यादि आपसे कितने बाहर हैं? बिल्कुल पृथक् है। उनका परिणमन उनमे ही है, उनसे मुझमे कुछ नही आता। कभी-कभी अपने बच्चोसे हैरानी हो जाती है। इन बातोंमे से कि बहुत राग होने पर भी ये नही मानते हैं। भैया इनमें लीन होनेसे आप अपना हित नही करते हैं। अपने सत्यस्वरूपको देखो, बाह्यमे मेरा कुछ सम्बन्ध नही, उनपर मेरा कुछ अधिकार नही, वे स्वयं अपना लाभ समझकर अन्दरमें आते हैं, आधीन बनते हैं।

परके चाहनेसे, परसे मोह करनेसे स्वाधीन नही बन सकते हैं। अपने आधीन बना लो उनको तो यह बात तुम्हारे वशकी नही। हम अपना स्वार्थ समझकर किसी दूसरेके आधीन बन जायें तो मैं यह हूँ अलग, पर पराधीन बन जाऊँगा। परके चाहनेसे किसीको अपने आधीन बना लो यह नही हो सकता। वह स्वयं पराधीन बन जावे तो वह अपनी स्वतंत्रतासे पराधीन बनता है। दूसरोमे पराधीन बननेके कार्यमे नही बनता। हम स्वय ही अज्ञानवश कल्पनामे आत्मसमर्पण कर देते हैं। जगतके जितने पदार्थ हैं वे सब स्वयं परिणमनशील हैं। सबमे परिणति रहती है, सब परिणमन करते जा रहे हैं। पर कोई किसीका परिणमन नही करता है। तब मैं यहाँ बैठा हूँ और यह चटाई या फर्श हमारी छायारूप परिणम गयी। यह तो पृथ्वी और चटाई खुद छायारूप परिणम गयी। मैंने इसे छायारूप बना दिया हो तो मैं नही बन सकता। उस समय यह देह हाजिर था कि यह स्थान स्वयं छायारूप परिणत हो गया। एक मनुष्य किसी सेठको गाली दे देता है और वह सेठ गुस्सा करे तो सेठ स्वाधीन बनकर स्वतन्त्रतासे अपना ख्याल बनाकर कि इसने मुझे गाली दी है, यह मुझे कुछ नही समझता, ऐसा ख्याल बनाकर खुद अपनी स्वतन्त्रतासे खेद कर रहा है। पर गाली देने वाला सेठको क्रोधी नही कर सकता। वह स्वय क्रोधके उपादान वाला है तो क्रोधी बन जाय, मगर गाली देने वाला सेठपर क्रोध नही कर सकता। क्योंकि गाली देने वाला यदि अपनी परिणति से क्रोध कर देता है तो हर एकमे क्रोध क्यो नही कर देता। साधुको क्रोधी क्यो नही कर दिया ? साधु भी कदाचित् अपने स्वरूपसे हटकर क्रोधी बन जाय तो वह स्वयकी परिणति से क्रोधी हो गया। क्योंकि कोई दूसरे पर क्रोध नही कर सकता। क्रोध करने वाला खुद क्रोध करता है। कषाय करने वाला, विषयोमे आसक्ति रखने वाला स्वय ही अपना ख्याल बनाकर ऐसा बुरा बन जाता है। प्रत्येक कोई किसी दूसरेको बुरा भला नही बनाता। कोई क्रोध नही करता, खुद ही ख्याल बनाते और इस रोगके बीमार बनते रहते हैं। आत्मामे तो स्वभावसे राग नही रहता है। आत्मा तो एक अमूर्त है। ज्ञान और आनन्दस्वरूपको लिए हुए मात्र है, इसमे अन्य कुछ पिडरूप चीज नही है। इसमे कोई भार भी नही है। यदि कोई भार हो तो बतलावो। इस आत्मामे कोई भार लादा है क्या ? कोई भार तो इस जीवमे नही करता है। खुद ही भीतर ख्याल बनाकर इतना भार लादा है कि उठ नही पाता, आरामसे बैठ नही पाता। ख्याल बनाकर इतना बोझ लादा है कि खुद शान्तिसे बैठ नही पाता। इस जीवने स्वयं अपनी जिदसे अपनेको दु:खी कर दिया। दूसरा कोई दु:खी करने वाला नही है।

एक बादशाह था। वह पशुशालामे घूम रहा था। वहाँ घोड़ा बंधा था। पासमे ही

बैल बँधे थे । घोडा बैलोंसे वोला—तुम लोग बेवकूफ हो इसलिए बोझा लादते हो । बैल बोले तो फिर क्या बुद्धिमानी करें कि बोझा न ढोना पडे । वे तो हमे पकड लेते हैं और जोत लेते हैं । घोड़ा वोला कि हम तुम्हें एक बुद्धिमानीकी बात बताते हैं कि जब कोई बोझा ढोनेके लिए तुम्हारे पास आवे तो तुम पेट फुलाकर पैर पसारकर लेट जाना । ऐसा करनेसे तुम्हे वोझा नही ढोना पड़ेगा । राजा सब बातें सुन रहा था कि घोड़ेने बैलोको यह समझाया है । दूसरे दिन जब बैल जोतने वाले बैलके पास पहुंचे तो मरासा पाया उन्हे । राजाके पास बैल वाले पहुचे, बोले– महाराज, बैल तो मर गए अब किसको जोतें ? राजा बोला कि अच्छा पास वाले घोडेको जोत ले जाओ ।

बैलोका वोझा घोडा कहाँ सहन कर सके ? वह हांफता हुआ किसी तरहसे अपने स्थान पर पहुचा । अब उस घोडेने बैलोको समझाया कि देखो दूसरे दिन पेट फुलाकर नही लेट जाना, नही तो डडे और कोडे खाओगे । राजा भी वहाँ घूमने गया था । घोडेकी बात राजाने सुनी । राजाने सोचा कि देखो कल तो बैलोको इस तरहसे समझाता था कि पेट फुलाकर लेट जाना तो बोझ नही ढोना पडेगा, पर आज वह यह समझा रहा है कि अगर पेट फुलाकर पैर पसारकर लेट गए तो डडे खाओगे । राजा थोड़ी देर बाद रानीके यहाँ गये । वहाँ मनमे राजाने कहा कि कल तो यो समझाया, पर आज यो समझाया घोड़े बदमाशने । ऐसा सोचते ही राजाको हँसी आ गयी । राजाकी यो हँसीको देखकर रानी पूछती है कि तुम्हे हँसी कैसे आयी ? राजाने कहा कि देखो यह तुम्हारा घोडा बदमाश है, कल बैलोको समझाता था कि पेट फुलाकर पैर पसारकर लेट जाना तो वोझा न ढोना पड़ेगा, पर आज यो समझाया कि दूसरे दिनसे पेट फुलाकर पैर पसारकर नही लेट जाना, नहीं तो चमडी उधेडी जायगी । रानीने राजासे पूछा कि तुम्हे घोड़ेकी बोली समझना किसने सिखाया ? हमें भी सिखवा दो । राजाने कहा कि सिखाने वालेने कहा था कि अगर स्त्री जातिको सिखाया तो तुम मर जाओगे । राजाको यह भय लगा कि अगर सिखा दूंगा तो मर जाऊँगा । रानी ने बहुत हठ किया तब राजाने कहा कि अच्छा दो दिन बादमे सिखा देंगे । अब तो सभी पशु यह जान जाते हैं कि हमारा राजा दो दिन बादमे मर जायगा । बैल, घोडा, कुत्ता सभी उदास हो गये, यह सोचकर कि मेरा राजा तो दो दिन बादमे मर जायगा । मगर मुर्गा मुर्गी सब खेल रहे थे । कुत्ता वोला—ऐ मूर्खो तुम्हे यह पता नहीं कि अब खेलना ठीक नही है क्योकि राजा मर जायेगा । मुर्गा मुर्गी कहते हैं कि हम इसलिए नहीं खेलते कि राजा मर जायगा किन्तु इसलिए हँसते हैं कि राजा अपनी बेवकूफीसे मर रहा है । कुत्ता बोला बेवकूफी क्या है ? मुर्गा मुर्गी बोले बेवकूफी यह है कि अपनी गल्तीसे ही स्त्री को सिखानेके लिए तैयार हो गया है । अगर वह रानीके हठ करने पर डण्डे मारनेको तैयार हो

जाता तो उसे अभी मरना न पडता। उसकी ही तो गल्ती है। राजा यह भी सुन रहा था अब उसकी समझमे आ गया। राजा दो दिन बाद रानीके घर तो गया किन्तु साफ कह दिया कि जा नही सिखाना। तो सोचो कि सम्पदा, घर वार बच्चे कोई भी मुझे दु.खी नही करते है, कोई दूसरा दुःख करने वाले नही हैं, स्वयं ही मोह करके, ममता करके ये दु खी हो रहे हैं। दु:खको दूर करना हो तो सच्चा ज्ञान जगालो। सच्चा ज्ञान जगानेसे ही दु ख दूर होंगे। अगर कोई चीज बन गयी तो उससे मुझमे क्या बन गया और अगर कोई चीज बिगड़ गयी तो उससे मुझमे क्या बिगाड हो गया ? यह सम्यग्ज्ञानकी बात कह रहा हू। सम्यग्ज्ञानकी बात कहो जानेपर भी ये रागोमे ही गोते लगा रहे हैं।

इन रागोमे लगाव होनेपर भी यदि सच्चा ज्ञान जगता है तो आकुलतायें नही होती हैं। इतना फर्क हो जाता है। मिथ्यादृष्टिमे तो राग भी रहता है और रागमे भी राग रहता है। सम्यग्दृष्टि भी करते हैं कोई राग, किन्तु वे रागसे राग नही करते हैं। इसका वे अन्दरसे दुःख ही मनाया करते हैं। वे तो सब बातें यथार्थ समझते हैं, फिर भी रागपरिणति देखकर दु.खी होते हैं। भैया! यह ज्ञानमात्र सबसे निराला अपनेको समझो, केवल कर्तव्यमात्र समझो कि यह मैं इस दशाके कर्तव्य ही करता रहता हूँ। जिन पदार्थोंसे मेरा सम्बन्ध है वे वे सब पदार्थ मेरे स्वरूपसे जुदा हैं, बिल्कुल जुदा है। पूर्वजन्मके कौनसे वैभव साथ आये और जगत्के इस जन्ममे भी कौनसे वैभव साथ ले जाओगे ? ये तो सब ख्याल बनाकर ही दु खी हो रहे हैं। अच्छा ज्ञान जग गया वस्तुके स्वरूप अनुरूप तो अच्छा है और यदि अपने स्वरूपसे हट गए और कुबुद्धि आ गयी तो ठीक नही होगा। परकी परिणतिका अपने पर बोझ लादना भ्रमवश ही होता है। एक धुनिया पानीके जहाजसे चला आ रहा था। उस जहाजमे हजारो मन रुई लदी थी। उसको देखकर वह मनमे कहता है कि हाय! इतनी रुई कौन धुनेगा ? हम ५ सेर रुई तो एक दिनमे धुन पाते हैं तो यह हजारो मन रुई धुननेमे तो हाय! हम मर जायेंगे। ऐसी कुबुद्धि आ गयी, हाय हम मर जायेंगे। अब तो वह बीमार हो गया, तेज बुखार चढ आया। चार दिन हो गये, ६ दिन हो गए। बहुतसे डाक्टर आये, पर कोई ठीक न कर सका। एक बुद्धिमान आया। बोला—हम ठीक कर देंगे। धुनिया बोला—अच्छा महाराज, ठीक कर दो, मैं हजार रुपये भेंट करूँगा। उस बुद्धिमान व्यक्तिने धुनियासे पूछा—कहाँसे चले ? बोला—फलां जगहसे, विलायतसे। किससे चले ? पानीके जहाजसे। उसमे कितने आदमी थे, बोला आदमी तो दो ही तीन थे, पर हजारो मन रुई लदी हुई थी। अब तो वह खुद ही समझ गया कि उतनी रुईको देखकर इसके हाय हो गया है कि इसे कौन धुनेगा ? बोला—अरे जहाज तो आगे समुद्रके किनारे आते ही उसमे आग लग गयी और

सारी रुई जल गयी, सारा सामान जल गया। अब तो वह इतना सुनते ही चंगा हो गया, बीमारी दूर हो गयी, सारे क्लेश खत्म हो गये।

सम्पदा बढाना है, रुपया बढाना है, इतने और बढ़ाना है, यह करना है, वह करना है, इस प्रकारके ख्याल बनाकर मनुष्य बीमारीमे पडे हुए है। अभी देख लो इनमे दुःखी हैं कि नही, आकुलताएँ है कि नही। और आपके ये आचार्य समझाते हैं कि नही। और आपके ये आचार्य समझाते है कि जिस दुनियामे, जिन-जिन पदार्थोंके बीच हम बसे रहते हैं वे पदार्थ तेरे स्वरूपसे तो बिल्कुल अलग है। उनका द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव उनमे है, उनकी परिणति उनमे है उनका प्रदेश उनमे ही है। तेरी सब बातें तेरेमे ही हैं। तेरा काम तेरेसे बाहर नही होता है, तेरी कोई परिणति तेरेसे बाहर नही होती है। तू परपदार्थोंमे कुछ नही करता और न परपदार्थ तुझे ही कुछ करते हैं, ऐसी भावना न रहेगी तो संयोगकी कल्पना होगी। बाह्यपदार्थोंके सयोगसे तो दुःख ही रहेगा। बाह्यपदार्थोंके सयोगसे अपना हित कुछ न तो वर्तमानमे ही कर सकते हैं और न भविष्यमे ही कर सकेंगे। त्यागसे ही पुण्यकी वृद्धि है। हम तो केवल ज्ञानस्वरूप हैं। यदि जरा भी विकल्प कर लिया तो लो दुःख हो गए। विकल्प तुम व्यर्थ ही करते हो। जो होगा सो होगा, उसको करते नही हो। सो ये सब पदार्थ मुझसे पृथक् है। उनमे जो दृष्टि करते हैं उन्हे दुःख ही होते हैं। यदि उन पदार्थोंको अपना न मानें तो क्लेश नही है। अगर मानें कि ये मेरे कुछ नही, इनसे मुझे कुछ नही मिलता, मैं तो मात्र विकल्प करता हूँ ऐसी बुद्धि आये और परपदार्थोंसे अपना उपयोग हटे तो मैं अपनेमे अपने स्वरूपको देखकर सुखी हो सकता हूँ। धन-वैभवसे सुख होता तो बडे बडे महापुरुष क्यो इस लोकवैभवको त्याग देते? क्या वे कम बुद्धि वाले थे? हम आपमे से बहुतोंकी समझमें चाहे यही आता होगा कि वे हमसे कम बुद्धि वाले थे। वे धन-वैभव त्यागकर जंगलमे तपस्या करते थे तो क्या उनका कम दिमाग था? घरसे, परिवारसे सबसे विरक्ति ले लिया तो क्या वे कम दिमागके थे, ऐसा नही है। हम और आप क्या, जिनकी सेवा इन्द्रादि देव करते थे, जिनके चरणोमे बड़े-बड़े मुकुटधारी राजा आते थे उन्होने बड़े धन-वैभव राज-पाट सबको छोड़कर अपने आपके स्वरूपमें आनन्द प्राप्त किया। तो आनन्दके पानेका केवल एक ही उपाय है। इस जगह समझो कि निजस्वरूपके देखनेसे ही सुख है।

मलास्थिरुधिरे देहे स्वबुद्धया क्लेशभाग्भवेत्।
तत्र रागे न को लाभः स्वां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥२४॥

देखो यह शरीर मांस, हड्डी, खून आदि अपवित्र वस्तुवोका समूह है। इस देहमें

आत्माकी बुद्धि करनेसे क्लेशोंका पात्र बनना पडता है। वैसे देखो तो इसी देशमे ही तो यह अधिक रिवाज है कि कोई बच्चा न छूने लायक हो गया हो याने उसने किसी चांडालको छू लिया हो या अन्य किसी गदी चीजमे पैर छू गया हो तो उसे और लोग न नहाने तक छूते नही। वह लडका अगर दूसरे लडकेको छू लेता है तो दूसरा भी अस्पृश्य हो गया। दूसरेने तीसरेको छू लिया, तीसरेने चौथेको छू लिया, चौथेने पांचवेंको छू लिया तो वे सब अस्पृश्य हो जाते हैं। पर यह तो निर्णय कर लो कि वास्तवमे कौनसा बच्चा अस्पृश्य है ? केवल एक ही लडका तो अस्पृश्य है, जिस लडके ने गदी चीजको छू लिया, वह अकेला ही तो है। बाकी सब तो निमित्त परम्परामे न छूने योग्य बन गये। इसी तरह इस शरीर को देखो कितना अपवित्र है, मूलमे क्या शरीर अपवित्र है। यह शरीर तो आहारवर्गणाओसे बना है। वे शरीरवर्गणा तो पवित्र हैं। जब तक जीव इस परमाणुस्कन्ध पर कब्जा बनाकर नही आता है तब तक यह आहारवर्गणा शुद्ध है, पवित्र है कि अपवित्र ? बतलाओ। जब तक इन परमाणुवोमे यह जीव नही आता तब तक पवित्र है और जब यह जीव आया और उनको शरीररूप बनाया, देहरूप बनाया तो यही वर्गणायें अपवित्र हो गयी। तो मूलमे अपवित्र कौन रहा ? यह जीव अपवित्र रहा कि शरीर ? यह ससारी जीव ही गदा रहा जिसके कारण यह शरीर गंदा हो गया। जब तक यह जीव नही आया तब तक यह शरीर अच्छा था, भला था। और भी आगे देखो—जीव क्या गंदा रहा ? जीवने रागद्वेष किया, मोह किया तो ऐसा मोही, रागी, द्वेषी जीव ही आया तब ही तो इस शरीरने सारी वर्गणायें ग्रहण की और इससे अपवित्र हो गया यह शरीर। तो जीव भी अपवित्र नही रहा। ये रागद्वेष मोह ही अपवित्र रहे। दुनियामे सबसे गदी चीज क्या हैं ? राग द्वेष। और इनका मूल क्या है ? मोह। सो मोह ही गदा है। अरे गलीमे दुर्गन्ध देने वाली चीजें क्या हैं ? कीडे-मकोडे, मांस इत्यादि खराब चीजें ही दुर्गन्ध देने वाली बन गयी। उनमे यह जीव आया, तब न त्रस बना यह पिण्ड, फिर जीवके जानेपर सडा व गंदा हुआ। तो गदा कौन हुआ ? गदा तो यह मोही जीव ही हुआ। और जीवके गदा होनेका कारण मोह रागद्वेष है। परम्परासे चलते-चलते यहाँ तक नौबत आई कि शरीर गदा हो गया। तो मूलमे 'सबसे गदी चीज है मोह। इस जगतमे सबसे गदी चीज मोहकी चीज ही मिलेगी। अगर मोह है तो सब गंदा और अगर मोह नही है तो कुछ भी गंदा नही है। भगवान् तीर्थंकरने सबसे मोह त्यागा। वे वीतराग हुए तो उनका शरीर परमौदारिक हुआ। उनके शरीरमे कोई अपवित्रता नही रहती। स्फटिकके समान पारदर्शी-पवित्र शरीर हो गया। पवित्र क्यो हो गए कि शरीरमे बसने वाला जीव निर्मोह हो गया, रागद्वेष मोह आदिसे वे रहित हो गये। शरीरको गदा रखने वाले तो

ये दोष ही थे। दोष मिट गये तो यह शरीर पवित्र हो गया। यह बीमारी जिनमें ये मोही प्राणी भर रहे हैं उनका मूल कारण यह मानसिक रोग है। बड़े आदमी, रईस लोग बड़ी बातें करने वाले जिन्हे शारीरिक रोग नही है। डाक्टर आ रहे हैं, चार आदमी हिले-मिले सेवा कर रहे हैं, पर यहाँ तो रोग हार्ट फेल होनेका है। अरे हार्ट तो फेल होनेका है, अगर भीतरमे कुछ भी दशा खराब नहीं है, भीतरमे केवल मानसिक दशा खराब हो गयी है तो इस काममे ५ लाखका टोटा पड गया, बडा नुकसान हो गया, हाय मेरी इज्जत धूलमे मिल गयी इत्यादि मानसिक खराबियोंसे वे परेशान हो जाते हैं। अरे वे रागकी ही तो परेशानियां हैं। कोई दो-चार लाखका धन अगर दे देवे तो वे फिर उसी समय ठीक हो जाते है। यह तो अज्ञानकी ही बात है। एक और बात देखो, इन्हें न तो कोई मारता है, न पीटता है, न घसीटता हैं, न भूखो मरते हैं, न किसी प्रकारके सकट हैं फिर भी उनके दिलमे उड़ान बनी रहती है, और दुःखी होते हैं। केवल ख्याल ही तो करके दुःखी होते हैं। उपयोगमे तो वही आधा सेर भोजन ही आयगा। तनके कपड़े उपयोगमे आयेंगे। पर अनेक ख्याल बनाकर वे दुःखी होते हैं। उन ख्यालोको मिटानेकी औषधि तो वस्तुस्वरूपका ज्ञान है। इस शरीरमे आत्मबुद्धि करके तो लाभ कुछ नहीं मिलेगा। इस शरीरमे राग करके तो बरबादी ही है। दूसरेके शरीरमे राग करनेसे, विषयभोग कामवासनायें इत्यादि जागृत होती हैं। मोह करना, यह मेरा है, यह उसका है, यह फलांका है इत्यादिसे तो दुःख ही मिलता है। आत्मासे किसी को राग नहीं है और शरीरसे भी कोई राग नहीं करता। अगर आत्मा निकल जाय तो फिर उस शरीरसे राग रखे कोई तो क्या राग रखता है। आत्माको तो ये कोई जानते ही नहीं हैं, राग क्या करें उससे फिर भी अगर वे राग करते हैं तो स्वयंको ही जलाते हैं। परमार्थसे तो आपकी आत्मामे राग नहीं है, पर ख्याल बनाकर राग बना डालते हैं। इन रागो के कारण ही आप दुःखी होते हैं। दुःख तो केवल ज्ञानस्वरूपके अनुभवसे ही दूर होगे। सो अपने ज्ञानस्वरूपका अनुभव करना चाहिए। ज्ञानस्वरूपका अनुभव करके ही शांति प्राप्त की जा सकती है, अपने शांतिस्वरूपके दर्शन भी ज्ञानस्वरूपके अनुभवसे ही होगे। यदि अपनेमें शांति बन जाय तो यह जीव सभी जगह प्रसन्न रह सकता है।

देहो न शुध्यते सिन्धोर्वारिभिः शुध्यते स्वयम्।
स्वात्मा स्वात्मधिया तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥२५॥

शरीर और आत्माकी बात कह रहा हू कि यह शरीर समुद्रके सारे जलसे भी शुद्ध किया जाय तो भी शुद्ध नहीं होता। कितना ही समुद्रभर पानी डाल दिया जाय, पर शुद्ध नहीं हो सकता है, क्योकि भीतर तो सारा मल भरा हुआ है, नाकमे नाक भरी हुई है पीप,

हड्डी, मांस आदिसे यह शरीर बना हुआ है। समुद्रके जलसे भी शुद्ध किया जाय तो शरीर शुद्ध नही किया जा सकता है। और आत्माके शुद्ध करनेके लिए किसी परवस्तुकी भी दरकार नहीं है। अपने आपकी आत्माकी बुद्धिसे ही शुद्ध हो जाता है। आत्माकी बुद्धि क्या है ? मेरा ज्ञायकस्वभाव है, ज्ञानमात्र स्वभाव है, ऐसी दृष्टि आ जाये तो यह जीव अन्तरात्मा बने, फिर इसी ज्ञानकी स्थिरतासे परमात्मा हो जाय। मैं केवल अपने स्वरूपमे हूँ, इसका अनुभव हो जाय, मेरेमे किसीका बोझ नही लदा, जितने भी परिवारके लोग हैं उनके कर्म अलग-अलग चलते हैं, उनके उदयके माफिक उनका काम चलता है, उनका मुझ पर कोई भार नही, घरके लडका लडकी हैं उनके कर्म अलग-अलग हैं और उन कर्मोंके उदयोके अनुसार उनका फल कुफल चलता है। उनका मुझपर कोई भार नही है। उनका अगर उदय ठीक है तो उनका फल ठीक है और अगर उदय ठीक नही है तो उनका फल भी ठीक नही है। यहां एक प्रश्न होता है कि हम भाग्यपर ही रहे तो निकम्मे हो जाते हैं। अरे दूसरोके भाग्यके अनुसार उनके काम होते हैं। हम उनमे विकल्प ही करते हैं और कुछ नही करते हैं। मोक्षकी बात, भाग्यकी बात और संसारकी बात, ये तीन बातें हैं। इनमे जो मोक्षकी बात है वह है पुरुषार्थ। संसारका जो काम है वह है सम्पदा मिले, विपत्ति मिले। सो इन बातोमे है भाग्यकी मुख्यता और पुरुषार्थकी गोणता। जैसे ये लकड़हारे, घसियारे आदि लोग कितना परिश्रम करते है, पर मुख्य चीज भाग्य है उनका सहयोग नही है। रात-दिन परिश्रम करते है तो भी उनकी सफलता नही रहती। अब बात यह चली कि बहुतसे लोग बी. ए, एम. ए कर लेते हैं, पर रिक्शा चलाते हैं। भैया ! ऐसा है कि जो बिल्कुल पढे-लिखे नहीं होते वे भी बहुत कमाते हैं। ससारमे मनुष्योकी भाग्यकी विषमता है, भाग्यकी बात है। ससारके कामोमे मोक्षके कामोमे पुरुषार्थ क्या होता है कि अपनी आत्मामे ज्ञान किया, अपनी आत्मामे ही शान्त हो गये। जिसने इच्छाएँ नही की, बल्कि अपने ज्ञानस्वरूपकी उपासना की तो यही है मोक्षका पुरुषार्थ। सो मोक्षके लिए पुरुषार्थकी मुख्यता है।

भाग्य कहते है जो पूर्वजन्ममे परिणाम हुआ हो। पूर्वजन्ममे परिणाम होनेके कारण जो कर्म हैं वे बध गए। उनके उदयकालमे संपत्ति विपत्ति आती है जिसको कहते हैं कर्म। कर्मोंके मोक्षका पुरुषार्थ तो यह है कि इस आत्माके स्वरूपमे ही हम झुकें। यही है पुरुषार्थ। भाग्य अच्छा आये बिना सम्पदा नही मिलती है। इस भाग्यके ही कारण वैसा ही पुरुषार्थ बना, वैसे ही कर्म बने, वैसी ही चीजें परिणाम गयी। वर्तमानमे हम जैसे परिणाम कर रहे हैं, उनका फल आगे मिलेगा। तो अच्छे परिणामोके बिना कर्म नही मिटेंगे। एक जीव कसाई

है, वह हत्या करता है पर देखा जा रहा है कि वह लखपति है, उसके पास सम्पदा है, पूंजी है, पर वे पूर्वजन्मके ही तो लाभ ले रहे है। अब इनसे जो खोटे कर्म बन रहे हैं उनको आगे ले चलेंगे। कोई अगर यह कहे कि मुझको दुःख हो रहे हैं तो परमार्थको देखो तो कुछ दुःख नही है। वर्तमानमे जैसा परिणाम कर लिया वैसा फल है। जितना जीवोमे धर्म है उतनी ही शान्ति है, उतना ही धर्म है। गृहस्थीमें तो भैया! थोडा धन होना चाहिए, गुजारा होना चाहिए, बस उसीमें ही संतुष्ट रहो और धर्मधारणके लिये जीवन समझो। इसमे ही तुम्हारी शान्ति है। देखो लखपति, करोडपति, अरबपति भी तो नजर आते है। अगर वे मर जाते है तो पता ही नही चल पाता है कि कैसे यकायक मर गए। कही ट्रेनमे चलते चलते मर गये, ट्रेन पर ही यकायक हार्टफेल हो गया। धनमे क्या शान्ति है? पूर्ण शान्ति तो धर्ममे ही होती है, धर्मसे जो शान्ति होती है वह तत्काल होती है। आत्माकी दृष्टि हो तो वही धर्म कहलाता है। आत्मा तो ज्ञानस्वरूप है वही उपयोगमे रहे वही धर्म कहलाता है। यदि धर्म करता हो अर्थात् ज्ञानस्वरूपको अपने उपयोगमे लिए हो तो यह जीव सुखी हो सकता है। जिस कालमे जो जिस जीवने अपने ज्ञानस्वभावको लिया है तो समझो उसने अपने प्रभुकी उपासना किया है। जो अपने ज्ञानको पकडे रहता है उसको दुःख नही हो सकते हैं। यदि अपने ज्ञानस्वरूपसे बाहर हुए तो दुःख ही दुःख आ जाते हैं।

बाहरी पदार्थोंमे लग गये, बाह्यमे ही भग गए, बाह्यमे ही मौज माना तो समझो ज्ञान करते हुए भी उसको शांति नही मिल सकती है। धर्ममे शान्ति है और अधर्ममे अशान्ति है। आत्माकी पवित्रता धर्मसे होती है। आत्मदृष्टिसे ही यह आत्मा शुद्ध होती है। परन्तु यह शरीर तो बड़ा बेशर्म है। हम इस शरीरमे कितनी आसक्ति रखते है। लोग आत्मासे आसक्ति रखनेमे शर्म करते हैं। अरे हमे तो इस शरीरसे घृणा होनी चाहिए। इस शरीरमे ऊपरसे अन्दर तक देखो सब घृणित चीजें ही नजर आती हैं। ऊपरसे तो यह शरीर भला लग रहा है पर बहुत ही गदा यह शरीर है। नाकमे देखो तो नाक भरी रहती है, पेटमे देखो कितना विकार भरा रहता है। मांस, खून, हड्डी इत्यादिसे बना हुआ यह शरीर कितना अपवित्र है?

इस शरीरको अगर समुद्रके पानीसे पवित्र करें तो भी पवित्र नही हो सकता है। यह तो हुई शरीरकी बात, मगर आत्माको अगर शुद्ध करना चाहते हो तो कहते हैं कि अगर कर सकते हो तो दूसरे पदार्थोंकी ओर न झुको। इतने मात्रसे ही अपनी आत्माको शुद्ध कर लोगे। गिरी हुई बातो को तो सब तरहसे कर सकते हो, पर यदि आत्माको शुद्ध कर लिया तो समझो जीवन सफल है। जो ज्ञानानन्दघन अपने आपको देख ले तो वही

शुद्ध रहेगा, वही पवित्र रहेगा। भव भवके पाप आत्माकी दृष्टिसे तत्क्षण नष्ट हो जाते हैं। तो आत्मदृष्टिमे इतनी ताकत है। आत्म दृष्टिसे ही आनन्द प्राप्त होता है। यह आनन्द अन्यत्र नही प्राप्त होता है। इस विषयमे क्या आनद है कि रात दिन बाह्यमे ही पड़कर तृष्णा किया करते हैं। ऐसी कोशिश रक्खो कि आत्माकी महिमा सबसे पहिले रक्खो।

झूठ बोलकर, छल कपट आदि करके धन आ जावे ऐसा विचार न रक्खो। शुद्ध-भावनाको अन्तरङ्ग फकीरी कहते हैं। इस फकीरीमे आ जावो तो सारा काम बन जाय। न्यायसे प्रवृत्ति होना चाहिए, धर्मकी दृष्टि होना चाहिए, उस परिवारके पीछे आत्मापर आघात नही करना चाहिए। जो परिवारके लोग हैं उनका भी कर्मोदय है, उनकी भी हित अहित की व्यवस्था है। यह अपनी देह तक तो रहेगी नहीं, फिर दूसरोंसे अधिक तृष्णा क्यो रक्खो ? अपनी आत्माका हित देखना चाहिए। आत्माका हित इसीमे है कि न्यायसे रहे, पवित्रतासे रहनेके लिए अपना तन, मन, धन तक न्योछावर करनेके लिए तैयार होना चाहिए। यह भी निश्चय होना चाहिए कि हम झूठ न बोलें, दयाका व्यवहार रखें, गलत व्यवहारसे पैसा न आवे। गलत व्यवहारसे पैसा आनेसे अन्यायसे धन आनेसे तो इन्कम खत्म हो जावेगी। अगर साख अच्छी है, व्यवहार अच्छा है, न्यायका व्यवहार करते हैं तो इन्कम बढ जाती है।

कहते हैं कि रूस चीन आदिके लोग सुखी हैं। अरे वहांके भी लोग सुखी नही है। वहां भी कोई हुक्म करते हैं कोई हुक्म मानते हैं, हुक्म मानने वाले दुःखी हैं। हुक्म मानकर व हुक्म करने वाले दुःखी हैं, हुक्म करके वहांपर भी बहुत दुःख हैं। चाहे साम्यवाद कह लो, चाहे भाग्यवाद कह लो। जो पदार्थ जैसा है वैसा न माननेसे ही अपनेमे विकल्प बन गये। धर्म नही बदला जा सकता है, मगर सुखकी बाह्यव्यवस्थायें बदली जा सकती हैं। बड़े आदमी दुःखी होते हैं, उनके पास यद्यपि दुःख नही है, पर ख्याल बनाकर वे दुःखी होते रहते हैं।

इस ख्यालको मिटानेका उपाय तो केवलज्ञान है। इस ज्ञानमे ही समानेसे मोक्षमार्ग प्राप्त होता है। ख्याल बना लेनेसे तो जो इन्द्रसम हैं वे भी दुःखी हो जाते हैं। संसारमे रहने से तो दुःख नही मिट सकते है। दुःख तो केवल अपने ज्ञानस्वरूपकी दृष्टिसे ही मिट सकते हैं।

दुःखाश्रयो हि देहोऽयं देहतो व्यसनानि वै।
विरज्य देहतस्तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥२६॥

लोग देहकी व्यवस्थामे जुटे हैं। साम्यवाद करना चाहते हैं तो इस देहकी व्यवस्था

के लिए ही करना चाहते हैं। अन्य जितने भी काम है वे सब भी इस देहकी व्यवस्थाके लिए ही किए जाते हैं। जितने भी दु.ख हैं उन ,दु'खोका कारण भी यह शरीर है। मेरा अपमान हो गया, मुझे भोजन नही मिला, मुझे यह करना है आदि आदिसे ही अपने शरीर का ख्याल बनाकर दुःखी हो जाते हैं। अगर किसीने गालियाँ दे दी तो दुःखी हो जाते हैं। जो अपमानके दु'ख हैं उनका भी कारण यह शरीर है, जो मानसिक दुःख हुए उनका भी कारण यह शरीर है। यह शरीर ही सारे दु खोका आश्रय है। इस शरीरसे ही सारी विपदायें हैं। एक दूसरेका कोई दुश्मन नही होता। इस शरीरको देखकर ही दुश्मन बन गए। इस आत्मामे दुःख नहीं है। तुमको तो केवल शरीर ही नजर आता है। यह अमुक व्यक्ति है, इसका यह नाम है इत्यादि। सो इन झंझटोका कारण शरीर है। ये जो व्यसन आते हैं वे भी इस शरीरके ही कारण आते है। इसलिए इस देहसे विरक्त होना ही ठीक है। देहसे विरक्त होनेका मतलब यह समझो कि मैं यह 'देह नही हू, देह तो पौद्गलिक है। यह देह तो जड है, मैं मैं हू, चेतनस्वरूप हू, मैं सबसे जुदा हू ऐसा यथार्थ अपनेको जान लो। इस देहके ससर्गसे तो दु'ख ही है, इस देहसे संसर्ग रखनेसे तो पूरा नही पडेगा।

यथार्थज्ञाता बनना ही इस देहसे विरक्त होना है। अपना ज्ञान सही रखो, रागद्वेषो, मोह आदिको त्यागकर अपने ज्ञानानन्दघन स्वरूपको देखो। अपने आपको यह समझो कि मैं यह देह नही हूँ, यही समझना सम्यग्ज्ञान है, यही देहसे विरक्ति है, विरक्ति और ज्ञान अन्य कुछ नही है। ज्ञानको ही विरक्ति कहते है और विरक्तिको ही ज्ञान कहते है। ज्ञान और वैराग्यकी लीला परमार्थसे एक ही स्वरूप बन गयी है। ज्ञानके होनेका नाम ही रागोका मिटाना है और ज्ञान होनेका नाम ही वैराग्य है। वह जो कुटुम्ब परिवार इत्यादिके लोग हैं उनसे मेरा कोई सम्बन्ध ही नही है। मैं तो उन सबसे जुदा हू, केवल ज्ञानमात्र हू, ऐसे ज्ञान का होना ही वैराग्य है। धन सम्पदा इत्यादि तो दुर्गतिके कारण होते हैं। इस कारण अन्य सबसे विरक्त होकर अपनेमे बसा अपना स्वभाव, इस कारण धर्म मानना ही वैराग्य है। यह मैं हू, यह मेरा है, यह उसका है ऐसा माननेसे ही व्याकुलताएँ हो रही हैं। मैं मैं हूँ, वह वह है, ऐसा मानना ही वैराग्य है। परको पर समझो। जिसमे वैराग्यका अश नही है वह ज्ञान नही है। सम्यग्ज्ञानके साथ चारित्र न हो ऐसा नही होता, स्वरूपाचरण तो होता ही है और चारित्र हो तो शान्ति नही हो सकती है। सम्यग्ज्ञान होते ही बाहरकी कोई भी चीज हो उसमे प्रतीत्या राग हट जाता है। परसे राग हो गया तो फिर वह स्थिर न रह सकेगा। यह स्वरूपाचरण वाला ज्ञान यदि नही है तो बरबादी ही है। इस स्वरूपाचरणके मायने हैं अपने स्वरूपकी ओर झुको। जितना ही ज्ञान होगा उतना ही अपने ज्ञानस्वरूपकी ओर

झुकाव होगा। मोह न रहे, रागमें राग न रहे, अज्ञानका राग न रहे, प्रीतिका राग न रहे। भैया ! ये सब जितने व्यसन हैं वे सब इस देहके ही कारण हैं। सो इस देहसे विरक्त होकर अपने ज्ञायकस्वरूपको देखकर अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होओ।

इस ससारके जितने भी जीव हैं वे चाहे मनुष्य हो, चाहे पशु हो, चाहे पक्षी हो, चाहे जो कोई होवें सब अपनी-अपनी जगह पर दु खी हो रहे हैं। किसीको दुःखी करने वाला कोई दूसरा जीव नही है। अपना ही ख्याल करके, विचार बनाकर विकल्प करके खुद दु खी हो रहे हैं। क्यो दुःखी हो रहे हैं कि इस जीवको अपने आपके स्वरूपका पता नहीं है कि मैं क्या हू ? कौन हूं ? पर ऐसा ही तो मानते हैं ना सब कि मैं इस घर वाला हूँ, मैं इतने खेतो वाला हू, मैं इतने पुत्रो वाला हू, मैं अमुक हूं, मेरा ऐसा मामला है, मैं बडा हू, मैं छोटा हू ऐसा ही तो सब लोग मान रहे हैं। पर ये सब ऐसा है क्या ? अरे आत्मा क्या कोई जाति मे है ? क्या आत्माका कोई कुल है ? इसका तो किसीसे सम्बन्ध नही है। अगर अपने ब्रह्म-स्वरूपका पता नही है, इन पर्यायोंको ही मान रहे हैं कि यही मैं हू तथा भगवानकी भक्ति करें, पूजा करें, आरती करें, पर यह पता न रहे कि मेरा भगवान कैसा है, क्या है, बल्कि उल्टा यही रटन लगा रखें कि भगवान है, वही हमे दुःखी सुखी करता, लडके बच्चे देता, धन-दौलत देता यही रटन लगा रखी है। पर भगवान असली है क्या इसका विचार न हुआ तो कुछ जीवनका सार नही है। भगवानका ब्रह्मस्वरूप है, सोई ब्रह्मज्ञान है जो आत्माका स्वरूप है, सोई भगवानका स्वरूप है।

जैसे रामचन्द्र जी हुए, श्री महावीर जी हुए, ये भगवान क्यो कहलाये आखिर वे भी तो इसी देशमे ही हुए थे। वे भगवान यो हुए कि उन्होने अपना ब्रह्मस्वरूप पहिचाना, जो सब जीवोमे एकस्वरूप है। स्वयंकी ही ओर दृष्टि की, इस कारणसे वे भगवान हुए। और ये जगत्के जीव जो मोही हैं, जिन्हे घरके दो-चार मोही जीव मिलते हैं उन्ही को वे मान लेते हैं कि वे मेरे है बस इस कल्पनासे ही वे अटक गए। अटक क्या गए कि वे भगवानके दर्शन न कर सके। भगवानके दर्शन वे ही कर सकते हैं जो परिवारके मोहमे न अटके हो। जो मोहमे अटक गया वह भगवानके दर्शन नहीं कर सकता है। इसी मोहको ही कहते हैं अहं-कार। यह मैं हूँ, यह मेरा है इत्यादि। अरे क्या अहकार करते हो, ये सब तू न रहेगा, तूने ये सब नही किया। तू तो एक ज्ञातादृष्टा चेतनमात्र ब्रह्मस्वरूप है। ऐसा यदि अपनेको बोध नहीं करता है तो कितनी ही बडी अविवेकताएँ हो जायें। जिस चाहे चबूतरेमे हो, जिस चाहे जगहमे हो, जिस किसी पत्थर पर सिन्दूर लगा दो तो कितने ही देवताओंके नाम इस पत्थरके कर डालते हैं। यह भोले बाबा है, यह फलाने बाबा है, यह फलानी देवी है। अवि-

वेकी लोग उनके आगे जीवहत्या तक कर डालते हैं। कितने लोग हैं ऐसे यह तो हमे पता नही है, पर वे किसी भी पशुको, किसी भी जीवको चाहे बकरा, बकरी, मुर्गा, मुर्गी आदि हो तो वे जीवोको बलि चढाते हैं। अरे वे जीव भी तुम्हारे ही जीवके समान हैं। उनके स्वरूप मे और तुम्हारे स्वरूपमे कोई अन्तर नही है।

जिन्हे अपने स्वरूपका पता नही है वे सोचते ही रहते हैं। जो हम हैं वही सच बाकी तो सब जीव यो ही हैं। अरे किसी जीवको जान ले लेनेमे बडा पाप है और उस पाप के फलमे दुःख होता है। सो यह ध्यान नही है खुशी, खुशी पाप बढाते चले जा रहे हैं। सो जो दूसरे जीवो पर दया नही कर सकता, उन्हे अपने समान नही समझ सकता तो भला बतलावो कि उसे भगवानके दशन कैसे मिल सकते हैं? भगवानके दर्शन उसको ही हो सकते हैं जो सब जीवोको समान समझता है, एक समान समझनेके मायने यह हैं कि स्वभाव सबका यही है, ज्ञानस्वरूप वही है, आनन्द वही है, चैतन्यस्वरूप वही है, सब एक ही स्वरूपके जीव हैं। यदि यह ज्ञान हो तो इन जीवोकी हिंसा न करो। जैसे कोई अपने ही हाथसे अपने ही पैरो पर कुल्हाडी मार ले तो उसे आप क्या कहोगे? इसी तरह अज्ञानी जीव देवी देवता मानकर अथवा यह समझकर कि इन देवी देवताओपर कुछ चढा दें या मार दें तो मेरे घरके अच्छे हो जायेंगे अथवा कामना पूर्ण हो जायगी।

भैया! अब तो जमाना बडी प्रगतिसे चल रहा है। ऐसे जमानेमे यहाँ वहाँ आस-पास देखनेमे आता है कि हिन्दुस्तानके देहातोमे धर्मके मामलेमे कुछ प्रगति नही कर पाते और जो परम्परा चली आयी उसीके अनुसार लकीर पीटते चले जाते हैं। हमने अभी एक जगह देखा कि एक नीमखेराका नरवा था। लोग बैठे थे। हमने तो न देखा कि जीव चढाया जा रहा है या क्या? वैसे वे लोग चढा नहीं रहे थे, पर ऐसे ही कही-कही पर चढ़ाया जाता है। कही चढाया भी जाता हो तो भैया इससे तो बहुत पाप हैं। कोई देवी देवता यह नही चाहता कि मेरे आगे किसी जीवका वध करना चाहिए। वे देवता नही चाहते कि कोई जीव चढे। सत्यदेव तो भगवानके स्वरूप हैं, ज्ञानमय हैं, आनन्दमय हैं वही तो ब्रह्मका स्वरूप है। वे तो सदा आनन्दमे लीन हैं। रहे सांसारिक देवी देवता सो वे भी वैक्रियक शरीर वाले हैं उनके कण्ठसे अमृत झरता है और उसमे वे तृप्त हो जाते हैं, खाते कुछ नही। प्रभुकी भक्ति तरनेमे कुछ नटखट करना अच्छा नही। भगवानके स्वरूपकी जो भक्ति करते हैं उन्हे भगवान दर्शन देता है, धनी हो तो क्या, निर्धन हो तो क्या, कुछ उनको चढाया तो क्या, न चढ़ाया तो क्या, इससे कुछ असर नही होता है। भक्ति तो ज्ञानकी बात है।

जो भगवानकी भक्ति करे वह निहाल हो जाय। मेरा तो बाहरकी बातोसे कोई

सम्बन्ध नही। धर्मकी प्रगति करना, अपना ज्ञान ऊँचा बनाना, दयाका बनाना इत्यादि बातें अगर किसीमे आ जायें तो उसका मानव-जीवन सफल है। देखो यह श्री रामचन्द्रका मन्दिर है, उनके हम आप सब उपासक हैं। भगवान रामचन्द्र जी क्या कही उपदेश देते है कि किसी जीवको चढाया जाय ? उनका तो उपदेश यह है कि कीडे मकोडे आदि सभी जीवो पर दया करो। भगवान तो प्रसन्न होते हैं उनके स्वरूपके स्मरणसे। इन जीवोकी बलिसे तो भगवान नाराज होगे ?

कोई बहका देने वालोने किसी जमानेमे जो मांस खानेकी इच्छा करते थे उन्होने किसी न किसी बहानेसे जीवोको मार दें तो मास खानेको मिलेगा इस भावसे भोलोको बहका दिया है। तो उन्होने तो इस दुनियाको गुमराह कर दिया। ऐसे पाप करके तो कही प्रगति नहीं है। उन्हे तो मांस खानेकी व्यवस्था बनानी थी, सो पशु-पक्षियोकी बलि करनेकी व्यवस्था बना दो। परन्तु भैया ! आप लोग तो विवेकी बनो, जीव-बलिका त्याग कर दो। अभी देखो सेठिया लोग, बडे-बडे व्यापारी लोग, लखपति, करोडपति लोग पडे हुए हैं, जो मास आदिका प्रयोग नही करते हैं, पशु बलिसे दूर रहते हैं। तो क्या बलि करनेसे उनका धन बढ़ गया ? नही, ऐसा नही है। ऐसा कहा जा सकता है कि उनके परिवारके लोग अच्छे खासे हो जाते हैं। दयासे, सदाचारसे सुमतिकी वृद्धिसे। एक तो जीवो का मारना पाप है और भगवानका नाम लेकर मारना महापाप है। सो यह जीवन बडी ही कठिनतासे मिला है, इसमे धर्मका पालन करना धर्म है। जीवदयाकी सबसे पहली सीढी यह है कि सब जीवोको अपने जीवके समान समझो और किसी भी जीवकी हत्या न हो। जो बहुत छोटे लोग होते हैं वे विवादके अवसर पर या कोई मेहमान आ जाय तो ऐसे समयमें वे मास खिलाते हैं। यह तो अज्ञानकी ही बात है। यह तो दुर्गतिकी ओर ले जानेकी बात है। तुलसीदासने बताया है कि जीवदया ही धर्म है। जब तक जीवदया नही आयगी तब तक खोटे परिणाम ही मिलेंगे। जिन्दगी भर परेशानियाँ ही मिलेंगी। ऐसा व्यवहार बनाओ कि परस्परमे जीवोको अपने ही समान समझो। अपने समान ही सब जीवोको समझनेसे भगवान के दर्शन हो सकते हैं। तो भैया ! सबसे पहिला काम यह है कि अगर अपनी प्रगतिका काम करना है, भगवान रामका सच्चा भक्त होना है तो झूठे बहकावेमे आकर कि पशुबलिसे देवी देवता प्रसन्न रहते हैं इसे न मानना चाहिए और पशुबलिका बिल्कुल त्याग होना चाहिए। पशुबलिसे लाभ कुछ नही होता है। उन्हे ही देख लो जो पशुबलि करते हैं, जिनके लिए पशुबलि करते हैं, वे सब गुजर गए। कितने ही ऐसे हैं जिनके लिए पशुबलि नही की गयी और वे अच्छे हो गए। तो भैया ! भ्रम छोड देना चाहिये और पशुबलिका तो त्याग होना चाहिए। हमे नही मालूम कि यहाँ पर पशुबलि चढ़ाई जाती है या नही। (किसीने कहा कि

चढ़ाई जाती है, तो महाराजने कहा) भैया ! अपना ज्ञान जगाओ। उन देवी देवताओंसे बड़ा भगवानको मानो। वे देवी देवता भी तो भगवानके ही सेवक है। श्रीराम भगवानका कितना उत्कृष्ट जीवन था। मर्यादा पुरुषोत्तम थे, प्रजाके रक्षक थे। अतमे उन्होने सन्यास मार्गको बतलाया और खुद त्याग तपस्या करके ब्रह्ममें लीन हुए। प्रभुका ही तो आदेश है कि जीवो पर दया करो। बात तुम्हें चाहे कठिन मालूम पड रही हो, पर किसी समय यह तो ख्याल आता ही होगा कि अकेले ही पैदा हुए और अकेले ही मर जावेंगे। तो इन जीवोका हित सोचो, इन जीवोपर दया ही करो। अगर दूसरे जीवोको सताया तो तुम भी सताये जावोगे। सो भैया ! अपना अन्तरमे ज्ञान जगाओ। आत्मज्ञान करके ही तुम्हारा सुधार होगा। हम तो केवल कह रहे हैं, मानो चाहे न मानो। अभी सवेरा होते ही चले जायेंगे।

अभी रास्तेमे एक गांव मिला था ; वहाँ पर सब चमार लोग ही थे। वहाँ पर सब लोगोने मांस, मदिरा, जीवहत्या इत्यादि सबका त्याग किया। तो भैया ! आप लोग भी त्याग दें, इससे कोई फायदा नही है। इस बीच बलि करने और मांस खानेका त्याग इन लोगोने किया—

बैजनाथ काछी, रद्दू काछी, मसल्ती काछी, अमान काछो, गोबरे नाई, पंचम काछी, हरप्रसाद लोहार, कल्लू काछो।

हाँ तो मैं कह रहा था कि इस संसारमे जीव जो दुःख पा रहे हैं वे अपने आपमें ज्ञान न होनेसे ही दुःख पा रहे हैं। मैं कौन हू और क्या हूँ—इस बातको समझो और जो ऊपरसे समझ रखा कि मैं अमुक हूँ, इतनी पूँजी वाला हूँ ये सब झूठी बातें हैं। हम तो भगवानके स्वरूप हैं। हममे और भगवानमे फर्क नही है। झूठ बोलकर, उल्टा बोलकर, खोटे विचार करके हम सब इतना भगवानसे जुदा हो गये कि भगवान तो तिर गये और हम सब जगत्के प्राणी जन्ममरणके चक्करमे पड गए हैं। अपनी आत्माको ऐसी समझो कि इसके लिये यही बडी महान् है, परमात्मासे कम नही है। इस मोहमे क्या रखा है ? भीतरमे ऐसा ज्ञान जगाओ कि यह मोह मेरा भला नही कर सकता है। तो स्वयमे एक क्रान्ति लावो और ऐसा निश्चय कर डालो कि मेरा मोह पाप ही करेगा, भला नही करेगा, ऐसा मनमे पक्का निश्चय कर लो और फिर अपने धर्म पर अटल रहो। कुछ ऐसे भी लोग है जिनके परिवार के लोग भी गुजर गये, और-और भी परेशानियां आ रही, मगर अपने धर्मसे नही हटते। तो बतलावो इसी दुनियामे कौरव पांडव हुए, इसी दुनियामे राम राघव इत्यादि प्रभु हुए, रावण आदि भी यही हुए, इसी दुनियामे कृष्ण गोपाल आदि हुए। उनमे से कोई स्वर्ग गया, कोई नरक गया। उनमे से भी तो कोई यहां नही रहा। इस दुनियामे जितनी भी चीजें हैं सभी

नष्ट हो जावेंगी । इस दुनियामे जो आता है वह जाता अवश्य है । फिर भी बाह्य चीजोको कहते हैं कि यह मेरी है, यह उसकी है । जो इस प्रकारसे सोचते हैं उन्हे पछताना ही पडेगा । जिनके कारण पाप किए जाते है वे कोई साथी नहीं होंगे, सब बिछुड़ जायेंगे । नरकका रास्ता उसे ही देखना पडता है जो पाप करता है । सो भैया ! किसी जीवके प्रति यह भावना न करो कि यह दु:खी हो । सबको समान मानो, किसीको अपना दुश्मन न समझो । कोई बैरी नहीं है, कोई पराया नही है, किसीको बुरी बात न कहो । मनुष्यका धन तो यह वचन ही है । वचनसे ही पहिचाना जाता है कि यह मनुष्य भला है कि बुरा है । वचनोसे ही झगडा खडा हो जाता है और वचनोसे ही मेल हो जाता हैं । सारा दारोमदार इन वचनोपर ही तो है । अपनी वाणी अत्यन्त मीठी होनी चाहिए, दूसरोके हितकी होनी चाहिए जिससे कोई जीव अप्रसन्न न हो सके । सो जब अपना स्वरूप समझमे आ जाता है तो ये सब बातें आसान हो जाती हैं । धर्म करना, भक्ति करना, भगवानका ख्याल रखना, दूसरोकी सेवा करना इत्यादि सभी बातें आसान हो जाती हैं । तो जब इस ससारमे कोई नही रह जायगा तो अपना यह शरीर दूसरोकी सेवामे लगा दो तो क्या घटता है ? जितना भी बन पड़े दूसरो की सेवा करो । दूसरोकी सेवा करनेसे कुछ घटता नही है, बल्कि बढता ही है । बढता क्या है कि दूसरे लोग भी इज्जत करने लगते हैं । आलसी न बनो । अगर कोई गिर रहा हो तो उसे ऊँचा उठाओ । कोई अगर दु.खी है तो उसे दु.खी रहने दो, ऐसा न सोचो बल्कि उसे दु:खसे बचा लो, उसकी सेवा करो । ये सारी चीजें तो मिट जाने वाली हैं । इस शरीरको तो जितना ही परसेवामे लगाओगे उतने ही सबके प्यारे बनोगे । अबकी दुनियामे तो सेवाका ही मूल्य रह गया है । धनोको कोई नहीं पूछता । सेवा करने वाले ही कोई मिनिस्टर बन गये, कोई नेता बन गये, पर धनीको कोई यहाँ पद नही मिलता है । पद तो सेवा करनेसे ही मिलता है । धन जोड लेनेसे ही कोई बडा नही बन जाता, अगर दूसरोकी सेवामे लग गये तो बडे बन गये । बहुतसे लोग गरीब थे, फिर भी बहुत बडे-बडे ओहदो पर पहुंच गए । यह सेवा करनेका ही तो परिणाम है । यह जो शरीर मिला है, विनाशीक है, इसको तो सेवामे लगाओ । इसी तरह जो भी धन मिला है वह विनाशीक है, उसे भी दूसरोकी सेवामें लगाओ । दूसरोंकी सेवामे धन लगानेसे धन घट नही जाता है । यदि धनकी रक्षा करके यह सोचो कि यह सदा मेरे पास रखा रहे तो यह नही हो सकता है । वह धन तो जैसे आता है वैसे ही चला जाता है ।

एक सेठ थे । सो ऐसे पापोका उदय आया कि उसका सब धन खत्म हो गया । धन खत्म हो जानेपर उसने अर्जीनवीसीका काम कर लिया । अर्जी वगैरा लिख दिया करता और

८-६ आने अपनी गुजरके लिए कमा लेता। एक दिन वही सेठ अटारी परसे उतर रहा था कि वहाँ ऐसी आवाज आयी कि मैं आऊँ, मैं आऊँ। कई दिनों तक फिर ऐसी आवाज आयी कि क्या मैं आऊँ ? तो उस सेठने जाकर सेठानीसे यही बात बता दी। सेठानीने समझ लिया लक्ष्मी कह रही है कि क्या मै आऊँ ? सेठानीने कहा कि इस बार अगर कहे तो कह देना कि मत आवो। ऐसा ही सेठने कह दिया। अब सेठ सेठानीसे बोला कि बहुत साल हो गये गरीबोमे रहते-रहते सो अब कह दें क्या कि अच्छा आवो। सेठानीने कहा कि कल कह देना कि अच्छा आवो, मगर आकर जाना न हो तो ? दूसरे दिन फिर उसी प्रकारकी आवाज आयी। बोला—अच्छा, यदि आकर जाना न हो तो आवो। लक्ष्मीने कहा कि यह तो नही हो सकता, मै एक जगह तो रह नही सकती। मै कैसे कह दू कि आ करके जाऊँगी नहीं ? यही बात सेठानीसे कह दी। सेठानीने कहा कि कह दो कि अच्छा आवो, किन्तु जब जावो तब कहकर जाना। लक्ष्मीने कहा—मंजूर है। लक्ष्मी आ गयी। देखो इस प्रकारसे लक्ष्मी आती है।

वहाँका राजा गया था परदेश। रानीने राजाको बुलवानेको पत्र उससे लिखवाया। पत्र लिखवानेमे एक अशरफी दी। उस अर्जीनवीसने ऐसा पत्र लिखा कि कोई नहीं लिख सकता। तभीसे लक्ष्मी आने लगी। राजा जब परदेशसे लौटकर आया तो राजाने उस लेखक को वजीर बना दिया। मन्त्रीके पास बहुत सा धन आ गया। मन्त्री १०-२० हंडोमे सोना चांदी भरता गया और हंडोका मुँह तांबा व जस्तेसे जडकर घरमे गड़वा दिये। कुछ दिन बादमे राजा शिकार खेलने गया, वजीरको भी साथमे ले गया। दोनो एक पेड़के नीचे बैठ गये। वजीरने राजाको अपनी जांघपर सिर रखकर लिटा लिया। राजा सो गया। अब देखो स्त्रीके रूपमे वह लक्ष्मी आती है, कहती है कि मै जाती हूँ। वजीरने कहा कि नही जा सकती हो, वजीरको गुस्सा आ गया, तलवार खीच ली। अब तो राजाकी नीद खुल गयी। वजीर ने सोचा कि अब मैं राजाको क्या जवाब दू कि इस कारणसे तलवार खींची। राजाने जब वजीरके हाथमे तलवार देखी तो समझ लिया कि मुझे ही मारना चाहता था। उसने वनमे तो कुछ नहीं कहा, चुपचाप दरबारमे पहुचा। अब तो राजाने आदेश दे दिया कि वजीरको सपरिवार देशसे निकाल दो। तो भैया ! देखो धन सब वहीं पडा रहा, धनका विश्वास नहीं है। भैया ! देह भी यहीं खाक कर दिया जायगा। सो भैया ! धनको व इस शरीरको दूसरों की सेवामे लगावो। इससे ही प्रसन्नता रहेगी। अपने हृदयमे प्रभुकी भक्ति रखो और इस जगतके जीवो पर दया करो तो क्लेश नहीं रहेंगे।

निन्द्ये देहेप्युषित्मात्मसिद्धिः शक्या वसन्नपि ।
विरज्य देहतस्तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥२७॥

यह शरीर निन्दनीय है, निन्दाके योग्य है, इस शरीरमे कुछ सार तो नही है। ऊपर से अन्दर तक कितनी खराब चीजें इस शरीरमे भरी हुई है। नाक, मल, मूत्र, खून, हड्डी इत्यादि सब खराब ही खराब चीजें इस शरीरके अन्दर भरी हुई हैं। फिर भी इस शरीरसे लोग कितना मोह करते हैं। अरे अपने आत्मामें दृष्टि करो तो कुछ कल्याण हो सकता है। अपनी दृष्टि बाहरमे रखनेसे अपने भीतरके ज्ञानस्वरूपका अनुभव नही किया जा सकता है। यदि बाहरकी समस्त चीजोको छोडकर अपने आपके शुद्ध ज्ञानस्वरूपका अनुभव किया तो अपने ज्ञानस्वरूपकी खबर रहेगी। अपने आपमे दृष्टि देकर ही आत्माको शुद्ध किया जा सकता है। जीवमे सबसे बडा सकट मोहका है। कोई लेना नही, देना नही, सब जुदे रहे फिर भी स्त्री पुत्र वगैरासे मोह लगाये हुए है। यही इस जीवका सबसे बडा मोह है। कोई घरका पुत्र गुजर गया तो कहते कि घरका दीपक बुझ गया। घरका शिखर चला गया। इस प्रकारसे वे मोह करते और दु.खी होते है। अरे ये जो आये हैं क्या सदा रहेंगे ? यहाँ कोई नही रहेगे, सब यहाँसे चले जायेंगे। केवल अपना जो ज्ञानस्वरूप है वही साथमे रह जायगा और पापका सस्कार भी पिछयायेगा। देखो कोरी लोग जो कपडा बुनते हैं, वे भी अन्तमे ४ अगुल छीरा बुननेसे छोड देते है, किन्तु यहाँ तो मनुष्य मरते समय तक भी मोह नही छोडता। भैया ! जगतके मोही प्राणी कुछ छोडना नही चाहते हैं, पर उन्हे मरते समय तक तो सब छोडकर जाना ही पड़ेगा। आखिर छोड़ने तो सब पडते ही हैं, पर हम अपने मनसे छोडें तो लाभ है। इसलिए कहते हैं कि विषयोमे मोहसे प्रवाह न हो। शरीरमे मोह करना, अज्ञान करना यह सब अन्धकार है। यदि इस देहमे ही आसक्ति रही, दूसरोकी सेवा न कर सके तो सब कुछ होते हुए भी यह मनुष्यभव पाना व्यर्थ है। भैया ! अब अशांत न रहो, अपने ज्ञानस्वरूपको देखो, स्वाध्याय कर लो, व्रत कर लो, तप कर लो, पर इस देहमे आसक्ति हुई तो कुछ भी पुण्य न होगा। परमे आसक्त होनेसे कुछ नही मिलेगा। इस मोह ममताको छोड दो यही सबसे बडा तप है। इस देहमे बसकर भी इससे प्रीति न करो। सब दु खोकी जड तो यह शरीर ही है। अरे अपने उस आत्मस्वरूपका अनुभव करो। वह आत्मा तो आकाशकी तरह अमूर्त निर्लेप है, इसमे दु.ख कहाँसे आ सकते हैं ? अरे अनुराग करो तो उस आत्मासे करो, शरीरसे क्यो मोह करते हो ? यह शरीर ही तो विपदाकी जड है। यह शरीर तो मिट जाने वाली चीज है। किसी दिन यह जला दिया जायगा, जला देने से वह खाक हो जायगा। आत्मा तो आकाशकी तरह निर्लेप है। आत्मा अमूर्त है, कोई पकडने वाली चीज नही है यह आत्मा। इस आत्मामे रूप, रस, गध, स्पर्श आदि भी नही हैं।

यह आत्मा प्रकाशवान है, ज्ञान स्वभाव है, इसके अतिरिक्त और कुछ इस आत्मामे नही नजर आता है। सब माया है इस जगतमे जो दिखता है। परमार्थसे तो यदि अन्तरदृष्टि देकर अपना स्वरूप ही ज्ञानमे आये तो अपने आत्माका सही अनुभव हो सकता है। जो कुछ भी इस जगतमे अनुभवमे आ रहा है वह सब माया जालसे हटकर मैं अपने आत्मस्वरूपको देखू और अपनेमे अपने लिए अपने आप सुखी होऊं।

मनोवाक्कायिकी चेष्टेच्छातो दुःख ततस्ततः।
हत्वेच्छां प्रज्ञया भित्वा स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥२८॥

जीवका जो घन है वह है मोक्ष। इस जीवने ६ भोग किए, क्या वे घन है ? नही। इस जीवका काम तो केवल ज्ञाता द्रष्टा मात्र रहना है। घीरजसे रहे, शान्ति सी रहे, जानन मात्र रहे, इसका यही काम है। बाकी तो सब अज्ञान है। यदि यह जीव ऐसा सोच ले तो समझो उसने बडा विवेकका काम किया। इतना ही काम बनें केवल यह समझते रहे, ज्ञाता द्रष्टा रहे, यही इस आत्माका असली काम है।

यह जीव इच्छाओसे ही पराधीन हो जाता है। इन नटखट इच्छाओने ही तो इस जीवको पराधीन बना दिया है। तीन चार आदमी बगीचेमे घूमने जा रहे थे। बगीचेमें देखा कि एक कबूतर जालमे फसा है। एक आदमी कहता कि यह आदमी बहुत खराब है कि इसने कबूतरको जालमे फांस लिया। दूसरा बोला कि इस आदमीने कबूतरको नही फांसा, जालने इसे फांस लिया है। तीसरा बोला जालने इसे नही फांसा है, इन गेहू, चावल के दानोने इसे फांस लिया है। चौथा बोला कि इन चावलो और गेहूके दानोने भी इसे नहीं फांस लिया है उस कबूतरने तृष्णाके कारण स्वय अपनेको फांस लिया है। तो भैया यह तो कथानक रहा, पर इस जगतमे कोई किसीको दुःख दे ही नही सकता है। सब शुद्ध है, परमात्मास्वरूप हैं पर अपने आपमे ख्याल बनाकर कल्पनाएँ करके दु.खी हो जाते हैं, फंस जाते हैं। भैया ! इन ख्यालोको मिटाओ तो सारे सकट दूर होगे। ये बच्चे लोग कहानीं कहा करते हैं कि स्यार स्यारनी थे, स्यारनी गर्भिणी थी। बच्चा जननेके लिये वे एक शेर की गुफामें रहते थे। कई बच्चे भी हो गये थे। स्यारने स्यारनीको सिखा दिया कि जब कोई शेरकी परेशानी हो तो बच्चोको रुला देना। जब कभी शेर आता तो स्यारनी बच्चोको रुला देती। स्यार पूछता कि बच्चे क्यो रोते हैं ? स्यारनी बोलती कि बच्चे शेरका मांस खाना चाहते हैं। इस तरहसे शेर भाग जाता। जगलके अनेक शेरोने सभा की, सबने सोचा कि ऊपर भीतपर जो बैठा हैं उसीकी सारी करतूत है, उसे मारना चाहिए। सभी शेर आ गये। उनमे एक लगडा शेर भी था। तय हुआ कि लगडा शेर तो ऊपर चढ़ नही पायेगा,

इसलिए नीचे रखो। एकके ऊपर एक सब चढ गये। स्यारनीने झट बच्चोको रुला दिया। स्यार पूछता है कि बच्चे क्यो रोते हैं ? सो स्यारनी बोली कि बच्चे लगडे शेरका माँस खाना चाहते हैं। लगडा शेर भागा, लगडा शेर खिसका सो सब गिर गये। ऐसे ही सकटोका मूल मोह मिटा कि सब संकट नष्ट हो जाते हैं।

इस तरह सब सकट टलेंगे और शान्ति मिलेगी तो भैया यह अपना ज्ञान जगाओ। तुम स्वय ज्ञानस्वरूप हो, बाहरमे इच्छाएँ न करो तो अपने आप सुखी हो सकते हो। लोकमे जितने भी जीव हैं उन सबकी माँग है कि आनन्द मिलता रहे, शान्ति मिलती रहे और जितने भी जीव जो प्रयत्न परिणमन करते हैं वह इसलिए कि आनन्द प्राप्त हो। यहाँ तक कि अगर कोई किसीसे लडे, झगडे भी तो उस लडने झगडने वालेका लक्ष्य यह है कि आनन्द उसे मिले। और यहाँ तक कि कोई तेज कषायोके वशीभूत होकर आत्महत्या भी करनेका यत्न करें तो वहाँ भी उसका लक्ष्य है कि आनन्द मिले और जो धर्म कार्य करते हैं, व्रत करते हैं और तपस्या करते हैं, वे भी इसलिए करते हैं कि उन्हें आनन्द प्राप्त हो। यह सब जीवोका लक्ष्य है कि उन्हे आनन्द मिले। परिणमन बहुत कर डाले, राज्य कर ले, आरम्भ कर लिया, परिग्रह कर लिया, स्नेह कर लिया, सब कुछ कर लिया फिर भी कहते हैं कि हमे शान्ति नही मिली। इसका कारण यह है कि शान्ति पानेका उपाय है आकुलताएँ न बनाना। परन्तु अशान्तिके उपायको करके यह मोही मान रहा कि हम शान्तिके उपायको कर रहे हैं। शान्तिका उपाय क्या है ? उपाय जो है सो है, पर यह तो जानना चाहिए कि शान्ति चाहने वाला यह भी भीतरमे है कौन ? जो शान्ति चाहता है वह है क्या चीज ? इसका उत्तर बडा कठिन है और बडा सरल है। जब हम बाहर देखा करें तो उत्तर बडा कठिन है और जब बाहरी चीजोको त्यागकर अन्तरकी ओर रहें, अपने आत्मस्वरूपमे विश्राम करके रहे तो उत्तर देना बडा सरल है। प्रयोजन यह है कि अपने ज्ञानस्वरूपका अनुभव न किया तो कुछ नही किया। यदि अपने ज्ञानस्वरूपका अनुभव हो जाय तो शान्ति प्राप्त हो जाय। यह मैं क्या हूं ? जिसके जाननेपर फिर अशान्ति न रहे। वह मैं क्या हूँ ? उसका उपयोग किसी इन्द्रिय द्वारा नही लगता। मनसे भी जब तक काम लूंगा तब तक भी अनुभव न कर पाऊंगा। जो इन्द्रिय मन द्वारा अगम्य है, चित् है, वह मैं हू। इस मुझमे न रूप है, न रस है, न गंध है न स्पर्श है, यह मेरी आत्मा तो ज्ञानस्वरूप ही नजर आती है। मेरेमे ज्ञान और आनन्द भरा है। ज्ञान और आनन्दसे परिपूर्ण यह मैं आत्मा हूँ।

ऐसा उपयोग हो तो अहंकार मिट जाता है। भिन्न-भिन्न चीजें मैं नही हूँ। यदि हम अहंकार करते हैं और अहकारमे ही प्रवृत्ति रखते हैं तो शान्ति नही मिलती है। शान्ति

के लिए तो परपदार्थोंमे अहंकार न करो। शान्ति प्राप्त करनेके लिए तो शुद्ध ज्ञान करना होगा। जैसी जो चीज है उसे वैसा मान लेनेसे ही आकुलताएँ समाप्त हो जाती हैं। ये समस्त जगतकी चीजें विनाशीक हैं, सब नष्ट हो जाने वाली है। अपने घरमे ऐसी जो चीजें मिली हैं सब नष्ट हो जाने वाली है। जिसका समागम है उसका वियोग भी जरूर होगा। जिसका संयोग है उसका वियोग जरूर होगा। आप जरूर जानते रहे कि जहाँ संयोग है नियमसे वियोग जरूर होगा। सयोगमे भी अशान्ति है और वियोगमे भी अशान्ति है। जो मनुष्य २४ घंटे मोहमे रागमे पड़ा रहता है उसको आजीवन अशान्ति ही रहती है। दो महीने पहले से अगर किसी व्यक्तिको हम जानते हैं कि यह बीमारी असाध्य है इसकी तो मृत्यु ही होगी और जब वह मर जाता है तो उसके मर जानेपर ज्यादा दु.ख नही उत्पन्न होता है। आप तो पहिलेसे ही जानते थे कि वह गुजर जायगा, इसलिए ज्यादा दुःख नही होता है। इसी प्रकार इस असार जगतमे हम यथार्थताको जान जायें कि ये समस्त चीजें भिन्न हैं, जुदा चीजें हैं, भीतरमे ऐसा उपयोग बने तब शान्ति मिलती है, नही तो शान्ति नही मिलती है। जो जैसी चीज है उसे वैसा मानना यही धर्म है।

अभी देखो बहुतसे लोगोको जरा-जरासी बातोमे गुस्सा आ जाता है। बच्चेने कुछ कह दिया, बच्चेने मेरा कहना नही माना इसीसे गुस्सा आ गया। कुछ कहना चाहते हैं कहते हैं और वह वैसा नही कर सका तो गुस्सा आ गया। उसके ऐसी बात पैदा हो गयी बस वह दु.खी हो गया। क्यो दुःखी हो गया इसलिए कि उसने कहना नही माना। भैया! क्यो दु.ख मानते हो ये जीव सब स्वतन्त्र हैं, अपने विचारके अनुसार चलते हैं, अपने ही परिणमन से चलते हैं तुम वस्तुस्वरूपके विरुद्ध भाव क्यो बनाते हो? इनकी जुदी जुदी सत्ता है और ये समझ रहे है कि मैं इनसे मिल गया हूँ, जब मिल गया हू तो जो चाहूँ सो होना चाहिए। ऐसी बातको मान रखा है। यदि ऐसी बात नही होती तो वे दु खी हो जाते हैं। जो जैसा है उसे वैसा न माननेसे ही दु ख है। एक दृष्टान्त है कि किसी गावमे एक किसान किसानिन थे। किसानको कुछ अहंकार था और किसानिन शांत थी। किसानिन चतुर भी थी। १०-१२ वर्ष विवाहको भी हो गए थे फिर भी वह किसान किसानिनको पीट न सका था। बहुतसे लोग ऐसे होते हैं नीची जातियोमे, जो कि अपनी स्त्रियोको मारते हैं। स्त्रीको मारनेमे ही अपनी बहादुरी समझते है। तो वह किसान भी बहुत दिन हो गये थे, पीट न सका था, तो पीटनेके लिए उसने सोचा कि क्या उपाय करूँ? जेठ आषढका महीना था, खेत जोतना था। स्त्री भी उन दिनो रोज दोपहरको खेत पर खाना लाती थी। जब स्त्री दोपहरको खाना लायगी तो दोनो बैलोको उल्टा जोतूगा, ऐसा विचार किया। एक बैलका

मुह पूरबमे और दूसरेका पश्चिममे कर दिया और जुवा हल रख दिया, सोचा कि ऐसा देखकर स्त्री कुछ तो कहेगी। स्त्रीको तब पीट लूगा। पर स्त्रीने ऐसा मौका नही आने दिया। उसने समझ लिया कि आज पीटनेके डोल-डालमे है। वह बेवकूफ न थी, बोली चाहे सीधा जोतो चाहे टेढा, इससे मुझे क्या मतलब, मेरा तो काम केवल खाना देनेका है। यह कहकर खाना देकर चली गयी।

किसान देखता ही रह गया। वह अब भी न पीट सका। तो भैया ! यहाँ कोई किसीको दुःखी नही करता। ये जीव खुद ही ख्याल बनाकर दु.खी होते हैं। अगर वे अपना ख्याल बनाना छोड दें, और अपना सच्चा ज्ञान कर लें तो सुखी हो जायेंगे। शान्तिका कारण क्या है ? जो चीज जैसी है उसे वैसा ही मानना शान्तिका कारण है। घरके ये जो जीव हैं वे आपके नही हैं। कोई बतला दे ये स्त्री पुत्र आदि मेरे हैं। कोई युक्ति बतला दें कि ये मेरे ही है। अरे वे सब जुदा-जुदा हैं, भाग्य जुदा जुदा है। उनसे तुम्हारा कोई सम्बन्ध नही है। वे अकेले ही आये हैं और अकेले ही चले जावेंगे। सच तो यह है कि इस आत्माका दूसरा कोई नही है। इस आत्माका तो आनन्द ही स्वरूप है। यथार्थ बात तो यह है कि भीतरमे ऐसा ख्याल बने कि मै आत्मा आनन्दस्वरूप हू, मेरा स्वरूप ही आनन्दमय है, मेरा स्वरूप ही सारा वैभव है, ऐसा विचार बने तो यही शान्तिका मार्ग है। यदि ऐसा विचार नहीं बनता है तो यही अशान्तिका कारण है। मोह करते हैं और चाहे कि शान्ति हो जाय तो शान्ति नही हो सकती है। मोह गृहस्थीका छूट नहीं सकता क्या ? मोह छूटता है और राग रहता है। मोह और रागमे अन्तर है। मोह तो अज्ञानसे सम्बन्ध रखता हैं और राग प्रीतिपरिणाम के मायने है। ज्ञान होते ही मोह मिट जाता है। ज्ञानको लक्ष्यमे लेकर यह मैं हू, यह मेरा स्वरूप है, ऐसा यदि भाव लिए रहे तो इसे ही यथार्थज्ञान कहते हैं। राग करना तो राग है और रागमे राग करना मोह है।

जैसे एक रईस पुरुष बीमार पड गया तो उसे कैसा-कैसा आराम देते हैं। सजा हुआ कमरा, सुन्दर पलग कोमल गद्दा। जो कोई आते हैं। अच्छी तरहसे लोग उससे बोलते हैं। किस प्रकार उनसे बात कहे जिससे इनका मन बहले, ऐसा सोचकर लोग अनेको यत्न करते हैं, मनको बहलाते हैं। ऊपरसे देखा होगा, कितना आराम रहता है। रईसके पास औषधि भी रखी है। यदि उनके पास सुन्दर गद्दा न हो तो वे आरामसे सो नहीं सकते हैं, देखनेमे यह मालूम होता है कि रोगी यह आराम चाहता है पर इस आरामको नहीं चाहता। अगर इनसे पूछा जाय तो कहेगे कि बीमारी हटे, हमे दवा नही चाहिए, यह आराम नहीं चाहिए मै तो चलना फिरना चाहता हू। उसे आराममे राग नही है। गृहस्थ भी केवल मोहसे राग

से दुःखी हैं। गृहस्थी मोह करते हैं, घरके बच्चोका पालन-पोषण करते हैं, अनेक विषयोकी बातें आती हैं। किन्तु ज्ञानी गृहस्थ इनमे फसकर भी अन्तरमे इन्हे नही चाहता है। ये राग द्वेष बने रहते हैं, इसीसे मेरेमे अशान्ति रहती है, इसका स्पष्ट विश्वास रहता है। जैसी जो बात है वैसी न समझना बस इसीमे अशान्ति है। अब देखिये यह देह मेरी चीज है क्या ? यह देह अगर मेरी होती तो मरने पर मेरे साथ जाती कि न जाती। जहाँ २०-४०-६०-७० वर्ष हुए यह शरीर छूट जाता है और जला दिया जाता है। शरीर मेरी चीज नही। मैं तो ज्ञानरूप हू, यह शरीर तो जड रूप है। यह मेरा नही है। यदि मैं मान लूं कि यह शरीर मेरा है तो अशान्तिका कारण है। किसीने गाली दी, गाली बहुत खराब लग गयी, क्यों खराब लग गयी ? देहको माना कि मैं हूँ, और इसने मुझे गाली दी। जब देहको मानूं कि मैं हूँ तो देहमे अहंकार किया, तभी तो दुःख महसूस किया। तो जितना दुःख होता है वह सब अज्ञानका होता है। ज्ञानको बढ़ानेकी कोशिश करना है, मिटानेकी कोशिश नही करना है। सब चीजें स्वतन्त्र हैं, अलग है, भिन्न है, उनको कैसे मानू कि मेरी है ? उन पदार्थोंमें मोह ममता करनेसे ही अशान्ति हो जाती है। यदि इस मोह ममताको त्याग दिया जाय तो अशान्ति दूर हो जायगी तो भीतरसे इस अशान्तिको मिटाना चाहिए और उसको मिटाकर नीतिमे आना चाहिए। जो अपने प्रतिकूल है दूसरोके प्रति भी वह न करो। अपनेको अगर कोई बुरा कहता है तो बुरा लगता है तो तुम भी बुरा न कहो। हम अगर किसीको झूठ कहे तो बुरा लगता है अतः तुम भी किसी को झूठ न कहो। तुम्हारी माँ-बहिनको बुरी दृष्टि से कोई देखे तो बुरा लगता है तो तुम भी किसीकी माँ-बहिनको बुरी दृष्टिसे न देखो। हमे किसी भी प्रकारसे किसीको धोखा नही देना चाहिए। विषयोमे तृष्णा न करो। विषयोमे तृष्णा करना यही विपदा है।

एक लकड़हारा था। ऐसी ही सभा थी, ५ पापोके त्यागका उपदेश था—(१) हिंसा, (२) झूठ, (३) चोरी, (४) कुशील, (५) परिग्रह। ये पाप हैं। किसीको न सतावो, झूठ न बोलो, चोरी न करो, किसी भी स्त्रीको बुरी दृष्टिसे न देखो, ब्रह्मचर्यसे रहो।

उस लकड़हारेने यह सुनकर सोचा कि मैं हिंसा तो नही करता। हाँ हिंसा केवल करता हूँ तो जंगलमे गीली लकडी काटता हूँ, अच्छा अब मैं सूखी ही लकड़ी काटूंगा। झूठ तो मैं बोलता नही। केवल भावमे १० आने, ६ आने, ८ आने बोलता हू। अच्छा मैं ८॥ आनेकी लकड़ी बेचूगा और एक ही ॥) की बात बोलूगा। चोरी तो मैं करता नही, हाँ केवल २ पैसे चुंगीमे बचा लेता हूं, तो अब मैं नही बचाऊंगा। अणु ब्रह्मचर्यसे रहता ही हू, किसी दूसरेकी स्त्रीपर बुरी दृष्टि नही डालता। अच्छा अब मैं सदा पूर्ण ब्रह्मचर्यका पालन करूंगा।

अपनी स्त्रीसे भी ब्रह्मचर्य रखूंगा। परिग्रहकी बात यह है कि रोज आठ आने कमाऊंगा। २ आने धर्मके लिए, २ आने आफतसे बचनेके लिए और ४ आनेमे गुजर-बसर करूँगा। अब वह जंगलसे सूखी लकडी लाए और उनको बेचकर गुजर बसर करे। एक दिन वह लकडहारा एक सेठकी हवेलीके नीचेसे निकला। सेठके यहाँ रसोईमे लकडियोकी जरूरत थी। रसोईदार घरसे निकला, बोला—कितने दाम लोगे? बोला—८ आने। तो रसोइया बोला—५ आने लोगे, नही ८ आने, ६ आने लोगे? नही। चल दिया। कुछ दूर गया, नौकर बोला अच्छा, अच्छा लौट आवो। लौट आया। बोला—७ आने लोगे, ७।। आने लोगे। लकडहारेने गुस्सेमे आकर कहा—किस बेईमानका तू नौकर है? सेठजी सुन रहे थे कि हमको बेईमान कहता है। सेठने पूछा कि हमको बेईमान क्यो कहता है? तब उसने कथा सुनायी। बताया मैंने ५ पापोका व्याख्यान सुना, इसलिए इस तरहसे रहता हू। मैंने जो बेईमान कहा सो इसलिए कि जो जिसके सगमे रहता है वह वैसा ही हो जाता है। मुझे बुलाया कि अच्छा अच्छा लौट आवो। इसका अर्थ यही हुआ ना कि ८ आनेमे मजूर है। फिर कहता कि ७ आने लोगे, ७।। आने लोगे। सेठने सोचा कि मैं भी व्याख्यानमे जाता था, पर कुछ न किया। यही सोचकर उसने लकडहारेका सम्मान किया और बोला—तुम देवता हो, देवताके माने यह कि जिसका हृदय शुद्ध हो गया, किसीसे विरोध नही है, समान भावसे रहता है, वही देवता है। वह सेठ उस लकडहारेको काफी दूर तक छोडने भी आया। वहाँ पर यह बतलाया कि जितने भी जीव हैं सब जीवोको समान दृष्टिसे देखो तब ज्ञानमे प्रगति होती है। जैसे कहते हैं कि सबमे भगवान हैं। सब जीवोमे दयाका भाव लावो, किसी भी जीवको तुम शुद्ध चैतन्यस्वरूपकी दृष्टिसे देखो। जो गडबड हो गया है, पर्यायमे रहता है, जो जन्म मरण के चक्करमे रहता है, किसी तरहकी अटपट करतूत करता है ये सब भ्रमवश विपत्तियोकी बाते हैं। ये सब जीव प्रभुके जैसा स्वरूप वाले हैं। उन सब जीवोका लक्षण शुद्ध चैतन्यस्वरूप है। और जितने भी ये नृत्य है वे सब उपाधिकी वजहसे हैं। इसलिए पेड, पत्ती, पशु-पक्षी, जीव-जन्तु सबमे देखो वही शुद्ध चैतन्यस्वरूप समाया हुआ है। यदि अपना शुद्ध चैतन्य स्वरूप देखनेमे आ जाय तो उसीको कहते है सही ज्ञान। सबमे समानताका भाव अविरोधका भाव जागृत हो, उसीमे देवताका निवास है। यह तो लोकप्रतिष्ठाकी बात नही, यह ज्ञानके आश्रितकी बात है। अपने आपको अपने आपमे मोड लो तो समझो कि सब कुछ वैभव पाया। यदि यह न हो सका, बाहरमे ही भटकते रहे तो ज्यो थे त्यो ही रह जावोगे। बाहरमे कितना ही अनुभव कर लो कोई तुम्हारी चीज नही है। आत्मस्वरूपकी रुचि होना चाहिए। बाह्यसमागमोकी भीतरमे रुचि न होना चाहिए। अपने आपके हितकी बातें न की तो आनद

नही रहेगा ।

एक बाबू साहब कलकत्ता जा रहे थे । एक स्त्री बोली—हमारे मुन्नाको एक खिलौना ले आना, दूसरी स्त्रीने यही कहा । इसी प्रकारसे ३-४-१० स्त्रियोने यही कहा । एक बुढिया आयी । कहा—बाबूजी २ पैसे लो, हमारे मुन्नाको एक मिट्टीका खिलौना ले आना । बाबूजी कहते है कि बुढिया माँ, मुन्ना तेरा ही खिलौना खेलेगा । ५-७ स्त्रियाँ आयी, किसीने कुछ कहा, किसीने कुछ, पर यो ही हवाई बातें उडाती रही, नकद तो तुमने ही दिया । इसी तरह ज्ञानको बना लो, उसमे ही आनन्द मिलेगा । यदि ज्ञान न बना सके तो आनन्द न मिलेगा । बाह्यपदार्थोंमे कितना ही भटक लो पर ज्ञानके सिवाय किसीमे आनन्द न रहेगा । भोजन करते हैं तो उसके स्वादसे आनन्द नही मिलता है । आनन्द भोजन करने वाली चीजसे नही मिलता है । उस चीजके प्रति ज्ञान बना लेनेसे आनन्द मिलता है ।

जैसे कोई भोजन करता हो, सुख मानता हो तो भोजन करनेसे आनन्द नही आता । उस भोजनके प्रति ज्ञान करनेसे आनन्द आता है । परमार्थमे तो कल्पनाओसे भी आनन्द नही मिलता है । जो शुद्ध दृष्टि है, वह आनन्दकी जननी है । वह ज्ञानसे ही रहती है । ज्ञानमे ही आनन्द है, नही तो बड़े-बड़े महापुरुष ६ खण्डकी विभूतिको त्यागकर जंगलमे क्यो चक्कर काटते ? इसलिए एक ही निर्णय करो, अपने आपको देखो तो शान्ति मिलेगी, सच्चे ज्ञानसे ही आनन्द होगा । सच्चा ज्ञान अपने स्वरूपमे है ।

मांस, मदिरा एवं बलि देनेका त्याग मुकुन्दीलाल हरिजन, पल्टूलाल हरिजन, गोविन्दे हरिजन, चतुरी हरिजन, पन्नालाल जी यादवने किया ।

शुभः कषायमान्द्येनाऽशुभस्तीव्रकषायतः ।
अकषायेन शं नित्य स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥२६॥

क्रोध, मान, माया, लोभ ये चार कषाय हैं । क्रोध गुस्सेको कहते हैं, मान घमंडको कहते हैं, माया छल-कपट आदिको कहते हैं और लोभ तृष्णाको कहते हैं । ये ४ तरहके कषाय हैं, जो इस संसारी जीवमें पाये जाते हैं । यह अन्दाज कर लो, क्रोध करना सब जानते हैं, घमंड भी सब करते हैं, छल-कपट भी क्षण-क्षणमें करते हैं । किसीमे कम कषाय हो, किसीमे ज्यादा कषाय हो, पर ससारमे रहने वाले हम और आप सभी जीवोमे ये ४ कषाय हैं । ये चारो कषाय जब अनन्तानुबंधी होते हैं तो स्वय गुस्सा अधिक तेज होता है, घमंड अधिक होता है, छल, कपट भी तीव्र होता है, लोभकी मात्रा भी बढी हुई होती है तब उपयोग अशुभ होता है, खोटा होता है और इस तेज कषायका क्या काम होता है ? गुस्सा हो तो लड़ाई करना, दूसरोको दबाना, मारना, पीटना तथा और-और भी बातें होती हैं ना ।

जब घमड अधिक होता है तो दूसरोको नीचा दिखाना, आप ऊँचा बननेकी कोशिश करना तथा ज्ञान न आना, ये सब बातें होने लगती हैं।

जब छल कपट होता है तो किसीका ऐसे ही दिल दुःखे, किसीका काम विगडे इसकी परवाह ही नही होती, बस, अपना काम वन जाय, ऐसे खुदगर्जी वन जाती है। मोहमें भी यह बात होती है तो ये तो सब खोटे उपयोग हैं, अशुभ उपयोग है। कषायकी तीव्रतासे अशुभ उपयोग होता है। इस अशुभ उपयोगका फल सकट दुर्गति ही होता है। ये सब जो दीन दुःखी असज्ञी आदि प्राणी है, अशुभ उपयोग करनेके फल हैं। जबसे कषाय मंद होते हैं तो कषायोसे कुछ प्रवृत्ति हटती है। भगवान्की भक्ति करना, सयम करना, उपकार करना, दयाभाव रखना, दूसरोकी सेवा करना ये सब कषाय मदतामे होते है। कषायकी मंदतामे होने वाली इन प्रवृत्तियोको शुभ उपयोग कहते हैं। कषाय जब तक हैं तब तक फलमे इस प्रकारका विकार होता है। शुभ उपयोग भी विकार है और अशुभ उपयोग भी विकार। अशुभ परिणाममे विशिष्टता रहती है और शुभपरिणाममे सक्षिप्तता रहती है।

आपके शुभोपयोगका फल है देव बनना सुमानुष वनना सो शुभोपयोगके फलमे हुआ क्या ? देव आदि भी तो ससारमे ही हैं। कषायका फल है भगवान्से न मिलने देना, पर जब अपने स्वभावमे दृष्टि जाय तो भगवान्से भेंट हो। स्वभावसे ही आत्माका काम कषाय करना नही है। जीव किसी दूसरेका निमित्त पाकर कषाय करता है। किसी दूसरेका निमित्त पाये बिना कषाय नही करता है। यह आत्मा तो ज्ञानस्वरूप है, वह ज्ञानस्वरूप स्वय ज्ञान-स्वरूप है। उसे कषायरहित कह लो चाहे कषायरहित स्वभाव कह लो तो उससे इस तरह बुद्धि जगेगी कि आत्मामे कषाय थी और अब नही है, सो आत्मामे कषायस्वभाव ही नही है। उसको कषायसहित भी नही कहते और कषायरहित भी नही कहते। आत्माका स्वभाव न कषाय करना है, न कषायरहित है किन्तु ज्ञानस्वभाव है। जाननेका ही काम है। जो है उसे ही बताना चाहिए, उसे सब कुछ कहा जाता है। जो नही है उसे बतानेसे वस्तुका स्वभाव नही जाना जाता है। जो है वह पदवी दी जाती है। आत्माका स्वभाव ज्ञान है जो कि कषायरहित स्वतन्त्र ही है। कषाय इसमे है ही नही। इसलिए कषायरहित आत्माके स्वभावके दर्शन होना, अवलम्बन होना, उसकी ओर झुकना तो कषायरहित प्रवृत्ति हो जायगी और कषायरहित परिणमन हो जायगा। शुद्ध उपयोग होता है तो शुद्ध उपयोग होनेसे उसे निर्वाण मिलता है, मोक्ष मिलता है। तीन प्रकारका उपयोग होता है। अशुभ उपयोग तो तीव्रकषाय कहलाता है। जैसे घरके बच्चोसे प्रीति पैदा होती है, घरकी स्त्रीमे ही दिल लगा रहता है, अनेक घातक व दुराचारमय परिणाम होते हैं। शुभोपयोग मन्द-

कषाय कहलाता है। भगवान्‌की पूजा करना, स्वाध्याय करना, तपस्या करना यही सब मदकषायका फल है, कषायकी मदताका फल है। विषयभोगोमे ही प्रवृत्ति रहे यही कषायो की तीव्रताका फल है।

जो सत्पुरुष होते हैं, वे सब कषायोसे दूर रहते हैं और अपनेको कषायरहित जानकर ज्ञानमय अनुभव करते है। ऐसी निजआत्मदृष्टिका होना, शुद्धस्वभावका आश्रय् करना शुद्धउपयोग है। देखो आप सोच सकते हैं कि जो लोग घरमे रहते है उनका समय किसी तरहसे कट जाता है। बच्चे हैं, उनको खिलाया पिलाया, बडे हुए, उनको पढाया लिखाया, उनका सारा समय यो ही निकल जाता है, वे अपने ज्ञानस्वरूपकी परख नही कर पाते हैं और मौजमे समय गुजार देते हैं। वे व्यक्ति जो जगलमे रहते हैं उनका जीवन व समय भी अच्छी तरह से कैसे कट जाता है तो उनके पास क्या चीज होती है जिससे उनका जीवन अच्छी तरहसे कट जाता है ? उनके पास है उनके ज्ञानस्वरूपकी परख। वे अपने आनन्दमय स्वरूपमे डूब जाते हैं और अपने ज्ञानस्वरूपका परिचय कर लेते हैं। वे जगलमे रहने वाले भोजन करके नही प्रसन्न रहते हैं, वे अपने आत्मस्वरूपको ही देखकर प्रसन्न रहते हैं। वे अपने ज्ञानस्वरूपको देखते रहते हैं, केवल देखन-जाननहार ही वही रहते हैं।

अपने ज्ञानस्वरूपका परिचय होनेपर, ज्ञानस्वरूपको ही निरखने पर वे आनन्दमग्न हो जाते हैं। देखने वाले लोग कहते हैं कि वे जगलमे कितनी कठिनाइयोसे रहते हैं, उनका जीवन कैसे पार होता होगा ? अरे अपने आनन्दमय स्वरूपको देखो और अपनेमे अपने लिए अपने आप सुखी होओ। एक ज्ञानकी यह बात है; यह विश्वास होना चाहिए कि जगतमें जितने भी दुःख होते है वे सब ख्याल बनानेसे, कल्पनाएँ करनेसे होते हैं। बच्चे, स्त्री इत्यादि ने कहना नही माना, काम बिगड गया, भीतरमे ऐसी कल्पनाए करके वे दुःखो होते हैं। किसी दूसरेकी चेष्टाओसे कोई दुःखी नही होता है, वह अपने आपमे ही ख्याल बनाकर दुःखो हो जाता है। अरे तू तो स्वय आनन्दस्वरूप है, आनन्द भी कही बाहरसे नही लाना है। प्रेमव्यवहार करनेसे आनन्द आता है, यह बात न सोचो। आनन्द केवल मेरे विचारोसे ही मिलता है। हम अपने विचारोके अतिरिक्त और कुछ नही कर पाते। अशुद्ध विचारोसे ही दुःख मिलता है। दुःख देने वाला दूसरा कोई नही है। केवल ख्याल बनाकर ही दुःखो होते हैं। वह सब ज्ञानकी ही कल्पनाएँ है, ज्ञानका ही चमत्कार है, ज्ञानकी ही लीला है। सुखी दुःखी होना, पुण्य पाप करना सब ज्ञान पर ही निर्भर है, ज्ञानका ही सारा चमत्कार है, दूसरे कोई कुछ नही करता। इसलिए अपने आपके ज्ञानस्वरूपको देखो तो आनन्द प्राप्त हो सकता है।

बाहरी चीजोसे ही ज्ञान बढाना, बाहरी चीजोमे ही ठहरना यह तो व्यर्थ है। बाहर की दृष्टिसे तो मिलेगा कुछ नही, केवल आकुलता ही भोगनेको मिलेगी। एक पुराणमे दृष्टान्त आता है कि एक भाई गुरुके पास पहुचा। बोला—महाराज, मेरी आत्माको ज्ञान बतला दीजिये। गुरु कहते हैं कि उस नदीमे जावो, एक मगर रहता है, वह तुम्हारी आत्माका ज्ञान बतला देगा। नदीमे मगरके पास जाकर वह कहता है कि भाई मुझे मेरी आत्माका ज्ञान बता दीजिए। मगर कहता है—भाई मुझे तेज प्यास लगी है, थोडासा इस लोटेमे उस पासके कुवेंसे जल ले आइए। जल पी लें फिर बतायें। वह पुरुष कहता है कि मगरराज तुम तो बेवकूफ नजर आते हो। गुरुने बताया कि मगरराजसे जाकर पूछो वे बता देंगे। आप स्वय पानीमे डूबे हुए हैं फिर भी कुवेंसे पानी मँगा रहे है। आप कहते हैं कि एक लोटा पानी कुवेंसे ले आवो। मगर कहता है कि इसी तरह बेवकूफ तुम भी हो, तुम स्वय ज्ञानस्वरूप हो, ज्ञानको छोडकर तुम्हारेमे कुछ नही है, फिर भी तुम ज्ञानको पूछने आये हो। सो भैया! जब तक यह विश्वास न बनेगा कि मैं प्रभुका जैसा स्वरूप वाला हू, तब तक कल्याण न होगा। कहते हैं कि प्रभु तो घट-घटमे विराजमान हैं, घट-घटमे प्रभु हैं। तो अपना महत्त्व जब तक समझमे न आवे कि मैं ही अपने लिए सब कुछ हूँ, मेरे लिए मैं ही हू, जब तक अपना पुरुषार्थ समझमे नही आता तब तक कुछ न कर सकोगे। अपने परमार्थस्वरूपको देखो, अपना स्वरूप अपने ज्ञानमे आना चाहिए।

एक पुरुष था। उसे उसकी स्त्रीने बहुत समझाया कि अमुक पाप छोड दो, कुछ न कुछ धर्मके काम कर लो, पर वह न करता। उसने पतिको एक ठाकुरकी मूर्ति दे दी और कहा कि इसकी रोज पूजा कर लिया करो व २४ घंटेके लिए पाप छोड दिया करो। वह २४ घटेमे एक बार पूजा करता था। और २४ घटेके लिये पाप छोड देता था। एक बार उसने देखा कि जो चावल पूजन करनेमे चढते थे उन्हे चूहा खा जाता। उसने समझ लिया कि चूहा इस देवसे भी बडा है। वह उस चूहेकी पूजा करने लगा। ठाकुरकी मूर्तिकी पूजा छोड दी। एक दिन एक बिल्ली चूहेपर झपटी तो उसने समझा कि बिल्ली बड़ी है तो वह बिल्लीकी पूजा करने लगा। एक कुत्ता बिल्ली पर झपटा तो उसने कुत्तेको सबसे बडा समझा तो उस कुत्तेकी पूजा करने लगा। एक दिन स्त्री रोटी बना रही थी, रसोईमे वह व्यक्ति भोजन कर रहा था। कुत्ता रसोईके अन्दर घुस गया। स्त्रीने एक बेलन कुत्तेके मारा। अब वह पुरुष स्त्रीको सबसे अधिक बड़ा मानकर पूजा करने लगा। स्त्रीने एक बार खाना बनाया तो दाल मे नमक ज्यादा डाल दिया। बोला—यह नमक दालमे क्यो ज्यादा हुआ? स्त्री बोली—हाथ ही तो है, ज्यादा पड गया तो क्या करें, थोडासा गर्म पानी डालकर दालमे मिला लो,

ठीक हो जायगी। यह जवाब सुनकर उसने स्त्रीको २-३ तमाचे जड दिये, वह रोने लगी। अब उसने समझा कि मैं ही सबसे बडा हूं, वह अपनी पूजा करने लगा। यह तो मात्र कथा है, पर शान्ति और आनन्द तो खुदमे ही है। चाहे जितनी जगह डोल आवो शान्ति और आनन्द कही बाहरमे नही मिलेगा। भैया! यदि धर्मसाधना करो तो तिरोगे। भगवानकी सच्ची भक्ति हो तभी धर्मसाधना बढ सकती है।

मनोवाक्कायवृत्तीना निवृत्तेरुपदेशनम्।
स्वस्थित्यै स्वस्थितो शान्तिः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥३०॥

दुःखोका कारण मन, वचन, कायकी प्रवृत्ति है। मनकी प्रवृत्तिसे, वचनके व्यवहारसे और शरीरकी चेष्टाओसे कोई न कोई प्रकारके क्लेश होते हैं। इसलिए ऋषि देवोने इन तीनो प्रवृत्तियोको हटानेका उपदेश दिया है। मनका निरोध करना, वचनोका बन्द करना, शरीरकी चेष्टाएँ बन्द करना, इस तरहसे जो तीन उपदेश दिये है वे इसलिए दिये है कि यह आत्मा बाहरकी बातोसे हटकर अपने आपमे रम जाय। गृहस्थीको उपदेश है कि वह मनसे प्रीति चाहे रखें, बच्चोसे व्यवहार चाहे रखें, पर वे दूसरोकी सेवा और दया करें, सबका भला सोचें। मनकी वृत्ति अच्छी क्या कहलाती है कि सब जीवोमे सुखी होनेकी भावना हो, सब जीवोमे सद्बुद्धि उत्पन्न होनेकी अभिलाषा हो, सब जीव सुखी हो, सब जीवोमे सद्बुद्धि हो और समता जगे, ऐसी भावना करनेका नाम मनकी वृत्तिका अच्छापन कहलाता है। सद्-बुद्धि बिना ही जगतमे विवाद और कलह उत्पन्न होते हैं। राष्ट्रकी कलह हो, समाजकी कलह हो, घरकी कलह हो ये सब सद्बुद्धिके अभावसे होते हैं। सो मनकी समीचीन वृत्ति रखे, ऐसी भावना करें कि सबमे सद्बुद्धि उत्पन्न हो। विरोधी हो, मित्र हो सब जीवोके प्रति सद्बुद्धिकी भावना करो, सो मनकी सद्बुद्धि कहलाती है। जब किसीके मनमे दुर्बुद्धि उत्पन्न होती है तब ईर्ष्या और क्रोध उत्पन्न होता है। सो दुर्बुद्धि वाले चूँकि अपनी-अपनी बुद्धिको खो बैठे है इसलिए उन पर ही विपत्तियाँ आती हैं। इसी कारण लोकमे यह प्रसिद्धि है कि जो दूसरोका बुरा विचारता है उसका बुरा पहिले होता है। यह बात बिल्कुल ठीक है क्योकि दूसरोका बुरा विचारनेसे दुर्बुद्धि हुई, सद्बुद्धि नही हुई। दुर्बुद्धि होनेसे आत्माका भविष्य खराब होगा। चाहे लोकदृष्टिसे पुण्यका उदय होनेके कारण दूसरो पर अन्याय अत्याचार करें और उसमे सफलतायें मिलें, पर अतिम परिणाम इसका पतन कार्य ही है। दुर्बुद्धि होने पर अपनी सद्बुद्धि नष्ट हो जाती है यही सबसे बडा टोटा है, सबसे बडा नुक्सान यही है। इसलिए अपनी सुख शान्तिके वास्ते यही आत्मदेवसे प्रार्थना करो कि हे प्रभु मेरी सद्-बुद्धि जागृत रहे। बुद्धि बिगडी कि सब बिगड़ा। तो अपने मनका विचार ऐसा बनाओ कि जगतके सभी जीव सुखी हो, उनमे सद्बुद्धि जागृत हो, सब न्यायपूर्वक रहकर सुख प्राप्त करें,

इसे ही कहते हैं मनकी सद्बुद्धि । राष्ट्र क्यों दु खी है कि मनमें असद्भावनायें घर कर गयी हैं । अधिकतर मनुष्योका मन दुर्भावनाओसे ग्रस्त हो गया है, इस कारण सब मनुष्य भयशील है । यदि लोगोका विचार शुभ स्वच्छ हो तो विपदाओका कोई कारण नही है । घरमे हो, गाँवमे हो हम आपके प्रति बुरा विचारते हैं, आप हमारे प्रति बुरा विचारते हैं, मनसे मन नही मिलता, एक दूसरेको नही सुहाते—ऐसी दृष्टि आपकी हो जाती है तो सब अपने अपने मे बैठे हुए दुःखी हो रहे हैं । मिलता क्या है दूसरोका बुरा विचार करनेसे, केवल अहकार । जब तक दूसरोका बुरा विचारोगे तब तक लाभ कुछ भी नही मिलेगा । दूसरोका बुरा सोचने से कोई मुनाफा मिलेगा क्या ? कोई भी तो मुनाफा नही मिलेगा । उल्टा मन बिगाड लेनेसे तो अपनेको विपत्तियोमें फंसना होगा, कर्म बन्धनोमे फसना होगा । कर्मबन्धनोमे फंसने से आकुलताए आयेंगी । इसलिए अपनेको पवित्र रखने के लिए अपने प्रभुके स्वरूपको समझो प्रभुके स्वरूपके समान अपने स्वरूपको भी समझो । इसमे किसी प्रकारका दुर्भाव न आये, ऐसा मनमे भाव बने, यही ज्ञानकी बात है । ऐसा ज्ञान गृहस्थीके भी होता है । यदि कोई शत्रु बनकर तुम्हारा जान, धन हडप करने आवे तो उसका भी मुकाबला करो । दुश्मनका मुकाबला करते हुए उसके प्राण चले जायें तो भी सम्यग्दृष्टिकी भावना बुरी नही होती है । इतना तक कर लेने पर भी अन्तरमे उसके प्रति सद्भाव ही रखा है । श्रीराम भगवान गृहस्थावस्थामे रावणसे लड रहे थे और काफी विजय प्राप्त कर ली, रावण असहाय हो गया, तब रामने यह कहा कि ऐ रावण ! अभी कुछ नही बिगडा, सीताको वापिस कर दो और तुम अपना राज्य करो । मगर रावणकी बुद्धि खो गयी, दुर्बुद्धिने मनको जकड लिया । वह अहंकारसे परिपूर्ण था । रावण अपने मनमें कहता है कि यदि रामको जीते बिना सीताको यो ही दे दिया तो लोगोमे मेरी इज्जत खराब होगी । लोग यह समझेंगे कि घबड़ाकर, परास्त होकर, हार मानकर रावणने सीताको वापिस कर दिया । उसका उस समय यह भाव हो गया था कि मैं रामको जीत लूं, रामपर विजय प्राप्त कर लूं, राम हार जाए, ऐसी स्थिति करके फिर मैं सीताको वापिस दूं तो मेरी दुनियामे बड़ी इज्जत रहेगी । ऐसा सोचकर सीता को वापिस देनेके लिए राजी नही हुआ । अन्तमे क्या हुआ कि रावणकी मृत्यु हो गयी ।

जब दुर्भावसे मन जकड जाता है तो सही रास्ता क्या है इसका ख्याल भी नहीं आता है । यह अपने आपको बिल्कुल भूल जाता है । इसलिए सबसे बडा धन है बुद्धिका व्यवस्थित रहना । कोई मनुष्य पागल हो, दु खी हो, अटपट बकता हो, यहाँ वहाँ दौडता फिरता हो । क्यो इतना अटपटा हो गया है इसलिए कि अपनेको बिगाड लिया है । उसमे खराबी क्या आयी कि बुद्धि बिगड गई, बुद्धि चचल हो गयी, अव्यवस्थित हो गयी, इसीको

कहते हैं पागल होना । पागल होनेमे कितने दुःख हैं इसका तो देखने वाले अन्दाज कर सकते है । जिसका ज्ञान ठिकाने नही है वह अपना भी दुःख क्या जाने ? केवल भोगते ही बनता है । पागलका जीवन तो बेकार है । सभी लोग अनुभव करते हैं कि पागल है, सिरी है, उसका जीवन बेकार समझते हैं । सो भैया ! यदि किसीका जीवन अधिक अव्यवस्थित हो गया तो उसने भी पागलका रूप ले लिया । बुद्धि जरा कम व्यवस्थित है, बुद्धि बिगडी हुई है, दुर्बुद्धि है, उसका जीवन बेकार है । कोई बहुत बेकार है तो कोई इससे थोडा बेकार है । सबसे बडा धन है अपना ज्ञान सही बनाकर रखना । यदि अपना ज्ञान अपने काबूमे है, अपनेमे सयत है तो हम उस ज्ञानसे अपनी इच्छासे चल सकते हैं । ऐसे सुधारमे हम प्रसन्न रहते हैं । सो भाई मनको स्वच्छ रखना, सब जीवोको एक समान समझकर सबके सुखी होनेकी भावना रखो, यही गृहस्थीका कर्तव्य है । दूसरे अपने वचनोका व्यवहार शुद्ध रखना, मनुष्यो का धन वचन ही तो है । वचनोसे ही मनुष्योकी सारी परख होती है । वचनोसे ही इस जीवको सुख बन गये हैं और वचनोसे ही दुःख बन गये है ।

एक पडितजी सुनाते थे कि कोई भाई देहातका हरिद्वार यात्रा करने गया । सो वहाँ बडा बीमार हो गया, वह अकेला था, कुछ कम बुद्धिका था । बीमार हालतमे वह यहाँ वहाँ देखता है, सोचता है कि यहाँ कोई सहारा नही मिलेगा । खोहमे एक झोपडी थी, झौपडीमे एक बुढिया माँ रहती थी । वह बोला—माँ, मैं बीमार हू मुझे शरण चाहिए । माँ बोली—बेटा जो पथ्य हो बताओ । क्या खिचड़ी बना दूं, खिचड़ी भी तैयार कर दी । बुढ़िया खिचडी बना रही थी और वह कहता कि माँ क्या तुम अकेली ही हो ? हाँ बेटा, अकेली ही हूं । तो तुम्हारे कोई नही है, लडका तो है, परदेशमे रहता है । तो माँ वह मर जाय तो क्या करोगी ? अरे यह तो असगुनकी वार्ता करता है । यो ही वह कम बुद्धिका था । बोली—ऐसी अटपट बात क्यो करता है ? तो माँ तुम्हारे यहाँ कोई नही है । तो क्या तुम्हारा विवाह करा दें । ऐसी ही एक आधी बात और खोटी बुढ़ियाको कह दी । अब तो बुढियाने उसको निकाल दिया । तो इन वचनोसे ही परदेशमे आरामसे रह सकते हैं और इन्ही वचनोके दुर्व्यवहारसे घरमे भी सुखसे नही रह सकते हैं । वचन बाण अगर लग जाये तो यह बिंध सकता है । वचन बाणसे हुआ दिलका घाव कठिन हो जाता है । हथियारका घाव तो भर जायगा । वचन-बाण जिसके दिलमे लगता है तो उस जगहका घाव फिर नहीं भरता है । इसलिए वचन बहुत संभालकर बोलना चाहिए । देखो यह जो तुम्हारा मुख है जिस समय यह फैलता है उस समय ठीक धनुषके आकारकी तरहका हो जाता है । देखो ना यहाँसे टेढा है, फिर यहाँ टेढ़ा है तो ठीक धनुषके जैसा आकार वाला मुह भी हो जाता है । और खिंचे हुए धनुष

से जो बाण छूट जाता है कितनी ही भावनायें करें, पर वह वापिस नही हो पाता है। कितनी ही मिन्नत करें, पर क्या वह वापस आयगा ? नही वापस आयेगा। इसी प्रकार यह मुख धनुषका जैसा रूप रखे है। वचनोका बाण अगर इससे छूट गया, निकल गया तो फिर वह वापिस नही हो सकता है। धनुषसे छोडा गया बाण जो घाव करे उसको भरा जा सकता है, पर वचनोसे निकले हुए बाणके घाव करने पर नही भरा जा सकता है। वचनोके बाण से बो लड़ाई ही बढेगी। वचन बोलनेसे पहिले अपने मुखको संभाले हुए रहना चाहिए। वचनोसे ही सुख होता है दु ख होता है। इसी प्रकार शरीरकी चेष्टाओसे जिसकी शरीरमे आसक्ति होती हैं वह आलसी होता है। जितना ही उसे सुख हो, सुविधाएँ मिलें, आरामकी सुविधायें मिलें उतना ही उसका आलस्य बढता जाता है। यह है देहमे आसक्त होने वाले पुरुषकी दशा, पर होना कैसा चाहिए ? यहाँ मनुष्यका शरीर पशुवोके शरीरसे भी गया बीता है। पशुवोकी चाम बाल हड्डी इत्यादि काम आती है, पर मनुष्यकी चाम, हड्डी, बाल इत्यादि कोई भी चीज काम नही आती है। मनुष्यका शरीर किसी भी काममे नही आती है तो यह पशुवोके शरीरसे भी गया बीता शरीर है। इसीलिए यह शरीर जला दिया जाता है। जल जाने पर तो खाक ही हो जाता है। मतलब यह है मृत्युके बाद यह शरीर उपयोगमे नही आता है।

मनुष्य शरीर और मनुष्यभवकी बडाई तो इस कारण है कि इस शरीरमे रहने वाला जीव भी बडी योग्यताका है कि वह अपने ज्ञानका यदि सत्य उपयोग कर ले तो ससार के बधनोसे सदाके लिए छूट जाये। जो काम कोई नही कर सकता उस कामको यह मनुष्य कर सकता है। देवता भी, भगवान्की बात नही कहते, भगवान् तो सर्वोत्कृष्ट है, वे देवता भी मनुष्यसे कम है। वे मनुष्य अज्ञानमे हैं जो सुखके लिए देवी देवताओकी आशा रखते हैं। यदि भगवान्की भक्ति करें, भगवान्से कुछ आशा रक्खें तब तो ठीक है। देवी देवता तो मनुष्योसे भी कम महत्व रखते हैं। उनको भी इस भवसे मुक्ति नही होती।

कहो वे मर करके खोटी और हालतमे आ जायें ? बहुतसे लोग कहते भी है कि भूत प्रेत इत्यादि कष्टकी योनिमे है। भला यह तो बताओ कि वे मनुष्योसे बढकर हैं कि घटकर हैं। ये देवी देवता तो ससारमे रुलने वाले जीव हैं और मनुष्योसे कम आदरके जीव हैं। उन देवी देवताओके समक्ष अपनी कामनाओके लिए किसी जीवको हत्या करना, बलि चढाना यह तो बडा अज्ञान है, उनसे किसी प्रकारका सुख चाहना और भी अज्ञान है और फिर जीवहत्या करके कामसिद्धिकी बात सोचना यह उससे भी अधिक अज्ञान है। अरे हम और आप प्रभुके रूपके समान हैं। अपने ज्ञानस्वरूपको देखकर विकल्प हटाकर इन मिटने

वाले पदार्थोंकी आशाको त्याग करके कुछ अंतरदृष्टि करें तो भगवानका स्वरूप नजर आयेगा। उससे प्रतीति करो, जीवहत्याका त्याग करके अपने आपको शान्तिमे रखकर अपनी बुद्धिकी सही व्यवस्था बनाकर कुछ अन्तरमे निरखो तो प्रभुका पूर्ण दर्शन होगा, जीवनमे सफलता प्राप्त होगी। ये मन, वचन व शरीर इनको पूर्णरूपसे रोक दो। यह पूर्ण विरोध साधु महात्माओका कार्य है। गृहस्थीका क्या यह कर्तव्य है कि यह मनसे व्यवहार अच्छा रखें, वचन, वाणीका व्यवहार अच्छा रखें और शरीरसे दूसरोकी सेवा करें। हम अगर इस लायक हो सके तो अपने आपमे रम सकते हैं। अपने आपके ज्ञानको सही रखो। अपने ज्ञानको सही बनानेमे ही शान्ति है। अपने आपकी व्यवस्था बनाकर स्वयं सुखी होओ।

शुद्धोपयोगलक्ष्येनात्मा स्वयं रक्ष्यते तदा।
स्वस्मिन् स्वमेव वेत्यस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥३१॥

यह परमार्थकी बात कही जा रही है किन्तु आजकल कुछ दुर्भाग्यसे कहिए, चीन और भारतके बीचमे युद्धका वातावरण ठन गया। जितनी बेचैनी यहां पर है उतनी ही बेचैनी चीनमे भी होगी। जितना डर और भय यहां है उतना ही वहां भी होगा। सम्भव है उससे कुछ कम हो क्योकि यहां शान्ति चाहने की इच्छा है। सम्भव है कि वहां यह हो कि गिर पड़े और लड़े। चाहे इतनी बेचैनी न हो पर अपने देशके खिलाफ कुछ भी सुननेमे आता है तो बेचैनी बढ़ जाती है।

ऐसे वातावरणमे जरा कठिन बात है कि ब्रह्मस्वरूपकी चर्चामे बैठनेमे अपना उपयोग अधिक लगायें। मगर परवाह नही, जो कर्तव्य है वह इस सम्बन्धमे किया जाय, पर अपने आपको शान्तिमे लानेके लिए यह तो राजका काम है कि दस पांच मिनट शुद्ध आत्मतत्त्वकी चर्चामे अपना उपयोग लगायें। यह देह मायास्वरूप है, गृहस्थीमे रहनेके नाते कुछ अगर कर्तव्य है तो कई घटे तो पडे हैं। अगर चौबीस घटेमे दस पंद्रह मिनट आध घंटा ऐसा समय बीते, आत्मतत्वकी चर्चामे जायें, फिर देखना अपना आत्मबलका बोध होता है। बाहरी बातोमे पड़कर अपना आत्मबल घटा लेते है। अगर हम बाहरी बातोमे उलझ जायेंगे तो हमारा आत्मबल घटेगा। आत्मबल इससे बढेगा नही। हमको अपने आत्मतत्त्वमें रमनेका यह कर्तव्य है कि हम अपने वस्तुस्वरूपकी चर्चामे आवें और अपने उपयोगको शांतिमय बना लें।

कुछ क्षण ऐसा देखो कि चाहे चीनके लोग हो, चाहे भारतके लोग हो, चाहे पशु पक्षियोंके जीव हो, चाहे पेड पत्तियां हो, सब जीवोका स्वरूप एक चैतन्यस्वरूप है। ऐसी दृष्टि बने तो आत्मामे बल जागृत होता है। तो अपने आत्मबलका परिचय हो, फिर कर्तव्य-

दिशामे बढो तो फिर अपना कर्तव्य समझमे आता है । यदि कोई मनुष्य अपने घरका अधिकारी है मगर अपनी बुद्धिको बिगाड देता है तो वह अपने सन्मार्गको खो देता है, शुद्ध मार्गमे नही चल पाता है ।

इसी प्रकार इस धन सचयमे, खाने-पीनेमे, विषयभोगोमे, सामाजिक कर्तव्योमे, राष्ट्रवादमे ही रहे और अपने आत्मस्वरूपको न देख सके, अपने आत्मस्वरूपमे न रम सके, ज्ञानस्वरूपको ज्ञानमे न रख सके तो कुछ समय बाद अपने परमार्थस्वरूपका स्मरण न रह सकेगा, अपने आत्मबलको खो देगा और उन कामोको भी बहुत अच्छी तरह न कर सकेगा । गांधीजी ने देशमे बहुत काम किए । उनके हाथ पैर वचनकी बात तो याद है, मगर वे समर्थ कैसे हो सके ? वे अपने भीतरमे आ गये, आत्मबलको इतना बढाया कि चमत्कारी हो गये । सो लोग मानते थे । वे भीतरी काम क्या करते थे कि प्रभुकी भक्ति, आत्मचिन्तन, ब्रह्मस्वरूपकी दृष्टि इत्यादि करते थे । फिर वे ऐसे ढग बना लेते थे कि वे देशके कार्य करते थे । २४ घंटेमे दस पांच मिनट अपना आत्मबल बढानेका चिन्तन करते थे, फिर कर्तव्यमार्ग पर आकर अपनेको सही मार्ग पर ले जाते थे । अपने २४ घटेके समयमे कुछ समय चर्चामे दो, कुछ समय प्रभुका स्मरण करो । यदि प्रभुकी भक्ति नही कर सकते तो इस तरहकी बातोको नही बना सकते तो व्यवहारके कामोमे भी ऐसी सफलता न मिलेगी । इस कारण प्रथम कर्तव्य है कि ज्ञानको बढाओ । शुद्धस्वरूपकी, आत्मस्वरूपकी, ब्रह्मस्वरूपकी खबर अगर न ली तो समझो कि अपनेको जगतमे भूल गए, अपनी देहको भूल गये, सबको छोड दिया । केवल ज्ञानप्रकाश की बात उपयोगमे कुछ जरूर लावें । इस ज्ञानके स्पर्शसे आत्मबल जागृत होता है । भारत अपने कामको विवेकसे करेगा, देशके काम बडे विवेकसे करेगा तो लोगोपर इसका प्रभाव पडेगा । जो बिगाडका काम करना चाहते हैं वे नहीं होंगे । और जो व्यवस्थित रखे गये आत्मबलको सही रखेंगे तो खराब समयमे भी विकासका यत्न हो सकता है । आत्माकी शक्ति अचिन्त्य है और जो भी शक्ति है वह ज्ञानकी ही शक्ति है । विज्ञानमे जो भी बात होती है वह ज्ञानकी ही शक्ति है । जो पौद्गलिक चीजोको बनाता है वह ज्ञानमे ही तो बनाता है । जो कुछ चमत्कार है वह इस ज्ञानका ही है ।

अपने ज्ञानको सही रख सकें, ऐसा वातावरण बनानेकी चेष्टा करो । यदि हमने अपनी बुद्धिको खो दिया तो सब कुछ खो दिया । सो अपना आत्मबल बढानेके लिए देखो कि यह मैं आत्मा ज्ञान और आनन्दस्वरूप केवल ज्ञान और आनन्दका ही काम करता हूं । इसके आगे आत्माका कोई कार्य नही है, ऐसा जानकर सबसे विकल्प हटाकर परमविश्राम मे रहूँ तो एक बल उत्पन्न हो जिससे बुद्धि व्यवस्थित रहती है । मेरी यथार्थव्यवस्था हो

तो मेरा सब काम ठीक है। यह प्रार्थना करो कि हे प्रभु ! मेरी बुद्धि व्यवस्थित रहे।

नश्येते निर्ममत्वेन रागद्वेषौ ततः सुखम्।
निर्ममत्व विचिन्त्यातः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥३३॥

यदि रागद्वेष मिटते हैं तो निर्ममतासे मिटते हैं। अर्थात् मोह ममता न हो तो रागद्वेष मिट जाते हैं। जैसे हरे वृक्षकी जड़ कट जाने पर पेड़ सूख जाता है उसी प्रकार मोहके मिट जाने पर सब रागद्वेष सकट नष्ट हो जाते हैं, मिट जाते हैं। क्योंकि रागद्वेषका आधार है अज्ञान। आपके सामने यदि अंधेरा रहता है कि जो परवस्तु हैं उसमे ही मैं हूं, ऐसा पराधीन होता है तो यह आवश्यक ही है कि उसमे रागद्वेष आवें और शक्तिके विरुद्ध व मुक्तिके विरुद्धभाव उत्पन्न हो। राग और द्वेष आत्मासे मिले होते हैं, उपाधिके निमित्तसे होते हैं इस कारण पृथक् हैं। जीव स्वयं ज्ञानमय है, सबसे न्यारा है, केवल अपने ही स्वरूपमे है, ऐसा भिन्न एकत्व न सोचनेके कारण जीवोकी बाह्यमे दृष्टि हो जाती है और वे इन बाह्य पदार्थोंमे ज्ञान और आनन्द प्राप्त करनेकी आशा करते हैं। जैन धर्मने सब मूल बातें बतलाई हैं। हम अपने मोहको छोड़ें तो शान्ति रहेगी। मोह कैसे छोड़ा जा सकता है ? इसकी युक्ति वस्तुस्वरूपका ज्ञान बताया है। समस्त वस्तु अपने अपने स्वरूपमें हैं, अपने-अपने गुण पर्यायमे हैं। किसी वस्तुका किसी दूसरी वस्तुसे कोई सम्बन्ध नही है। किसी वस्तुका पर्याय किसी दूसरी पर्यायमे नही है। ऐसे स्वतंत्र स्वतंत्र सब पदार्थोंको देखो अपने एकत्वस्वरूपका दर्शन आवे तो जीवका मोह खत्म हो जाता है। भाई ! फिर मोह कैसे रहता है ? किसी चीजको जुदा मान लिया तो मोह कैसे रहा ? यह समझो कि सब जुदा जुदा हैं।

सब अपने-अपने उत्पादव्ययध्रौव्यमे रहते हैं, सब पदार्थ स्वतन्त्र स्वतन्त्र हैं। अपने स्वत्वको नही छोड़ना है। जो चीज सत्की है वह सदाके लिए रहती है। वस्तुका प्रतिक्षण एक एक परिणमन रहता है। वस्तु प्रत्येक समय परिणमती रहे यह वस्तुका खास काम है कि वह सदा परिणमती रहे। परिणमन ही वस्तुका स्वभाव है। नई शक्ल बनाना और पुरानी शक्ल बदलना यही तो वस्तुका स्वभाव है। पदार्थ परिणमनशील है, वे निरन्तर परिणमते ही रहेंगे। जो निरन्तर परिणमते है उनमे नई शक्ल आती और पुरानी बदलती रहती है। जो नई परिणति होती है उसे उत्पाद कहते है और जो पुरानी परिणति विलीन होती है उसे कहते है व्यय। पर पदार्थ सदा रहता है। इससे पदार्थ उत्पादव्ययध्रौव्यमय हैं। जो स्वरूप वस्तुका है वह बना रहता है फिर भी वह अपने आप बदलता रहता है, ऐसा ही सब पदार्थोंका ढग है। प्रत्येक चीजकी परिणति है। कोई चीज अपनी माननेसे हो

जाय तो यह नही हो सकता है, क्योंकि यह तो स्वरूपसे बाहरकी बात है, किसी चीजको मान लिया कि हमारी है तो यह मनकी बात है। पदार्थोंका परिणाम जाना ही काम है। पर वे पदार्थ तुम्हारे बन जायें ऐसा नही हो सकता है क्योंकि यह स्वरूपसे बाहरकी बात है। मुझपर तुम्हारा वश नही हो सकता है, ऐसा जब ज्ञानमे आता है कि परपदार्थ जुदा हैं, स्वतन्त्र हैं, किसीका किसीसे कोई सम्बन्ध नहीं है, ऐसा यथार्थ ज्ञान हो जानेसे सम्यग्दर्शन होता है। इससे मोह नष्ट हो जाता है। जैसे वृक्षकी जड कट जाने पर पेड कब तक हरा रहेगा इसी प्रकार मोहके दूर होने पर, अज्ञानके नष्ट हो पर ये रागद्वेष कब तक रहेंगे ? ये तो मिट जायेंगे। मोहके मिटने पर रागद्वेष मिट जाते हैं। दु खोंके देने वाले ये रागद्वेष ही हैं। दु ख देने वाले दूसरे पदार्थ नही हैं।

यदि रागद्वेष मिट गए तो दु ख मिट गए। यहाँ बैठे बैठे ही सुखी बन सकते हो। भीतरमे शुद्ध दृष्टि बन जाय तो आनन्दमग्न हो सकते हो। तो रागद्वेषके मिटनेसे ही सुख होते हैं। इस कारण अपने आपको निर्मम ही विचारना चाहिए। ममता करना एक पौद्गलिक परिणमन है, कर्मोंके अनुसार होने वाली चीजें हैं। वे मेरी हो ही नही सकती हैं, मेरा स्वभाव तो ज्ञान और आनन्दको लिए हुए है बाकी तो कषाय है। दूसरोमे मोह वाली परिणति है ऐसा विचारकर मैं अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होऊं।

मुक्त्वेदं कल्पनाजालं मनोऽसौ निश्चलं भवेत् ।
न क्लेशो निर्विकल्पः सन् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥३४॥

कहते हैं कि इन कल्पनाओंको छोड दो तो यह मन निश्चल हो जाता है, किसीका मन चलायमान हो तो आकुलतायें उत्पन्न होती हैं। आकुलतायें यदि दूर करनी हो तो मन को निश्चल बनाओ। आकुलतायें जड़से समाप्त करनेका उपाय सम्यग्ज्ञान है। जब तक सही ज्ञान न हो तब तक आकुलतायें होना, समाप्त नही होती हैं। सो भाई सम्यग्ज्ञान करके कल्पनाओंको मिटाना चाहिए। कल्पनाजालके मिट जाने पर ही यह मन निश्चल हो जाता है। इस मनके निश्चल हो जानेपर कोई क्लेश न रहेंगे। अपने शुद्ध ज्ञानस्वरूपका अनुभव रहेगा। इससे ही यह जीव निर्विकल्प हो जाता है, निर्विकल्प होनेपर इस शरीरके सारे क्लेश मिट जाते हैं। देखो जीवको यहाँ सुख है क्या ? कही आरामसे बैठ नही पाता है, आराम नही मिलता है तो भैया यह रागद्वेष हैं इसलिए आराम नही, आकुलतायें हैं। सो यह जीव आकुलतायें ही तो करता है, और मोह भी व्यर्थका ही है। मोह करनेसे अपनेको कुछ मिल जाता हो सो मिलता भी कुछ नही है। हजारोंको देख लिया है, कितने ही मुर्दे जला चुके होंगे, किसी किसीको ४०-५० मुर्दोंके जलानेका नम्बर आया होगा, किसी किसीको कम, तो ख्याल

रखो कि उन्होंने आजीवन मोह किया था पर मिला क्या ? इस जीवनमें मोहसे कुछ नही है जिन्हे मोह है उन्हे लाभ कुछ नही मिलता । कितने ही घरके लोग गुजरे होगे, रिश्तेदार गुजरे होगे, उनका ख्याल तो कर लो । उन्होने मोह किया था कि नही, राग किया था कि नही ? तो जो मर गये उन्हे क्या मोहसे कुछ लाभ मिला ? उनको कोई लाभ नही मिला । लाभ तो केवल जुदा रहनेमे है । जिसमे ये जीव भला समझते हैं उसमें टोटा ही पडता है । मन जब निश्चल नही होता है तो विकल्प उत्पन्न होते हैं, आकुलताएँ होती हैं । विपदासे न घबडावो, विकल्प न करो, सब जीव हैं, सबके साथ कर्म लगे हुए हैं । उनका ही कर्म उनके जीवनमे रक्षक है । किसीका भाग्य बन गया है तो अपने आपके उदयसे बन गया । तो उनका फल उनमे ही है । हमारा फल हमे ही है । जिन भाव कर्मोंके निमित्तसे कर्मबन्धन हुआ था उन कर्मोंके अनुसार तुम्हारी व्यवस्था चलती रहती है । इसी तरह सब जीवोके साथ कर्म लगे हैं । इसलिए उनकी कर्मोंके अनुसार व्यवस्था चल रही है । दूसरोका भार अपनेमे न लाना यही मनको निश्चल बनानेका उपाय होगा और इससे ही स्वयं निर्विकल्प हो सकेगा । दु.खों की जड तो मोह ही है । तो इस मोहको त्यागकर अपने स्वरूपको देखो और अपनेमे अपने लिए अपने आप सुखी होओ ।

देखो जैसे एक दर्पण है तो दर्पणका स्वरूप दर्पण ही है । जो स्वरूप अपने आप दर्पणमे है वह उस दर्पणका स्वरूप है । जैसे स्वच्छता झलझलाहट आदि ये दर्पणके स्वरूप हैं किन्तु सामने कोई चीज आ जाय तो दर्पणमें उसकी छाया पडती है तो भेद करके बतावो— दर्पणका स्वरूप स्वच्छता है कि प्रतिबिम्ब ? दर्पणका खुदका स्वरूप झलझलाहट है, प्रति बिम्ब पराई बात है, वह दर्पणका स्वरूप नही है । इसी तरह आत्माका स्वरूप केवलज्ञान है । जान लो, शुद्ध जान लो यही आत्माका स्वरूप है पर जब कर्मोदय सामने होता है तो इस जीवके क्रोध, मान, माया, लोभ इत्यादि उत्पन्न हो जाते हैं । यह तो बतलावो कि क्रोधभाव भी इस जीवका स्वरूप है या मात्र ज्ञान ही इस जीवका स्वरूप है ? जीवका स्वरूप क्रोधभाव है कि ज्ञानभाव है ? जीवका स्वरूप ज्ञानमात्र है । क्रोध प्रकृतिके उदयका निमित्त पाकर ये क्रोध भरे हुए हैं । क्रोध मेरा स्वरूप नहीं है । मैं तो मात्र ज्ञानस्वरूप ही हू, ज्ञान तो ज्ञान ही है, इससे क्रोध नही बन जाते हैं । ज्ञानस्वरूप तो मेरा ही स्वरूप है । इस ज्ञानस्वरूप की ओर ही झुकाव हो तो वह ज्ञानमे समाता जायगा । ज्ञानका सुधार अपने आपसे ही होगा । अपने ज्ञानका सुधार हो ऐसा यह केवल अपने आपके समाधान पर निर्भर है । अपने आपका स्वय अनुभव करो । जिसके ज्ञान होता है उसके क्लेश खतम हो जाते है और उसे मोक्षके मार्गमे आना पड़ता है । सबसे प्रथम कर्तव्य यह है कि अपने ज्ञान

से अनुभव बनाकर अपने आपमें यह अनुभव करते रहो कि मैं तो ज्ञानमात्र हूं, ज्ञानस्वरूप ही हूं— ऐसा जब अनुभव बन जायगा तो अपने आपमें स्वाद आ जायगा और उस जीवको मोक्षमार्ग मिल जायगा। मोक्षमार्गमें मिलना मेरा काम है क्योंकि शुद्ध बात मेरे स्वरूपमें ही मिलेगी। सबसे बड़ा महत्व लोग देहरक्षाका समझते हैं तो क्या देहरक्षासे आत्माके स्वरूपका अनुभव होगा ? नहीं, क्यों जी, यहांसे मरकर चीनमें ही अगर पैदा हो गए होते तो उनके उल्टे विचार होते, यह सब मोहका स्वाङ्ग है। अपना लक्ष्य केवल अपने आत्माकी ओर होना चाहिए आत्माका जो स्वरूप है उसका अनुभव करना, बस इससे ही आनन्द है। शरीर तो मुझसे पृथक् है। देखो भैया! सब आकर इस मूर्तिके दर्शन करते हैं और इस मूर्तिके दर्शन करनेसे ही भगवानके दर्शन होते हैं। यदि भगवानके स्वरूपका स्मरण होगा तो आत्मा के स्वरूपका भी स्मरण होगा। आत्माका स्मरण होनेसे मोक्षमार्ग निकट है। सारे विकल्पोंको छोड़कर अपने ज्ञानस्वरूपका अनुभव करो इसीमें कल्याण है। यदि इतना कर सके तो यही धर्म है, अपना परम कर्तव्य है। अपने आपको सम्भालनेके ६ कर्तव्य हैं—(१) भगवानकी पूजा करना, (२) अपने गुरुका सत्कार करना, (३) स्वाध्याय करना, (४) नियम संयम करना, (५) इच्छाओंका निरोध करना, (६) यथाशक्ति दान देना।

ये ६ काम रोजके हैं। इन बातोंको करते हुए अपना स्वरूप लक्ष्यमें लेना, यही अपने जीवनको सफल बनानेका उपाय है।

ज्ञान ज्ञानं न कोपादि तत्तज्ज्ञानं न सुस्फुटम्।
स्वस्मिन् ज्ञानेस्थिरीभूय स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥३५॥

इच्छाओंके निरोध करनेका नाम तप है। इच्छाओंका निरोध प्रत्येक कल्याणार्थीको करना चाहिए, चाहे वह गृहस्थी हो, चाहे साधु हो, अपनी-अपनी पदवियों अपनी योग्यताके अनुसार इच्छाओंका निरोध करना चाहिए। गृहस्थी इच्छाओंका निरोध कैसे करें ? उनकी इच्छानिरोधकी मुख्य बात यह है कि गृहस्थीका सम्बन्ध है कमाईसे, धनके उपार्जनसे, सो जितनी आय उनकी हो उस आयके चार छः भाग कर उसमें एक भाग विद्यादानके लिए रखो, धर्म करनेके लिए रखो, दो-तीन भाग अपने समस्त खर्चेके लिए रखो, एक दो भाग विवाह आदि समयोंके लिए सचित रखो।

इस प्रकारके बटवारेमें जो भी भाग प्राप्त हो उसमें ही अपनी गुजर बसर करना, उससे अधिक भागकी इच्छा न करना यही गृहस्थीका तप है। गृहस्थीकी तपस्याकी मुख्य बात यह है कि, दूसरोंके भोगको देखकर गृहस्थ ललचा न जावे। इस लालचसे गृहस्थीको बड़े पाप हैं जिसके कारण गृहस्थको दुःखी होना पड़ता है और अनेक कर्मबन्ध होते हैं। इन

इच्छाओंका निरोध करनेमे गृहस्थ अपने अन्तरमे ऐसी हिम्मत रखता है कि चाहे कैसी भी परिस्थिति आवे, चाहे सूखे चने ही खाकर गुजर करना पडे, पर अपने धर्मको न छोडूंगा। परमार्थसे आत्मस्वरूपकी आराधना, प्रभुस्वरूपकी उपासना और व्यवहारमे धर्म है, ये सब सच्चाईसे और ईमानदारीसे चलते हैं और सुव्यवस्थित होनेके लिए बडे खर्च भी कर डालते हैं तिस पर भी अन्तरव्यवस्था सही नही बन पाती। इसका कारण यह है कि सच्चाई और ईमानदारीका त्याग कर दिया। सुरक्षाके लिए बड़े-बड़े लोग तैनात होते है। इनके लादनेकी क्या जरूरत थी जब कि अन्य देशोंमे लौकिक ईमानदारी काफी रखी जाती है। बाजारोमे दुकान खुली रहती हैं, सामान पडा रहता है, कीमत लिखी रहती है, ग्राहक लोग अपने मन-पसद चीजको लेते रहते हैं। ग्राहक लोग सारी कीमत दुकानकी पेटीमे डाल देते हैं। कोई बेचने वाला नही, खबरदार वाला नही, फिर भी काम चलता रहता है। यहाँ प्राय. अनेकों मनमे बेईमानी आ गई तो लो कभी बाहर कही जाते हैं तो दुकानमे ताला बन्द करके जाते हैं, अपनी सारी व्यवस्था करके जाते हैं। अब यहाँ व्यवस्था बनाना कठिन है, वे बात आ नहीं सकती। कभी वह जमाना था कि द्वार खोलकर भी कही चला जाय पर विश्वासके कारण तो सुगम व्यवस्था बनी रहती थी। फिर भी व्यवस्थामे हम सच्चाई और ईमानदारी की अधिकसे अधिक व्यवस्था करें तो लोकधर्मका पालन है। जब तक इच्छावोंका निरोध नही होता तब तक सच्चाईका पालन होना कठिन है। पर जिसका आत्मासे प्रेम है आत्म-कल्याणसे प्रेम है, ऐसा पुरुष अन्य तृष्णाओंकी उपेक्षा कर देता है और अपने धर्मपालनमे दृष्टि रखता है, मेरा पूरा तो मेरी आत्मासे ही पड़ेगा। फिर इस जीवनमे आरामके लिए किसी भी प्रकारका अन्याय या अत्याचार करके, धन संचित कर लें, यह तुम्हारा विवेक नहीं है। सो गृहस्थकी इच्छानिरोध यही है कि न्यायसे धन कमाते हो, बंटवारेसे गुजारेके लिए बजट बना ले, उसमे ही संतोष करे, धर्ममे रुचि बराबर बनाये रहे, यही है इच्छाओंका निरोध। साधुवोंका पूर्णतया इच्छानिरोध तप हो सकता है। इच्छाओंका निरोध करना ही तप है। उपवास, व्रत, सयम कर लिए जायें, गर्मी सर्दीके कष्ट सह लिए जायें, पर अन्तरमे इच्छाओंको रखा जाय तो यह तप नही है।

जैसे कोई संन्यासी था। प्राणायाम करके दो दिन तक संन्यासीके ही रूपमे समाधि बना लेता था। एक बार राजाने कहा कि महाराज, मेरे सामने समाधि लगावो। समाधि ठीक होगी तो मुंहमांगा इनाम दूंगा। संन्यासीने समाधि लगायी। समाधि तो लगा ली, पर उससे पहले यह इच्छा आयी कि समाधि करके मैं राजासे पारितोषिक मांगूंगा। राजाके घुड़सालमे एक घोड़ा बँधा था, उसके मनमे आया कि मैं यह घोड़ा ही मांगूंगा। तो वह

घोडा उसके हृदयमे समा गया। समाधि छोडते ही एकदम बोला—अब लावो काला घोड़ा।" तो भैया! बतलाओ यह समाधि है क्या? एकदम यह बात निकली। कितना ही व्रत, तप, संयम आ जाय, पर इच्छाएँ रहती हैं मनमे, तो यह तप नहीं कहलाता। इच्छाओंका निरोध करना ही तप कहलाता है। इस तपसे ही कर्मोंकी निर्जरा होती है। इस कारण इच्छानिरोध मय तप करके, शुद्ध हो करके मैं अपने आपके स्वरूपको देखूं।

तप इच्छानिरोधोऽत. कर्म निर्जीर्यते ततः।
तपस्तप्त्वा च शुद्धः सन् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥३६॥

लोग दुःखोंसे घबड़ाते हैं, पर यह अनुभव करें कि मेरी प्रगति होगी तो इन दुःखोंके प्रसादसे ही होगी। विषयभोगोंके सुखके प्रसादसे किसीने प्रगति नही की। संसारमे ये दु.ख और सुख एकके बाद एक लगे रहते हैं। कोई ससारी जीव ऐसा नहीं मिलता कि जिसको निरंतर रात-दिन दुःख ही दु ख रहते हो, और ऐसा भी कोई संसारी जीव नही मिला जो निरंतर रात-दिन सुखी ही सुखी रहता हो। बीचमे कितनी ही बार सुख आता है और कितनी ही बार दुःख आता है। इन सुख दु खोमें से देखा जाय हमारे उद्धारके कारणभूत दु.ख तो हो जायेंगे, किन्तु ये विषयभोगोंके सुख नही होंगे। इन इन्द्रियजन्य सुखोसे जो प्रीति करते हैं वे अपने ज्ञानको पहिले बिगाड लेते हैं। उनमे समता नही रहती, धैर्य नहीं रहता, शाति नही रहती। वे क्षुब्ध हो जाते हैं और विषय सुखोमे ही लालायित हो जाते हैं, विषयांध बन जाते हैं, उनसे प्रगति किसीकी नही। फिर देखो दुःखके बाद सुख आता है और इस सुखके बाद दु·ख आता है, यह सब ससारी जीवोकी बातें हैं। भला जिसके बाद दु ख आयगा वह चीज आपको पसंद है कि जिसके बाद सुख आयगा वह चीज आपको पसद है? जो बुद्धिमान होते हैं वे ऐसे टोटेको लाभसे ज्यादा पसद करते हैं कि जिसके बादमे कई गुना लाभ निश्चित है और ऐसा लाभ कम पसद करते हैं कि जिसके लाभके बाद कई गुना नुक्सान हो। ये संसारके सुख ऐसे हैं कि जिनके बाद दुःख आते हैं और ये दुःख ऐसे हैं कि जिनके बाद सुख आता है। इसलिए सुखसे अधिक दुःखका महत्त्व है। जब रावण बहुरूपणी विद्या सिद्ध कर रहा था युद्धके कालमें तो कुछ राजाओंने श्रीरामसे कहा कि रावण बहुरूपणी विद्या सिद्ध कर रहा है। यदि यह विद्या उसकी सिद्ध हो गयी तो उसका जीतना कठिन है। इसलिए उसकी साधनामे बाधा डालना चाहिए। राम बोले—वह तो मन्दिरमे बैठा है, विद्या सिद्ध कर रहा है, यह उचित नहीं है कि बाधा डालें। फिर भी मन चले राजा उसे बाधा डालने पहुचे। बड़ा उपसर्ग किया, उपद्रव किया, वहां आचार्य बतलाते हैं कि यदि रावणके ऊपर दुःख नही आते तो उसे बहुरूपणी विद्या विलम्बसे सिद्ध होती। पर उस समय बहु-

विद्या तत्काल ही सिद्ध हो गयी। बडे-बड़े मुनीश्वर तपस्या करते हैं तो उन पर बड़े बड़े उपसर्ग आते हैं, कही सिंहने खाया, कहीं दुष्टोने सताया, कही समुद्रमे डुबो दिया, कही आगमें पटक दिया, पर वे मुनि तत्काल ही मुक्तिको प्राप्त हुए। दुःखोके कारण ही बड़ी जल्दी उन्नति को प्राप्त होते हैं। तो हम दुःखका तो स्वागत करें और सुख आता हो तो आवे और न आता हो तो न आवे, दुःख तो केवल कल्पना मात्रसे ही आते हैं, बाहरके पदार्थोंसे दुःख नही आया करते हैं। वह चीज तो जैसी है सो है। जैसी परिणति है सो परिणति है, उनसे क्लेश नही आते हैं। क्लेश तो अपनी कल्पनाओंका जाल है। अपना ख्याल बनाते हैं और दुःखी हो रहे हैं। सो उन दुःखोको समतासे सह लेना भी तप है। अंतरंगमे इच्छाओंका न होना भी तप है। इस तपस्याके प्रसादसे, इस सहनशीलताके प्रसादसे यह आत्मदृष्टि होती है, आत्मा प्रबल होती है।

जैसे अग्निके द्वारा तपाया गया सोना मैल छोड़ देता है, शुद्ध निर्मल हो जाता है इस प्रकारसे तपोंके द्वारा यह आत्मा शुद्ध हो जाता है। और शुद्ध होनेका यह फल है कि यह जैसा है तैसा ही अपने स्वरूपमे रह जाता है। इसीको कहते हैं परमस्वास्थ्य। स्वास्थ्य का अर्थ है कि स्वमें रहकर आत्मामें ठहर जाये, रम जानेका नाम ही स्वास्थ्य है। शरीरके तन्दुरुस्त होनेको स्वास्थ्य नही कहते हैं। ऐसा है कि आत्मा अगर स्वस्थ है तो शरीर भी स्वस्थ होता है। इस कारण शरीरकी तंदुरुस्तीको ही स्वास्थ्य नहीं कहते हैं, शुद्ध पुण्यका फल स्वय स्वास्थ्य है। राम अपने आप सिद्ध हो जाते हैं। वे अपनेसे परकी परवाह नही करते। तो भैया! अगर परमे उपयोग होगा तो आकुलताएँ होगी। हम यदि आकुलताएँ न बनाएँ तो आनन्द मिलता है। हम अगर शुद्ध आनन्द चाहते हैं तो कर्मोंकी निर्जरा चाहिए। संसारके दुःखोंसे अगर मुक्ति चाहते हैं तो हमारा यह कर्तव्य है कि अपने सत्यस्वरूपको जानकर उसमें ही लीन हो जावें। जैसे कोई धन चाहता है तो जो धनकी चर्चा है, जो धन पानेके सोर्स हैं उनको अपनाता है। जैसे कोई मिनिस्टर बन जाय, कोई राजा बन जाय, कोई कुछ बन जाय। उनसे इस तरहसे धन पानेका उपाय बन सकता है। धन पानेका उपाय यह है कि पहिले धनके सोर्सको, मनुष्यको जानें उस राजाकी श्रद्धा करें, हम उसकी रुचिके अनुकूल आचरण बनाएँ तो धन प्राप्त हो जाता है। इसी तरह जिसको अपनी आत्माको प्राप्त करना हो तो आत्माके ज्ञानसे आत्माकी श्रद्धा करे और जैसा आत्माका स्वरूप है तैसा ही अपने आपको बनाये तो निश्चय है कि आत्मसुख आत्मतत्त्व प्राप्त हो सकता है। इस स्वास्थ्य की ही वृद्धिसे यह जीव आनन्दमग्न हो सकता है सो अपने आपमे रमकर अपनेमें अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होऊं।

अग्निना काञ्चनं यद्वत् तप्यमानस्तपोऽग्निना ।
शुद्धीभूय लभै स्वास्थ्यं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥३७॥

कर्मोंका संचय होता रागपरिणतिसे और कर्मोंका विनाश होता है विरागपरिणतिसे। जो रागी है वह कर्मोंमे बँधता है, पर जो विरागी है वह कर्मोंसे छूटता है। कर्म एक पौद्गलिक चीज है। जैसे मुझमे रागद्वेष भाव होते हैं वैसे ही तत्काल कर्म मुझमे बँधते हैं। जब उनके उदयका समय आता है तो मुझमे आटोमेटिक रागद्वेष प्राप्त हो जाते हैं। श्रीसमयसार जी मे श्री कुन्दकुन्दाचार्य जी कहते हैं कि जो रागद्वेष करते हैं वे कर्मोंसे बँध जाते हैं और जो वीतरागी होते हैं वे कर्मोंसे छूट जाते हैं। यही देख लो कि जो राग करता है वह बँध जाता है और जो वीतरागी होता है वह कर्मके बंधनोंसे मुक्त हो जाता है। राग न हो यही मुक्तिका कारण है। जितने भी दुःख हैं वे हमको रागद्वेषके कारण ही प्राप्त होते हैं। रागी हैं और दुःखी हो रहे हैं। अधिक आय हो और दुःख बन जायें तो वहाँ भी यह दुःख रागका ही कारण है। भैया! यदि राग है तो समझो विवाह बंधनमे बंध गया। जिसके कोई राग नही है वह आनन्दमग्न है। यदि राग न हो तो दुःख समाप्त है। जो रागी व्यक्ति होता है वही कर्मोंको इकट्ठा कर लेता है। मेरी विराग परिणति हो मायने ज्ञानदृष्टि रहे। ज्ञानदृष्टिके बिना आत्मशान्ति तो नही प्राप्त हो सकती।

एक सेठ सेठानी थे। सेठ कपडेकी दुकान वाला था, जिसे बजाज कहते हैं। सेठानी जरा गर्म मिजाजकी थी और सेठ शांत था। जब सेठजी भोजन करने आते तो सेठानी भोजन के समय ही रोज चर्चा छेड देती थी, अमुक चीज अभी नही बनवाया, कानकी कुण्डल, नाक की बाली और गलेकी माला इत्यादि सोने चांदीकी चीजें नही बनवाईं, बहुत दिन हो गए। रोज वही चर्चा छेड देती थी। एक दिन सेठ अटारी परसे कपडे पहिनकर सीढीसे नीचे उतर रहा था। सेठानीने क्रोधमे क्या किया कि जो दालका धोवन था उसको सेठकी पगडीके ऊपर डाल दिया। अब तो सेठ सेठानीसे बोले कि गरजी तो बहुत थी पर बरसी आज हो। सेठजी बड़े प्रेमसे उत्तर देते हैं। शांतिका यह प्रताप हुआ कि सेठानी सेठके चरणोंमे गिर पडी और बोली कि तुम देवतास्वरूप हो, तुमको जो कुछ परेशान किया, माफ करो।

रागद्वेष मोहकी जो विशेष परिणति है उस परिणतिसे मुक्ति नही मिलती, आनन्द नही प्राप्त होता, शांति नही प्राप्त होती है। विराग परिणतिसे कर्मोंका क्षय होता है। तो रागोंसे भिन्न अपने आपको निरखकर अपने आत्मस्वरूपमे रमण करो। राग छोडनेका उपाय यह है कि आत्मस्वरूपका अनुभव करो कि मैं राग द्वेषोंसे भिन्न केवलज्ञानस्वरूप हूं, मेरी वाणी आदि कुछ नही है. मेरा ढांचा केवलज्ञानस्वरूप है। ऐसा विलक्षण यह आत्मतत्त्व

पदार्थ है कि वह सर्वत्र ज्ञानसे ही रचा गया है । वह अज्ञान तो रागद्वेषोंके रहनेसे है । अपने को रागद्वेषोसे भिन्न अनुभव करो । देखो जितना कषाय उत्पन्न होता है वह अपने अज्ञानसे अर्थात् अपनेको और-और रूप माननेसे होता है । मैं धनी हू, मैं त्यागी हू, मैं गांवका मुखिया हूं, मैं अमुक हूँ, इस प्रकारकी भिन्न-भिन्न कल्पनाएँ रहनेसे ही कषायभाव उत्पन्न होते है । उन कल्पनाओंके योग्य जब लोगोसे व्यवहार नही पाते है तब उनमें गुस्सा आ जाता है और दूसरा कारण गुस्सा होनेका क्या है ? तो अपने आपको और और रूप मानना यही पापका बीज है । अपनेको यदि मात्र ज्ञानस्वरूप माने तो यही उत्थान है सो अपने आपको रागादिक भावोसे भिन्न अनुभव कर ज्ञाताद्रष्टामात्र रहकर अपनेमें अपने आप स्वयं सुखी होऊं । बाह्य पदार्थोंमे हठ करना तो क्लेशका ही कारण है । यह यो नही चलना, यह यो नही करता इत्यादि अनेक प्रकारके हठ करनेसे तो विपत्तियां ही आती है । अहंकार विपत्तियोका ही कारण है ।

आपको एक चुटकलेकी बात सुनायें कि किसी घरमे पति-पत्नी थे । पत्नी हठीली थी । प्राय: स्त्री जातिका स्वभाव ही हठ करना होता है । यद्यपि स्त्रियोकी चलती नही है, पर उनका स्वभाव कुछ हठ करना होता है । एक दिन सास बहूका झगडा हो गया । बहूने सोचा कि सासको कुछ मजा चखाना चाहिए । सो पेट दर्दका बहाना करके बीमार बन गयी, अब वह उदास बन गयी, हाय हाय करने लगी । सेठ गया, बोला—यह दर्द कैसे मिटेगा ? सेठने बहुत कोशिश की, पर पेटका दर्द न मिटा । वह मिटे ही क्यो ? वह तो बहानेका दर्द था । सेठानीने कहा कि मुझे एक देवता बता गया है कि जो तुमसे प्रेम करता हो उसकी माँ यदि सिरके बाल मुडाकर और मुह काला करके सुबह सूर्योदय तक देखने आये तो मेरा यह दर्द मिट सकता है, नही तो मर जाऊँगी । सेठने जल्दी ही सेठानीकी चालाकी को समझ लिया । सेठने क्या किया कि अपनी ससुरालको झट पत्र लिख दिया कि तुम्हारी लडकी बीमार है । देवताने ऐसा बताया है कि लडकीकी माँ यदि बाल मुडाकर और मुंह काला करके सूर्योदयके पहिले आ जाय तो लडकी ठीक होगी, नही तो मर जायगी । अब तो लडकी की माँ ने सिर मुडा डाला, मुह काला कर लिया और सवेरा होते ही वहाँ पहुच गयी तो स्त्री अपने पतिसे कहती है कि "देखो बीरबानीकी चाले, सिर मुंडा और मुँह काले ।" तो पति कहता है कि "देखो मर्दोंकी फेरी, अम्मा मेरी कि तेरी ।"

तो इस लोकमे हठसे बडी मुँहकी खाना पडता है । किसी बालकसे भी हठ करो कि यह बालक मेरे आधीन है तो यह हठ करना उचित नही है । सब जीवोको अपने समान स्व-रूपी मानकर उनसे ही पूर्ण सद्व्यवहार रखना चाहिए और परमार्थसे तो मैं शुद्ध ज्ञायकस्व-

रूप हूँ । मेरी आराधना रहना चाहिए, यहाँ तो सब नाटक है । ये सब मायारूप है, यह मैं तो केवल ज्ञानमात्र हू ऐसी अपनी उपासना रहनी चाहिए । जैसे भी बन सके तन, मन, धन, वचनसे व्यवहारमे दूसरे जीवोकी सेवा करनी चाहिए । दूसरे जीवोकी सेवा यह है जैसे कि वे दूसरोको समझावें कि मांस मदिरा वगैराका प्रयोग न करें, जीवोकी हत्या न करें । तो उन जीवोंको प्राणाघातसे बचाना ही दूसरे जीवोकी सेवा है । सो यदि कोई कहे कि मैं बलि करता हूँ यह धर्म है । तो भैया ! वह कोरा भ्रम है । अरे धर्म नही है, वह अधर्म है । उसका त्याग करो, मांस मदिराके प्रसंगमे कोई आनन्द नही आता है । उनका त्याग करनेसे ही अपना भला है ।

विरागपरिणत्या मे जायते कर्मण क्षयः ।
रागभिन्नमतो विन्दन्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥३८॥

यह जो दुनिया है यह कबसे चली आ रही है, इस बातपर विचार करें तो अतमे यह बात निकलेगी कि यह दुनिया अनादिसे चली आ रही है क्योकि यदि किसी दिन यह बनाई गयी है तो यह बतलाइए कि जिस दिन यह बनाई गयी है तो यह किस चीजसे बनाई गयी थी ? कुछ चीज तो पहले भी थी उसीका नाम ससार है । जैसे यह दुनिया अनादिसे चली आ रही है तो दुनिया ही तो हम और आप कहलाते, हम और आप भी तो अनादिसे चले आ रहे है । जिस जगतके जीवोको देख रहे है वे ऐसे ही पर्यायमे रहते हुए चले आ रहे हैं । कभी यह जीव पशु बन गया, कभी पक्षी बन गया, कभी पेड पौधे बन गया और कभी जीव-जन्तु बन गया । आज यही जीव मनुष्य बन गया । उन सब जीवोकी अपेक्षा यह मनुष्य का जन्म कितना श्रेष्ठ है ? ये पशु-पक्षी बेचारे तो बोल भी नही सकते, एक दूसरेकी बात भी नही समझ सकते । कही रोग हो जाए पेटमे और दवा लोग करें मुहमे, दर्द तो उनके है पेट मे और दवा करें मुहमे उनके मुहको दागें तो वे बेचारे बोलकर अपने दर्दको नही बता सकते ।

इन कीडे मकौडेको तो पूछना ही कौन है ? चलते हुएमे नजरसे देखकर कौन चलता है ? इन कीडे मकोडे इत्यादिसे हम कितना श्रेष्ठ है ? इसका अंदाज तो लगाओ । हम अपनी बात दूसरोसे कह सकते हैं दूसरोके हृदयकी बात हम समझ सकते है । इससे अधिक और बात क्या होगी कि हम धर्मकी बात भी जानते है, करते और समझते है । यह श्रेष्ठ जीवन इसलिए नही मिला कि परिवारके मोहमे पडे रहे या अपनी इन्द्रियोके विषयभोगोमे ही बने रहे, इसके लिए यह जीवन नही मिला । यदि ऐसा ही जीवन रहा तो पशुओके जीवनसे क्या

अन्तर है ? पशु भोजन करते हैं, मनुष्य भी भोजन करते हैं, मनुष्य सोते है, मनुष्य विषय-भोग करते है, पशु भी विषयभोग करते हैं, पशुवोको डर है तो मनुष्योको भी डर है, पशुवों से मनुष्योमें श्रेष्ठ बात क्या आयी ? ये मनुष्य तो पशुवोसे भी गये बोते है । पशुवोंका अगर पेट भर जाता है, घास दो चाहे खाना, रख देंगे, खावेंगे नही । मनुष्योके तो तृष्णा हो जाती है । कितना भी मनुष्योका पेट भरा हो; मिठाईं, चटपटी वगैरा आ जाय तो तुरत खा लेंगे । चाहे तोला भर ही खावे, पर खा लेंगे । यह उन मनुष्योकी चर्चा चल रही है जो धर्मसे बाहर है । निद्रा लेनेमे देखो तो पशु-पक्षी सब बहुत थोडी निद्रा लेते हैं । आप लोगोने पशु पक्षियोको सोते हुए नही देखा होगा, जब देखो तब वे जगते हुए ही मिलते हैं । जहांपर जरा सी भी आहट न हो वहांपर जरासी निद्रा लेते हुए पशु पक्षियोको देखा होगा । मनुष्यको तो नीदमें खबर हो नही रहती है । चाहे जितना हल्ला मचावो वे जगते हो नही है । तो नीदमें भी मनुष्योसे पशु-पक्षी ठीक है ।

विषयभोगोंकी बात देखो तो देखने सुनने, सूघनेमे देखो तो मनुष्योके तृष्णा है कि नही ? विषयभोगोकी बात देखो तो सालभरमे १-२ बार ये पशु-पक्षी विषयभोग करते है और शांत हो जाते है । पर मनुष्योको देखो बारहो महीने, न कोई पर्व समझते है, न रात, न दिन समझते हैं, कामवासनाएँ बनाए रहते है । अब यह बतलावो कि मनुष्य श्रेष्ठ हुआ कि पशु श्रेष्ठ हुए ? अभी तक तो पशु ही श्रेष्ठ मालूम हुए । अगर कोई मनुष्य धर्मसे प्रीति करे, धर्मकी ओर झुके तो उसकी श्रेष्ठता मालूम होगी । यह जीव अनादिकालसे कर्मोंके बंधनमे फसा हुआ चला आ रहा है और साथ ही साथ कभी कुछ बना, कभी कुछ बना और अपने आपको दु'खी करता चला आ रहा है । यह जीव यदि सूकर बन गया तो उनके बच्चोसे जिन्हे घिटला कहते है प्रेम करने लगता है । इसी प्रकार यह जीव गाय बन गया तो बछडेसे, पक्षी बन गया तो अंडोसे, मनुष्य बन गया तो कुटुम्ब परिवार इत्यादिसे, बच्चे बच्चियोसे प्रेम करने लगा । इसका है कौन ? जिस भवमे जाता है उसके संगसे प्रेम करने लगता है । अगर इस भवसे छूट गये तो फिर कौन किसकी खबर लेता है ? ये बच्चे भी छूट जायेंगे । आपने यह मनुष्य जीवन पाया है, थोडे दिनका सम्बन्ध है, इस जीवनमे यदि कुछ कर लिया कि जिससे कर्म कट जायें, जिससे संसारके क्लेश मिट जायें तो सफलता है और अगर इन इन्द्रियविषयोमे ही लगे रहे तो जीवन बेकार है । और भी देखो मनुष्योको छोडकर और जीव यदि विषयोमे लगते हैं तो उनकी एक विषयमे ही प्रवृत्ति होती है मुख्यतासे । जैसे हाथीकी मुख्यता होती है स्पर्शन इन्द्रियके विषयसे । विषयसे हाथी पकड़ा जाता है । गड्ढेमे बांस पाट करके शिकारी लोग ऊपर कागजकी एक हथिनी बना देते हैं । जब हाथी जंगलसे

उस कागजकी बनी हुई हथिनीको देखता है तो उसके पास आता है। जब उसके पास आता है तो बाँसोके द्वारा पटे हुए गड्ढेमे गिर जाता है। फिर वे पकड़ने वाले ८-१० दिन बाद जब वह हाथी शिथिल हो जाता है तो उसमे गैल बनाकर अकुश लेकर उसके सिरपर बैठकर निकाल लेते है। तो हाथी एक इन्द्रियके विषयमे आकर फस गया, बंधनमे पड गया। दूसरे इन्द्रियमे रसना है जीभ। इस रसना इन्द्रियमे ही पड़कर मछलियाँ पकड़ी जाती है। उनके पकड़ने वाले कोई मांस वगैराका टुकडा या कोई खानेके अनाज वगैराकी चीजें डालकर पकड लेते है। तो उन मछलियोने प्राण गवा दिए तो उस रसनासे ही तो।

यह चर्चा हो रही है कि विषयसे अपने प्राण गवा देते हैं। भवरा काठको भेद देता है, पर गन्धके लोभमे पड़कर कमलके फूलमे रातको बन्द हो जाता है। देखो भवरेमे इतनी ताकत होते हुए भी वह मस्त होकर कमलके फूलमे बध जाता है। देखा होगा रातमें पतंगे दीपकमे जलकर मर जाते हैं। उन पतंगोको नेत्र इन्द्रियका विषय तेज लगा, जिसमे वे उस दीपककी लौ को दूरसे न देख सके, उस ही मे पड गये। उनको वही लौ पसंद लगती है, उसीमे ही वे जल जाते है। हिरन और सांपोको देखा होगा पकड़ने वाले बीन बनाकर और और कई सुन्दर राग करके उनको वशमे कर लेते है। ये जीव १-१ इन्द्रियके वश होकर अपने प्राण गंवा देते है। पर मनुष्यको देखो यह पाँचो इन्द्रियोके वशमे पडा हुआ है। पचेन्द्रियके आधीन होकर यह मनुष्य अपना जीवन गवा रहा है। उन्हे तो यह चाहिए कि वे धर्म करें, दया करें, प्रभुकी भक्ति करें, तपस्या करें, सयम करें, ऐसा भाव बना लें जिससे कि वे कर्मोंसे मुक्त हो पर वे वैसे ही है जैसे कोई अधा खजैला आदमी हो, भिखारी हो, उससे कहा जाय कि इस नगरीमे चला जाय और मनमाना भर पेट भोजन करे। एक गाँव मे चारदीवारी घिरी थी, उस चार दीवारीमे कुछ दरवाजे थे। वह उनका कोर पकड कर चलता है। जब दरवाजा आता है तब वह हाथ उठाकर सर खुजलाने लगता है और पैरोसे चलना जारी रखता है। फिर हाथ रखकर चलने लगता है, आगे जब दरवाजा आ गया तब सर खुजलाने लगा। इस तरहसे वह दु ख-ही दु ख पाता रहा।

इसी तरह यह जीव ८४ लाख योनियोमे भ्रमण कर रहा है। जब यह मनुष्यभव आता है तो विषयभोगके खाज खुजलाने लगता है, उन विषयभोगोमे ही मस्त हो जाता है। फिर खोटे परिणाम करके मर जाता है। इस तरहसे जन्ममरणके चक्करमे पडा रहता है। इस ससारसे छूटने के नाना अवसर आते है, पर मनुष्य उस समय असावधान हो जाता है। जो मनुष्यजन्म पाया है तो भीतरमे ऐसा उपयोग बनाओ कि प्रभुकी भक्तिमे लग जाओ और व्यवहारसे ऐसा चरित्र बनाओ कि अपने द्वारा कोई जीव दु खी न हो सके। सब सुखी रहे,

उनका दिल न दुखे, किसी की झूठी गवाही न दो, झूठ न बोलो, कोई चीज चोरीसे न हडप जाओ, किसी मनुष्य पर बुरी दृष्टि न हो, अनावश्यक धनसंचय न किया जाय। यदि इस तरहका जीवन व्यतीत किया तो समझो कुछ काम किया।

अब तक बतलावो तुम्हारी उम्र इतनी हो गयी, नाना खेल देख लिया, किस किसका सयोग हुआ और किस-किसका वियोग हुआ, क्या क्या रग देखे ? इस जगतके सारे रग देख लिए, समस्त नाच और रहस्योको देख लिया। किसीसे शाति मिली ? किसीसे भी तो शान्ति नही मिली। जिसके पीछे मरे, उसने ही तुम्हे सताया। अपनेसे उनमे कुछ भी नही जाना और न तो कुछ उनसे अपनेको मिलता ही है। तब फिर अपने एक स्वरूपको देखो। अपना स्वरूप प्रभुका ही स्वरूप है, ज्ञान पिंड है, आनन्दघन है, सबसे निराला है, ज्ञान ज्योतिर्मय है। जिसमे क्लेशोका नाम नही, जहाँपर कोई आकुलताएँ नही। आत्म-कल्याणमय है, पूर्ण मंगलमय है। सच पूछो तो तुम्हारे लिए तुम ही हो और मेरे लिए मैं ही हू। ब्रह्म स्वरूप भगवान वह अन्यत्र नही है। मैं हू, स्वतः हू, स्वयं हू, ऐसा उपयोग बनाकर रागद्वेषोसे कुछ अवकाश मिले तो अपने स्वरूपके दर्शन होगे। सो भाई विषयोसे विश्राम लो और अपने आपके स्वरूपमे रमकर यथार्थ आत्मपरिचय पाओ। फिर जब प्रवृत्ति मे आवो तो सब जीवोपर अच्छा व्यवहार करो। जो खोटी बातें है उनको छोड दो। इन कषायोसे तो बरबादी ही है। क्रोध न करो, घमड न करो, छल, कपट, ईर्ष्या, द्वेष न करो, तृष्णा न करो, कामवासनाकी बातें न करो, जितना हो सके इन विषयोसे हटकर, ज्ञानके अर्जनमे लगो, प्रभुकी भक्तिमे लगो। यही इस जीवनका सार है। ऐसा करके अपने जीवन को सफल बनाओ।

इस जीवको दुःख देने वाली एक आशा है। आशा अगर लगी है तो सारे क्लेश ही क्लेश है। आशामे क्लेश क्यो है ? यो कि क्लेश होते हैं कि आशा होती है दूसरी चीजोकी। अपनी तो कोई आशा करता नही, मोही जीव अपने स्वरूपको जानता ही नही तो अपने स्वरूपकी आशा ही क्या करे ? अपने स्वरूपकी आशा करें तो अपने स्वरूपको जल्दी पालें और अगर आशा मिट जाय तो क्लेश मिट जायें। बडे-बडे योग्य पुरुष जो ऋषिजन होते है उन्होने अपने स्वरूपका ज्ञान किया और अपने ही स्वरूपकी आशा की और इसीसे ही सुखी हुए। परन्तु हम ये संसारके जीव अपना स्वरूप तो जानते नही सो परकी ही आशा कर रहे है और परकी आशा करनेमे दुःख यह होता है कि वह परकी चीज तुम्हारे आधीन नही। परकी चीज अगर तुम्हे मिल भी जाय तो तुम्हारे आधीन नही। जब हमारी परचीज नही रही और हम आशा रखते है तो दुःख होते है। यह तो अपने अनुभवकी बात है कि जिसकी

आशा करो और वह नही मिलती तो वहाँ दुःख होते हैं। ज्ञानी पुरुष वह है जो किसीकी आशा न करे। जो आशा नही करता वही जगतमे पूज्य होता है। और पूज्यकी बात तो अलग है। वे अपनेमें बडी शान्ति रखते है। जो आशा रखते हैं वे निरतर दुःखी रहते हैं। सो ऋषि लोग किसी भी बाहरी चीजकी आशा नही रखते है। आशासे बडे दुःख होते है। सो सबको अनुभव होगा कि जिसने आशा की, वह दुःखी अवश्य हुआ होगा। ये योगी पुरुष बाहरमे जो बडा तप करते हैं, पचाग्नि तपते है, धूप सहते हैं, ठड सहते हैं, उपवास करते है ये बाहरी तप किसलिए करते है आशाके नाशके लिए। उसमे भी यह दृष्टि उनकी रहती है कि यह आशा पिशाचिनी मुझसे दूर हो जाय। यह आशा पिशाचिनी बडी भयकर है। जिसके पीछे लग जाती है उसे बरवाद कर देती है। इस जीवको मिलता तो कुछ है नही। यह तो दूसरोके लिए भार सहता है। जिनके लिए यह रात-दिन परिश्रम करता है, उनमे कुछ मिलेगा नही। यह मेरा आत्मा तो ज्ञानमय है, आनन्दका पिंड है। मनकी बुद्धिकी वजहसे इसमे नाना विकार उठ रहे हैं, तरंगें उठ रही हैं सो तरंगें उठकर ये तरंगें ही हाथ लगेंगी। सो ये भी न रहेंगी, और और आयेंगी, चीजें कुछ नही मिल जायेंगी। जैसे जिसे जो चीज मिलती है, उसकी आत्मा भी उन चीजोसे न्यारी है, उन चीजोमे वह क्या तन्मय है? बताओ करोडपति है, अरबपति है, पर धन उसका बाहर ही पडा है कि धन उसकी आत्मामे आ गया क्या? वे तो ज्योकी त्यो चीजें हैं, उनसे कुछ मिलता भी तो नही। केवल आशा करते हैं। आशा करनेसे ही इस जगतके जीव दु.खी हो रहे है। योगीजन जो कुछ करते हैं वे आशाके नाशके लिए करते हैं। ज्ञानी पुरुष जो कुछ भी करते है, वे आशाके नाश के लिए करते है। सो भैया! किसी भी काममे आशा न रखो।

जब तक आशा लगी है तब तक क्लेश हैं। जिस दिन आशा मिट जायगी, उस दिन क्लेश भी मिट जायेंगे। आजकल कभी किन्हीके कानोमे कोई भयकर समाचार सुनाई दे तो वह दु खी हो जाता है। क्यो दुःखी हो जाता है कि कोई आशा लगाये है सो बैठे बैठे दुःखी हो रहे है। उनकी आशामे अगर पानी फिर जाय तो फिर दुःख काहेको हो। आशासे ही बाधा लगी, उससे ही दुःख बनते है। उस आशाका पहले ही नाश कर दो। उस आशाको आप ही स्वय समझ लो कि आशा एक विकार है, वह क्लेशोके लिए मिलती है। यदि आशा न रखे तो क्लेश न रह जायेंगे। सो भैया! पूजा करो, भक्ति करो, तपस्या करो, दान दो, कुछ भी धर्मके काम करो। उसमे आशाके नाशका लक्ष्य रखो। तुम भगवानकी पूजा करो और कुछ आशा रखकर पूजा करनेकी भावना न करो। मेरे बच्चोको सुखी रखना, भगवान् मेरे बच्चोका पालन-पोषण करना, भगवान् मेरी गरीबी दूर हो इत्यादि आशाएँ

रखनेसे भक्ति कहाँ रही ? भगवानकी भक्ति है कि पुत्रोको भक्ति है ? यदि ऐसा होगा तो दुःख जरूर होगा और यदि ऐसा नही है तो दुःख काहेको होगे ? देखो आशाका कितना गहरा रग इस मोही जीवके बढा हुआ है, पर जो भगवान् है, वीतराग है, सर्वज्ञ है, निर्दोष है, उन भगवान्की भक्ति करके भी आशा रखते है, तो कुछ भला नही होता है, फल नही मिलता है। फल तो तब मिलता है जब निष्कपट भक्ति होगी। यह तो कपट वाली भक्ति होगी। यह बात बहुत पतेकी कह रहा हू जिससे अपना साक्षात् भला होता है। परीक्षा करके देख लो। सब आशाओको दूर कर दो तो आनन्द मिल जायगा। आशाको नही छोडते और आनन्द चाहते तो दोनो बातें तो हो ही नही सकती है। भगवान्को हम क्यो पूजते हैं कि वह सब आशाओसे दूर है। गुरुवोको क्यो पूजते है कि वे सब आशाओसे दूर है। जिन भगवान्को हम पूजते हैं उनसे यदि हम आशायें ही आशायें रखें तो जीवनमे हम शुद्ध नही होगे। मैं प्रभुकी भक्ति करू तो आशाओके नाशके लिए। भगवान्से कुछ मांगो तो यह मांगो कि हे प्रभु! कब ऐसा समय हो कि मेरेमे रच भी आशा न रहे, मैं किसी पदार्थमे आशा न लगाऊँ, यह मुझे कर दीजिए। ऐसी भगवान्की भक्तिकी आवाज निकले, ऐसा वर यदि नही मांगते हैं तो भगवान् भी विमुख हो जाता है। विषयोकी इच्छासे भगवान्का प्रसाद नही मिलता है। अब यह देख लो कि किसी मित्रसे मित्रता रखो और यदि उसको मालूम हो जाय कि यह स्वार्थके कारणसे मित्रता कर रहा है तो बतलावो क्या वह अव्वलमे मित्र तुम्हारा हो सकेगा ? नही होगा। जब मित्रको यह मालूम हो जाये कि इस गरजसे मेरे पास आया है तब क्या कुछ महत्त्व रहेगा ? कुछ भी तो महत्त्व नही रहेगा। यदि निष्कपट होकर प्रीतिमे आया है, ऐसा मालूम पडे तो सच्चा मित्र बनेगा। भगवान्का प्रसाद तो हमे तब मिलेगा जब निष्कपट भावसे हम भगवान्के पास पहुचते हैं।

यहाँ तो ऐसी खुदगर्जी लगी होती है कि ये भगवान्की भक्तिमे नही आते, कुछ न कुछ आशायें लगाकर आते है। प्रभुकी भक्ति वह है, जिसमे आशा नही है। बिल्कुल जिसने आशाओको त्याग करके भक्ति की, प्रभु मुझे कुछ नही चाहिए, केवल मुझे उपासना भक्ति आपकी चाहिए, आपमे ही मेरा मन लगा रहे, आपके गुणोमे ही मेरा चित्त रहे, ऐसा अगर भाव है तो मैं सुखी हो सकता हूँ। किन्ही चीजोसे मुझे लाभ नही है। हे प्रभु! तुम्हारे दर्शन मुझे प्राप्त हो यही मेरी एक चाह है और मैं कुछ नही चाहता। ऐसी भक्ति हो तो कुछ पल्ले पडेगा, नही तो कुछ पल्ले नही पड सकता है। जैसे कहते हैं कि एक साधुको किसी गरीब आदमीने आहार दिया। वह आदमी बड़ा ही सयमी था, सदाचारी था। आहार देनेसे उसके घरमे रत्नोकी वर्षा हुई। उसके पडोसीने ऐसा सोचा कि साधुको दूसरे दिन हम

भी आहार दें जिससे हमारे घरमे भी रत्नोंकी वर्षा हो। भोजन बनाया, साधुको भोजन खिलाया और ऊपरको देखता है कि अब बरसे, पर कहाँ बरसे ? वहाँ तो आशा रखकर साधुको आहार कराया था। तो निष्कपट भावसे जो साधुवोकी सेवा करे, उसका भला होता है। यदि आशाको छोड सको तो अपनी दया करके छोडनेका यत्न करो और न छोड सके तो जो होता है वह होता ही रहता है। जब हम बच्चोकी आशा करें, पोतोकी आशा करें तो हम अपने ही क्लेशोको बढाते हैं। अनुभव कर लो कि जीव बहुत है और सबकी मंशा है जुदा-जुदा, सबकी इच्छा है जुदा-जुदा, सबका कषाय है जुदा-जुदा, वे अपने-अपने कषायसे अपना-अपना खेल करेंगे। अपने-अपने सुखकी ओर झुकेंगे। इतनी खुदगर्जी क्यो है, यो कि आशालिप्त हैं। ऐसी पिशाचिनी इस आशाको छोडो और अपने आपमे झुको। तब तो कुछ मिलेगा, नही तो कुछ नही मिलेगा।

धर्मके काम करो और यह भाव रखो कि हे प्रभु ! मेरी आशाओका कब नाश होगा ? तो किसी भी चीजकी आशा नही करना चाहिए। सभी चीजें मिटने वाली हैं, लोग छीन लेंगे। यदि न छोड सकोगे तो मरने पर सब छूट जावेंगी किसी पदार्थकी आशा न करो सो उस अपने आत्मस्वरूपकी ही उपासना करो। और आशाका नाश कर स्वयं सुखी होवो।

बाह्य तपोऽपि नाशायाशाया यस्मात्तपस्यपि।
आशानाशाय सेवै स्व स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥३९॥

धर्म ही उद्धारक है, तुम्हारा उद्धार करने वाला धर्म है कि जिनके नाक बहती है ऐसे लडके उद्धार कर देंगे ? स्त्री, पुत्र, मित्र कौन उद्धार कर देंगे, कोई भी तो उद्धार नही करेगा, वे तो सतानेके निमित्त बने हैं क्योकि उनका ख्याल करना, उनसे मोह करना, उनके सुखके लिए जिन्दगीभर परिश्रम करना ही बना रहेगा। वे कोई मेरा उद्धार न कर सकेंगे, बल्कि उद्धारके काममे विघ्न करेंगे। वे इधर-उधर कहेगे कि पिताजी कुछ काम नही करते, जब देखो मंदिरमे ही बैठे रहते हैं। न पैसा कमाते हैं, न कुछ करते हैं। इस तरहसे वे पतन के लिए ही सोचेंगे, उद्धारके लिए न सोचेंगे। अपना उद्धार करने वाला एक धर्म ही है और रक्षा करने वाला धर्म ही है, कोई दूसरा रक्षा नही कर देगा।

जब तक पुण्यका उदय है दसो आदमी अपने पीछे लगे रहते हैं और यदि पुण्यका उदय नही आता है तो कोई नही पूछता है। अच्छी तरहसे रहो, धर्मसे रहो तो अपना स्वरूप ही रक्षक है। यह मैं आत्मा स्वयं ही धर्मस्वरूप हूँ। धर्म मुझसे अलग नही है, मैं धर्मसे मिला हुआ हूँ। मैं धर्मस्वरूप हू, ज्ञानस्वरूप हूँ। धर्म स्वभावको ही कहते है और स्वभाव है तुम्हारा ज्ञान। अपने ज्ञानस्वरूपका अनुभव करो यही धर्म है और यह धर्म ही हमारा रक्षक

है। मुझे पवित्र करने वाला धर्म है और अन्य मुझे पवित्र कोई नही करता।

ये जो बड़े-बडे समारोह होते हैं, बड़े गाजे-बाजे बजते है? वे सब पवित्रताके लिए बजते है कि अपवित्रताके लिए बजते हैं। ये गाजे-बाजे तो अपवित्रताके लिए बजते है।

कोई लडका पैदा हुआ तो बाजे बजाते हैं। ये बाजे मोहमे पडनेके लिए ही तो बजते है। वे इसमे खुश होते है। खुश होकर ही तो बाजे बजवाते है। यह अपवित्रता ही तो है। विवाह शादी आदिके समयमे बाजे बजवाना अपवित्रता ही तो है। वे अपवित्रता बनानेकी तैयारीमे खुश हैं। तो जितने ये समारोह होते है ये सब पापोकी बातोके समारोह है। ये समारोह धर्मके नही होते है। ये पवित्र करने वाली चीजें नही हैं। ये सब लोकमे फसनेकी बातें हैं। ये आत्माको पवित्रतामे नही ले जायेंगे। आत्माके पवित्र करनेकी तो धर्मपरिणति है। धर्म करना, पवित्र बनना, एक ही बातकी रटन लगाओ कि मैं सबसे न्यारा हूँ, मेरा किसीसे पूरा नही पडेगा, मैं अपने आपको देखू और अपने आपमे ही रमूं यही मेरे सुधारका उपाय है। धर्म ही पवित्र करने वाली चीज है। तुम्हारा असली बन्धु कौन है? बडा भाई है अथवा छोटा भाई है वह तुम्हारा असली भाई नही है। आप लोगोने तो जमाने देख लिए। जो ४०-५० वर्षको उम्रके भाई है वे एक परिवारमे रहते हो ऐसा तो बहुत कम दिखता है। ऐसा तो आज शायद देखनेको नही मिलेगा। तो फिर तुम्हारा बन्धु कोई नही है। जिनको अपना बन्धु मानते हैं वे भी अलग हो जाते हैं। वे बन्धु तो दगा देनेके लिए है, नुक्सान देनेके लिए है। मौका पडने पर मतलब सिद्ध करनेके लिए हैं। ये तुम्हारे असली बन्धु नही है। असली बन्धु तो तुम्हारा धर्म ही है। यह धर्म तुम्हे धोखा नही देगा। अपने परिणाम शुद्ध हो, क्षमाकी भावना हो, अहकार न हो, संतोप हो, ये सब हो तो आनन्द मिलता है, अपने प्रभुके दर्शन होते हैं, अपने ज्ञानस्वरूपका अनुभव होना है। धर्म धोखा नही देता है। तुम्हारा असली बन्धु धर्म ही है। तुम्हारा गुरु कौन है? दूसरे लोग लोकाचारमे गुरु है। मेरा गुरु तो मैं ही हूँ क्योकि मैं ही स्वयं आचार-विचारसे रहूं तो मुझे शान्ति मि-लेगी, मोक्षका मार्ग मिलेगा। यदि विकल्पमे हम दूसरेके आधीन हो गए तो समझो कि मुझसे भूल हो गयी। इसलिए मेरा गुरु मैं ही हू। जब सूर्यका उदय होता है तो प्रकाश हो जाता है। रास्ता दिखने लगता है, किन्तु चलने वाले खुद चलें तभी रास्ता निकलेगा कि सूर्य चला देता है। सूर्यके चलानेसे रास्ता कटता है, ऐसा किसीको नही होता। सूर्यका काम है उजेला हो, आगे चलने वाला खुद चले। इसी तरह गुरुवोका काम है कि हितकी बात कह दें, आगे चलना आप लोगोंका काम है। केवल बातसे तो आनन्द नही आता है। अब भोजनकी बात मुखसे खूब कह दें कि फलानी चीज यो बनायी जाती है, तो इससे क्या पेट भर गया? अरे

पहले बनायें, फिर खायें तब पेट भरेगा। लोकमे जो गुरुजन होते हैं वे हितकी बातें बतला देते है। मैं उन बातोको अपनाकर चलूं तब जीवन सफल हो सकता है। परमार्थसे मेरा गुरु कौन है ? मेरा गुरु मैं ही हू। मैं ही इस लोकमे मेरेको सर्वस्व हू। अब इन रागोको छोड-कर गुरुजनोकी बातोको पकड़कर चलूं, अपने ज्ञानस्वरूपको देखूं और अपनेमे अपने आप सुखी होऊँ। मेरा सुख मेरे ऊपर निर्भर है और मेरा दुःख मेरे ऊपर निर्भर है। कोई दूसरा मुझे सुखी दु'खी नही कर सकता है। यदि मैं रागसे हटकर ज्ञाता दृष्टामात्र रहू तो मैं ही अपनेको कुछ बना सकूंगा। दूसरे मेरा कुछ नही कर सकते। दूसरा कोई मुझे गाली दे दे या कही धनका नाश हो जाय तो वहाँ भी दु'खी कर लेना अपने विकल्पके आधीन बात है। अरे यदि धनका नाश हो रहा है तो इससे मेरा क्या नुक्सान हो रहा है ? यदि किसीने मुझे गाली दे दिया तो इससे मेरा क्या नुक्सान हो गया ? कुछ भी तो नुक्सान नही हो गया। जो यहाँ पैदा हुआ वह यहाँसे जायगा जरूर तो फिर हमारा यहाँ क्या रहा ? हमारा यहाँ कुछ भी तो नही रहा। सो रागादिको छोडकर अपने आपके ज्ञानस्वरूपको देखकर स्वय सुखी होऊं।

धर्म उद्धारकस्त्राता पावको बान्धवो गुरुः।
सोऽहं रागादिक मुक्त्वा स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४०॥

धर्म भेषमे नही है, भेषमे धर्म नही है। यह बतलाया जा रहा है कि लगोटी कस लीजिए, गेरुवे कपडे पहिन लीजिए, लंगोटी लगा लीजिए, हाथमे कमडल ले लीजिए तो क्या इससे धर्म मिल जायगा ? इन बातोसे धर्म नही मिलता है। यह तो बाहरकी बात है बल्कि धर्मकी आशासे कोई ऐसा रूप बनाए तो उसको धर्म है ही नही क्योकि उसने आशा बना रक्खी है, धर्म किसी भेषमे नही मिलेगा, धर्म किसी यात्रामे नही मिलेगा। चलो शिखर जी, चलो हरिद्वार वहाँ धर्म मिलेगा ऐसी बात नही है। वहाँ पर धर्म बिखरता नही नही, केवल कल्पनाएँ ही कर लेते है। कितने ही पाप करते है, कहते हैं, हरिद्वार चले जायेंगे, गगास्नान कर लेंगे तो पाप कट जायेंगे। ऐसा नही है। खूब पाप करते हैं कहते है ३–४ सालमे गगा स्नान कर लेंगे। तो सारे पाप धुल जायेंगे, ऐसा नही है।

धर्म किसी यात्रामे भी नही है, किसी तीर्थस्थानमे भी नही है। यहाँ वदना करे, भगवान्‌की भक्ति करे, मूर्तिके सामने रोज सर रगडे, इससे तो धर्म नही मिलता। तो धर्म किससे मिलता है ? अभी बतला दूंगा। मस्तक नवा लेना तो शरीरकी चेष्टाएं हैं, इसमे धर्म नही है। धर्म मिलेगा कैसे, अब कहेगे। क्या धर्म किसी मदिरमे मिलता है ? मदिरमे चले गए। मदिरके आगे सिर नवाकर बैठ गए तो इससे धर्म नहीं मिलेगा तो मंदिरमे भी धर्म नहीं है तो धर्म है क्या ? धर्म है आत्माका स्वभाव। आत्माका स्वभाव है ज्ञान तो

इस ज्ञानस्वरूप को पाकर उसीमे ठहरे तो धर्म मिलेगा । तो फिर मंदिरमे क्यो जाते हैं ? मदिर एक धर्मस्थान है । वहांपर वीतराग सर्वज्ञताकी मूर्ति विराजमान है । वह मूर्ति हमे शिक्षा देती है कि यदि शांति चाहते हो तो सारे नटखट झगडे त्यागकर धर्ममे लीन हो जायें । मूर्ति यह शिक्षा देती है कि कही मत जावो, एक स्थानपर स्थिर हो जावो, हाथमे हाथ रखकर मूर्ति यह उपदेश देती है कि कोई करने योग्य काम नही है । मूर्तिमुद्रा उपदेश देती है कि शान्ति चाहते हो तो आत्माका ध्यान करो, आदरसे भगवानकी साधना करो । इतना करनेसे अपने ज्ञानस्वरूपका पता लगता है । यही व्यवहारसे धर्म है । वास्तवमे अपने आपको सम्भालना ही धर्म है । यहां तो लोग ऐसा करते है कि मंदिरमे पहुच गए ख्याल बनाए हुए, वहां बोलते हैं कि भगवान् हमे सुख दो । हे भगवान् फलानेका नाश कर दो तो अब यह बतलावो कि यह धर्म है कि अधर्म है । भले ही मदिरमे हो । धर्म कोई चाहे तो मदिरमे बैठे बैठे कर सकता है । धर्मकी बात मिल सकती है । सब जीवोको एकस्वरूप चैतन्यमात्र देखो । सब जीवोको सुखी करनेकी भावना रखो । कोई भी जीव दु.खी न हो, ऐसा सबको प्रभुके समान निरखो तो धर्म मिलेगा । बाहर ही बाहर भटकते रहनेसे धर्म नही मिलेगा । आप कहे कि अभी कहा है कि वंदना पूजामे धर्म नही है, हां सो ठीक है । वंदना पूजा करके तो अपने ज्ञानस्वरूपकी खबर आवे, प्रभुकी याद आवे तो वदना और पूजा धर्म हो जायेगा और यदि अपने ज्ञानस्वरूपका ख्याल नही, प्रभुकी याद न आवे तो वदना और पूजा हो कष्ट है । अपने ज्ञानस्वरूपका अनुभव हो तो धर्म मिलेगा । यात्रामे यात्रा स्वय धर्म नही है । टिकट खरीदा, गाडीमे बैठे, मुसाफिरोसे भिडे, कमसे कम पैसोमे पहुच जायें तो ठीक है, यह सोचा । क्या अटपट सोचना कहना धर्म है ? धर्म नही है । धर्म तो तब है यात्रामे जब प्रभुकी भक्ति हो । वह प्रभु शान्त है, शुद्ध है, पवित्र है, उनकी महिमा कौन गा सकता है ?

यदि प्रभुका स्मरण हो तो यात्रा भी धर्म है । अपने भगवान्का स्मरण रखना ही धर्म है । कहो कि भेषमे धर्म क्यो नही तो भैया भेष बना लेनेसे ही धर्म नही । अगर घरमे कुछ न हो फिर भी कहे कि हमने सब कुछ त्याग दिया यह धर्म नही है । अगर मात्र जानन बन गया तो यही त्याग है । धर्म त्यागमे है, ज्ञानमे है । कितने ही लोग धर्मके नामपर गांजा भी पीते पिलाते; भांग भी पीते पिलाते तो इससे धर्म नही मिलेगा । और भी करते है पर वे इसको धर्म ही मानते हैं । कुछ लोग यह मानते है कि मदिरा पीनेमे धर्म है, अफीम खानेमे धर्म है । अरे ये काम धर्ममे नही होने चाहियें । ऐसा गृहस्थीको विवेक होना चाहिए, समझाना चाहिये कि साधु महाराज आप किस तरफ जा रहे है, धर्मके ध्यानमे लगो । एक भूख ही ऐसी है जिसके बिना नही रहा जा सकता सो एक बार खा लो बाकी ध्यान करो । धर्म

तो ज्ञानमे है। तो अपने उस ज्ञानस्वरूपमे ठहरो और अपनेमे ही स्वय सुखी होओ। तो भैया! धर्म ही रक्षक है, उस धर्मका ही स्मरण करो।

धर्मो वेशे न यात्रायां वदन न च मदिरे।
धर्मे ज्ञप्तिमये तिष्ठन्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४१॥

धर्म किसे कहते है? जिसमे मोह नही और क्षोभ नही, उसे धर्म कहते है। मोह कहते हैं मिथ्यात्वको। किसी परके साथ सम्बन्ध मानना इसीका नाम मोह है। जैसे मेरा पुत्र है, मेरा घर है, मेरी स्त्री है, जहाँ पर मेरापन का भाव हो उसे मोह कहते है। क्षोभ, रागद्वेषके कारण जो आकुलताएँ मची हैं उनको क्षोभ कहते है। तो धर्म वह है जिसमे मोह और क्षोभ न हो। ऐसे भी लोग हैं जिन्हे मोह नही है, पर क्षोभ है। ऐसे भी लोगोको ज्ञानी कहते हैं। ज्ञानीको भी किसी किसी समय क्षोभ आ जाता है तो जितने अशमे क्षोभ है वह धर्म नही है, मोह तो धर्म है ही नही। धर्म तो वीतरागताका नाम है। जहाँ पर वीतरागता हो वहाँ पर मोह और क्षोभ कैसे? शान्ति तो अपनी सत्य ज्ञानदृष्टि पर है। यहाँ जो चीजें अपनी नही है उन्हे अपनी मानना, यह तो बहुत बडा पाप है। ऐसे पाप करते हुए भी क्लेश न हो, यह कैसे हो सकता है? सब जुदा-जुदा जीव है, जुदा-जुदा बातें है, सबके जुदे-जुदे परिणमन है और फिर भी भीतरमे यह मानते कि मेरा सब कुछ है। यह मानना तो बडा पाप है। असद्व्यवहारसे किसी जीवको सता लिया जाय, किसीका किसीसे घात हो जाय, हत्या हो जाय तो उसे मानते हैं कि बडा पाप किया। कोई किसीका घात कर दे उसे कहते हैं बडा पाप है। जीव घात करनेसे भी बडा पाप है। मोह—परवस्तुको भीतरमे समझ ले कि यह मेरी है, यह सबसे बडा पाप है। घरमे रहते हो, धर्मकी बात मानते हो, पूजा करते जीवन गुजार रहे हो और आप मान रहे हैं कि हम सही मार्गमे हैं, मोक्षमार्गमे हैं, भगवान् की सेवा पूजा करते हैं, यहाँ हम शुद्ध मार्गमे हैं। पर भीतर यह टटोलो कि तुम्हारे अन्दर यह परिणाम है कि नही कि यह मेरा घर है, यह मेरी स्त्री है, यह मेरा पुत्र है, यह मेरी ही तो देह है, यह देह ही तो मैं हूँ, इस तरह पदार्थोमे आत्मबुद्धि आती है, तो यह बहुत बडा पाप है। महसूस नही कर रहे हैं, अपने घरमे बैठे हैं, आनन्दसे बैठे हैं, कुत्ता, बिल्लीपर दया करें, पर अपने आप पर दया न करें तो विवेक तो न रहा। चूहेको बचा दिया, बिल्ली को बचा दिया और यह समझ लिया कि हम बडे धर्मात्मा हैं। लालटेन जलनेपर कीडे आते हो और छिपकली कीडोको खाने आती हो तो उन कीडोको बचा दिया, मान लिया अच्छा यदि यह करते हो तो ठीक है, मगर यह चाह न करो कि हम स्वर्ग जायेंगे। यह न चाह करो कि हम अच्छी ही गतिमे जायेंगे, ऐसी आशा न रखो। आशा ऐसी रखो जिससे भीतर

मे मोह परिणाम न हो। कुत्तो पर दया करो, बिल्लियों पर दया करो, यह तो ठीक है। पर परमार्थ दया वह कहलाती है कि मोह न हो। ज्ञान सही आ जाय यही तो आत्माकी दया है। जब तक ज्ञान सही नही आ जाता सम्यग्दर्शन नही होता है। कितने ही व्रत कर लो, तप कर लो, संयम कर लो, मुनि भी हो जाओ, पर सही ज्ञान जब तक नही आयेगा तब तक अच्छा फल नही मिलेगा। इसलिए सबसे बडा पाप मोह है। यह मोह न रहे तो उसे धर्म कहते है और यह बतलावो मोह किस चीजका करते हो ? तुम्हारी चीज हो तो मोह करो। ये चीजें तुम्हारी है क्या ? बतलावो। यह हमारा घर है, अरे अगर मान लो सरकार छीन ले तो अगर कोई जबरदस्ती छीनना चाहे उसे दे दो तो या न ले ठीक-ठीक रहे तो मरोगे तब तो छोडना ही पडेगा। तो फिर कोई वश नही चलता। फिर तुम्हारे घर, पुत्र, स्त्री आदि कैसे हुए ? बतलावो। उन सबके लिए ही चाकरी कर रहे हो, स्त्री पुत्रोको सेवा कर रहे हो। मरे जा रहे है, पर स्त्री, पुत्र, परिवारको सेवा कर रहे है। उनके पुण्यका उदय है इसलिए कमाने वाले टट्टूमे जोते जा रहे है। और उनसे ही आशा कर रहे हैं। तो इससे हटें तो अच्छे हो जायें। यदि हम सही हो जायें तो ठीक है और यदि नही हुए तो हमे मोह होगा। मोह ही सबसे बडा पाप है। दुनियामे इस शरीरके द्वारा जितने भी पाप होते हैं सब मोहके ही पाप है। ये मोह बडे मस्ते लग रहे है, खूब चिपक रहे है, लिपटा रहे है, पर इस मोहके हो कारण दुनियामे अहकार है। जिसमे मोह और क्षोभ नही होता है उसे धर्म कहते है और वह धर्म वीतरागता है। सो ऐसा मेरा स्वभाव हो कि मैं वीतरागी बन जाऊं, केवल ज्ञानपरिणमनमे रहूँ, तो मेरा जीवन सफल हो सकता है, मेरी ही तो वह परिणति है। इस कारण मैं अपने ज्ञानस्वरूपको ही देखू मैं ज्ञान और आनन्दसे ही रचा गया हूँ, ज्ञान और आनन्दका पुञ्ज हूँ अर्थात् मेरेमे और कुछ नही भरा है। मेरेमे न रूप है, न रस है, न गंध है, न स्पर्श है। मैं तो केवल ज्ञान और आनन्दसे भरा हू। सो मैं अपने ज्ञानमय तत्त्वको देखू और स्वय सुखी होऊ।

मोहक्षोभौ न यत्रास्तः स धर्मो वीतरागता।
सा मे परिणतिस्तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४२॥

यह कैसा मोह अपनेमे आ गया है कि जन्म मरणके चक्कर यह जीव काटता चला आ रहा है। इस दुनियामे ऐसा कोई प्रदेश नही बचा जिसमे इस जीवने जन्म न लिया हो और मरण न किया हो। एक भी जगह नही बची जहाँ पर इस जीवने जन्म न लिया हो। अनन्त बार इस जीवने जन्म लिया और अनन्त बार मरण किया। जिस जगह इस जीवने जन्म लिया, वहाँ भी इस जीवने राग किया। अच्छा बताओ, राग किया कि नही किया।

फिर भी पेट राग करके नही भरा, रागोसे तृप्ति नही हुई। इस समागममे क्या तृप्ति हो जायगी ? क्या मन भर जायगा ? नही। तो असलियत पहिचान लो। घरमे रहते हुए विरागी बनो। रागसे लाभ नही है। इसलिए रागरहित अपनेको देखो। कहाँ राग करते हो ? यह लोक कितना बडा है ? मदिरमे कही-कही लोकके नक्शे बने रहते है ? ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक और अधोलोक। ये सब लोक ३४३ घन राजू प्रमाण है। कहते हैं रूस, जर्मनी, जापान ब्रिटिश ये समस्त भरतक्षेत्रकी एक थोडीसी जगहमे हैं। भरतक्षेत्रमे यह पूरी दुनिया नही है। भरतक्षेत्रके ५ हिस्से हैं। उसमे एक आर्यखंड है, उसकी थोड़ी जगहमे ये वर्तमान अवगत सारी दुनिया हो तो भरतक्षेत्र कितना बडा है ? जम्बूद्वीप इत्यादि असख्य बडे द्वीप है। कोई जगह नही बची जिसमे इम जीवने जन्म न लिया हो, मरण न किया हो। और जब जन्म लिया था तो जैसा समागम मिला था वैसे ही उसी परिवारमे झुक गए थे। और उन जीवो मे बार-बार राग करते रहे। इसी तरह वर्तमानमे भी रागद्वेषोसे ही सारी जिन्दगी गुजार दी, कुछ भी चीजें हाथमे नही रही। धर्म नही किया, मोह राग ही सदा किया। यह तो इस जीवने अच्छा नही किया। हाँ धर्ममे दृष्टि दे दो तो कुछ चीज साथमे रह जायेगी और अगर धर्म न किया तो कोई भी चीज साथमे नही रहेगी। धर्म साथमे रख लेनेकी चीज है कि परिवार कुटुम्ब इत्यादिमे रागद्वेप मोह करना ठीक है ? यह मेरा पुत्र है, यह मेरी स्त्री है आदि। अरे ये सब मिट जाने वाली चीजें है। तो जो मिट जाने वाली चीजें हैं उनसे तो प्रीति करते और जो अपनी चीज है, जिस पर अपना अधिकार है उससे प्रीति नही करते। रात दिन चौबीस घटे यह व्यर्थमे ही तो जा रहे हैं। कमाईमे कितना समय लगता है, दुकानमे समय लगता है थोडा ही तो, और बाकी समय गप्पोमे ही तो जाता है। इधर-उधर की बातचीतोमे ही तो जाता है। धर्ममे दृष्टि हो तो जीवको कुछ पुण्य भी हो जाय, नही तो जैसे अनन्तो भव गुजर गये तैसे ही यह भव भी गुजर जायगा। तो भैया राग मत करो। इन रागोको छोडकर रागोसे रहित अपने स्वभावको देखकर अपने आपमे ही तृप्त होकर सुखी होओ। परकी आशा न रखो।

लोके रिक्त न तत्स्थानमनंता जन्ममृत्यवः।
नाभूवन्यत्र किं रज्यै स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४३॥

हम क्या है ? इस बात पर विचार करें। हम एक चेतन पदार्थ हैं। हमको किसीने कभी बनाया था क्या ? किसीने नही बनाया था ? बनाया था तो किन चीजोसे बनाया था ? हम अनादिसे है और जो प्रभुकी शक्ति है, चैतन्यस्वरूप है वह भी अनादिसे है। इस अपने स्वरूपको ही प्रभु कहते है। यदि अपने स्वरूपको देख लो तो प्रभुके दर्शन हो गए। इस मुझको किसीने कुछ नही किया। मैं तो अजर अमर हूँ, मैं तो अजन्मा हूँ, न मेरा कभी

जन्म हुआ और न मरण हुआ । जैसा मैं हूँ तैसे ही जगतके सब जीव हैं । जैसे मेरा जन्म मरण नही है तैसे ही सब जीवोका जन्ममरण नही है । मुझे किसीने नही बनाया । मैं अनादिसे हू । मेरा कोई अन्त नही है । फिर यही तो लोग कहते है । जीवोको, समुदाय पुद्गलोको, ६ द्रव्योको ही लोग समुदाय कहते है । तो इस लोकमे मुझे किसीने नहीं बनाया और न मेरा कभी नाश हो सकेगा । तीन कालमे मैं कभी नष्ट नही हूगा, सदा बना रहूगा । मैं कैसा बना रहूँगा ? अपने परिणामकी बात है । यदि हम खोटे परिणाम करेंगे तो खोटे ही बने रहेगे और यदि अच्छे परिणाम करेंगे फिर तो अच्छे ही बने रहेगे । मुझको न तो किसीने बनाया और न कोई मिटायेगा । मैं अपने ही परिणमनमे रहता हूँ । तो जो मेरी दशायें मिटती है वे मिटनेकी चीज हैं और जो दशाएँ बनती हैं वे बननेकी चीज है । पर मैं जो हू वह अजन्मा हू । इस मुझको किसीने नही बनाया और न कोई मिटायेगा । जब मैं कभी मिटूंगा नही तो यदि इस ससारमे रहे तो ये दशायें बनी ही रहेगी । अब तुम्हे क्या मंजूर है ? इस संसारके गर्तमे भ्रमण करना मंजूर है या केवल ज्ञाता द्रष्टा रहना मजूर है । ससारमे भ्रमण करना स्वीकार न करो । संसारमे भ्रमण करना यदि नही चाहते हो तो ऐसा उपयोग होना चाहिए कि मैं ज्ञानमात्र हू, ज्ञानस्वरूप हू । मैं उस प्रभुकी ही उपासना करूं इस जगत्मे कोई शरण नही है । मेरा इस जगत्मे कोई साथी नही है । तो भैया ! सबकी प्रीति छोडकर अपने आपको देखो, अपने प्रभुके देखनेके अतिरिक्त तेरा कोई काम ही नही है । ऐसा विचार रखो कि मैं परिपूर्ण हू, अछूता हू, ज्ञानमात्र हू, ऐसा यदि उपयोग रहे तो दुःख नही होते हैं । गुरुवोके सत्सगमे, गुरुवोकी आध्यात्मिक वाणीसे शुद्ध ज्ञान बनता है । शुद्ध ज्ञान होनेसे ही जीवन सफल है । यदि मोहदृष्टि रहे तो ऐसा जोवन पशुके समान है और ऐसा जीवन पानेसे कोई लाभ नही है ।

लोके द्रव्याण्यनेकानि वर्तन्ते किन्तु वै निजे ।
अहन्तो किं पुनः कुर्यां स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४४॥

इस लोकमे पदार्थ कितने है ? कितनी चीजें आंखोसे देखनेमे आती हैं ? कितनी चीजे दुनियाके अन्दर है ? (किसीने कहा असख्य) और असंख्य नही, अनन्त है । असख्य उसे कहते हैं जिसकी गिनती तो नही है, मगर आखिरी जरूर है । अनन्त उसे कहते है, जिसमे आखिरी भी नही होती है, तो इस लोकमे पदार्थ अनन्त हैं । जैसे चौकी देख रहे हो तो यह एक पदार्थ है कि अनन्त पदार्थ ? अनन्त है, एक पदार्थ नही है । एक तो उतनी चीज होती है जिसके टुकड़े नही होते है और चौकी वगैराके तो टुकडे हो जाते हैं, यह वैज्ञानिक सत्य है । जो यूनिट है, अविभाज्य है, वह एक कहलाती है । यह शरीर एक पदार्थ नही है, किन्तु

परमाणु एक पदार्थ है, जो अविभाज्य हो जिसके टुकड़े न हो वह एक कहलाता है। ऐसा अविभाज्य एक परमाणु है। यह शरीर एक पदार्थ नही है, किन्तु अनेक परमाणुओका पिंड स्कन्ध है। यह शरीर अनन्त परमाणुओके समू॰ द्वारा बना है। यह शरीर एक नही, अनन्त है। यह टूटता नही अनन्त है। बल्कि बिखरता है। जैसे अगुली टूट गई तो लोग कहते हैं कि अंगुली टूटी नही, बल्कि बिखर गयी। अनन्त थी और अलग-अलग हो गई। यह शरीर एक नही, बल्कि अनन्तपरमाणुओका पुञ्ज है, समुदाय है सो यह टूट-टूटकर, चूर-चूर होकर छोटे-छोटे अश बन जाता है, बिखर जाता है। एक चीज वह कहलाती है, जिसका दूसरा टुकडा न हो सके। जैसे भौतिकमे एक एक परमाणु है, और जीवोमे एक-एक जीव है। हम और आपका सबका एक-एक स्वतन्त्र जीव है इसके अश नही हो सकते। वह तो पूराका पूरा ही रहेगा। एक चीज वह कहलाती है, जिसका दूसरा अंश न हो। तो परमाणु अनन्त हैं और जीव अनन्त है। हर एक जीव एक है, यो सब जीव अनन्त हैं। सबका अस्तित्व न्यारा न्यारा है, सबका अनुभव न्यारा न्यारा है, सबकी परिणति न्यारी न्यारी है। इस कारण जीव अनन्त है, पर जातिअपेक्षा जीव एक है। जितने जीव है, वे सब चैतन्यस्वरूप है, सबका एकसा स्वरूप है। इसलिए जातिअपेक्षा एक है, पर अनुभूतिकी अपेक्षा, परिणतिकी अपेक्षा अनन्त हैं। जैसे दो मन गेहू भर रखा तो बतलावो गेहूँ एक है कि अनेक है, मगर जातिअपेक्षा एक है, गेहूकी जाति एक समान है। इसलिए गेहू एक है और अनेक भी है। इसी तरह जीव एक है और अनेक भी है। इसी तरह लोकमे देखो तो द्रव्य अनन्तानन्त है। किन्तु वे हैं सब अपने अपने ही स्वरूपमे। किसी द्रव्यके स्वरूपमे किसी दूसरे द्रव्यका प्रवेश नही है।

जैसे एक गिलासमे पावभर दूध और पावभर पानी मिला हुआ हो तो दोनोके मिले होनेपर भी दूधके स्वरूपमे दूध है और पानीके स्वरूपमे पानी है। दूधका न पानी बन गया और न पानीका दूध बन गया। दूधमे जो रस है, स्वाद है, दूधकी जो परिणति है, वह दूध मे है पानीमे नही। तो दूध जुदा और पानी जुदा है। एक गिलासमे एक आधा सेर पानी है तो पानी एक समान है। पानीका एक-एक कण ले लो वह एक समान है। एक-एक बूंद ले लो एक समान है। फिर भी प्रत्येक कण अपने अपने स्वरूपमे है। किसी बूदमे दूसरा बूंद मिला हुआ न मिलेगा। ऊपरसे तो मिलेगा, मगर स्वरूप देखें, करेक्टरिस्टिक (गुण) देखो तो किसी कणका स्वरूप दूसरे कणके स्वरूपमे न आवेगा, ये पानीकी बात है। ऐसी ही बात देहमे देखो तो अनन्त परमाणु हैं, प्रत्येक परमाणु अपने अपने स्वरूपमे है। किसी परमाणुमे दूसरे परमाणुका स्वरूप नही है तो एकका यदि दूसरेमे स्वरूप आ जाय तो अनेक

नही रहेगे एक हो जायगा। फिर तो सर्व सर्वात्मक होगा, किन्तु ऐसा तो नही है। सर्व सर्वात्मक होनेके मायने कोई भी कुछ न रहा और है सो सब। सबकी भिन्न प्रकृति है, भिन्न भिन्न अस्तित्व है। इसलिए सिद्ध है कि जगत्मे जीव अनेक है, जगतमे और सब अलग-अलग रहते है तो मैं अपने स्वरूपमे हू। दूसरे अपने ही स्वरूपमे रहे, न उनमें मैं गया और न मुझमे वे आये, फिर मैं अहकार किसलिए करू कि मैं तो यही हू ऐसा अहंकार क्यो हो जब कि वस्तुका स्वरूप अलग-अलग है। इसलिए अहंकार न करो, अपने स्वरूपको अपने आपमें देखो। जगतमे कितना ही भाग लो, दौड लो, उसमे शान्ति न मिलेगी। इस लोकमे ही देख लो जो राजा महाराजा लोग ऐश-आराममे रहते थे, विषयोमे रहते थे, मदिरा पान करते, वेश्या इत्यादिसे नृत्यके पसंदी थे, उनको देख लो सब खत्म हो गए और और भी सोच लो, जो बडे-बडे लोगोके लडके होते है, उनमे जो व्यसनोसे जकडे होते है, वे कुछ ही दिनोमे बरबाद हो जाते हैं। धनका विनाश व्यसनोसे ही होता है, क्योकि व्यसन है तो खोटी परिणति है, इस खोटी परिणतिसे ही अपनेको बिगाड लेते है। इन व्यसनोका मूल है मोह। तो यह चीज दोपहरमे भी कही थी कि सबसे बडा पाप है मोह। मोह कितना बडा पाप है? ये शिकारी लोग जो जीवहत्या करते है। वे इस मोहसे ही करते हैं इसलिए वे तो पापी है ही, मगर उसमे भी भेद करो तो जीव हननेसे भी अधिक पाप मोह ही है, मोहका परिणाम पाप ही है। मोहमे तो भीतर अंधेरा ही रहता है। वह और कोई ज्ञानका काम नही करने देता है। सो जो अहंकार है वह मोहकी ही तो बात है। इस मोहको बाहर कर अपने स्वरूपको देखो और अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होवो।

अक्षि पूर्णत्वसज्जातिध्यादि दुर्लभवस्तुनि।
प्राप्ते लाभो यदि स्वस्थ स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४५॥

पहिले तो इस जगत्से जीवोमे दृष्टि पसारकर देखो तो कितनी ही तरहकी स्थितिके जीव पाये जाते है। कोई जीव पृथ्वीकायिक है, कोई जलकायिक हैं तो कोई अग्निकायिक तो कोई वायुकायिक है, कोई वनस्पतिकायिक है, कोई अनेक इन्द्रियो वाला है। यह जो अग्नि जलती है वह भी एक जीव है। कोई तो पेड रूप है, कीडे मकौड़े रूप है, कोई जीव पशु-पक्षी रूप है, कोई देवतारूप, कोई मनुष्यरूप है। जीवोकी स्थितियाँ अनेक है। उनमे सबसे निम्न श्रेणी स्थिति एक इन्द्रिय जीवकी है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति तथा इस वनस्पतिका एक भेद निगोद भी है। इन जीवोकी स्थिति सबसे निम्न है। उनके जीभ भी नही है, मन भी नही है, वे सोच भी नही सकते, वे असहाय है, अंग उपांग भी नही है, वे चल भी नही सकते।

ऐसे एक इन्द्रिय वाले जीव सबसे अधिक निम्न है। यदि कुछ इनका विकास हुआ तो दो इन्द्रिय वाले हो गए तो एक इन्द्रियसे छूटकर दो इन्द्रिय बन जाना दुर्लभ है कि नहीं। दो इन्द्रियके जीव बन गए तो उससे अधिक जब विकास किया तो तीन इन्द्रियके जीव बन गए। जिनके स्पर्शन, रसना और घ्राण है, ऐसे तीन इन्द्रियके जीव बन गए। दो इन्द्रियसे तीन इन्द्रियमे आना कठिन है। तीन इन्द्रियसे विकास करने पर चार इन्द्रियमे जीव जाते हैं जिनके आँख भी हो, कान न हो, जैसे मक्खी, मच्छर आदि। यह होना उससे भी अधिक दुर्लभ है फिर पाँच इन्द्रियाँ आयी उनमे भी असज्ञी हुए तो मोक्षमार्ग नही चल सकता। पचेन्द्रियमे भी मनका पाना दुर्लभ है। मन वाले बने, मनुष्य बने और मनुष्य बनकर भी सब इन्द्रिय सही रहे, चेतना युक्त रहे तो इन्द्रियोकी पूर्णता पाना यह उससे भी अधिक दुर्लभ है। इन्द्रियाँ भी पूर्ण हो और जाति भी उच्च न हो तो भी कोई श्रेष्ठ नही, उच्च जातिमे जन्म हो जाय, उच्च परम्परा हो, उत्तम रीति रिवाज हो ऐसी जगह भी पाना दुर्लभ है और उच्च जातिमे भी जन्म ले लिया, मगर बुद्धि न ठीक हुई तो बेकार सो बुद्धिका मिलना दुर्लभ है। मान लो इन्द्रियाँ भी हैं, जाति कुल भी अच्छा मिल गया, पर बुद्धि नही है तो बेकार है न सब।

जैसे किसी-किसी रईसके लडकोको देखो तो वे बाहरसे तो सुन्दर लगते हैं, मगर उनसे बात करके देखो तो स्पष्ट बेवकूफ नजर आते हैं। ऊपरसे चाहे कोट हो, पैन्ट हो, बूट हो और ऊपरसे एक टोप रखे हो, मगर उनसे जरा बात करके देखो तो वे अटपट बातें करते है। तो पाँचो इन्द्रियो पा जाना, अच्छी जाति, कुल पा जाना हुआ, फिर भी विवेक न जागा तो यह जिन्दगी उनकी बेकार है कि नही बतलावो ? बेकार है। ऊँची जाति भी मिल गई, सब कुछ मिल गया, बुद्धि भी मिल गई, किन्तु उसका उपयोग न किया याने उनमे बुद्धि कार्यान्वित करनेकी सुमति न हो तो भी बेकार है। धर्म सच न हो तो यह और सब भी बेकार है। धर्मका प्रसग भी पा लिया, फिर भी यह जीव अपने स्वरूपमे स्थित नही होता तो यह पायी हुई चीज भी व्यर्थ है। दुर्लभ वस्तु पानेका प्रयोजन यह था कि यह आत्मा अपने स्वरूपमे स्थित है और आनन्दपुञ्ज अपने आपके स्वरूपमे तृप्त होकर कर्मोका क्षय कर ले, कर्मोसे छूटनेका उपाय बना लें, इसलिए दुर्लभ वस्तु प्राप्त हुई थी। सभी समागम पाया और पाने पर भी स्वस्थ न हो सके तो सब व्यर्थ है। लाभ तो तब है जब स्वस्थ हो जाऊँ, स्वस्थ होकर यथार्थज्ञान पाऊँ और वैसा ही ज्ञान करता रहू। यदि ऐसा हो जाय तो स्वयमे अपनेमे अपने लिए अपने आप सुखी हो सकता है। सुख दूसरेके आधीन नही है। कोई दूसरा मुझे सुखी दुखी कर दे यह हो ही नही सकता है। यह आत्मा ही सारे वैभवपूर्ण हैं। पर

ख्याल उल्टा बना लिया और दुःखी हो गये। यह जीव ख्याल बनाकर ही दुःखी हो जाता है। जैसे कोई रईस गद्दोंपर पडा हुआ है, नौकर-चाकर काम कर रहे है, लडके काम अपना-अपना कर रहे है। किन्तु अभी कोई दुःखका ख्याल बना ले, लडका मेरी बात नही मानता, इसने ऐसा काम नही किया तो इतनेसे ही दुःखी हो गए। सो दुःखी होना किसी दूसरेके आधीन नही है, दुःखी होना तो अपनी कल्पनाओके ही आधीन है। सो अपनी कल्पनायें आकुलतायें मिटाओ और अपने आपमें सुखी होवो।

आत्मामाथात्म्य विज्ञानं दुर्लभादपि दुर्लभम्।
लाभैरमे य तमैव स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४६॥

दुनियामे अनेक पदार्थ दुर्लभ है, पर सबसे अधिक दुर्लभ चीज अपने स्वरूपका यथार्थ ज्ञान करना है। यही सबसे दुर्लभ चीज है। "धन, कन, कचन, राज सुख सबहि सुलभ कर जान। दुर्लभ है संसारमे एक यथारथ ज्ञान॥" धन, कन, कंचन आदि मिलना तो ससारमे सुगम है पर आत्माके स्वरूपका ज्ञान होना कठिन है, सही ज्ञान हो जाना यही दुर्लभ चीज है। देखो आत्मा स्वयं प्रकाशवान चीज है, फिर उसको ढूँढनेके लिए दूसरे प्रकाशकी जरूरत पड़े, ऐसा क्या हो सकता है? जलती हुई लालटेनको उठानेके लिए दूसरी जलती हुई लालटेनकी क्या आवश्यकता है? कोई आवश्यकता नही है। किसीने कहा कि कमरेमे लालटेन जल रही है उसे उठा लावो। सो कहे कोई कि दूसरी लालटेन जलती हुई दे दो तो हम उठा लावें। अरे जलती हुई लालटेनकी क्या आवश्यकता है? कोई आवश्यकता नही है। यत्न करनेकी जरूरत नही थी। यहाँ तो स्वयं ज्ञानकी बात ज्ञानके द्वारा आना चाहिए थी, पर यहाँ अधेर मच गयी। यह अधेर मोहसे, अज्ञानसे मची हुई है। अभी देखो कोई मनुष्य जो बडा बुद्धिमान है उसकी बुद्धि हर विषयमे बहुत अच्छी चलती है। किसी प्रकारका कषाय आ जाय तो फिर उसकी बुद्धि नही बढ़ती, उसकी वुद्धि रुक जाती है। जैसे कि वकील लोगको गुस्सा आ जाय। गुस्सा आ जानेपर विपक्षी ठीक बयान् नही कर पाता है। उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, पतित हो जाती है। यह बुद्धि मोह राग द्वेषसे खराब होती है। यदि व्यवस्था रहे बुद्धिकी तो यही सबसे बडा वैभव है। सबसे बड़ी दुर्लभ चीज क्या है दुनियामे? सबसे बडी चीज है आत्माके स्वरूपका यथार्थ ज्ञान करना दुर्लभसे भी दुर्लभ है। किन्तु ये स्वय अपनेमे मुड़ते नही हैं, इसलिए दुर्लभ है। अपने स्वरूपकी ओर दृष्टि दें तो इससे सुगम और कुछ नही है। यह तो सुगम है, प्राप्त ही है। निकटकी बात क्या है? अंतरमे ऐसी दृष्टि नही है। सुगम होते हुए भी दुर्लभ है जैसे मुट्ठीमे कोई चीज हो, जैसे अंगूठी या और कोई मूल्य-वान चीज हो और उस चीजको भूल जाये तो वह चीज कितनी दूर हो गयी? अरे वह तो

बिल्कुल ही दूर हो गयी। अब पेटियोंमे ढूढते है, बिस्तरमें ढूढते हैं, पर नही मिलती है। जिस चीजको ढूंढते हैं वह है मुट्ठीमे, पर कितनी दूर हो गयी ? अप्राप्य हो गई। वह बहुत दूर हो गई, अप्राप्य हो गई। कही बक्स खोलते, कही बिस्तर खोलते। दूसरे दिन दाहिने हाथमे सदूक खोलते थे, अब बायें हाथसे खोलते है, दाहिने हाथमे चीज बांधे है। न मिलनेपर दुःख हो रहा है। देखो है मुट्ठीमे ही, पासमे ही, पर भूल जानेपर वह चीज कितनी दूर हो जाती है ? इसी तरह यह आत्मा भीतर है और बाहर है क्या ? निकट है क्या ? और निकट की बात क्या, खुद ही तो है। खुद ही तो शान्तिमय है, आनन्दस्वरूप है, मगर खुदको भूल गए तो यह आत्मा कितना दूर हो गया ? बहुत दूर हो गया, खुद और दूर। अरे यह कितने आश्चर्यकी बात है कि आत्मा है खुद और दूर हो गई, कितनी अधिक दूर हो गई, अप्राप्य भी हो गई। तो आत्माका ज्ञान होना बहुत दुर्लभ चीज है। सबसे बडी भारी विपत्ति यह है कि मिले हुए सारे पदार्थ समाप्त हो जायेंगे सबका वियोग हो जायगा। कुछ भी हमारा आपका नही है। मगर यह आत्मा स्वरूप मेरा है, आपका है, यह तो कभी मिटेगा नही। यह तो सदा रहेगा, इस निजस्वरूपका ज्ञान न करके यह जीव कितना भटक रहा है, जन्म मरण करता यह जीव चला जा रहा है ? अपने आत्मस्वरूपका बोध न होनेसे ही यहाँ भटकना पड़ रहा है। तो अब समझ लीजिए कि सबसे दुर्लभ चीज क्या है ? आत्माके स्वरूपका ज्ञान होना ही दुर्लभ चीज है। चित्त क्षुब्ध है, आकुलताएँ करते हैं और दुःखी होते हैं, देश पर आक्रमणकी बात सुनकर कितना दुःख सबको होता है, समाजकी, घरकी बातोको सुनकर कितना दु ख हो जाता है ? इस सारी दुनियाके सारे क्लेश मिट जायें ऐसी इसकी कोई पेटेन्ट औषधि है। सारे क्लेशोको दूर करनेकी औषधि ज्ञान है। अपने स्वरूपका यथार्थज्ञान होना ही सारे क्लेशोको दूर करनेकी दवा है। जैसे अमृतधारा चला है वह १०० रोगोकी दवा है। पेट दर्द, सिर दर्द तथा अन्य दर्दोंके लिए यह अमृतधारा दवा चली है तो जैसे अमृतधारा बन गया है उसी प्रकार दु.खोको मिटानेके लिए अपने स्वरूपका यथार्थज्ञान होना एक परमार्थ दवा है। भारी क्लेश हो रहे हो, जरासा अपने स्वरूपकी ओर झुको, अपने ज्ञानस्वरूपमे डुबकी लगा लो तो सारे क्लेश दूर हो जाए। जैसे बडे समुद्रोमे मछलियां होती हैं। एक-एक, दो-दो मीलकी लम्बी तो लोग समझते हैं कि यह कोई टापू है, उस मे बड़ी-बडी घास. उग जाती है, उस पर बडी-बडी सेनायें बस जाती हैं। उस मछली पर बहुत बडा बोझ आ जाता है, बोझ आ जानेसे क्लेश आ जाते हैं उसके क्लेशके मिटनेकी कुजी यह है कि वह नीचे डूब जाय। तो इस जीवको सकट दूर करवेका क्या उपाय है कि वह अपने ज्ञानके समुद्र मे डूब जाय। उन सब सकंटोको मिटानेकी दवा यह है कि वह अपनेको समझे कि मैं ज्ञान-

मात्र हू । ये सब मुझसे अत्यन्त जुदे हैं । कोई कैसे परिणमता है, कोई कैसे । इन सबकी उपेक्षा कर लो, अपने ज्ञानकी प्रतीति कर लो, अपने आपमे डूब लो और फिर अपने सारे दुःख समाप्त कर लो । जैसे किसी घरमें इष्टका वियोग होगा तो समझाने वाले लोग सबको समझाते हैं, तो यही कहेंगे कि और भिन्न थे, वे आये थे और चले गए । इसलिए समझाते हैं कि उनसे उपेक्षा हो जाय और बात ज्ञानकी आ जाय । अपने आपको अकेला अनुभव कर सकें तो वे सुखी हो जायें । ऐसे हो तो एक यह ही उपाय है कि आत्माका सच्चा ज्ञान हो और आत्मामे ही रगडा करके उसमे ही तृप्त होकर ही दुःख दूर करनेका उपाय करें ।

आत्मयाथात्म्यविज्ञानं दुर्लभादपि दुर्लभम् ।
लभै रमै च तत्रैव स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४७॥

यह आत्मा स्वयं ज्ञायकस्वरूप है, ज्ञानस्वरूप है याने ज्ञान ही इसका सारस्वरूप है । सबसे विलक्षण यह ज्ञानमय पदार्थ है । इसीको ही ज्ञायकभाव कहते हैं । आत्माके अन्दर कौनसी चीज है ? यदि ऐसा पूछा जाय तो क्या उत्तर दोगे ? आत्मामे रूप है कि रस है, ईंट है, पत्थर है, सो बतलावो । आत्मामे क्या मिलेगा ? आत्मामे मिलेगा केवलज्ञान । जो जानकारी है जो ज्ञान है सोई आत्मा है । ऐसा जो मात्र ज्ञानस्वरूप आत्मा है उसको यदि न जाना तो, इस मर्ममे न पहुचो तो सारा जगत् भी जान डालें, दुनियाभर समझ डाले तो भी वह सारी समझ व्यर्थ है । एक अपने आत्माके स्वरूपका ज्ञान किया तो ज्ञान सफल है और यदि एक ज्ञान ही आत्मामे नही आता तो सारे लोकको जानता रहे तो वह सारा जानना बेकार है । अब यह जीव या हम और आप अपने आपको इस रूपमे देखें कि यह मैं केवलज्ञानज्योतिरूप हूं । शरीरका भी मान न रखना, शरीरमे भी दृष्टि न रखना, केवलज्ञान ही ज्ञानका प्रकाश अपनेमे नजर आवे और ज्ञानरूप ही अपनेको जानता रहे तो उस समयसे आत्माकी सच्ची जानकारी होती है । हम और कुछ अपनेको जानें तो सत्य जानकारी नही कर सकते । यही बात प्रभुकी है, भगवानकी है । भगवानको यदि स्वच्छ असीम ज्ञानरूप देखो तो प्रभुके दर्शन हुए समझो और प्रभुको यदि और और रूप वाला देखो, हाथ पैर वाला है, घरमें रहने वाला है, अमुकका लड़का है, अमुकका पिता है और कई रूपोंमे देखो तो प्रभुका अनुभव न होगा, प्रभुका ज्ञान न होगा । प्रभुका ज्ञान और अनुभव न होगा जो अपने आपके ज्ञानस्वरूपको ही देखे । मेरा ज्ञान असीम है, सारे विश्वको जाननेके स्वभाव वाला है । सो असीम, सर्व ज्ञाताके रूपमे अपने स्वरूपको देखो, ज्ञानको ज्ञानसे जानो तो प्रभुके स्वरूपका पता पडेगा । प्रभुको और और रूपोंमें देखनेसे प्रभुका दर्शन न होगा । यही बात अपनी है । हम अपनेको केवलज्ञानज्योतिरूप देखें, ज्ञानमात्र अपने आपको अनुभव करें, कोई विकल्प

न हो, कोई क्लेश न हो, कोई आकुलतायें न हो वह आनन्दमय है। अपने आपका अनुभव आनन्दमय ही होता है। अपने ज्ञानस्वरूपका ज्ञान किए बिना यह सारा लोक भी जान जायें, बडे-बडे आविष्कारोको जान जायें, जिन्हे कहते हैं बडी कलायें हैं, ऐसी बड़ी कलाओको भी जान जायें, पर एक ज्ञानस्वरूपका अनुभव न किया तो वह सारा जानना व्यर्थ है। ऐसा समझकर ज्ञानमय जो अपना स्वरूप है उस स्वरूपको अनुभवें और अपनेको ही आप स्वय ही देखें। यह चीज स्वयंकी है, प्रिय भी है। गृहस्थावस्थामे दसों राग करने पड़ते है, पुत्रोकी याद रखना पडता है. धन कमानेकी भी कोशिश करना होता है। सब कुछ करते हुए भी अपने स्वरूपका सही भान रहे तो उसे आकुलताएँ नही सताती। कितनी ही विपदाएँ आ जाएँ अपने आपके स्वरूपको देखो, अपनेको सारे झंझटोसे न्यारा, शुद्धमात्र केवल ज्ञानरूप, ऐसा अपने आपको सबसे जुदा विश्वाससे लखो, उसमे ही ये संकट दूर हो जाते है। ये प्रभुके दर्शन भी किसलिए किए जाते हैं ? अपने आपको शुद्ध मार्ग मिले, मुझे क्या करना चाहिए, इन बातोके लिए प्रभुके दर्शन किए जाते हैं। मोहकी बुद्धि करनेका तो यह फल है कि जब प्रवृत्ति उन मोहोमे होती है तभी क्लेश प्राप्त होते हैं। प्रभुने क्या किया था कि अपने आत्माके शुद्ध स्वरूपको जाना था और जानकर इस ही उपयोगमें लग गये थे। विषयोंसे, मोहसे जुदा हो गये थे और इसी ब्रह्मस्वरूपमे रत होकर वे मोक्ष पधारे थे। ऐसा विश्वास निरन्तर रहना चाहिए कि ऐसा कर सके तो ठीक है। तो इससे ही आत्मा झंझटोसे परे हो जाती है। इसलिए आत्माके ज्ञानस्वरूपको ही देखकर सुखी होऊँ।

॥ सुख यहाँ द्वितीय भाग समाप्त ॥

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्त-न्याय-साहित्यशास्त्री
पूज्य श्रीमत्सहजानन्द महाराज
द्वारा विरचितम्

सहजपरमात्मतत्त्वाष्टकम्

।। शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ।।

यस्मिन् सुधाम्नि निरता गतभेदभावाः, प्राप्स्यन्ति चापुरचलं सहजं सुशर्म ।
एकस्वरूपममलं परिणाममूल, शुद्ध चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ।।१।।

शुद्धं चिदस्मि जपतो निजमूलमंत्रं, ॐ मूर्ति मूर्तिरहित स्पृशतः स्वतंत्रम् ।
यत्र प्रयान्ति विलयं विपदो विकल्पा., शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ।।२।।

भिन्नं समस्तपरतः परभावतश्च, पूर्णं सनातनमनन्तमखण्डमेकम् ।
निक्षेपमाननयसर्वविकल्पदूरं, शुद्ध चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ।।३।।

ज्योतिः परं स्वरसमकर्तृ न भोक्तृ गुप्तं, ज्ञानिस्ववेद्यमकलं स्वरसाप्तसत्त्वम् ।
चिन्मात्रधाम नियत सततप्रकाशं, शुद्धं चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ।।४।।

अद्वैतब्रह्मसमयेश्वरविष्णुवाच्यं, चित्पारिणामिकपरात्परजल्पमेयम् ।
यद्दृष्टिसश्रयणजामलवृत्तितानं, शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ।।५।।

आभात्यखण्डमपि खण्डमनेकमंश, भूतार्थबोधविमुखव्यवहारदृष्टचाम् ।
आनदशक्तिदृशिबोधचरित्रपिण्ड, शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ।।६।।

शुद्धान्तरङ्गसुविलासविकासभूमि, नित्यं निरावरणमञ्जनमुक्तमीरम् ।
निष्पीतविश्वनिजपर्ययशक्ति तेजः, शुद्ध चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ।।७।।

ध्यायन्ति योगकुशला निगदन्ति यद्धि, यद्ध्यानमुत्तमतया गदितः समाधिः ।
यद्दर्शनात्प्रवहति प्रभुमोक्षमार्गः, शुद्ध चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ।।८।।

जपरमात्मतत्त्व स्वस्मिन्ननुभवति निर्विकल्पं यः ।
सहजानन्दसुवन्द्यं स्वभावमनुपर्यय याति ।।९।।

•••०O०••

मेरे शाश्वत शरण, सत्य तारणतरण ब्रह्म प्यारे ।
तेरी भक्तीमे क्षण जांय सारे ।। टेक ।।

ज्ञानसे ज्ञानमे ज्ञान ही हो, कल्पनाओका इकदम विलय हो ।
भ्रांतिका नाश हो, शांतिका वास हो, ब्रह्म प्यारे । तेरी० ।।१।।

सर्व गतियोमे रह गतिसे न्यारे, सर्व भावोमे रह उनसे न्यारे ।
सर्वगत आत्मगत, रत न नाही विरत, ब्रह्म प्यारे । तेरी० ।।२।।

सिद्धि जिनने भि अब तक है पाई, तेरा आश्रय ही उसमे सहाई ।
मेरे सकटहरण, ज्ञान दर्शन चरण, ब्रह्म प्यारे । तेरी० ।।३।।

देह कर्मादि सब जगसे न्यारे, गुण व पर्ययके भेदोंसे पारे ।
नित्य अंतः अचल, गुप्त ज्ञायक अमल, ब्रह्म प्यारे । तेरी० ।।४।।

आपका आप ही प्रेय तू है, सर्व श्रेयोमे नित श्रेय तू है ।
सहजानन्दी प्रभो, अन्तर्यामी विभो, ब्रह्म प्यारे । तेरी० ।।५।।

※ आत्म-रमण ※

मैं दर्शनज्ञानस्वरूपी हू, मैं सहजानन्दस्वरूपी हू ।। टेक ।।

हू ज्ञानमात्र परभावशून्य, हू सहज ज्ञानघन स्वय पूर्ण ।
हू सत्य सहज आनंदधाम, मैं सहजानद०, मैं दर्शन० ।।१।।

हू खुदका ही कर्ता भोक्ता, परमे मेरा कुछ काम नहीं ।
परका न प्रवेश न कार्य यहाँ, मैं सहजानद०, मैं दर्शन० ।।२।।

आऊं उतरू रम लू निजमे, निजकी निजमे दुविधा ही क्या ।
निज अनुभव रससे सहज तृप्त, मैं सहजानंद०, मैं दर्शन० ।।३।।